भट्टोजिदीक्षितकृता

सिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरीटीकायुता

[तृतीयो भाग]

शैषिकसे जुहोत्यादि तक [उत्तर मध्यमा प्रथम खण्ड]

टीकाकारः—डा० प्रभाकरमिश्र एम. ए. व्याकरणाचार्य

विद्यावारिधि [पी एच डी] व्याकरणविभागाध्यक्षः

श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय, मिश्रपोखरा

वाराणसी

प्रकाशकौ—अरविन्दमकरन्दमिश्रौ

अरविन्दमकरन्दप्रकाशन

बी ३७/४५ ए-२ विरदोपुर (बैजनत्था मन्दिर)

वाराणसी-१०

[रक्षाबन्धन

१९८७ ईस्वीये]

[प्रथमसंस्करणम्]

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

भारतीय विद्याप्रकाशन-यू० पी० बैंग्लो रोड, जवाहर नगर
दिल्ली १०००७
भारतीय विद्याप्रकाशन कचौडी गली वाराणसी
चौखम्भा पुस्तकालय " "
गिरिजा प्रकाशन डी० २१/१३ राणामहल [बगाली टोला]
वाराणसी

पता—

प० श्रीप्रभाकरमिश्र
अरविन्दमकरन्दप्रकाशन
बी ३७/४५ ए—२ विरदोपुर [बैजनत्थामन्दिरके पीछे]
वाराणसी

मूल्य-४० रुपये

मुद्रणस्थानम्—

शुभङ्करण प्रेस, विरदोपुर, वाराणसी

[भूमिका]

परम्परागतलब्धवैदुष्येण "श्री रामानुजसस्कृतमहाविद्यालयस्योपमिश्र-पोखर वाराणसेयस्य व्याकरणविभागाध्यक्षेण वैयाकरणभूषणसारस्य प्राभाकरीटीकाकारेण च डा० **श्रीप्रभाकरमिश्रमहोदयेन** या निर्मिता हिन्दी सस्कृतव्याख्यासहिता "सिद्धान्तकौमुदी सा मया अदर्शि। सा चाधुनिकाना प्राचीनाना सस्कृतज्ञाना कृते अतीवोपयोगिनी। साम्बं श्रीविश्वनाम्प्राथये यदस्या प्रचारः प्रसारश्चाधिकाधिकरूपेण जायताम्। साम्प्रतमेतादृशस्य ग्रन्थस्य महत्यावश्यकता वर्तते।

विदुषा वशम्वद **मङ्गलाप्रसादपाठक**

व्याकरणविभागाध्यक्ष, कर्णघण्टा, वाराणसी

भट्टोजिदीक्षितकृतवैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीय वृत्ति— अत्यन्त उपयोगिनी है। कारण कि इसमे दीक्षितजी ने प्राचीन आचार्योंके सिद्धान्तो का दिग्दर्शन कराकर त्रिमुनिसम्मत सिद्धान्तोका प्रतिपादन अपूर्व कौशलसे किया। दीक्षितजीने प्रकरणानुमार प्रयोग अष्टाध्यायीके सूत्रो एव, उसके सहकारी कात्यायन वार्तिकोका क्रम उन्हींके साथ जोडकर, कही भाष्यवचन भी उद्धृत करके जिस सशोधित शब्दसाधनिकाकी पद्धति उपन्यस्त की है। उससे व्याकरण विद्यार्थियोकी व्याकरणाध्ययनमे अपूर्वरोचकता अपूर्वसरलता बढ गयी है। सज्ञासे लेकर लिङ्गानुशासनपर्यन्त इस ग्रन्थमे वर्णित सिद्धान्त दिग्भ्रान्त वैयाकरणकी परम्परा कहते है। इस ग्रन्थकी सुस्पष्टताके लिए स्वय दीक्षितजीने प्रौढमनोरमा, श्रीहरिदीक्षितने मनोरमा शब्दरत्न तथा नागेशभट्टने शब्देन्दुशेखरादि ग्रन्थ लिखकर इसका और भी गौरव बढाया। कौमुदी यदि कण्ठस्था, वृथा भाष्ये परिश्रमम। कौमुदी यद्यकण्ठास्था वृथा भाष्ये परिश्रमम्। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदीका कितना महत्व है। पाणिनिव्याकरणशास्त्रमे प्रविष्ट छात्रोके लिए परम उपयोगी है कि इसमे प्रारम्भिक छात्रोकी सुकुमार मनस्थितिके अनुकूल ही अपूर्व मनोवैज्ञानिक रूप से वैयाकरणसिद्धान्तोका सुबोध प्रतिपादन हुआ है। इस ग्रन्थरत्नकी अनेक विद्वानोकी सस्कृत टीकाभी है। हिन्दीविद्वानोने यथामति हिन्दी व्याख्या प्रस्तुतकी है। **छात्रकृपावशम्वद** मेरे चिन्तनसखा आचार्य पं० **श्री प्रभाकरमिश्र** जी ने भी इस ग्रन्थ पर **प्राभाकरीटीका** लिखकर

बडा ही स्तुत्य तथा सफल प्रयास किया है। श्रीमिश्रजी पाणिनीयव्याख्याकरणके गम्भीर पाण्डित्यके साथ–साथ सुबोध शैलीमे विषय प्रतिपादनकी अपूर्व क्षमता रखते है। जो इस टीकामे सर्वथा परिलक्षित है। मैंने श्री मिश्र जीकी सिद्धान्तकौमुदीकी प्राभाकरी टीकाके अनेक स्थलका गम्भीरता एव रुचिसे सुनी है। आपकी भाषा भावाभिव्यक्तिसमर्थ सरल तथा परिष्कृत है, टीकाकार विद्वान्ने विषयोको निगमनशैलीमे समझानेका बडा ललित प्रयत्न किया है। हिन्दी भाषामे सरलतासे प्रत्येक सूत्रका अर्थ प्रस्तुतकर वृत्ति के अर्थको भी सरल शब्दोमे समझाकर विषयोको रोचक बनाया है कि सामान्य विद्यार्थीभी इस टीकाको स्वय पढकर **प्राभाकरी नौकापर आरूढ़ हो पाणिनिमहासागरको पार कर सकता है**। प्रयोगोके अर्थको हिन्दीमे समझाकर तत्समकक्ष दूसरे बहुतसे प्रयोगोको लिखकर मिश्रजी ने छात्रोको व्युत्पत्ति क्षमता बढानेकी एक नवीनतम दिशा दी है। मै अपने **अभिन्न मित्र श्रीप्रभाकरमिश्रके इस शुभकार्यके लिए सहस्रशः साधुवाद वितरित करता हूं**। इस टीकाके अनुदिन प्रचारार्थ और प्रसारार्थ अपनी कोटि–कोटि शुभकामना अर्पित करता हू। एव इनके इस प्रयासमे नित्य नूतन प्ररणाके लिए **श्रीजानकीवल्लभ श्रीराघवेन्द्रभगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामजूके चारुचरणकमलोमे** अभ्यर्थना करता हू।

श्रीरामश्शन्तनोतु। इति–कामयते।

गिरिधर मिश्रः

अध्यापनविधि—छात्रोको सातो विभक्तियोका अर्थ ठीक समझाकर कुछ अनुवादकी प्रवृत्ति जगाये, प्रयोगोकी साधनिका–अर्थ खुलने के अनुकूल समझाकर अनुवादवाक्यमे शब्दोका प्रयोग करना सिखाये, क्योकि **सम्यग्ज्ञात सुप्रयुक्त. स्वर्गे लोके च महीयते**। शब्द अर्थ सम्बन्ध समझाकर वाक्य (व्यवहार)मे प्रयोग होना पुण्यका कारण है, सम्यग्ज्ञाता स्वर्गमे, सुप्रयोक्ता लोक में महनीय (सुप्रतिष्ठित) होता है। **स्वाध्यायप्रवचनाभ्या मा प्रमदितव्यं** स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेन, विद्या सफला परिपक्वा च **भवति**। अध्ययन मनन चिन्तन व्यवहारमे प्रयोगसे उपयोगिता, पुण्य, जनकता सफलता सम्मृद्ध होती है।

तद्धितका प्रतिपाद्यविषय—तेभ्य प्रयोगेभ्य (प्रातिपदिकेभ्यः सुबन्तेभ्यो वा) हिता प्रत्यया तद्धिता. । प्रातिपदिक अर्थके पोषकप्रत्यय तद्धित है । अथवा सुबन्तात्तद्धितोपत्ति सिद्धान्तके आधार पर सुबन्तपदके अर्थका पोषकप्रत्यय तद्धित है । तद्धित प्रकरणोके सूत्रोमे कही अर्थ निर्देश है । —स अर्थवाचक प्रत्ययका उच्चारण नही, जैसे तस्यापत्य—सन्तान अर्थ, तस्येद इदम्का अर्थ, सारा जगत सस्कृत भक्षा सस्कारकी हुई खाकेकी वस्तु अर्थ, तस्मै हित—हित अर्थ, तदस्य पण्य दुकानदारी अर्थ इत्यादि । इन अर्थोमे कौन प्रत्यय हो स्पष्ट नही, किन्तु कुछ शब्दोसे प्रत्यय कहे गये है अर्थ निर्देश नही । जैसे गोपसयोर्यत गो एव पयस् शब्दसे यत् ही होगा, चाहे जो भी अर्थ हो, गोर्विकार, गवि भव' जात, गवे हित गोरागत, गवा समूह, गोरिदम, सवसे यत होगा । गव्यम ही बनेगा । लिङ्गानुसार । प्रकृति प्रत्ययका अर्थ परस्पर सम्बन्ध मुख्य विषय है । तद्धितार्थ खुलना चाहिये । गोर्भाव' गोत्व गायके सभी विशेषण (जाति क्रिया गुण धर्म) त्व प्रत्ययके अर्थ है । प्रकृत्यर्थ के पोषक गोर्विकारः दूध, दही, गोबर मूत्र आदि गाय सम्बन्धी अर्थ है । उसका प्रकाशक यत्प्रत्यय । द्रोणस्य अपत्य द्रौणि आचार्यद्रोण प्रकृति है । उनका सम्बन्धी जन्यजनक भाववाला औरस पुत्र इञ् प्रत्ययका अर्थ । जन्य जनक सम्बन्ध । द्रोणमे जकनको योग्यताका सूचक सन्तान तद्धितार्थ है । लावणिक पुरुष लवण पण्य अस्य, नमकका दुकानदार, दुकान अर्थका सूचक लवणाट्ठञ् । नमक सम्बन्धी दुकानदार तद्धितार्थ है । घार्त द्विदल, घीसे छौंकी दाल । घृतेन सस्कृत घीसे सस्कार किया हुआ अण् प्रत्ययार्थ तद्धितार्थ, प्रकृति घी से स्वादिष्ट किया हुआ स्वाद की विशेषता अर्थमें अण् । स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति प्रातिपदिकके अर्थमे ही होते है क्योकि स्व कृति' प्रातिपदिक तस्यार्थ स्वार्थ प्रातिपदिकार्थ. तत्र भव स्वार्थिक । ये प्रत्यय प्रातिपदिक अर्थके अनुवादक है । साधुत्व प्रयोजनम् ।

तिडन्तका प्रतिपाद्य—धातुके अधिकारमे तिड प्रत्यय पढे गये । धातु-का (क्रिया, फल) दो अर्थ । **काल क्रियात्मकमाहु** । सारा जगत काल क्रियारूप है, क्रिया एव आत्मा यस्य स क्रियात्मक काल । वह क्रिया फलवती है । जैसी क्रिया होगी वैसा फल उत्पन्न करेगी । ऐसी क्रियावाची धातुको धातुसज्ञा (भूवादयो धातव से) अनन्तफल दर्शनसे क्रिया भी अनन्त । उसका आधार धातु भी अनन्त । मुख्यत सभी धातु भ्वादिगण है । उसका निर्णायक शप् विकरण है अन्यगण भ्वादिके अन्तगत मात्र है । शप्के स्थानमे लुक् हो

ऐसा धातुसमुदाय -अदादिगण है । अन्यथा अन्यगणोकी धातुसज्ञामे बाधा पडेगी, भ्वादिको ही धातुसज्ञाके विधानसे । क्रियावाचिन- भ्वादयः धातु सज्ञका । नतु अदादय दिवादय धातुसज्ञकाः । शप्‌को श्लु हो ऐसा धातु समुदाय जुहोत्यादि है । उसी शप्‌को श्यन् हो एसा समुदाय दिवादि,उसी शप् को श श्नम् श्नाका होना भ्वादिमे तुदादि रूधादि क्र्यादि गणका भेदक धर्म विकरण है ।

अध्यापनकालमें प्रत्येक धातुका क्रिया अर्थ खोलकर, फल अर्थ समझाकर ही धातुसज्ञा करें । जैसी प्रभाकरी टीकामे की गयी है ।

तिङ्‌का आधार कल्पित लकार हैं । कर्ता कर्म क्रिया काल, लकारसे खुलते है । लकारा कर्मणि कर्तरि भावे च स्यु , वतमाने काले लट् । परोक्ष-काले लिट्, क्रिया सहितकर्ताका प्रत्यक्ष न होना परोक्ष है । या काय देखकर क्रियाका अनुमान होना परोक्ष । भोजन पक चुका देखकर कदा पपाच पेचतु पेचु. । अह पपाच मनकी अनवस्थासे पाकक्रिया अनुमानका विषय बनी । अह विललाप,कदा ? यदा सुप्त , विलापक्रिया अनुमानसे समझी गयी । लकार विधायकसूत्रोकी टीकामे अनेक अर्थ देखे ।

तिङन्तपदका अर्थ खुलना अत्यन्त आवश्यक जैसे अजघर्ं त्व वर्तामे, अनद्यतनभूतकालिक आसक्तलोभ या असन्तोषकी क्रिया । त्वदभिन्नैकतृक भूतान्द्यतनकालिक आसक्तलोभानुकूलव्यापार । **मा गृध कस्याचिद्धनम्** किसीका धन देखकर आसक्तलोभी मत बनो ।

टीका का उद्देश्य—सम्यक्ज्ञात सुप्रयुक्त पुण्यभाग्भवति, विद्वान् भवति, लोकप्रियो भवति,स्वर्गमोक्षाधिकारी च भवति । शब्दानुशासन परस्पर सम्बन्धानुशासन (पुण्यजनकता) फलानुशासन चाराका सफल सुबोध सुव्यावहारिक अनुशासन सम्यग्ज्ञान है । इसी आधार पर सुसस्कृत शब्दोका सुप्रयोग, सफल उपयोग सभव है । सूखा शब्दानुशासन पुण्यजनक नही, अधूरा ज्ञान होनेसे । अर्थ प्राण । सम्बन्ध =शक्ति(ताकत)बल है । अथरस है । रस्यते आस्वाद्यते इति रस अर्थं प्राणश्च आनन्दविषय । सम्बध्नाति अर्थौ शब्दौ प्रयोजति सम्बन्ध । इस प्रभाकरी टीकामें वर्णस्फोटार्थ (धातुका अर्थ, प्रत्यय का अर्थ) खोला गया है । पदस्फोटार्थ तिङन्तपदके विकसित अर्थ (स्फुट विकसने) यत्र तत्र खोले गये हैं । उतने अर्थ पच-जानेपर द्वितीयसस्करणमे शेषरूपसे स्फोटार्थ खोले जायेगे ।

सम्पादक टीकाकारश्च—प० श्रीप्रभाकरमिश्रः



जौनपुरमण्डलान्तर्गतशाहपुरपत्रालयस्य मुकुन्दीपुरग्रामाभिजन, विद्वन्मूर्धन्यस्य न्यायवेदान्तव्याकरणावतारस्य काश्यां सुप्रसिद्धस्य प० श्रीशुभकरणमिश्रस्य पौत्रः, स्वजनपदसेवनसमर्पितशरीरस्य, ज्योतिषकर्मकाण्डपुराणव्याकरणादिशास्त्रावतारस्य प० श्रीहरिप्रसादमिश्रस्य पुत्र, प्रयतपाणि पित्रोश्चरणयो रचितग्रन्थसमर्पणेन शरण प्रपद्ये ।

प्रकरण—सूची

अथतद्धिते शैषिकप्रकरणम् ।२६।

(१३१२) शेषे ४।२।९२।। अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थ शेष, तत्र अणादय स्यु । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुष रूपम । श्रावण शब्द । औपनिषद पुरुष. । दृषदि पिष्टा दार्षदा सक्तव । उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावक । अश्वैरुह्यते

नत्वा मुनित्रय शम्भु वितनोति प्रभाकरः ।
शैषिकादिजुहोत्यन्ता टीका प्रभाकरीं शुभाम् ।।

॥ अथशैषिकाः ॥

परिचय—शेषे भवा अवशिष्ट अर्थमे होने वाले प्रत्ययका प्रकरण। जिनके विस्तृत ज्ञानका सूत्र—

(१३१२) **शेषे** (शिष असर्वोपयोगे) सबके उपयोग मे न आने के अनुकूल क्रिया शिष धातु का अर्थ है। कर्मणि घञ् शिष्यते इति शेष । **उक्तादन्य**=कहे हुए अर्थ मे बचा हुआ अर्थ शेष है। अपत्याधिकारके **सन्तान अर्थसे लेकर रक्त अर्थ, नक्षत्र युक्त काल, दृष्ट साम, घिरा रथ, उद्धृत, सस्कृत, सास्मिन् देवता सम्बन्धी, भववत्, भ्राता, पिता, पितामह, अर्थ समूह, विषयो देशे, प्रहरणम्, अधीते-वेद, अस्मिन्देशे, निवृत्त, निवास, अदूरभव** तक जितने अर्थ है **उनसे भिन्न अर्थ-ग्रहण** श्रवण पिष्ट वहन (ढोना खीचना) दृष्ट, जात, भव आदि अर्थ शेष है। इन अवशिष्ट अर्थोमे यथायोग्य अण् आदि हो । तेन दीव्यतिके पहले हुए सभी प्रयत्योका सकेत समझे। **यथा—चक्षुषा** गृह्यते—नेत्रसे ग्रहणके योग्य रूप अर्थमे अण्, चक्षुष् अ । तद्धितष्वचामादे से आदिवृद्धि । तद्धितान्तत्वात्प्रा० सज्ञा स्वादिकार्य । **चाक्षुषम्** । आँखका विषय रूप । **श्रवणेन-श्रूयते** कानोंसे सुना जाय वह शब्द **श्रावण** । श्रवण अण आदि पूर्ववत् । उपनिषदा बोध्यते प्रतिपाद्यते, वेदान्तभागसे समझा हुआ पुरुष **ब्रह्म औपनिषद** उपनिषद्से अणादि । दृषदि=पत्थर, चक्की सीलपर पिसा हुआ सक्तु चटनी आदि। **दार्षदा** दृषद् से अणादि कार्य पूर्ववत । उलूखलमे कूटा हुआ, तिखुरी धान आदि । **औलूखलः** ओखरीमे छाटा हुआ जौ आदि। यवएव यावक । उलूखलसे अणादि कार्य । अश्वै=घोडे आदिसे खीचा जारहा रथ ही आश्व है। अश्वसे अणादि, चतुर्भि चार घोडोसे खीचने योग्य शकट—गाडीका नाम चातुरम् । चतुरसे अण् आदिवृद्धि । चतुर्दशीके कृष्णपक्षकी रात्रिमे राक्षस देखे जाते है ऐसा आगम—

आश्वो रथ । चतुर्भिरुह्यते चातुर शकटम् । चतुर्दश्या दृश्यते चातुर्दश रक्ष । 'शेषे' इति लक्षण चाधिकारश्च । 'तस्य विकार' इत्यत प्राक्छेषाधिकार ।

प्रमाण है । चतुर्दशीसे अण, आदिवृद्धि । यस्येति इकारलोप आदि **चातुदशम्** ।

शेष इति लक्षण चाधिकारश्च=शेषे सूत्र लक्षण है लक्ष्यते अपूर्व बोध्यतेऽनेन लक्षण विधिसूत्रम् । ग्रहण श्रवण भव जात आदि अपूर्व अथमे अणादिका विधान **अपूर्व बोधकत्व विधित्व,** ग्रहण क्षुण्ण पिष्ट आदि अर्थ जो पूर्व या उत्तर सूत्रो मे स्वीकृत नही है । उनमे अणादिका विधायक है । केवल अधिकार होता तब उत्तर सूत्रो मे अनुवृत्ति लाभसे विधित्व सिद्ध न हो पाता। **अधिकार सूत्र** है । स्वरित प्रतिज्ञासे उत्तर सूत्रोमे शेषके अधिकारसे शेष अथमे प्रत्यय होना फलम्, कहाँ तक अधिकार है, **तस्य विकार** के पहले तक शेषका अधिकार निश्चित किया । अत्र **शङ्का**-यहाँ लक्षण (विधिसूत्र) मानना व्यर्थ है । क्योकि तस्येद सूत्रके इदम अर्थमे सभी अर्थ गतार्थ है । ग्रहण श्रवण बोधन सभी इदम् अथमे विराजमान है । उसीसे अणादि होगे । सस्कृत भक्षासे चक्कीमे सस्कार किया (पिसा हुआ) सक्तु आदिका भी अणादिसे काम चलेगा, विधिसूत्र न माने । **एव अधिकारोऽपि व्यर्थ.** क्योकि अपत्यादिसे लेकर चतुरर्थ तक कहे गये अथसे भिन्न अर्थमे घ प्रत्ययसे लेकर ट्युल् अन्त तक प्रत्ययो की निवृत्ति सिद्ध है । अधिकार मानना अनावश्यक । क्योकि आर्द्रकशाला आदि का उत्करादिगण मे पाठके (पुराने अर्थोमे घ आदि नही होगे) ऐसा ज्ञापन होनेसे । अन्यथा वृद्धाच्छ की कृपासे गणमे पाठ व्यर्थ होता अत सूत्र ही व्यर्थहै । समाधान—

शैषिकान्मतुबर्थीयात् शैषिको मतुवर्थिक सरूपः प्रत्ययो नेष्ट । आदि जो प्रत्यय कहे जायेगे, उनका विषय ग्रहणादि अर्थ लाभके लिए अत शेषाधिकार आवश्यक, शैषिक के विशेषकार्यके लिए । शेषाधिकार ही श्लोकका ज्ञापन करता है । यह श्लोक सन्नन्त और मतुप विधिके भाष्य मे पढा है । अपत्यादि अर्थमे घ, छ आदि प्रत्यय न हो इसलिए भी शेषाधिकार । आर्द्रकशाला आदि से यदि छ हो तब चतुरर्थीमे ही हो, ऐसा नियम सम्भव है । इस दशामे चाक्षुष श्रावण आदिमे ग्रहण श्रवण आदि अर्थ ज्ञान के लिए **विधि सूत्र मानना भी सुन्दर है** । शालाया भव शालीय होगा, शालीये भवम नही होगा । क्योकि शैषिकसे समान रूप वाले शैषिकप्रत्यय न हो, विरूपसे हो ।

(१३१३) **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** ४।२।९३।। आभ्या क्रमाद्घखौ स्त । शेषे राष्ट्रिय । अवारपारीण । 'अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् । अवारीण । पारीण । पारावारीण । इह प्रकृतिविशेषाद्घादयष्टच्युटच्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते । तेषा जातादयोऽर्थविशेषा समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते । (१४)

(१३१३) **राष्ट्र** ओर अवारपार शब्द इन दोनोसे घ और ख क्रमसे हो शेषे=**अव**शिष्ट अथमे राष्ट्रे जात भव राष्ट्रमे जन्मा हो (जनी प्रादुर्भावे) प्रकट हो, उत्पन्न व्यक्ति वस्तु अर्थमे अण् आदि । रक्ष्यन्ते जना अनेन जिससे लोग सुरक्षित रहे उस राष्ट्रसे (सूत्रसे) घ, उसको आयनेयी० से इय आदेश । तद्धितान्तसे प्रातिपदिकसज्ञा । यस्येति अकारलोपे स्वादिकार्ये । **राष्ट्रिय** । अवारपारे **भव** इस पार उस पार जन्म, प्रकट होना अर्थमे अवार पार शब्दसे ख ईन आदि **अवारपारीण** णत्व भी ।(वा०) **अवारे** (इसपार) पार (उस पार) शब्दके अलग रहने पर भी ख कहे । **विपरीतात्**=उलट जाने पर भी ख कहे । अवारे जात इस पार प्रकट हुआ व्यक्ति या वस्तु अथमे अवारसे ख ईन आदि अवारीण उस पार प्रकट हुआ अथमे (पारे जात विग्रहे) पारसे ख ईन् आदि पारीण । उलटकर पारावारे जात । उसपार इस पार भी अधिकृत है । पारावार से ख—ईन आदि । तैराक इस पारसे उस पार, उस पारसे इस पार आते जाते हैं ।

अत्र शङ्का—राष्ट्रवारपार सूत्रसे लेकर विभाषा पूर्वाह्ण, सूत्रतक राष्ट्र आदि प्रकृतिसे शेष अथमे प्रत्यय बोले गये । किन्तु उनके अर्थ खुलेही नही जैसे तस्य अपत्य सूत्रका सन्तान अर्थ खुलता है । केवल यही कहा गया कि राष्ट्र आदि प्रकृतिमे (घ खसे लेकर) ट्युल् अन्ततक प्रत्यय जो कह गये, वे हो समर्थाना प्रथमाद्वाका सहयोग नही, प्रथम उच्चारित विभक्तिविशेष न मिलने से । किं च-आगेके सूत्र, तत्र जात , तत्रभव मे प्रादुर्भाव उत्पत्ति अर्थ कहे गये, वहा प्रथम उच्चारित सप्तमी विभक्तिकी प्रकृतिसे सभी साधारण अणादि प्रत्यय होगे । यहा किस अर्थमे घ आदि प्रत्यय हो । तब कहा-इह प्रकृति=राष्ट्र आदि शब्दसे (केवल घसे) लेकर टच्युल अन्त तक त्यय कहे गये । उनके अर्थ और सामर्थ्यकी विशेष इच्छा पर (तत्र जात) आदिका स्मरण होगा । आकाङ्क्षावशात् प्रथमाद्वा सूत्रसे उन विभक्तियोकी प्रकृतिके साथ विधेय प्रत्यय

ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४।। ग्राम्य -ग्रामीण । (१३१५) **कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्** ४।२।९५।। कुत्सितास्त्रय त्त्रय । तत्र जातादि कात्त्रेयक । नागरेयक । ग्रामात इत्यनुवृत्तेर्ग्रामेयक । (१६) **कुलकुक्षिग्रीवाभ्य श्वास्यलङ्कारेषु** ४।२।९६ ।। कौलेयक श्वा । कौलोऽन्य । कौक्षेयकोऽसि । कौक्षोऽन्य । ग्रैवेयकोऽलङ्कार । ग्रैवोऽन्य । (१७) **नद्यादिभ्यो ढक** ४।२।९७।। नादे-

---

की आकाक्षा होनेपर परस्पर एकवाक्यता होगी। तत्र जात का प्रभाव जमेगा। प्रथम उच्चारित राष्ट्र आदिसे जातादि अर्थमे प्रत्यय होगे। राष्ट्र आदिप्रकृति भिन्नसे जातादि अर्थमे अणादि होते ही है। (१४) **ग्रामसे** (जन्म लिया हुआ) प्रकट, भव उत्पन्न, अर्थमे यत् और खञ् हो। ग्रामे जात ग्राम्य (देहाती) यत अ-लोप। जब खञ् तब ईन, णत्व आदि कार्य ग्रामीण । (१३१५) **कत्त्रय** (कुत्सित भ्रष्ट तीन व्यक्ति) इस गणमे पढे शब्दोमे ढकञ् हो उक्त अर्थमे या कुत्सितास्त्रयो यस्य बहुव्रीहि भी। निपातनसे कु को क आदेश। कुगति प्रादय समास। कत्त्रौ जात भव **कात्त्रेयक** खडयन्त्र आदि। कत्त्रिसे ढकञ्, ढ को एय, इलोप आदि—नगरे जात **नागरेयक** (शहराती) नगरसे ढकञ् ढ—एय आदिवृद्धि आदि। स्वरितप्रतिज्ञासे ग्राम आया, उससे भी ढकञ् आदि **ग्रामेयक** । कुल्याया जात **कौलेयक** शैवाल, सोतीमे पैदा हुआ। कुल्याया यलोपश्च। उम्भि कुण्डिन माहीष्मती आदि।

(१६) **कुल**—वशपरम्परा कुक्षि (कोष म्यान पेट कखौरी ग्रीवा) से ढकञ् हो। यदि क्रमसे श्वा–कुत्ता, असि–तलवार, अलङ्कार–आभूषण अर्थ खुलता हो। कुले जात कुलीन कुत्तावश परम्पराका **कौलेयक** । कुलसे ढकञ् एय आदिवृद्धि आदि। यदि कुत्ता अर्थ न हो तब कुलसे अणादि **कौल** गौ कुक्षौ—कोशे भव खड्ग म्यानमे तलवार **कौक्षेयक**। कुक्षिसे ढकञ आदि यदि तलवार अर्थ नहीं, अन्य अर्थ हो तब अण् आदि **कौक्ष** मणि । ग्रीवासु भव **ग्रैवेयक**, आभूषणम् गलेका हार। ग्रीवासे ढकञ् आदि। आभूषणसे भिन्न अर्थ होगा तब अणादि ग्रैव स्फोट—गलेका फोडा ।

(१७) **नदी** आदि गणमे पढेसे ढक हो जात भव अर्थमे। नद्या भवं नादेय सीपी सेवार नदीमे होते है। नदीसे ढ, ढको एय आदि। मह्या भूमौ भव **माहेयम्** खान भूगर्भ आदि। महीसे ढ-एय आदिवृद्धि ईलोप। वारणस्या जात

यम्। आहेयम्। वाराणसेयम्। (१८) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८। दक्षिणा इत्याजन्तमव्ययम। दाक्षिणात्य। पाश्चात्य। पौरस्त्य। (१९) कापिश्याः ष्फक् ४।२।९९।। कापिश्या जातादि कापिशायन मधु। कापिशायिनी द्राक्षा। (१३२०) रङ्कोरमनुष्येऽण्च ४।२।१००।। चात्ष्फक्। राङ्कवो गौ। राङ्कवायण। अमनुष्ये इति किं? राङ्कवको मनुष्य। (२१) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१।। दिव्यम्। प्राच्य। अपाच्यम्, उदी-

---

भवन वाराणसीसे ढ एय आदि। वाराणसेयम् (१८) दक्षिणा=आच् अन्त अव्यय है साहचयसे। इसका फल हुआ कि दाक्षिणात्य मे सवनाम्नो वृत्तिमात्रे से पु० नही हुआ (वा) पश्चात् पुरस् इन अव्ययोसे जातादि अर्थमे त्यक् प्रत्यय हो। दक्षिण दिशा या दिशामे जात उत्पन्न अथमे त्यक् आदि दाक्षिणात्य। पश्चाद्भव, पश्चिम दिशा या देशमे उत्पन्न अर्थमे त्यक्। कित्से आदिवृद्धि। यदि ऐसा तब पाश्चात्तनं कश्चननूद्यमान मे पश्चात्से त्यक् क्योनही, सिद्धि कैसे? पश्चात्तन्वन्ति पश्चात्तना' कथञ्चित्समाधान। पुर भव पौरस्त्य पुरस्से त्यक् आदि जो प्रथम हो प्रधान हो।

(१९) कापिशी शब्दसे ष्फक् हो। देशका नाम कापिशी, उसमे जन्म, उत्पन्न हुआ अर्थमे प्रत्यय। फको आयन आदि। कापिशायन देशका मधु, षित् होनेसे ङीप् कापिशी देशकी द्राक्षा छोहारा। (१३२०) रङ्कु से जात अर्थमे अण् हो, फक् भी, मनुष्य अथ न हो तभी, रङ्कु देशकीगाय मनुष्य नही है। अण् ओर्गुण, अवादी राङ्कव। जब ष्फक्—फ को आयन आदि तब राङ्कवायण। मनुष्य न हो ऐसा क्यो? रङ्कु देशमे पैदा हुआ अथमे मनुष्यतत्स्थयो से वुञ् अक राङ्कवक कम्बल। अण् प्रबल पडा। (२१) दिव प्राञ्च अपाञ्च उदञ्च प्रत्यञ्च इनसे यत् हो, दिव उन्। दिवि जात दिव्य, स्थान स्वर्गारोहण। दिव्य देवता, प्राचि पूर्व दिशामे (उत्पन्ने) अर्थे यत्। प्राच्य-पूर्वप्रदेशमे उत्पन्न धान, प्राच्से यत् आदि। अपाची दक्षिण दिशा। अपाञ्चसे यत्, अनिदितासे न लोप अच से अलोप (चौसे दीर्घ) उत्तर दिशामे उत्पन्न वस्तु। उदञ्चसे यत् आदि। उद ईत्से ईत्व, विशेष। प्रतीचि भव प्रतीच्यम। प्रत्यञ्चसे यत्, न लोप, अलोप दीघ पूर्ववत्। (सस्कारा प्रत्कना इव) यहाँ यत् क्यो नही। कालवाची प्राक् शब्दसे यत् बाधकर ट्यु ट्युल् हुआ।

त्यम् । प्रतीत्यम् । (२२) **कन्थायाष्ठक् ४।२।१०२।।** कान्थिक । (२३) **वर्णौ वुक् ४।२।१०३।।** वर्णुसमीपदेशो वर्णु । तद्विषयार्थवाचिकन्थाशब्दाद् वुक्स्यात । 'यथा हि जात हिमवत्सु कान्थकम्' । (२४) **अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४।।** 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' 'अमान्तिकसहार्थयो' । अमात्य । इहत्य । क्वत्य । ततस्त्य । तत्रत्य परिगणनम किम् । उपरिष्टाद्भव औपरिष्ट । 'अव्ययाना भमात्रे टिलोप' । अनित्योऽय बहिषष्टिलोपविधानात । तेनेह न आरातीय । शाश्वतीय । 'त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्' । नित्य । 'निसो गते' ।(२५) **ह्रस्वा**

---

(२२) कन्था से जातार्थे ठक् हो । कन्थाया भव कान्थिक । रक्तबीज खटमल, कन्थासे ठक् आदि । तिरछा सीया हुआ, अनेक वस्त्र समुदाय कथरी है कोई देश अथ । (२३) वर्णु सिन्धुका नाम है । उसके समीप जनपद अर्थमे अण्, उसका जनपदे लुप् । उस वर्णुपदके समीप देश मे जो कन्था (कथरी) उससे वुक् हो । हिमालयके समीप जात अर्थमे कन्थासे वु-अक आदि । (२४) अव्यय से जात अर्थमे त्यक् हो । इस सूत्र पर अङ्कुश वाल परिगणन–अमा–इह–क्व तसि त्र इन अव्ययोमे ही त्यप् हो अन्यसे न हो अमा शब्दका दो अर्थ अन्तिक-समीप, सह-साथ । अमा=समीपे सह वा जात अर्थमे त्यप अमात्य । जो समीप या साथमे रहता है। स्वरादि, समीपे भव । इह भव इहत्य यहीका है । क्व भव क्वत्य कहाका है, तत भव ततस्त्य उसके बाद पैदा हुआ या उससे वहासे पैदा हुआ । तत्र जात तत्रत्य । सूत्रका परिगणन नियन्त्रण, सीमन क्यो ? सबसे ऊपर हुआ औपरिष्ट (सिरताज) यह अव्यय है त्यप् न हो । किन्तु अण् हो, यही फल है । यहाँ अण होनेपर टिका लोप कैसे ? तब बोले (वार्तिक) अव्ययोके टि का लोप हो, केवल भसज्ञा मात्रमे भसज्ञकका लोप होता है, सभी अव्ययके । वहा नस्तद्धितेकी अपेक्षा नही है। यह वार्तिक अनित्य है। बहिष् से टिलोपके विधानसे । यदि अव्ययके भसज्ञा मात्रका लोप होता वहिष्से टिलोपका अलग विधान क्यो करते । अनित्यताका फल आरात् से जात अर्थमे छ-ईय, यहा टिलोप न होना । आरातीय अन्यथा आरीय होता । शाश्वत जात शाश्वतीय केश नख रोज बढता है । शाश्वतसे छ आदि (वा०) त्यप् हो, निसे ध्रुव स्थिर अर्थमे । नियत भव नित्य जो व्यापक रूपसे रहे ध्रुव है । नि से त्य, नित्य (वा०) नि से निकला हुआ अर्थमे त्यप् हो, निस् त्य

त्तादौ तद्धिते ८।३।१०१ ॥ ह्रस्वादिण परस्य सस्य ष स्यात्तादौ तद्धिते । निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्टचश्चाण्डालादि । 'अरण्याण्ण' आरण्या सुमनस । 'दूरादेत्य' दूरेत्य । 'उत्तरादाहञ्' औत्तराह । (२६) **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् ४।२।१०५॥** एभ्यस्त्यब्वा । पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ । ऐषमस्त्यम्—ऐषमस्तनम । ह्यस्त्य—ह्यस्तनम् । श्वस्त्य—श्वस्तनम् । पक्षे शौवस्तिक

दशामे स पदान्त है। आदेश रूप क्रिया प्रत्ययका अवयव नही, आदेशप्रत्ययोसे षत्व प्राप्त नही। अत सूत्र—

(१३२५) **ह्रस्व** इण्=इ उ ऋ लृ से परे स को ष हो। इण्को से इण, सहे साड मे ष आया। षष्ठयन्त। अपदान्तस्य मूर्धन्य भी। तकारादि तद्धित त्यप् परे निस् के स को ष, त को ष्टु—ट, स्वादि **निष्टय** ।(चाण्डाल दुष्ट) जाति बहिष्कृत, वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट निकाला गया (वा०) **अरण्य** से ण—अ हो, भव अर्थमे। अरण्ये भवा **आरण्या**, **सुमनस. स्त्रिय पुष्पमित्यमर**। जङ्गलके फूल। अरण्यसे अ ट ा् अ ि। अण् होता ङीप् हो जाता (वा०) **दूर**से आगत या भव अर्थमे एत्य हो। दूरादागत' दूरे भव दूर हुआ उत्पन्नमे दूरात् इस अव्ययसे एत्य, भमात्रे टिलोप । **दूरेत्य** (वा०) **उत्तर**से आया हुआ, भव अर्थमे आहञ् हो। उत्तरस्मात आगत उत्तरस्मिन्भव उत्तरसे आया या उत्तर दिशामे पैदा हुआ अर्थमे आहञ्। आदिवृद्धि आ—लोप **औत्तरह** । औत्तर असाधु है।

(२६) **ऐषमस्** ह्यस् श्वस इनसे त्यप् हो। विकल्पसे एक पक्षमे वक्ष्यमाण=साय चिर सूत्रसे ट्युल् तुट त् हो, वर्ष अथमे। ऐषमस् इस वर्ष वर्तमानसवत्सर परुत्परारि (परसाल परियारसाल) ऐषमो अव्यये **पूर्व पूर्वतरे** इति, तत्र भव ऐषमस्से जात अथमे ट्यु-अन, तुट-त, तन, टित्से आदि अवयव त्यप् होनेपर **ऐषमस्त्यम्** इस वर्षमे जन्मा उत्पन्न पैदा हुआ। ह्यस् अव्यय है बीता दिन अर्थ। तत्र भव काण्ड पिछले दिनकी घटना त्य **ह्यस्त्यम्**। जब ट्यु-अन तुट् तन **ह्यस्तनम्**। श्वस अव्यय है आगामी दिन, तत्र भव, ह्य जात कल होने वाला, ह्यो गते अनागते अह्नि श्व अमर । श्वस्त्य श्व भव कल होगा। श्वस् से तुट् पक्षमे श्वस्से तुट ठञ्—इक। त—तिक **स्वस्तिक** वके पूर्व औ—आगम **शौवस्तिक** द्वारादिना ऐच् कहेगे।

(२७) **तीर** और **रूप्य** उत्तरपद हो तब क्रमसे अञ्—ञ्य। **सख्यामनति-**

वक्ष्यते । (२७) **तीररूप्योत्तरपदादञ्ञ्यो ४।२।१०६।** यथासङ्ख्येन । काक-तीर । पाल्वलतीरम् । शैवरूप्यम् । तीररूप्यान्तात् इति नोक्तम् । बहुच्पूर्वान्माभूत्, बाहुरूप्यम् । (२८) **दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञ ४।२।१०७।।** अणोऽपवाद । पौर्वशाल । असञ्ज्ञाया किं । सञ्ज्ञाभूताया प्रकृतेर्मा भूत् । पूर्वेषु कामशम्या भव पूर्वेषुकामशम । 'प्राचा ग्रामनगराणाम' (सू १४००) इत्युत्तरपदवृद्धि । (२९) **मद्रेभ्योऽञ् ४।२।१०८।।** दिक्पूर्वपदात् इत्येव । 'दिशोऽमद्राणामिति मद्रपर्युद सादादिवृद्धि । पौर्वमद्र । आपरमद्र । (१३३०) **उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् ४।२।१०९।।** अञ् स्यात् । शैवपुरम् । ३१ प्रश्नोत्त-

---

क्रम्य । काकतीरे भव, तीर उत्तरपद है अञ् आदिवृद्धि । काकतीरम् पल्वलतीरे भव (गड्ढाके किनारे पैदा हुआ) अञ् आदि । पाल्वलतीर शिवरूपे भव विश्व नाथके स्वरूपमे हुआ । रूप्य उत्तरपद जानकर ञ्य, आदिवृद्धि **शैवरूप्यम्** तीर, रूप्य उत्तर पद हो । ऐसा नही कहा, इसलिएकि बहुच् प्रत्यय पूवमे हुआ हो तब न हो । **बाहुरूप्य** विभाषा सुपो पुरस्तात् बहुच् प्रत्यय हे पद नही । अत उत्तरपद न मिलनेसे ञ्य नही हुआ । यदि होता तो दो य मिलत। ।

(२८) **दिशावाचीशब्द** पूर्वपद हो, उससे अञ् हो, अण् को बाधकर, सज्ञा नाम न हो तब । पूर्वस्या शालाया भव । पूर्वदिशाके भवनमे पैदा हुआ अर्थ मे दिक्पूवपदात्से ञ—अ, अब तद्धितार्थोत्तरपद समासे, आदिवृद्धि । शालामे आ का यस्येति लोप । स्वादि **पौर्वशाल** । **असज्ञा क्यो पढ़ा** ? जो प्रकृति किसी की सज्ञा हो उससे ञ न हो । जैसे पूर्वेषुकामशम , किसी नगरीका नाम उसमे पैदा हुआ । सज्ञा होनेसे ञ नही हुआ किन्तु अण् । प्राचा० ग्राम०से उत्तरपद को वृद्धि हुई । (२९) मद्रशब्दके (दिशा पूर्वपद रहे तब) अञ् हो । निश्चय ही दिशोऽमाद्राणा मे मद्र सदृश—पर्युदास अर्थ होने पर आदिवृद्धि हुई । क्योकि दिशावाची उत्तरपद मद्रसे भिन्न जनपद हो, अचोके बीच आदि अच् को वृद्धि ञिति णिति किति परे । बहुवचनसे जनपद ही मान्य ।पूर्वेषु, मद्रेषु भव अर्थमे दिशावाची पूर्वपद देखकर अञ् आदि । अपरेषु मद्रेषु भव आपरमद्र पूर्ववत् ।

(१३३०) **उदीच्य**=उत्तरदिशा अर्थमे हो ग्राम हो, यदि बहु अच हो, अन्त उदात्त हो तब अञ् । यथा उत्तर देश प्रदेशमे शिव पुर नामक ग्राम है । तत्र भव अर्थमे अञ् । बहुत अच् होते है । समासस्वरसे अन्त उदात्त । बहु अच्

रपदपलाद्यादिकोपधादण् ४।२।११०॥ माहिकिप्रस्थ । पालद । नैलीनक । **(३२) कण्वादिभ्यो गोत्रे ४।२।१११ ॥** एभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्योऽण् स्यात् । कण्वो गर्गादि । काण्व्यस्य छात्रा काण्वा । **३३ इञश्च ४।२।११२॥** गोत्र य इञ तदन्तादण्स्यात् । दाक्षा । गोत्रे किं ? सौतङ्गमेरिद सौतङ्गमीयम् । गोत्रमिह, शास्त्रीय न तु लौकिकम् । तेनेह न । पाणिनीयम् । **(३४)न द्व्यचः**

क्यो पढा ? ध्वञ्जो ग्राम तत्र भव ध्वाञ्जः । यहा अञ् न हो । अन्त उदात्त क्यो ? शार्करी धाना मध्य उदात्त है अञ् न हो ।

(३१) **प्रस्थ** उत्तर पद हो, पलादि गणमे पढे शब्दोसे और उपधा (अन्त्य अल् का पूर्ववर्ण) शब्दसे अण् हो । पूर्वसूत्रके अञ्को बाधकर । महिकिप्रस्थः नामके ग्रामे भव व्यक्ति या वस्तु अञ को बाधकर अणादि । पलादि नामक ग्रामे भव अण् आदि । पालद यदि नान्त हैं, न लोपसे सहिता समान है । निलीनक नामके ग्रामे भव अण् आदि नैलीनक । यह कोपध है । बाह्लीक शब्द कोपध है । किन्तु पलादि गणमे पाठपरत्वात् छ को बाधनेके लिए ।

(३२) **कण्व** आदि गणमे पढे शब्द गोत्रप्रत्यय जिनके अन्तमे हो उनसे अण् हो । गर्गादि गणका कण्वसे गोत्रापत्य अर्थमे यञ् । काण्व्यस्य छात्रा अर्थ मे गोत्र प्रत्ययान्त काण्व्य से अण्, छको बाधकर । यस्येतिसे अ-लोप आपत्यस्य च से य-लोप । जस् का रूप **काण्वा** । कण्व ऋषिके वशमे पढाये हुए शिष्य ।

(३३) **इञश्च** गोत्र अर्थका इञ् अन्तमे हो उससे अण् हो । दक्षस्य गोत्रापत्य दाक्षि गोत्र अर्थमे अत इञ् हुआ । तब दाक्षे छात्रा दक्षवशसे अनुशाशित विद्यार्थी **दाक्षा** । अण् आदिवृद्धि (ज स्वर्षणन्यायसे) इलोप । गोत्र क्यो लिखा ? सुतङ्गमस्य निवास अर्थे सुतङ्गमादिभ्य इञ् सौतङ्गमि इञ् अन्त है अण् न हो, किन्तु वृद्धाच्छ । अत गोत्र पढा । छ-ईय, आदि । यहा शास्त्रीय गोत्र मान्य । यद्यपि अपत्याधिकारके बाहर लौकिक गोत्र आदरणीय है । तथापि यहाँ दोनो सूत्रमे शास्त्रीय गोत्र ही स्वीकृत । यूनि लुक् सूत्रके भाष्य प्रमाणसे प्रवराध्याय प्रसिद्ध लौकिक गोत्र है । पौत्र प्रभृति गोत्र इसका फल हुआ, इह न, पणिनो गोत्राऽपत्य **पाणिन** स्तुतिकर्ता का वशज । तस्याऽपत्य युवा **पाणिनि** । तस्य इद **पाणिनीय** वृद्धाच्छ हुआ, अण् नही । क्योकि यह युवप्रत्यान्त है गोत्रान्त नही ।

प्राच्यभरतेषु ४।२।११३॥ 'इञश्च' इत्यणोऽपवाद । प्रौष्ठीया । काशीया । भरताना प्राच्यत्वेऽपि पृथगुपादानम् अन्यत्र प्राच्यग्रहणे भरतानामग्रहणस्य लिङ्गम् । (१३३५) **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्** १।१।७३॥ यस्य समुदायस्याचा मध्ये आदिवृद्धिस्तद्वृद्धसज्ञ स्यात् । (३६) **त्यदादीनि च** १।१।७४। वृद्धसज्ञानि स्यु । (३७) **वृद्धाच्छ** ४।२।११४॥ शालीय । मालीय तदीय । (३८) **एङ् प्राचां देशे** १।१।७५॥ एङ् यस्याचामादिस्तद्वृद्धसज्ञ वा स्याद् देशाभिधाने । एणीपचनीय । गोनर्दीय । भोजकीटय । पक्षेऽणि

---

(३४) **न द्व्यच** प्राचीन देश भरत हो, गोत्रप्रत्यय इञ् अन्तमे हो, ऐसे दो अच् से अण् न हो। इञश्चके अण् का बाधक, प्राष्ठस्य गोत्राऽपत्य **प्राष्ठि:** तस्य छात्रा प्राष्ठऋषिके वशजका विद्यार्थी, इजन्तसे अण् प्राप्तिका निषेध,दो अच् देखकर । किन्तु वृद्धसज्ञकसे इञ् आदि । काशस्य गोत्राऽपत्य काशी तस्य छात्रा काशके वशजका शिष्य इञन्तसे प्राप्त अण् का निषेध। छ का विधान यद्यपि भरतवशके लोग प्राच्यमे आते हैं। तथापि अलगसे पढना, स्वीकारना **अन्यत्र** दूसरे स्थलमे जहा प्राच्य मान्य हो वहा भरतोकी मान्यता न हो, यही प्रमाण है। इसकाफल हुआकि **औद्यालिक औद्यालकायन** पुत्र ,इञ प्रा त्रासे लुक नही होता (१३३५) **वृद्धि** जिस अनेक अच् वाले समुदायके अचो के बीच आदि अच् वृद्धि (आ ऐ औ) हो उसको वृद्धसज्ञा हो। बहुवचन अनेकका बोधक । इसका फल, शाला शब्दकी वृद्धसज्ञा होना। व्यवहार भावसे ज्ञको भी वृद्ध०।

(३६) **त्यद् तद्** यद् इत्यादि प्रातिपदिक वृद्धसज्ञक मान्य। इसमे आदि अच् वृद्ध नही मिलता अत अलग सूत्र—(३७) **वृद्धसज्ञा** जिसको हुई हो उससे छ हो, जात भव इदम् आदि अर्थमे, अण् को बाधकर। शालाया जात शालीय वत्स। शालामे दो अच् समुदाय, आदि अच् आ होनेसे वृद्धहुआ। उससे छ ईय आदि **शालीय** ।मालाया जात मालीय गन्ध । यहा भी आदि अच् से समुदाय वृद्धसज्ञक छ आदि । त्यदादिका प्रयोग तस्मिन् जात **तदीय** । आ एतस्मिन् जात **एतदीय** । त्वयि भव त्वदीय ।

(३८) एङ् । जिस अच्समुदायके आदिमे एङ् हो उसको वृद्धसज्ञा विकल्पसे बोलें, देश अर्थ खुलने पर। एडीपचन देशमे पैदा हुआ । ए आदिमे वृद्धसज्ञक । छ ईय आदि । गोनर्ददेशमे जन्म लिया, गोनर्दे जात । एङ् (ओ) आदिमे है

ऐणीपचन , गौनर्द , भौजकट । एङ् किम । आहिच्छत्र । कान्यकुब्ज । 'वा नामधेयस्य वृद्धसज्ञा वक्तव्या' दैवदत्त -देवदत्तीय । (३९) **भवतष्ठक्छसौ ४।२।११५।।**वृद्धाद्भवत एतौ स्त । भावत्क । जश्त्वम् । भवदीय । वृद्धात इत्यनुवृत्ते शत्रन्तादणेव । भावत । (१३४०) **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४। २।११६।।** इकार उच्चारणार्थ । काशिकी—काशिका वैदिकी—वैदिका । 'आप दादिपूर्वपदात कालान्तात्' । आपदादिराकृतिगण । आपत्कालिकी आपत्कालिका । (४१)**वाहीकग्रामेभ्यश्च ४।२।११७।।** वाहीकग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ

वृद्धसज्ञा छ आदि । भोजकट देशका है छ-ईय पक्षमे जब वृद्धसज्ञा नही हुई, तब अण् आदिवृद्धि आदि । **ऐणीपचन** गोनर्दसे अण् आदि । **भोजकटसे** भी, अर्थ तुल्य है । **एङ्** किम ? ए ओ आदिमे हो ऐसा क्यो ? अहिछत्रग्राममे पैदा हुआ यहा ए ओ आदिमे नही, वृद्ध भी नही । छ न हो । कान्यकुब्जे जात अण् हुआ । (वा०) किसीका नाम हो, उसको विकल्पसे वृद्धसज्ञा बोले । देवदत्ते भव देवदत्तीय गुण । नाम है, वृद्धसज्ञा छ—ईय पक्षमे अण् आदि । यहा नाम रूढ मान्य है । आधुनिक सकेत नही । फलघटोऽयकी सिद्धि ।

(३९) **भवत्** त्यदादिसे टक्, छस् हो । वृद्धसज्ञक भवत्से ठक् इसुसुक्तान्तसे ठ को क, आदिवृद्धि **भावत्क** । भवतो जातः आपका प्रिय, त्यदादीनिसे वृद्ध सज्ञा होनेपर छ को ईय । प्रा० सज्ञा जस् त को जश्त्वेन द । यहा भ सज्ञासे पदका बाध नही होगा । क्योकि 'सिति च' की पदसज्ञा भसज्ञाको बाधती है भवत अय **भावत** मे अण् कैसे ? भवत् त्यदादि है वृद्धसज्ञा, छ ईय उचित है । तब कहा वृद्धात्की अनुवृत्ति आती है शतृ अन्तमे होकर बना भवत् वृद्ध-नही, न छ, अण ही होता है । आदिवृद्धि भावत भा से डवतु ।

(१३४०) **काशी** आदिगण पढे शब्दोसे ठञ् हो । ङीप् यस्य फल, ञिठः फल टाप् । इकारका उच्चारण फल । आदिर्ञिकालोप । काश्या जात **काशिकी** ठञ इक, इलोप ङीप् । जब ञि ठ-इक, तब टाप् **काशिका** । मणिकर्णिका । विदेभवा **वैदिकी वैदिका** ठञ् ञि०-ङीप टाप् (ग०) **आपद** आदि गणपठित शब्द (जो आकृति गण है) वे पूर्वपदमे हो काल अन्तमे हो । तब ठ-इक आदिवृद्धि, ङीप **आपत्कालिकी** दशा । सकट पूर्ण । जब ञि० तब टाप् विशेष ।

(४१) **वाहीक** और ग्राम वाचक वृद्धसज्ञक शब्दोसे दोनो हो

स्त । छस्यापवाद । कास्तीर नाम वाहीकग्राम । कास्तीरिकी–कास्तीरिका । ४२)**विभाषोशीनरेषु** ४।२।११८।एषु ये ग्रामास्तद्वाचिभ्यो वृद्धाभ्यष्ठञ्ञिठौ वा स्त । सौदशनिकी–सौदर्शनिका-सौदर्शनीया । (४३) **ओर्देशे ठञ्** ४।२।११९।। उवर्णान्ताद्देशवाचिनष्ठञ । निषादकर्षू । नैषादकर्षुक । 'केऽण' इति ह्रस्व । देशे किं ? पटोश्छात्रा पाटवा। ञिठ व्यावर्तयितु ठञ्ग्रहणम् वृद्धाच्छ परत्वादय बाधते। दाक्षिकर्षुक । (४४)**वृद्धात्प्राचाम्** ४।२।१२०। प्राग्देश वाचिनो वृद्धादेवेति नियमार्थसूत्रम् । आढकजम्बुक । शाकजम्बुक । नेह। मल्लवास्तव । माल्लवास्तव । (१३४५) **धन्वयोपधाद् वुञ्** ४।२।१२१।। धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद वुञ् स्यात्। ऐरावत धन्व, ऐरावतक । साङ्काश्यकाम्पिल्यशब्दौ वुञ्छणादि सूत्रेण ण्यान्तौ। साङ्काश्यक । काम्पिल्यक । (४६) **प्रस्थपुरवहान्ताच्च** ४।२।१

बाधकर । बाहीक नामक ग्राम कास्तीर है उससे ठञ्का विशेष फल ङीप् । ञिठ् का फल टाप् । (४२) **विभाषा** उशीनर देशोमे जो ग्राम उनके वाचक शब्द वृद्ध सज्ञक हो । तब ठञ् **सौदशनिकी** । उशीनर उसी ग्रामका नाम । ठञ् ञिठ आदि । वृद्धस छ भी हो । छ-ईय टाप् सौदर्शनीया ।

(४३) **उवर्णान्त** । देशवाली हो उससे ठञ् कहे । एक गाँवदेश निषादकर्षू उकारान्त उससे ठ, उक्से ठको, क केऽण से ह्रस्व हुआ । नैषादकर्षुक । देश क्यो पढ़ा ? पटुके छात्रगण पाटवा देश नही, ठञ् न हो। पूर्वसे हो जाता है ठञ्-ग्रहण ञिठ् रोकनार्थ। वृद्धाच्छको भी परत्वात् बाधता है(४४) **वृद्धात्प्राचा** वृद्धसज्ञक हो प्राचीन देश अर्थ खुलता हो। तब ठञ् । जो ओर्देशेसे आया । प्राचा का प्राचीन अर्थ है, विकल्प नही । पूर्वसूत्रसे ठञ् होता (यह सूत्र) नियमके लिए कि प्रचीन देशवाचीसे ठञ् हो, तो वृद्धिसज्ञा होने पर ही। आढकजम्बू प्राचीन ग्राम है उससे तत्र भव मे ठ-उगन्त मानकर क 'केऽण' ह्रस्व। शाकजम्बू ग्राम का नाम, उससे भी ठ-क आदि वृद्धसज्ञक है । नियमका फल बोले—**नेह**=यहा नही हुआ । मल्लवा प्राचीन गाव हे । वृद्ध० है अण् हुआ, न ठञ् ।

(१३४५) **धन्व** मरु प्रदेश (जल विहीन) वाची योपध। अन्त्य अल्के पूर्वमे य हो ऐसा शब्द देशवाची वृद्ध० हो, उससे वुञ् कहे। समानौ मरुधन्वानौ आष्टक नाम धन्व नपुसक । ऐरावत नामक मरुप्रदेशमे उत्पन्न अर्थमे वुञ् अक आदि । **योपध** साङ्काश्ये काम्पिल्ये ग्रामेभव दोनो शब्दसे वुञ् छण् । क्योकि ण्य अन्त है ।

२२। एतदन्ताद वृद्धाद देशवाचिनो वुञ्स्यात्। छस्यापवाद । मालाप्रस्थक । नान्दीपुरक । पैलुवहक पुरान्तग्रहणमप्राग्रर्थम्। प्राग्देशे तूत्तरेण सिद्धम्। ४७ **रोपधेतो प्राचाम्** ४।२।१२३।। रोपधादीकारान्ताच्च प्राग्देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ्स्यात्। पाटलिपुत्रक । ईत, काकन्दक ४८ **जनपदतदवध्योश्च** ४।२।१२४।। जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च वृद्धाद्वुञ्स्यात्। आदर्शक । त्रैगर्तक । (४९) **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** ४।२।१२५।। अवृद्धाद् वृद्धाच्च जनपदतदवधिवाचिनो बहुवचनविषयात्प्रातिपदिकादवुञ्स्यात्। अवृद्धादणो वृद्धाच्छस्यापवाद अवृद्धाज्जनपदात्, आङ्गक । अवृद्धाज्जनपदावधे, आजमीढक । वृद्धाज्जनपदात्, दार्वक वृद्धाज्जनपदावधे -कालञ्जरक विषयग्रहण किं । एकशेषेण बहुत्वे मा भूत् वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्य । तासु भवो वार्तन । (१३५०) **कच्छा-**

वु-अक आदि। (४६) **प्रस्थ** पुर वह अन्त मे हो वृद्धस० हो, देशवाची हो उससे वुञ, छको बाधकर। मालाप्रस्थे ग्रामे जात वु=अक आदि। नन्दीपुरे जात **नान्दीपुरक**। पिलुवहे जात **पैलुवहकः** वुञ् आदि। पुरान्त क्यो पढा ? **अप्रागर्थ** =पहले के अर्थ मे वुञ् न हो प्राग्देशमे अगले सूत्रसे सिद्ध। (४७) **रोपधेतो** =र उपधामे और ईकारान्त हो प्राचीन देशवाची वृद्धिसञ्ज्ञकसे वुञ् हो। पाटलिपुत्रे जात इस रोपधसे वु-अक आदि। पाटलिपुत्रक ईकारान्त-काकन्दी देशमे हुआ, वु-अक, ईलोप। (४८) **जनपदवाची** या उसकी अवधि वाचि वृद्धिस०से वुञ् हो। आदर्श जनपदका नाम है। तत्रभव वु०-अक। त्रिगर्त जनपद की सीमासे वु आदि। छ को बाधना उद्देश्य। (४९) **अवृद्ध**। अपि से वृद्धसञ्ज्ञक भी हो या न हो, जनपद और अवधिवाची हो, बहुवचनका विषय प्रातिपदिक से वुञ् हो। अवृद्धसे अण् को और वृद्धसे छको बाधकर। आदि अच् मे वृद्धि (आ ऐ औ) का दर्शन न होने से वृद्धिसञ्ज्ञा नही। अङ्गेषु जात-**आङ्गक** बहुवचन विषय जनपद है वु-अक। अवृद्ध जनपदकी अवधिका उदाहरण अजमीढ किसी जनपद की सीमा है तत्र भव वु आदि। वृद्धसञ्ज्ञा हो ऐसा जनपद दार्वा बहुवचन। तत्र भव। कलञ्जरेषु भव **कालञ्जरकः**। वु० अक आदि। **बहुवचन आदि का विषय हो ऐसा क्यो** ? एक शेषमे बहुवचन रहे तब वुञ् न हो। जैसे वर्तनी शब्द का एकशेष होकर बहुवचन वर्तन्य रहा, उससे भव अर्थमे वुञ् नही, अण् हुआ। (१३५०) **कच्छ** अग्नि वक्त्र वर्त उत्तर भाग।

गिनवक्त्रवर्तोत्तरपदात् ४।२।१२६। देशवाचिनो वृद्धादवृद्धाच्च वुञ्स्यात । दारुकच्छक । काण्डाग्नक । सैन्धुवक्त्रक । बाहुवर्तक । **(५१) धूमादिभ्यश्च ४।२।१२७।।** देशवाचिभ्यो वुञ् । धौमक । तैर्थक । **(५२) नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययो ४।२।१२८।।** नगरशब्दाद्वुञ्स्यात्कुत्सने प्रावीण्ये च गम्ये । नागरकश्चौर शिल्पी वा । कुत्सन—इति किं ? नागरा ब्राह्मणा । **(५३) अरण्यान्मनुष्ये ४।२।१२९।।** वुञ् 'अरण्याण्ण' इत्यस्यापवाद । 'पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम्' । आरण्यक पन्था अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा । 'वा गोमयेषु' आरण्यका —आरण्या वा गोमया । **(५४) विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ।४।२।१३०।।** वुञ । कौर

मे रहे ऐसा देशवाची शब्दसे वुञ् हो, वृद्धसज्ञा हो या न हो छ, अण्को बाँधकर । दारुकच्छे देशे भव वुञ् आदि । काण्डाग्नौ भव **काण्डाग्नक** वु० अक इ-लोप । सिन्धुवक्त्रे भव , बहुवर्ते भव , बहुत बवण्डल मे पडा हुआ । वुञ् अक आदिवृद्धि (५१) **धूम** आदि शब्दसे देश अर्थ खुलने पर वुञ् हो । धूमग्रामे भव **धौमक** । तीर्थे भव **तैर्थक** पूर्ववत् वु आदि ।

(५२) **नगर** से कुत्सन निन्दा फटकार या प्रवीणस्य भाव प्रावीण्य चतुर शिरोमणि अर्थ हो तब नगर शब्दसे वुञ् । नगरे भव **नागरक** शहरका चोर अथवा शिल्पी, कलाकार कुशल । नगरसे वु अक आदि । कुत्सा निन्दा क्यो ? नागरा मे वुञ् न हो कत्रादिगणमे माहिष्मती सज्ञा पढा हैं । सहवाससे नगरसे ढकञ् होकर **नागरेयक** बनता चूकि सज्ञाभूत नही अत ढकञ् भी नही । नगरे भवा **नागरा** । (५३) **अरण्य** से मनुष्य अर्थमे वुञ् हो । ण्यको बाँधकर इस सूत्रमे पथ्य, पन्था अध्याय न्याय—विहार—मनुष्य—हस्ति इनके अर्थमे ही वुञ् हो । अरण्ये भव **आरण्यक** पन्था जगली रास्ता । अरण्यसे वुञ् आदि (वा)। **अध्याय** या विहार आदि अर्थ सूचक वुञ् होगा । **आरण्यक** कहने से यह वुञ् जगलका रास्ता, वेदका अध्याय, तर्ककुशल, जगलका विहार जंगली मनुष्य हाथी तद्धितार्थ है ।(वा०) **गोमय** गायका विकार गोबर अर्थमे अरण्यसे वुञ् हो । विकल्पसे अरण्ये भवा , जगलमे हुए गोबरका ढेर **जङ्गली** कण्डा वुञ् आदि । (५४) **कुरु** और युगन्धर जनपद हो वृद्धसज्ञक हो या न हो, उससे विकल्प वुञ् । **अवृद्धादपि**के नित्यको बाँधकर । कुरुषु भव कुरुक्षेत्रमे पैदा हुआ वु-अक आदि **कौरवक** । जब अण् तब कौरव ओर्गुण । युगन्धरेषु जात वु अक जब अण् **यौगन्धर** ।

वक कौरव । यौगन्धरक–यौगन्धर । (१३५५) **मद्रवृज्यो कन्** ४।२। १३१।। जनपदवुञोऽपवाद । मद्रेषु जातो मद्रक । वृजिक । (५६) **कोपधादण्** ४।२।१३२।। माहिषिक । (५७) **कच्छादिभ्यश्च** ४।२।१३३।। देशवाचिभ्योऽण्। वुञादेरपवाद । काच्छ । सैन्धव । (५८) **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** ४।२।१३४।। कच्छाद्यणोऽपवाद । कच्छ जातादि काच्छको मनुष्य । काच्छक हसितम् । मनुष्य––इति किं ? काच्छो गौ । (५९) **अपदातौ साल्वात्** ४।२।१३५। साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद्वुञि सिद्धे, नियमार्थमिदम्। अपदातावेवेति । साल्वको ब्राह्मण । अपदातौ किं ? साल्व पदातिर्व्रजति । (१३६०) **गोयवाग्वोश्च** ४।२।१३६।। साल्वाद्वुञ् । कच्छाद्यणोऽपवाद । साल्वको गौ । साल्विका यवागू । साल्वमन्यत् । (६१) **गर्तोत्तरपदाच्छ** ४।२।१३७।। देशे । अणोऽपवाद । वृकगर्तीयम । उत्तरपदग्रहण बहुच्पूर्वनिरा-

---

(१३५५) **मद्र और वृजि** प्रान्तका नाम, इनसे कन् हो। जनपदके वु को बाँधकर। मद्रदेशमे जन्म लिया कन् **मद्रक**। वृजिसे कन् (५६) क उपधामे रहे तब अण् हो, महिषिक । जनपदका नाम, तत्र भव वु को बाँधकर अणादि । (५७) **कच्छादिगणमे** पढे देशवाची शब्दसे अण् हो वुञ् बाँधकर। कच्छे जात गुजरातके कच्छमे पैदा हुआ। सिन्धमे पैदा हुआ सिन्धु समुद्र तस्मादागत अर्थमे अण् आदेशे ठञ् को बाँधकर कच्छादि गणमे । उकारको गुण सैन्धव (५८)। **मनुष्य** कच्छादि गणमे पढनेसे मनुष्यमे स्थित क्रिया हसना आदि अर्थमे वुञ हो, अण् बाँधकर। कच्छ देशमे हुआ, मनुष्य अर्थमे वु आदि मनुष्य क्रिया हँसना, कच्छ देश के मनुष्य को देखकर हँसना। मनुष्य क्यो पढा ? काश्य गौ । न मनुष्य अण् हो।

(५९) **अपदातौ** पैदल चलना न हो ऐसे साल्व से वुञ हो। कच्छादि मानकर वुञ होता हो, यह सूत्र नियम के लिये है कि साल्वसे हो तब अपदाति अर्थमे ही हो। यदि पदाति पैदल चलना हो तब न हो, जैसे—साल्व पदाति पैदल चलता है यहाँ नही हुआ। साल्वेषु जात **साल्वक** मे वुञ् हुआ।

(१३६०) **गो और यवागूसे** जाति अर्थ इष्ट हो तब वुञ् कच्छादिगणके अण् को बाँधकर। साल्वदेशमे उत्पन्न गाय अर्थमे वु अक् आदि। **साल्वक**। हलुआ अर्थमे भी वही कार्य टाप् इत्व **साल्विका**। **अन्यत्**=अन्य अर्थ हो तब अण् (६१) **गर्त** (गढ्ढा) उत्तरपद हो उससे छ। देश अर्थमे, अण् बाँधकर। त्रिगर्त देश का नाम-तत्र भव उसमे हुआ अर्थमे छ–ईय आदि। ननु गर्ताच्छ

साथम् । (६२) गहादिभ्यश्च ४।२।१३८।। छ स्यात् । गहीय । 'मुख-पार्श्वतसोर्लोपश्च' मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपस्या-नित्यता ज्ञापयितुमिदम् । 'कुग्जनस्य परस्य च' । जनकीयम् । परकीयम् । 'देवस्य च' देवकीयम् । 'स्वस्य च' स्वकीयम् । 'वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्य' । वैणुकीयम् । वैत्रकीयम् । औत्तरपदकीयम् । (६३) प्राचां कटादे ४।२।१३९।। प्राग्देशवाचिन कटादेश्छः स्यात् । अणोऽपवाद । कटनगरीयम । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् । (६४) राज्ञः क च ४।२।१४०।। वृद्धत्वा-च्छे सिद्धे तत्सन्नियोगेन कादेशमात्र विधीयते । राजकीयम् । (१३६५)

यही पढते, उत्तर पद क्यो पढा ? केवल गतदेश नही । उत्तरपद मान्य होता हो तब कहा कि बहुच्पूर्वसे छ निराश के लिए ।

(६२) गह आदि गणपढे शब्दोसे छ हो । देशका नाम गह, उसमे पैदा अर्थ मे छ—ईय आदि गहीय । (ग०) मुख पार्श्व दोनो से तस् अन्त हो तब अन्त्यका लोप हो और छ भी । जनपदका आगमन रुका, असम्भावनासे । मुखात् जात मुखतीयम् । तस् के अन्त्य स का लोप और छ-ईय मुखसे उत्पन्न पार्श्वात् जात पार्श्वतीय समीप से पैदा हुआ । पार्श्वतस् से छ, अन्त्य स का लोप । अव्ययानाम्=अव्ययसज्ञको का भ सज्ञामात्रे=यत्र-२ भ सज्ञा तत्र-२ टिलोप । टिलोपकी अनित्यता सिद्धचर्थ सूत्र (ग०) जनशब्द और परशब्द को कुक्—क हो छ भी । जने जात जनकीय, परे जात परकीयम् (अपनेका परायेका) छ—ईय कुक् । (ग०) देवशब्दसे कुक् और छ भी देवात् यञ अञ् को बाँधकर । देवे जात देवकीय क—छ आदि दैवानुग्रह । इस भाष्य प्रयोग से अण भी, अत दैव ठीक (ग०) स्वशब्द को कुक् आगम हो गहादि गण मानकर छ-ईय-क भी स्वकीयम् । आगमशास्त्रमनित्यम् पक्षे स्वीयम् न कुक् । (ग०) वेणुक आदिगण पढेसे छ हो । वेणौ जात वेणुकीय वेत्रेजात वैत्रकीयम् आवरणम् उत्तरपदे जातम् ।

(६३) प्राचां प्राचीन देश, कट आदि हो उससे छ हो अण् बाधकर कटनगर प्राचीन देशका नाम छ आदि । अथवा चटाई के बजारमे पैदा हुआ । कट-घोषीयम् । चटाई (झोपडीमे उत्पन्न) छोटे गढढेमे जन्मा । प्राचीन देश मानकर छ आदि (६४) राजन् से क हो छ भी । आदिमे आ होनेसे वृद्ध-संज्ञा सिद्ध थी केवल छ प्रत्ययके योगमे 'क' मात्रका विधान । राजनि जात राजकीय राजाके क्षेत्रमे जन्मा हुआ । राजन्से क—ईय आदि ।

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ४।२।१४१।। 'अक' 'इक' एतदन्तात्खोपधाच्च वृद्धाद्देशवाचिनश्छ स्यात्। ब्राह्मणको नाम जनपद, यत्र ब्राह्मणा आयुधजीविन, तत्र जातो ब्राह्मणकीय। शाल्मलिकीय। आयोमुखीय। (६६) **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** ४।२।१४२।। कन्थादिपञ्चकोत्तरपदाद्देशवाचिनो वृद्धाच्छ स्यात्। ठञ्ञिठादेरपवाद। दाक्षिकन्थीयम्। दाक्षिपलदीयम्। दाक्षिनगरीयम्। दाक्षिग्रामीयम्। दाक्षिह्रदीयम्। (६७) **पर्वताच्च** ४।२।१४३।। पर्वतीय। (६८) **विभाषाऽमनुष्ये** ४।२।१४४।। मनुष्यभिन्नेऽर्थे पर्वताच्छो वा स्यात्। पक्षेऽण्। पर्वतीयानि–पार्वतानि वा फलानि। अमनुष्ये किं? पर्वतीयो मनुष्य। (६९) **कृकणपर्णाद्भारद्वाजे** ४।२।१४५।। भारद्वाजदेशवाचिभ्यामाभ्या छ। कृकणीयम्। पर्णीयम्। भारद्वाजे किं? कार्कणम्। पार्णम्। (१३७०) **युष्मदस्मदोरन्यतरस्या**

(१३६५) **वृद्धसंज्ञक** हो अक–इक अन्तमे हो या ख उपधामे हो, ऐसे वृद्ध संज्ञक से देश अर्थमे छ हो। ब्राह्मणक नामका गाव मण्डल प्रान्त जहाँ अस्त्र आयुध शस्त्रके बलपर ब्राह्मण जीवित हो वहा पर जन्मा हुआ अर्थमे छ–ईय आदि। शाल्मलिक नाम देश तत्र भव छ आदि। यह इक अन्त है। ख–उपधा अयोमुखे जात (ग्रामेभ्यश्चसे ठञ् ञिठ् को बाँधकर) छ–ईय लौहमुखमे जन्म।

(६६) **कन्था** पलद नगर गाव ह्रद ये शब्द उत्तरमे पद हो, देश अर्थमे वृद्धसंज्ञकसे छ हो, "बाहीकग्रामेभ्यश्च" से ठञ्। ञिठको बाँधकर। नगरसे रोपधेतो के वुञ्को बाधकर **दाक्षिकन्थीयम्** कन्था अन्त है छ आदि। तत्र भव अर्थमे प्रत्येक उदाहरण। इसी प्रकार-(६७) **पर्वत**से भी, जातादिसे छ–ईय। पर्वते भव जात **पर्वतीय**। **तत्र जन्य रघोर्घोर पावतीयैर्गणैरभूत**। (६८) **विभाषा**–मनुष्य अर्थ न खुले, अन्य अर्थ हो, तब पवतसे छ हो, अण् भी, जात अर्थमे। छ-ईय **पर्वतीयानि** (पहाडके फल) जब अण् तब आदिवृद्धि **पार्वतानि**। **अमनुष्य** क्यो कहा? पर्वते **जात** पर्वतीयो मनुष्य। यहाँ अण् न हो।

(६९) कृकण और पर्णसे भारद्वाज देशअर्थमे छ हो। पर्णे जात भारद्वाज के पर्ण? । कृकण देशमे उत्पन्न पार्णीय कृकणीयम्। भरद्वाज क्यो पढा? कृकणे जात **कार्कण**, पर्णे जात **पार्ण** कृमि। यहा छ न हो।

(१३७०) **युष्मद्** अस्मद्से खञ्, छ हो, अण् भी। विकल्पसे शब्द रूप है। त्यदादीनिसे एकशेष नही है। **पञ्चमी अर्थे** षष्ठी। गर्तोत्तरपद–सूत्रसे

खञ्च ४।६।१।। चाच्छ । पक्षेऽण् । युवयो युष्माक वा अय युष्मदीय । अस्मदीय । (७१) **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** ४।३।२।। युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्त खञ्यणि च । यौष्माकोण । आस्माकीन । यौष्माक । आस्माक (७२) **तवकममकावेकवचने** ४।३।३ ।। एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्त खञ्यणि च । तावकीन –तावक । मामकीन –मामक । छे तु । (७३) **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च**७।२।२८।। मपर्यन्तयोरेकार्थयोस्त्वमौ स्त प्रत्यये उत्तरपदे च । त्वदीय । मदीय । उत्तरपदे तु, त्वत्पुत्र । मत्पुत्र । (७४) **अर्धाद्यत्** ४।३।४।। अर्ध्य । (१३७५) **परावराधमोत्तमपूर्वाच्च** ४।३।

साधिकार छ आया । प्रकृति दो, प्रत्यय तीन है । समान स० नही यथासख्य भी नही । द्विवचन और बहुवचनसे छ–जातादि अर्थमे । **युवयो** –तुम दोनो का या तुम लोगो का यह पुरुष व्यक्ति वस्तु **युष्मदीय** । युष्मद्से छ–ईय सुप लुक्, विभक्ति हटनेपर युव आदेश लौटा । निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय' । आवयो अस्माक वा अय ग्रह हम दोनो का, हम लोगोका **अस्मदीय** छ-ईय आदि । जब खञ् या अण् होगा तब विशेषता बोले—

(७१) **तस्मिन्नणि** खञ् और अण् परे युष्मद् अस्मद् को युष्माक अस्माक आदेश हो । विग्रह वही होगा युष्मदसे ख ईन युष्माक आदेश आदिवृद्धि, णत्व **यौष्माकीण** । आवयो अस्माकम्वा **आस्माकीन** ख–ईन आदि । यदा अण् तदा युष्माक अस्माक आदेशे आदि । तुम दोनो या तुम सबका ।

(७२) **एकवचनमे** तवक ममक आदेश एकार्थवाची युष्मद् अस्मद्के स्थान मे हो, खञ् अण् परे । एकस्य वचन कथनमुक्ति । तब अय **तावकीन** युष्मद्से खञ् ईन, तवक आदेश, आदिवृद्धि । जब अण् तब **तावक** । मम अय मामकीन , एक वचनमे ममक आदेश आदिवृद्धि, अण् परे भी तथा । छ–परे एक अर्थमे वर्तमान रहने पर विशेषता बोले (७३) प्रत्यय परे, उत्तरपद परे युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त भागको क्रमसे त्व और म आदेश हो । इस सूत्रमे त्व मावेकवचने युष्मदस्मदो आये । तब अय **त्वदीय** , मम अय **मदीयः**, युष्मद् ङस् छ अस्मद ङस् छ-ईय सुप् लुक् । उसका फल हुआ तव, मम लौट गये । युष्मद आदिके मपर्यन्त युष्म अश त्वसे त्वत्, मसे मत् बने । शेषेलोप नही, विभक्तिपरे न होनेसे । **त्वदीय मदीय** । उत्तरपदपरे तव अय त्वत्पुत्र' । मम अय मत्पुत्र. । उत्तरपद पुत्र है । उसके परे मपर्यन्त भाग को त्व म आदेश ।

(७४) **अर्धात्** जातादि अर्थे यत् । अर्धे जात **अर्ध्य** आधी दूर तक गया

५॥ पराध्र्यम् । अवराध्र्यम् । अधमाध्र्यम् । उत्तमाध्र्यम् । **(७६) दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ४।३।६।।**चाद्यत् । पौर्वार्धिक-पूर्वार्ध्यम् । **(७७) ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ४।३।७।।** ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च दिक्पूर्वपदादर्धान्तादञ्ठञौ स्त । इमे अस्माक ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धा -पौर्वार्धिका ग्रामस्य पूर्वस्मिन्नर्धे भवा इति तद्धितार्थे समास । ठञ्ग्रहण स्पष्टार्थम् । अञ्चेत्युक्ते यतोऽप्यनुकर्षं सम्भाव्येत **(७८) मध्यान्म ४ । ३ । ८ ।।** मध्यम । **(७९)असाम्प्रतिके ४।३।९।।** मध्यशब्दादकारप्रत्यय स्यात्साम्प्रतिकेऽर्थे । उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरण । मध्य दारु । नातिह्रस्व नातिदीर्घमित्यर्थ । **(१३८०) द्वीपादनुसमुद्र यञ् ४।३।१०।।** समुद्रस्य

हुआ । सपूर्वपदात् ठञ् वाच्य । वाल्येयार्धिक ॥ (१३७५) । पर अवर अधम उत्तम पूर्व, से परे अर्ध हो उससे भी यत् कहे । परार्धे जात' उच्च सख्याके आधे भाग तक पहुचा) अर्थमे यत **पराध्र्यम्** । अवरार्धे भव **अवराध्र्य**—निचले या निकृष्ट के आधे भाग मे उत्पन्न । अधमार्धे जातम् अधमके आधे भागमे पैदा हुआ रोग, उत्तमस्य अर्धे भव श्रेष्ठके आधे तक, यत् आदि ।

७६ **दिशावाचक पूर्वपद** हो उससे ठञ हो, यत्भी अधमे भी । पूर्वार्धे जात आधे पहले भाग या पूर्वके आधे क्षेत्रमे जन्मा । ठञ् आदि पौर्वार्धिक, जब यत् तब (७७) ग्राम और जनपद मण्डलके पूर्व आधे भाग अर्थमे अञ्, ठञ् इमे अस्माक ये मेरे खेत गाव या मण्डलके पूर्वदिशाके आधे भाग तक है। पूर्वार्धसे अञ् बहु० । पौर्वार्धिक, ठञ् इक आदि । गावके पूवदिशाके आधे भागमे उत्पन्न अन्न । इस तद्धितार्थके रहते समास हुआ । अञ् ठञ् चसे आते ही, तब कहा-ठञ् पढना स्पष्ट ज्ञान वास्ते । जब अञ्च पढने तब चसे यत्भी आता, वह न आये अत अञ् ठञ् पढा । [७८] **मध्यत्वे** म हो, मध्ये जात मध्यम (मझिला)

(७९) अ–लुप्ता प्रथमा, **साम्प्रतिके**=इदानी वर्तमान कालमे मध्य शब्दसे अ हो उत्कर्ष अपकर्षरहित (न छोटा, न बडा) मध्य है । जैसे मध्यो वैयाकरण न विद्वान है न मूर्ख । मध्ये भव मध्य दारु (मझली लकडी) मध्यमे अप्रत्यय, न छोटा न मोटा । सम्प्रति अव्यय है । उत्कर्ष अपकर्षहीन अर्थ । **अनाप्तश्चतुरात्रोऽतिरिक्त षड्रात्रोऽथवा एष सम्प्रति पञ्चरात्र** तैत्तिरीये तथा दर्शनात् । न न्यून नाप्यधिक किन्तु सम । विनयादि-ठक्, प्रज्ञादि-अण् (एतर्हि सम्प्रति) कोशसे इदानी अर्थमे भी । अत साम्प्रत साम्प्रतिकम् ।

(१३८०) **द्विपात्** । समुद्रस्य समीपम् अनुसमुद्रम् । अव्ययीभावे समीपार्थे ।

समीपे यो द्वीपस्तद्विषयाद्दीपशब्दाद्यञ स्यात् । द्वैप्य, द्वैप्या । (८१) **कालाट्ठञ्** ४।३।११।। कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायम्प्रातिक । पौन पुनिक । कथ तर्हि 'शार्वरस्य तमसो निषिद्धये' इति कालिदास । 'अनुदितौषसरागा' इति भारवि । समानकालीन, प्राक्कालीनमित्यादि च । 'अपभ्रंशा एवैते' इति प्रामाणिका । 'तत्र जात' इति यावत्कालाधिकार । (८२) **श्राद्धे शरद** ४।३।१२।। ठञ स्यात् । ऋत्वणोऽपवाद । शारदिक श्राद्धम् । (८३) **विभाषा रोगातपयो** ४।३।१३।।

सप्तम्यन्त । समुद्रके निकट द्वीपका विषय, द्वीपसे यञ् हो । द्वीपे भव द्वैप्य समुद्र समीप टापूमे जन्मा । द्वीपसे यञ आदिवृद्धि । जब टापू द्वैप्या, कच्छादि अण् और मनुष्य वुञ् को बाँधकर । अनुसमुद्र क्यो ? द्वैपम् । अणादि:, द्वीपे भव द्वैपक मनुष्य वुञ् (८१) **कालवाचक** शब्दोसे ठञ हो स्वरूप ही नही । किन्तु सभी कालवाची सन्धिवेला चतुर्दशी आदि जो वृद्ध (आ ऐ औ) वृद्ध सज्ञा आदिका ग्रहण । मासे जात भव वा **मासिक** वेतन (महीनामे मिले) मास से ठञ आदि । सवत्सरे जात **सावत्सरिक** श्राद्ध, उत्सव, सवत्सर से ठञ् आदि । सायप्रात भव **सायप्रातिक** सत्सङ्ग (सुबह शामका) पुन: पुन जात **पौनपुनिक** (नख केश) ठञ् आदि । अव्ययोके भसज्ञा भस्मे भाष्य मेऐसे प्रयोग देखेजानेसे । साय चिर यहाँ ट्यु ल्वादि नही हुए । **कथ तर्हि**-यदि कालवाचीसे ठञ् होगा तब **शार्वरस्य तमसो निषिद्धये** मे शार्वरिकस्य क्यो नही, उषसा स्थानमे औपसिका ठञ् क्यो नही, समानकालिक क्यो नही तब बोले ये सब अपभ्रंश है । यह प्रमाणिक कथन है । **केचित्**—अमुक दूरत परेद्यु की तरह अव्युत्पन्न या पृषोदरादिसे साधु मान्य । **कालाट्ठञ्** का अधिकार कहाँ तक ? बोले तत्र जात सूत्र तक । गौणमुख्यन्याय नही लगता कदम्ब पुष्पके सहचारसे । कालका नाम कदम्बपुष्प, तत्र भव कादम्बपुष्पिकम् ।

(८२) **श्राद्धे**—शरदसे श्राद्ध अर्थमे ठञ् हो । यद्यपि कालाट्ठञ् सम्भव था तथापि सन्धि बेलादिऋतुके अण् को बाधने वास्ते । शरदि भव **शारदिक** श्राद्ध ठञ्, श्रद्धया क्रियमाण पित्र्य कम, श्रद्धया दीयते यस्मिन् कर्मणि जिस क्रियामे प्रेमसे पिण्डादि दानभाव । श्रद्धावान् पुरुष नही आदि । यद्यपि शरद् सम्वत्सर का वाचक है । तथापि अण् बाधने के लिये ण्डा ।

(८३) विभाषा रोग आतप (घोर घाम) अर्थमे शरद् से ठञ् हो, अण् भी । शरद् ऋतुके रोग ज्वर तिजारी अर्थमे ठक् । **शारदिक:** ज्वर । प्रचण्ड

शारदिक -शारदो वा रोग आतपो वा। एतयो किं? शारद दधि। (८४) **निशाप्रदोषाभ्या च** ४।३।१४।। वा ठञ् स्यात्। नैशिक, नैशम । प्रादोषिक, प्रादोषम्। (१३८५) **श्वसस्तुट् च** ४।३।१५।। श्वस्शब्दाट्ठञ् वा स्यात्। तस्य तुडागमश्च। (८६) **द्वारादीना च** ७।३।४।। द्वार, स्वर, (स्वाध्याय, स्वग्राम) व्यल्कश, (८७) **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** ४।३।१६।। स्वस्ति, स्वर, स्वयकृत्, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन, श्व एषा न वृद्धिरैजागमश्च। शौवस्तिकम्। सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् स्यात्। सन्धिवेलाया भव सान्धिवेलम्। ग्रैष्मम्। तैषम्। सन्धिवेला,सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपत्। 'सवत्सरात्फलपर्वणो'। 'सावत्सर फल, पर्व। सावत्सरिकमन्यत्। (८८) **प्रावृष एण्य** ४।३।१७।

धूप या शारद रोग घम। एतयो =रोग आतप अर्थमे विकल्प क्यो। शरदि जात शारद दधि। यह न रोग है न घाम, ठञ् न हो।

(८५) निशा और प्रदोषसे जात भव अर्थमे ठञ्, अण्भी। निशाया जात **नैशिक** कर्म, निशासे ठञ् इक आदि। जबअण् तब **नैशम्**, प्रदोपे भव **प्रादोषिक** रजनी मुख, साय सन्ध्या कर्म नित्यक्रिया ठञ् अण् आदि पूववत्, कालाट्ठञ्के नित्यको बाँधकर विकल्प। (१३८५) श्वस् शब्दसे ठञ हो, उसे तुट आगम भी हो, ट इत्, उ उच्चा०। ऐषमोह्यसे त्यप ट्यु्ल् भी।

(८६) द्वार आदि गणमे पढे शब्दोसे वृद्धि नही, किन्तु ऐच् का आगम (ऐ औ हो) य, वके पूर्वमे, । य, व पदके अन्तमे नही, अत न टवाभ्या नही लगा, तब यह सूत्र। श्वस इस अव्ययसे भव अर्थमे ठञ् इक तुट्-त। श्वस-त-इक। 'व' से पूर्व द्वारादीना सूत्रसे ऐच्—औ। **शौवस्तिकम्**, अकारको न वृद्धि। द्वो भव **दौवारिक**। स्वरे भव सौवरिक, स्वादौ भव सौवादिक, मार्दुक इत्यादि। (८७) सन्धिवेलादिगणमे पढे ऋतुनक्षत्रके शब्दोसे अण् हो, काल वर्तमान हो तब। साय प्रात तिथि, पशु, नक्षत्र अर्थ इनसे अण् हो। छको बाधकर। कालाट्ठञ् से काल आया ठञ् बाधा गया। दिन रातकी जोड सन्धि है। सन्धिवेलामे हुआ कर्म **सान्धिवेलम्**। अण् आदिवृद्धि। ग्रीष्मे जात ग्रैष्मक गर्मीमे हुआ कार्य। तिष्यपुष्य नक्षत्रे भव तैष कर्म। तिष्यसे अण् अलोप-यलोप आदिवृद्धि। अण् पढा ? पौर्णमासीसे वृद्धाच्छको बाँधने वास्ते। सन्धिबेला कौन है। दिन रातकी सन्धि सन्ध्या। शुक्ल कृष्णपक्षको जोड़ने वाली वेला अमावस्या पौर्णमासी है इत्यादि। (ग०) सबत्सरसे फलपर्व अर्थमे अण्। सबत्सरे जात फल,सावत्सर उत्सव (वा) प्रतिवर्ष हो। कर्म, फल।

प्रावृषेण्य । (८९) **वर्षाभ्यष्ठक् ४।३।१८।।** वर्षासु साधु वार्षिक वास । 'कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु' इति साध्वर्थे । (१३९०) **सर्वत्राण्च तलोपश्च ४।३।२२।** हेमन्तादण् स्यात्तलोपश्च वेदलोकयो । चकारात्पक्षे ऋत्वण् । हैमनम्–हैमन्तम् । (९१) **सायचिरप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुट् च ४।३।२३।।** सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्टयुटयुलौ स्तः तयोस्तुट् च । तुट प्रागनादेश 'अनद्यतने' इत्यादि निर्देशात । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्व निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषा-

---

अन्य अर्थ हो तब ठञ् आदि ।

(८८) प्रवर्षति इति प्रावृषि(नहि) वृधिसे पूर्वअण्को दीर्घ प्रावृषिभव वर्षा ऋतुमे पैदा हुआ प्रावृषेण्य । वर्षाती कीडे, पौधे, जातेषु ठप कहेगे । ण पढना क्रिया लाघवार्थ । (८९) **वर्षा** वर्षाशब्द नित्यबहुवचन । **अप्सुमन समासिकता वर्षाणा** इनका बहुवचन लिङ्गानुशासन सम्मत है । स्त्रियां प्रावृट् भूम्नि वर्षा इत्यमर । ऐसे वर्षाशब्दसे ठक् । छ ऋतुमे तृतीयाषु वर्षासु साधु हितकारी ठक् इक आदि । **वार्षिक,** चातुर्मास, वर्षा भर (रहे पर न गृह छाइ) ननु तत्र साधु शेषाधिकारमे आता नही, साधु अर्थमे प्रत्यय कैसे ? तब कहा **कालात्**=कालवाचक वर्षा शब्दसे साधु हितकारी खिलने और पकने अर्थमे साधु आता है । ठीक खिलते, पकते है । साधु अर्थमे ठक् । यह साधु शैषिकके जातादि अर्थमे प्रविष्ट है ।

(१३९०) **सर्वत्र**–लोक वेद सभी जगह अण् हो, त का लोप भी । पूर्व-सूत्रसे **हेमन्ताच्च** हेमन्तशब्दसे अण् हो, त लोप भी । लोक हो या वेद सर्वत्र त अ दोनोका लोप । चकार पढनेसे ऋतु मानकर अण् भी । यदि तका लोप, तब यस्येति **च** से अ–लोप । हेमन्ते जात पाचवी ऋतुमे पैदा हुआ हैमन ज्ञान, हेमन्तसे अण् तलोप आदिवृद्धि । जब ऋतु मानकर अण् तब तलोप नही । हेमन्त ऋतुमे होनेवाला कर्म । (९१) **साय**=सूर्यास्त **चिर**—विलम्ब प्राह्ण दिनका पहला भाग, प्रगे तेज गतिवाला इन चारोसे और अव्यय शब्दोंसे काल समय अर्थ खुलने पर टयुल हो । दोनो प्रत्ययोको तुट त हो । तुट् के पहले कोई आदेश न हुआ हो तब ऐसा क्यो ? प्रमाण देते है कि अनद्यतने–सूत्रके निर्देश=प्रमाणसे यहा तन पढा है । युवोरनाकौ=अङ्गके अधिकारमे है । उससे परे यु-वु को अन-अक होगा । यदि अन्तरङ्गसे तुट् होगा, तब **यदागमास्तद्गुणीभूता तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते** । तब इस परिभाषाके बलसे ल्युको अण् होने

तनम् । दिवातनम् । 'चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्य' । चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् । 'अग्रादिपश्चाड्डिमच्' अग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् । 'अन्ताच्च' अन्तिमम् । (९२) विभाषापूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ४।३।२४।। आभ्या टयुटयुलौ वा स्त, तयोस्तुट् च । पक्षे ठञ् । पूर्वाह्णेतनम् । अपराह्णेतनम् । घकालतनेषु इत्यलुक् । पूर्वाह्णे सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्वाह्णतनम् । अपराह्णेतनम् । पौर्वाह्णिकम् । आपराह्णिकम् । (९३) तत्र जातः ४।३।

लगेगा वह न हो । अत कहा कि तुट् के पहले अन आदेश हो जाता, घकाल तनेषुमे, तन पढा है । साय जात सायन्तन कर्म, । सन्ध्या वन्दनादि । स्य-धातु से घञ् कर, साय शब्द बना । दिनके अन्तमे रूढ है । मान्त निपातनसे, इति वार्तिककार , मान्तम्, अव्ययमस्ति । साय शब्दसे जातअर्थमे यु-अन । तुट-तन, स्वादिकार्ये । चिर जात चिरन्तनम् । प्रकृति, मान्त निपातनसे, देरतक कार्य हुआ । चिरसे यु अन तुट् (तन) आदि । प्राह्णे और प्रगे इन दोनोको एकारान्त निपातनसे । प्राह्णे सोढो अस्य दिनका पूर्वभाग सहनीय कर्म अस्य प्राह्णेमे यु-अन आदि । प्रगच्छति प्रग तस्मिन प्रगेसे तनकार्य । दोषा आकारान्त अव्यय है रात्रि अर्थ । तत्र भव दोषातन कर्म, रात्रिका कर्म चौर्य आदि । दिवा अकारान्त अव्यय दिन अर्थ । यहा भी यु-अन, तुट तन आदि । दिनकाकर्म (वा)। चिर परुत परारि इनसे त्न प्रत्यय हो । टयु आदिको बाधकर। चिर जात चिरत्न, बहुत समय बीता । जात अर्थपे । त्न परुजात परुत्न परसाल हुआ कर्म । परारिजात परियारसाल, पूर्वस्मिन्वर्षे पूर्वतरे च वत्सरे कार्य जातम् । (वा) अग्र आदि और पश्चसे डिमच् हो । अग्रे भव अग्रिम कार्यम् अग्रसे डिमच् डितसे टिलोप । आगेका कर्म । आदौ भव आदिम पहले हुआ कर्म । आदिसे डिमच् इलोप । पश्चाज्जात पश्चिम पिछला कार्य । पश्चसे उक्त कार्य अव्ययाना भसज्ञाया टिलोप (वा०) अन्तसे भी डिमच् अन्ते भव अन्तिमम् ।

[९२] विभाषा पूर्वाह्ण दिनका पहला भाग, अपराह्ण इन दोनोसे टयु टयुल् दोनोको तुट् हो, ठञ् भी । पूर्वाह्णे जात पूर्वाह्णेतनम्, अपराह्णे जातम् अपराह्णेतनम । यहा टयुल् ,यु--अन, तुट्--त् अनमे मिला तन । तद्धितान्त प्रातिपदिकसज्ञा सुपो धातुप्रातिपदिकयो से लुक् प्राप्त था । घकालतनेषुसे अलुक् हुआ । सप्तमी सुरक्षित । जब पूर्वाह्ण दिनका पहला भाग सोढ =सहन योग्य इस कर्मके । एव अपराह्ण सोढ अपराह्णतन पितृकर्म । यहा भी टयु—अन-त-तन आदि । पक्षमे ठञ इक आदिवृद्धि आदि ।

२५॥ सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः । अवारपारीणः इत्यादि । (९४) **प्रावृषष्ठप् ४।३।२६॥** एण्यस्यापवादः । प्रावृषि जातः प्रावृषिकः । (१३९५) **संज्ञायां शरदो वुञ् ४।३।२७॥** ऋत्वणोऽपवादः । शारदका दर्भविशेषाः मुद्गविशेषाः । (९६) **उत्तरपदस्य ७।३।१०॥** अधिकारोऽयम् ।* 'हनस्त' इत्यस्मात्प्राक् । (९७) **अवयवादृतोः ७।३।११॥** अवयववाचिनः पूर्वपदादृतुवाचिनो,चा-

---

इस प्रकार राष्ट्रावारपार सूत्रसे लेकर यहा तककी प्रकृतिसे **घाश्च** = प्रत्यय विशेष कहे गये । उन प्रत्ययोका अर्थ प्रकृतिसे विभक्तियोकी विशेषता दिखानेके लिए बोले (९३) **तत्र जात** सप्तम्यन्त समर्थसे कृतसन्धि=किया हुआ, सम्बन्ध समर्थसे जात अर्थमे अणादि, अपत्यादि गणसे विकार प्रत्यय अन्ततक साधारण सभी प्रत्यय हो । घादय राष्ट्रवारसे लेकर यहा तकके प्रत्यय भी हो । समर्थ विभक्तिकालाभ आक्षेपसे, जैसे चाक्षुषमे चक्षुषा गृह्यते (नेत्र क्रियासे लाभ) इसी तरहसे सप्तमीका लाभ होगा । तत्रजात अर्थ व्यर्थ । तथापि प्रावृषष्ठप्‌को बाँधनेकेलिये आवश्यक । ग्रामे आस्ते शेते आदिमे तद्धित नही होगा । जैसे अङ्गुल्या खनति, वृक्षमूलादागत इत्यादिमे नही होता, क्योकि जातादि शब्द नियामक है कि जात भव आदि अर्थमे ही अणादि हो, शेते आदिमे नही शेषके प्रभावसे श्रवण ग्रहण आदिमे प्रत्यय होगे । सुघ्नमे पैदा हुआ-अणादि वृद्धि **स्रौघ्न** । उत्से जात **औत्स** अणादि । झरनामे उत्पन्न । अवारपारे जात ख-ईन णत्व **अवारपारीण** आरपार कर गया ।

[९४] **वर्षा ऋतु** अर्थक प्रावृष् से जात अर्थमे ठप् हो । इससे सिद्ध है कि 'प्रावृष् एण्य' सूत्र अन्य अर्थमे लगता है । वर्षामे जन्मा हुआ **प्रावृषिक** ठ-इक मेढक फतिङ्गे आदि ।

[१३९५] **संज्ञा**=किसीका नाम हो तब शरदसे वुञ् हो । ऋतुके अण् का बाधक । कृतलब्धक्रीतकुशला तक अधिकार । केचित् वृत्तिकारादि शरदि जाता **शारदका** कुशा, मूग आदि । शरदसे वु-अक आदिवृद्धि, कुशका नाम है । संज्ञा क्योकहा ? **शारद** सस्य (शरदऋतुकी हरियाली) किसीकानाम नही, वुञ् न हो (९६) **उत्तरपद**का अधिकार हनस्त सूत्रके पहले तक चलेगा ।

[९७] **अवयव** वाची पूर्वपद हो, ऋतुवाचक शब्दके अचोके आदि अच् को वृद्धि (आ, ऐ, औ) हो, ञित् णित् कित् वाला तद्धित परे । **ऋतु** अर्थमे नित्य स्त्री० । बहुवचनान्त वर्षा शब्द है । वर्षाणा पूर्व पूर्ववर्षा तत्र जात **पूर्ववार्षिकः** । वर्षाके पहलेका उत्सव, बालक जन्मा । वर्षाभ्यष्ठक्-इक प्राप्त

मादेरचो वृद्धि स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे। पूवर्वार्षिक । अपर-हैमन । अवयवात्किं ? पूर्वासु वर्षासु भव पौर्ववार्षिक । ऋतोर्वृद्धिमद्विधाववयवानामिति तदन्तविधि सवत्र । इह तु न, अवयवत्वाभावात ।(९८) **सुसर्वार्धाज्जनपदस्य** ७।३।१२।। उत्तरपदस्य वृद्धि । सुपाञ्चालक । सर्व-पाञ्चालक । अधपाञ्चालक । 'जनपदतदवध्यो' इति वुञ् । सुसर्वार्धदिक्छब्देभ्यो जनपदस्य इति तदन्तविधि । (९९) **दिशोऽमद्राणाम्** ७।३।१३।। दिग्वा-चकाज्जनपदवाचिनो वृद्धि । पूर्वपञ्चालक । दिश किं ? पूवपञ्चालानामय पौवपञ्चाल अमद्राणाम । पौवमद्र । योगविभाग उत्तरार्थ । (१४००)

आदिवृद्धिको बाधकर उत्तरपदके आदि अच् को वृद्धि। पूवशब्द ऋतुका अवयव है। हेमन्तस्य अपर **अपरहेमन्त** । तत्र जात हेमन्त ऋतुके बाद जन्मा हुआ (सर्वत्राण्च तलोपश्च) अण्, तलोप । उत्तरपदके आदि अच् की वृद्धि जापरहैमन । अवयव क्यो कहा ? पूर्ववर्षामे पैदाहुआ। पहले वर्ष या समयकी ऋतुका सकेत, उससे अवयवसिद्ध नही, आदिवृद्धि हुई । उत्तरपदको न वृद्धि हो । (वा०) ऋतुसे वृद्धिमानकी विधिमे अवयववाची शब्दसे तदन्तविधि हो । **पूर्वत्र**=पहलेके उदाहरणमे जिसका फलप्रमाणित है। **इह तु न**=प्रति उदाहरणमे पूर्वासु वर्षासु भव मे तदन्तविधि नही होनी, समान आधार है। अवयव नहीं, कालाठञ् ही है ठक् नही, स्वरे भेद । एव **पौर्वहेमन्तिक** ।(९८) सु सव अर्ध ये पूर्वमे हो जिलामण्डल अर्थ हो। उत्तरपदके आदिअच्की वृद्धि हो। सुपञ्चालेषु जात पजाबके अच्छेक्षेत्रसे पैदाहुआ। वृद्ध नही। बहुवचन विषयसे वुञ अक सु पञ्चालक सु पूर्वपद है उत्तरपद पञ्चालकी आदिवृद्धि। एव सर्वेषु पञ्चालेषु जात, अर्धपञ्चालेषु जात । जनपद और उसकी अवधिमे वुञ् । अत्र शङ्का-प्रत्ययविधिमे तदन्तविधि नही होती। अत (वा.) सु सर्व अर्ध दिक् शब्दसे परे जनपदवाचीसे हुए प्रत्यय विधिमे तदन्तविधि होती है। येन विधि सूत्रके भाष्यमे वचन पढा, इससे तदन्तविधि हुई।

(९९) दिशावाचक जनपद मण्डल अर्थ खुले, उत्तरपदके आदि अच् को वृद्धि हो। पूर्वेषु पञ्चालेषु जात पजाबके पूर्व भागमे जन्मा, वुञ्=उत्तरपद को आदिवृद्धि। **दिशा क्यो कहा** ? पूर्व पजाबका यह कर्म, वस्तु, व्यक्ति पौर्व पञ्चाल । **पूर्वकाल**=पहले के समयमे। मद्रो को छोडकर क्यो ? पूर्वेषु मद्रेषु भव मद्रेभ्योऽञ आदि। यहा वृद्धि न हो। उक्त दोनो सूत्रोको एकसाथ पढते, योग—सूत्रका विभाग अलगाव **उत्तरार्थ** =प्राचा ग्रामनगराणा सूत्रमे दिशा का ही सम्बन्ध हो एवमर्थम्। एकसूत्र होता सभी आते।

प्राचा ग्रामनगराणाम् ७।३।१४।। दिशः परेषा ग्रामवाचिना नगरवाचिना चाङ्गानामवयवस्य च वृद्धि । पूर्वेषुकामशम्या भव· पूर्वैषुकामशम । नगरे— पूर्वपाटलिपुत्रक (१४०१) **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन् ४।३।२८।।** पूर्वाह्णक । अपराह्णक । आर्द्रकः मूलक । प्रदोषक. । अवस्करक । (१४०२) **पथः पन्थ च ४।३।२९ ।।** पथि जात पन्थक । (१४०३) **आमावास्याया वा ४।३।३०।।** अमावास्यक —अमावास्य । (१४०४) **अ च ४।३।३१।।** अमावास्य' । (१४०५) **सिन्धवपकराभ्या कन् ४।३।३२।।** सिन्धुक । कच्छाद्यणि मनुष्य-वुञ् च प्राप्ते । अपकरक । औत्सर्गिकेऽणि प्राप्ते । (१४०६) **अणञौ च ४।३।३३।।** क्रमात्स्त । सैन्धव । आपकर. ।

(१४००) **प्राचा**=दिशार्थक शब्दसे परे प्राचीन ग्राम या नगर वाची शब्दके अवयवकी आदिवृद्धि हो। पूर्वदिशाकी कामशमी ग्राममे पैदा हुआ। अण् विधि पूर्ववत। ये प्राचीन गाँवके एक भागका एक स्थान है। पूर्वेषु पाटलिपुत्रेषु जात (पूर्वापर प्रथम चरम) से समास अवृद्धसे भी वु—अक आदि। यह नगरके अङ्गका अवयव है उत्तर पदकी आदिवृद्धि ।

(१) **पूर्वाह्ण**—आदिसे वुन् हो जन्मा, प्रकट भव, अर्थमे। पूर्वाह्णे भव दिनके पहले प्रहरमे हुआ। व्यक्ति उत्सव **पूर्वाह्णक** वु-अक-आदि। अपराह्णे जात दोपहरके बाद जन्मा **अपराह्णक** वु—अक—आदि। विभाषा पूर्वाह्णको बाधकर विकल्प। जातसे भिन्न अर्थमे सावकाश। आर्द्रायां जात, मूले च भव। उस नक्षत्रमे पैदा हुआ। ऋतु—अण्को बाधकर। प्रदोषे जात रजनी (मुख) आरम्भ अधेरा, सायकालमे जन्मा। निशाप्रदोषाभ्या को बाधकर वु—आदि। अवस्करे जात **अवस्करक** कूडेमे पैदा हुआ। अण बाधकर वु।

(२) **पथिन** से वुन् हो प्रकृतिको पन्थ आदेश भी। पथि जात **पन्थक** रास्ते मे मिला, प्रकट हुआ राही। पथिन्से वु—अक पन्थ आदेश।

(३) **अमावस्या** से विकल्प वुन् अक। पक्षमे सन्धिवेलादि मानकर अण् **एकदेश** विकारन्यायसे आमावस्यासे भी यहविधि होती है, आदिवृद्धि **आमावास्य'** (४) **अ** हो। अमावास्यासे अ हुआ। यस्येति अकारलोप (१४०५) **सिन्धु** और अपकरसे जात अर्थमे कन् हो, सिन्धौ जातः **सिन्धुक** नमक या घोडा आदि। सिन्धुसे कन, समुद्रसे पैदा। **कक्षादि** से अण् हो। मनुष्यके वुञ को बाधकर कन्। अपकरे जात (पुष्प या कुडेमे) अण बाधकर कन्, अपकर्षण स्वाभाविक है। तत्र भव' जात का अण् प्राप्त। (६) **अण् अञ्** भी हो, सिन्धु से अण् आदिवृद्धि। उकारको गुण, अवादि **सैन्धव आपकर.** मे भी।

(१४०७) **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽषाढाबहुलाल्लुक् ४।३।३४॥** एभ्यो नक्षत्रवाचिभ्य परस्य जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । (१४०८) **लुक्तद्धितलुकि १।२।४९॥** तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक्स्यात् । श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठ । फल्गुन इत्यादि । 'चित्रारेवतीरोहिणीभ्य स्त्रियामुपसख्यानम्' । चित्राया जाता चित्रा । रेवती रोहिणी आभ्या 'लुक्तद्धितलुकि' इति लुकिकृते पिप्पल्यादेराकृतिगणत्वात्पुनर्ङीष् । 'फल्गुन्यषाढाभ्या टानौ वक्तव्यौ' स्त्रियामित्येव । फल्गुनी । अषाढा ।

---

(७) **श्रविष्ठा** (धनिष्ठा) फल्गुनी, अनुराधा स्वाती, तिष्य पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, आषाढा, बहुला इनसे परे या इनके नक्षत्रवाचीसे परे जात अर्थके प्रत्ययका लुक् हो । (८) **लुक्तद्धित** प्रत्ययका लुक् होनेपर । **उपसर्जन**= अन्य अर्थमे लीन स्त्रीप्रत्यय टाप् का लुक् हो । धनिष्ठा नक्षत्रमे पैदा हुआ । ऋतु अण् का लुक् । पूर्व सूत्रसे तद्धित प्रत्ययका लुक् । तद्धितार्थ—धनिष्ठामे पैदा हुआ अर्थवाचक प्रत्ययका लुप् होनेपर स्त्रीप्रत्यय टाप्का लुक् स्वादिः । **श्रविष्ठ** । फलगुन्यो जात अण का लुक् स्त्रीप्रत्यय हटा । फल्गुन —फाल्गुनी नक्षत्रमे पैदा हुआ । अनुराधासु जात भव । नक्षत्र अण्का लुक् । स्त्रीप्रत्यय लौटा । अनुराधान्हविषा वर्धयन्त पु० छान्दस । एव स्वात्या जात स्वाती । तिष्ये जात **तिष्य**, पुष्य नक्षत्रमे जन्मा हुआ । पुनर्वस्वोर्जात **पुनर्वसु** बालक हस्ते जात हस्त नक्षत्रका शिशु विशाखयोर्जात दुर्योधन । आषाढासु जात **आषाढ** भीम । बहुलासु जात बहुल । टाबन्त कृतिकावाची बहुलाका समहारद्वन्द्व, ह्रस्व निर्देश । (वा०) **चित्रा** रेवती रोहणीसे स्त्रीलिङ्गकी सुरक्षा करे । जात अर्थक प्रत्ययका लुक् हो । चित्रा नक्षत्रमे पैदा हुई वत्सा ही चित्रा है । उपसर्जनका फल अवन्ती कुन्ती कुरुकी सफलता । रेवत्या जाता रेवती । रोहिण्या जात इनसे जात अर्थमे प्रत्यय, स्त्रीप्रत्ययका भी लुक् होनेपर पिपल्यादि गणके आकृतिगण होनेसे पुन ङीष् हुआ । गौरादिका ङीष् पहले चला गया था । भाष्योदाहरण प्रमाण । (वा०) **फल्गुनी** आषाढा दोनोमे क्रमश ट और अन हो, स्त्री सहित जात अर्थ होने पर । स्त्रीलिङ्गमे ही होना है । फलगुन्योर्जाता फल्गुनीसे नक्षत्र अण् बाधकर ट हुआ । यस्येति इलोप, टित्से ङीप् **फल्गुनी** । आषाढासु जाता कन्या अण् को बाधकर अन् यस्येति आलोप जातार्थ स्त्रीसूचक टाप् । आषाढा फल्गुनीसे लुक् नही । टा अनके विधानकी शक्तिसे । (वा०) **श्रविष्ठा** अषाढासे छण् कहे । नक्षत्र अण् को

'श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण्वक्तव्य' अस्त्रियामपि। श्राविष्ठीय। आषाढीय। (१४०६) **जे प्रोष्ठपदानाम्** ७।३।१८॥ प्रोष्ठपदानामुत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धि स्याज्जतार्थे ञिति णिति किति च। प्रोष्ठपदासु जात प्रोष्ठपादो माणवक। जे इति किं? प्रोष्ठपदासु भव प्रौष्ठपद। बहुवचननिर्देशात्पर्यायोऽपि, गृह्यते। भाद्रपाद। (१४१०) **स्थानान्तगोशालखरशालाच्च** ४।३।३५॥ एभ्यो जातार्थप्रत्ययस्य लुक्स्यात। गोस्थाने जातो गोस्थान। गोशाल। खरशाल। 'विभाषा सेना' इति नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वम्। (११) **वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा** ४।३।३६॥ एभ्योजातार्थस्य लुग्वा

बाधकर विधानकी शक्तिसे न लुक्। स्त्रीलिङ्ग न रहा। श्रविष्ठासु जात छण् ईय, आलोप आदि। यही क्रिया **आषाढीय** मे करे।

(९) जे **प्रोष्ठपद** आदिगणमे शब्दोके उत्तरपदके आदि अच्को वृद्धि हो। भद्रपदासु जाता भादो मास या गायसे जन्मा गोकर्ण। **प्रोष्ठपाद** बालक। अण् उत्तरपदके आदि अच् की वृद्धि। जे= जात अर्थ क्यो? इसलियेकि भव अर्थमे उक्त वृद्धि न हो। **प्रोष्ठपद** आदि वृद्धि है। भव अर्थ होनेसे उत्तरपदके आदिको नही। बहुवचनका फल बोले **पर्यायोऽपि**=उस अर्थका वाचक अन्य शब्दभी स्वीकृत। प्रोष्ठपद अर्थमे भद्रपदासु जात **भाद्रपाद** उत्तरपदके आदि अच् की वृद्धि।

(१४१०) **स्थान शब्द** अन्तमे और गोशाल खरशालसे जन्मा पैदा अर्थ के प्रत्ययका लुक् हो। गवा स्थान, गोस्थान तत्र जात गाय ठहरनेके स्थानमे प्रकट हुआ। तत्र जात से अण् उसका इससे लुक्। गवा शाला गोशाला अस्ति अस्मिन् **गोशाल** तत्र जात गायके निवासमे प्रकट। जातार्थ अण् का लुक्। तेन न आदिवृद्धि। खराणा शाला अस्ति अस्मिन्खरशाल। गर्दभनिवास। तत्र जात अण का लुक् आदि। शाला शब्द स्त्रीलिङ्ग है। ह्रस्व पढना अनुचित क्यो नही? तब 'विभाषा सेना' सूत्रसे नपुसक होनेकेबाद ह्रस्वो नपुस्के से लिङ्ग विषिष्ट परिभाषासे स्त्रीलिङ्ग से भी लुक्।

(११) **वत्सशाला** अभिजित् शाला अश्वयुज शतभिषजसे परे तत्रजात के अण्का लुक् पक्षमे हो। बछडोके निवासमे पैदा हुआ। **वत्सशाल** जातार्थ अण् का लुक आदि। जबलुक् नही तब **वात्सशाल** इत्यादिसे अभिजिति जात अण् आदिवृद्धि **अभिजित** अभिजित नक्षत्रमे पैदा हुआ। अश्वयुजि जात अश्विनीमे आश्वयुज अण् आदि। जब लुक् तब **अश्वयुक्**। अश्व युनक्ति घोडेके जोडे-सूत सारथी। शतभिषजिजात शतभिषामे पैदा। अण् आदि **शातभिषज**। जब

स्यात्। वत्सशाले जातो वत्सशाल वात्सशाल इत्यादि। जातार्थे प्रतिप्रसूतो ऽण्वा डिद्वक्तव्य'। शातभिषज -शातभिष —शतभिषक्। (१२) नक्षेत्रेभ्यो बहुलम् ४।३।३७।। जातार्थप्रत्ययस्य बहुल लुक् स्यात्। रोहिणः— रौहिण। (१३) कृतलब्धक्रीतकुशला ४।३।३८।। 'तत्र' इत्येव। स्रुघ्ने कृतो लब्ध क्रीत कुशलो वा स्रौघ्न। (१४) प्रायभव ४।३।३९।। तत्र' इत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्न। (१४१५) उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ४।३।४०।। औपजानुक। औपकर्णिक। औपनिविक।

लुक् शतभिषक्। (वा०) जातार्थे=जन्म।, पैद। अथमे कालाठञ्को बाधकर स्वाभाविक अण्। (वा०) सन्धिवेला आदि सूत्रसे पुन उठे अण्को डित् वा अण् परे। जब टि (अज) का लोप डित् पक्षमे हुआ, तब शातभिष आदिवृद्धि भी होगी। (१२) नक्षत्रवाची शब्दोसे बहुलम—आवश्यकतानुसार जातार्थ प्रत्ययका लुक् हो। रोहिण्या जात (नत्रत्रमे पैदा हुआ) अर्थक अण् का लुक्। आदिवृद्धि हटा। तद्धित लुकिसे स्त्रीप्रत्य भी। यहा रोहितके तको नही। वर्ण न होनेसे। रूढ रोहणी नक्षत्र है। रङ्ग नही। गौरादि ङीष्। रोहणी नक्षत्र, प्रजापति देवता प्रमाण हे। जब लुक् तब रोहिण्य। जब न लुक् तब आदिवृद्धि रौहिण।

(१३) कृत किया हुआ, लब्ध-प्राप्त हुआ, क्रीत खरीदा हुआ, कुशल— सुखी अर्थमे प्रत्यय होगा। तत्र जात से तत्र आया, जात रुका। सप्तम्यन्त शब्दसे उक्त अर्थमे अणादि, घ आदि यथा योग्य हो। सुघ्न देशमे खरीदा प्राप्त बनाया हुआ, कुशल व्यक्ति या वस्तुका नाम स्रौघ्न। अण् आदिवृद्धि। मोह मय्या बम्बईमे बनाया, मिला' खरीदा, निर्विघ्न अर्थमे अण् मोहमयी अ आदिवृद्धि मौहमह्यः। विदेशे कृत लब्ध क्रीत वैदेश। राष्ट्रे क्रात राष्ट्रीयः गवि लब्ध गव्य। (१४) प्रायभव' प्राय हुआ अर्थमे सप्तम्यन्तसे अण् आदि घ आदि यथायोग्य हो। तत्र जात से तत्र ही आता है। स्रुघ्नमे प्राय बहुधा बाहुल्येन होता है, नही भी, स्रौघ्न अणादि। यह कार्य तत्र भव से गतार्थ नही, क्योकि कदाचित भवार्थे होने लगता। भाष्यमे प्रत्याख्यात है। प्रायः भव ग्रहणमनर्थक, तत्र भवेन कृतत्वात्। भवने प्रायभव भावन वत्स जन्मा

(१४१५) उपजानु उपकर्ण उपनीविसे ठक् हो, प्रायभव अर्थमे। समीप अर्थमे अव्ययीभाव। जानुन समीप उपजानु तत्र प्रायभव जङ्घेके पास बहुधा होनेवाला, उगन्तसे ठक्—ठस्य क आदिवृद्धि औपजानुक औपकर्णिकः प्रण, कर्णस्य समीपं उपकर्णं तत्र प्रायभव। बहुधा कानके पास होनेवाला ठ—

(१६) **सम्भूते** ४।३।४१॥स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्न । (१७) **कोशाड्ढञ्** ४।३।४२॥ कौशेय वस्त्रम् । (१८)**कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु** ४।२। ४३। हेमन्ते साधु हैमन प्रावारः । वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्य कुन्दलता । शरदि पच्यन्ते शारदा शालय । (१९) **उप्ते च** ४।३।४४॥ हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवा । (१४२०) **आश्वयुज्या वुञ्** ४।३।४५॥ ठञोऽपवाद । आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषा । (२१) **ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्** ४।

इक आदि । नीवे समीप उपनीवि तत्र प्रायभव **औपनीविकः** शष्प लक्षण वा । (१६) **सम्भूते** सम्भावना=सम्भव अर्थमे सप्तम्यन्तसे ही अणादि, घ ख आदि यथायोग्य हो । स्रुघ्नदेशमे सम्भावनाकी वस्तु **स्रौघ्नः** । हिमालये सम्भूत **हैमालय** । मन्दराचले सम्भवति । पारे सम्भवति **पारीण** गविसम्भव **गयव्म्** ।

(१७) **कोशसे** ढञ् कहे सम्भवति अर्थमे । रेशमी कीडे रेशमके कोश है । क्रिमिविशेष कोशस्य विकारः कोशे सम्भवति विकार हो कोशसे ढञ्—एय आदिवृद्धि **कौशेय** वस्त्र, रेशम कपडा (१८) **कालात्** ऋतु मास तिथि आदि कालवाची शब्दोसे (सप्तम्यन्तसे ही) साधु कुशल पुष्यत—खिलता हुआ, पच्यमान अर्थमे यथायोग्य प्रत्यय हो । पुष्प विकसने शतृ । हेमन्त ऋतुमे जो साधु उपयोगी महत्वका हो, वह **हैमन्त** हेमन्तसे उपयोगी कुशल अर्थमे अण् आदि । प्रावार आच्छादन घेरा शातृसे बचनेके लिए । शिशिरे साधु **शैशिर अग्निः** । (अमृत शिशिरे वह्नि) ग्रीष्मे सावु **ग्रैष्मम्** शीतल यन्त्र फ्रीज । **हैमनः** । **सर्वत्राण्च** त लोपश्च अण् हुआ तकार लोप भी । बसन्तमे जो खिले वे कुन्दलता **बासन्त्य.** अण् आदिवृद्धि टिढढा—ङीप् वासन्ती । जसि ।

तत्र भव तक कालात् का अधिकार । शरद् ऋतुमे पकनेवाले धान आदि का नाम **शारदा** । शरद्से अणादि जस् । (१९) **ऊप्ते**—हेमन्त ऋतुमे उप्यन्ते=वोये जाते है, उस बीज, यव किसी अन्नका नाम **हैमन्ता.** । हैमन्तसे बाज बोने अर्थमे अण् आदि । **कालसे** ही, सप्तम्यन्तसे यथा योग्य प्रत्यय हो । डुवप् बीजसन्ताने । भूतकाल विवक्षित नही ।

(१४२०) आश्वयुज्यासे कालवाचक सप्तम्यन्तसे बोने अर्थमे वुञ् हो । कालाट्ठञ् को बाँधकर । ञ का प्रयोजन स्वर और उत्तर भागमे वृद्धि । अश्विनी नक्षत्रका पर्याय **अश्वयुक्** । उससे जुडी पौर्णमासी **आश्वयुजी** तत्र उप्त माषा बोई हुई उरद का नाम **आश्वयुजक** । युजसे वु—अक आदिवृद्धि, बहु-

३।४६।। पक्षे ऋत्वण् । ग्रैष्मक, ग्रैष्मम् । वासन्तक, वासन्तम्। (२२) **देयमृणे** ४।३।४७।। 'कालात्' इत्येव । मासे देयमृण मासिकम् । (२३) **कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्** ४।३।४८ ।। यस्मिन्काले मयूरा कलापिनो भवन्ति स उपचारात्कलापी । तत्र देयमृण कलापकम् । अश्वत्थस्य फलमवश्वत्थ । तद्युक्त कालोऽप्यश्वत्थ । यस्मिन्काले अश्वत्था फलन्ति, तत्र देयमृणमाश्वत्थकम् । यस्मिन्यवबुसमुत्पद्यते तत्र देयमृण यवबुसकम् । (२४) **ग्रीष्मावरसमाद्वुञ्** ४।३।४९। ग्रीष्मे देयमृण ग्रैष्मकम् । आवरसमकम् । (१४२५) **संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च** ४।३।५०।। चाद् वुञ् । सांवत्सरिक, सांवत्स-

---

वचन । (२१) **ग्रीष्म** और बसन्तके सप्तम्यन्त रहते उप्ते=बोने अर्थमे वुञ् हो । ऋतु मानकर प्राप्त अण् को बाँधकर । ग्रीष्मे उप्त ग्रैष्मक गर्मीमे बोने का बीज । जब वु नही, तब अण् आदि **ग्रैष्मम** । बसन्ते उप्त बोया हुआ बीज अर्थमे वु–अक आदि **बासन्तकम्** । जब अण तब **बासन्तम** ।

(२२) **देय** कालवाचक सप्तम्यन्तशब्दसे ऋण चुकाने अर्थमे ठञ् हो । या यथायोग्य प्रत्यय हो । जो देय वस्तु है वह ऋण ही हो । महीनेमे देने योग्य ऋणका नाम **मासिकम्** । माससे कालाट्ठञ् इक आदि । वर्षे देयम् ऋण **वार्षिकम** । तिथौ देय **तैथम्** । ऋण क्यो ? मासे देया भिक्षा ऋण नही है ।

(२३) **कलापि** अश्वत्थ, यवबुस, ये काल—सप्तम्यन्त हो उनसे देय ऋण अर्थमे बुन् हो । जिस काल—समयमे मयूरगण कलापिनो भवन्ति मधुर बोलते है वह समय उपचाराद् व्यवहारवश **कलापी** है तत्र देयम् उस मधुरकाल मे देने योग्य ऋणका नाम **कलापकम्**, कलापिन्से वु–अक 'नस्तद्धिते' टिलोप। कलाप-अक मिलकर (श्व तिष्ठेति श्वत्थ न श्वत्थ –अश्वत्थ) बहुत दिन टिके बरगद या पीपल पेडका नाम । **तद्युक्त** उसके फलसे जुडा समयका नाम भी अश्वथ वे फल जिस कालमे फलते है । तत्र देय देने योग्य ऋण **अश्वत्थक** वुन्–अक । विकार प्रत्ययका फले लुकि । **यस्मिन्**=जिस समय—क्षेत्रमे यवबुस नया जौ नया मटरका मिला खाद्य । उस कालमे देय ऋण, ऋण अर्थमे वु–अक आदि । (२४) **ग्रीष्म**, आवरसमसे देय ऋण अर्थमे वुञ् हो । गर्मीमे देने योग्य ऋणका नाम **ग्रैष्मक** ग्रीष्मसे **वु**–अक आदि । और सुसमासु देयम् ऋण तद्धितार्थ । समाशब्द वत्सर अर्थमे नित्य स्त्रीलिङ्ग बहुवचन है । अन्य वर्षोमे देय ऋण अर्थ सूचक वु–अक आदिवृद्धि **आवरसमकम** ।

(१४२५) **सवत्सर** आग्रहायणसे ठञ् हो वुञ भी, देय ऋण अर्थमे । सवत्सरे देय वर्षभरमे देने योग्य ऋणका सूचक ठ—इक वु–अक आदिवृद्धि

रकम् । आग्रहायणिकम्—आग्रहायणकम् । (२६) **व्याहरति मृगः ४।३।५१॥** कालवाचिन सप्तम्यन्ताच्छब्दायने इत्यर्थे अणादय स्यु, यो व्याहरति स मृगश्चेत् । निशाया व्याहरति नैशो मृग नैशिक । (२७) **तदस्य सोढम् ४।३।५२॥** 'कालात्' इत्येव । निशासहचरितमध्ययन निशा, तत्सोढमस्य नैशिक —नैश । (२८) **तत्र भव ४।३।५३॥** स्रुघ्ने भव. स्रौघ्न । राष्ट्रिय (२९) **दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४॥** दिश्यम् । वर्ग्यम । (१४३०) **शरीरावयवाच्च ४।३।५५॥** दन्त्यम । कण्ठ्यम् । (३१) **प्राचा नग-**

एकवर्ष तक चुकानेकी अवधि **सावत्सरकम्** । आग्रहाणे देयम् ऋणम् अगहन महीने तक चुकाने योग्य ऋण ठ—इक । पक्षे ठञ् अक **आग्रहणिकम्** । सन्धि वेलादिगणमे **सवत्सरात् फलपर्वणो** ऐसा पढा । उससे प्राप्त अण् का बाधक ठञ् हैं । (२६) **व्याहरति** कालवाची दिन रात सप्ताह, मास, वर्ष आदि सप्त-म्यन्त हो, उससे शब्द करोति शब्दायते (निश्चित समय पर आवाज करता हो) अर्थमे अण् आदि यथा योग्य है । वह शब्द ध्वनि मृगसे व्यवहृत हो । निशाया=रातमे आवाज करने वाला मृग **नैश** । निशा प्रदोशाभ्या से अण् जब ठञ् इक आदि **नैशिक** । देयमृणे निवृत्त ।

(२७) **तदस्य** सोढमभ्यस्त सहन है । अर्थमे प्रथमान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो, कालवाचकसे ही । निशा—रातके सहचारसे अध्ययनका नाम निशा । तत्सोढ रातमे पढना सहन हो जिसे उसका नाम **नैशिक** । निशासे अण् हुआ तब **नैश** । रातमे पढनेका अभ्यासी । (२८) **तत्रभव** सप्तम्यन्तसे भव सत्ता, होना उत्पत्ति अर्थमे यथायोग्य अणादि हो । स्रुघ्न देशमे पैदा हुआ अणादि वृद्धि । राष्ट्रे भव **राष्ट्रिय** भव अर्थमे घ-इय । देशे भव **दैश** । कालनिवृत्त, उससे सम्भद्ध तत्र हटा । अत पुन तत्र पढा ।

(२९) **दिश** आदिगणमे पढे से यत् हो, भव अर्थमे । दिशि भव **दिश्य**, दिशाओमें होनेवाला । वर्गे भव **वर्ग्य** पार्टी । जाति धर्म पूग पक्ष रहस् उखा, साक्षिन आदि अन्तमें, मुख जघन मेघ, यूथ उदकसे सज्ञामे, न्याय वश काल आदि । सभीसे सत्ता अर्थमे यत् । मुख और जघनका पाठ शरीरभिन्न अवयव के लिये । मुखे भवे मुख्य—प्रधान । जघने जघन्य—घृणित ।

(१४३०) **शरीरके** अवयव अङ्गसे यत् हो । सप्तम्यन्त और भव अर्थे । दन्ते भव **दन्त्य** दाँतका रोग काढा । शरीरका अङ्ग है यत हुआ । कर्णे भव **कर्ण्य** देहका अङ्ग कान, उसमे भव (खूट या रोग) अर्थमे यत् । हस्ते भव

रान्ते ७।३।२४। प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च। सुह्मनगरे भव । सौह्मनागर । पौण्ड्रनागर । प्राचां किम् । मद्रनगरम् उदक्षु, तत्र भवो माद्रनगर । (३२) जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ७।३।२५।। जङ्गलाद्यन्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचो वृद्धिरुत्तरपदस्य तु वा ञिति णिति किति च। कुरुजङ्गले भव कौरु जङ्गलम्—कौरुजाङ्गलम्। वैश्वधेनवम्-वैश्वधैनवम्। सौवर्णवलजम्-सौवर्णवालजम् । (३३) दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ४।३।५६।। दार्तेयम् ।

हस्त्यं पाद्य, उदरे भवम् उदर्यं, जघन्यम् । (३१) प्राचाम् । अङ्गका अधिक र । पुराने समयका नगर हो अन्तमे, ऐसा अङ्ग उसके पहले, दूसरेपदके आदि अच् को वृद्धि हो । ञ ण् क्के इत् होनेपर तद्धितमे । सुह्म और पुण्ड नगर प्राचीन देशके पूर्व दिशा की अवधि है । तत्र भव उसमे पैदा हुआ अर्थमे अण् ञित्से केवल आदिवृद्धि प्राप्त है । उसे बाधकर प्राचा नगरान्ते सूत्रसे दोनोंपदके आदि अच्की वृद्धि हुई । इसी तरह पौण्ड्रनागर में अण्, दोनो पदकी वृद्धि । प्राचा क्यो पढा ? माद्रनगर उत्तर देशमे कही है । प्राचीन न होनेसे दोनो पदकी वृद्धि नही, केवल आदिकी (३२) जगल धेनु बलज अन्तमे हो उस अङ्गके पूर्वपदके आदि अचको वृद्धि हो । तब उत्तरपदके आदि अचको विकल्पसे हो । ञ, ण, क इत् होनेपर। कुरुदेशके जङ्गलमे जन्मा हुआ, अण् होने पर आदिवृद्धि, उत्तर पद जङ्गलकी पक्षमे वृद्धि । कौरुजाङ्गलम् । विश्वधेनौ भवम् (विश्वकी कामना पूरक) अणादि । ओर्गुण, अवादेश, उत्तरपदकीवृद्धि विकल्प । सुवर्णवालज सोनेके कगनमे जडी हुयी मणि । अणादि । ये शब्द किसी देश अर्थमे है उसमे उत्पन्नवस्तुका नाम तद्धितार्थ है। (३३) दृति (चर्मपात्र) शरीरका अङ्ग कुक्षि, कक्ष, कलशि —मन्थनपात्र, कलशिमुदधिगुर्वीबल्लभालोडयन्ति इति माघ । समुद्रका गौरव मन्थन, छोटे कलशके समान । वास्तिर्नाम रधोर्द्वयो । अस्ति अहिसे ढञ् हो । दृतौ भव दार्तेयम् । चमडेके पात्र या भाथीमे उत्पन्न, दृतिसे भव अर्थमे अण्को बाधकर ढ—एय, दृति एय आदिवृद्धि, यस्येति अकारलोपादि । चर्मभास्त्रिका दृति । कुक्षौ भवम् कौक्षेयम् काखमे पैदा कँवौरी 'कृगादिभ्यश्चके" वुञ्को बाधकर ढ-एय आदि । कलशि मन्थन कर नवनीत निकालनेका पात्र, तत्र भव कालशेयम् मक्खन । ढ—एय आदिवृदि इ—लोप । नाभि के निचले दोनो भागको वस्ति कहते हैं । तत्र भव वास्तेय हानिया वस्तिसे ढ—एय आदि । अस्ति अव्यय निपात है । तिङन्तके समान और भिन्न

कौक्षेयम । कलशिर्धंट तत्र भव कालशेयम्। (३४) **ग्रीवाभ्योऽण् च** ४।३।५७।। **चाड्ढञ । ग्रैवेय, ग्रैवम्।** (१४३५) **गम्भीराञ्ञ्य** ४।३।५८।। **गम्भीरे भव गाम्भीर्यम् । 'पञ्चजनादुपसख्यानम्' पाञ्चजन्यम् ।** (३६) **अव्ययीभावाच्च** ४।३।५९।। **परिमुख भव पारिमुख्यम् । 'परिमुखादिभ्य एवेष्यते नेह–औपकूल ।** (३७) **अन्त पूर्वपदाट्ठञ्** ४।३।६०।। **'अव्ययीभावात्'**

अर्थ **सत्ताया धने च न्यासकार** और हरदत्त दोनो कहते है। अस्तिक्षीरा गौ दूध धारणवाली अस्तिमान् धनवान् दोनो मान्य । तत्र भव **आस्तेय** प्रतिष्ठित, अस्तित्व, व्यक्तित्ववाला । अहि सर्प **तत्र भव** आहेयो मणि ।

(३४) **ग्रीवा** धमनी सब गलेकी धौकनी, जिसमे विवार श्वास घोष अघोष आदि होते है। शरीरका अवयव होनेसे यत् को बाधकर अण्। च से ढञ् भी। नाडी धौकनी छिद्रके बहुत होनेसे उसकी सख्याभी उद्भूत हुई। अत बहुवचन पढा। यदि भेद तिरोहित हो, तब एकवचनसे भी अण् ढञ् होगे। ग्रीवाया भव ग्रैवम् कण्ठमाना गलगण्ड। ग्रीवासे ढ–एय आदि। जब अण् आदि तब ग्रैवम गलेमे पैदा हुआ। ग्रीवासु भव ग्रीवायामिति वा।

(१४३५) **गम्भीर** शब्दसे ञ्य प्रत्यय हो। गहराईमे होनेवाला स्थिरता अथाह अर्थमे ञ्य अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। र–मे अका यस्येति लोप। यञ होता "प्राचा ष्फ तद्धित से" ष्फ होता। **पञ्चजनसे** भी ञ्य कहे। पञ्चजनात् जात **पाञ्चजन्यम्** शखसे उत्पन्न ध्वनि।

(३६) **अव्ययीभावसे** भी ञ्य कहे, भव अर्थमे। परिमुख भव मुखके चारो तरफ अथवा परिशब्द वर्जन अर्थमे मुखको छोडकर सब जगह होने वाला लेपन **पारिमुख्य**, परिमुखसे ञ्य आदि। (वा) **परिमुखादिगणपढे** शब्दो से ही ञ्य हो। इसलिए उपकूले भव तटके पास हुआ उत्सव **औपकूल** उप अव्यय है, तथापि ञ्य नही हुआ परिगणनसे। यद्यपि यह वार्तिक भाष्यमे नही है। तथापि दिगादिगण पाठके बाद परिमुखादिगण पाठकी शक्तिसे यहा अव्ययीभाव पद परिमुख परिहन पर्युलूखल आदि पढे गये है। उनका साहचर्य भी प्रमाण है। हरदत्तमते परिमुखादिगणमे प्रतिशाख शब्द भी पढा है। शाखृ व्याप्तौ धातु है प्रतिशाख, भव प्रातिशाख्य यहा भी ञ्य हुआ।

(३७) **अन्त** शब्द पूर्वमे पद हो, अव्ययीभावसे ठञ्। विभक्तिके अर्थमे अव्ययीभाव। अनच्से टच्। वेश्मनि भव घरके अन्दर जो भी हो वह **अन्तर्वेश्मम**। घरका अन्तरङ्गकार्य, तत्र भवम् उसमे सिद्ध सफन वस्तु अर्थमे ठ-

इत्येव । वेश्मन्यन्तर्वेश्मम् । तत्र भवमान्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गणिकम् । 'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' अध्यात्म भवम् आध्यात्मिकम् । (३८) **अनुशतिकादीनां च** ७।३।२०॥ एषामुभयपदवृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । अध्यात्मादिराकृतिगण । (३९) **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** ७।३।१। एषा पञ्चाना वृद्धिप्राप्तावादेरच आत्, ञिति णिति किति च । दाविकम् । देविकाकूले भवा दाविकाकूला शालय । शिंशपाया विकार शांशपश्चमस । 'पलादिभ्यो

इक आदिवृद्धि सुपो लुक् आदि । गणे इति अन्तगणम् तत्र भवम् **आन्तर्गणिक** गणोके बीच हुआ ठ—इक आदि । (वा) **अध्यात्म** आदि गणमे पढेसे ठञ् कहना इष्ट हे । अध्यात्मम् आत्माके स्वीकार, अधिकारसे हुआ कार्य अर्थमे ठ–इक आदिवृद्धि आध्यात्मिक अथवा आत्मनि इनि अध्यात्मम् । तत्र भवम् आत्माके आधारमे अधिकृत हुआ कार्य । **आध्यात्मिकम्** ।

(३८) **अनुशतिक** आदि गणमे पढे शब्दोके पूर्वपद और उत्तरपदके आदि अच्की वृद्धि हो, ञ, ण, क, इत्प्रत्यय परे । आदिवृद्धिके प्रसङ्गमे दोनो पदका अधिकार । आधिदैविक, देवेषु इति आधिदेव, तत्र भव, देवताओके बीच होने वाला शुभ गुण अर्थमे ठ—इक । अनुशतिकादि मानकर दोनो पदकी आदि वृद्धि एव भूतेषु इति अधिभूत, तत्र भव प्राणियोसे पैदा हुआ दु ख-सुख । अधिभूतसे ठ–इक दोनो पदकी आदि अच् की वृद्धि आदि । इह लोके भवम् । इस ससारमे हुए कार्य । अर्थमे ठ-इक दोनो पदकी वृद्धि । **एहलौकिकम्** । एव परलोके भव **पारलौकिकम्** । यहा भी ठ, दोनो पदकी आदिवृद्धि । अध्यात्म आदिकी आकृति देखकर गण मान लें । दोनो पदकी आदिवृद्धि पहचान है ।

(३९) **देविका** शिंशपा दित्यवाह दीर्घसत्र, श्रेयस् इन पाचोको प्राप्त आदिवृद्धिके स्थानमे आदि अच् को आकार हो । ञ, ण, क, इत्प्रत्यय परे । देविका नदीकानाम उसमे उत्पन्न मत्स्य आदि अर्थमे अणादि, वृद्धिको बाधकर सूत्रसे आत्व यस्येति अ—लोप **आधिदाविकम्** देविका कूले भवा नदीके तट पर पैदा हुआ धान साठी चावलका नाम **दाविकाकूला**। यह उदाहरण उत्तर पदकी वृद्धिका भ्रम हटानेके लिये, क्योकि यह सूत्र उत्तरपदके अधिकारसे बाहर है । शिंशपा (पलाश आदिके विकार लकडी इन्धनको) अ हो । **शांशप** काअर्थ चमस- कहते है शिंशपासे अण्, आदिवृद्धि बाधकर आदि अच्का आत्व, पलाशादि गणमे पाठसे अञ् भी उसके अभावमे अण्, क्योकि पलाशादिभ्यो वा

वा' इत्यञ् । दित्यौह इद दात्यौहम् । दीघसत्रे भव दीर्घसत्रम् । श्रेयसि भव श्रायसम् । (१४४०) **ग्रामात्पर्यनुपूर्वात् ४।३।६१।।** ठञ् स्यात् । अव्ययीभावात् इत्येव । पारिग्रामिकः । आनुग्रामिक । (४१) **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२।।** जिह्वामूलीयम् । (४२) **वर्गान्ताच्च ४।३।६३।** कवर्गीयम् । (४३) **अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ४।३।६४।।** पक्षे पूर्वेण छ । मद्वर्ग्यं – मद्वर्गीण –मद्वर्गीय । अशब्दे किं । कवर्गीयो वर्णं । (४४) **कर्णललाटात्क-**

विकल्पसे अञ् करता है । दित्य बहति दित्यवाट् अग्नि अ हुतिको देवतक पहुचाने वाला । षष्ठी एकवचन । **दित्यौह** इद अर्थमे अण् वाहके व को ऊठ, सम्प्रसारण पूर्वरूप, एत्येधत्यूठषुसे वृद्धि आदि अच् इ को आकार **दात्यौहम्** । अग्निसे सम्बन्धित वस्तु । दीघसत्रे-हजारो वर्षके यज्ञमे हुआ पुण्य दार्घसत्रम् । अण्, तस्येदसे । आदि इ स्थाने आ । श्रेयसि (शुभ कार्यमे होनेवाला) भव से अण् आदि ए को आ स्वादिकार्ये श्रायसम् ।

(१४४०) **ग्रामसे** ठञ हो, परि अनुके पूर्व रहते अव्ययीभाव समास होने पर ही । अन्त पूर्व पदातसे ठञ् आया । ग्रामात् परि, परिग्राम, गावके चारो तरफ तत्रभव **पारिग्रामिक** । वर्षा तूफान या उत्सव । परिग्रामसे ठ-इकादि वृद्धि । क्योकि अव्ययीभाव समास है । ग्रामस्य पश्चात् अनुग्रामम । तत्र भव गावके बाद हुआ उत्सव **आनुग्रामिक** यहा भी अव्ययीभाव समास, अतएव ठ-इक आदि । (४१) जिह्वामूल और अङ्गुलिसे भव अथमे छ–ईय हो जिह्वा मूले भव अ-क की उत्पत्ति स्थान जीभकी जड भागमे उत्पन्न, छको ईय । शरीरका अवयव होनेसे प्राप्त यनको बाधकर । अङ्गुलौ भव अङ्गुलीयम् अगूठी शरीरका अवयव अङ्गुलीसे यत्को बाधकर छ ईय ।

(४२) **वर्ग अन्तमे** हो तो भी छ हो । कादि वर्गे भव कवर्गीयम् एव खवर्गीय गवर्गीयमित्यादि । (४३) **अशब्दे** अकारान्त शब्द हो और वर्ग अन्तमे हो तब भव अर्थमे यत्, ख विकल्पसे, पक्षमे पूर्व सूत्रसे छ भी हो । मद्वर्ग्यं मम वर्गे भव मेरे पक्षका व्यक्ति यत्का अर्थ । जब ख–ईन हुआ तब **मद्वर्गीण**. पक्षमे छ–ईय तब मद्वर्गीय. मेरे पक्षमे हुआ । **अशब्द** क्यो पढा ? कवर्गीय कहनेसे क ख ग वर्ण शब्द रूप है यहाँ यत्, ख न हो ।

(४४) **कर्ण** और **ललाट**से कन् हो अलकार आभूषण अर्थमे । कर्णे भवा **कर्णिका**, कानका कनफूल कीली आभूषण है । ललाटे भवा **ललाटिका** माग-

नलङ्कारे ४।३।६५॥ कर्णिका। ललाटिका। (१४४५) **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** ४।३।६६॥ सुपां व्याख्यानः सौपो ग्रन्थः। तैङः। कार्तः। सुप्सु भवं सौपम्। (४६) **बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्** ४।३।६७॥ षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रं षत्वणत्वम्। तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा षात्वणत्विकः। (४७) **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** ४।३।६८॥ सोमसाध्येषु यागेष्वेतौ प्रसिद्धौ, तत्रान्यतरोपादानेन सिद्धेन उभयोरुपादानसामर्थ्यादसोमका अपीह गृह्यन्ते। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। राज-

---

टीका मस्तकका आभूषण है। अलंकार अर्थमे कन्। लोक प्रसिद्धिमें स्त्री०। टाप् प्रत्ययस्थात्से इत्व। यत्को बाधकर सूत्र लगता है। अलकार क्यो पढा? कर्णे भव कर्ण्यम् रोग है, अलकार नही। न कन्। किन्तु यत्। ललाटे भव **ललाटचम्** मस्तकका दाग रोग आदि।

(१४४५)**तस्य-व्याख्यायते** अनेन व्याख्यान ग्रन्थ। व्याख्या करनेका साधन करणे ल्युट्। षष्ठी अन्तसे व्याख्यान अर्थमे व्याख्याके योग्य ग्रन्थवाचक शब्दमे भव अर्थमे सप्तम्यन्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो। चकारसे तत्र भव का आक्षेप जिसका परामर्शक इति है। सुपा—सुबन्तका व्याख्यान हो जिसमे उस ग्रन्थका नाम सुप्, तत्र भव ग्रन्थ सौप। सुप्से अण् आदिवृद्धि। तिङ व्याख्यान ग्रन्थ तैङ तिङ्से अणादि। तिङन्तकी व्याख्याका साधन भ्वादि। कृता व्याख्यान कार्त कृत्प्रत्ययकी व्याख्याका ग्रन्थ। कृतसे अण् वृद्धि, रपर भव अर्थमे। सुपोसे हुआ कारक **सौपम्**। यह प्रयोग तस्येद, तत्र भव से सिद्ध सूत्र क्यो? दो अर्थके कारण अपवादभूत ठञ् विधानके लिए।

(४६) **बहुअच्**, अन्त उदात्त, षष्ठयन्तसे व्याख्यान अर्थमे ठञ् हो अण् बाधकर। षत्व और णत्व विधान वाले सूत्रका नाम षत्वणत्व उसके व्याख्यान (ग्रन्थमे हुआ काय) अर्थे ठ—इक आदि। बहु अच् क्यो? एक अच्से ठ न हो। यथा **सौप तैङम्**। अन्त उदात्त क्यो? संहिताया व्याख्यान **साहित** यहा ठञ् न हो। गतिरन्तर से आदि उदात्त।

(४७) **क्रतु और यज्ञ** से तस्य व्याख्यानम् अर्थमे ठञ् हो। **अन्यतर—सोम** लता प्रयोगयोग्य यज्ञोमे क्रतुशब्द और यज्ञ प्रसिद्ध है। अन्यतर क्यो पढा? अथवा दोनोमे से एक पढते तबभी कार्य सिद्ध था दोनोके उपादान=स्वीकार करनेकी शक्तिसे असोमका=जो सोम यज्ञवाले नही है। उनके भी ग्रहणके लिए। क्रतुसे सोमयाग, यज्ञशब्दसे इतरयाग इष्ट। दोनोसे ठञ्। **आग्निष्टो-**

सूयिक । पाकयज्ञिक । नावयज्ञिक । बहुवचन स्वरूपविधिनिरासार्थम् । अन-न्तोदात्तार्थ आरम्भ । (४८) **अध्यायेष्वेवर्षेः ४।३।६९।।** ऋषिशब्देभ्यो लक्षणया व्याख्येयग्रन्थवृत्तिभ्यो भवे व्याख्याने चाध्याये ठञ् स्यात् । वसिष्ठेन दृष्टो मन्त्रो वसिष्ठः, तस्य व्याख्यान तत्र भवो वा वासिष्ठकोऽध्याय । अध्या-येषु किम् । वासिष्ठी ऋक् । (४९) **पौरोडाशपुरोडाशात्ष्ठन् ४।३।७०।।**

मिक स्तुतिका नाम स्तोम अग्ने स्तोमोऽस्मिन् अग्निकी स्तुति हो । जिसमे अग्निष्टोम । उसकी व्याख्याका साधन ग्रन्थ उसमे हुई विधिका नाम **आग्नि-ष्टोमिक** । अण् बाधकर ठ–इक आदि । **वाजपेयिक** । पीयते अस्मिन्पेय पात्रं जिससे पिया जाय । कृत्यल्युटो बहुलसे आधार पात्र अर्थमे ठक् यवागू–हलुआ का एक भेद बाज है । तस्य पेय बाजपेय मध्यउदात्त । तस्य व्याख्यान , तत्र भवो वा **बाजपेयिक** । राज्ञा सूयते या राजा सोम सूयते–सोमलता निचोडी जाय राजसूय क्यप्, निपातनसे समास । उत्तरपदप्रकृति स्वर,, मध्य उदात्त । इतर यज्ञका उदाहरण—**पाकयज्ञिक** । अल्प अर्थमे पाक है पाकश्चासौ यज्ञश्च छोटा यज्ञ समासस्वर, अन्त उदात्त । या उपासना अग्निसाध्य स्थालीपाक आदिका नाम पाकयज्ञ उनके व्याख्यानका ग्रन्थ, तेषु भव अर्थमे ठ–इक आदि नवै धान्यै यजन नवयज्ञ । नये अन्नसे यज्ञका समय आग्रहायण अगहन या चैत्रमे यज्ञ, उसका व्याख्यानग्रन्थ या उससे उत्पन्न पुण्य अर्थमे ठ आदि । यज याचविच्छ—नङ् । यह ठञ्पूर्वसूत्रसे सिद्ध था, यह सूत्र अन्त उदात्तके लिए । क्योंकि वाजपेयशब्द मध्य उदात्त प्रसिद्ध है । तैत्तिरीयशाखामे अन्त उदात्त न होनेके लिये बहुवचन पढना स्वरूपविधि=क्रतु और यज्ञके रूपसे ही विधिका न होना फल है ।

(४८) **अध्यायेषु एव ऋषे**--अध्याय अर्थमे और व्याख्यान ग्रन्थमे ठञ् हो । वह भी ऋषिसे सम्बन्ध होने पर । ऋषिशब्द लक्षणासे व्याख्याके योग्य ग्रन्थ, **तत्र भवे व्याख्याने च** भव उत्पत्ति और व्याख्यान अर्थमे ऋषि प्रणीतग्रन्थ के अध्याय अर्थमे ठञ् । वशिष्ठसे देखा हुआ मन्त्रका नाम वाशिष्ठ । अण्का लुक् । वसिष्ठस्य मन्त्रस्य व्याख्यान' या उसमे हुआ अध्याय अर्थमे, ठ–इक आदिवृद्धि । **वासिष्ठिको** अध्याय । अध्याय क्यो पढा ? वशिष्ठे भवा वाशिष्ठी ऋक्, मन्त्र वशिष्ठमे प्रकट हुआ । मन्त्रअर्थ है अध्याय अर्थ न होनेसे, न ठञ् । कश्यपेन दृष्टो मन्त्र कश्यप , तस्य व्याख्यान' तत्र भवो वा **काश्यपिकोऽध्याय**

पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः पुरोडाश स एव पौरोडाश । तत ष्ठन् । पौरोडाशिक । पुरोडाशिक । (१४५०) छन्दसो यदणौ ४।३।७१।। छन्दस्य — छान्दस । (५१) द्वयजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ४।३।७२।। द्वयच —ऐष्टिक । (शैषिक.), पाशुक । ऋत —चातुर्होतृक ब्राह्मणिक । आर्चिक इत्यादि। (५२) अणृगयनादिभ्यः ४।३।७३।। ठञा-

---

भारद्वाजिक । (४९) **पौरोडाश** से ष्ठन् हो, तस्य व्याख्यान तत्र भव अर्थ मे । पुरो दास्यते जो पहले दिया (दाशृ दाने) देने योग्य वस्तु अर्थमे ठ । निपातनसे दको ड पुरोडाश बाकना । हवनके सहचारसे मन्त्रभी पुरोडाश है, स एव—स्वार्थमे अणादि प्रज्ञादि मानकर । तस्य (उस मन्त्रका) व्याख्यानग्रन्थ या अध्याय अर्थमे ष्ठन् इक पौरोडाशिक । पुरोडाश शब्दसे ष्ठन् होनेपर पुरोडाशिक षित्व होनेसे ङीष्, तव पुरोडाशिकी हवनीय मन्त्रकी व्याख्या ।

(१४५०) **छन्दस** वेदके व्याख्यान अर्थमे या वेदसे उत्पन्न ज्ञान अर्थमे यत् अण हो । छन्दसा व्याख्यान ग्रन्थ तत्र भव , वेदकी व्याख्याका आधार या वेदमे उत्पन्न । द्वि अच् लक्षण ठक्को बाधकर यत् हुआ । **छन्दस्य** जब अण आदिवृद्धि तब **छान्दस** (५१) **द्वयच्ऋत** ब्राह्मण ऋक् प्रथम अध्वर पुरश्चरण नामन् आख्यात इनसे व्याख्यान और भव अर्थमे ठक् हो । दो अच्का उदाहरण —इष्टस्य व्याख्यान तत्र भव **ऐष्टिक** ठ—इक आदि, इच्छित वस्तुकी चर्चासे उत्पन्न विचार । शेषस्य व्याख्यान तत्र भवो वा **शैषिक** शेषभगवानकी व्याख्याग्रन्थ या अवशिष्ट अर्थमे हुआ **शैषिक** । पशो व्याख्यान **पाशुक**, उ से परे ठको क । पशु भागके ज्ञानका ग्रन्थ पशु उसका विस्तार ज्ञान ग्रन्थ. तत्र भव ज्ञान अर्थे ठ आदि । ऋत्का उदाहरण—चतुर होतृ व्याख्यायन पृथ्वी होना द्यौ अध्वर्यु ये चार होता तैत्तिरीय शाखामे प्रसिद्ध है । उनका विस्तार ग्रन्थ या उनसे उत्पन्न विषय अर्थमे ठ । ऋसे परे ठको क । **चतुर होतृक** चार होताओका व्याख्यानग्रन्थ । मन्त्रभागके अतिरिक्त वेदभागका नाम ब्राह्मणानि, उनके मन्त्रोका व्याख्यान ग्रन्थ । ऋचा व्याख्यान **आर्चिकः** इत्यादि प्रथमस्य व्याख्यान **प्राथमिक** । अध्वरस्य आध्विरक । २४ लाख गायत्री जप पुरश्चरण है तस्य व्याख्यान पौरश्चरणिक । नाम्न व्याख्यान **नामिक** , आख्याते तस्त व्याख्यान **आख्यातिक** । तिङन्त धातुकी चर्चा।

(५२) **अण्** हो ऋगयन आदिगणमे पढे शब्दसे । ठञ् आदिको बाधकर ।

देरपवाद । आर्गयन । औपनिषद । वैयाकरण । (५४) तत आगत ४।३।७४। स्रुघ्नादागत स्रौघ्न । **(५४) ठगायस्थानेभ्य. ४।३।७५।।** शुल्कशालाया आगत शौल्कशालिक । **(१४५५) शुण्डिकादिभ्योऽण् ४।३।७६।।** आयस्थानठकश्छादीना चापवाद । शुण्डिकादागत शौण्डिक । कार्कण । तैर्थ ।

मन्त्र सहिताका नाम ऋगयन उसका व्याख्यान, उसमे हुआ कर्म अर्थमे अण् बहु-अच्के ठञ्को बाधकर । वेदान्तभागका नाम उपनिषद, उसकी व्याख्या का या तत्र भव प्रतिपाद्य ग्रन्थ अर्थमे अणादि । **औपनिषद** । एव व्याकरणस्य व्याख्यान ग्रन्थ कौमुदी भाष्यादि तत्र भव शब्द अर्थ सम्बन्ध अनुशासन की उत्पत्ति **वैयाकरण** अण् ऐच् आदि । (५३) **तत** -पञ्चमी अन्त शब्दसे आगत =आया हुआ अर्थमे यथायोग्य प्रत्यय हो । सुघ्नसे आया हुआ व्यक्ति अर्थमे अणादि । **स्रौघ्न** । उत्तरात् आगत औत्तर । पूर्वात् आगत पौर्व । विदेशात् वैदेश । (५४) ठक् हो आयके स्थानसे आया हुआ अर्थमे कर टेक्स, आय । स्वमिन अयम् एति आय । स्वमिभाग, यस्मिन्गृह्यते, तत्स्थानम्==जिस जगहसे सरकारी टेक्स वसून किया जाय । ऐसे शब्दसे ठक् हो, अण् बाधकर । शुल्कशालासे आया हुआ धन अर्थमे ठ-इक आदि । शौल्कशालिक । वसूला धन बहुवचन-स्वरूपनिवारण वास्ते । वृद्धाच्छको बाधकर । आपणात् आगत **आपणिक** दूकानका टेक्स । आकरात् आगत **आकरिक** खानसे आया धन ।

(१४५५) **शुण्डिका** आदिगणमे पढे शब्दमे आगत अर्थमे ही ठ, अणादि हो । आयस्थानके ठक् छ आदिको बाधकर । इन्कम स्थानका नाम शुण्डिका, उससे आया धन अर्थमे अण् । ठक्को बाधकर वु—अक आदि **शौण्डिक** । कृकणात आगत आयके स्थानसे आया हुआ धन । कृकणसे छको बाधकर अणादि । **कार्कण** । तीर्थ शब्दसे आया धन अर्थमे अण् धूमादि वुञ्को बाधकर अणादि । उदपानात् आगत जल पिलानेके स्थानसे आया हुआ धन, उदपानसे अणादि । उत्सादि अञ् बाधकर ।(५६)विद्या और योनि सम्बन्ध येषातेभ्य उनसे आया हुआधन फीस अर्थमे वुञ्,अण्को बाधकर, छको परत्वात् बाधता है, उपाध्यायात् आगत अर्थे वु-अक आदि । अध्यापकके पाससे आया हुआ छात्र । पितामहादागत **पैतामहक** पितु पिता पितामह पूर्ववत्कार्य। आचार्यात् आगत **आचार्यक** । मातु पिता मातामह तस्मादागत **मातामहक** । नाना नानाके पाससे आया । मातु भ्राता मातुल उससे आया हुआ । **मातुलक** भाञ्जा ।

औदपान । (५६) **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** ४।३।७७।। औपाध्यायक, पैतामहक । (५७) **ऋतष्ठञ्** ४।३।७८।। वुञोऽपवाद । हौतृकम् । मातृक भ्रातृकम् । (५८) **पितुर्यच्च** ४।३।७९।। चाट्ठञ् । 'रीङृत' 'यस्येति च' इति लोप । पित्र्यम्–पैतृकम् । (५९) **गोत्रादङ्कवत्** ४।३।८०।। बिदेभ्य आगत बैदम् । गार्गम् । दाक्षम् । औपगवकम । (१४६०) **नञ शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणाना** ७।३।३०।। नञ परेषा शुच्यादिपञ्चानामादेरचो वृद्धि पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ परे । आशौचम्–अशौचम् । आनैश्वर्यम्–अनैश्वर्यम् । आक्षैत्रज्ञम्–अक्षैत्रज्ञम् । आकौशलम्, अकौशलम् । आनैपुणम्,

---

(५७) **ऋत**=**ऋ** अन्तमे हो तब विद्यासम्बन्ध, योनिसम्बन्धसे आगत अर्थ मे ठञ् हो, वुञ् को बाधकर। होतु सकाशादागत **हौतृक** हवनकर्ताके पाससे आया हुआ अर्थमे ठञ्(वुञ् बाधकर) उक्=ऋसेपरे ठको क। मातु सकाशादागत **मातृक**, भ्रातु सकाशादागत **भ्रातृक** धनम्। ऋ अन्त, ठ–क। (५८) **पितृ**से यत् हो ठञ् भी पितृसे यत्, ऋत से रीङ् **पित्रीय**। यस्येति इकार लोपे **पित्र्य**, जब ठञ् तब इस् उस–उकसे परे ठको क आदि पैतृकम।

(५९) **गोत्रप्रत्यान्त**से आगत अर्थमे अङ्कवत्-अङ्क अर्थमे जो प्रत्यय होते हो वे हो। यह अतिदेश सूत्र है विधि नही। अपत्याधिकारसे बाहर लौकिक गोत्र। विदस्य गोत्रापत्यानि अञ्, बहुवचनमे यञ्, अञ कालुक्। बहुवचन सुरक्षित, सध **अङ्क लक्षण**से अञ् यञ इञ् होते है। अञन्तस आगत अथमे, अण्। गोत्रेअलुक्। वैदसेआया हुआ **पथ**मे द्वि-अच् लक्षणको बाधकर, गार्ग्येभ्य आगत गार्ग, गार्ग्यसे आया अर्थमे अण् अनोपयञोपादि। दाक्षे आगतम दक्षसन्तानके पाससे आयाहुआ अर्थे अण् इञोपादि। औपगवादागत औपगवक, **गोत्रचरणात्** वुञ। यद्यपि इदमर्थे वुञ् दृष्ट तथापि अङ्केऽपि दृष्ट अर्थे अतिदेशो भवति।

(१४६०) **नञ्**से परे अशुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ कुशल निपुण शब्दके आदि अच्की वृद्धि हो, पूर्वपदकी विकल्पसे, ञ ण क इत् परे। आदिवृद्धि प्रसङ्गमे उत्तरपद और पूर्वस्य तु वा आये। अशुचे आगत **आशौचम्** अशुचिसे अण्। उत्तरपदको नित्यवृद्धि, पूवपद अको विकल्पवृद्धि। **अशौचम्**। अनीश्वरादागत नास्तिक या नौकरके पाससे आया हुआ। ब्राह्मणादि ष्यञ अनीश्वर य, पूर्वपद अको विकल्प, नीमे इको नित्य वृद्धि **आनैश्वर्यम्**। अक्षेत्रज्ञात् आगतम् अक्षेत्रज्ञम्। अकुशलादागत, मूढके पाससे आया। आकौशलम् अनिपुणादागत,

अनैपुणम्। (६१) **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्य: ४।३।८१॥** समादागतं समरूप्यम्। विषमरूप्यम्। पक्षे गहादित्वाच्छ। समीयम्। विषमीयम्। देवदत्तरूप्य, दैवदत्त—देवदत्तीयम्। (६२) **मयट् च ४।३।८२॥** सममयम्। विषममयम्। देवदत्तमयम। (६३) **प्रभवति ४।३।८३॥** तत इत्येव। हिमवत प्रभवति हैमवती गङ्गा। (६४) **विदूराञ्ञ्य ४।३।८४॥** विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणि। (१४६५) **तद्गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५।** स्रुघ्न गच्छति स्रौघ्न पन्था दूतो वा। (६६) **अभिनिष्क्रामति द्वारम**

बुद्धूके पाससे आया। आनैपुणम्। (६१) हेतु—कारणसे और मनुष्यसे आया अर्थमे रूप्य प्रत्यय हो, विकल्पसे मनुष्य पढना विना हेतुके लिए। बहुवचन =सूत्रमे पढे शब्दसे न होनेके लिए। सम—आधे दूरसे लौटा हुआ अर्थमे रूप्य **समरूप्यम्** लौटनेमे सम हेतु है। विषमादागत **विषमरूप्य** लौटनेमे विषमता हेतु है रूप्य हुआ। जब नही हुआ, तब गहादिगण मानकर छ—ईय **समीयम्** मनुष्यवाची देवदत्तादागत **देवदत्तरूप्य** जब अण्, आदिवृद्धि तव **दैवदत्तम्**।

(६) **मयट्** भी होता है लौटा हुआ अर्थमे। समादागत **सममयम्** क्रम निरासार्थ सूत्रविभाग। विषमादागत विषममय, देवदत्तके पाससे लौटा हुआ। टितसे ङीप ी (६३) **प्रभवति** प्रथमप्रकाशित अर्थे पञ्चमी अन्तसे अणादि यथायोग्य हो। हिमालयसे प्रथमप्रकाशित अर्थमे अण्, आदिवृद्धि। **हैमवती** ण्तिसे ङीप। हिमालयसे प्रथम प्रकट हुई। प्रथम दृश्यते प्रभवतिका केवल उत्पत्ति अर्थ नही, तत्र जात, तत्र भव के भेदसे।

(६४) **विदूरसे** प्रथम प्रकाशते ऽर्थेञ्य। विदूर य, जित परे आदिवृद्धि। **वैदूर्य**। अत्र शङ्का—वालवाय पहाडसे वैयदूर्य मणि प्रकाशित है। विदूरनगर मे उसकी स्वच्छता है। भाव असङ्गत सा है। अत भाष्ये **वालवायो विदूरञ्च प्रकृत्यन्तरमेववा। न वै तत्रेति चेद्ब्रूयात् जित्वरीव उपाचरेत्।**

वालवाप स्थानमे विदूर आदेश और प्रत्यय या विदूर शब्द नगरकी तरह पर्वतका वाचक है या पर्याय।

(१४६५) **तद्गच्छति** द्वितीयान्तसे 'जाता है' अर्थमे प्रत्यय हो, जानेवाला रास्ता हो या दूत। स्रुघ्नदेशमे जाता है। वह दूत या रास्ता **स्रौघ्नः** अणादि। **पन्था** कर्ता कैसे ? असि साधु छिनत्ति, काष्ठानि पचन्ति तलवार ठीक काटता है लकडियाँ पकाती है। क्रियामे स्वतन्त्र होनेकी विवक्षासे कर्ता। (६६)

४।३।८६॥ तदित्येव। स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्न काान्यकुब्जद्वारम्। (६७) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७॥ तदित्येव। शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ शारीरकीय। 'शारीरक भाष्यम्' इतित्वभेदोपचारात्। (६८) शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छ ४।३।८८॥ शिशूनां क्रन्दन शिशुक्रन्द, तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ शिशुक्रन्दीय। यमस्य सभा यमसभम्। क्लीबत्व निपातनात्। यमसभीय। किरातार्जुनीयम्। इन्द्रजननादिराकृतिगण। इन्द्रजननीयम्। विरुद्धभोजनीयम्। (६९) सोऽस्य निवासः ४।३।

अभिनिष्क्रामति=द्वितीयान्तसे प्रत्यय हो, द्वारसे निकलने अर्थमे द्वारकरण है। निष्क्रमणकी क्रियामे स्वतन्त्र है। अत कर्ता। स्रुघ्नदेशको निकला हुआ। कान्यकुब्ज देशका द्वार, अण् आदि।

(६७) **अधिकृत्य कृत ग्रन्थ**—अधिकार करके किया हुआ ग्रन्य अर्थमे द्वितीयान्तसे प्रत्यय हो। **तत् इति एव**=द्वितीयान्तसे ही। **शरीरस्य अय** शारीर-(जीवात्मा तस्येद अण्) स्वार्थे क अथवा कुत्सित शरीर शरीरकम् (मास मज्जा की देह) उससे सम्बन्धित जीवात्मा **शारीरक** तमधिकृत्य (उस जीवात्मा पर अधिकार कर बनाया हुआ) ग्रन्थ अर्थे वृद्धाच्छ। ईय स्वादिकार्ये। **शारीरकीय** चतुर्लक्षणी सूत्ररूपो ग्रन्थ। इसी तरह वासवदत्ताके चरित्र पर अधिकार कर किया ग्रन्थ, आख्यायिका नाम **वासवदत्ता सुमनोत्तरा**। आख्यायिकाभ्यो बहुलसे लुक्। कही नही भी-जैसे भैमरथी, न लुक्। भाष्यमे शारीरक कैसे पढा? अभेद सम्बन्ध, उपचार=व्यवहारसे।

(६८) **शिशुक्रन्द**, यमसभ, द्वन्द्व, इन्द्र, जनन, आदि शब्दोसे अधिकृत्य अधिकृते ग्रन्थे अर्थमे **छ** हो। बच्चोका कोलाहल रुदन ही शिशुक्रन्द है उसपर अधिकार कर किया हुआ ग्रन्थ अर्थमें छ-ईय **शिशुक्रन्दीय**। बच्चोका स्वभाव वर्णनका ग्रन्थ। यमराजकी सभा **यमसभ**, नपुसक निपातनसे। क्योकि सभा, राजा, नपुसक नही होते, किन्तु अमनुष्यशब्द रुढिशक्तिसे राक्षस पिसाच आदिको कहता है। अत्रापि तथा। यमसभापर अधिकार कर किया हुआ ग्रथ **यमसभीय**। किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य कृतो ग्रथः चरित **किरातार्जुनीयम्**। इन्द्रजनन आदिका निर्णय आकृतिगण मानकर इन्द्रजनन उत्पत्ति अधिकार कर बना ग्रथ। विरुद्ध जनपर अधिकार कर बना ग्रन्थ।

(६९) **सोऽस्य** निवास। वह इमके रहनेका **स्थान**, अर्थमे प्रथमान्तसे यथा

८९॥ स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्न । (१४७०) **अभिजनश्च** ४।३।९०॥ स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्रौघ्न । यत्र स्वय वसति स निवास । यत्र पूर्वरुषित सोऽभिजन इति विवेक । (७१) **आयुधजीविभ्यश्छ पर्वते** ४।३।९१॥ पर्वतवाचिन प्रथमान्तादभिजनशब्दादस्येत्यर्थे छ स्यात् । हृद्गोल पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविना ते हृद्गोलीया । आयुध-इति किम् ? ऋक्षोद पर्वतोऽभिजनो येषा ते आर्क्षोदा द्विजा । (७२) **शण्डिकादिभ्यो ञ्य** ४।३।९२॥ शण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्य । (७३) **सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ** ४।३।९३॥ सिन्ध्वादिभ्योऽण् तक्षशिलादिभ्योऽञ् स्यादुक्तेऽर्थे । सैन्धव । तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य ताक्षशिल । (७४) **तुदीसलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्-**

योग्य प्रत्यय हो, प्रथमान्तका अर्थ निवास हो तब । जैसे स्रुघ्न देशमे निवास वाला **स्रौघ्न** । मुकुन्दपुर निवास. अस्य **मौकुन्दपुर** । मुकुन्दीपुरका निवासी । गृह निवासो अस्य गाह । जहा स्वय रहता है वह **निवास**, जहा पूर्वज लोग थे वह स्थान देश **अभिजन** है । (७०) रहनेका आधार निवास । तत्र भव से अणादि होता हो यह सूत्र क्यो ? वह भवसे सिद्ध नही होगा । वसन्तिहि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि । प्रसङ्गसे सिद्ध । दोनो सूत्र अलग क्यो पढा ? आगे अलग अनुवृत्ति वास्ते । पूर्वबान्धवा पित्रादय ।

(१४७१) आयुध=शस्त्रसे जीनेवाले प्रथमान्त हो, पर्वत पर, निवास हो । अभिजन पूर्वजवाचकशब्दसे सम्बन्ध अर्थे छ हो । हृद्गोल पर्वत है पूर्वजोका निवास ऐसे शस्त्रजीवियोका नाम हृद्गोलीया । छ—ईय आदि । शस्त्रजीवी क्यो कहा ? ऋक्षोद पहाड है पूर्व बन्धुओका निवास, जिनसे उसका नाम आर्क्षोदा --ब्राह्मणा शस्त्रजीवी नही हैं । (७२) शण्डिकादिगणमे पढे शब्दोंसे ञ्य हो । इसके पूर्वजोका निवास शण्डिकके स्थानमे होनेसे य । आदिवृद्धि **शाण्डिक्य.** । सर्वसेन स्थान है पूर्वजोका निवास, इससे (ञ्य) आदि० **सार्वसैन्य** । शक अभिजनो अस्य **शाक्य** । (७३) **सिन्धु**, तक्षशिलादिसे अञ् अण् हो । पूर्वज भूमि अर्थमे । सिन्धु आदिसे **अण्**, तक्षशिला आदिसे अञ् । सिन्धु॰ वर्णु कम्बोज कच्छादिमे भी पढे गये हैं । उनसे अणादि उको गुण ओ-**अव** सैन्धव सिन्धुदेश पूर्वजनिवास । **वार्णव** , गान्धार । तक्षशिला वत्सोद्धरणा बर्बरा आदिसे अञ् अभिजनो यस्य ताक्षशिल जिसके पित्रादि तक्षशिलाके हैं ।

(७४) **तुदीसलातुर वर्मती कूचवार** इनसे प्रथमान्त रहते क्रमसे ढक अण्

यक ४।३।९४।। तुदी अभिजनोऽस्य तौदेय । सालातुरीय । वार्मतीय । कौचवार्य । (१४७५) **भक्ति** ४।३।९५।। 'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते । भज्यते सेव्यत इति भक्ति, स्रुघ्नो भक्तिरस्य स्रौघ्न । (७६) **अचित्तादेशकालाट्ठक्** ४।३।९६।। अपूपा भक्तिरस्य आपूपिक । पायसिक । अचित्तात्किं ? दैवदत्त । अदेशात् किं ? स्रौघ्न । अकालात् किं ? ग्रैष्म । **महाराजाट्ठञ्** ४।३।९७।। माहाराजिक । ७८। **वासुदेवार्जुनाभ्या वुन्** ४।३।९८।। वासु-

---

ढञ् यक् हो । इसके पूर्वज निवास अर्थमे । तुदी नामक देशमे जिनके पूर्वजकी जन्म भूमि हो । ढक्—एय, आदि तौदेय । सलातुरनामक देशसे । उस अर्थमे छण ईय आदि **सालातुरीय** । वर्मतीसे ढ—एय आदि । कूचवारसे यक् । कित्से आदिवृद्धि ।

(१४७५) **भक्ति** भजसे भावमे क्तिन्, सेवा क्रिया । सोऽस्य आया । स्रुघ्न है सेवाका आधार इसका, प्रथमान्तसे सम्बन्धित सेवा अर्थमे अण् आदि ।

(७६) **अचित्त** जो चेतन न हो जैसे पूडी कचौडी, देश काल न हो, उससे इसकी सेव अर्थमे ठक् । अपूप है भक्ति सेवाका आधार इसके ठ—इक आदि—**आपूपिक** अपूपमे रुचिवाला **अपूपा** मे बहुवचन, भक्ति मे एकवचन बेदा प्रमाण जैसा, पय भक्ति अस्य **पायासिक** दूधप्रेमी । अचित्त—चेतन न हो ऐसा क्यो ? देवदत्त भक्ति अस्य देवदत्तका प्रेमी चेतन है, न ठक् किन्तु अण् । देशकाल न हो ऐसा क्यो ? स्रुघ्न देश, ग्रीष्मकाल है उनसे ठक् न हो, किन्तु अणादि । गर्मीमे भक्तिका । (७७) **महाराज**से ठ—इक आदिवृद्धि महाराज भक्ति अस्य सेवाका आधार हो उसका नाम **माहाराजिकः** ।

(७८) **वासुदेव** और अर्जुनसे अस्यभक्ति अर्थमे वुन् हो । वासुदेव भक्तिः अस्य इसकी सेवाका आधार वासुदेव है । वु—अक, अर्जुन भक्ति अस्य अर्जुन है सेवाका आधार वु अक् **अर्जुनक** । वासुदेवमे चार अच् अर्जुनमे ३ । अल्प अच् और अजादि अर्जुनका पूर्व प्रयोग क्यो नही ? **सर्वतो अभ्यर्हित पूर्वं निपतति** ज्ञापनवास्ते । सबसे अधिक पूज्य वसुदेवका पूर्वप्रयोग । वसुदेवसे अपत्य अर्थमे अन्धकवश मानकर अण्से वासुदेव बनता, तत गोत्रक्षत्रियाख्यसे वुञ् होकर वासुदेवक होता सूत्रमे क्यो पढा ? तब कहा भाष्यमे **नैषा क्षत्रियाख्या किन्तु भगवत सज्ञा** । सर्वतश्चासौ समस्तश्च वसत्यपि वै यत । ततोऽसौ

देवक । अर्जुनक ।७६। **गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुल वुञ्** ४।३।९९।। अणो-ऽपवाद । अपवादात् वृद्धाच्छ बाधते । ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनक । नाकुलक । बहुलग्रहणान्नेह । पाणिन भक्तिरस्य पाणिनीय ।१४८०। **जनपदिना जनपदवत्सर्वं जनपदे समानशब्दाना बहुवचने**४।३।१००।। जनपदस्वामिवाचिना बहुवचने जनपदवाचिना समानश्रुतीना जनपदवत्सर्वं स्यात्प्रत्यय प्रकृतिश्च । 'जनपदतदवध्योश्च' इति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्तास्तेऽत्रातिदिश्यन्ते । अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य आङ्गक । अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य आङ्गक । जनपदिना किम् ? पञ्चला ब्राह्मणा भक्तिरस्य पाञ्चाल. । जनपदे इति

वासुदेवेऽपि विद्वद्भि परिगीयते । जिसमे समस्त लोग रहे जो सबमे बसें, वह वासु -वस धातुसे बहुल उण् । वासु असौ देवश्च वासुदेवः सर्वमय देवता । यह भगवान न गोत्र है, न क्षत्रिय, योगरूढ । अधिक पूजनीयका पूर्वप्रयोग अनित्य है । श्वयुवमघोना सूत्रमे अधिक पूजनीय मघवनका पूर्व प्रयोग न होनेसे ।

(८९) **गोत्र प्रत्यय** अन्तसे क्षत्रिय वाचकसे अस्य भक्ति अर्थमे यथा इष्ट वुञ् हो, अण् को बाधकर । औपगव भक्ति अस्य अर्थे अण् जो पर होने से वृद्धात् सूत्रसे प्राप्त छको बाधता है । ग्लुचुकायनि मे भक्ति है इसकी वु–अक आदि । नकुल भक्ति अस्य नाकुल । नकुलका प्रियसेवक । बहुलसे कही न होना भी अर्थ । इसलिए नेह—पणिन स्तुतिकर्ताकी सन्तानमे सेवा, भावुक **पाणिनीय**, छ हुआ, न वुञ् ।

(१४८०) **जनपदी** नाम **बहुवचन** परे जनपदके समानशब्द या जनपद-वाचीके समान शब्द हो जिनका, उन का **जनपद**की तरह सब कार्य होते है । प्रकृति प्रत्यय भी उसी तरह हो, वह सर्वशब्दका फल बोले, **सर्ववचन प्रकृति निर्ह्रासार्थं तच्च, मद्रवृज्यर्थम्** । **अपचयो अल्पता निर्ह्रास** । मद्राणा राजा माद्र, वार्ज्य, मद्रक वृजिक भक्ति अस्य अर्थमे प्रकृतिका ह्रास । **जनपद** तदवध्योश्चके प्रसङ्गमे जो प्रत्यय कहे गये हो वे ही **अतिदेश**=धर्म आरोपके विषय है । अङ्ग नामक राजाका निवास स्थान । अङ्गा जनपद (भक्तिका आधार) वह **आङ्गक** । वु-अक आदि । ऐसे ही अङ्ग देशका स्वामी अङ्गा उउमे है भक्ति इसकी वह भी आङ्गक । जनपदिना क्यो कहा । पञ्चालके ब्राह्मणमे सेवा भाव वाला **पाञ्चाल**, व्यवहारसे अभेद । यहा अतिदेश नही, न वुञ् किन्तु अण् । जनपद क्यो । **पौरव** राजाका प्रिय सेवक **पौरवीय**ः

किम् । पौरवो राजा भक्तिरस्य पौरवीय । [।८१।] **तेन प्रोक्तम्** ४।३।१०१।। पाणिनिना प्रोक्त पाणिनीयम् । ।८२। **तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्** ४।३।१०२।। 'छन्दोब्राह्मणानि इति तद्विषयता । तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीया । ।८३। **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनि** ४।३।१०३।। काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यपिन । ।८४। **कलापिवैशम्पायनान्ते-**

जनपद नही, न वुञ् किन्तु वृद्धाच्छ आङ्ग आङ्गी वा भक्तिरस्य आङ्गक ।

(८१) **तेन प्रोक्त** तृतीयान्तसे प्रोक्त—प्रथमप्रकाशित अर्थमे यथायोग्य प्रत्यय हो । यहाँ प्रोक्तका प्रथम प्रकाशित अर्थ, कृत नही, यदि कृत होता—कृते ग्रन्थेसे सिद्ध होता । पाणिनिना प्रोक्त पाणिनिजीसे प्रथमप्रकाशित व्याकरणशास्त्र-सूत्र अर्थमे आदिवृद्धसे छ—ईय **पाणिनीयम्** । प्रोक्त क्यो पढा ? देवदत्तेन अध्यापित, देवदत्तसे पढाया जाना प्रथमप्रकाश नही, न छ- । (८२) **तित्तिरि** वर्तन्तु खण्डिक उख इनसे प्रोक्त—प्रथमप्रकाशित अर्थमे छण् हो । इस सूत्रसे लेकर तेनैकदिक सूत्रतक जितने प्रोक्त हैं वे वेदविषयक है । शौनकादिभ्यश्छन्दसि सूत्रमे छन्दस् पढनेसे पूर्वपदकी अनुवृत्ति होगी । छण् काअकेले प्रयोग नही, किन्तु किसीके सहारे होगा । तब कहा **छन्दो ब्राह्मणानि** वेदकाब्राह्मणभाग ही विषय बनेगा । उसीका अध्येतृ वेदितृ प्रत्यय सिरपर हो, यह नियम नही, तित्तिरि ऋषिसे प्रोक्त प्रथमप्रकाशितमन्त्र तैत्तिरीया' शाखा भेद रहने पर, तम् अधीते विदन्ति वा अर्थे अण् । उसका प्रोक्तात्से लुक् । **तैत्तिरीया** । वर्तन्तुना प्रोक्तमधीयते **वारतन्तवीया** । वरतन्तुसे प्रथमप्रकाशित वेदके ब्राह्मणभागकी एकशाखा । खण्डकेन प्रोक्तमधीयते **खाण्डिकीया** उखेन प्रोक्तमधीयते **औखीया** । छण आदिवृद्धि सबमे । उन ऋषियो द्वारा प्रकाशित मन्त्रोका उच्चारण, शब्दार्थं ज्ञाता विद्वान् । छन्दशब्दसे कल्प सूत्र स्वीकृत । सभी शाखाओकी विधिका सग्राहक होनेसे ।

(८३)**काश्यप** कौशिक, यदि ऋषि हो उनसे प्रोक्त अधीते अर्थमे णिनि हो, छको बाधकर । काश्यपेन प्रोक्तमधीयते प्रथमप्रकाशनका चिन्तन मनन करने वाला । णिनि, काश्यपिन्से प्रोक्तालुक् द्वारा अध्येतृ प्रत्यय अण्का लुक् । एव कौशिकेन प्रोक्तमधीते णिनि **कौशिकिन'** बहुवचने रूपम । ऋषि क्यो कहा ? वर्तमान काश्यप कौशिकसे णिनि न हो (८४) **कलापि** वैशम्पायनकी परम्परा के शिष्यवाचकशब्दसे णिनि हो प्रथमप्रकाशित अध्ययन मनन अर्थमे । कलापि

वासिभ्यश्च ४।३।१०४। कलाप्यन्तेवासिभ्य—हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविण । वैशम्पायनान्तेवासिभ्य-आलम्बिन । ।१४८५। **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४।३।१०५ ।।** तृतीयान्तात्प्रोक्तार्थे णिनि स्याद्यत्प्रोक्त पुराणप्रोक्ताश्चेद्ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति । पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ता भल्लु, भाल्लविन । शाटचायन शाटचायनिन । कल्पे, पिङ्ग, पैङ्गी कल्प । पुराण—इति किं ? याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि । आश्मरथ कल्प । अणि 'आप-

की शिष्य परम्परामे (हरिद्रु कलापिन शिष्य) तेन प्रोक्त उनसे प्रथमप्रकाशितग्रन्थसे णिनि । उ स्थाने गुण, आदिवृद्धि । हारिद्रविन् शब्दसे अध्ययन अर्थमे अण उसका लुक् । बहुवचने **हारिद्रविण** छगली, तुम्बुरु, उलप ये चार कलापीके शिष्य है । तुम्बुरुणा प्रोक्तमधीयते **तौम्बुरविण** । छागलेयिन औलपिन । वैशम्पायनकीशिष्य परम्परा **आलम्बि** कलिङ्ग कमल ऋचाम **आरुणि** श्यामायमान कठ, कलापि ये वैशम्पायनके शिष्य है । आलम्बिना प्रोक्तमधीयते, प्रोक्त अर्थमे णिनिसे अध्ययन अर्थके अण्का प्रोक्ताल्लुक् । आलम्बिन । कलिङ्गसे प्रथमप्रकाशितका अध्ययनकर्ता कलिङ्गिन कामलिन, आर्चामिन आरुणिन । यहा आपत्यस्य चसे यलोप, कठसे लुक्, कलापिन्से अण् कहेगे ।

(१४८५) **पुराणप्रोक्तेषु** इस सूत्रमे तेन प्रोक्त, णिनि आये । मन्त्रके अतिरिक्त वेद भागका नाम ब्राह्मण । बोधायन आदिके कल्पसूत्रका नाम कल्प । इस प्रकारके पुरातन मुनि हो, तृतीयान्त हो, तब प्रोक्त प्रथमप्रकाशित अर्थमे णिनि हो । जो प्रोक्त है वह पुरातन मुनियोसे उच्चारित हो, साथमे ब्राह्मणकल्पके मन्त्र हो, उन्हीसे णिनि होगा । पुराणका उदाहरण—बहुत पुराने चिरन्तन मुनियोसे प्रथमप्रकाशित हो । ब्राह्मणका उदाहरण—भल्लुना पुरातनमुनिना प्रोक्त ब्राह्मणभागमधीयते अर्थे णिनि आदि । भाल्लविन् शब्दसे अध्ययन अर्थके अण्का लुक् तब जस् **भाल्लविन** । दूसरा उदाहरण—शायनेन पुरातन मुनिना प्रोक्तान ब्राह्मणभागान् अधीयते णिनिसे अध्ययन अर्थके अणका लुक् शाटचायन ऋषिसे प्रथम प्रकाशित मन्त्रोका अध्ययनकर्ता । कल्पका उदाहरण-पिङ्गेन पुरातनमुनिना प्रोक्तम् । अर्थमेणिनि अध्ययन अर्थके अण् का लुक् पैङ्गी कल्प । पुराणमुनि क्यो कहा ? याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि । यहा णिनि न हो । आश्मरथेन प्रोक्त **आश्मरथ** कल्प । अणि—अण् परे आपत्यस्य च सूत्रसे यलोप **याज्ञवल्क** । आश्मरथ

त्यस्य' इति यलोप ।।८६। **शौनकादिभ्यश्छन्दसि** ४।३।१०६।। छन्दस्य-भिधेये एभ्यो णिनि । शौनकेन प्रोक्तमधीयने शौनकिन । ।८७। **कठचरका-ल्लुक्** ४।३।१०७।। आभ्या प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक्स्यात्। कठेन प्रोक्तमधीयते कठा चरका ।।८८।। **कलापिनोऽण्** ४।३।१०८।। कलापिना प्रोक्तमधी-यते कालापा । 'नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजा-जलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसङ्ख्यानम्' इत्युपसङ्ख्याना ट्लोप । ।८९। **छगलिनो ढिनुक्** ४।३।१०९।। छगलिना प्रोक्तमधीयने

ये कण्वादिमे पढे आधुनिक है। पुराण न होनेसे णिनि नही हुआ। भाष्यमे समानकालीन मानकर णिनिका प्रतिषेध किया।

(८६) **शौनक** आदि गणपठितशब्दोसे णिनि हो । छन्द—वेदका विषय होनेपर। शौनक मुनिसे प्रथमप्रकाशित मन्त्रका अध्ययन कर्तामे णिनि छन्दसि =वेदका विषय है शौनकसे प्रोक्त है। उसका अध्ययन कर्ता अर्थमे शौनकिन ।

(८७) कठ और चरकसे प्रोक्त=प्रथमप्रकाशित अर्थकप्रत्ययका लुक् अदर्शन अश्रवण हो। कठसे प्रोक्त प्रथमप्रकाशित अर्थमे णिनि, तब अधी-यते अण् उसका प्रोक्तात् लुक्। वैशम्पायनके अन्तेवासी शिष्यलक्षण णिनिका कठचरकात्से लुक्, अध्ययन अण् का प्रोक्तात्से लुक्। दोनो मन्त्र-श्लोकका प्रकाश करने है। (८८) कलापिनसे उक्त अर्थमे अण् हो, वैशम्पायन शिष्य होने पर, प्राप्तणिनिका बाध। कलापी मुनिसे प्रथमप्रकाशित मन्त्रोका अध्ययनकर्ता अर्थमे अण, कलापिन्के टि का लोप। कलापसे अध्ययन अर्थमे हुये छ प्रत्ययका लुक्। इनणि, न अपत्ये=सतान अर्थ न हो, तब इन अण्को प्रकृतिभाव होता है। इन्का लोप कैसे ? तब कहाकि नान्तस्य=नकार अन्तमे हो' टिलोपके प्रसगमे स ब्रह्मचारिण, पीठ, सर्पिन् कलापिन्, कौथुमिन् तैतिलिन् जाजलिन् आदि शब्दोका टिलोप कहे। इस उपसख्या—व्याख्यानसे टिलोप होता है। प्रकृतिभाव नही, वार्तिकप्रभावसे। स्वाभाविक अण् तेन प्रोक्तसे होता ही, पुन अण् पढना अधिकके लिये या बाधकबाधने वास्ते। उसका फल हुआ कि माथुरे प्रोक्ता माथुरी वृत्ति। मोदेन प्रोक्ता मौदा । पिप्पलादेन प्रो० पैप्पलाद । शाकलेन शाकला । पुराणप्रोक्तेषु णिनि को बाधकर अण फल है (८९) **छगलिन्** से उक्त विषयमे ढिनुक् हो णिनको बाधकर। क इत्। उ उच्चारणाय। छगलिना प्रोक्तमधीयते शिष्य ढ—एय। टिलोप। छागलिन्से अध्ययन अर्थक प्रत्ययका लुक्। जस् छागलेयिन

छागलेयिन ।।१४६०। **पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ४।३।११०।।** णिनि स्यात् । पराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षव । शैलालिनो नटा' । ।९१।**कर्मन्दकृशाश्वादिनि ४।३।१११।।** 'भिक्षुनटसूत्रयो' इत्येव । कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षव । कृशाश्विनो नटा । ।९२। **तेनैकदिक् ४।३।११२।।** सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामनी

(१४९०) **पाराशर्य**-वेदव्यास अनन्तरापत्य-पुत्र अर्थमे भी गोत्र-वश परम्पराके व्यवहारसे गर्गादिभ्यो यञ् और शिलालिसे क्रमश भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थके प्रथमप्रकाशित अध्ययन अर्थमे णिनि हो। मण्डूकप्लुते-मेढक उछालन्यायसे णिनि ही आता है। शिलालिन्से वेदव्याससे प्रोक्त, भिक्षु, सूत्र प्रथमप्रकाशित सन्यासी त्यागवृत्ति, इच्छालाभ, विद्यावृद्धिवाला। ब्रह्मज्ञान, सर्वज्ञानसे कर्मका अनादर भिक्षुत्व है। वेदान्तान् विविधान् श्रुत्वा सन्यसेदनृगी द्विज इति मनु । स हि आश्रमै विनिशम्याथ समस्तैरेवमेव तु । द्रष्टव्यस्तु अथ मन्तव्य श्रोतव्यश्च द्विजातिभि इति याज्ञवल्क्य । व्यास प्रणीत, सन्यास, त्यागविषयक भिक्षुसूत्रको पढता है अर्थमे णिनि। उसके बाद अध्ययन अण् का लुक् । जस् विभक्तिका रूप । भिक्षुसूत्रमधीते **शैलालिनः** नटलोग नाटकीय विद्या पढते है। उसके प्रथमप्रकाशक शिलालिन्से णिनि टिलोप पुन शैलालिन्से अध्ययन कर्ता नट अर्थमे अण् उसका लुक् । बहुवचन । (९१) **कर्मन्द** और **कृशाश्वके** (प्रोक्त अर्थमे) तृतीयान्तसे इनि हो भिक्षुसूत्र, नटसूत्रके अध्ययन कर्ता अर्थमे ही। कर्मन्द ऋषिसे पहलीबार प्रकाशित भिक्षुसूत्र, (सन्यासियोके लिये उपयोगी ज्ञान) अर्थमे इनि । अन्ते इकार उच्चरणार्थ । कर्मन्दिन्से उक्त अर्थमे अणादि, उसका लुक् । **कर्मन्दिन** सन्यासिन अज्ञानत्यागकर्तार । कृशाश्वेन प्रथमप्रकाशितमधीयते **कृशाश्विन** इन् । तत- अण लुक् । इनके बनाये हुए नटसूत्रका अध्ययनकर्ता । **सन्यस्य श्रवणमेव कुर्यात्** ।

(९२) **तेन एकदिक्** (सह अर्थमे तृतीया) एकाधिकरणीभूता दिशा यस्य तदेकदिक् अथवा एका समाना दिशा यस्य—एकदिशामे वर्तमान तृतीयान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो। तेनकी अनुवत्ति आती हो, पुन पढना छन्द का अधिकार लौटानेके लिए। सुदामा पहाडका एक भाग आधार है। बिजलीका नाम **सौदामनी**। अन से प्रकृतिभावका फल, टिलोप न

।९३। **तसिश्च** ४।३।११३।। स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । पीलुमूलेन एकदिक् पीलुमूलत । ।९४। **उरसो यच्च** ४।३।११४।। चात्तसि । अणोऽपवाद । उरसा एकदिक् उरस्य —उरस्त । ।१४९५।।**उपज्ञाते** ४।३।११५।। तेन इत्येव । पाणिनिनोपज्ञात पाणिनीयम । ।९६। **कृते ग्रन्थे** ४।३।११६।। वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थ ।९७। **सञ्ज्ञायाम्**४।३।११७।। तेन इत्येव । अग्रन्थार्थमिदम् । मक्षिकाभि कृत माक्षिक मधु ।९८। **कुलालादिभ्यो वुञ्** ४।३।११८।। तेन कृते सञ्ज्ञायाम् । कुलालेन कृत कौलालकम् । वारुडकम् । ।९९।। **क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्** ४।३।११९।। तेन कृते सञ्ज्ञायाम् ।

होना । अणन्तसे ङीप् । **तडित्सौदामिनी विद्युदित्यमर** ।

(९३) **तसिश्च** तृतीयान्तसे एकदिशा अर्थमे तसि हो । एकार उच्चा० । स्वरादिगणके पाठसे अव्ययसञ्ज्ञा । पीलुमूल पहाडके एकदिशा–आधार अर्थ मे तस् । **पीलुमूलत** (९४) **उरस्** के एकदिशा अर्थमे तृतीयान्तसे यन् हो तस् भी, अण् बाधकर । उरसा हृदयके एक कोनेके आधार अर्थमे यत् **उरस्य** । जब तस् तब **उरस्त** । 450-5/1122

(१४९५) **उपज्ञाते**–विना उपदेश ज्ञाते सति, तृतीयान्तसे प्रथमज्ञात अर्थ मे यथायोग्य प्रत्यय हो । पाणिनिके(बिना किसीसे पढे) प्रोक्त सूत्र **पाणिनीय** है, विना उपदेशके ज्ञान हुआ अर्थमे छ-ईय आदि ।(९६) **कृते**=रचा हुआ ग्रन्थ अर्थमे तृतीयान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो । **वररुचिसे** (बनाये ग्रन्थका नाम **वाररुच**) अण् आदि । पाणिनिना कृतो ग्रन्थ **पाणिनीय** । पातञ्जलिना पातञ्जल , नागशेन कृत **नागेशीय** (९७) **सञ्ज्ञाया** तेन=तृतीयान्तसे किया हुआ अर्थमे यथायोग्य प्रत्यय हो । इस सूत्रमे ग्रन्थे नही आता, स्पष्ट कियाकि अग्रन्थार्थवास्ते । मधुमक्खीसे की गयी वस्तु अर्थमे अणादि की सञ्ज्ञा मधु है

(९८) **कुलाल, वरुड–चण्डाल**, निषाद कुम्भकार श्वपाक (कुक्कुर **पाचक**) आदि गणपठे शब्दोसे तृतीयान्तमे कृते=किया हुआ अर्थमे किसीका नाम होने पर वुञ् हो । मिट्टी पात्रनिर्माता (किया हुआ अर्थमे) कुलालसे वु–अक आदि । वरुड कोई जाति है । पासी । उससे किया हुआ मद्यआदि **वारुणकम्** । चण्डालेन कृत **चाण्डालक** नैषादक, कौम्भकारक, **शौवपाक**, किसी वस्तुके नाम है । (९९) **क्षुद्रा** मधुमक्खी भ्रमर वटर पादप इनसे (तेन कृते सञ्ज्ञाया) अर्थमे अञ् हो, अण् बाधकर । क्षुद्रा मधुमक्खीसे वनी वस्तु अर्थमे अञ् आदि

क्षुद्राभि कृत क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ।१५००। **तस्येदम्** ४।३।१२०।। उपगोरिदमौपगवम् । 'वहेस्तुरणिट् च' । सवोढ स्व सावहित्रम् । 'अग्नीध' शरणे रण-भ च' । अग्निमिन्द्धे अग्नीत्, तस्य स्थानमाग्नीध्रम् । तात्स्थ्यात्सोऽप्याग्नीध्र । 'समिधामाधाने षेण्यण् । सामिधेन्यो मन्त्र -सामिधेनी ऋक् । ।१५०१।**रथाद्यत्** ४।३।१२१।। रथ्य चक्रम् ।१५०२। **पत्रपूर्वा-**

क्षौद्र मधु । भ्रमरेण कृत भ्रामर शोथ (मौराके काटनेसे फूला) आदिगणमे पढने से अणादि । वटरेण कृत वाटर चिडिया घोष । पादपेन कृत **पादपम** वृक्षकी छाया ।(१५००) **षष्ठयन्तसे** इद-यह वस्तु अर्थमे अणादि हो । पञ्चमहोत्सर्गा घादयश्च प्रत्यया यथायोग्य स्यु । अन्तरादिके रहते विधान नही होता । उपगु सम्बन्धि वस्तुका नाम **औपगवम्** अणादि । (वा०) **वह धातुसे** तु -तृन् तृच् प्रत्ययान्तसे अण् हो, इट् भी सिद्ध । **वहसे** तृन् तृच् विकल्पसे हो । अनुदात्त एकाच उपदेशेके निषेधसे इट नही हुआ । ढ-ध ष्टु-ढ ढलोप । सहिवहिके अकारको ओकार हो । सपूर्वक वह धातुसे तृच । हको ढ, त ष्टुत्व ध-ढ, ढलोप सम्वोढ, उसके षष्ठी अन्तसे अण इट्, तृमे ऋको र-यण् आदिवृद्धि । (वा०) **अग्निध्र** शरण अर्थमे अग्नीत् षष्ठयन्तशब्दसे उसीके परे भसज्ञा कहे । शरणका अर्थ गृह है । इन्धसे क्विप् अनिदिता नलोप, चर्त्वं, अग्नीत् इति । अग्निमीधे सोमे महादेवे उत्तरार्वे पञ्चारत्नविशेषस्थानसज्ञा । भसज्ञासे जश्त्व नही हुआ । अग्नि प्रकाशित हो-प्रज्वलितका नाम अग्नीत, उसका स्थान घर **शरण**अर्थमे रण (आदेश) हो । भसज्ञाभी । उसका नाम स्थान आग्नीध्र । यथा अग्नि समिध्यते सा समिन् । सपदादि क्विप । तस्या आधान इति विग्रह । तैत्तिरोय शाखामे **एतद्वै यज्ञस्य अपराजित यत् आग्नीध्रम्**-यहाँ आदि उदात्त, स्वार्थमे अञ् होनेसे है । **आग्नीध्र प्रत्याश्रावयेत्** ऋत्विक् अर्थमे अण् कैसे ? अग्निका शरण स्थानमे ही होता है । तब कहा—**तात्स्थ्यात्** अग्नीध्र नामक देशमे स्थित ऋत्विक् अर्थमे भी अग्नीध्र है । (वा०) **समिधा**-कर्ममे षष्ठी आधीयते अनेन आधान मन्त्र अर्थमे षष्ठयन्तसमिधसे षेन्यण् हो । समिध से उक्त प्रत्यय । णित्से आदिवृद्धि । अग्नि धधकानेका मन्त्रअर्थ । षित्त्वसे ङीप् सामिध्येन्य से ङीष । हलस्तद्धितस्यसे यलोप सामिधेनी । (१५०१) **रथसे** सम्बन्धित वस्तु अर्थमे यत् हो । रथका सम्बन्धी चक्र अर्थमे यत्, रथाद्रथाङ्गे प्रमाणसे **रथ्य,** रथका अङ्ग है । रथसीताहलेभ्यो यद्विधौ । तदन्तविधि । परमरथ्यम् । उत्तमरथ्यम् । द्वयो रथयोरङ्ग द्विरथम । (१५०२) **पत्र पूर्वमे** हो,

दञ् ४।३।१२२।। पत्र वाहनम्, अश्वरथस्येदमाश्वरथम् ।१५०३। **पत्राध्वर्युपरिषदश्च** ४।३।१२३।। अञ् । 'पत्राद्वाह्ये' अश्वस्येद वहनीयमाश्वम आध्वर्यवम् । पारिषदम् ।।१५०४। **हलसीराट्ठक्** ४।३।१२४।। हालिका । सैरिकम । ।१५०५। **द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयो** ४।३।१२५।। काकोलूकिका । कुत्सकुशिकिका । वैरे-देवासुरादिभ्य प्रतिषेध' दैवासुरन् । ।१५०६। **गोत्रचरणाद् वुञ्** ४।३।१२६।। औपगवकम् । 'चरणाद्धर्माम्ना-

---

तत्र रथसे अञ् हो। पत्र वाहनपक्षयो के प्रमाणमे सवारी अर्थमे पत्र है। पतन्त्यनेन पात्र ष्ट्रन् । अश्वरथ सम्बन्धी वस्तु अर्थमे अञ् आदि आश्वरथ वाहनम । अश्व पूर्वमे है । अश्वयुक्तो रथो अश्वरथ तस्य अङ्गम् । (१५०३) पत्र अध्वर्यु, परिषद इनसे इदम् अर्थमे अञ् हो, पत्रसे वाह्य अर्थमे ही हो। अश्व सम्बन्धी ढोनेयोग्य वस्तुका नाम आश्वम् । अश्वमे अञ्आदि, पत्र नही, उसका अर्थ इष्ट है । अध्वर्युकी चीज । परिषद इद कार्यं पारिषदम् अञ आदि । अध्वर्युसे अण आदि, उको ओर्गुण अवादेश । (१५०४) हल, सीर से इदम् अर्थ मे ठक् हो । हलस्य इद (फार हर्षि लाङ्गल दण्ड) अर्थमे ठ—इक आदि । हालिक='सिरस्य इद सैरिकम् खेतका डांडा मेड, ठ—इक आदि ।

(१५०५) द्वन्द्व समासके षष्ठी अन्तसे वुन् हो, वैर (शत्रु) मैथुनिका (पति पत्नी सम्बन्ध) अर्थ निश्चित होने पर । काकाश्च ऊलूकाश्च समाहार काकोलूक, तस्य वैर, कौवा ऊल्लूके बीच बैर बोधक वु—अक टाप् (प्रत्ययस्थ होने से) इत्व आदि, लोकसे स्त्री० । वैरमैथुनिकादिषु स्त्री-अधिकारे इत्यमर । कुत्सकुशिकयो मैथुनिका—विवाह । मिथुन दम्पती, पतिपत्नी उनका कर्म प्रसङ्ग क्रिया । मनोरादि वुञ्, लोक प्रसिद्धिसे स्त्री० । अत्रि भरद्वाजसे वु—अक टाप्, इत्व आदि । (वा) वैर शत्रु अर्थम देव असुरसे वुञ्का निषेध कहे । देवासुरयोर्वैर, दवता राक्षसकी शत्रुता अर्थमे वुन्का निषेध । किन्तु अण् । मैथुनिका प्रसङ्ग अर्थमे देवासुरिका होता ही हैं । द्वन्द्वे देवासुरेनि अपपाठ । भाष्यमे वैरका ही पाठ है। दैवासुर राक्षसोऽसुरमविकृत्य कृतम् आख्यानेऽर्थेऽण्

(१५०६) गोत्रप्रत्यय अन्तमे हो, और वेद शाखा अध्ययन कर्ता वाचक शब्द-षष्ठी—अन्त हो, उससे इदम् अर्थमे वुञ । प्रवर=वंशावली अध्यायने प्रसिद्ध गोत्र मान्य । यथा उपगोर्गोत्रापत्ये अर्थे अण् -आदिसे औपगव । तस्य इद (उसकी वस्तुकर्म अर्थमे) वु-अक । वस्तुत यह प्रवर सूत्रोंमे नही देखा गया

ययोरिति वक्तव्यम्'। काठकम्। ।१५०७। **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** ४।३।१२७।। घोषग्रहणमपि कर्तव्यम्'। अञ वैद। सङ्घोऽङ्को घशो वा। वैद लक्षणम्। यञ्-गार्ग, गार्गम्। इञ्—दाक्ष-दाक्षम्। परम्परासम्बन्धोऽङ्कः, साक्षात्तु लक्षणम्। ।१५०८। **शाकल द्वा** ४।३।१३८।। अण्वोक्तेऽर्थे। पक्षे चरणाद्वुञ्। शाकलेन प्रोक्तमधीयते शाकला, तेषा सङ्घोऽङ्को घोषो वा।

है, वृत्तिग्रन्थमे ग्लौचुकायनक पढा है। (वा) चरणसे वुञ् हो, विज्ञान—धर्म गुण विशेषता योग्यता और सम्प्रदाय, वेदाभ्यास, शास्त्र अर्थमे। अन्यमे नही। कठमुनिसे प्रोक्त—प्रथमप्रकाशित शाखाको पढने वाले कठा, तेषा धर्म आम्नायो वा, कठके धर्म कर्म वेदाभ्यास सम्प्रदाय ही **काठकम्**। कठसे वु—अक आदि। (१५०७) सङ्घ—अङ्क लक्षण अर्थमे यञ् अञ्। इञ् अन्त शब्दसे इद, यह वस्तु अर्थकी इच्छामे अण् हो, वुञ्, ढ-को बाधकर। सूत्रमे (वा) घोष भी सङ्घाङ्कलक्षण घोषेषु ऐसा सूत्र पढें। अन्यथा तीन प्रकृति है चार प्रत्यय। गणनाक्रम असम्भव। अञ्—विदस्य गोत्रापत्यानि अर्थमे अञ्। वैदाः तेषाम् अय सङ्घ एकता अणादि। विद=ऋषिके वशका सङ्घठन या अङ्क चिह्न लक्षण परिचयका निशान दाग। सङ्घ (समुदाय) अङ्क—कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च, चिह्न लक्ष्म च लक्षणमित्यमर। घोष आभीरपल्ली स्यादित्यमर। विदाना लक्षण वैदम्, अञादि। यञ्का प्रमाण—गर्ग्याणा सङ्घः समुदाय, छाप, लक्षण आदि अर्थमें अण्, आपत्यस्य यलोप आदि गार्ग। गर्गगोत्रवालोका गाव। यदि लक्षण हो तब **गार्गम्**। दक्षस्य वशा. दाक्षा, तेषा समुदाय, लक्षण निवास, दक्षवशका परिचय, समूह आदि अर्थमे अण्, इलोपे, दाक्ष। जब लक्षण हो तब दाक्षम्। अङ्क और लक्षणका समान अर्थ है। दोनो क्यो पढा? भेद बोले—परम्परासे पहचान होना अङ्क हैं। जैसे साडको तप्तमुद्रा त्रिशूलसे दागा हुआ उसका गोद्वारा स्वामीका परिचय। जहा साक्षात्=सीधा सम्बन्ध हो वह लक्षण है। जैसे विद्या देवदत्तमे साक्षात् विराजमान लक्षण है। जैसे विदाना विद्या, वैदी विद्या यस्य वैदीविद्य। विद वशकी अपूर्व विद्या जानने वाला यह साक्षात् लक्षण।

(१५०८) शाकलशब्दसे अण हो विकल्पसे उक्ते=समुदाय चिह्न घोष अर्थमे, पक्षमे वुञ् हो, धर्म वेदाभ्यास अर्थके वुञ् का बाधक है। शाकल मुनिसे प्रथमप्रकाशितमन्त्रको पढने वाले शाकला। उसका समुदाय चिह्न घोष अर्थमे अणादि शाकल। शाकलके ग्रन्थ पढ़ने वालोका समुदाय या आश्रम।

शाकल-शाकलक । लक्षणे क्लीबता । ।१५०९।**छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृच्नटाञ्ञ्यः** ४।३।१२९।। छन्दोगाना धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम् । **औक्थिक्यम्** । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम् । नाट्यम् । 'चरणाद्धर्माम्नाययो' इत्युक्तम् । तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि तयोरेव ।१५१०। **न दण्डमाणवान्तेवासिषु** ४।३।१३०।। दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवा तेषु शिष्येषु च वुञ्न स्यात् । दाक्षा दण्डमाणवा शिष्या वा ।११। **रैवतिकादिभ्यश्छः** ४।३।१३१।। तस्येदमित्यर्थे । वुञोऽपवाद । रैवतिकीयम् । बैजवापीयम् ।।१२। **कौपिञ्जलहास्तिपदादण्** ४।३।१३२।। कुपिञ्जलस्यापत्यम् । इहैव निपा-

---

पक्षमे वु—अक शाकलक । यदि उन शिष्योका लक्षण कहे, तत्र नपुसक ।

(१५०९) छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, वह्वृच्, नट, इनसे धर्म सम्प्रदाय वेदाभ्यास अर्थमे इदकी इच्छामे ञ्य हो । सङ्घादि रुक गये, धर्म आम्नाय आ गये । छन्द—मन्त्र गाने वालोका धर्म अभ्यास सम्प्रदायका नाम छान्दोग्य= =छन्दोगसे ञ्य आदि । उक्थिकाना—स्तुतिकर्तृणा धर्म सम्प्रदाय औक्थिक्य, याज्ञिकाना शास्त्र सम्प्रदाय याज्ञिक्य, बहुत ऋचा मन्त्र का धर्म- -अभ्यास । नटाना धर्म सम्प्रदाय नाट्य , सबमे ञ्य । चरणसे (धर्म और आम्नाय अर्थ) वुञ् कहा गया । नट चरण वेदशाखा नही, तब धर्म आदि अर्थसे सम्बन्ध कैसे ? तत्साहचर्यात्—छन्दोग आदिके साथ पढ़े जानेसे नटसे भी धर्मादि अर्थ में ही प्रत्यय होगा ।

(१५१०) दण्डमाणवा सन्यासी और अन्तेवासी—छात्रसे गोत्रलक्षण वुञ् नही होता, किन्तु तस्येद, दण्डधारी बालक और शिष्य मान्य । जैसे दक्षस्य अपत्य दाक्षि , तस्य इमे दण्डमाणवा , शिष्य, यती या छात्र अर्थमें वुञका निषेध । अण्, इलोप आदि । (११) रैवतिक, ओदमेयि, बीजवापि, गोत्रप्रत्यय अन्त हो उनसे गोत्रके वुञ्को बाधकर ठक् । रेवत्या अपत्य रैवतिक ठ—इक, तस्य इद—रेवतीके खानदानकी वस्तु अर्थमे छ—ईय । बीजवापस्य वश बैज- वापि , तस्य इद बीज बोने वालेकी वस्तु छ आदि । (१२) कौपिञ्जल और हास्तिपदसे अण् हो । कुपिञ्जलका वशज अर्थमे इञ् को बाधकर वार्तिकमे पढे प्रमाणसे अणादि कौपिञ्जल । अणन्तसे पुन अण् इदसे सम्बन्धित अर्थ में । गोत्र वुञ् को बाधकर । हस्तिन इव पदौ यस्य पीलपांव (हाथी पैर) हो । पादका लोप नही, अहस्ति आदि सूत्रके निषेधसे । हस्तिपादकी सन्तान

तनाद्रण। तदन्तात्पुनरण। कौपिञ्जल । गोत्रवुञोऽपवाद । हस्तिपादस्यापत्य हास्तिपद तस्याय हास्तिपद । ।१३। आथर्वणिकस्येकलोपश्च ४।३।१३३।। अण्स्यान । आथर्वणिकस्यायमाथर्वणो धम आम्नायो वा । चरणाद् वुञोऽपवाद ।

इति तद्धिते शैषिकप्रकरणम् ।

अथप्राग्दीव्यतीयप्रकरणम् ।।३०।।

।१४। तस्य विकार ४।३।१३४।। 'अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्य ।

अथमे अत इञ बाधकर अण् निपातनसे, पद्भाव भी। हास्तिपदस्य अयम् अर्थे अण् हाथीपैरके वशसे सम्बन्धित स्तूप। गोत्र चरण -वुञ् बाधकर।

(१३)यहसूत्र है इति कैयट', अन्ये वार्तिकम, आथर्वणिकसे तस्य इदम अर्थे अण्। प्रकृतिके इ का लोप। यथा अथर्वण प्रोक्तो वेदो अथर्वा, आचारसे ठ इदम अर्थमे। अभेदसम्बन्ध। उसको पढे समझे। वसन्तादि ठक् इक आथर्वणिकस्य अयम आथर्वणिक उनका धर्म वेदाभ्यास शास्त्र अर्थमे अणादि। ऐसा क्यो ? चरणसे वुञ् बाधनेके लिए।

इति प्राम.करीटीकाया परिपूर्णा शैषिका

अथप्राग्दीव्यतीया ।

(१४) तस्य–षष्ठ्यन्तसे अण आदि प्रत्यय विकार अथमे हो। विक्रियते रूपान्तर प्राप्यते जैसे घास भूसासे गायके द्वारा दूध--दही-घी आदि बनते है। लोहाका भस्म, सोना आभूषण आदि विकार। प्रकृतेरवस्थान्तरात्मिका विक्रियां प्राप्त –रूप बदलना। साधारण और विशेषप्रत्यय यथायोग्य हो। (वा०) अश्मन =अश्मन् शब्दसे विकार–परिणाम अर्थक प्रत्ययपरे टिलोप कह। अश्मन् मे मनिन्प्रत्यय, मृदसे तिकन मृत्तिका नित्स्वर, आदि—उदात्ता। अश्यते इति अश्मा पाषाँण लोहा जिसे सोना मुर्चा खाता हैं उस लोहे का विकार अथमे अण् परे वार्तिकसे टि (अन्) का लोप, आदिवृद्धि। सीमेन्ट स्टील। भस्मनो विकारो भास्म वटी टिकिया। भस्मन्से अणादि (अनच् प्रकृतिभाव को बाधकर) मृत्तिकाया विकार मार्तिक' मिट्टीकी बनी वस्तु। पृथ्वीके सभी विकार, वस्तु। मृत्तिकासे अणादि। हलस्य विकार हाल:, सिरस्य सैर.। चर्मणो विकार चार्म चर्मण क्रोशेसे टिलोप। प्राणिरजतादिभ्योऽञ्, ओरञ्

मश्मनो विकार आश्म । भास्मन । मार्त्तिक । ।१५१५। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य.** ४।३।१३५।चाद्विकारे । मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूर मौर्व काण्ड भस्म वा । पैप्पल । ।१६। **विल्वादिभ्योऽण्** ४।३।१३६।। बैल्वम् । ।१७। **कोपधाच्च** ४।३।१३७।। अण् । अञोऽपवाद । तर्कु, तार्कवम । तैत्तिडीकम् । ।१८। **त्रपुजतुनोः षुक** ४।३।१३८।। आभ्यामण् स्याद्विकारे, एतयो षुगागमश्च । त्रापुषम । जातुषम् । ।१९। **ओरञ्** ४।३।

इत्यादि अपवाद विषयको छोडकर ।

(१५१५) **अवयव** और **विकार** अर्थमे प्राणिचेतन, औषधि—दवा—वृक्ष वनस्पति आदिके षष्ठचन्तसे अणादि (जो कहे गये, कहे जायगे) उनसे अण् हो, अन्यसे केवल विकार अर्थमे । प्राणिका उदाहरण—मायूर । मयूरका अङ्ग चोच पख वीट विकार अर्थमे अण् आदिवृद्धि । लघावन्तेसे मध्य उदात्त । प्राणि॰ अजातादिभ्य'से आदि, अञ्, मूर्वा । (औषधिका नाम) मूगा । तस्या अवयव' विकारो वा अङ्गस्य परिणामी । कण्डा सूखागोबर, गोमयका भस्म। मुर्वासे, कण्डासे भी अणादि काण्डम । वृक्षका उदाहरण पीप्पलस्य अवयव विकारो वा अणादि **पैप्पल** पीपरिका चूर्ण, लघावन्तेसे मध्य उदात्त । अनुदात्तादेश्चमे प्राप्त अञ् को बाधकर अण् । (१६) **बिल्व** ब्रीहि काण्ड मुद्ग मसूर गोधूम इक्षु कर्पासी वेणु आदिगण पढे प्राणि औषधि, वृक्षसे अवयव विकार अथमे और दूसरोसे केवल विकारमे अण् हो । विल्वस्य अवयव' बेलकी डाली पत्ती भस्म, बनी वस्तु, मुरब्बाअर्थमे अणादि **बैल्वम्** । व्रीहे विकार –जौकी मदिरा सत्तु आटा रोटी, **ब्रैहम्** । मुद्गाया विकार **मौद्ग** । मूगकी दाल । **मासूर**. गोधूमस्य विकार **गौधूम** । **ऐक्षव वैणव** । (१७)**कोपधाच्च**—क उपधा (अन्त्य अल्का पूर्व वर्ण) हो ऐसे शब्दसे अञको बाधकर मयट् भी । तर्कु—टिकुरी या तारकोलका अवयव या विकार अर्थमे अण्, आदिवृद्धि । उ को ओ गुण अवादेश । ओरञ्को बाधकर । तित्तिडीकस्य विकार' इमली या खट्टी वस्तु वाचक से भी अणादि । (१८) **त्रपु और जतुसे** अण् हो, विकार अर्थमे । और षुक्-ष भी । त्रपुणो विकार जातुषम् । किसी वृक्षका परिणाम या उससे बनी वस्तु अर्थमे अण् और षुक् ष भी हुआ आदिवृद्धि ।

(१९) **ओरञ्** उवर्णान्तसे अञ् हो, प्राणि ओषधि वृक्षसे अवयव और विकार अर्थमे । अन्यसे केवल विकारमे । देवदारो भद्रदारो. अवयव विकारो

१३९॥ दैवदारवम् । भाद्रदारवम् । ।१५२०। **अनुदात्तादेश्च** ।४।३।१४०॥ दाधित्थम् । कापित्थम ।२१। **पलाशादिभ्यो वा** ४।३।१४१॥ पालाशम् । खादिरम् । कारीरम् ।२२। **शम्याःष्लञ्** ४।३।१४२॥ शामील भस्म विस्वान्तोष् शामीली स्रुक् ।२३। **मयड्वैतयोर्भाषायामभ-**

वा अर्थे उवर्णान्त देवदारुसे अञ् आदि । ओर्गुण अवादेश, सरला—सागौन लकडी टुकडा या बनी वस्तु । भद्रदारु शीशम लकडी या पल्ला आदिवृद्धि (पीतव्रतार्थनाम) आदि उदात्त ।

(१५२०) **अनुदात्त** आदिमे हो तब विकार अर्थमे अञ्, अवयवमे भी । दध्नि तिष्ठति दधित्थ । पृषोदरादिसे सको त, अन्तोदात्त । दहीमे नवनीत । दधित्थस्य विकारो वा मक्खन अशका अवयव, विकार घी भी, अर्थमे अणादि **दाधित्थम्**=मट्ठा । कपित्थेषु तिष्ठति कपित्थ कमोरी मन्थनपात्रमे रहे । क्योकि **कपित्थे तु दधित्थग्राह्यमन्यथा** । नवनीत निकालनेके लिए मन्थन विषय उसका विकार **कापित्थम्** । या बन्दरोमे स्थित । अव्युत्पन्न । प्रातिपदिकस्वर, अन्त उदात्तसे आदि उदात्त सिद्ध ।(२१) **पलाशादिगणमे** पढे शब्दों से अञ् हो विकार अवयव अर्थमे विकल्पसे । अनुदात्त आदि होनेपर पलाश खदिर— शिंशपा—स्य दनानामनुदात्तादिसे नित्य प्राप्त और करीर करौदा शिरीष विकङ्कत पलाश, यवासका प्राप्त नही । अत यह सूत्र । पलाशको घृतादिसे अन्तोदात्त । खदिर=खदसे किरच्, शिंशपा मध्योदात्त । स्पदि किंचिच्चलने । अनुदात्तसे युच् पलाशस्य विकार अवयवो वा ढाक—टुकडा या बनी वस्तुका नाम । **अञ् आदि पालाशम्** । खदिरस्य विकार अवयवो (वा०) कत्था का टुकडा आदि । **कारीरम्** करौंदासे बनी चटनी, कृ तृसे ईरन् या किरतेः ईरन् । नित्स्वरसे आदि उदात्त । शॄ पॄ इनसे भी आदि उदात्त । किन् भी । शिरीष आदि—उदात्त. । पलाशम आदि ग्रामादीनासे आदि उदात्त ।

(२२) **शमीशब्द** षष्ठयन्त हो, अश और विकार अर्थमे ष्लञ् । ल शेष । शम्या' विकार **शामील** शमी लकडीका भस्म स्रुवा प्रणीता प्रोक्षणी । जब भस्म तब आदिवृद्धि होकर शामील, जब स्रुवा अर्थ, षित्से डीष् **शामीली** शमीकी बनी हुई । वरुण प्रघासेषु शमी मद्रय स्रुव प्रसिद्धा । अवयव अर्थसे शाखा । (२३) **मयट्** हो विकल्पसे, एतयो=विकार अवयव अर्थमे । अभक्ष्य खानेकी वस्तु न हो, और ढकनेकी वस्तु ऐसा अर्थ खुलने पर । अधिकारसे भी

क्ष्याच्छादनयो' ४।३।१ ४३।। प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्याद्विकारावयवयो। अश्ममयम्—आश्मनम्। 'अभक्ष्य–' इत्यादि किं ? मौद्ग सूप कार्पासमाच्छादनम्।।२४। नित्य वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४।। आम्रमयम्। शरमयम्

मयट् होता है तथापि जो कहे गये, कहे जायगे उनके विषयमेभी पक्षमे मयटके लिये। यथा बिल्वस्य विकार बिल्वमय मयट हुआ। बैल्वम् अण् भी। अत बोले प्रकृतिमात्रात्-जितनी प्रकृति है सबसे मयट हो, विकारावयवमे भाषाया व्यवहारमे। भाषा क्योपढा ? खादिरो यूप खैरका खम्भा। लोकमे नही होता केवल वैदिक है, मयट न हो। वेदमे बहु अच्से परे, मयट अन्य अर्थभी कहते है। अश्मनो विकार लोहा या पत्थरका विकार छड या सीमेट अर्थमे मयट अश्ममयम्। भीतरी विभक्ति मानकर पदसज्ञा, नलोप या विनाऽपि प्रत्यय पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्य वचनसे नान्त भी रहता। अत आश्मननान्त रहा। अणादि। यह अश्मक क्या है? कुल्माषाड्घ्नाय कश्चित् राजा तत्पत्न्या मदन्त्या वशिष्ठेन उत्पादित' सुत अश्मक। कके अभावमे अश्मन नाम है। उसके अवयव विकारमे भी यही आश्मन' होता हैं। अभक्ष्य आदि क्यो पढा ? मौद्ग मुद्गाया विकारः मूंगकी दाल भक्ष है। अण् हो। न मयट्। कर्पासस्य विकार रुईकी बनी हुई वस्तु कपडा रजाई गद्दा आच्छादन–शरीरका ढक्कन है अण् हो, न मयट्। अत पढा (कृञ्से--पास प्रत्यय गुणादि) कार्पासी जाति अर्थमे ङीष्। अनुदात्तादिके इञ्को बाधकर बिल्वादि अण्।

(२४) नित्य वृद्ध=जिसको वृद्धसज्ञा हुई हो और शरादि=शर दर्भ मृत कटि तृण सोम बल्वज इनसे नित्य मयट हो विकार अवयव अर्थमे, अभक्ष्य और आच्छादन अर्थमे। आम्रस्य विकार आम्रमयम् आमका अँचार आमवट चटनी अर्थमे मयट। शराणा विकार शरमयम् झोपडी। आच्छादन दर्भमय कुशासन मृन्मय, हाडी पुरवा। तृणमय सोममय आदि। यदि विकारमे मयट् मानेगे तब आनन्दमयाधिकरणमे शकराचार्यने अन्योऽन्यतर आत्मानन्दमय इस श्रुतिमे विकारमे मयट कर आनन्दमय कहा, वह न भक्ष है न आच्छादन है तब विकार है नही, मयट कैसे ? प्राचुर्ये मयट् कहते तो ठीक था। तथापि अधिकतामे मयट् करने पर भी स्वभावका विरोधी दु खका कण भी विकारके अर्थमे मान्य। यह उनका भाव है। अथवा नित्य वृद्धसूत्रमे भाषा नही आता। आये भी तो भाषायां नित्यम् अन्यत्र क्वाचित्क. मानकर मयट

'एकाचो नित्यम्' त्वङमयम् । वाङमयम् । कथं तर्हि 'आप्यम् अम्मयमिति 'तस्येद' इत्यणन्तात्स्वार्थे ष्यञ् । १५२५ । **गोश्च पुरीषे ४।३।१४५॥** गो पुरीष गोमयम् । ।२६। **पिष्टाच्च ४।३।१४६॥** मयट् स्याद्विकारे । पिष्टमयम् भस्म । कथं पैष्टी सुरेति । सामान्यविवक्षाया 'तस्येदमित्यण् । ।२७। **सञ्ज्ञाया कन् ४।३।१४७॥** 'पिष्टात्' इत्येव पिष्टस्य विकारविशेष । पिष्टक । 'पूपोऽपूप पिष्टक स्यात्' ।२८। **व्रीहे· पुरोडाशे ४।३।**

सुसाध । अथवा आगते अर्थे मयट, विकार भावार्थक है। भगवान शङ्करका भाव निर्दुष्ट । (वा०) **एकअच्**से नित्य मयट् हो विकार अर्थमे । मयट आरम्भ शक्तिसे होता किन्तु योगविभागसे अन्यत्र भी विधानके लिये पढा। मृत शब्द एकअच् है शरादिसेभी सिद्ध है अत वार्तिक भी प्रमाण। त्वच विकार **त्वङ्मय** चमडेका विकार उपानत् अटैची चमडेकी पादुका, बनी वस्तु अर्थमे मयट। वाच विकार **वाङ्मयम्** सभी शास्त्र, ज्ञानग्रन्थ, उपदेश वाणीके विकार है। वाचसे मयट यरोऽनुनासिकेसे च को परसवर्णी अनुनासिक ङ् । **कथं तर्हि**=यदि ऐसा आप्यम् अम्मय कैसे बनेगा। **अपामिदम् आपसर** जलका जमाव, तस्येदसे अण् होनेपर स्वार्थमे ञ्=य **आप्य** सरोवर । आपसे मयट। प को परसवर्ण अनुनासिक म अम्मयम ।

(१५२५) गोश्च (नित्य मयट् आया) गो शब्दसे पुरीष सम्बन्धित विकार अर्थमे मयट । गायके पुरीष गोबर गोमय हो। यह पुरीष न विकार है, न अवयव है तव तस्येदम् अर्थमे प्रत्यय मान्य। गो इद **गोमयम्** विकार अवयव अर्थमे गोपयसो यत् होगा। पुरीष न कहते, गव्य पय मे मयट् होता।

(२६) **पिष्टात्**=पिसा हुआ पाउडर अर्थमे मयट। च से विकार अथमे भी पिष्टमिद **पिष्टमयम्**। घोटा हुआ। भस्म या पिसे हुएसे बनी वस्तु। हलुआ पकौडी आदि। यदि ऐसा पैष्टी सुरा कैसे ? क्योकि पिसे हुएसे बनी मदिरा अर्थ है, मयट क्यो नही ? तब कहाकि **सामान्य सम्बन्धकी** इच्छामे तस्येदसे अण् करके बनी पैष्टी साधु है। (२७) **सञ्ज्ञाया** (किसीका नाम हो तब) पिष्टात्=पिसी हुई वस्तुसे बना विकार विशेष अर्थ मे कन् हो। पिष्टस्य पिसी हुई वस्तु का विकार **पिष्टक** । (मालपूआ या पिस्ता) कन् हुआ। पूप और अपूप दोनो का नाम पिष्टक है। **पुरोडाश पिष्टक** नही होगा, अपूप न होनेसे। **अतुङ्ग मन पूपाकृतिमश्वशफमात्र पुरोडाश करोति इति श्रुते** ।

(२८) **व्रीहि** से पुरोडाश=देवताओ को देय वस्तु ऐसे विकारमे नित्य

१४८॥ मयट् स्यात् । बिल्वाद्यणोऽपवाद । व्रीहिमय पुरोडाश । व्रैहमन्यत्
।२९। असञ्ज्ञाया तिलयवाभ्याम् ४।३।३९॥ तिलमयम् । यवमयम् ।
सञ्ज्ञाया तु तैलम् । यावक । ।१५३०। तालादिभ्योऽण ४।३।१५२॥
अञ्मयटोरपवाद । 'तालाद्धनुषि' ताल धनु । अन्यत्तालमयम् । ऐन्द्रायुधम् ।
।३१। जातरूपेभ्य परिमाणे ४।३।१५३॥ ।४२। अण् । बहुवचनात्पर्याय
ग्रहणम् । हाटक तापनीय सौवर्णो वा निष्क । परिमाणे किं ? हाटकमयी

मयट् हो । विल्वादि गणके अण्को बाधकर । यथा ब्रीहिमय धानकी बनी हवन की वस्तु । यदि ऐसा विल्वादिमे क्यो पढा ? तब कहा कि अन्यत्-अन्य अर्थ हो, तब अण् आदिवृद्धि ब्रैह बननेके लिये । (२९) असञ्ज्ञाया-किसीका नाम न हो, तब तिल, यवसे नित्य मयट् कहे । यव शब्दसे विकार अथमे अण् तिलस्य आधिक्य या विकार तिलमयम्, यवस्य विकार यवमयम, किसीका नाम हो सकता है । अत मयट् । सज्ञा होने पर विकार अथमे अण । यवादिभ्य से कन् स्वार्थे=स्व प्रकृति तस्य अर्थ स्वार्थ तस्मिन्स्वार्थे यावक । तिलस्य विकार तैल, ये सब नाम है ।

(१५३०) तालादि गणमे पढे शब्दोसे अञ् हो, अण् और मयटको बाधकर ताल और श्यामाक को वृद्धसज्ञा मानकर मयट प्राप्त, प्राणिरजतादिभ्यो अञ् प्राप्त । बर्हिणा विकार बार्हिणम् । अण् हुआ । (ग०) तालशब्दसे धनुष अर्थमे अण् हो । तालस्य विकार अर्थमे तालम् अण्, ताडका बना धनुष, अन्य अर्थ हो तब मयट, तालमयम् । इन्द्रायुधस्य विकार मयट्को बाधकर अण । ऐन्द्रायुधम् आकाशमे इन्द्रधनुष । समासस्वरसे अन्तोदात्त । इन्द्रादृश । चप सान्त्वने । पचादि—अच् चाप' पियुक्षा' मध्योदात्त । (३१) जातरूप । सुवर्ण वाचक शब्दसे अण् हो, परिणाम माला, विकार-बनी वस्तु, जान पडे तब, जातरूप शब्दसे अण् क्यो न हो, तब कहा बहुवचनात्=बहुवचन भ्यस् पढनेसे पर्याय=वाचकशब्द स्वीकृत । (जातरूप शब्द नही) सोना अर्थमे हाटकस्य विकार हाटक, तपनीयस्य परिमाण तापनीय, सुवर्णस्य विकार सौवर्ण । सोना वाचक तीनोसे अण् । जिनका विकार निष्क हसुली, हार (सोनेका बना) अर्थमे अणादि । तापनीय मे नित्य वृद्धशरादिभ्य से मयट् । माषा अन्यने अनुदात्तादेश्चसे अञ् प्राप्त । गुञ्जा पञ्चाद्यमाषक, पाच घुघुचीका एक, ते षोडशाक्षः वे सोलह मिलकर अक्ष । वही सुवर्ण परिमाण है । सोलह माषा (सुवर्णबिस्तो हेम्नोऽक्षे सुमना) का अक्ष सोलह माषा परिमाण है कण्ठहार

यष्टि । (३२] **प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ४।३।१५४॥** शौकम् । बाकम् । राजतम् । ३३॥ **ञितश्च तत्प्रत्ययात् ४।३।१५५॥** ञितो विकारावयव-प्रत्यय तदन्तादञ्स्यात्तयोरेवार्थयो । मयटोऽपवाद शामीलस्य शामीलम् । दाधित्थस्य दाधित्थम् । कापित्थम् । ञित किं ? बैल्वमयम् ।३४। **क्रीतवत्परिमाणात् ४।३।१५६॥** 'प्राग्वहतेष्ठक्' इत्यारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्यया येनोपाधिना परिमाणाद्विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदिश्यन्ते । अणादीनामपवाद । निष्केण क्रीत नैष्किकम् । एव निष्कस्य विकारोऽपि नैष्किक । शतस्य

विकार है । परिमाण क्यो पढ़ा ? हाटकस्य विकार: हाटकमयी छडी सुवर्ण जटित है । उसमे कोई मात्रा नही, अण् न हो ।

(३२) **प्राणि**=जीवात्मा हो और रजत शीशा लोह उदुम्बर कण्टकार, आदि गणपढे शब्दोसे अञ् हो, अनुदात्तादिके अञ् को बाधने वास्ते । शुकस्य अवयव विकारो वा **शौकम्**। तोताका अङ्ग, पख रक्त, आदि । प्राणिना कुपूर्वाणासे अञ् प्राप्त नही था । प्राणि होनेसे अणादि । बकस्य विकार **बाकम्** । बगुलेका परिणाम । रजतस्य विकार अणादि । **राजतम्** पात्र चादीकी बनी वस्तु । लोहस्य विकार **लौहम्** औदुम्बर, काण्टकार, गणमे अनुदात्तका पढना मयट् बाधनार्थ । (३३) **ञितश्च** तयो विकारावयवो प्रत्यय तस्मात् । ञ्य—इत् हो, ऐसा विकार और अवयव अर्थमे प्रत्यय, **तदन्तात्**--वह प्रत्यय अन्तमे हो, उससे अञ् ही । दोनो अर्थोमे हो, मयट् बाधकर । शम्या विकार अवयवो वा **शामीलम्** ष्लञ् । शमी लकडीकी बनी वस्तु या टुकडा उसका विकार अर्थमे (मयट बाधकर) अञ् शामीलम् । नित्य वृद्धसे मयट प्राप्त था । दध्नि तिष्ठति दधित्थ नवनीत, तस्य विकार अर्थमे (अनुदात्तादेश्चके अञ्कोबाधकर) अञ् । **दाधित्थ** नवनीत—निर्मित वस्तु एव कपित्थस्य विकार कापित्थम । ञ इत् क्यो कहा ? **बिल्वमयम्** मे मयट् बाधित न हो । बिल्वस्य विकार बैल्व बिल्वादिभ्यो अण् तस्य विकार । बेलका मुरब्बा शर्बत अर्थमे मयट ही हो, न अञ् । भाष्यमे **विकारावयवप्रत्यान्तात्पुन तत्प्रत्यो न अनभिधानात्** इद सूत्र त्याज्यम् (३४) **क्रीतवत्**=प्राग्वहतेष्ठक् से लेकर क्रीतार्थे=खरीदने अर्थमे जो प्रत्यय, जिग (उपाधिना) प्रकृतिके उद्देश्यसे परिमाण अथमे विधान किये गये हैं वे प्रत्यय **तथैव**=उसीप्रकार उसी उद्देश्यसे विकार अर्थमे भी **अतिदिश्यन्ते**=आरोपित हो । अणादिको वाधकर । जैसे निष्क-हार-सोनासे खरीदी वस्तु, खेत भवन अर्थमे । तेन क्रीतसे ठक इक आदि । **नैष्किकम्** । तथैव निष्क

विकार शत्य, शतिक ।१५३५। उष्ट्राद्वुञ् ४।३।१५७।। प्राण्यञोऽपवाद । औष्ट्रक ।।३६। उमोर्णयोर्वा ४।३।१५८।। औमकम्—औमम् । और्णकम् और्णम् । वुञभावे । यथाक्रममणञौ ।३७। एण्या ढञ् ४।३।१५९।। ऐणेयम् । एणस्य तु ऐणम ।।३८। गोपयसोर्यत् ।४३।१६०।। गव्यम् । पयस्यम् ।।३९। द्रोश्च ४।३।१६१।। द्रुर्वृक्ष, तस्य विकारोऽवयवो

के विकार बनीवस्तु अर्थमे भी ठ आदि हो। नैष्किक । यथा शतेन क्रीत सौ का विकार, मिलकर वनी वस्तु शतिक । शताच्च ठन्, यत् भी विकार अर्थमे हुए। यत शत्य । ठन् शतिक । पणिन कृत पणिक, क्षेत्रस्य विकार क्षेत्रिक ।

(१५३५) उष्ट्रसे वुञ् हो प्राणि अजातादिभ्य के अञ्को बाधकर। ऊटके विकार दूध मूत्र चर्म आदि अर्थमे वु-अक आदि । औष्ट्रक धर्म ।

(३६) उमा और ऊर्णासे विकल्प वुञ् हो। पक्षमे अण् भी। उमा, घास तीसी पौधाका विशेष नाम (उमा स्यादतसी क्षुमा इत्यमर) तस्या विकार-अवयवो वा। तीसीसे बनी वस्तु अर्थमे वु—अक आदि। औमक, पक्षमे तस्य विकार से अण् औमम् । अनुदात्तादेश्चसे अञ् नही, तृणधान्याना च के आदि उदात्तसे। ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादित्यमर । भेडका रोम उर्णा है जो फिट् स्वरसे अन्त उदात्त वु—अक आदि। और्णकम् । जब आदि अनुदात्त मानकर अञ् तब और्णम् । ऊन की बनी वस्तु शाल स्वेटर । स्थूणा उर्णा नपुसक हैं। अत कहा वुञ् न होनेपर क्रमसे अण, अञ् भी हो। (३७) एणी=मृगीसे अवयव विकार अर्थमे ढञ्—ढको एय। यस्येति चमे इलोप, आदि। ऐणेय मृगी चर्म, अङ्ग, प्राणिके अञ्को बाधकर। सूत्रमे स्त्रीलिङ्ग पढनेका फल बोले, जहा पुलिङ्ग ऐण—मृगका विकार है। वहा प्राणि—अञ्। आदिवृद्धि ऐणेय-मृग चर्म। (३८) गोमयम् से विकार=अवयवमे यत् हो। यद्यपि गो और अजादि प्रसङ्गमे यत् होता ही है तथापि (मयड्वैतयो से) मयट बाधनार्थं पुन यत् पढा। गोर्विकार या अङ्ग अर्थमे यत्। वान्तो यि प्रत्ययेसे अव् गव्यम् । दूध दही मूत्र गोबर सीग पुच्छ आदि अवयव या विकार है। पयसः विकार-पयस्य दधि घृत नवनीतं वा। दूधका विकार बदला रूप दधि है। अवयव घी है। (३९) द्रोश्च द्रु =वृक्षसे भी यत् कहे। (एकाचो नित्यका मयट् और ओरञ्को बाधकर) द्रो विकार अवयव वृक्षसे बनी वस्तु कुर्सी मेज, पल्ला आदि लकडी अर्थमे यत्। और्गुण उ को ओ, य परे अव्। द्रव्यम्। सात

वा द्रव्यम् । (१५४०) **माने वयः** ४।३।१६२॥ द्रोरित्येव । द्रुवयम । 'यौतव द्रुवय पाय्यमिति मानार्थक त्रयम्' । (४१) **फले लुक्** ४।३।१६३॥ विकारावयवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् फले। आमलक्या फलमामलकम् । (४२) **प्लक्षादिभ्योऽण्** ४।३।१६४॥ विधानसामर्थ्यान्न लुक् । प्लाक्षम् । ।४३। **न्यग्रोधस्य च केवलस्य** ७।३।५॥ अस्य न वृद्धिरैजागमश्च । नैयग्रोधम् । ।४४। **जम्ब्वा वा** ४।३।१६५।। जम्बूशब्दात्फलेऽण्वा स्यात् । जाम्बवम ।

पदार्थमे (द्रव्य गुण कर्म)का द्रव्य वान्त भिन्न है। वह तो गुणै द्रूयते आश्रीयते गुणका आधार बने, द्रुधातु, अचो यत् द्रव्य-जाति गुण क्रियाका आधार अर्थ।

(१५४०) **मान**—मात्रा निश्चय, विकार अर्थमे द्रुशब्दसे ही वय प्रत्यय हो। द्रुसे मान अर्थमे वय, द्रुवय-पेडका परिमाण। विकारभूत पसेरी क्विटल लकडी का परिमाण, तौला हुआ। यु धातुसे तौला हुआ मान अर्थमे (तव) प्रत्यय। **यौतव द्रुवय पाय्य**, पैसे, माने यत्। ये तीनो मानार्थक तौला हुआ मान अर्थमे है। (४१) **फल** अर्थमे विकार या अवयव प्रत्ययका लुक्--अश्रवण हो। आवला का फल आमलकम् । आमलकीमे फलअर्थमे मयट, उसका फले लुक् । लुक् तद्धित परे, ङीष्। इका लुक् स्वादि । फले हुए वृक्षका फल।

(४२) **प्लक्षादिगणमे** न्यग्रोध, अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु कर्कन्धू इनसे विकार अवयव अर्थमे अण् हो। जिसका फले लुक् नही होता, अण् विधानके सामर्थ्य से। शिग्रु कर्कन्धुसे ओरञ् प्राप्त, अन्यको अनुदात्त अञ् प्राप्तको बाधकर अण्। फल परे अण्का लुक् क्यो नही ? तब कहा **विधानसामर्थ्यात्**-प्लक्षस्य फल प्लाक्ष, गूलरका फल। फिष से अन्तोदात्त, प्लक्षसे अणादि, न्यग्रोध—लघावन्तेसे मध्य उदात्त, तस्य फल, बरगद वृक्षकाफल अर्थमे प्लक्षादिभ्योऽण् आदि वृद्धि प्राप्त, उसको बाधकर। (४३) **न्यग्रोध** केवल—अकेला रहने पर (पदान्तर विहीनत्व केवलत्व) वृद्धि न हो किन्तु ऐच् (ऐ औ) हो, जो न य्वाभ्या से आया। **नैयग्रोध आश्वत्थ वैणव प्लक्ष नैयग्रोधैङ्गुदफले इत्यमर**। केवल क्यों पढा ? न्यग्रोधमूले भवा न्याग्रोधमूला शालय। यहा मूल अधिक है ऐच् न हो। पेडकी छायामे धान। यदि न रोहति **न्यग्रोध**.। डालीसे जड फूटकर जमीनमे जाय इस व्युत्पत्ति पक्षमे सूत्र नियमार्थ है पक्षमे विध्यर्थ।

(४४) **जम्बू** शब्दसे फल अर्थमे अण् विकल्पसे हो। जम्बव (जामुनका) फल अथमे जम्बूसे अण्। णितसे आदि अच् जमे अको वृद्धि। उकारको गुण ओ—अव् **जाम्बवं**, पक्षमे ओरञ् उवर्णान्त जम्बूसे अञ्, उसका लुक विशेष्यफल

पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्, जम्बु। (१५४५) लुप् च ४।३।१६६।। जम्ब्वाः फल प्रत्ययस्य लुब्वा स्यात्। 'लुपि युक्तवत' जम्ब्वा फल जम्बू। 'फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम्'। व्रीहयः। मुद्गा। 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' (वा) मल्लिकाया पुष्प मल्लिका। जात्या पुष्प जाती। विदार्या मूल विदारी। बहुलग्रहणेह। पाटलानि पुष्पाणि। साल्वानि मूलानि। बाहुलकात्क्वचिल्लुक्।

हैं। उसका लिङ्ग नपुसक। जिससे ह्रस्व हुआ। जम्बु फले, जम्ब्वा जम्बू स्त्री जम्बु जाम्बवम।

(१५४५) लुप् भी हो, जम्बू शब्दसे फल अर्थमे हुए प्रत्ययका विकल्पसे लुप। शङ्का—लुक्से भी कार्य सिद्ध था लुप क्यो पढा ? तब कहा लुपि युक्तवत्-लुप होने पर, युक्त उचित लिङ्गवचन होनेके लिये। जैसे जम्ब्वा फल जामुनके फल अर्थमे हुए अण्का लुप् होनेपर विशेष्य—प्रधानका लिङ्ग वचन बाधकर स्त्रीलिङ्ग एकवचन भी हुआ। जम्ब्वा अत फल जम्बू स्त्रीलिङ्ग एकवचन रहा। (वा०) फलपाकशुष फल (पाकेन शुष्यन्ति) पकनेपर सूखजाय इति फलपाकशुष ओषधय। उसके वाचक शब्दसे परे फल अर्थके प्रत्ययका लुप कहे। फले लुक्को बाधकर। व्रीहि जौ गेहूँ धान जिनके पकने पर फल सूख जाते है। तस्य विकार से अण। उसका वार्तिकसे लुक्। जौ धानका सूखा फल तद्धितार्थ। मुद्गाना विकार फलानि--मूगकी दाल मुद्ग। विल्वादि मानकर हुए अण्का लुप्। जिसका फल, युक्तवद्भावसे पुलिङ्ग, हुआ प्रधान फलका लिङ्ग वचन नही हुआ। (वा०) पुष्प और मूल जड अर्थ खुलता हो तब विकार और अवयव अर्थमे हुए प्रत्ययका लुप् हो। बहुल=आवश्यकता अनुसार। मल्लिका रातरानोका पुष्प, अर्थमे अण्। उसका वार्तिकसे लुप। उचित लिङ्ग हुआ। मादीना च--मध्य उदात्त। अनुदात्तादेश्चके अञका लुक्। युक्तभावसे स्त्रीलिङ्ग। अत जातीनामक लताके फूलका नाम जाती को भी समझें। कन्दके मूल जडका नाम, भूमि विदारी। मूलजड अर्थमे हुए प्रत्ययका लुक्। गौरादिगण मानकर ङीष्, अन्त उदात्त। वार्तिकमे बहुल पढनेसे क्वचिन्न-कही नही भी होता। यथा पाटलस्य पुष्पाणि पाटलानि, पलाशके फूल। विल्वादिभ्यश्चके अण्का न लुक्। साल्वानि भी समझें। शालूका मूल जड अर्थमे अण् का लुक् नही हुआ। शङ्का—अशोकस्य पुष्प अशोक, करबीरस्य पुष्पम् (करौदा का फूल अर्थमे) करवीर शब्द बना। पुष्पमूलेषु बहुलसे युक्तावद्भाव हो, पुलिङ्ग भी होकर अशोक करवीरः क्यों नही बनता। बहुलग्रहणसे युक्त

अशोकम् । करवीरम् । ४६ **हरीतक्यादिभ्यश्च** ४।३।१६७।। एभ्य फल-प्रत्ययस्य लुप्स्यात् । हरीतक्यादीना लिङ्गमेव प्रकृतिवत् । हरीतक्या फलानि-हरीतक्य ।४७। **कसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च** ४।३।१६८।। कसीयपर-शव्यशब्दाभ्या यञञौ स्तश्छयतोश्च लुक् । कसाय हित कसीयम् । तस्य विकार कास्यम । परशवे हित परशव्यम्, तस्य विकार पारशव ।

इति तद्धिते चतुर्थस्य तृतीयपादे प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम् ।

अथतद्धिते प्राग्वहतीयप्रकरणम् ।।३०।।

।४८। **प्राग्वहतेष्ठक्** ४।४।१।। तद्वहतीत्यत प्राक् ठगधिक्रियते । 'तदा-

---

भावके आभावसे । कही लुक् भी होता है ।

(४६) **हरीतकी** आदिगणमे पढे शब्दसे परे फल प्रत्ययका लुप हो । हरी-तकी आदि वार्तिकसे लिङ्ग प्रकृतिके अनुसार हो, जिसका लिङ्ग लुप्त प्रत्यार्थं अतिदिष्ट है । हरीतकी (हरैं) के फलको **हरीतक्यः** । फल अर्थमे हुए प्रत्ययका लुक् । द्राक्षा आदि शब्दसे नित्य वृद्ध-से प्राप्त मयटका लुप् आदि । **लिङ्गमेव** विशेष्यवदेव । (४७) **कशीय** और परशव्यसे यञ् अञ् हो छ यत्का लुक् भी हो । कस धातु लोहविशेष, तस्मै हित लोहाके हित उपयोगी बनाने अर्थमे छ—ईय **कसीय**, कसीयस्य विकार धातुकी बनी वस्तु अर्थमे यञ् कसीय—य । छ—ईयका लुक् । आदिवृद्धि अलोप **कांस्यम** । परशुके लिए उपकारी (बेंट, लोहा) फरसाके उपयोगी अर्थमे उगवादिभ्यो यत् । शुमे उको गुण, वान्तादेश **परशव्यम्** उससे विकार अर्थमे अञ् होनेपर पहले हुए यत्का लुक् । बहुवचने पार्शव । अनपत्य होनेसे आपत्यस्य च नही लगा ।

इति प्राभाकरीटीकाया प्राग्दीव्यतीया समाप्ता ।

अथतद्धिते प्राग्वहतीया

अथठगधिकार —ठक्प्रत्ययके अधिकारकी सीमाका निर्णायक सूत्र । (४८) **चतुर्थ** अध्यायके चौथे पादका प्रथमसूत्र **प्राक्वहते=तद्वहति** रथयुगप्रासङ्ग सूत्रके पहले तक ठक्का अधिकार चलेगा । इसपर वार्तिक बोलें **तत् आह**— इति (वह वार-वार ऐसा कहता है) इस अर्थमे माशब्द, नित्यशब्द, **कार्य** शब्द आदिसे ठक् कहे । इति शब्द तत्के बाद पढे । **तदिति** आह--वह ऐसा कहता है अर्थमे माशब्दसे स्वागत—आदिका स्मरण । तत्से वाक्यका अर्थ ले । इतिसे वाक्यको कर्मघोषित । माशब्द **कार्षीः** तुम कोलाहल मत करो, ऐसा

हेति माशब्दादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' मा शब्द कार्षी इति य आह स माशब्दिक ।४९। स्वागतादीना च ७।३।७।। ऐज्न स्यात । स्वागतमित्याह स्वागतिक । स्वाध्वरिक । स्वाङ्गस्यापत्य स्वाङ्गि । व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गि । व्यडस्यापत्य व्याडि । व्यवहारेण चरति व्यावहारिक । स्वपतौ साधु स्वापतेय 'आहौ प्रभूतादिभ्य' प्रभूतमाह । प्राभूतिक । पार्याप्तिक । 'पृच्छतौ सुस्नाता-

---

जो कहे, इस अर्थमे मा शब्दसे ठ–इक आदि माशब्दिक. । अथवा शब्दो मा कारि इति यो निषेधति स मा शब्दिकः। जो नित्यशब्दका प्रयोग करे, नित्य शब्द इति य आह स नैत्यशब्दिक । शब्द नित्य है ऐसा कहनेवाला कार्यः शब्द इति य आह कार्यशब्दिक । दुर्गाजी ऐसा अनेक बार बोले दौर्गशब्दिक रामरामशब्दिक । कृष्ण कृष्ण । कमवाच्य है किन्तु द्वितीया नही होती, प्रातिपदिक न होनेसे । न माङ्योगे । ब्रूञ् धातुका स्पष्ट बोलना अर्थ । उससे बना इति य आह समुदायसे ठक् । माशब्द आदिके भीतर पढे हुए स्वागनादिगणके शब्दकी विशेषता बोले ।

(४९) स्वागत, स्वाध्वर आदिगण पठितके आदि अच्को ऐच् न हो, जो न य्वाभ्यासे प्राप्त था । किन्तु आदिवृद्धि हो । न कर्मव्यतिहारे से नञ् आया । शोभनम् आगमन स्वागत (सही समयपर आना हुआ) (इति य आह) अर्थमे ठ इक । न य्वाभ्यासे ऐच् प्राप्तका निषेध । स्वागतादीना सूत्रेण आदिवृद्धि । स्वागतिक स्वाध्वरिक शोभन अध्वर स्वध्वर इति य आह(अच्छा यज्ञकिया) ऐमा जो बोले वह व्यक्ति अर्थमे ठ-इक । ऐच् निषेध , किन्तु आदिवृद्धि । सुन्दर यज्ञ है, ऐसा कहनेवाला । शोभनानि अङ्गानि यस्य स स्वङ्ग , मन मोहक अङ्गवालेकी सन्तान अर्थमे अत् इञ आदि स्वाङ्गि । विकृतानि अङ्गानि यस्य स व्यङ्ग अष्टावक्र लाकृति उसकी-सन्तान अर्थे इञ आदि । व्याङ्गिः । न विद्यते डो यस्य स अड , विगतो अडो व्यड (उसकी सन्तान) इञ् आदि, व्याडि । व्यडस्याऽपत्यम् । व्यवहारसे(चले) सर्वप्रिय आचरण कर्ता अर्थमे ठ–इक आदि व्यावहारिक । ऐच्का निषेध । स्वस्य पति स्वपति । अपना स्वामी, रक्षक--उससे साधु सेवा कुशल नीतिनिपुण अथमे स्वपतेर्ढञ्— ढक् एय द्वारादीनाञ्चसे प्राप्त ऐच्का निषेध । (वा०) आहौ—आह पदके एक देशसे आहिका इकार उच्चारणार्थ है । पूर्वसे तत आया । तदित्याह (वह ऐसा बोलता है ।) अर्थमे प्रभूतादिगणमे पढे द्वितीयान्त शब्दसे ठक् कहे । प्रभूतमाह (बहुत है ऐसा जो कहे) अर्थमे प्रभूतसे ठ–इक आदि । पर्याप्तमाह पूर्ण है ऐसा

दिभ्य ' सुस्नात पृच्छति सौस्नातिक । सौखशायनिक । अनुशतिकादि । 'गच्छतौ परदारादिभ्य ' पारदारिक । गौरुतल्पिक ।।१५५०। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** ४।४।२।। अक्षैर्दीव्यति आक्षिक । अभ्र्या खनति आभ्रिक । अक्षैर्जयति आक्षिक । अक्षैर्जितमाक्षिकम् । ।५१। **संस्कृतम्** ४।

उसका नाम पार्यातिक ।ठ आदि ।अलमाह आलमिक । (वा०) **पृच्छतौ**-पूछता है अर्थमे द्वितीयान्त सुम्नात आदिमे ठक कहे। सुस्नात (ठीकसे स्नान किया) जो ऐसा पूछता है अथमे ठ–इक आदिवृद्धि। **सौस्नातिक** । सुख शयनपृच्छति सुखसे सोया ऐसा पूछने वाला । सुखशयनसे ठ–इक आदि । अनुतिकादीनासे दोनो पदकी आदिवृद्धि । **सौखभोजनिक**, आनन्दगमनिक । (वा) **गच्छति** अर्थ मे परदारा-दूसरेकी स्त्रीके प्रति गमन अर्थमे द्वितीयान्तसे ठक् हो । परदारान् गच्छति (पराई नारीके पास जाता है) परदारान्से ठ-इक आदि पारदरिक । गुरुकी स्त्रीको गुरुतल्प कहते है। गुरुतल्प गच्छति अर्थमे ठ—इक आदिवृद्धि । **गौरुतल्पिक** चन्द्र । परमातर गच्छति पारमातृक बालक ।

(१५५०) **तेन**=तृतीयान्त शब्दसे खनता है जीतता है या हारता है या जीत चुका है । इन विग्रहो मे (यहा तीनो काल, तीनो पुरुष, तीनो वचन इच्छाधीन है । भूतकाल-अक्षै अदेवीत् देविष्यति दीव्यति । तीनो कालमे ठक् आदि हो । आक्षिक बनेगा । इसका अर्थ पाशासे खेलता, खेल चुका , खेलेगा। तीनो स्थितिका व्यक्ति प्रथमपुरुष मध्यम, उत्तममे भी अक्षैर्देविष्यसि देविष्यामि। पाशासे खेलते हो, हम खेलने है । दोनो दशामे **आक्षिक** । बहुवचनमेभी दीव्यन्ति ते । यूय दीव्यथ। वय दीव्याम इति आक्षिका. तीनो दशामे एकरूप कारक इष्ट है । जयति जितमे कर्ता और कर्ममे प्रत्यय होनेसे अक्षैर्द्यूत खात खना हुआ अर्थ भी होगा । अक्षै मे तृतीतीयान्त है । उससे ठक् तद्धितान्तत्वा त्प्रातिपदिकसज्ञा, सुपो धातुसे तृतीयाका लुक् आदि । अभ्रि स्त्री, काष्ठ कुद्दाल । कुदारसे खोदता है । अभ्र्या तृतीयान्तसे ठक् । प्रा० संज्ञा सुपो लुक् आदि । **आभ्रिक** । कुदाल खुरपीसे खोदने वाला । अक्षैर्जित पाशासे जीता गया धन, **आक्षिक**, दाव पर लगाया दूना पाया । परशुना खनति **पारशुक:** ।

(५१)**संस्कृतं** सस्कार किया हुआ तृतीयान्तसे सस्कृत=छौका हुआ, सीचा, मिलाया हुआ अर्थमे ठक् । सपूर्वक कृधातुका मिलाना, सुट्का उत्कृष्ट गुण स्वाद पैदा करना अर्थ । जैसे दहीसे सीचा-स्वादजनक सस्कार किया हुआ दही (बुनिया) वाडाका नाम **दाधिक**--दधिसे सस्कारित अर्थमे ठक् आदि । सस्कृत भक्षा सप्तम्यन्तसे अण् करता है । तृतीयान्तसे ठक् ही होगा । मरी-

४।३।। **दध्ना संस्कृत दाधिकम्। मारीचिकम्। ।५२। कुलत्थकोपधादण्** ४।४।४।। ठकोऽपवाद। कुलत्थैः संस्कृत कौलत्थम्। तैत्तिणीकम्। ।५३। **तरति** ४।४।५।। उडुपेन तरति **औडुपिक** ।५४। **गोपुच्छाट्ठञ्** ४।४।६।। गौपुच्छिक ।१५५५। **नौद्व्यचष्ठन्** ४।४।७।। नाविक। घटिक। बाहुभ्या तरति बाहुका स्त्री। ।५६। **चरति** ४।४।८।। तृतीयान्ताद्गच्छतिभक्षयतीत्यर्थयोष्ठक्स्यात। हस्तिना चरति हास्तिक। शाकटिक। दध्ना भक्षयति दाधिक। ।५७। **आकर्षात्ष्ठल्** ४।४।९।। आकर्षो निकषोपल। आकर्षात् इति

चिभि संस्कृत मिर्च या मिर्चसे छौंका-स्वादिष्ट बनाया हुआ अर्थमे ठ—इक आदि। **मारीचिक** मरिचि डालकर तला हुआ। घृतेन संस्कृत घार्तक अपूप। लवणेन संस्कृत चूर्ण **लावणिक** लवणभास्कर नमकीन। पूरणेन संस्कृत पौरणिक -पूरनसे भरा हुआ। योगविभाग उत्तरार्थ।

(५२) **कुलत्थ** और कोपधके तृतीयान्तसे अण् हो ढक बाधकर। कुलेषु तिष्ठन्ति कुलत्था तैं कुलत्थैं संस्कृत कुलञ्जन या गुरुचिसे संस्कृतसेगुण बढे हुएका नाम **कौलत्थ:**,ठको बाधकर अणादि। **तैत्तिणीकम्** तीत्तिणीकेन संस्कृत (इमलीसे गुण स्वाद बढाया हुआ) **अर्थ**मे अणादि। मधूकेन संस्कृत माधूकम् लप्सी। (५३) **तरति** तैरने अर्थमे तृतीयान्तसे ठक् हो। उडुप=नौकासे तरति पारहोने अर्थमे ठ—इक आदिवृद्धि **औडुपिक:**। (५४) **गोपुच्छ** से (गायका पूछ पकडकर वैतरणी नदी पार होनेमे) ठ—इक आदि **गौपुच्छिक**।

(१५५५) **नौ**=नौका और दो अच् वाले शब्दसे तरति अथमे ठन् हो। तृतीयान्तसे ही। नावा तरति **नाविक:**। नौ से ठ—इक अवादेश, नौकासे पार कर्ता। घटेन तरति **घटिक** घन्नईसे पारकर्ता। घटमे दो अच् है, ठ—इक आदि। बाहुभ्या तरति भुजाओंसे तैरने वाली स्त्री, बाहुसे ठक्, ठ इक टाप्, **बाहुका** (५६) **चरति** तृतीयान्तसे गच्छति भक्षयति चलता है। खाता है **अर्थमे** ठक् हो। चर गतिभक्षणयो दो अर्थमे चरधातु है। हाथीसे जाता है, हाथीके द्वारा चढकर चलने वाला। हस्तिन्से ठ—इक नस्तद्धिते टि (इन्) का लोप **हास्तिक**। शाकटेन गच्छति **शाकटिक**· गाडीपर चलनेवाला ठ—इक आदि। **द्वैचक्रिक त्रैचक्रिक**। अश्वेन गच्छति **आश्विक**। पादाभ्या चरति पादिक। दहीसे खाता है **दाधिक**। दधिसे ठक् आदि०। मधुना भक्षयति माधुक, **मारीचिक**। घृतेन खादति घार्तक। (५७) **आकर्ष** (शान) सुवर्ण परीक्षार्थ निकष (कसौटीका पत्थर) कोई आकष ऐसा पढते है। माधवादि। परन्तु आकर्षात्पर्पादि वार्तिकके अनुकूल है। तृतीयान्तसे चरति **अर्थमे** ष्ठल्। अनुबन्धलोप ठ

पाठान्तरम् । तेन चरति आर्कषिक । षित्त्वान्ङीष् । आर्कषिकी । ।५८। **पर्पादिभ्य. ष्ठन् ४।४।१०॥** पर्पेण चरति पर्पिक । पर्पिकी । येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति स पर्प । अश्विक । रथिक । ।५९। **श्वगणाट्ठञ् च ४।४।११॥** चात्ष्ठन् ।१५६०।**श्वादेरिञि ७।३।८॥** ऐच्न । श्वभस्त्रस्यापत्य श्वाभस्त्रि॥ श्वादष्ट्रि । तदादिविधौ चेदमेव ज्ञापकम् । 'इकारादाविति वाच्यम्' । श्वगणेन चरति श्वागणिक श्वागणिकी, श्वगणिक –श्वगणिकी ।६१। **पदान्तस्यान्य-**

शेष ठ–इक आर्कषिक । कसौटीका पत्थर लेकर चलने वाला प्रत्ययका ष इत् है, ङीष् भी हो । आर्कषिकी ।

(५८) **पर्पादिभ्य** पर्पअश्व अश्वत्थ रथ जाल जल न्याय व्याल । पाद. पत् इनके तृतीयान्तसे चरति अथमे ष्ठन् हो । पर्पसे चलता है अर्थमे ठ—इक पर्पिक । षित् होनेसे ङीष् पर्पिकी । जिस पीठ आसन गाडी पर पङ्ग लूजे, लगडे चले उसको पर्प कहते हैं । उससे चलने वाला । अश्वेन चरति अश्विक , पर्प-गतौ । हलश्चसे साधन अर्थमे घञ् । अङ्गके चलनेका साधन पर्प है । रथेन चरति रथिक अश्वारोही रथसवार । न्यायेन तरति **नैयायिक** । पादेन तरति **पदिक** । पादाभ्या चरति (पादको पदआदेश) (५९) **श्वगण**-कुता समूहसे ठञ् हो, ठक् बाधकर । तृतीयान्तसे चरति अर्थमे ष्ठन् भी हो । श्वगणेन चरति **श्वागणिक** कुत्तेके झुण्डके साथ चलता है ठ आदि यथायोग्य द्वारादिसे ऐच् प्राप्त था । उसका निषेध सूत्र ।

(१५६०) **श्वादेरिञि** श्वन्शब्द आदिमे हो ऐसे अ ग को इञ् परे ऐच् आगम न हो । अङ्गका अधिकार ।न कर्मव्यतिहारेसे (न) आया । इससे निषेध हुआ । आदिवृद्धि । **श्वागणिक** -श्वभस्त्रस्य कुत्तेके समानचर्म जलपात्र वालेकी सन्तान अर्थमे अत इञ् आदि । श्वदष्ट्रस्याऽपत्य श्वादष्ट्रि कुत्तेके समान दात वालेकी सन्तान(अतइञ् आदि) द्वारादिनञ्चसे प्राप्त ऐच्का निषेध । अत्रशङ्का-द्वारादि गणमे श्वन् पढा है । श्वभस्त्र नही ऐच् प्राप्त नही, निषेध कैसे ? निषेध व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा—श्वन्पूर्वक अङ्गका द्वारादिमे मान्यता । उसका फल हुआकि श्ववहनस्येद शौववहन, तदादिविधिकी कल्पनासे । द्वारपालस्य अय दौवारपाल मे ऐच् हुआ । पुन शङ्का—श्वाकाणिक मे इञ् प्रत्यय हुआ नही, वहा ऐच्का निषेध कैसे ? (वा०) इकार आदिमे हो ऐसा प्रत्यय परे अर्थ कहे ठ–को इक होने पर इकारादि मिला । निषेध हुआ । कुत्ता समुदायके साथ चलनेवाला ठञ् ङीष् श्वागणिकी । जब ष्ठन् होगा तब आदिवृद्धि नही होगी। ङीष् होकर स्वगणिकी कुत्ताझुण्डवाली । (६१) **पदान्तस्य**-पदशब्दो अन्तो यस्य

तरस्याम् ७।३।९।। श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्यैज्वा। श्वापदस्येद श्वापद, शौवापदम् । ।६२। **वेतनादिभ्यो जीवति** ४।४।१२।। वेतनेन जीवति वैतनिक । धानुष्क । ।६३। **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** ४।४।१३।। वस्नेन मूल्येन जीवति वास्निक । क्रयविक्रयग्रहण सङ्घातविगृहीनाथम् । क्रयविक्रयिक— क्रयिक–विक्रयिक । ६४ **आयुधाच्छ च** ४।४।१४।। चाट्ठन् । आयुधेन जीवति आयुधीय–आयुधिक । ।१५६५। **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** ४।४।१५।। उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिक । ६६ **भस्त्रादिभ्य. ष्ठन्** ४।४।१६।। भस्त्रया

पदशब्द अन्तमे हो, श्वन् आदिका अङ्ग हो, तब आदि अच्को ऐच् विकल्पसे हो । **निषेध विकल्पेन विधिविकल्प फलति** श्वादेरिञिके बादका सूत्र । शुन पदमिव पद यस्य श्वापद, शुनो दन्त दष्ट्रा, सूत्रसे दीर्घ । कुत्तेके समान पाँव वाला । इदम अर्थमे अण् श्वापद (वृद्धाच्छ न भवति अनभिधानात्) शब्द अन्तमे है पदान्तस्याऽन्यतरस्या सूत्रसे ऐच् । अके पहले औ आगम । तव **शौवा पदम** । (६२) **वेतन** आदिगण पढे शब्दके तृतीयान्तसे जीवति- वेतनभोगी अर्थ में ठक् हो । वेतन मासिक पारिश्रमिक द्रव्यसे जीता है । ठ–इक आदिवृद्धि **वैतनिक** । धनुषा जीवति धनुर्विद्याके बलपर जीनेवाला । उ से परे ठको क **धानुष्क** इण । वेतनादिगणमे धनुर्दण्ड पढा है, सङ्घात तोडनेके लिये । जीवति अर्थमे समुदायसे धानुर्दण्डिक । अलग **दाण्डिक** भी ।

(६३) **वस्न—मूल्य क्रयविक्रय—खरीदने** वेचने वाचक शब्दसे ठन् हो । वस्न से जीने वाला मूल्य द्रव्य ही आधार है ठ--इक **वस्निक** । क्रयविक्रयेण जीवति खरीदना वेचनेसे जीवनवाला ठ-इक **क्रयविक्रयिक** क्रयेण जीवति क्रयिक । विक्रयेण जीवति विक्रयिक । खरीदना वेचना जीवनवाला क्रयविक्रय समुदायको विगृहीत अलग अलग पढनेके लिए क्रयविक्रय पढा । अन्यथा वस्नेन मूल्येन जीवति कहना पर्याप्त था ।(६४) **आयुध्यन्ते** अनेन आयुधं, चारो तरफ से मारक अस्त्र (घञर्थे क) तृतीयान्त आयुधशब्दसे छ हो ठन् भी, जीवति अर्थे शस्त्रजीवी अर्थमे आयुधसे छ -ईय । **आयुधीय** । ठ--इक **आयुधिक** व्याध , जङ्गली, शिकारी ।

(१५६५) **हरति** हरणकरता है अर्थमे तृतीयान्त उत्सङ्ग उडुप उत्थित पिटक पिटाकसे ठक् हो उपादत्ते—नयति (लेकर चलने अर्थमे भी) गोदमे लेकर चलने अर्थमे उत्सङ्गसे ठ -इक आदि० **औत्सङ्गिक** । उडुपेन हरति नयति नौकासे ले जाता है **औडुपिक** । औत्थितिक उठकर लेजाना । पिटकेन हरति पैटकिक । (६६) **भस्त्रा**—भाथी चर्मपात्र आदिगण पठितशब्दके तृतीयान्त

हरति भस्त्रिक.। षित्त्वात्, भस्त्रिकी। ६७ **विभाषा विवधात्** ४।४।१७।। विवधेन हरति विवधिक । पक्षे ठक्। वैवधिक । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद्वीव-धादपि ष्ठन। वीवधिक , वीवधिकी। विवधवीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्क-न्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते। ६८ **अण् कुटिलिकाया** ४।४।१८।। कुटिलिका व्याधाना गतिविशेष , कर्मारोपकरणभूत लोह च। कुटिलिकया हरति मृगान-ङ्गारान्वा कौटिलिको व्याध कर्मारश्च। ६९ **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्य** ४।४।१९।। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिक वैरम् ।१५७०। **क्त्रेर्मम्नित्यम्** ४।४।२०।। वित्रप्रत्ययान्तप्रकृतिका तृतीयान्तान्निर्वृत्तेऽर्थे मप्स्यान्नित्यम्। कृत्या

से हरति अर्थ ठन् हो। भस्त्रया--चमपात्रसे जल लाने अर्थमे ष्ठन् ठ–इक **भस्त्रक** चर्म पात्रमे पानी ले जानेवाला। ष इत्, षिद्गौरादिभ्य से ङीष् भी। इस गणमे शीर्ष भारेण हरति **शीर्षभारिक** , शिरपर भारवाहक।

(६७) विभाषा--विविधा भाषा विकल्पसे तृतीयान्त विवध शब्दसे हरति= लेजाला हे अर्थमे ष्ठन् ठ–इक **विवधिक** , वँहगीसे भार ढोनेवाला। पक्षमे ठक् =इक आदिवृद्धि **वैवधिक** । दोनोमे भार ढोनेकी शक्ति। एकदेश=एक अशके विकृत--बदलनेसे **अनन्यत्वात्** न अन्य अनन्य तस्य भाव अनन्यत्व तस्मात कुत्तेकी पूछ कट गयी एकदेशमे विकार हुआ, कुत्ता ही रहा घोडा नही हुआ। **वीवधाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिकके बलपर वीवधसे भी ठ=इकादि। **वीवधिक** ङीप् भी। दोनो शब्द उभयतो बद्धशिक्ये=दोनो तरफ शिकहर पर भार रख कर स्कन्धवाह्ये=कन्धे पर ढोने लायक लकडी अर्थमे है। (६८) **अण्** कुटि-लिका शब्दसे तृतीयान्त होनेपर हरति अर्थ अण् हो। कँटिया (मास फसाने वाली) सँडसी (अङ्गार, तप्त लाललोहा पकडने वाली) दोनोके कर्ता–व्याध और लोहकार क्रमसे है। कुटिलिकया--कटियासे मृगको, सदन्श=सँडसीसे अङ्गारको हरण करनेवाला व्याध हो या लोहार, दोनो अर्थमे अण् आदिवृद्धि भसञ्ज्ञा आलोप **कौटिलिक** ।(६९) **निर्वृत्त** निर्पूर्वक वृतु वर्तने धातुका साधन से सिद्ध होना अर्थ। कर्मसे सिद्धिरूप फलके आधारमे क्त। तृतीयान्त अक्ष-द्यूत जूआ पाशा खेल आदि वाचक शब्दोंसे फल सिद्धिके आधार अर्थमे ठक् हो। जैसे पाशा फेंककर खेल अर्थमे अक्षद्यूत शब्दसे वैर शत्रुता दुश्मनी रूपफल जुआका परिणाम सहज है। ठ-इक आदिवृद्धि। **आक्षद्यूतिक** वैर, पाशा खेलने का सिद्ध फल, वैर हो गया।

(१५७०) **त्रे** =त्रिप्रत्यय अन्तमे हो ऐसो प्रकृतिके तृतीयान्तसे निर्वृत्त= सिद्ध अथमे मप हो। समर्थाना प्रथमाद्वाका महाविकल्प रोकनेके लिए, नित्य

निर्वृत्त कृत्रिमम्। पक्त्रिमम्। 'भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्य' (वा) पाकेन निर्वृत्त पाकिमम्। त्यागिमम्। ७१ **अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ** ४।४।२१॥ अपमित्येति ल्यबन्तम्। अपमित्येन निर्वृत्तमापमित्यकम। याचितेन निर्वृत्त याचितकम्। ।७२। **संसृष्टे** ४।४।२२॥ दध्ना संसृष्ट दाधिकम्। ।७३। **चूर्णादिनिः** ४।४।२३॥ चूर्णै संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपा। ।७४।

पढा। या स्वातन्त्र्येण प्रयोग बोधितु नित्यग्रहणम्। मप्के विना त्रिप्रत्ययान्तका प्रयोग सिद्ध अर्थमे देखा नही जाता, कृति। स्त्रिया क्तिन्प्रत्ययान्त। कृतिका रचना, कर्मफल, उससे निर्वृत्त सिद्ध हुआ अर्थमे मप् **कृत्रिमम्**। यहा त्रि-सख्या नही किन्तु प्रत्यय है। प्रत्ययाप्रत्ययो प्रत्ययस्यैव ग्रहणम्। पुस्तक रचनासे सिद्ध है। पाकेन निर्वृत्त पकानेसे सिद्धवस्तु अर्थमे (डुपचष-पाके) पच्से, त्रि-से मप् पक्त्रिमम्। (वा०) **भाव** -क्रिया अर्थमे प्रत्यय अन्त तृतीयान्त से इमप् बोले, निर्वृत्त अर्थमे। नित्य नही आया। अत लौकिक, स्वपदविग्रह बोले। पाकेन=पचसे भाव अर्थमे घञ्। पाक--पकानेकी क्रिया उससे निर्वृत्त भात, दाल,रोटीकी सिद्धि अर्थमे इमप्। यस्येति अलोप। स्वादिकार्य **पाकिमम्** द्विदलम, यवागू वराटिका। त्यागेन निर्वृत्त ससार त्यागसे ज्ञानफल सिद्धिका आधार त्यज्से घञ्-त्यागक्रिया उससे सिद्ध कार्य। त्यागिमम्।

(७१) **अवमित्य** और याचित शब्दसे कक् और कन् हो। मेङ् प्रणिदाने जो विनियमार्थक है। उससे उदीचामाङो व्यतिहारेसे क्त्वा गतिसमास, ल्यप्। मयतेरितसे इत्व। ह्रस्वस्य पितिसे तुक् त **अपमित्य** अव्यय है। क्त्वा तोसुन् प्रमाणसे यथासङ्ख्य। जिसके कारण अपमित्यमे तृतीयान्त असम्भव। अत प्रथमान्तसे ही क। बदलेमे अपमान करके सिद्ध वैर **आपमित्यकम**। कक् क किति च, आदिवृद्धि। याचितेन-याचना माग--मागकर धन सग्रहसे निर्वृत्त बना विद्यालय, चिकित्सालय, स्थान **याचितकम्** कन् हुआ। चदासे मुद्रित पुस्तक। (७२) **संसृष्टे** स पूर्वक सृज (विसर्गे) धातुका मिलना मिलाना (खभरना) एकीभूतके अनुकूल क्रिया अर्थ। उस क्रियासे उत्पन्न फलके आधार अर्थमे तृतीयान्तसे ससृष्टार्थमे ठक् हो। यथा-मीचा मिलाया सामान **दाधिकम्** दधिसे ससृष्टि अर्थमे ठ-इक आदिवृद्धि। यस्येति इकार लोप आदि। मधुना ससृष्ट माधुक च्वनप्रास। गुडेन ससृष्ट गौडिकम् चूर्णम।

(७३) **चूर्णके** तृतीयान्त दशासे ससृष्ट अर्थ इनि चूर्ण--शक्कर आदिसे मिलाया हुआ (मालपूआ) अर्थमे इनि। यस्येति आलोप बहुवचन जस् **चूर्णिन.** या चूनासे पोता हुआ गृह। (७४) **लवणात्** उन चूर्णोमे यदि नमक हो तब

लवणाल्लुक् ४।४।२४।। लवणेन ससृष्टो लवण सूप । लवण शाकम् । ।१५७५। **मुद्गादण्** ४।४।२५।। मौद्ग ओदन ।७६। **व्यञ्जनैरुपसिक्ते** ४।४।२६ ।। ठक् । दध्ना उपसिक्त दाधिकम् । ७७ **ओज. सहोऽम्भसा वर्तते** ४।४।२७।। ओजसा वर्तते ओजसिक', शूर । साहसिकश्चौर । आम्भसिको मत्स्य ।७८। **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** ४।४।२८।। द्वितीयान्ता-

---

ठक्का लुक् हो जाय । नमकसे ससृष्ट मिला हुआ सूप दाल अर्थमे लवणसे ससृष्टे सूत्रसे ठ-उसका लवणात् लुक् हुआ **लवण** ।

(१५७५) **मुद्ग** मूग दालके (ससृष्ट अर्थमे) तृतीयान्तसे अण हो न ठक् । मुद्गै ससृष्ट मौद्ग मूगसे मिला हुआ । भात अर्थमे अण् आदिवृद्धि ।

(७६)**व्यञ्जनै** व्यज्यन्ते ओदनादिरस अनेन, व्यञ्जनम् दाल चावल घृत रोटी विभिन्न शाक दहीवाडा शष्कुली अपूपादि वाचकशब्द तृतीयान्त हो उससे सिञ्चन स्वादिष्ट किया हुआ, मुलायम बनाया, सेचनेन मृदूकरण उपसेक् अर्थे ठक । यह कार्य ससृष्टेसे सिद्ध था । तब इस सूत्रने नियम किया **व्यञ्जनवाचिभ्य (उपसिक्त एव)** स्वादिष्ट भोजनोके मुलायम पन दशामे ही ठक् हो । सूपेन ससृष्टा स्थाली थाली दालसे लिप्त है । यहा घीसे दाल रोटी आदिके सिञ्चनकी तरह स्वाद वर्धक नहीं, न ठक् । किन्तु दहीसे उपसिक्त= मुलायम किया मृदु हुआ अर्थमे ठ-इक । आदि **दाधिकम** दहीव डा । लवणेन उपसिक्त लावणिक व्यञ्जन नमकीन आदि । शर्करया सिक्त **शार्कर अपूप** । (७७) **ओजस्** सहस् अम्भस् इनके तृतीयान्तसे ठक् हो । वर्तते व्याप्रियते वर्तमान सत्ता अर्थमे, उपयोगमे लानेकी दशामे । यथा-ओजसा बलेन वर्तते शक्ति जवानी युद्ध वास्ते उमड रही हो । ओजस्से ठ-इक आदिवृद्धि आदि । **औजसिक** वीर भीम । युद्धमे प्रवृत्तिसूचक शूरशब्द । **साहसिक** सहसा प्राणवियोगाभ्युपगमेन स्तेये व्याप्रियते (जान हथेली पर रखकर चोरी वास्ते तुला हुआ) अर्थमे सहसमे ठ-इक आदि । चोरका सकेत चोरीमे प्रवृत्तिसे है अपूर्व हिम्मत । अम्भसा हेतुना सचारे व्याप्रियते जलके कारण गहराईमे तैरने की प्रवृत्ति अर्थमे ठ-इक आदि० **आम्भसिक** सुखी मीन जँह नीर अगाधा । अतः मछली अर्थ प्रस्तुत ।

(७८)**तत्**=द्वितीयान्त सूचक प्रति, अनु-पूर्वमे हो । द्वितीयान्त हो ऐसा ईप लोम कूल शब्दसे वर्तते सत्ता वर्तमान अर्थमे ठक् हो । जो द्वितीया होगी, वह क्रिया विशेषण मानकर । क्योकि वर्ततेमे वृतु वर्तने धातु अकर्मक है द्वितीया

तस्माद्वर्तते इत्यस्मिन्नर्थे ठक्स्यात् । क्रियाविशेषणत्वाद्द्वितीया । प्रतीप वर्तते प्रातीपिक । आन्वीपिक । प्रातिलोमिक । आनुलोमिक । प्रातिकूलिक । आनुकूलिक ।।७९। परिमुख च ४।४।२९।। परिमुख वर्तते पारिमुखिक । चात् पारिपार्श्विक ।।१५८०। प्रयच्छति गर्ह्यम् ४।४।३०।। द्विगुणार्थं

सम्भव नही थी । क्रिया विशेषणमे द्वितीया कैसे ? कारक निरूपणमे देखिये। नागेशभट्ट शब्देन्दुशेखरमे **क्रिया विशेषणाना प्रथमान्तत्वमेव** क्योकि फल व्यापार दोनो धातुकेअर्थ है । फलविशेषणमे द्वितीया, क्रिया विशेषणमे प्रथमा । प्रतीप वर्तते जो विरुद्ध चले, अथवा प्रतिपत्ता आपो यस्मिन्, पानी उलट परे जिसमे उलटा बहे, विपरीत प्रवाह ऋक्पू अर्थं समामान्त । आपके आको ईत्, द्व्यन्तरुपसर्गसे, दीर्घ । प्रतीप— विरुद्ध लौटे । वर्तमान अर्थमे ठ-इक आदिवृद्धि **प्रातीपिक** विरोधी । प्रतिका प्रतिकूल, अनुका अनुकूल अर्थ रूढः । अनुगता आपो यस्मिन्, अनुकूल जल है जिसमे, अन्वीप सरः कूप वर्तते—अनुकूल जल अर्थमे ठ—इक आदि **आन्वीपिक** अनुकूल जलवाला । अदेशात्वादुत्वम् न । प्रतिलोम वर्तते—प्रत्येक रोममे राम है अथवा विधान, सदाचारके विरुद्ध रहने वाला **प्रातिलोमिकः** ठ—इकादि । अनुलोम वर्तते—हर्षसे खडे रोमवाला अथवा विधि आचरणके अनुकूल रहे, **आनुलोमिक** अनुलोमसे ठ—आदि । प्रतिकूल वर्तते । तट मर्यादा विधिका विरोध अर्थमे वर्तमान शब्दसे ठ—इकादि **प्रातिकूलिक** विरोधी । अनुकूल वर्तते आनुकूलिकः । अनुकूलसे ठ—इक आदि ।

(७९) **परिमुख**—द्वितीयान्तसे वर्तने अर्थमे ठक् । च पढनेसे अनुक्त समुच्चय (नही कहे हुएका सग्रह) परि का दो अर्थ विरुद्ध और चारो तरफ । यदि अपपरी वर्जने—प्रमाण्से अपपरिबहिरञ्चव पञ्चम्या से अव्ययीभाव समास, परिका वर्जयित्वा—विपरीत अर्थ करेगें तव परिमुखसे वर्जन अर्थमे ठक् । स्वामिनोमुख वर्जयित्वा य सेवको वर्तते स **पारिमुखिक** ठ—इक आदि । यदि सर्वतो भावे परिशब्द, तदा यतो यत स्वामिनो मुख ततस्ततो य सेवको वर्तते प्रादि समास । परिमुख वर्तते **पारिमुखिक** —स्वामीका सब प्रकारसे प्रिय भृत्य । एव परिपार्श्व वतते पासमे नही रहता अथवा पासमे चारो तरफ रहने वाला, ठ—आदि **पारिपार्श्विक** ।

(१५८०)**प्रयच्छति**—द्वितीयान्तसे प्रयच्छति=देता है अर्थमे ठक् । **गर्ह्य**=जो देना निन्द्य हो । जैसे सूदखोरी निन्दनीय है । यथा द्विगुणार्थं=धनको दुगुना करनेके लिए धन देता है । द्विगुण धन प्रयच्छति अर्थमे ठ—इक, आदिवृद्धि ।

द्रव्य द्विगुण, तत्प्रयच्छति द्वैगुणिक । त्रैगुणिक वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्य' । वार्धुषिक । ८१ कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ ४।४।३१।। गर्ह्यार्थभ्यामेतो स्त प्रयच्छतीत्यर्थे । कुसीद वृद्धि, तदर्थं द्रव्य कुसीद, तत्प्रयच्छतीति कुसीदिक —कुसीदिकी । एकादशार्थत्वादेकादश ते च ते वस्तुतो दश चेति विग्रहेऽकार समासान्त इहैव सूत्रे निपात्यते । दशैकादशिक । दशैकादशिकी । दशैकादशान्प्रयच्छतीत्युत्तमर्ण एवेहापि तद्धितार्थ । ८२। उञ्छति

द्वैगुणिक द्विगुणीभवितु ऋण स्वद्रव्य प्रयच्छति । निन्दामे धर्मशास्त्र प्रमाण= अशीतिभागो वृद्धि स्यात्, मासि स बन्धक आदि विरुद्ध होनेसे गर्ह्य। त्रिगुणार्थं त्रिगुण भवितुम ऋण स्वद्रव्य प्रयच्छति स त्रगुणिक । ठ आदि तिगुना करनेके लिए धनदाता । पाञ्चगुणिक , माससगुणिक (वा०) वृद्धि—शब्दसे दुगुना होने अर्थमे ठक्, प्रकृतिको वृधुषि आदेश कहे । इकारान्त मान्य । वृद्धयर्थं द्रव्य वृद्धि तत्प्रयच्छति=बढनेके लिए धनका नाम वृद्धि—सूद, उसको देता है। अर्थमे वृद्धिसे ठ—इक, वृधुषि आदेश । वृधुष इक आदिवृद्धि वर्णसम्मेलन वार्धुषिक बढ़नेके लिये धनदाता । वृद्धया जीवस्तु वार्धुषि को अमरने कैसे पढ़ा ? प्रमादवश । क्योकि निरङ्कुशा कवय । या ठक् के योगमे भी आदेश मान्य ।

(८१) कुसीद और दशैकादशशब्दसे गर्ह्य=निन्दनीय अर्थमे ष्ठन् ष्ठच् हो प्रयच्छति अर्थे । कुसीद सूद (जो बढता है) तदर्थं=उसके लिए धनका नाम भी कुसीद है । उसको जो दे वह कुसीदिक' सूदखोर, निन्दा अर्थ है । कुसीदसे बढनेके लिए देने अर्थमे ष्ठन्—इक । षित् गौरदिसे ङीष् भी कुसीदिकी । न इत्—च इत्का फल—स्वरमे अन्तर । ष्ठच्का उदाहरण—एकादशनिष्कानधिकान् प्रत्यर्पयति इति समय कृत्वा दशनिष्का ऋणत्वेन दीयन्ते । ग्यारह रूपये मिलें समझौता कर दश रूपये देता है। वह दश एकादश मान्य, एकादश च दश च समासमे अल्पीयसी सख्या दशन्का पूर्वप्रयोग निपातनसे । समासान्त अकार भी । टि लोपादि । दशैकादशा । अकार निपातन । इसी सूत्रमे दशैकादशान् प्रयच्छति अर्थे ष्ठच् ठ—इक दशैकादशिक । एकादश निष्कानधिकान् ग्रहीतु दशनिष्कान अधमर्णाय प्रयच्छति । ऋण लेताको देता है । षितसे ङीष् भी । लौकिकविग्रह वाक्य दर्शाते है । दशैकादशान्—दश देता है ग्यारह लेनेके लिए । यहा उत्तमर्ण ऋण दाता ही तद्धितार्थ है प्रधान होनसे ।

(८२) उञ्छति—द्वितीयान्तसे उञ्छति=किसानके खेती काटने पर भूमिमे गिरे अन्न को कण कण चुनना उञ्छ है भूमौ पतितस्य अन्नस्य कणश एकै-

४।४।३२।। बदराण्युञ्छति बादरिक । ।८३। रक्षति ४।४।३३।। समाजं रक्षति सामाजिक । ।८४। शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४। शब्द करोति शाब्दिक । दार्दुरिक ।१५८५ । पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति ४।४।३५।। 'स्वरूपस्य पर्यायाणा विशेषाणा च ग्रहणम्' 'मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव' । पक्षिणो

कस्य चयनम् उञ्छ । बदराणि=भूमिमे बिछे बेरके फलको एक एक करके चुनता है, अर्थमे बदरसे ठ–इक आदि बादरिक । मधूकानि उञ्छति माधूक महुआ बीनता है । निम्बानि उञ्छति नैम्बिक । आम्रिक । पर्णानि उञ्छति पार्णिक आदि । (८३) रक्षति अर्थमे द्वितीयान्तसे ठक् हो । समाज सम शाक सह अजन्ति चलन्ति जना यस्मिन्समुदाये इति समाज त रक्षति उसकी रक्षा करने वाला सामाजिक पुरुष । समाजसे रक्षा अर्थमे ठ—इक आदि । पुत्र रक्षति पौत्रिक । धन रक्षति धानिक । धर्मं रक्षतिति धार्मिक, अधर्म रक्षति अधार्मिक । दैशिक, प्रान्तिक, ग्राम रक्षति ग्रामिक ।

(८४) शब्द और दर्दुरके द्वितीयान्त दशासे ठक हो । शब्द=शब्द विषये प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थविभागपूर्वक ज्ञान करोति वर्णस्फोटार्थ, पद स्फोटार्थ जानता है अर्थमे शब्दसे ठ–इक आदि० शाब्दिको वैयाकरण । करोतिका व्युत्पादयति अर्थ, व्याख्यानसे । नही तो शब्द करोति गर्दभ, दर्दुर, बहुत बोलने वाला अर्थमे शब्द करोति न घटे, ठक् न हो । दर्दुर करोति=वाद्यभाण्ड वाद्यते घडापर ताल देनेवाला अर्थमे ठ—इक आदि दार्दुरिक । दर्दुर तोयदे भेके वाद्यभण्डाद्रिभेदयो । दर्दुरा चण्डिकाया स्यात्पामजालेतु दर्दुरमिति विश्व यथायोग्यमन्वय । वह बादल मेढक बाजा पात्र पर्वतअर्थमे पुलिङ्ग । चण्डिका अर्थमे दर्दुरा, या मेढकका टर्र टॅ ध्वनि ।

(१५८५) पक्षि मत्स्य और मृगके द्वितीयान्त दशासे हन्ति–प्राणवियोग क्रिया कर्ता अर्थ मे ठक हो (वा०) पक्षि मत्स्य मृगशब्दके स्वरूपका उनके पर्यायोका और विशेषवाचक शब्दोका भी ग्रहण हो । स्वरूपके भाष्यमे है । तथापि मत्स्य=मछलीका पर्याय केवल मीन ही स्वीकृत, अन्य नही । सूत्रमे पढे शब्दका उदाहरण-पक्षिण=पखवालोको मारता है । अर्थमे पक्षसे ठ—इकादि पाक्षिक चिडियामार । पर्यायमे । शकुन हन्ति शाकुनिक पक्षिमारक व्याध्रविशेषमे । मयूर हन्ति मायूरिक मोरमारक ठ आदि । क्रममे मत्स्य हन्ति मात्स्यिक मछलीमारक । पर्यायमे–मीन हन्ति मैनिक ठ–इक आदि० । विशेषमे–शकुल हन्ति शाकलिक । ये तीनो क्रमसे स्वरूप पर्याय और विशेषके

हन्ति पाक्षिक । शाकुनिक । मायूरिक । मात्स्यिक । मैनिक । नाकुलिक । मार्गिक । हारिणिक । सारङ्गिक ।८६। **परिपन्थं च तिष्ठति** ४।४।३६।। अस्माद्द्वितीयान्तात्तिष्ठति हन्ति चेत्यर्थे ठक् स्यात् । पन्थान वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पारिपन्थिकश्चौर । निपातनात् पन्थादेश । परिपन्थ हन्ति पारिपन्थिक ।।८७। **माथोत्तरपदपदव्यनुपद धावति** ४।४।३७ ।। दण्डकारो माथ पन्था दण्डमाथ । दण्डमाथ धावति दाण्डमाथिक । पादविक । आनु-

---

उदाहरण। मृग हन्ति **मार्गिक** मृगमारक व्याध। हरिण हन्ति हारिणिक हरिणवधकर्ता। मृगकी विशेषजाति सारङ्ग हन्ति **सारङ्गिक** । आरण्यक. चतुष्पाद–हरिण अर्थमे मृग भी है। अत पर्याय बना।

(८६) **परिपन्थ**–इस द्वितीयान्तसे तिष्ठति हन्ति अर्थमे ठक् हो। चसे हन्ति आया। क्रियाका विशेषण होनेसे प्रतिपन्थ कर्म है। अत द्वितीयान्तात् कहा। अन्यथा अकर्मक हे, तिष्ठतिका कर्म कैसे होता। चकार क्रम तोडने वास्ते। तिष्ठति हन्ति, हन्ति तिष्ठति दोनो होगा। परिमुखवत्–परिपन्थमे भी अव्ययीभाव या तत्पुरुष समझे। पन्थान,परिपन्थम् अपपरीवर्जने–कर्मप्रवचनीयसज्ञा पञ्चमीविभक्ति। अपपरिबहिरञ्चव से अव्ययीभावसमास। तभी पन्थान वर्जयित्वा रास्तेसे हटकर छिपकर अर्थ निकला। जब परिका सर्वत –चारो ओर अर्थ होगा। तब परिगत पन्था परिपन्थ । प्रादि समास होनेपर व्याप्य रास्तेको घेरकर तिष्ठति बैठता है। उभयथा क्रिया विशेषणसे कर्म । परिपन्थसे रास्तेमे छिपकर या घेरकर अर्थमे ठ–इक आदि। **पारिपन्थिक** चोर डाकू। पथिन्को पन्थ आदेश निपातनसे। प्रत्ययके योगमे नही, इसका सूचक द्वितीया उच्चारण है। परिपन्थ हन्ति–रास्ता मर्यादा धर्म विरोधीको मारता है अर्थमे भी ठ आदि। पारिपन्थिक सज्जन ।

(८७) **माथ** उत्तरपद हो, पदवी और अनुपदके द्वितीयान्त दशासे ठक् हो धावति अर्थमे। पदशब्द उत्तरपद यस्य। माथ क्या है तब कहा दण्डाकार लाठीके समान सीधा रास्ताका नाम माथ पन्था पगडण्डी। मथ्यते (मन्थ विलोडने) गन्तृभि आहन्यते व्युत्पत्ति है। यात्रीके पावोसे रौंदा जाय। सीधा रास्ता दण्डमाथ । शाकपार्थिवादीनासे मध्यमपद आकारका लोप। दण्डमाथ पन्थान धावति–पगडण्डी पर दौडता है। गत्यर्थसे सकर्मक ठ—इक आदि०। **दाण्डमाथिक** सीधे रास्तेपर दौडनेवाला। पदवी धावति प्रमाणपत्र या किसी पदके लिए दौडता है। उत्सुकता वस दौडने अर्थमे पदवीसे ठ–इक यस्येति

पदिक ।।८८।**आक्रन्दाट्ठञ् च** ४।४।३८।। अस्माट्ठञ् स्यात्, चाट्ठक् धावतीत्यर्थे । आक्रन्द दुखिनो रोदनस्थान धावति आक्रन्दिक ।८९। **पदोत्तर-पदं गृह्णाति** ४।४।३९।। पूर्वपद गृह्णाति पौर्वपदिक । औत्तरपदिक । ।१५९०। **प्रतिकण्ठार्थललाम च** ४।४।४०।। एभ्यो गृह्णात्यर्थे ठक्स्यात् । प्रतिकण्ठ गृह्णाति प्रातिकण्ठिक । आर्थिक । लालामिक । ।९१। **धर्मं चरति** ४।४।४१।। धार्मिक । 'अधर्माच्चेति वक्तव्यम्' आधर्मिक ।९२। **प्रति-पथमेति ठञ्च** ४।४। ४२।। प्रतिपथमेति प्रातिपथिक ।९३। **सम-**

इलोप पादविक । अनुपद धावति **आनुपदिक** पैरके पीछे दौडने अर्थमे ठ–इक आदि पिछलग्गू । (८८) **आक्रन्द** द्वितीयान्तसे ठञ् हो, ठक् भी, धावति अर्थमे । दुखियोके रोने चिल्लाने रक्षा चाहनेके स्थानमे दौडता है । आक्रन्दसे ठ–इक आदि **आक्रन्दिक** आर्तत्राता, व्याकुलका रक्षक ।

(८९) **पदशब्द** उत्तरपदमे हो उसके द्वितीयान्त दशासे ठक् हो गृह्णाति स्वीकार अर्थमे, पूर्वपदको स्वीकारता है । ठ–इक आदि० **पौर्वपदिक** पदस्थान शब्दका वाचक पहला स्थान ग्रहणकर्ता । उत्तरपद गृह्णाति—बादका स्थान स्वीकारता है उत्तरपदसे ठ—इक आदि ।

(१५९०) **प्रतिकण्ठ** और ललाम इनसे ठक् हो, गृह्णाति अर्थमे । कण्ठ-२ प्रतिकण्ठ यथार्थेऽव्ययीभाव । प्रत्येकके गले जो लगे अर्थमे ठ—इक आदि० **प्रातिकण्ठिक** या प्रत्येकका नोटा पकडने वाला । अर्थं गृह्णाति **आर्थिक** । अर्थ से ठ—आदि० । धन लेने वाला, चन्दा सहायतार्थं । ललाम चिह्न गृह्णाति परिचयपत्र लेता हैं **लालमिक** ललामसे ठ–इक आदि० । लिङ्ग ललाम च ललाम च इत्यमर । (९१) **धर्मम्** इस द्वितीयान्तसे चरति अर्थमे ठक् हो । यहा चरतिका आसेवा–स्वारसिकीप्रवृत्ति, सेवाका पूर्णभाव अर्थ है । उसी अर्थमे ठ आदि । धर्मं चरति **धार्मिक** तन, मन, धन, जीवनसे धर्मात्मा यदि सयोगसे धर्मको माना, फिर दुष्ट निकला, तब न ठक्, न धार्मिक । (वा०) अधर्मसेभी आचरण अर्थमे ठक् कहे । ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति अत वार्तिक पढा । अधर्म चरति अन्यायपर चलता है । तन,मन, धन, जीवन से अधर्मी है । यदि दैववशात् अधर्मे परिवृत्त , पुन सद्वृत्त स आधर्मिक इति नोच्यते (नही कहलायेगा । (९२) **प्रतिपथ** इस अव्ययीभावसे एति गच्छति अर्थ मे ठन् हो, ठक् भी । ठन् पढना उचित । प्रतिप्रथिक की सिद्धिके लिये । पथ-२ प्रतिपथ प्रत्येक रास्ते पर चलता है अर्थमे ठ—इक आदि **प्रातिपथिक** लक्षणे-नाऽभिप्रती । (९३) **समवायान्** । समूह–समुदायवाचक शब्दके द्वितीयान्तदशा

वायान्समवैति ४।४।४३॥ सामवायिक । सामूहिकः । (९४) **परिषदो ण्य** ४।४।४४॥ परिषद समवैति पारिषद्य ।(**१५९५**) **सेनाया वा** ४।४।४५॥ ण्य स्यात् । पक्षे ठक् सैन्या –सैनिका । (९६) **सञ्ज्ञाया ललाटकुकुक्कुट्यौ पश्यति** ४।४।४६॥ ललाट पश्यति लालाटिक सेवक । कुक्कुटीशब्देन तत्पाताहं स्वल्पदेशो लक्ष्यते । कौक्कुटिको भिक्षु । (९७) **तस्य धर्म्यम्** ४।४।४७॥ आपणस्य धर्म्यमापणिकम् । (९८) **अण् महिष्यादि-**

से ठक् हो, समवैति–मेलयति मिलने मिलाने झुण्ड अर्थमे । समपूर्वक इ–धातु का प्रवेशकर एकदेशीयभवमर्थं । बहुवचनसे अर्थवाची शब्द स्वीकृत । कुरुक्षेत्रे समवेता , सभी एकत्रित हुए । समवाय–समुदायमे मिल जाने अर्थसूचक ठ–इक आदि० **सामवायिक** मेलमिलाप वाला । समूहान् समवैति–समूहसे ठ—इक आदि० झुण्डमे मिलनेवाला ।

(९४) **परिषद** द्वितीयान्त परिषद शब्दसे समवैति (मिलजाने) अर्थमे ण्य हो। ठगपवाद । परिषदसे सभा जूलूस आदिमे मिलनेका सूचक ण्य—य आदि । **पारिषद्य** ।

(१५९५) **सेनासे** समवैति अर्थमे ण्य विकल्पसे हो। पक्षमे ठक् भी । सेनां मिलन्ति अर्थे सेनाशब्दात् ण्य–य आदि । सैन्या । जब ठ–इक आदि० तब **सैनिका** , सेनामे मिलने वाले । इसीका फलितार्थ कथन निघण्टुमे **सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च ते** । (९६) **सञ्ज्ञाया**–सम्यज्ञान सञ्ज्ञा प्रसिद्धि तस्या विषयभूतेऽर्थे ललाट कुक्कुटी शब्दके द्वितीयान्तदशासे ठक् हो, पश्यति अर्थमे । सञ्ज्ञा रुढि है । 'ललाट मस्तकको देखता है' ऐसा सेवक अर्थमे ठ–इक आदि। **लालाटिकः । प्रभोर्भालदर्शी कार्याक्षमश्च य इत्यमर** । दूरे स्थित्वा प्रभोर्ललटं पश्यति न तु कार्ये प्रवर्तते (मुह ताके, काम न करे) **कुक्कुटी** (मुर्गी) शब्दसे **तत्पाताहं**–उसके पतन योग्य उडकर रुकनेका छोटा देश लक्षित है। कुक्कुट पश्यति–मुर्गीके निवास स्थानको देखता है अर्थमे ठ–इक आदि कौक्कुटिकः भिक्षु सन्यासी, पद बढाने मात्रमे, चक्षुसयोगवाले ।

(९७) **तस्य**–षष्ठ्यन्तसे धर्मादनपेत धर्म्यम् आचरितु योग्य, धार्मिक आचरण योग्य कर्म अर्थमे ठक् हो । अनपेतका न अपेतम्–अच्युतम अभ्रष्टम् अर्थ । आपणस्य हाट बाजारका धर्मम्य (चहल पहल क्रय विक्रय लेन देनका कर्म) अर्थे ठ–इक आदिवृद्धि । **आपणिकम** । छात्राणा धर्म्यं छात्रक नित्य नियम सयमसे पढना । समाजस्य धर्म्यं समाजिक जनसेवा आदि कर्म ।

भ्य ४।४।४८॥ महिष्या धर्म्यं माहिषम् । याजमानम । ९९ ऋतोऽञ् ४।४।४९॥ यातुर्धर्म्यं यात्रम् । 'नराच्चेति वक्तव्यम्' । नरस्य धर्म्या नारी । 'विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्य ' विशसितुर्धर्म्य वैशस्त्रम् । विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्य ' । विभाजयितुर्धर्म्यं, वैभाजित्रम् । १६०० अवक्रय ४।४।५०॥ षष्ठचन्ताट्ठक्स्यादवक्रयेऽर्थे । आपणस्यावक्रय आपणिक । राजग्राह्य द्र यमवक्रय । १६०१ तदस्य पण्यम् ४।४।५१॥ अपूपा पण्यमस्य आपूपिक । १६०२ लवणाट्ठञ् ४।४।५२ लावणिक । १६०३ किसरादिभ्यः ष्ठन् ४।४।५३॥ किसर पण्यमस्य किसरिक । षित्वान्ङीष । किसरिकी

(९८) अण् हो षष्ठचन्तदशाके महिषीसे, धर्म्य=धर्म जुडा कर्म अर्थमे अण् आदि । माहिष कर्म रानीका धर्मानुष्ठान । यजमानस्य धर्मयुक्तम् आचरण याजमानम । यजमानसे अण् आदि० । उसके धर्मयुक्त कर्म आचरण अर्थमे ।

(९९) ऋदन्तके षष्ठचन्त दशामे अञ् हो धर्माचरण अर्थमे । यातुर्धर्म्यम् याताका विशेषार्थ उक्त (या प्रापणे) यात्रा करनेवाला अथवा याता (कश्चित सम्बन्धित)के कर्म (धर्म युक्त आचरण) योग्य अर्थमे–यातृसे अञ, ऋको र–यण् (वा०) नरमे भी अञ् कहे । नरकी उपभोग्या, धर्मयुक्त–आचरणयोग्या स्त्री नारी । नरसे अञ् आदि ङीप् (वा०) विशसितृ से इट्का लोप हो और अञ् हो । ऋ को र यण् । आदिवृद्धि वैशस्त्र, विशानी । वेसाहनेवालोका धर्मयुक्त कर्म । (वा०) विभाजयितृ शब्दसे अञ् हो, णिलोप भी । विभाजन करनेवाले का धर्मयुक्त कर्म अर्थमे अञ्, णिलोप विभजितृ अञ् आदिवृद्धि वैभाजित्रम् ।

(१६००) अवक्रय अवक्रियते अनेन, करणे एरच् । जिससे खरीदाजाय वह साधन द्रव्य या वस्तुकानाम अवक्रय उसीके षष्ठचन्त दशासे ठक हो, अवक्रय अर्थमे । आपण–हाट बाजारका अवक्रय टैक्स–राजाके ग्रहणयोग्य धन इकट्ठा किया हुआ अर्थमे ठ–इक आदि आपणिक दुकानोसे वसूला हुआ धन । भवनानामवक्रय भावनिक भवनटैक्स । जलानाभवक्रय जालिक, यात्रिक यात्रीटैक्स (१६०१) तदस्य विक्रेतव्य पण्य–बाजारमे बेचनेकी वस्तु । किस वस्तुकी दुकान है इस अर्थमे अपूपा पण्यमस्य मालपूवेकी दुकानवाला ठ–इक आदि० । आपूपिक पार्पटिक । यदि नमककी दुकान हो तब ठञ् ।

(१६०२) लणव पण्यमस्ति अस्य लावणिक नमक दुकानवाला (१६०३) किसर उशीर नलद इत्यादि गणमे पढे शब्दोसे ष्ठन् हो । तदस्य पण्य अर्थमें किसर नामक सुगन्धिकी दुकान वाला अर्थमे ठ–इक आदि ।

किसर, उशीर, नलद इत्यादिकिसरादय सर्वे सुगन्धिद्रव्यविशेषवाचिन । (१६०४) **शलालुनोऽन्यतरस्याम्** ४।४।५४।। ष्ठन्स्यात्, पक्षे ठक् । शलालुक –शलालुकी । शालालुक । शालालुकी । शलालु सुगन्धिद्रव्यविशेष । (१६०५) **शिल्पम्** ४।४। ५५ ।। मृदङ्गवादन शिल्पमस्य मार्दङ्गिक । (१६०६) **मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्** ४।४।५६।। मड्डुकवादन शिल्पमस्य माड्डुकिक । झर्झर –झार्झरिक । (१६०७) **प्रहरणम्** ४।४।५७।। तदस्य इत्येव । असि प्रहरणमस्य आसिक । धानुष्क (१६०८) **परश्वधाट्ठञ्च** ४।४।५८।। पारश्वधिक । (१६०९) **शक्तियष्ट्योरीकक्** ४।४।

किसरिक । ष इत् होनेसे ङीष् भी हो । कुशीर नामक इत्रका पण्य–दुकान वाला **कुशीरिक** नलदिक । ये सभी सुगन्धि- सेंट आदिके वाचक है ।

(१६०४) **शलालुसे** (अस्य पण्य) इसकी दुकान अर्थमे ष्ठन् हो, ठक् भी विकल्पसे । ठ को क (उक्से परे है) **शलालुक** शलालु पण्यमस्य । उक पर त्वात ठम्य क । षित्से ङीष् । **शलालुकी**–जब ठक् तब आदिवृद्धि । यह भी किसी सेटका नाम है ।

(१६०५) **शिल्प** क्रियासु कौशल किमी कलामे, क्रियामे सफल होना निपुण होना शिल्प है । यथा मृदङ्ग बजानेकी विलक्षणकला अर्थमे प्रथमान्त मृदङ्गसे ठ-इक आदि । मार्दङ्गिक । मृदङ्गसे वादनकला, तद् विषयक लक्षण । वेणुवादन शिल्पमस्य वैणुक । घटवादन शिल्पमस्य **घाटिक** । **जालतरङ्गिक**

।१६०६। **मड्डुक**–ढोल नगाडा डमरू, झर्झर इनसे सम्बन्धित वादन क्रिया कुशल अर्थमे अण् हो, ठक भी । प्रथमान्त मड्डुकसे अण् आदिवृद्धि **माड्डुक** । जब ठ-इक आदि, तब **माड्डुकिक** । झर्झर वादन कौशलमस्य अण् झार्झर । इक–झाझरिकः झाझ बजानेमे कुशल । वादनका स्वविषयमे लक्षणा ।

।१६०७। **प्रहरणम्** प्रह्रियते अनेन आयुध–मारका साधन । सम्बन्धित व्यक्ति अर्थमे साधनसे ठक् हो । असि तलवार प्रहारका साधन है । ठ–इक आदिवृद्धि **आसिक** । तलवारचालक । धनु प्रहरणमस्य धानुष्क । उससे परे ठ को क आदि० । धनुष प्रहारवाला । १६०८ **परश्वध** से ठञ् हो, ठक् भी । अस्य प्रहरण अर्थमे । परशुश्च परस्वध फरसा प्रहारका विषय हो, ठ-इक आदि **पारश्वधिक परशुराम** । १६०९ शक्ति और यष्टिके प्रथमान्तदशासे प्रहार कर्ता अर्थमे ईकक् हो । शक्ति प्रहरणमस्य अर्थमे ईकक् आदिवृद्धि आदि । **शाक्तीक** मेघनाद । शक्तिप्रहारकर्ता । यष्टि प्रहरणमस्य छडी मारका विषय

५९॥ शाक्तीक । याष्टीक । (१६१०) अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः ४।४।६०॥ तदस्य इत्येव। अस्ति परलोक इत्येव मतिर्यस्य स आस्तिक । नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिक । दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिक । ११ शीलम् ४।४।६१॥ अपूपभक्षण शीलमस्य आपूपिक । १२ छत्रादिभ्यो णः ४।४।६२॥ गुरोर्दोषाणामावरण छत्रम, तच्छीलमस्य छात्र ।१३ कार्मस्ताच्छील्ये ६।४। १७२॥ कार्म इति ताच्छी ये णे टिलोपो निपात्यते । कर्मशील काम । 'नस्तद्धिते' इत्येव सिद्धे 'अणकाय ताच्छीलिके णेऽपि'। तेन

हो। यष्टिसे ईकक् आदिवृद्धि। याष्टीक. बालक ।

१६१० अस्ति नास्ति, दिष्टसे मति बुद्धि विचार मान्यता अर्थमे ठक् हो। अस्ति नास्ति निपात शब्द है। अस्य मति अर्थने ही। अस्ति परलोक स्वर्ग, नरक, वेद, भगवान, ऐसी मति इच्छा बुद्धि हो जिसकी वह **आस्तिकः** अस्तिसे ठ-इक आदि०। अथवा वचनसामर्थ्यसे अस्ति नास्ति इस आख्यात=तिडन्तसे प्रत्यय। नास्तिमति यस्य, परलोक, भगवान नहीं है ऐसी बुद्धिवाला **नास्तिक**। नास्ति ठ-इक आदि०। **दैव दिष्ट भागधेयमित्यमर** भाग्य भरोसा ऐसी बुद्धि हो जिसकी **दैष्टिक**। दिष्टशब्दात् ठ-इकादि। भाग्य ही सबकुछ है नालम्बते दैष्टिकतामिति माघ। (११) **शील**=स्वभाव यस्य, किसी वस्तुके सेवनका स्वभाववाला अथमे प्रथमान्तसे ठक् हो। यथा अपूपा मालपूवाखाना स्वभाव है इसका। अपूपशब्द स्वभक्षणे लाक्षणिक। ठ—इक आदि **आपूपिक** गुडभक्षण शील यस्य **गौडिक**। तण्डुल भक्षण शील **ताण्डुलिक**, **चार्वणिक**।

(१२) **छत्रादिगणमे** पढे शब्दसे अस्य शील अथमे ण हो। गुरुके दोष पर आवरण=पर्दा डालना छत्र है। छत्र शील यस्य छात्र वैसा स्वभाव वाला। दोषावरणमे छत्रका अर्थ गौड है। छत्रसे ण आदिवृद्धि **छात्र**। (१३) **कार्म**. कर्मशील कर्मयोगी कार्यमे दक्ष। तच्छील यस्य स तच्छील तस्य भाव **ताच्छील्य**, वैसा स्वभाव वाला अर्थ खुलाता हो तब कर्मन्से ण—अ। उसके परे टि अन्का लोप निपातित है। **कार्म** कर्मयोगी छत्रादि मानकर ण हुआ। यहाका टिलोप प्रकृतिभाव निवृत्तके लिये। अन्यथा नस्ताद्धितेसे ही टिलोप होता अण् कार्य प्रकृतिभाव आदि है उसीप्रकार तत्शील अर्थमे ण प्रत्यय परे भी हो ऐसा ज्ञापन करता है। उस ज्ञापनका फल हुआकि चुराशीलमस्या चोरी करना स्वभाववाली **चौरी**। तप शीलमस्या तप करना स्वभाव वाली **तापसी** आदिमे तत् शील चुरा, तप शब्दसे छत्रादिमानकर ण

चौरी, तापसी इत्यादि सिद्धम । ताच्छील्ये किम् । कार्मण । १४ **कर्माध्ययने वृत्तम्** ४।४।६३।। प्रथमान्तात्षष्ठ्यर्थे ठक्स्यादध्ययने वृत्ता या क्रिया सा चेत्प्रथमान्तस्यार्थ । एकमन्यद्वृत्तमस्य ऐकान्यिक । यस्याध्ययने प्रवृत्तस्य परीक्षाकाले विपरीतोच्चारणरूप स्खलितमेक जात, स । १६१५ **बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ्** ४।४।६४।। प्राग्विषये । द्वादशान्यानि कर्माध्ययने वृत्तान्यस्य द्वादशान्यिक । द्वादशापपाठा अस्य जाता इत्यथः। १६ **हित भक्षा** ४।४।

प्रत्यय होनेपर भी अणन्त काय डीप् आदि हुए। ताच्छील्य क्यो पढा ? कर्मण इदम अथमे तस्येद सूत्रसे अण् आदि कार्मण । अन् सूत्रके प्रकृतिभावसे टिलोप नही, तत शील न होनेसे । (१४) **कर्माध्ययने** प्रथमान्तसे षष्ठीके अर्थ मे टक् हो, अध्ययनके विषयमे जो न्यूनता, स्खलन, त्रुटि वृत्ता=हो गयी हो वह क्रिया प्रथमान्तका अथ होनेपर तदस्य (पण्यम) अनुवतते । कर्माध्ययने वृत्त अर्थ निर्देश है । कम शब्द क्रिया परक वृत्तका जातम अर्थ । वृत्त कर्म प्रति विशेषसमर्पकम् । एक=जिसके अध्ययनके विषयमे प्रवृत्ति होनेपर उत्तीर्णताके लिए परीक्षाकालमे **अन्यद्वृत्तम्** एक त्रुटि स्खलन, विपरीत उच्चारण हो गया हो वह व्यक्ति अर्थमे एकान्यशब्दसे ठ-इक आदिवृद्धि । **ऐकान्यिक** एक त्रुटि वाला तद्धितार्थ है । द्वेअन्यद् वृत्ते अस्य **द्वैयान्यिक** परीक्षामे दो त्रुटि वाला **त्रैयन्यिक** तीन त्रुटि वाला । कार्य पूववत् ऐच् आगम विशेष । प्रथमान्तार्थ ही तद्धितार्थ हैं ।

(१६१५) **बहु अच्** पूर्वपदमे हो उससे ठच् हो, प्राग्विषये तस्य कर्माध्ययने वृत्तम्,उससे सम्बन्धितकर्म या अध्ययन अथमे त्रुटि स्खलन अर्थ होनेपर द्वादश अन्यानि (बारह गलती) कर्म या अध्ययनमे हो गयी हो, इस अर्थमे द्वादशान्य शब्दसे ठ–इक आदि **द्वादशान्यिक** बारह अपपाठ=भ्रष्ट उच्चारण करने वाला **त्रयोदशान्यानि** वृत्तानि यस्य–तेरह स्खलन पाठमे या कर्ममे करनेवाल। । त्रयोदशान्यिक ,पञ्चान्यिक आदि । तद्धितार्थ । समाससे ठ आदि ततष्ठक् तब **द्वैयान्यिक**, त्रैदान्यिक । यहा वृद्धि बाधकर ऐच ।

(१६) **अस्मै**हित इसके लिये गुणकारी है **अर्थमे** प्रथमान्तसे ठक् हो । जो हित है वह भक्षा खानेकी वस्तु हो । सस्कृत भक्षाकी तरह । यहा तदस्य आया । षष्ठी चतुर्थीमे बदली । तदस्मै हित (हितके योगमे चतुर्थी) अपूप माल पूआका भक्षण=खाना स्वभाव वाला । भक्षणमे लाक्षणिक अपूप शब्दात ठ-इक आदिवृद्धि **आपूपिक** । शष्कुली भक्षण हितमस्मै–पूडी पचाने वाला **शाष्कुलिक**.

६५।। अपूपभक्षणं हितमस्मै आपूपिकः । १७ **तदस्मै दीयते नियुक्तम्** ४। ४। ६६।। अग्रभोजनं नियुक्तं दीयते अस्मै आग्रभोजनिकः । १८ **श्राणामांसौदनाट्टिठन्** ४।४।६७।। श्राणा नियुक्तं दीयतेऽस्मै श्राणिकः । श्राणिकी । मांसौदनग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् । मांसौदनिकः—मांसिकः—ओदनिकः । १९। **भक्तादणन्यतरस्याम्** ४।४।६८।। पक्षे ठक् । भक्तमस्मै नियतं दीयते भाक्तः—भाक्तिकः । १६२०। **तत्र नियुक्तः** ४।४।६९।। आकरे नियुक्तः आकरिकः । २१ **अगारान्ताट्ठन्** ४।४।७०।। देवागारे नियुक्तो देवागारिकः ।

गौडिक । (१७) **तदस्मै** सीयय दीयते इशके लिये नित्य नियमसे दिया जाता है इस अर्थमे प्रथमान्तसे ठक् । अग्रभोजन=सर्वप्रथम भोग नित्य नियमसे पाने वाला अर्थमे अग्रभोजनसे ठ–इक आदि । **आग्रभोजनिक** प्रथम भोजनकर्ता नित्य नियमसे अग्रपूजन दीयते अस्म आग्रपूजनिक । चान्दनिक ।

(१८) **श्राणा मांस** ओदनसे ट्ठिन् हो तदस्मै दीयते नियतम् अर्थमे **श्राणा यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा** इत्यमर । हलुआ नित्य नियमसे दिया जाय अर्थमे श्राणासे ट्ठिन् । अनुबन्ध लोप ठ–इक, यस्येति आलोप **श्राणिक** । ट्ठिन्से टिड्ढाणञ् ङीप् श्राणिकी । मांसौदनौ नित्य दीयते अस्मै आमिष और भात मिलाकर पाने वाला ठ–इक आदि । **सघात**=मांसश्च ओदनश्च अनयो समाहार समुदाय ही सघात है । उसके विगृहीत–अलगावके लिए । क्योकि ठक्मे हीं ओदनिक सिद्ध होता है । आदिवृद्धि वारणके लिए ट्ठिन् पढा । मांस नियत दीयते **मांसिक** श्वा (विदेशी कुत्ता) ओदन नियत दीयते भात नियमसे पाता है टिठन् **ओदनिक** बगाली । (१९) **भक्त** शब्दसे अण हो पक्षमे ठक् भी, उक्त अर्थमे । भात नियत=नित्य नियमसे दीयते अण् आदि भाक्त । जब ठ–इक आदि **भाक्तिक** नियमसे भात पाने वला ।

(१६२०) तत्र**नियुक्त** अधिकृत सरक्षणादौ प्रेरित रक्षाके लिए अधिकार प्राप्त अर्थमे ठक् हो सप्तम्यन्तसे । आकरे=खानमे कोयला, सोना, चादीकी उत्पत्ति स्थानमे रक्षाके लिये अधिकार प्राप्त अर्थमे ठ–इक आदिवृद्धि **आकरिकः** अधिकारी रक्षक, द्वारपाल । खनि स्त्रियामाकर स्यादित्यमर । खान रक्षक पाठशालाया नियुक्त पाठशालिक चपरासी । भवने नियुक्त भावनिक दरवान (२१) **अगार** अन्त शब्दसे तत्र नियुक्त अर्थमे ठन् हो । न–पाठका फल आदिवृद्धि न होना । देवागारे=देवताके मन्दिरमे अधिकारसे नियुक्त पुजारी प्रबन्धक ठ–इक आदि **देवागारिक** ।

२२ **अध्यायिन्यदेशकालात्** ४।४।७१। निषिद्धदेशकालवाचकाट्ठक्स्यादध्येतरि। श्मशानेऽधीयते श्माशानिकः। चतुर्दश्यामधीयते चातुर्दशिकः। २३ **कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति** ४।४।७२।। तत्र इत्येव। वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः। वंशा वेणव कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। तस्मिन्देशे या क्रिया यथा अनुष्ठेया ता तथैवानुतिष्ठतीत्यर्थः। प्रास्तारिकः। सांस्थानिकः। २४ **निकटे वसति** ४।४।७३।। नैकटिको भिक्षुः। १६२५। **आवसथात् ष्ठल्** ४।४।७४। आवसथे वसति आवसथिकः। षित्वान्ङीष्। आवसथिकी।

---

(२२) **अध्यायिनि**=अध्ययनकर्ता अर्थमे निषिद्ध अनुचित देश या काल हो ऐसे शब्दसे ठक् हो। अदेशकालमे नञ्का निषिद्ध अर्थ। श्मशानमे पढनेवाला अर्थमे ठक् आदि। **श्माशानिकः** भ्रष्टदेश है। चतुर्दशीमें पढता है। भ्रष्टकाल अनध्याय हैं चतुर्दशीसे ठ–इक आदि। आदेशकाल क्यो पढा ? काश्यामधीते, पूर्वाह्णे अधीते यहा देश काशी, काल पूर्वा०, निषिद्ध नही न ठक्।

(२३) **कठिनान्त** प्रस्तार, संस्थान इनके सप्तम्यन्तसे ठक् हो, व्यवहरति उचितक्रिया कर्ता अर्थमे। जिस बांसमे पोल न हो उसका देश वंश कठिन है। उसमे उचितकर्ता क्रिया अर्थमे ठ--इक आदिवृद्धि **वांशकठिनिक**। इसका विस्तार बोले वंशा वेणव कठिना है जिस देशमे वह देश वंशकठिन उसमे जो क्रिया जैसी की जाय उस क्रियाको वैसा ही करता है। प्रस्तारो यज्ञ तत्र व्यवहरति उचिता क्रिया करोति अर्थे ठ-इक आदि **प्रास्तारिक**-यज्ञका समुचित प्रबन्धक। अथवा पाषाण प्रस्तरमे उचित क्रिया काट छांट मूर्ति आदि बनाने अर्थसे ही ठक् आदि। पत्थरमे कोरचीरकर कलाकारी। संस्थाने व्यवहरति **सांस्थानिक** किसी सभा संस्था समुदायका उचित प्रबन्धक।

(२४) **निकटे** सप्तम्यन्तसे वसति अर्थमे निकटसे ठक् हो। **नैकटिक** निकट समीप निवास अर्थमे ठ-इक आदि हो। **भिक्षु** सन्यासी ग्रामस्य निकटे वसन् भिक्षार्थमेव ग्रामे प्रविशति। ग्रामात् क्रोशे भिक्षुणा भवितव्यम्। गावसे कोश दूर सन्यासी ठहरे इसका उल्लंघन कर निकटमे वसता है तभी ठक्।

(१६२५) **आवसथ** से ष्ठल् हो तत्र वसति अर्थमे। आवसन्ति अस्मिन् **आवसथ** गृह घरमे रहे। ष्ठल् ठ–इक ङीष् भी। **आवसथिक** गृहस्थ गृहिणी। श्लोकवार्तिक आकर्षात्=प्राग्वहतेष्ठक्के संशयनिवृत्तिके लिये। ष्ठल् पढा। पर्पादिसे ष्ठन् इष्ट है। भस्त्रादिभ्य से ष्ठन्, कुशीदद्शैकादशासे ष्ठन्

'आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्य कुसीदसूत्राच्च
आवसथात्किसरादे षित षडेते ठगधिकारे' ॥ (श्लो० वा०)
षडिति सूत्रषटकेन विहिता इत्यर्थ । प्रत्ययास्तु सप्त ॥
इति तद्धिते प्राग्वहतीय (ठगाधिकार) प्रकरणम् ।

अथप्राग्घितीयप्रकरणम् । ३१॥

२६ **प्राग्घिताद्यत्** ४।४।७५॥ **'तस्मै हितम्'** (सू १६६५ इत्यत. प्राग्यदधिक्रिने । २७ **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** ४।४।७६ रथ वहति रथ्य । युग्य । वत्साना दमनकाले स्कन्धे यत्काष्ठमासज्यते स प्रासङ्ग । त वहति प्रासङ्ग्य । २८ **धुरो यड्ढकौ** ४।४।७७॥ 'हलि च' इति दीर्घे प्राप्ते।

ष्ठच् इष्ट है । आवस्थात्ठन् । किसरादिभ्य ष्ठन् । सूत्र इष्ट प्राग्वहतेष्ठक् सूत्र के अधिकारमे विधान किय गये ६ प्रत्यय, षित् ६ सूत्रमे लब्ध प्रत्यय तो साथ है, किन्तु षट्षित षटत्वम विवक्षितम् । यहा तक ठक्की सीमा पूर्ण ।

अथप्राग्घितीया—

हिते भवा॰ हितीया हित अर्थमे होने वाले प्रत्यय (२६) **प्राक् हितात्** (पूर्व सवर्णका विच्छेद) तस्मै हित सूत्रसे पहले यत्का अधिकार चलाते हे । हितवाला सूत्र स्मरणीय । उसके पहलेके अर्थोका प्रकरण । जिसमे यत्का अधिकार है । (२७) **तद्वहति** से रथ युग प्रसङ्गके द्वितीयान्त दशासे वहति ढोना खींचना अर्थमे यत् हो । रथ वहति अर्थे यत, रथ य । यस्येति अक रलोपे स्वादि कार्ये रथ्य । रथके साथ युग भी रथाङ्ग है । घोडे आदिके कन्धोपर रथ खीचनेके लिए जो काष्ठ तिरछा जुडता है वह युग है या खेत जोतते समय बैलोके कन्धेपर जूआ नाधा जाता है । युग वहति यत् अलोप आदि युग्य । अश्व या बैल बछडेके दमन काले=दौडनेका जोश कम वास्ते कन्धेपर जो काठ जोडा जाता हे वह प्रासङ्ग , त वहति उसको खीचने वाला अथमे यत् आदि । अथवा समीकरण काष्ठ पाटा (हेगा) अथवा रथके खीचनेवास्ते सुशिक्षित घोडोको एक जोडीके बाद दूसरी आगे पुन जोडा जाय दूसरे जूएको प्रासग कहते हैं । (प्रासङ्गो ना युगाद्युगे) इत्यमर ।

(२८) **धुर** शब्दके द्वितीयान्त दशासे वहति अर्थमे यत् हो ढक् भी । धुर्वी हिसाया॰ क्विप् । र से परे व का लोप । घोडे या बैलके कन्धेपर बाहरी भाग मे जुएका हिस्सा धू । धुर वहति धुर्य धुरसे यत् । हलि चसे दीर्घ प्राप्त,

२९ **न भकुर्छुराम्** ८।२।७९।। भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात्। धुर्य –धौरेय। (१६३०) **ख सर्वधुरात्** ४।४।७८।। सर्वधुरा वहतीति सर्वधुरीण। ३१ **एकधुराल्लुक्च** ४।४।७९।। एकधुरा वहति एकधुरीण – एकधुर। ३२ **शकटादण्** ४।४।८०।। शकट वहति शाकटो गौ। ३३ **हलसीराट्ठक्** ४।४।८१।। हल वहति हालिक। सैरिक। ३४ **सज्ञाया जन्या** ४।४।८२।। जनी वधू। ता वहन्ति प्रापयन्ति जन्या। (१६३५)

उसका निषेध सूत्र। (२९) न। भसज्ञक और कुर, क्षुर्के उपधा=अन्त्य अल्के पूर्व वर्णको दीर्घ नही होता। भसज्ञक है दीर्घ नही हुआ। जब ढ–एय आदि वृद्धि, तब **धौरेय**। धूर्वसे धुर्य धौरेय धुरीण यत्। उपधा क्यो कहा ? प्रतिदीव्न यहा निषेध न हो।

(१६३०) **ख सर्वधुरा** शब्दसे ख हो वहति अर्थमे। सर्वाधू सर्वधुरा। तत्पुरुष समास, समासान्त अ, परलिङ्ग स्त्री टाप्। सर्वधुरा वहति द्वितीयान्त से ख–ईन णत्व **सर्वधुरीण**। सभी प्रकारका भार खीचने वाला तगडा बैल, घोडा। **स तु सर्वधुरीणो यो भवेत्सर्वधुरावह** इत्यमर। (३१) **एक धुराके** द्वितीयान्त दशासे वहति अर्थमे ख हो। उसका पक्षमे लुक्। एकढगके धुराको खीचने वाला अर्थमे एकधुरासे ख–ईन। आकार लोप णत्व। **एकधुरीण**। लत्र लुक् हुआ तब **एकधुर** एक भारवाहक। (३२) **शकट** के द्वितीयान्त दशामे अण् हो ढोने खीचने अर्थमे। गाडो खीचने वाला अर्थमे अण् आदि। **शाकट** अनङ्गान् यत् को बाधकर। तस्येदमे अण् होकर सिद्ध होता। इस सूत्रके आरम्भ शक्ति से तदन्तविधि ज्ञापन। उसका फल द्वे शकटे वहति **द्वैशकटिक**।

(३३) हल और सीरके द्वितीयान्तसे खीचने अथमे ठक् हो। हलको खींचता है। ठ इक आदि हालिक। सीर वहति खेतको जोतता है। या गाडा खीचता ठ–आदि यहा भी तदन्तविधि। द्वैहलिक द्वैसीरिक। (३४) **सज्ञाया**–जनी शब्दके द्वितीयान्तसे वहति अर्थमे यत् हो सज्ञा रूढि प्रसिद्धिमे जनी बधू दूलहन नवविवाहिता। जायते अस्या गर्भ। जिसमे जन्मका कारण गर्भ हो। जनधातु से इञि जनिक्ष्योश्चसे वृद्धिनिषेध। ङोष। **समा स्नुषाजनी वध्व** इत्यमर। जनी वहति प्रापयति वर गृह, नई वधूको वरके पास तक पहुचानेवाली **जन्या** जामातुर्वयस्या। **जन्या** स्निग्धा वरस्य ये इत्यमर। जनीसे यत्। अकार लोप। विवाहादिषु वधू जामातृसमीप प्रापयति। कालिदासने **वध्वा यान वाहेषु**। **यानेति जन्यानवदत्कुमारी**। जनी वहति जन्या तान् **जन्याभातृयवस्या**

विध्यत्यधनुषा ४।४।८३।। द्वितीय न्ताद्विध्यती यर्थे यत्स्यात्, न चेत्तत्र धनु करणम् । पादौ विध्यन्ति पद्या शर्करा । ३६ धनगणं लब्धा ४।४।८४।। तृन्नन्तमेतत । धन लब्धा धन्य । गण लब्धा गण्य । ३७ अन्नाण्ण ४।४।८५।। अन्न लब्धा आन्न । ३८ वश गत. ४।४।८३।। वश्य परेच्छानुसारी । ३९ पदमस्मिन्दृश्यम् ४।४८७।। पद्य कर्दम । नातिशुष्क इत्यर्थ (१६४०) मूलमस्यावर्हि ४।४।८८।। आबर्हणमाबर्ह उत्पादन, तदस्यास्तीत्यावर्हि मूलमावर्हि येषा ते मूल्या मुद्रा । (४१) सज्ञाया धेनुष्या ४।४।८९।। धेनुशब्दस्य षुगागमो यप्रत्ययश्च स्वार्थे निपात्यते, सज्ञायाम् । धेनुष्या

स्यात् । जन्या जनीवर्राप्रया जननी जनयित्रोश्च । जन्य निर्बाधयुद्धयो ।

(१६३५) विध्यति द्वितीयान्तसे बेधने रौदने मदने अर्थमे यत् हो । धनुष की क्रियग न हो तो । धनुषो अभाव अधनु यस्मिँस्तत् । तत्र=बेधने धनु करण न चेत् । पादौ=पैर बेधन रौदता है, पादसे यत्, पद्यतिसे पद्भाव पद्या । प्राचीनकालमे पैरसे मसलकर शक्कर चीनी बनते थे । अधनुषा क्यो कहा ? मैत्रः धनुषा चोर विध्यति यहा भेदने धनुषकरण है ।

(३६) धन और गणशब्दसे लब्धा प्राप्त करता है यत् । लब्धृ तृजन्त है । धन गणमे षष्ठी क्यो नही, तब बोले तृन्नन्त तृन्प्रत्यय है न लोकाव्ययसे षष्ठी का निषेध, धन लाभ करने वाला, यत् धन्य । गण—समुदाय लाभकर्ता यत् गण्य । गुटमे शामिल । (३७) अन्न के द्वितीयान्तसे लब्धा अर्थमे ण प्रत्यय हो, अन्नसे प्राप्त कर्ता अर्थेऽत्र् आदि । (३८) वशके द्वितीयान्त दशासे गत प्राप्त अर्थमे यत् हो । वश्य वश कान्ति इच्छा वसन वश इच्छा प्राप्त । इच्छाधीन, यत् हुआ । परस्य या इच्छा तामनुसरति परतन्त्र परवश ।

(३९)पदमस्मिन् । प्रथमान्त पदशब्दसे दृश्यते (देखा गया अर्थमे) यत् हो, तत् आया, प्रथमामे बदला (पद दृश्यते अस्मिन्) पैर दिखाई पडता हो जिसमे कीचड पद्य । पदशब्दसे यत् अकार लोप कर्दम । जो अधिक सूखा नही है ।

१६४० मूल मूल शब्दसे उखाडना अर्थमे यत् हो । वृह उद्यमने धातु आङ् उपसर्गसे उत्पादन अर्थमे है । आवर्हणम ही उत्पादन है वह क्रिया अस्य अस्ति आवर्हि जडसेउखाडना हो जिसका वे मूल्य । मूलसे यत्, अलोप, टाप् । मूगा मूलोत्पादन बिना सग्रहीतुमशक्या मध्यतो लूयमानेषु कोशस्थाअपि यस्याम् अवस्थाया पतेयु तामवस्था प्राप्त बहुत सूखे हुए । (४१। संज्ञायां=धेनु शब्दसे य प्रत्यय और षुक् आगम हो निपातनसे । सज्ञा किसी कारण प्रसिद्ध अर्थमे ।

बन्धके स्थिता। (४२) **गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः** ४।४।९०॥ गृहपतिर्यजमान, तेन संयुक्तो गार्हपत्योऽग्नि। (४३) **नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु** ४।४।९१॥ नावा तार्यं नाव्यम्, वयसा तुल्यो वयस्यः। धर्मेण प्राप्य धर्म्यम्। विषेण वध्यो विष्य मूलेनानाम्य मूल्यम्। मूलेन समो मूल्यः। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्।

यत् होता, तित्स्वर होने लगता। जो गाय बन्धकमे स्थित हो। ऋण लिया धेनुर्दोहनार्थम उत्तमर्णाय अधमर्णेन दीयते। दूहनेके लिए गाय दी जाय तब धेनुष्या। धेनुसे ष य टाप्। पाद समाप्ति तक संज्ञाका अधिकार, जो रूढि है।

।४२। **गृहपतिना**—यजमान अर्थमें तृतीयान्तगृहपतिसे ञ्य हो। यजमान संयुक्त अग्निविशेषसे सम्बन्धित सपत्नीक होमाग्नि अर्थमे ञ्य हो। अनुबन्धलोप आदिवृद्धि, इकारलोप **गार्हपत्य**। देवेषु हविषु अग्नये गृहपतये पुरोडाशमष्टकपाल निर्वपति। होम=हवनीये वर्तते। ४३। **नौ वयस्**, धर्म विष मूल—मूल सीता तुला इन आठोको क्रमसे तार्यतुला प्राप्य वध्य आनाम्य सम समित सम्मित इन अर्थोमे यत हो, तृतीयान्तसे। दोमूल शब्दोमे यथासख्य है। अत एक शेष नही। नही तो सात प्रकृति आठ प्रत्ययसे भ्रम होता। यथासम्भव करणे तृतीया कर्तरि, हेतौ, तुल्यार्थयोगमे तृतीयासे हो। समर्थविभक्ति स्वभावसे लब्ध। मूलान्तका द्वन्द्व करके अन्यके साथ द्वन्द्व। जहा सारूप्य नही वहा एकशेषभी नही। नावा नौकासे तरीतुं शक्यम् (ऋहोर्ण्यत्)तार्यं जल, नौकासे पारके योग्य पानी। नौसे यत वान्तोयि प्रत्ययेसे अवादेश, स्वादिकार्य **नाव्यम्** करणे तृतीया। वयसा—अवस्थासे तुल्य बराबर हो यन मित्र अर्थमे हो शत्रुमे नही। सज्ञाके अधिकारसे वयस यत्। स्वादि **वयस्य** मित्र, **स्निग्धो वयस्यः सवयाः** इत्यमर। **धर्मेण**—धर्मसे पाने योग्य फल अर्थमे यत्। धर्म य, यस्येति अलोपादि **धर्म्यं** धर्मफलम। विषसे वध्य वधमर्हति, मारने योग्य अर्थ मे यत **विष्य** दण्डादिभ्यश्चसे यत। मूलेन मूलधनसे अधिक लाभांश धन आनाम्य है। वस्त्र खरीदनेमे मूल धन। उस द्रव्यको मूल कहते है। उसके साथ विक्रेताकी सहमतिसे अधिक द्रव्य लाभ आनाम्य मूल्य है। लोकास्तु विक्रेतु- लब्ध सर्वं द्रव्य मूल्य व्यवहरन्ति। मूलसे यत् आदि। मूलेन सम तुल्य धन मूल्यम्। सीतया हलाग्रेण (जोते हुए खेतको। समित सगत निम्न=उन्नतादिरहित कृत, पाटा चलाकर बराबर किया या हलसे जोता गया खेत। सीतासे यत्। यस्येति आलोप, **सीत्यम्** इत्यादि। रथ सीत

तुलया सम्मित तुल्यम् । (४४) **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ४।४।९२॥ धर्मा-दनपेत धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ।** (१६४५) **छन्दसो निर्मिते ४।४।९३॥ छन्दसा निर्मित छन्दस्यम् । इच्छया कृतमित्यर्थ ।** (४६) **उर-सोऽण् च ४।४।९४॥ चाद्यत् । उरसा निर्मितः पुत्र औरस –उरस्य. ।** (४७) **हृदयस्य प्रियः ४।४।९५॥ हृद्यो देश । 'हृदयस्य हृल्लेख' इति हृदादेश ।** (४८) **बन्धने चर्षौ ४।४।९६॥ हृदयशब्दात्षष्ठयन्ताद्बन्धने यत्स्याद्वेदेऽभि-धेये । हृदयस्य बन्धन हृद्यो वशीकरणमन्त्र ।** (४९) **मतजनहलात्करण-जल्पकर्षेषु ४।४।९७॥ मत ज्ञान, तस्य करण भाव साधन वा मत्यम् । जन-**

हृलेभ्य यद्विधौ तदन्तविधि । पर सीत्य, द्विसीत्यम । तुलया–तराजूसे तौला हुआ समित-परिछिन्न सदृश, मात्रामे यत् । तुना य,आलोप आदि **तुल्यं** समान मदृश ।४४। **धर्मपथिन्** अर्थ, न्याय इनसे अनपेतम् अभ्रष्ट जुडे हुए अर्थमे यत हो, पञ्चम्यन्तसे ही होना उचित । धर्मसे अनपेत=अच्युत युक्त अर्थमे यत् । अकार लोप **धर्म्यं** धर्मसहित, पथोऽनपेत पथ्य सही रास्ते पर । पथिनसे यत् टिलोप आदि । न्यायादनपेत नीतिसहित, न्यायसे **यत्** आदि । अर्थादनपेत **अर्थ्यम्** अर्थसहित धनयुक्त ।

।१६४५। **छन्दसो**=छन्दस शब्दके तृतीयान्त दशासे निर्माण अर्थमे यत् हो । छदि सवर्णे इच्छाया, इच्छाअर्थमे छन्द शब्दप्रसिद्ध है स्वच्छन्दो॰छल दच्छ कच्छ असुन्से छन्दस् बना । निर्माणकी इच्छाहे कारण प्रत्यय । छन्द पद्ये अभिलाषे च इत्यमर । छन्दसा निर्मित इच्छासे बनाया हुआ काव्य, **छन्दस्य** निर्माणेऽर्थे यत् । ४६ **उरस्**के तृतीयान्त दशासे अण हो यत् भी । उरसा= हृदयके टुकडेसे बना हुआ अर्थमे अण् आदिवृद्धि औरस । जब यत् तब उरस्य । अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादधि जायसे, श्रुति । सज्ञाधिकारसे पुत्र अर्थ । जब उरसा निर्मित सुख तब यत् नही होगा । (४७) **हृदयस्य**–षष्ठयन्तहृदयशब्दसे प्रीणाति इति प्रिय प्रसन्न करने अर्थमे यत् हो । हृद्य हृदयका रोचक । यत्(हृदयस्य हृलेख) सूत्रसे हृत् आदेश । (४८) **बन्धने** बध्यते अनेन बन्धन करणमे ल्युट् । हृदयशब्दके षष्ठयन्त दशासे बन्धनका कारण अथमे यत् हो । ऋषौ=वेदका मन्त्र होनेपर (वशीकरणमन्त्र–परायेके हृदयको वशमे करनेका कारण है) अथमे यत् हृदयको हृत् आदेश । मन्त्र अर्थ होनेसे हृद्य ।(४९) **मतजन** हलसे क्रमश करण कृति जल्प अधिकबोलना, कर्ष अर्थमे यत् हो । मतका ज्ञान अर्थ, उसका करण, भावसाधन अर्थमे यत् अकार लोप । मन धातुसे भावमे क्त । करणसे

स्य जल्पो जन्य । हलस्य कर्षो हल्य । (१६५०) **तत्र साधु** ४।४।९८॥ अग्रे साधु अग्रच । सामसु साधु सामन्य । 'ये चाभावकर्मणो' इति प्रकृतिभाव । कर्मण्य । शरण्य । (५१) **प्रतिजनादिभ्य खञ्** ४।४।९९॥ प्रति जन साधु प्रातिजनीन । सायुगीन । सावजनीन । वैश्वजनीन । (५२) **भक्ताण्ण**. ४।४।१००॥ भक्ते साधवो भाक्ता शालय । (५३) **परिषदो ण्य** ४ ४।१०१॥ पारिषद्य । परिषद इति योगविभाग ण्णोऽपि । पारिषद ।

जनन क्रिया या साधन इष्ट मत्य ज्ञानका साधन । जनस्य जल्प लोगोका कोलाहल **जन्य** झुण्ड, झगडा युद्ध सट्टी । जनसे यत् । कर्षण कर्ष हलसे जोतना अर्थमे यत् हल्य जोन । कर्ममें षष्ठी तदन्तविधिसे द्विहल्य त्रिहल्य ।

(१६५०) **तत्र**=सप्तम्यन्तसे साधु अर्थमे यत् हो यहा साधुका प्रवीण निपुण कुशल हिम्मती अर्थ । हिन हो, न हो । क्योकि तस्मै हित पढा ही है । अग्रे साधु प्रथम, कुशल व्यक्ति अर्थमे यत् । अकारलोप अग्रच अग्रणी । साम गायनमे साधु कुशल अर्थे यत आदि **सामन्य** गायकोमे अग्रणी । यहा अन्का लोप नही होता, ये चाभावकर्मणो सूत्रके प्रकृतिभावसे । कर्मणि कुशल कर्मण्य शरणेसाधु शरण्य यतादि ।

(५१) **प्रतिजन** आदिगणमे पढे शब्दके सप्तम्यन्तसे साधु कुशलयोग्य प्रवीण अर्थमे खञ हो । उपकर्ता न गृह्यते, सञाधिकारात् । अन्यथा तस्मै हित प्रवर्तता जन-जन प्रति, प्रतिजन वीप्साभे अव्ययीभाव प्रत्येकमें योग्य, चतुरर्थमे प्रति जनसे ख—ईन, आदिवृद्धि । प्रातिजनीन । सयुगे युद्धे साधु कुशल सग्राममे कुशल । सयुगसे ख-आयनेयीनियिय से ईन,आदिवृद्धि **सायुगीन** । इदयुग, सयुग पापकुल परस्यकुल, अमुष्यकुल, सर्वजन विश्वजन पञ्चजन । परस्य अमुष्यमे निपातनसे षष्ठीका लुक् न । सर्वजने साधु **सावजनीन** । विश्वजने साधु **वैश्वजनीन** सम्पूर्ण लोगोमे चतुर । इदयुगे साधु ऐदयुगीन । इस युगमे सबमे कुशल । पञ्चजने साधु पाचवर्णोमे योग्य, यहा उपकारक अर्थ नही यदि होता परत्वद् तस्मै हित लग जाता । अमुष्यकुलीन इसके कुलमे कुशल । पाप कुलीन पापियोके वशमे उच्चतम ।

(५२) **भक्त** शब्दके सप्तम्यन्त दशासे योग्यअर्थमे ण हो । भक्ते—भात बनाने में योग्य, साधन, शालय चावल शाठी, तिन्नी अन्न अर्थमे अण्, अनुबन्धलोप आदिवृद्धि, बहुवचन **भाक्ता** । (५३) **परिषदके** सप्तम्यन्तसे साधु योग्य अर्थमे ण्य । परिषदि साधु सभामे प्रवीण चतुर अर्थे य आदि । **पारिषद्य**,

पर्षद इति पाठान्तरम। पार्षद) (५४) **कथादिभ्यष्ठक्** ४।४।१०२।। कथाया साधु काथिक। (१६५५) **गुडादिभ्यष्ठञ्** ४।४।१०३।। गुडे साधु गौडिक इक्षु। साक्तुका यवा (५६) **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** ४।४।१०४।। पथि साधु पाथेयम। आतिथेयम्। वसन वसति, तत्र साधुर्वासतेयी रात्रि। स्वापतेय धनम्। (५७) **सभाया य** ४।४।१०५।। सभ्य। (५८) **समानतीर्थे वासी** ४।४।१०७।। साधु इति निवृत्तम्। वसतीति वासी।

सभा चतुर। परिषदका विभाग करेगे, तब 'ण' भी होगा। आदिवृद्धि होकर पारिषद। सर्ववेद पारिषद हीद शास्त्रमिति भाष्ये। वह व्याकरणशास्त्र सभी ज्ञानराशिमे श्रेष्ठ सभापति है। सभाकुशल। कोई पार्षद ऐसा भी पढते है। उससे भी ण आदि। (५४) **कथा** आदि शब्दसे साधु अर्थे ठक् हो। कथाया कुशल **काथिक** कथासे ठ-इकादि। प्रावचनिक। वार्तायां साधु वार्तिक।

(१६५५) **गुड कुल्माष** सक्तु अपूप माष (माम) ओदन इक्षु, वेणु संग्राम संघात प्रवास निवास इत्यादिसे ठञ् हो। गुड बनानेमे योग्य साधन गन्ना अर्थमे गुडसे ठ-इक आदि० **गौडिक** ऐक्षुदण्डिक। सक्तुषु साधु सत्तू बनानेमे योग्य साधन जौ चना, मक्का। सक्तुसे ठ को उगन्त होनेसे क **साक्तुक**। अपूपे साधु **आपूपिक**, वेणौ साधु **वेणुक**। निवासे साधु **नैवासिक**। प्रावासिक। (५६) **पथि अतिथि** वसति स्वपति इनसे साधु अर्थे ढञ्। **पथि** साधु रास्तेमे उपयोगी खाना आदि वस्तु अर्थमे ढ। आयनेयी—सूत्रसे ढ को एय इलोप, आदिवृद्धि। **पाथेयम्** अन्नम्। अतिथिषु साधु अतिथेय भवन। अचानक आगन्ताका निवास, अतिथि भवन। वसन–निवास करना वसति है। (उसमे साधु योग्य रात्रि अर्थमे) वसतिसे ढ एय आदिवृद्धि। इलोप ङीप् **वास्तेयी**। आरामकी रात्रि। स्व—धन तस्य पति स्वपति आढ्य धनवान् तस्मिन्साधु **स्वापतेयम्**। ढ एय आदि। धन धनवानके लिये साधु है।

(५७) **सभा** के सप्तम्यन्तदशासे साधु अर्थमे य हो। यत् होता तित्स्वर हो जाता। सभाया साधुः प्रवक्ता सभा चतुर। सभासे य, यस्येति आलोपादि **सभ्य**। (५८) **समानतीर्थ** शब्दसे वासी अथमे य हो। साधु अर्थ रुक गया। वसति इति वासी निवासकर्ता। ग्रहादिगणको आकृतिगण मानकर णिनि। तीर्थका गुरु अर्थ। तरन्ति अनेन तीर्थ गुरुको पाकर अज्ञान सागर तरना। समानतीर्थ=एकगुरुके पास रहनेवाला समानको स, तीर्थसे य आदि। साथमे पढनेवाला **तीर्थ शास्त्राध्वरक्षेत्रोपाध्यायमन्त्रेषु। योनौ जलावतारे च**। इतने

समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्य ।(५९) समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ४।४।१०८।। सानने उदरे शयित स्थित समानोदर्यो भ्राता। (१६६०) सोदराद्य.४।४।१०९।। सोदर्य । अथ प्राग्वत्।

इति तद्धिते चतुर्थस्य चतुर्थपादे प्राग्घितीयप्रकरणम्।

अथतद्धिते छयद्विधिप्रकरणम् ।।३२।।

(६१) प्राक् क्रीताच्छ ५।१।१।। 'तेन क्रीतम्' इत्यत प्राक्छोऽधिक्रि-

---

तीर्थके अर्थ है। उनमे उपाध्याय गुरु ही मान्य सज्ञाधिकारसे।

(५९) समानोदर शब्दके सप्तम्यन्तसे एक ही पेटमे सोया, स्थितः अर्थमे यत् हो। ओकार उदात्त मान्य। समान पेटमे स्थित अर्थमे य। यस्येति अकार लोप्, समानोदर्य सगे भाई एक ही पेटसे प्रकट। शीधातु स्थिति अर्थमे है कलेशय, कुशेशयमे शयका स्थिति अर्थ। पूर्वापरप्रथम-सूत्रसे समास होनेपर यत्

(१६६०) सोदरके सप्तम्यन्तसे शामिल अर्थमे य हो। प्रत्यय स्वरसे अन्त उदात्त। समानोदरे शयित सोदरसे य। अकार का लोप, विभाषोदरेसे समान को स। अपन्थानन्तु गच्छन्त सोदरोऽपि विमुञ्चति। मुरारीका प्रयोग है इसमे सोदर्य क्यो नही हुआ? इसलिये कि सह उदर यस्य सोदर। वा उपसर्जस्यसे 'स' भाव होकर बना। अत यत्र भ्राता सहोदर सिद्धः।

इति प्राक् हितीया प्रत्यया पूर्णा।

अथपाञ्चमीकाः—

पञ्चमाध्याय वर्तिन प्रत्यया.। अष्टाध्यायीके पाचवें अध्यायके चारो पाद मे अनेक प्रत्यय है। उनमे छ और यत्का सर्ग। (६१) प्राक्। क्रीत अर्थका सूत्र 'तेन क्रीत' तृतीयान्तसे खरीदा गया अर्थ तकके पहलेके अर्थोमे छ प्रत्यय का अधिकार चलाते है। यहा अर्थकी सीमा स्वीकृत। प्रकृति या प्रत्ययकी सीमा नही। अवधि. अस्ति अस्य अवधिमान् अर्थ है। तेन क्रीत अर्थके पहले हित, वध, विकार तेनक्रीत आदि अर्थ उपस्थित हो। जैसे=मासात्पर महीने के बाद कालका ज्ञान ग्रामात्पूर्व देशका ज्ञान, अलोऽन्त्यात्पूर्व मे अल्का ही ज्ञान हो समान अर्थमे। यत् आदि प्रत्यय दूसरी प्रकृतिमे सावकाश हो। जब छ प्रत्ययको तक्र कौण्डिन्यन्यायसे बाधेगे। अत अर्थ ही अवधि—सीमा है। स्वभावत छ उपस्थित होगा।

(६२) उगवादिभ्य। उश्च गवादयश्च द्वन्द्वसे पञ्चमी। उगिद्वर्ण ग्रहणवर्जम

यते। (६२) उगवादिभ्यो यत् ५।१।२॥ प्राक् क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत्स्याच्छस्यापवाद। 'नाभि नभ च' नभ्योऽक्ष। नभ्यमञ्जनम्। रथनाभावेवेदम्। 'शुन सम्प्रसारण वा च दीर्घत्वम्' शून्यम्–शुन्यम्। 'ऊधसोऽनङ् च' (ग) ऊधन्य। (६३) कम्बलाच्च सज्ञायाम् ५।१।३॥ यत्स्यात्। कम्बल्यमूर्णापलशतम्। सज्ञाया किं ? कम्बलीया ऊर्णा। (६४)

से प्रत्ययविधिमे भी तदन्तविधि। उवर्णान्त और गो आदि शब्दसे यत् हो, छ को बाधकर। तेन क्रीतके पहले तक ही। गवादिका गणसूत्र–नाभिशब्दको नभ आदेश हो, यत् भी। नाभये हित नभ्य। अक्षदण्ड प्रविष्ट हो जिसमे। चक्र–पहियाके मध्य छिद्रका नाम नाभि। तस्मै हित उसकी भलाई मोबिल अर्थमे यत्, नभ आदेश। यस्येति अ–लोप। नभ्य दण्ड जुडने पर गाडी चलती है। नाभये हित नभ्य, यत आदि, अञ्जन=तैलसेक मोबिलसे खीचना, तभी सरलतासे चलनाहित है। नाभेरजने कृते, तत्र प्रोत चक्र सुपरिवर्तनम् इति कार्यक्षमतावर्धनम् अञ्जनम्। नाभये हित, शरीरका अवयव नाभि नही है। रथका नाभि भाष्य सम्मत। अत कहा रथ नाभौ एव इद, रथका अङ्ग छिद्र, उसमे काष्ठका प्रवेश। तैलाभ्यङ्गसे स्नेहन ही हित है। यदि शरीरका अवयव लेगे तब शरीरावयवाद्यत्से नाभ्य बनेगा। नभ आदेश नही होगा। दूसरा गणसूत्र=शुन =श्वन् शब्दसे हित अर्थमे यत् हो। प्रकृतिके व को उ सम्प्रसारण हो। उसको पक्षमे दीर्घ भी। शुने हित कुत्तेके लिए एकान्त शान्त हितकारी स्थान शून्य, श्वन्से यत्। व को उ, दीर्घ। पक्षमे नही, तब शुन्य। चकार अनुक्त 'यत्' का सग्राहक है। अत टिलोप नही। सम्प्रसारण–पररूपसे अन नही रहा। प्रकृतिभाव दुलभ। तीसरा गणसूत्र–ऊधस =ऊधस शब्दसे यत् हो, अनङ् आदेश भी। ङ इत्। नकारका अकार उच्चरणार्थ। ङित् होनेसे अन्त आदेश। ऊधसे हित ऊधन्य, दूधके लिये भलो गाय या हरीघास आदि। ऊधस्से यत् अनङ् अनुबन्ध लोप आदि। ये चाभावकर्मणो से प्रकृतिभाव। अन् का लोप नही।(६३) कम्बलसे यत् हो तेन क्रीतसे पहलेके अर्थोमे। सज्ञा रूढि प्रसिद्धिमे। कम्बलाय हित भेडका ऊन कम्बलके लिये हितकारी प्रसिद्ध है। कम्बलसे यत् आदि कम्बल्यम्। ऊनके पलशत-अनेकभार, सौ भेद। सज्ञा क्यो कहा ? कम्बलीया ऊर्णा छ–ईय हुआ। किस कम्बलके लिए है निश्चित नही, न सज्ञा, न रूढि।

विभाषा हविरपूपादिभ्य ५।१।४।। आमिक्ष्य दधि, आमिक्षीयम् । पुरो-डाश्यास्तण्डुला पुरोडाशीया । अपूप्यम्-अपूपीयम् ।(१६६५) **तस्मै हितम्** ५।१।५।। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् । शङ्कवे हित शङ्कव्य दारु । गव्यम् । हविष्यम् । (६६) **शरीरावयवाद्यत्** ५।१।६।। दन्त्यम् । कण्ठयम् । 'नस्नासिकाया' नस्यम । नाभ्यम । (६७) **ये च तद्धिते** ६।१।६१।। **यादौ**

---

(६४) **विभाषा** हवि=हवनोय विशेष अथवाचकशब्दसे और अपूपादिगण पठितसे यत हो, तेन क्रीत पहलेके अर्थोमे । पक्षमे छभी, आमिक्षायै हित छेना गरम दूधमे दही छोडनेसे फटे दूधका स्थूल अश अमिच्छा अर्थमे यत् । आकार लोप आमिक्ष्य, दधि उपकारक है । पक्षमे छ-ईय आमिक्षीय दूध फाडनेकी दही नीबू । पुरो दास्यते दीयते पुरोडाश पुरोडाशसे यत् । यह हवि है । उसमे उप योगी तण्डुल । छ होनेपर ईय । अपूपेभ्यो हित मालपूयेके लिए चीनी मैदा आदि अर्थमे अपूपसे यत्, अलोप आदि । जब छ—ईय तब **अपूपीय चूर्णम्** । घी शक्कर आदि । तण्डुल, पृथुक्, मुसल कर्णवेष्टक आदि गणमे अन्नविकारेभ्यश्च पढा गया । अन्नके जितने भेद हैं अदनीय=भोजनके लिये है, उनसे यत् विकल्प हो, अत ओदनाय हिता **ओदन्या** ओदनीया तण्डुला, सक्तव्या धाना । चरव्या तण्डुला मे पूर्वविप्रतिषेधसे उगवादिभ्यो यत् ।

(१६६५) **तस्मै**—चतुर्थी अन्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो । हित (है, हुआ,) होगा, अर्थमे बछडेके लिए उपयोगी गाय दूध घास रोटी आदि अर्थे वत्ससे छ —ईय आदि । **वत्सीय** गोदुग्ध । वत्सेभ्य: पय सृष्ट्वा दोग्धि स एवमुच्यते । शङ्कु खूटा कीलके उपयोगी लकडी । दारु अर्थे यत् । उवर्णान्त मानकर शङ्कु य । ओर्गुणे अवादेशे शङ्कव्य, गोभ्योहित घासादिक गव्यम् । हित अर्थमे उचित प्रत्यय यत् । गुणावादेशौ । हविषे हित-हवनीयवस्तुके उपयोगी अर्थे यत् हविष्य गवादि । (६६) **शरीरके** अवयव=अङ्ग वाचक शब्दसे यत् हो चतुर्थ्यन्त दशा मे । दन्ताय हित, मजन दन्तधावन अर्थमे यत् । अलोपादि दन्त्य, कण्ठाय हित कण्ठ्य (हार) ओष्ठाय हित **औष्ठ्य** लालिमा लिपिष्टिक । मुखाय हित मुख्यम (वा०) **नस्** हो नासिकाके स्थानमे । हित अर्थमे यत् भी हो । छको बाधकर । यत्, तत्, तस्, क्षुद्रेषु । नासिकायै हित नस्यम् (सूघनी) हित अर्थमे यत् । नासिकाको नस । पद्यन्नोसे नस् । प्रभृतिग्रहणके प्रकारार्थ सादृश्यार्थक होनेसे नासिका स्थाने यत्, नस् । क्षुद्र परे रहते नस् कहे । नासिकाया क्षुद्रो न क्षुद्र, नाभये हित **नाभ्य** शरीरका अवयव नाभिसे हित अर्थे यत् इकारलोप ।

तद्धिते परे शिर शब्दस्य शीर्षन्नादेश स्यात्। शीर्षण्य । तद्धिते किम्। शिर इच्छति शिरस्यति। 'वा केशेषु, शीर्षण्या शिरस्या वा केशा । वा 'अचि शीर्ष इति वाच्य' अजादौ तद्धिते शिरस शीर्षादेश । स्थूलशिरस इद स्थौलशीर्षम्। (६८) खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ५।१।७।। खलाय हित खल्य। यव्यम्। माष्यम। तिल्यम्। वृष्यम्। ब्रह्मण्यम्। चाद्रथ्या। (६९) अजा-

---

यदि रथका नाभि छिद्र होता, तब नाभि नभञ्च लग जाता।

(६७) **ये च** यकारादि तद्धित प्रत्ययपरे शिरस्को हित अर्थमे शीर्षन् आदेश हो, जो छन्दसिसे आया। शिरसे हित, शिर दर्दमे गुणकारी अमृताञ्जन अथमे यत। यकारादितद्धितपरे शीषन् आदेश, णत्व आदि **शीर्षण्य** । सिरकी दवा या मुकुट प्रसाधन कघी। ये चाभावकर्मणो के प्रकृतिभावसे न टिलोप। तद्धित क्यो कहा? क्यच् परे शीर्षन् आदेश न होनेके लिये। यथा शिर' आत्मन इच्छति शिरस्यति। सुप आत्मन क्यचि है। न॰ क्ये के नियमसे न पद, न रुत्व। (वा०) **वा केशेषु** केश (बाल) अर्थ वाच्य हो तब यकारादि तद्धित परे शिरस् स्थाने शीर्षन् विकल्प हो। शिरसे हिता **शिरस्या** केशा बाल। सिरको ठण्ढा रखते है। चोटसे भी बचाते हैं। सौन्दर्य बढाते हैं। शीर्षन् आदेश भी हुआ। **अचि**=अजादि तद्धित परे शिरस् स्थाने शीर्ष आदेश हो, स्थूल-मोटा शिरका यह वस्तुअर्थमे तस्येदसे अण्। आदिवृद्धि, शीर्षआदेश **स्थौलशीर्षम्**। (६८) **खल, यव**, माष, तिल वृष ब्रह्मन इनसे हित अर्थमे यत् हो। दुष्ट आततायी खलसे हित अर्थे यत्,अलोपादि **खल्य**-चोर डाकूका अड्डा परपीडा। यवाय हित **यव्यम्** क्षेत्र-जौकी उपजका स्थान। माषाय हित उरद के उपजका खेत अर्थे य आदि। तिलाय हित **तिल्य** क्षेत्र, वृषाय हित बैलके उपयोगी वस्तु य। **वृष्य**। अकारान्त ही मान्य। नकारान्त वृषन् अमान्य वृषणे हित, वाक्य ही रहा। ब्रह्मणेहित **ब्रह्मण्य** यत् आदि। दर्शन पूजन। अत्र ब्राह्मणवाची शब्दो मान्य। न तु वेद-ब्रह्मवाची। ब्रह्मणे वेदाय हित वाक्यमेव तिष्ठति। प्रकृतिभावात् न टिलोप। चशब्द अनुक्तका स्मारक है। यथा—रथायहिता॰ रथ्या। गवादिगणमे रथको नही पढा,इस लियेकि हित अर्थमे ही रथ्या बने, अर्थान्तरमे नही।

(६९) **अज** अवि शब्दसे थ्यन् हो हित अर्थमे। अजेभ्य हिता लिङ्ग विशिष्टपरिभाषासे अजासे भी हो। अजाथ्यन् तसिलादिषुसे पुलिङ्ग। अकार लोप **अजथ्या** यूथि झुण्ड हितकारी है, स्त्रीत्व लोकात्। अविभ्य हिता॰ झुण्ड

विभ्या थ्यन् ५।१।८॥ अजथ्या यूथि । अविथ्या । (१६७०) **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्ख ५।१।९॥** (७१) **आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९॥** एतौ खे प्रकृत्या स्त । आत्मने हितमात्मनीनम् । विश्वजनीनम् । कर्मधारयादेवेष्यते, षष्ठीतत्पुरुषाद् बहुव्रीहेश्च छ एव । विश्वजनीयम् । (वा) 'पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम' पञ्चजनीनम् (वा) सर्वजनाट्ठञ् खश्च' सार्वजनिक । सर्वजनीन ।

भेडोका हितकारी है । अविसे थ्यन् टाप् । अजश्च अविश्च द्वन्द्वः । अविशब्द घिसञ्ज्ञक है । उसका पूर्वप्रयोग क्यो नही ? इसलिए कि अजादि और अदन्त अजका पूर्वनिपात प्रबल पडा ।

(१६७०) **आत्मन्** विश्वजन, भोगोत्तरपद हो उससे ख हो हित अथमे । आत्मने हित अपने और आत्मीय लोगोका कल्याण अर्थमे ख–ईन आत्मन् ईन अत्र टि (अन्) लोपे प्राप्ते (७१) **आत्मन् और** अध्वन् को प्रकृतिभाव हो, खपरे जो प्रकृत्यैकाच्से आया । इति प्रकृतिभावे सति टिलोपो न । विश्वे जना विश्वजना तेभ्य हित अर्थे ख–ईन । **विश्वजनीन** सबका हितैषी कर्मवाला, डाक्टर वैद्य सबके उपकर्ता है । **कर्मधारय** से ही होना इष्ट है । विश्व जन॰ विश्वजन सव लोगोका हितकारी । जब षष्ठीतत्पुरुषसे और बहुव्रीहिसे छ हो । विश्वस्य जनो विश्वजन वेश्या वैद्यादि । अथवा विश्वो जनो यस्य स॰ विश्वजन , तस्मै हितं अथमे छ ही हो, छको ईय आदि ।(वा०) **पञ्चजनसे** हित अथमे ख कहे । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और रथकार जाति पञ्चजन है । उनसे हित अर्थमे ख–ईन **पञ्चजनीन** सभीका हित कर्म वचन (वा०) **सर्वजन** से ठञ् कहे, ख भी । सर्वः जनो सर्वजनः तस्य हित **सार्वजनिक** ठ–इक आदि जब ख–ईन, तब सर्वजनीन । सबलोगोका उपकारक उत्सव (वा०) **महाजन** सें ठक् कहे । विश्वजनके प्रसङ्गसे दोनो वार्तिक मान्य । महाजनसे ठ–इक आदि । आत्मन विश्वजनके उदाहरण पूरे हुए । अब भोग उत्तरपदका उदाहरण–मातुर्भोग शरीर (माताका देह) तस्मै हित अर्थमे मातृभोगसे ख–ईन । अखण्डपदके विना भी अट्कुप्वाडसे णत्व होता है । यद्यपि **भोग सुखे स्त्र्यादि भृतावहेश्च फणकाययो** इस अमरकोशमे ऊहे कहा गया । किन्तु प्रयोग बहुल है । **शरीरमात्रे शक्ति** इत्याकर । मातृ–पितृसे छ–ईय आदि हो । मात्रीय पित्रीय । राजा और आचार्यसे छ नही होता । राज्ञे हितम्, आचार्याय हितम वाक्य ही रहता है । भोग शब्दके शरीर अथमे । **अहिरिभोगैः पर्येति** मन्त्र प्रमाण, तस्मैहित पितृभोगीण । पुत्र दाहक्रिया जल दानादिसे हितैषी, राज्ञ

वा 'महाजनाट्ठञ्' । माहाजनिक । मातृभोगीण पितृभोगीण । राजभोगीन । वा 'आचार्यादणत्वं च' आचार्यभोगीन । (७२) **सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ५।१।१०।** 'सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम्' । 'सर्वस्मै हित सार्वम-सर्वीयम् । वा 'पुरुषाद्वध-विकारसमूहतेनकृतेषु, भाष्यकारप्रयोगात्तेनेत्यस्य द्वन्द्वमध्ये निवेश । पुरुषस्य वध पौरुषेय, 'तस्येदम्' इत्यणि प्राप्ते । पुरुषस्य विकार पौरुषेय 'प्राणिरजता-दिभ्योऽञ् इत्यञि प्राप्ते । समूहेऽप्यणि प्राप्ते । 'एकाकिनोऽपि परित पौरुषेय-वृता इव' इति माघ स–२–४ । तेन कृते ग्रन्थेऽणि प्राप्ते अग्रन्थे तु प्रासादा-दावप्राप्त एवेति विवेक । (७३) **माणवचरकाभ्यां खञ् ५।१।११।।** माण-

---

भोग विग्रह तस्य हित राजभोगीण । (ग०) आचार्यसे परे भोगीन शब्दके नको ण नही होता । यद्यपि असमान पद है णत्व प्राप्त नहीं, निषेध व्यर्थ है । तत्र, मातृभोगीण आदिमे णत्व प्रमाणित है उस आधारपर प्राप्त णत्वका निषेध आवश्यक । आचार्यभोगाय हित, आचरणशील । शरीरका हितैषी अर्थमे ख—ईन णत्वका अभाव । अहिरिव भोगैः पर्येति मन्त्रमे भोगशब्द शरीरवाची । (७२) सर्व पुरुष—दोनोके चतुर्थी अन्तदशासे क्रमसे ण और ढञ् हो हित अर्थमे । (वा०) सर्वशब्द से ण विकल्पसे बोले । सर्वस्मै हितम् सबके लिए उपयोगी कर्म अर्थमे ण—अ आदिवृद्धि, अलोप, सार्वम् । जब ण नही तब प्राक्क्रीतात्से छ–ईय आदि सर्वीय सार्वजनिक उत्सव । (वा०) पुरुष शब्दसे वध, विकार, समूह, तेन कृते इन–चार अर्थोमे ढञ हो, हितार्थमे नही, यद्यपि तेन कृत–यह समुदाय सुबन्त नही, समासमे स्वीकृत नही, कैसे कार्य हो ! तब कहा–भाष्यकारके प्रयोगसे । तेन इस अशका द्वन्द्व समासके मध्यमे निवेश है योग्यता बलसे षष्ठी और समर्थ विभक्तिका लाभ, तीनमे । तेनकृत यहा पर उपात्तैव तृतीया । पुरुषका वध अर्थमे ढ–ऐय आदिवृद्धि पौरुषेय । पुरुषका वध तद्धितार्थ । यहा तस्येदसे अण् प्राप्त था उसे बाधकर ठ । पुरुषस्य विकार उन्नति कीर्ति, शरीर सम्बन्धी वस्तु अर्थमे प्राणिरजतादिभ्य से अञ् प्राप्त था उसे बाधकर ढ–एय पौरुषेय । पुरुषका परिवर्तन बाल, युवा, वृद्ध । रचना कृति. आदि । पुरुषस्य समूह । तस्य समूह से अण् प्राप्त उसे बाधकर ढ–ऐय, पुरुष समुदायमे प्रमाण—एकाकीनोऽपि=अकेले हो कर भी परित चारो तरफसे 'पौरुषेय वृता' पुरुष समुदायसे घिरा हुआ । समुदायमे ढ होनेका फल पुरुषेण कृत पौरुषेय ग्रन्थः गृह । तेन कृते ग्रन्थे सूत्रमे प्राप्त अण्को बाधकर ढ–ऐय आदि । अग्रन्थे–पुस्तक अर्थ न हो किन्तु प्रासाद महल अर्थ हो तब बिना प्राप्तिके ठञ् ।

(७३) माणव और चरक शब्दके चतुर्थी अन्त दशासे हित अर्थमे खञ् हो,

वाय हित माणवीनम । चारकीणम । (७४) **तदर्थं विकृते प्रकृतौ ५।१।१२॥** विकृतिवाचकाच्चतुर्थ्यन्तात्तदर्थाया प्रकृतौ वाच्याया प्रत्यय स्यात् । अङ्गारेभ्य एतानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि । प्राकारीया इष्टका । शङ्कव्यं दारु । (१६७५) **छदिरुपधिबलेर्ढञ् ५।१।१३॥** छादिषेयाणि तृणानि । बालेयास्तण्डुला । वा 'उपधिशब्दस्तमार्थे इष्यते'। उपधीयते इत्युपधि रथाङ्ग,

---

मनो कुत्सित अपत्य **माणव** मनुके निन्दित स तानका नाम । उसकी मिद्धिमे प्रमाण—**अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकःस्मृत । नकारस्य च मूर्धन्य' तेन सिद्धयति माणव** पथ भ्रष्ट और मूढ अविवेकी सन्तान अर्थमे मनुसे अण् । उकारको गुण अवादेश । नको मूर्धन्य ण । इस प्रकार माणवकी सिद्धि । मस्मै हितम् उसके हितकारी कार्यक्रम अर्थे ख—ईन माणवीन, चारकीण–चरतीति चर पचादि अच् चलनेवाला स्वार्थिक (उसी अर्थमे) क, चरकाय हित बालक का हित अथमे ख—ईन णत्व ।

(७४) **तदर्थं** सामान्ये नपुसक, तस्मै इद तदर्थ, तन शब्द विकृतिका सूचक विकृतके लिये जो प्रकृति (अत कहा) विकृति (कार्य) का वाचक हो चतुर्थी अन्त हो उससे उसी अर्थके लिये प्रकृति–कारण अर्थं खुलता हो तब छ प्रत्यय । अङ्गार कोयला धधकती अग्नि कार्य है उसकी प्रकृति (कारण काष्ठ लकडोसे कोयला अङ्गार बनते है। कोयला कार्य, लकडी कारण । इस स्थितिमे विकृति वाचक अङ्गार शब्दसे छ–ईय हो, नपुसक बहुवचन अङ्गारीयाणि । प्राकारेभ्य इमा प्राकारीया ईट सीमेन्ट बालू लकडी लोहा महल निर्माणके लिये है । प्राकार=महल भवन, ये विकृत कार्य है ईट आदि प्रकृति कारण, अर्थ खुलरहा है । छ–ईय आदि **प्राकारीया** । शङ्कवे हित शङ्कु खूटा कील कार्य है । उगवादिभ्य यत् । शङ्कु य । ओर्गुणे अवादेशे शङ्कव्यम् खूटेके लिये लकडी ।

(१६७५) **छदिष्**, उपधि बलि इनका समाहार द्वन्द्व । पु० सौत्रम् । इनके कार्यके चतुर्थी अन्तसे ढञ् हो, कारण प्रकृति अर्थ खुलनेपर । छाद्यतेऽनेन छदि· तृणपटल । छान्हि झोपडी आच्छादन । तस्मै इमानि=आच्छादन रूपकार्यका कारण पत्ती सरपत रहठा पल्ला त्रिपाल आदि कारण अर्थ खुलने पर छदिष् से ढञ् । ढ को एय आदेश । आदिवृद्धि नपुसक बहुवचन छादिषेयाणि तृणानि **बालेया** बलये इमे पूजारूप कार्यके कारण अर्थम बलिसे ढ–ऐय आदि । **करोपहार्यं पुसि बलि. प्राण्यङ्गजे स्त्रियामित्यमर , भागधेयकरो बलि** । पूजाके लिये खीर आदिमे कारण कुश जल अक्षत अर्थ । (वा०) **उपधि शब्दसे** स्वार्थ

तदेव औपधेयम्। (७६) ऋषभोपानहोर्ञ्य ५।१।१४॥ छस्यापवादः। आर्षभ्यो वत्स। औपानह्यो मुञ्ज। चर्मण्यप्ययमेव पूर्वविप्रतिषेधेन औपनाह्यं चर्म। (७७) चर्मणोऽञ् ५।१।१५॥ चर्मणोयाविकृतिस्तद्वाचकादञ्स्यात्। वध्र्यै इदं वार्ध्रं चर्म। वारत्रं चर्म। (७८) तदस्य तदस्मिन्स्यादिति ५।१।१६॥ प्राकार आसामिष्टकानां स्यात्प्राकारीया इष्टका। प्रासादीय

मेडञ् इष्ट। स्व प्रकृति तस्य अर्थ स्वार्थ तत्रभव स्वार्थिक उपधीयते उपधि समझकर चलाया जाम। उपसर्गे घो कि, आतोलोप इट् च। रथका अङ्ग, भाष्य प्रमाणसे उसी अर्थमे ढ—एय आदि।

(७६) ऋषभ और उपानह शब्दसे कार्यके चतुर्थी अन्त दशासे प्रकृति—कारण अर्थ होने पर ञ्य हो, छको बाधकर। ऋषभाय अय (यह वस्तु ऋषभके लिये है) ऋषभसे सम्बन्धित वस्तु अर्थ खुलने पर य। आदिवृद्धि। जिस बछडेको ऋषभ तगडा डीलवाला बैल होने वास्ते पुष्ट किया जाता है वत्सः। पोषक वस्तु अर्थमे। उपानहे अय जूताके लिये कारण वस्तु। किसी देशमें मूज वरकर जूता चप्पल बनाते थे, उपानत्के लिये मूज कारण है उपा-नह य। आदिवृद्धि। चर्म प्रकृति है ञ्य हो, पूर्वविप्रतिषेधसे चर्मणोऽञ् को बाधकर। उपानदर्थं चर्म, औपानह्यम् पादत्राणक चर्म।

(७७) चर्मण षष्ठी अन्त है, विकृति कार्य (बनी—वस्तु) मे अन्वय। चर्मण=चमडेका जो कार्य बनी वस्तु, उसके वाचक शब्दसे अञ् हो। तादर्थ्य-चतुर्थी अन्त दशामे, कार्यका कारण अर्थ खुलता हो। बार्धी चर्म रज्जु चमडे की रस्सी नध्री वर्धी वरत्रा स्यादित्यमर.। वृध धातुसे उणादिका ष्ट्रन्। वध्रं। टिड्ढे डीप्। उस कार्यके हितमे कारण चर्म अर्थमे अञ आदि वार्ध्रम्। वृञ्‌ धातुसे त्रन्)गुण वत्र, चमडेका वाचक उससे विकार अर्थमे अण् वरत्रायै हितं वारत्रम्। रस्सीके लिये उपयोगी चर्म तीन लडीसे बटी हुई।

(७८) तदस्य=प्रथमा समर्थप्रातिपदिकसे षष्ठी और सप्तमी अर्थमे यथा योग्य प्रत्यय हो। तदस्यसे षष्ठी, तदस्मिन्से सप्तमी अर्थ। सम्भावने अलसे लिङ्। प्राकार आमा घेरा चहरदिवाल या महल बन सकता है जिन ईंटो से उनका नाम प्राकार्या। महलके लिये पर्याप्त ईंट। प्राकार प्रथमान्तसे छ आयनेयीनियिय से छ को ईय आदेश। जसमे प्राकारीयाः। प्रासादीय प्रासाद अट्टालिका महल, अस्य स्यात् इन लकडियोसे पूरा बननेवाला। प्रासादके लिये पर्याप्त दारु काष्ठ लकडी अर्थमे छ—ईय आदि षष्ठीके अर्थमे प्रत्यय हुआ।

दारु। प्राकारोऽस्मिन्स्यात्प्राकारीयो देश । इति शब्दो लौकिकीं विवक्षामनुसारयति । तेनेह न, प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति । (७६) परिखाया ढञ् ५।१। ७।। पारिखेयी भूमि । इति तद्धिते छयतो पूर्णोऽवधि ।

अथतद्धिताहींयप्रकरणम् ॥२२॥

(१६८०) प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८।। 'तेन तुल्यम्' इति वतिं वक्ष्यति तत प्राक्ठञधिक्रियते । (८१) आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक्

अब सप्तमी अर्थ प्रत्यय , प्रायेण प्राकार्या अस्मिन्देशे सम्भाव्यते । क्योकि इस देशमे मह ।के योग्य पाषाण इष्टक काष्ठका बाहुल्य है । इस अर्थकी खोलनेके लिये छ—ईय प्राकारीय देश । भवन निर्माणकी प्रर्याप्त सामग्रीकादेश । यदि ऐसा तव प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्—महल देवदत्तका बने सम्बन्धित प्रासादकी सम्भावना है यहा छ—प्रत्यय क्यो नही, तब कहा सूत्रमें 'स्यादिति' का इति शब्द लौकिकी विवक्षा लोकमे प्रसिद्धि शिष्ट व्यवहारका अनुसरण करती है जिसमे ईट पत्थर, काष्ठ, लोहा सीमेन्टसे निर्माण लोकमे प्रचलित है । इस कारण देवदत्तस्य प्रासाद यहा छ नही हुआ । प्रासादीय देवदत्त । इति प्रयोग लोके न दृश्यते । (७९) परिखासे ढञ् हो परिखा अस्या अस्या वा अस्ति खाई या घेरा इसका या इसमे हो सकता है अर्थमें ढञ् ऐय, ङीप् आदि वृद्धि वरिखा योग्या भूमि । छयतो —छप्रत्यय और यत्प्रत्ययकी अवधि सीमा पूर्ण हुई । प्राग्वते ष्ठञ्से द्वित्रिपूर्वादण सूत्रतक जितने प्रत्यय उपस्थित हुए । उनमें तेन क्रीत पढा है । उनमे भी छ यत् की अनुवृत्ति क्यो नहीं ? प्रत्ययोके सुनने पर अनुवृत्तिकी असम्भावनासे । पूर्णोऽवधि प्राभाकरीटीकायां छयतो

अथार्हीया —अर्हति योग्योभवति अर्ह जिसकार्यके लिये जो कारण सत्य हो, फलजनक हो, अर्हंभवा आर्हा योग्य अर्थमे प्रत्ययोका प्रकरण प्रारम्भ । किस प्रत्ययकी प्रधानतारहेगी, तब बोले—

(१६८०) प्राग्वते तेन तुल्य क्रिया चेद्वति जो आगे कहेंगे उसके पहले तक ठञ्का अधिकार । वतिशब्दसे घटित सूत्रका सूचक । उसके पहले जिन जिन सूत्रोमे अर्थ ही कहे गये । जैसे—तेन क्रीत, तदस्य परिमाण, तस्य निमित्त समवति पचति आदिमे खरीदा हुआ, मात्रा आदि अर्थ कहे गये, उन अर्थोमे प्रत्यय नही कहा गया, वहा ठञ् उपस्थित हो । पारायण, तुरायण, चान्द्रायण वर्तयति आदि स्थलमे ठञ् ही होता है । केवल अधिकारवान् अपवाद सर्वभूमि आदिको छोडकर । (८१) आर्हाद्—तदर्हति सूत्रके अर्हतिका ऐक अश अर्ह-

५।१।१९।। 'तदर्हति' इत्येतदभिव्याप्य ठञधिकारमध्ये यत्रऽपवादष्ठगधिक्रियते, गोपुच्छादीन्वर्जयित्वा। (८२) असमासे निष्कादिभ्य ५।१।२०।। 'आर्हात्' इत्येतत् 'तेन क्रीनम्' इति यावत्सप्तदशसूत्र्यामनुवतते। निष्कादि-

---

अच्प्रत्ययान्त न समझें, तिङन्तका एक देश षष्ठयन्त ही माने, व्याख्यानसे। तदर्हति सूत्र तक ठञ्के अधिकारके मध्यमे ठञ्का बाधक ठक्का अधिकार चलाते हैं। गोपुच्छ सख्या परिमाणको छोडकर। आङ्मे आङ्का अभिव्याप्ति अर्थ है। जहा प्रत्यय नही कहा गया वहा ठञ् हो, सख्या ग्रहण न करें। परिमाणस सख्याको अलग क्यो पढा। दोनोका फल एक हो। क्योकि परिमीयते परिच्छिद्यते येन तत्परिमाण, सख्याभी परिच्छेदक व्यावर्तक है। चार कहनेसे तीन, पाच, अलग होते है। इस विषयमे प्रमाण—श्लोक वार्तिक—

उर्ध्वमान किलोन्मान परिमाण तु सर्वत।
आयामस्तु प्रमाण स्यात्सख्याबाह्या तु सर्वत।।

तुलादौ— तराजू पर रखकर द्रव्यगुरुत्व—हल्का भारीपन अलग करते है। समान भार उन्मान है। पलडा ऊपर उठाकर तौलना उर्ध्वमान हैं। उर्ध्वं मीयते परिच्छिद्यते येन तत् उन्मान, क्विन्टल किलोग्राम गुञ्जा माष निष्क सुवर्ण पलादि, परिमाण क्या है? सर्वत चारो तरफसे छील छालकर काष्ठका बना आयत लम्बाई चौडाई उचाईका पात्र हो। खारी कुडव आदिसे धान्य आदि नापकर अलगाये जाते है। वह परिमाण है। आयामका लक्षण— यामो दैर्घ्यंच लम्बाई ऊंचाई नापी जाय वह प्रमाण है। गज, फुट, इञ्च, अरत्नि प्रादेश, मुष्टि हाथ विस्ता—इन तीनोमे सख्या नहीं आती, बाहर होना सिद्ध। एकत्वद्वित्वादि—वस्त्रादि हाथसे नापे जाते हैं ऊचा नीचा भाग। हास्तिनमुदक हाँथी डुबाव जल। उरुद्वयस कमर तक पानी। इनमे एक दो अर्थस्पष्ट नही।

(८२) असमासे=निष्क, पण, पाद, माष, वाह, द्रोण, षष्टि ये सात निष्कादि है। इनसे असमासे—समास न हुआ हो तब ठक हो। सज्ञा रूढ नाम और शाण=कसौटीका पत्थर या सन आदिके शब्द न हो तब। आर्हीय अर्थोमे तदर्हतिसे लेकर तेन क्रीत तक सूत्रोके प्रत्ययके अर्थोमे। यह सूत्र आर्हात् सूत्र से लेकर तेन क्रीत तकके सत्रह सूत्रोमे अनुवर्तने—शामिल होता है। इस गणमे दोषका परिमाण और षष्ठी सख्यावाची दोनोसे ठञ् प्राप्त था बाधकर ठक्। अन्य पाच शब्दोमे उन्मान तौला हुआ मानकर पूर्वसूत्रसे ठक् होता। समास मे ठक्के निषेध वास्ते पढा। निष्केण क्रीत—हार द्रव्य, बटवारासे खरीदा हुआ

भ्योऽसमासे ठक स्यादार्हीयेष्वर्थेषु । नैष्किकम् । समासे तु ठञेव । (८३) **परिमाणान्तस्यासज्ञाशाणयो** ७।३।१७।। उत्तरपदवृद्धि स्यात् ञिदादौ । परमनैष्किक । असज्ञा इति किम् । पञ्चकलापा परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम् । 'तदस्य परिमाणम्' । इति ठञ् । असमासग्रहण ज्ञापक भवति 'इत प्राक्तदन्तविधि' इति तेन सुगव्यम्–यवापूप्यमित्यादि । इत ऊर्ध्व तु 'सख्या पूर्वपदाना तदन्तग्रहण प्राग्वतेरिष्यते, तच्चालुकि । पारायणिक । द्वैपारायणिक । अलुकि इति किम् । द्वाभ्या शूर्पाभ्या क्रीत द्विशूर्पम् । द्विशूर्पेण क्रीते 'शूर्पादञ मा भूत् । किं तु ठञ् । द्विशौर्पिकम । (८४) **अर्धात्परिमाणस्य**

अर्थे ठ–इक आदिवृद्धि नैष्किक जब समास हो तब ठञ् ही होता है । परमनिष्क से ठञ् इक । आदिवृद्धि प्राप्त था उसका बाधक ।

(८३) **परिमाण** मात्रावाचक शब्द अन्तमे हो उसके उत्तरपदके आदि अच् नि मे इ को ऐ वृद्धि । आदिवृद्धिके प्रसङ्गमे उत्तरपदके अधिकारमे पढा, सूत्र । प्ररमनिष्केण क्रीत मूल्यवान् द्रव्यसे खरीदा हुआ । असज्ञा क्यो पढ़ा **पाँच** कलाय या कलापामात्रा हैं इसकी, अर्थमे ठ आदि **पाञ्चकलायिकम्,तदस्य** परिमाणसे ठञ् । शङ्का–निष्क आदि शब्दसे ठक् (सूत्रमे) कहा गया, तदन्त समाससे ठक् होगा नही, असमास पढना व्यर्थ है । वह व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है, इत प्राप्त=यहासे पहलेके विषयोमे तदन्तविधि होगी, उसका फल सु शोभना गौ सुगौ अत्र न ठक् । न पूजनात्के निषेधसे । किन्तु उगव दिभ्य यन, गौशब्दान्त मानकर गुणे अवादेशे सुगव्यम् । यवानाम् अपूप यवापूप तेन क्रीत यवापूप्यं–विभाषा (हविरपूप) से यत् आदि असमासका ज्ञापन । इत उर्ध्वं=यहासे आगे तदन्तविधि क्यो नही, परमपरायणमे ठञ् क्यो नही, तब कहा–इत उर्ध्वं इस सूत्रके बादमें वार्तिकसे तदन्तविधि सिद्ध है । (वा०) सख्या और पूर्वपदके तदन्तविधिका स्वीकार । **प्राग्वते**=तेन तुल्य क्रियाचेद्वति के पहले तक है । तच्च=वह भी लुक् न होनेपर सख्यापूर्वमे रहे तब तदन्तविधि हो । तद्धित लुक् हुआ हो तब तदन्तविधि नही होती । पारायण वर्तयति **पारायणिक** जो रोज पाठ करें, ठ–इक आदि । द्वे पारायणे वर्तयति द्वैपारायणिक दो पाठ दो सम्पुट करता है । ठ आदिका लुक् नही है । सख्या पूर्ण है । अलुक् क्यो कहा ? दो सूपसे खरीदा हुआ सामान द्विशूर्पं, सख्या पूर्वमे है । यहा हुए अञ् या ठञका अध्यर्धमे लुक् । यहा तदन्तविधि न हो । अत पढा । जब द्विशूर्पेण दो सूपसे खरीदा हुआ । वहा सूर्पसे अञ् न हो, किन्तु प्रसङ्गका ठञ् हो इक होनेपर परिमाणान्तस्य सूत्रसे उत्तरपदकी आदिवृद्धि ।

पूर्वस्य तु वा ७।३।२६॥ अर्धात्परिमाणवाचकस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धि पूर्वपदस्य तु वा ञिति णिति किति च। अर्धद्रोणेन क्रीतम् अर्धद्रौणिकम्। आर्धद्रौणिकम्। (१६८५) **नात परस्य ७।३।२७॥** अर्धात्परस्य परिमाणाकारस्य वृद्धिर्न, पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ। अर्धप्रस्थिकम्-आर्धप्रस्थिकम्। अत किम्। आर्धकौडविकम्। तपर किम्। अर्धखार्यां भवा अर्धखारी। अर्धखारीभार्य इत्यत्र वृद्धिनिमित्तस्य इति पुंवद्भावनिषेधो न स्यात्। (८६) **शताच्च ठन्यतावशते ५।१।२१॥** शतेन क्रीत शतिकम्-शत्यम्। अशते किम्। शत परिमाणमस्य शतक सङ्घ। इह प्रत्ययार्थो वस्तुन प्रकृत्यार्थान्न भिद्यते। तेन

---

(८४) अर्धसे परे परिमाण मात्रा अर्थ वाचक उत्तरपद हो उसके आदि अचकी वृद्धि। (आ ऐ औ) हो पूर्वपदको विकल्पसे हो, ञ—ण—क इत् हुए। प्रत्यय परे रहते। आधे द्रोण—नकडोका नपना कण्डाल अन्न आदिसे खरीदी वस्तु आर्धद्रौणिकम्। अर्धद्रोणसे ठ—इक। उक्त सूत्रसे आदिवृद्धि। द्रोणको विकल्पसे। निष्कादिगणमे द्रोण पढा है, असमाससे ठक् बाधित।

(१६८५) नात· अर्धसे परे परिमाण वाचक शब्दका अवयव अकार हो, उसको वृद्धि न हो, पूर्वपदको विकल्पसे हो,ञ—ण—क इत्प्रत्ययपरे। अर्धप्रस्थेन क्रीत आधी पसेरी अन्नसे खरीदी वस्तु। अर्धप्रस्थसे ठ—इक। पूर्वपदको विकल्प वृद्धि। उत्तरपदका निषेध आर्धप्रस्थिकम्। अत क्यो पढा ? अर्ध· कुडवेन क्रीत आधीकुरुई या डोलचीसे खरीदी वस्तु, तेन क्रीत ठञ्। परिमाण अर्थमे कुडव है। आदि अच् अकारान्त नही, वृद्धिनिषेध न हो। किन्तु अर्धा· त्परिमाणस्यसे उत्तरपदकी वृद्धि हो। तपर् क्यो ? ह्रस्व अकार लेनेके लिए। दीर्घको वृद्धिनिषेध फलवान् नही। खारी द्रोणचतुष्टयम्। अर्धखारी (दो द्रोण) के पात्रमे हुआ। अर्धखारीभार्या यस्य। दो द्रोण अन्नवाली पत्नी वाला यहा दीर्घको निषेध न हो। पूर्वपदको वृद्धिका अभाव। उत्तरपदके वृद्धिनिषेध से पुवद्भावका निषेध न होता, जो वृद्धि निमित्तस्य च तद्धितस्यसे आया।

(८६) शताच्च आर्हीय अर्थोमे शतसे ठन् यत् हो। न तु शते—सौ सख्या अर्थ न हो तब। उत्तरसूत्रसे प्राप्त कन्को बाधकर। शतेन सौ रूपयेसे खरीदी वस्तु वस्त्र वत्स(बछडा)अर्थमे ठ—इक शतिक जब यत् तब शत्यम, अशते कि ? सौ सङ्ख्याका समुदाय अर्थमे कन् हो, ठन् न हो। सौ सख्या अर्थ खुल रहा है। सङ्घा—सङ्घ (समुदाय) प्रत्ययका अर्थ है। सौ सख्या नही। अशते से ठन् यत्का निषेध कैसे ? तब कहा—इह—प्रसङ्गमे प्रत्ययका न अर्थ सख्य है किन्तु

ठन्यातो न । किं तु कन्नेव । असमासे इत्येव । द्विशतेन क्रीतं द्विशतकम् ।
(८७) **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् ४।१।२२॥** सङ्ख्यायाः कन्स्यादार्हीयेऽर्थे, न तु त्यन्तशदन्तायाः । पञ्चभिः क्रीतं पञ्चकं । बहुकं । त्यन्तायास्तु साप्ततिकं । शदन्तायाः चात्वारिंशत्कं । (८८) **वतोरिड्वा ५।१।२३॥** वतन्तात्कन् इड्वा स्यात् । तावतिकं—तावत्कं । (८९) **विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् ५।१।२४॥** योगविभागः कर्तव्यः । अभ्यां कन्स्यात् ।

वह प्रकृति शतके अर्थसे अलग नही है । मिलकर एक है । गुणगुणिनोरभेद एव सम्बन्ध । भेदस्तु काल्पनिक । जहा प्रत्ययका अर्थ प्रकृतिके अर्थसे भिन्न हो वहा न निषेध । शतेन क्रीत शत्य शाटक, सौसे खरीदी साडो, सौ भिन्न है साडी भिन्न । शाटकशतन्तु प्रत्यार्थं । **असमास**=जब समास न हुआ हो तभी ठन् यत् को जाने । चकार असमासके अनुकरणार्थ है । उसका फल समासमे कन् होना । जैसे द्विशतेन=दो सौ से खरीदी वस्तु द्विगुणितशत द्विगुसमास, तदन्तविधि निषेधसे प्राप्ति नहीं थी, कन् हो कर द्विशतकम ।

(८७) **सङ्ख्याया** =तिश्च शच्च तिशतौ तौ अन्त्ये यस्या सा तिशदन्ता । जैसे-विंशतिमे ति, त्रिंशत्मे शत् अन्त है । ऐसे स्थलमे कन् न हो, अन्य स्थलमे कन् हो । आर्हीय-योग्यता अर्थमें द्वन्द्व, बहुव्रीहिमे तत्पुरुष समास । पाच रूपया से खरीदा सामान पञ्चक । पञ्चन्से खरीदने अर्थमे कन् । बहुभि क्रीत बहुतधनसे खरीदी वस्तु । बहुसे कन् आदि बहुक , त्यन्ता=तिअन्त शब्द सप्तति (सप्तत्या क्रीत) सात पैसेसे खरीदा, तेन क्रीत ठञ्—इक । साप्ततिक कम्बल । शत अन्तका उदाहरण—चत्वारिंशता क्रीत , चालीससे खरीदा हुआ । तेनक्रीतसे ठञ् । त से परे ठको क हुआ । कन्का निषेध भी । अर्थवान् नि मान्य । निरर्थकसे कन् ही होगा । कतिभि क्रीत , कातिक कितनेमे खरीदा ।

(८८) **वतो** पञ्चमी । प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणसे तदन्तविधि । कन् प्रथमा, वतुप् प्रत्यय अन्तमे हो उससे कन् कहे विकल्पसे । तावता क्रीत तावतिक यत् तत् एतद्से वतुप् । आसर्वनाम्न से आत्व । बहुगणवतुसे सङ्ख्यासंज्ञा, उससे कन् । वतोरिट्से इट् । टित् आदि अवयव तावतिक । यदा न इट् तावत्क । (८९) **विंशति** और त्रिंशत्से विक्रीत अर्थमे ड्वुन् हो, **असंज्ञाया**= रूढि शब्द न हो । यदि एकसूत्र होता तब कन् न हो पाता । क्योकि ति और शत् अन्तमे रहे उनको कनका निषेध कहा गया । तब कहा—योग=दोनो सूत्रो विभाग-अलगाव करना चाहिये । विंशतित्रिंशद्भ्या एकसूत्र ड्वुन् । असंज्ञाया

असंज्ञाया इवुन्स्यात् । कनोऽपवाद । विंशक । त्रिंशक । संज्ञाया तु विंश-तिक । त्रिंशत्क । (१६९०) **कसाट्टिठन् ५।१।२५॥** ठो ङीबर्थं । इकार उच्चारणार्थः । कसिक—कसिकी । 'अर्धाच्चेति वक्तव्यम्' अर्धिक—अर्धिकी । कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्य प्रतिरादेशश्च वा । कार्षापणिक:—कार्षापणिकी । प्रतिक: प्रतिकी (९१) **शूर्पादञन्यतरस्याम् ५।१।२६॥** शौर्पम्—शौर्पिकम् । (९२) **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ५।१।२७॥** एभ्योऽण् स्यात् । ठञ्ठक्कनामपवाद । शतमानेन क्रीत शातमानम् । वैंशतिकम् । साहस्रम् । वासनम् । (९३) **अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ५।१।२८॥** अध्यर्धपूर्वा-

---

दूसरा । पहलेका अर्थ—आभ्या(दोनोसे कन्)हो, यदि सज्ञा न हो तब इवुन् हो, कन्को बाधकर । जैसे विंशत्या क्रीत बीसमुद्रासे खरीदा अर्थमें कन् विंशक. तिर्विंशतेर्डितिसे तिका लोप वुको अक । त्रिंशता—क्रीत त्रिंशक—तीससे क्रीत वस्तु । वु—अक, टे लोप । यदि सज्ञा—किसीमे रूढ हो तब कन् होगा । विंश-तिक । तेन क्रीत ठ—इक तसे परे ठको क त्रिंशत्क ।

(१६९०) **कंससे** ट्टिठन् हो आर्हीय अर्थमे । ट इन् का ङीप् फल, इकार उच्चारणाय । कसेन क्रीत लोहेसे खरीदा सामान अर्थमे कससे ट्टिठन अनु-बन्धलोप ठ—इक । ङीप् भी **कसिकी** (वा०) **अर्धशब्दसे** भी ट्टिठन् कहे । अर्धेन क्रीत आधी मुद्रासे क्रयण, ठ—इक ङीप् भी ।(वा०) कार्षापण (कौडी)से ट्टिठन् बोलें । 'प्रति' आदेश विकल्पसे कहे । कार्षापणेन क्रीत कौडोसे क्रीत । ठ—इक ङीप् भी । जब कार्षापण स्थाने प्रति आदेश तब ठको क प्रतिक , ङीप् भी । (९१) **शूर्पसे** अञ् हो विकल्पसे आर्हीय योग्यता सूचक अर्थमे शूर्पेण क्रीत सूपभरा अनाज देकर खरीदी वस्तु अर्थमे अञ् आदिवृद्धि शौर्प, पक्षमे परि-माण मानकर ठञ् आदि शौर्पिकम । (९२) **शतमानविंशतिक,** सहस और वसन इनसे अण हो ठञ्को बाधकर ठक्, कन्को भी । शतमान एक परिमाण तोल मात्राकानाम है उससे ठञ् प्राप्त, इस सूत्रसे अण् । शातमान सौकी मात्रा मे खरीदा । विंशत्या क्रीत विंशतिकम् । सज्ञाशब्द है विंशतित्रिंशद्भ्याके योग विभागसे कन् । विंशतिकेन क्रीत विग्रहे परिमाणे अर्थे । सज्ञा अर्थे ठञ् प्राप्त तद्बाधित्वा अणादि , वैंशातिक, सहस्रेण क्रीत हजारसे खरीदी हुई साहस्रम् सख्यायाः से कन् प्राप्त बाधकर अण् आदि । वसनेन क्रीत **वासनम्** वस्त्र देकर खरीदा (ठक् बाधकर) अण् ।

(९३) **अध्यर्ध शब्द** पूर्वो यस्य अध्यर्धपूर्व समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी ।

द्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक्स्यात् । अध्यर्धकंसम । द्विकंसम् । संज्ञाया तु पाञ्चलोहितिकम् । (९४) **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** ५।१।२९।। लुग्वा स्यात । अध्यर्धकार्षापणम्–अध्यर्धकार्षापणिकम् । द्विकार्षापणम्–द्विकार्षापणिकम् । औपसंख्यानिकस्य टिठनो लुक् । पक्षे अध्यर्धप्रतिकम् । द्विप्रतिकम । अध्यर्धसहस्रम –अध्यर्धसाहस्रम् । द्विसहस्रम्–द्विसाहस्रम् । (१६९५)

अथवा अध्यारूढमर्ध यस्मिन तदध्यर्धं । सौत्र पुंस्त्व, द्विगो पञ्चमी हैन षष्ठी अध्यर्ध पूवमे हो या द्विगुसमास हो उससे परे आर्हीय योग्यतासूचक अर्थके प्रत्ययका लुक् हो । अध्यारूढ अर्ध आधी मात्रा अधिक (डेढ) प्रादिभ्यो धातुजस्य समासादि । सार्ध अर्धसहित अध्र्येन कसेन क्रीत, तद्धित अर्थ परे द्विगुसमास, सख्याया अति–रे कन्, उसका इसीसूत्रसे लुप्। लोहेकीवस्तु कस है उसके डेढीभागसे खरीदा हुआ, द्वाभ्या कसाभ्या क्रीत,दो कस परिमाणसे,क्रीत वस्तु । समासे, तेन क्रीतसे ठक् उसका इससूत्रसे लुक् । ये दोनो किसीमे रूढ, सज्ञा नही है । जहा सज्ञा किसीका नाम हो वही लुक् नही होता । पञ्चकलाया या कलापा परिमाणमस्य, पाच ग्राम सख्या पूर्वशब्दसे तद्धित, तदस्य परिमाणस परिमाण अर्थमे ठञ्, परे तद्धितार्थ हो, उत्तरपदसे परे द्विगुसमास । ठञ्का लुक् नही । किन्तु इक । सख्यासज्ञा–सूत्रमे अध्यर्थ पूर्वका पाठ है एव पाञ्चलोहितकम—पञ्चलोहिन्य गुञ्जा परिमाणमस्य विग्रहे पूर्ववत्कार्य । भस्याढे सूत्रसे पुभाव । लोहिनीका ङीप् और नत्व लौटा । द्वाभ्या शूर्वाभ्या क्रीत द्विशूर्प द्विशौर्पिक, ठञ्का लुक् क्यो नही ? द्विगुका कारण आर्हीय प्रत्यय न होनेसे । (९४) **विभाषा** कार्षापण (कौडी) और सहस्र शब्दसे क्रीत अर्थमे आर्हीय प्रत्ययका लुक् विकल्प हो, अध्यर्धकार्षापण (डेढीकौडीसे खरीदा)कार्षापणाट्टिठन् । उसका विभाषा लुप् । क्रयण अर्थमे प्रत्यय है ही । पक्षमे न लुक तब ठ–इक आदि । दो कौडीसे क्रीत वस्तु वह लुक् कार्षापणसे जिस टिठन्का औपसख्यान=उपदेश किया गया उसीका लुक् । पक्षमे कार्षापण स्थाने प्रति आदेश । तब टिठन्का लुक् नही होगा । द्विप्रतिक दो कौडीसे क्रीत । अध्यर्धसहस्र–डेढ हजारसे क्रीत अर्थे शतमानविंशतिक सूत्रसे अण् उसका लुक् । यदा न लुक् तदा सख्यया सवत्सरसे उत्तरपद वृद्धि । दोनो शब्दोमे क्रयणकी शक्ति । द्वाभ्या सहस्राभ्या क्रीत दो हजारकी खरीद अण् । पक्षे उत्तरपदवृद्धि ।

(१६९५) द्वित्रि पूर्वमे हो तब निष्क परिमाण मात्राके शब्दोसे आर्हीय

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ५।१।३०।। लुग्वा स्यात्। द्विनिष्कम्—द्विनैष्किकम्। त्रिनिष्कम्—त्रिनैष्किकम्। 'बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम्' बहुनिष्कम्—बहुनैष्किकम। (९६) **बिस्ताच्च** ५।१।३१।। द्वित्रिबहुपूर्वाद्विस्तादार्हीयस्य लुग्वा स्यात्। द्विबिस्तम्—द्विबैस्तिकमित्यादि। (९७) **विंशतिकात्ख** ५।१।३२।। अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोरित्येव। अध्यर्धविंशतिकीनम्। द्विविंशतिकीनम्। (९८) **खार्या ईकन्** ५।१।३३।। अध्यर्धखारीकम्। द्विखारीकम्। केवलायाश्चेति वक्तव्यम्। खारीकम्। (९९) **पणपादमाषशताद्यत्** ५।१।३४।। अध्यर्धपण्यम्। द्विपण्यम्। अध्यर्धपाद्य। द्विपाद्य। इह 'पाद पत्' इति न

प्रत्ययका लुक विकल्पसे हो। द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीत दो आनेसे खरीदा। द्विनिष्क, पक्षमे उत्तरपदवृद्धि। त्रिभ्य निष्केभ्य क्रीत ठञ् लुक्,समास होता तब ठक न होता। (वा०) **बहुशब्द** पूर्वमे हो तब भी क्रीत अर्थसे प्रत्ययका लुक् कहे। बहुभि निष्कैं क्रीत ठञ् लुक आदि। निष्कशब्देन परिच्छेदकमात्र गृह्यते, जितना नपना, तोल परिमाण, अलगाव, एकसे दूसरेका मत स्वीकार। उन्मान भी परिमाण है। (९६) **बिस्तके** पूर्वमे द्वि—त्रि—बहु शब्द हो तब आर्हीय खरीदने अर्थके प्रत्ययका लुक् विकल्पसे हो। द्वाभ्यां विस्ताभ्यां क्रीत दो बित्ता टुकडे से खरीदा, विस्तसे ठञ्। लुक् पक्षमे इक उत्तरपदकी आदि वृद्धि (९७) **विंशतिक** शब्दसे ख हो। अध्यर्ध पूर्वमे हो, और द्विगु समास हो, अध्यर्धविंशत्या क्रीत, बीस डेढे तीससे खरीदा। विंशतित्रिशद्भ्यां के योग विभागसे कन। उससे ख—ईन आदि। द्वाभ्यां विंशतिकाभ्यां, दोबीस=चालीस से क्रीत, ख—ईन आदि पूर्ववत। (९८) **खारीसे** ईकन हो अध्यर्धपूर्व और द्विगुसमासमे द्वाभ्यां खारीभ्यां क्रीत द्विगु समास है ईकन् आदि, आठ द्रोणअर्थ अध्यर्धखारी परिमाणमस्य। तदस्य परिमाणसे ठञ् प्राप्त, उसका लुक् प्राप्त, सबको बाधकर ईकन्। कन् होता केऽण से ह्रस्व हो जाता। (वा०) **केवल** खारीसे ईकन् कहे। खारी परिमाणमस्य चार द्रोणकी खारीसे ईकन् (वा) **काकिणी से** भी ईकन् कहे। किसी मात्रा तोलका नाम काकिणी हैं उसकेभी डेढी या दूनी क्रीत अर्थमे प्रत्यय हुए।

(९९) **पण पाद** माष शत इनमे यत् हो क्रीत अर्थमे। अध्यर्ध पूर्वदशासे या द्विगुसमाससे। अध्यर्धपणेन क्रीत डेढ पैसेसे खरीदा हुआ। यत् आदि। द्वाभ्यां पणाभ्यां क्रीत दोपैसेसे क्रयणकार्य। यत् आदि। **द्विपण्यम्** अध्यर्ध पादेन डेढ चवन्नीसे क्रीत। रूपयेका चतुर्थांश अर्थ यत आदि। द्वाभ्यां पादाभ्यां दो

यस्य इति लोपस्य स्थानिवद्भावात् । 'पद्यत्यतदर्थे' इत्यपि न, प्राण्यङ्गार्थस्यैव तत्र ग्रहणात् । (१७००) शाणाद्वा ५।१।३५।। यत्स्यात् । पक्षे ठञ् । तस्य लुक् अध्यर्धशाण्यम्—अध्यर्धशाणम् । (१७०१) द्वित्रिपूर्वादण्च ५।१।३६।। शाणात् इत्येव । चाद्यत् । तेन त्रैरूप्यम् । 'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयो इति पर्युदासादादिवृद्धिरेव । द्वैशाणम्—द्विशाण्यम्—द्विशाणम् । इह ठञादयस्त्रयोदश प्रत्यया' प्रकृतास्तेषा समर्थविभक्तयोऽर्थाश्चाकाङ्क्षितास्त इदानीमुच्यन्ते । (१७०२) तेन क्रीतम् ४।१।३७।। ठञ् । गोपुच्छेन क्रीत गौपुच्छिकम् ।

चौथाई (आधा) अर्धक्रीत अर्थमे यत् । यस्येति च अकारलोप **द्विपाद्यम्** इह= इस प्रसङ्गमे पादके स्थानमे यत् आदेश नही होता । यस्येति चसे हुए अकार लोपके स्थानिवद्भावसे अकार उपस्थित होगा । (अचः परस्मिन्सूत्रसे) पद्यति अतदर्थे इस सूत्रसे पद आदेश नही होगा उसमे प्राणिचेतन जीवका अङ्ग पाद पैर, ही लिया जाता है तभी सफलता। पण माषके साहचर्यसे पाद शब्द परिमाण अर्थमे है।

(१७००) **शाणात** परिमाण अर्थमे शाण है । उन्मान=उठाकर तौलने अर्थ मे यत् हो, पक्षमे ठञ्, उसका लुक् । सज्ञा और परिमाणसे ठक् नही होता। अध्यर्धशाणेन (डेढ मात्रासे) क्रीत अर्थमे यत् अलोप । पक्षमे अधिकारसे ठञ्, उसका लुक् तब अध्यर्धशाण ऐसा ही रहा । इस सूत्रमे शताच्चेति वक्तव्य पढा है । जिसको नित्य प्राप्त था, विकल्पके लिये । अत अध्यर्धशत्य डेढ सौ से क्रीत । अध्यर्धशाणम् । **पञ्चशत्या** पाच सौसे क्रीत **पञ्चशतिकम्** ।

(१७०१) **द्वि त्रि** पूर्वमे हो तब शाणसे यत हो जाय, अण् भी। अन्यसे न हो । तेन=इसलिए तीनरूप, द्वाभ्या शाणाभ्यां क्रीतम् अणादिवृद्धि । एकरूप । यत् पर दूसरा । ठञ् लुक्, तब तीसरा रूप । परिमाणान्तस्य असज्ञाशाणयो सूत्रमे शाणशब्द पढनेसे उत्तरपदकी आदिवृद्धि नही होती । अत. निषेधसे आदिवृद्धि मान्य । क्रमश **द्वैशाणम्** आदि । इह–इस प्रसङ्गमे **ठञादय**=प्राग्वते ष्ठञ् **आर्हीय**–ठक्, शताच्च ठन्–यत्, सज्ञाया कन्, विंशतित्रिंशतिभ्या ड्वुन् कसात्से टिठन् शूर्पात्से अञ्, शतमान–अण्। विंशविकात्ख, खार्या ईकन्, पण पाद-यत्, द्वित्रि पूर्व, अण् ये त्रयोदश प्रत्यय प्रसङ्गमे आये । तेषाम्-उन प्रत्ययो के समर्थविभक्तियो और अर्थ, आकाङ्क्षा जिज्ञासाका विषय बने (इदानी अब से) वे कहे जाते हैं ।(१७०२) **तेन क्रीत** तृतीयान्तसे **क्रीत** खरीदा हुआ, अर्थमे यथा उचित प्रत्यय हो । आर्हादगोपुच्छात्मे गोपुच्छसे ठक्का निषेध पढा, तब

साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् । ठक् । नैष्किकम् ।(१७०३) **इद्गोण्याः १।२।५०॥** गोण्या इत्स्यात्तद्धितलुकि । लुकोऽपवादः । पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः पञ्चगोणिः । (१७०४) **तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ५।१।३८॥** संयोगः सम्बन्धः । उत्पातः—शुभाशुभसूचकः । शतिकः शत्यो वा धनपतिसंयोगः । शत्यं शतिकं वा दक्षिणाक्षिस्पन्दनं, शतस्य निमित्तमित्यर्थः । 'वातपित्तश्लेष्मभ्यः

सप्तति प्रस्थ आदि साधनसे ठञ् हो, चमरी गायकी पूछसे खरीदीवस्तु (जगली द्वारा) गोपुच्छात क्रयण अर्थे ठ—इक आदि० । सप्तत्या (सत्तर रूपयेसे) खरीदा हुआ सामान **साप्ततिक** ठ—इक आदि० । प्रस्थेन क्रीत पसेरी (पाच किलोसे) क्रीत ठ—इक आदि० । ठक् का उदाहरण—निष्केण क्रीत मापसे खरीदा । असमासे निष्कादिभ्यः से ठ—इक आदि० । देवदत्तेन क्रीत, पाणिना क्रीत, सन्तोषेण क्रीतम् इत्यादिसे ठञ् क्यो नही होता इसलिए करणे तृतीया ही मान्य, कर्तरि तृतीया अमान्य । समर्थविभक्ति खरीदनेमे साधन मूलकरण मूल्य द्रव्य ही होगा अन्य देवदत्तादि नही हो सकते । **तद्धितके** महासज्ञासे **तेभ्य प्रयोगेभ्य हिता. तद्धिता** जहा हित होगा वही प्रत्यय होगे । क्रयणमे यदि रूपया द्रव्य हितकारी, साधन द्रव्य न हो, तब हाथ, सतोषसे खरीदना सम्भव नही ।(१७०३)**इदगोण्या**:=गोडीसे इत् हो,लुक्तद्धित लुकिकी प्राप्तिदशा मे । उसी लुक को बाधकर पञ्चभि पाच गोडी गायसे या गोनरा पुआलकी बनी चटाईसे क्रीत पट वस्त्रका नाम । आर्हीय ठक्का लुक् । गोणीसे ङ प्रत्ययय ईका लोप आदि । पञ्चगोणि । यदि उपसर्जन ह्रस्व होना तब इत्व न होता, ठञ् लुक्से ङीष् हटता, टाप होकर पञ्चगोणा होता ।

(१७०४) **तस्य** निमित्त सयोग=सम्बन्ध, **उत्पात**=शुभाशुभ=इष्ट अनिष्टका सूचक निमित्तकारण अर्थमे षष्ठी अन्तसे यथायोग्य ठञ् आदि प्रत्यय हो । यथा शतस्य निमित्त सयोग सम्बन्ध सौ रूपयेके कारण धनपति-सेठसे सयोग, यजमान—शुश्रूषादि सम्पर्क अर्थमे शत शब्दसे शताच्च यत् ठन=इक । यस्येति अकार लोप **शतिक** सौ रूपयेके लिए धनीसे सम्बन्ध । यजमानकी सेवा सम्पर्क । **शत्य** सयोग । उत्पात =शुभ और अशुभका सूचक सकेतका निमित्त जैसे **शतस्य** निमित्त सूचक सौ रूपयेका सूचक दक्षिण अङ्गकी फडकन जो उत्पात है, सूचनका कारण आखका फडकना अर्थमे यत् । (वा०) **वातपित्त श्लेष्म** इन दोषोके शमन दमन, शान्त होना, कोपन—कुपित होना, पढना अर्थमे आर्हीय प्रकरणका ठक् हो । **वातस्य**—वायु रोगका घटना या बढना अर्थमे ठ—

शमनकोपनयोरुपसङ्ख्यानम्' । वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम् । पैत्तिकम् । श्लैष्मिकम् । 'सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्' सान्निपातिकम् । (१७०५) **गोद्व्यचोऽसङ्ख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्** ५।१।३९।। गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यम् । द्व्यचः—यशस्यम् धन्यम् स्वर्ग्यम् । गोद्व्यचः किम् ? विजयस्य वैजयिकम् । असङ्ख्या—इत्यादि किम् ? पञ्चानां पञ्चकम् । सप्तकम् । प्रास्थिकम् । खारीकम् । अश्वादि—आश्विकम् । आश्मिकम् । 'ब्रह्मवर्चसादुपसङ्ख्यानम् ।

इक आदिवृद्धि । वातिक वायु रोग घट रहा या बढ रहा है । पित्तस्य शमनं कोपनं वा पैत्तिकम् पित्तरोगका शान्त होना या बढना अर्थमे ठ—इक आदि । श्लेष्मणः शमनं कोपनं वा खासी दमा कफ,का शान्त होना या बढना अर्थमे ठ—इक आदि । (वा०) **सन्निपातसे भी** । तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ अर्थमे ठक् । वायु, पित्त, श्लेष्मा=कफ तीनोके विकृत हो कर भयंकर स्थिति सन्निपात **दोषाणां शङ्कर वैद्यके प्रसिद्ध** । सन्निपातस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा **सान्निपातिकम्** । सन्निपात रोग बढनेका निमित्त कारण ज्वर प्रकोप दशामे अपथ्य भक्षणादि संयोग जो उग्ररूपका कारण, बडबडाना, अचेतन जैसा होना उत्पात है । सन्निपातका सूचक जीभका काला होना आदि ठ—इक ।

(१७०५) **गोद्व्यचः** गोशब्दसे, दो अच् वाले शब्दके षष्ठ्यन्त शब्दसे तस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा अर्थमे यत् हो । यदि सङ्ख्या परिमाण अश्वादि हो तब यत् न हो, ठक् को बाधकर । यथा गोर्निमित्तं गायका नित्यकारण संयोग गोदान कर्तासे या बेचनेवालेसे या उत्पात=गाय अप्राप्तिका शुभ या अशुभ सूचक कारण अर्थमे यत् । वान्तोयि प्रत्ययेसे अव् । गव्यं संयोग । दो अच् धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा **धन्यः** । धनके कारणसे सम्पर्क होना या शुभ अशुभकी सूचनाके कारण अर्थमे यत् । अकारलोप **धन्य** । यशसः निमित्तं संयोगः उत्पातो वा यशस्यं । स्वर्गस्य निमित्तं स्वर्ग्यं । देवलोकसे संयोग । शुभ अशुभ सूचक यत् । सूत्रमे गो, और दो अच क्यो पढा ? विजयस्य निमित्तं जीतनेका संयोग शुभ अशुभ सूचक अर्थमे आर्हीय ठ—इक हुआ । **वैजयिक** । यहा यत् न हो । असङ्ख्या परिमाण आदि क्यो पढा ? पञ्चानां निमित्तं संयोग, उत्पातो वा । पाचसे मिलनेका शुभ अशुभ सूचक पञ्चक सङ्ख्यया कन् हो, यत् न हो । सप्तानां निमित्तं संयोग असंयोग सप्तकम् । परिमाण पढनेका फल प्रस्थस्य निमित्तं प्रास्थिक, पसेरीका सम्बन्ध शुभ अशुभका सूचक प्राग्वतेष्ठञ् इक प्रास्थिक, खार्याः निमित्तं संयोग खारीसे ईकन हो यत् न हो । अश्वादि पढनेका फल अश्वस्य निमित्तं घोडेके (संयोग

ब्रह्मवर्चस्यम् ।(१७०६) पुत्राच्छ च ५।१।४०।। चाद्यत् । पुत्रीय–पुत्र्य । (१७०७) सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१।। सर्वभूमेर्निमित्त सयोग उत्पातो वा सार्वभौम । पार्थिव । सर्वभूमिशब्दोऽनुशतिकादिषु पठ्यते । (१७०८) तस्येश्वर. ५।१।४२।। (१७०९) तत्र विदित इति च ५।१।४३।। सर्वभूमेरीश्वर सर्वभूमौ विदितो वा सार्वभौम । पार्थिव । (१७१०)

शुभ अशुभ) सूचक अर्थमे ठ–इक आदि हो यत् न हो । अश्मने निमित्त पत्थर लोहाके सयोगका सूचक ठक् हो, यत् न हो। नस्तद्धिते टिलोप (वा०)गोद्वयच सूत्रमे ब्रह्मवर्चससे यत कहे । ब्रह्मवर्चसस्य निमित्त सयोग, वेद ब्राह्मण तप, तेजका सूचक सयोग, शुभ अशुभ अर्थमे यत् ।

(१७०६) पुत्रात्से छ कहे, यत् भी । तस्य निमित्त अर्थमे । पुत्रस्य निमित्त बेटाकी प्राप्ति शुभ अशुभका निमित्त–सूचक कारण अर्थमे छ–ईय अ-लोप पुत्रीय । जब यत पुत्र्य पुत्रका सयोग लाभ, अनिष्टकी सूचना । यदि ऐसा तब आरेमिरे यतात्मन पुत्रीयतामिष्टिना ऋत्विज इति । पुत्रके लिएयज्ञ अर्थ । यहा यज्ञ न सयोग है, न उत्पात है । छ प्रत्यय कैसे ? हरदत्त बोले— सयुज्यते अनेनेति सयोग इम व्युत्पत्तिसे यज्ञ करानेसे (पुरुष फलेन युज्यते) स्वर्ग, पुत्रादि फलसे यजमान जुडता हैं । क्रतुना पुत्रेण फलेन युज्यते । केवल सम्बन्धमे आग्रह नही अत छ हुआ ।

(१७०७) सर्वभूमि—सर्वभूमि और पृथ्वीसे क्रमश अण् अञ् हो, तस्य निमित्त, यदि सयोग सम्बन्धका कारण उत्पातका सूचक हो । सर्वभूमे सम्पूर्ण भूमिमे सम्बन्धका कारण आधार शुभ अशुभका सूचक अर्थमे अण । पूर्वपद उत्तरपद दोनोंके आदि अच्की वृद्धिआदि । सार्वभौम । पूरी पृथ्वी पर व्याप्त कार्य, व्यक्ति । अनुशतिकादिमे सर्वभूमि पढा है, उसीसे वृद्धि हुई । ठञ्का बाधक अण् । पृथिव्या निमित्त सयोग उत्पातो वा पार्थिव सम्बन्ध ,शुभ अशुभ सूचक अर्थमे पृथ्वीसे अञ् आदि । स्त्रीलिङ्गमे ङीप पार्थिवी–मौसमका सूचक यन्त्र । (१७०८) तस्य=षष्ठी अन्त शब्दसे ईश्वर अर्थमे, सप्तम्यन्तसे विदित अर्थमे अण् अञ् हो । तस्य निमित्त निवृत्त । दोनो सूत्रोके विभागका फल गणनाक्रमकी निवृत्ति । दोनोसे दोनो हो । समस्त भूमिका स्वामी हो, या सम्पूर्ण भूमिमे प्रसिद्ध हो दोनोका नाम सार्वभौम ,अण् अञ्भी हुए । पृथिव्या ईश्वर, पृथिव्या विदितो वा पार्थिव पूरीपृथ्वीमे पृथ्वीका स्वामी हो या पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध हो । दोनो अर्थमे अणादि ।

लोकसर्वलोकाट्ठञ् ५।१।४४॥ 'तत्र विदित.' इत्यर्थे लौकिक । अनुशति कादित्वादुभयपदवृद्धि सार्वलौकिक ।(११) **तस्य वाप ५।१।४५॥** उप्यतेऽस्मिन्निति वाप क्षेत्रम् । प्रस्थस्य वाप प्रास्थिकम् । द्रौणिकम् । खारीक । (१२) **पात्रात्ष्ठन् ५।१।४६॥** पात्रस्य वाप क्षेत्रम् । पात्रिकम्–पात्रिकी क्षेत्रभक्ति । (१३) **तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ५।१।४७॥** वृद्धिर्दीयते इत्यादि क्रमेण प्रत्येक सम्बन्धादेकवचनम् । पञ्च अस्मिन्वृद्धि आय लाभ शुल्कम् उपदा वा दीयते पञ्चक: । शतिक.—शत्य । साहस्र ।

(१७१०) **लोक** और सर्वलोकसे ठञ् हो तत्र विदित=सप्तम्यन्तसे प्रसिद्ध अर्थमे, पूर्वसूत्रके विभागसामर्थ्यसे तस्येश्वर सूत्र नही आया । तत्र विदितसूत्र आया । लोकेषु विदित **लौकिक** समाजमे प्रसिद्ध पुरुष । लोकसे ठ–इक आदि तद्धितान्त प्रातिपदिकसज्ञा स्वादिकार्य । सर्वलोकेषु–सभी समाजमे देश या कालमे ख्यातिप्राप्त **सार्वलौकिक** वेदव्यास । सर्वलोकसे ठ—इक आदि । अनुशतिकादीना च से दोनो पदके आदि अच्की वृद्धि । (११) **तस्य**—षष्ठ्यन्तसे वाप (उप्यते अस्मिन्) जिसमे बोया जाय उस खेत अर्थमे ठञ् हो । प्रास्थिकम् एक पसेरी बीज बोनेका खेत । प्रस्थपरिमितबीजवाप योग्य क्षेत्रम् । अर्थमे ठ–इक आदि । दोणस्य वाप द्रौणिकम् एकद्रोण बोज बोनेका खेत अर्थमे द्रोणसे ठ–इक आदि । एक कुन्तल बोनेका खेत, खार्या वाप. (चार द्रोण कुन्तल बीज बोनेका क्षेत्र) खार्या ईकन् खारीक क्षेत्रम । (१२) **पात्रसे** बोने का आधार खेत अर्थमे ष्ठन् हो । पात्रस्य वाप: एक कनस्तर बीज बोनेके खेत अर्थमे पात्रसे ठ–इक आदि पात्रिकम् । षित्से ङीष् पात्रिकी । इस क्षेत्रफलमे एक पात्र बोया जायगा । (१३) **तदस्मिन्** प्रथमासमर्थ बहुवचनसे सप्तमीके अर्थमे वृद्धि आय लाभ शुल्क उपदा इनके द्वन्द्व समाससे यथायोग्य प्रत्यय हो प्रत्येकके सम्बन्धसे एकवचन दीयते पढा । पञ्चास्मिन्–पाच रूपया इसमे वृद्धि बढता सूद, आय आमदनी लाभ मुनाफा, शुल्क टैक्स (कर) उपदा घूस, दिया जाय जिस कर्ममे **पञ्चक** । उन अर्थोमे सख्याया कन् । अस्मिन्वृद्धि दीयते आय दीयते, अस्मिन् लाभ दीयते, शुल्क दीयते आदि । शतमस्मिन् वृद्धि आय लाभ: शुल्क उपदा वा दीयते । सौ रूपये बढोत्तरी, सूद, आमदनी, कर उत्कोच देता है । अर्थमे शताच्च ठन्यतौ । शतसे ठ–इक अलोप शतिक । जब यत् तब शत्य । सहस्त्रम अस्मिन्दीयते । एक हजार सूद, लाभ, कर या घूस इस कार्यमे देता है । शतमान सहस्रसे अण् आदि साहस्र । एक–एक शब्दोका

उत्तमर्णेन मूलातिरिक्त ग्राह्य वृद्धि। । ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आय । विक्रेत्रा मूल्यादधिकग्राह्य लाभ , रक्षानिर्वेशो राजभाग शुल्क । उत्कोच उपदा । (वा) 'चतुर्थ्यर्थे उपसख्यानम्' । पञ्च अस्मै वृद्धयादिर्दीयते पञ्चको देवदत्त । 'सममब्राह्मणे दानम्' इतिवदधिकरणत्वविवक्षा वा । (१४) पूरणार्धाट्ठन् ५।१।४८।। यथाक्रम ठक्टिठनोरपवाद । द्वितीयो वृद्धयादिरस्मिन्दीयते द्वितीयिक । तृतीयिक । अर्धिक । अर्धशब्दो रूप्यकस्यार्धे रूढ ।

स्पष्ट अर्थ समझाते हैं—उत्तमर्ण ऋणदाता धनीसे दिये गये मूलधनसे अतिरिक्त धन सूद जो पाना है वह वृद्धि ग्रामादिषु—गावके मुहल्लेसे भवन टैक्स,खेतटैक्स (कर) प्रबन्धक स्वामीको पानेका अश आय है। विक्रेत्रा—बेचनेवालेका खरीद मूल्यसे अधिक धन पाना लाभ है। रक्षा निर्वेश —प्रजा परिपालन के लिए सेवक रक्षकके लिए राजाका जो अ श है, वह शुल्क, कर है। उत्कोच घूस जो जो मह्य किचिद्दत्त चेत तदा कार्यं कर्तुम् अनुकुलो भवामि इति समय कृत्वा मुझे कुछ दीजीये तब तुम्हारे अनुकूल कार्य करू गा ऐसी समझौता पर जो धन लिया जाय वह उत्कोच है। उप—समीपे दीयते उपदा।(वा) **चतुर्थीके** अर्थ मे भी वृद्धि, आय, लाभ आदि अर्थमे प्रत्यय कहे, पञ्चास्मै-पाच रूपया इसको वृद्धि देता है या शुल्क उपदा आदि अर्थमे सख्यासे कन् **पञ्चक** । देवदत्तको पाच बढोत्तरी या लाभ आदि मिलता है। जैसे समम् अब्राह्मणे दान, यहा सप्तमी है सम्प्रदानकी इच्छा हटाकर इसी तरह अधिकरणत्व विवक्षा। चतुर्थीके स्थानमे सप्तमीसे इष्ट सिद्ध होगा यह वार्तिक न पढे।

(१४) **पूरण**—पूर्यते अनेन पूरण अर्ध । धान जो अन्न है उसी से पात्र भरता है उस अर्थ वाचक अर्ध शब्दसे ठन् हो। तस्मिन्वृद्धयादि । दीयते अर्थमे प्रथमान्तसे अर्हादगो—सूत्रके ठको बाधकर, अर्धाच्चेति वक्तव्यके ट्ठिन्को बाधकर। अत डीप् नही हुआ। द्वितीयस्या पूरण द्वितीय दूसरी सख्याका पूरक वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क उपदा देता है, इसमे दूसरी बार सूद आमदनी, टैक्स, घूस देता है जिस कर्ममे, द्वितीयशब्दसे ठन् इक आदि पूरणप्रत्ययान्त है ठक्को बाधकर। **द्वितीयिक** । तृतीयस्या पूरण तृतीय तीसरी सख्याका पूरक। अस्मिन्दीयते आय लाभ आदि ठन् पूर्ववत्। **अर्धिक**, अधमस्मिन् दीयते आधा सूद आधा उत्कोच, लाभ आदि देता है जिस कर्ममे अधसे ट्ठिनको बाधकर ष्ठन्, इक टाप्। आर्धिका आधाभाग। यहा अर्धशब्द कर्षापण अर्थमे रूढ है, प्रमाण अन्वेषणीय है। नित्य सापेक्ष होनेसे रूप्यक अर्थ मे असामर्थ्य हट सकता है।

(१७१५)भागाद्यच्च ५।१।४९।। चाट्ठन भागशब्दोऽपि रू यकस्यार्धे रूढ, भागो वृद्धयादिरस्मिन्दीयते भाग्य-भागिक शतम । भाग्या-भागिका विंशति, (१६) तद्धरति वहत्यावहति भाराद्व शादिभ्य ५।१।५०।। वशादिभ्य परो यो भारश दस्त न्त यत्प्रातिपदिक तत्प्रकृतिकाद्द्वितीयान्तादित्यर्थ । वश-भार हरति वह यावहति वा वाशभारिक । ऐक्षुभारिक । 'भाराद्व शादिभ्य' इत्यस्य व्याख्यान्तर 'भारभूतेभ्यो वशादिभ्य' इति । भारभूतान्वशान्हरति वाशिक । ऐक्षुक । (१७) वस्नद्रव्याभ्या ठन्कनौ ५।१।५१। यथासख्य स्त । वस्न हरति वहत्यावहति वा वस्निक । द्रव्यक । (१८) सम्भवत्यव-

---

(१७१५) भागशब्दसे यत हो ठन भी । जो पूर्व सूत्रसे आया । भाग शब्द भी रूपक कौडी या परीक्षणका पत्थर अर्थमे है, अर्धेरूढ -आधे भागमे स्थिर है भागमे वृद्धि लाभादि अर्थमे यत **भाग्यम** आधा अश देनेका कर्म । जब ठन्—इक भागिक (आधा मान्य) टाप होनेपर बीसका आधा भाग्या । (१६) **तद्धरति** द्वितीयान्तसे वश आदिगणपढे शब्दमे परे भारशब्द अन्तमे हो, ऐसे प्राति-पदिककी प्रकृति द्वितीयान्तसे हरति (एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुचाना देशान्तर प्रापण, चौर्यं चोरी करना) वहति शकटादिना प्रापण, गाडी, ट्रकसे ढोता है, आवहति स्वसमीप प्रापयति अपने पासलाना । उत्पन्न करना । आदि अथमे यथा उचित प्रत्यय हो । आर्हात्-सूत्रके ठक्को बाधकर । विपरीत शब्द का होना, व्याख्यानसे । वशभार बासका बोझा हटाता है, चुराता है, ढोता है । पैदाकरता है जो, वह व्यक्ति **बासभारिक** । वशभारसे ठ—इक आदि बासबोझावाहक । इक्षुभार हरति, वहति, आवहति अर्थे ठ-इक आदिवृद्धि गन्नेका बोझाहरण करता, ढोता, पैदाकरता है । पासमे लाता है **ऐक्षुभारिक** सूत्रमे भाराद्वशादिभ्य, प्रयोगमे उलटकर वशभार पढा । इसमे व्याख्यान ही प्रमाण है । भारसे परे वश है इस भ्रमको दूर वास्ते कहा । **भारभूतेभ्य** बास इक्षु आदि शब्दोंका भारभूत होना अलग नही । बासमे ही बोझा है, इस व्या-ख्यानमे एकवचन आर्ष है । अत भारभूतान्वशान् जिसमे वजन हो उसको ले जानेवाला **वाशिक**, वशसे ठ आदि । इक्षुसे ठ—क आदि । भागशब्द अर्थद्वारा बासका विशेषण । (१७) **वस्न** मूल्य और द्रव्य शब्दसे वहति हरति आवहति अर्थमे ठन् और कन्भी, गणनाक्रमसे हो, द्वितीयान्तसे । वस्न=मूल्यको हटाता, हरणकरता, लेजाता है या स्वसमीप नयति, पार्श्वमे लाता है । अर्थमे ठ—इक **वस्निक** मूल्यवाहक । द्रव्य वहति किसी वस्तुको ढोता है हरति आदि अर्थमे कन् **द्रव्यक** धनसम्पत्तिवाहक ।

हरति पचति ५।१।५२।। प्रस्थ सम्भवति प्रास्थिक कटाह । प्रस्थ स्वस्मिन्समावेशयतीत्यर्थ । प्रास्थिकी ब्राह्मणी । प्रस्थमवहरति (उपसहरति) पचति वेत्यर्थ । तत्पचतीति 'द्रोणादण्च' वा । चाट्ठञ् । द्रोण पचतीति द्रौणी-द्रौणिकी ।१६ **आढकाचितपात्रात्खोऽन्यतरस्याम् ५।१।५३।।** पक्षे ठञ्। आढक सम्भवति अवहरति पचति वा आढकीना-आढकिकी । आचितीना-आचितिकी, पात्रीणा —पात्रिकी । (१७२०) **द्विगो ष्ठश्च ५।१।५४।।** 'आढकाचित-

---

(१८) **सम्भवति** । तत् आया द्वितीयान्त बना । उससे सम्भवति=आधार प्रमाणसे आधेय प्रमाणका कम होना सम्पूर्वक भू धातुका अर्थ । बोरेमे चावल कम है, आधार बोरा, आधेय चावलकी सम्भावना और अवहरति उपसहार-समाप्त करता है, पचति अर्थमे यथा उचित प्रत्यय हो । प्रस्थ सम्भवति कटाह पसेरी भरकी । पाककडाही पाच किलो सम्भव है । कटाह आधार चावल आधेय अर्थमे ठ-इक आदि प्रास्थिक । प्राग्वतेष्ठञ् । सम्भवति का उपपद्यते अर्थ अकमक है । प्रस्थ सम्भवति कर्म कैसे ? तब कहा—प्रस्थ स्वस्मिन् एक पसेरी अपनेमे रख सकता है । (उपसर्ग बलात् अन्यार्थ प्रतीयते) ङीप् होनेपर प्रास्थिकी पाच सेर पचानेवाली । अवहरति का अर्थ उपसहरति समाप्ति कुछ कम रहे तब भी पूरा मान ले **किंचिदूनमपि यथा प्रस्थपरमित भवति तथा निश्चिनोतीत्यर्थ** । प्रस्थ पचति पसेरी भर पकाता है । **प्रास्थिक** भण्डारी । (वा०) **तत्पचति** द्वितीयान्त द्रोणशब्दसे पचति अर्थमे अण् हो ठञ् भी । सम्भवति अवहरतिकी रुकावटके लिये पचति पढा । द्रोण पच्चीस किलो पकाता है द्रौण द्रोणसे अणादिवृद्धि । ङीप्, बडा कन्डाल । जब ठञ् इकादि तब **द्रौणिकी** । द्रोणपरिमिते व्रीह्यादौ द्रोण शब्दो लाक्षणिक ।

(१९) **आढक** आचित, पात्र इनके द्वितीयान्त दशासे सम्भवति अवहरति पचति अथमे ख हो विकल्पसे, पक्षमे ठञ् भी । ये सब परिमाण, नपना मात्र अर्थमे है । उसके निषेधसे न ठक् । आढक सम्भवति । ढाई पसेरी सम्भव पकाता है, भरता अर्थमे ख-ईन आदि **आढकीना** । पक्षमे ठञ् तब टिड्ढा ङीप् **आढकिकी** । आचित सम्भवति पचति १० किलो सम्भव हैं या पकाता वह पात्र अचितीना ख-ईन टाप् । पक्षमे ठ-इक ङीप् । पात्र पचति ए डिब्बा पकाता है । पात्रसे ख-ईन णत्व टाप् **पात्रीणा** । पक्षमे ठ-इक ।

(१७२०)**द्विगुसमासमे** आढक आचित पात्रसे ष्ठन् हो, ख भी । जो चका से खीचकर आया, विकल्पसे । पक्षमे ठञ् उसका अध्यर्धसे लुक् । षित्का फ

पात्रात्' इत्येव । आढकाद्यन्ताद्द्विगो सम्भवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन्खौ वा स्त । पक्षे ठञ् । तस्य 'अध्यर्ध' इति लुक् । षित्वान्ङीष् । द्व्याढकिकी–द्व्याढकीना । 'द्विगो' इति ङीष् । द्व्याढ़की । द्व्याचितिकी—द्व्याचितीना । अपरिमाण— इति ङीब्निषेधात् द्व्याचिता । द्विपात्रिकी— द्विपात्रीणा–द्विपात्री । (२१) **कुलिजाल्लुक्खौ च ५।१।५५।।** कुलिजान्ताद्द्विगो सम्भवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ वा स्त । चात्ष्ठश्च । लुगभावे ठञ श्रवणम् । द्विकुलिजी—द्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी । (२२) **सोऽस्याशवस्नभृतयः ५।१।५६।।** अशो भाग, वस्न मूल्यम् । भृतिर्वेतनम । पञ्च अशो वसन भृतिर्वा अस्य पञ्चक ।(२३) **तद-**

ङीष् । द्वे आढके सम्भवति अवहरति पचति विग्रहमे तद्धितार्थोत्तरपदसे द्विगु समास । ष्ठन ठ–इक ङीष् यण् द्व्याढकिकी दो अढैया पकानेका पात्र । ख— ईन, टाप् । जब ठञ् उसका अध्यधसे लुक् । द्विगो से ङीप् अध्यर्धसे ठञका ही लुक् । ष्ठन् खका नही, विधानबलसे । इसीप्रकार द्वे आचिते सम्भवति पचति विग्रहमे समासादिकार्य पूर्ववत । जब ठञ् होगा तबलुक् होनेपर द्विगो से ङीप् क्यो नही ? तब कहा अपरिमाण सूत्रके ङीप् निषेधसे । किन्तु टाप् । अयाचिता । द्वे पात्रे सम्भवति पचति(दो डिब्बासे) कम हो या उत्पद्यते अर्थमे ष्ठन् ख ठञ् लुक् की प्रक्रिया पूर्ववत् द्विपात्री ।

(२१) **कुलिज** (नपना, परिमाण) अन्त हो और द्विगुसमास हो सम्भवति आदि अर्थमे प्राग्वहते ठञ् हो, उसका लुक् विकल्प, ख भी, ठञ् भी विकल्प । चसे ष्ठन्‌भी, लुक्के अभावमे ठञ् सुनाई पडेगा । द्वे कुलिजे सम्भवति अवहरति पचति विग्रहे समासादि , द्विगो ष्ठन् । अनुबन्धलोप ङीप् द्विकुलिजिकी ख-ईन टाप् । जब ठञ् उसका लुक् ङीप् द्विकुलिजी । ठञ् रहनेपर परिमाणान्त है किन्तु असज्ञा शाण कुलिज कहनेसे उत्तरपद वृद्धि नही । (२२) **सोऽस्याश** वह इसका अश भाग है-तदस्य वस्न, वह इसका मूल्य है । भृति वह इमका पारिश्रमिक है इन अर्थोमे यथायोग्य प्रत्यय हो, प्रथमान्तसे । पञ्च अ श पाच भाग, पाचमूल्य या पारिश्रमिक है जिसका पञ्चक अस्ति सख्यासे कन् ।

(२३) **तदस्य** परिमाण अर्थमे प्रथमान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो । सूत्रके परिमाणशब्दसे जितने परिच्छेदक—भेदक धर्म है । ग्राम किलो क्विटल द्रोण आढक सख्या आदि सबकी स्वीकृति है । उत्तर सूत्रमे सख्या परिमाणका विशेषण है । परिच्छेदिका होनेसे सख्या भी परिमाण । अत षष्टि जिवितं परिमाणमस्य षाष्टिक सेवामुक्त । साठ वर्षका हुआ या छ वर्षका बालक ।

स्य परिमाणम् ५।१।५७।। प्रस्थ परिमाणमस्य प्रास्थिको राशि । (२४) **सख्याया' सज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु ५।१।५८।।** पूर्वसूत्रमनुवर्तते। तत्र 'सज्ञाया स्वार्थे प्रत्ययो वाच्य । यद्वा द्वयेकयोरितिवत्सख्यामात्रवृत्ते परिमाणिनि प्रत्यय । पञ्चैव पञ्चका शकुनय । पञ्च परिमाणमेषामिति वा सघे, पञ्चक । सूत्रे अष्टक पाणिनीयम । सघशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात्सूत्र पृथ-

---

सोऽस्य पढ़ा ही था, तदस्य क्यो पढा ? इसलिएकि द्वे षष्टी जीवित परिमाणमस्य द्विषाष्टिक । त्रिषाष्टिक, अध्यर्धसे ठञ्का लुक् न हो। प्रस्थ परिमाणम्, एकपसेरी मापवाली राशिका नाम **प्रास्थिक** प्रस्थ ठञ् इक आदिवृद्धि ।

(२४)**सख्याया** =सज्ञा-रूढ नाम सघ-समुदाय **सूत्र**=शब्द कम-अर्थ अधिक अध्ययन इन अर्थोमे तदस्य परिमाणम इससे सम्बन्धित मात्रा अर्थमे प्रथमान्त से सख्यारूप परिमाणवाचक शब्दसे उचित प्रत्यय हो । तदस्य परिमाणम् आया। उसका फल पञ्चगाव परिमाणमस्य **पञ्चक** गोसध । जब प्रकृतिके अर्थकी भेदिका सख्या होगी तब पञ्चगावो अस्य सघस्य विग्रहमे प्रत्यय नही होगा। क्योकि उसका अर्थ परिमाण नही। इति कैयट । अत बोले पूर्वसूत्र मनुवतते। तत्र उक्तसूत्रमे (वा०) **सज्ञा** अथमे स्वाथमे प्रत्यय बोले। स्वप्रकृति तस्य अर्थं स्वार्थं, यद्वा अथवा द्वयेकयो —द्वित्व दो सख्या, एक व एकसख्याकी तरह केवल सख्या ही मान्य। यद्यपि सख्येय (जिसकी गिनतीकी जाय) मे द्वि एक रहते है। किन्तु समास होनेपर सख्या मात्रका ज्ञान है। नही तो द्वयेकयो:मे द्विवचन न होता **इतिवत्**=इसीप्रकार **पञ्चका** शकुनय पाच ही पक्षियोका नाम पञ्चका । पञ्चनसे कन् बहुवचन, तद्धितवृत्ति, एक अर्थ होनेमे भी पञ्चसख्या मानकर **पञ्चक** परिमाणमस्य समान आधार स्वीकार कर पञ्चन्से परिमाण अर्थमे प्रत्यय होगा। आदशत सख्या सख्येये। दशतक की सख्या गणनीय वस्तु अर्थमे प्रसिद्ध है। स्वार्थमे कन्। परिमाणवाले अर्थके उदाहरण—पञ्चपरिमाणमेषाँ पञ्चत्व अर्थ। सघका उदाहरण—पञ्चक पञ्चत्व अस्य सघस्य परिमाणम् पाच सख्याका समुदाय सघस्य पञ्चत्व एक-२ के समुदायके पञ्चसे कन्। सूत्रका उदाहरण सूत्रयति अल्पाक्षरेण बह्वर्थान् सवेष्टयति सूत्रम्। अष्टौ अध्याया परिमाणमस्य, अष्टक, पाणिनि सूत्रोकी सीमा मान आठ अध्याय है। अध्यायके समुदायमे अष्टत्व है। सूत्रका सूत्रसघ अर्थ, एक सूत्रमे आठ सख्या न होनेसे। जब सघ लेना है, तब सूत्र क्यो पढा ? भेद बोले कि—सघशब्द चेतनप्राणीके समुदाय अर्थमे रूढ है अत सूत्रको अलग पढा। अध्ययन अर्थका उदाहरण—पञ्च आवृत्तय परिमाणमस्य अध्ययनस्य

गुपात्तम् । पञ्चकमध्ययनम् । 'स्तोमे डविधि' पञ्चदश मन्त्रा परिमाणमस्य पञ्चदश स्तोम । सप्तदश एकविंश । डप्रत्यये तिलोप । सोमयागेषु छन्दोगै क्रियमाणपृष्ठादिसञ्ज्ञिका स्तुति स्तोम । (१७२५) **पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५।१।५९॥** एते रूढि-

---

पाच बार पढना अध्ययनकी सख्या हुई। इस अर्थमे पञ्चनसे कन् आदि **पञ्चकम्** । पाच बारका पढना । (वा०) **स्तोमे**=तदस्य परिमाणम् अर्थमे सख्यावाची शब्दसे ड प्रत्यय कहे। समान मन्त्र, समुदायका नाम स्तोम है इति कैयट । मनुष्य समुदायमे लाक्षणिक है। पञ्चदश–पन्द्रहमन्त्र परिमाण है जिस स्तुतिका अर्थमे पञ्चदशन्से ड—अ प्रत्यय । डित्की शक्तिसे टिलोप । पञ्चदशमन्त्रसमुदाय पञ्चदश । सप्तदश। सत्रहमन्त्रोका समुदाय अर्थमे डादि सप्तदश । यदि ड इत् न होता नस्तद्धितेसे टिलोप सिद्ध था डित् पढना व्यर्थ है। तत्र, एकविंशतिर्मन्त्रा परिमाणमस्य समूहस्य—इक्कीस मन्त्रकी स्तुति का नाम **एकविंश** । एकविंशतिसे ड अ । तिविंशतेर्डितिसे टिलोप । एकविंश । सोमयज्ञोमे छन्दोगा =वेदमन्त्र गायन कर्ताओसेकी गयी पृष्ठी, रथन्तर आदि मन्त्रोके गुणोका वर्णन जिससे हो वह स्तुति स्तोम है वही ड प्रत्ययका अर्थ।

(१७२५) **पङ्क्ति** विंशति इत्यादि शब्द रूढ है निपातन (प्रत्यय कल्पनासे सिद्ध है। तदस्य परिमाणम् अर्थमे निपातन । यथा पञ्चपादा परिमाणमस्य पाच चरणसे सम्बन्धित मन्त्र इत्यादि अर्थमे निपातनसे पञ्चन्से ति प्रत्यय पञ्चन्के टि (अन्) का लोप, चो कु चको क, न का अनुस्वार बिन्दु, पर सवर्ण ङ । पङ्क्ति पञ्चाक्षरा पञ्चपादा छन्दमे प्रसिद्ध है नाना अर्थ हैं। क्रम अर्थमे ब्राह्मणपङ्क्ति । पिपीलिकापङ्क्ति । चीटीका कतार। **दश** सख्या अर्थमे पङ्क्तिरथका **दशरथ** अर्थ। किन्तु छन्दके विषयमे अवयव अर्थमे होगा। अन्य अर्थोमे नही। पाच चरणका नाम पङ्क्ति विंशति । द्वौ दशतौ परिमाणमस्य सघस्य, दो दश=बीस सख्याका समुदाय अर्थमे कल्पनासे शतिच् द्विदशत्को 'विन्' आदेशे। उसके न को अनुस्वारे स्वादि **विंशति** । सघ भी आया **गवांविंशति** । गायोकी बीस सख्या सघ है गाय सघी। अभेद सम्बन्ध की इच्छामे **विंशतिर्गाव** होगा। एकवचन स्वभावसे, स्त्रीलिङ्ग भी। एव त्रिंशत् आदि भी सिद्ध होगे। **विंशत्याद्या सदैकत्वे सख्या सख्येयसख्ययो । तासु चानवते स्त्रिय** अमरकोशे। बीस सख्यासे लेकर सदा एकवचन । सख्या सख्येय गणनाकी वस्तु नब्बे तक एकवचन। त्रयाणा दशता परिमाणमस्य

शब्दा निपात्यन्ते। (२६) **पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ५।१।६०॥** पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्ग । दशत् । पक्षे पञ्चक । दशक (२७) **त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञाया डण् ५।१।४२॥** त्रिंशदध्याया परिमाणमेषा ब्राह्मणाना त्रैंशानि । चात्वारिंशानि । (२८) **तदर्हति ५।१।६३॥** लब्धुं योग्यो

सघस्य विग्रहमे शत । त्रिदशको त्रिन् । नको अनुश्वार त्रिंशत् । चत्वारो दशतः या चतुर्णा दशता परिमाणमस्य शनिच्प्रत्यय चतुर्दशत्को चत्वारिन् आदेश । अनुस्वार आदि । चत्वारिंशत् चार दश–चालीस । पञ्चाना दशता परिमाण मस्य–शत्प्रत्यय पञ्चादेश **पञ्चाशत्**, षष्टि, **षड्दशत**. षण्णा दशतावा छ-दश =साठ अर्थमे ति प्रत्यय और षष् आदेश । षष्ति-ष्टुत्व–तको ट षष्टि, जस् का आभाव निपातनसे । **सप्तदशत** परिमाणमस्य सात दश=७० सख्याकसमुदाय अर्थमे ति, सप्त आदेश सप्तति **अशीति** । अष्टौ दशत परिमाणमस्य आठ दश अस्सी सख्याका झुण्ड, ति प्रत्यय, अष्टदशत्को अशीआदेश नब्बे, सख्याका समुदाय, ति नवआदेश **नवति** । दश दशत परिमाणमस्य दश–दश=सौ (१००) त प्रत्यय, श आदेश शतम् । भाष्यमे व्याख्यान है एतानि अव्युत्पन्नप्रातिपदिकानि निष्कर्ष ,(२६)**पञ्चत** दशत आदेश हो परिमाण अर्थसे सम्बन्ध (वग अथम)पाच या दशसख्याका वर्ग समुदाय अर्थ । निपातन (सूत्रमे पढे जानेसे) पञ्चपरिमाणमस्य पाच सख्याका समुदाय अर्थमे पञ्चन्से डति, अनुबन्ध लोप । पञ्चत टि अकार लोप । पञ्चद्वर्ग । दश परिमाणमस्य वर्गस्य दशसख्याका झुण्ड डति, टिलोपादि दशत् । जब डति नही होगा तब पक्षमे सख्याया सज्ञा सघ सूत्राध्ययनेषुसे कन् पञ्चक दशक सघ अर्थ ।

(२७) **त्रिंशत्** और चत्वारिंशत्से अस्य परिमाणम अथमे डण् हो, परिणामी वेदका ब्रह्मणभाग अर्थ हो तब ब्राह्मण वेदेषु मन्त्रव्यतिरिक्तो भाग वेद का दो भाग मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग । मन्त्रके अतिरिक्तभ गको ब्राह्मण सज्ञा होती है । त्रिशत् अध्याया–तीस अध्यायकी सख्यामे इन ब्राह्मणसज्ञक मात्रा परिमाण है अर्थमे त्रिंशतसे डण । अनुबन्धलोप डित्से अन्का लोप । **त्रिंशानि** नपुसके बहुवचन, एव चत्वारिंशत्से डण्, चालीस अध्याय सख्यकवेद का ब्राह्मणभागका ग्रन्थ ।(२८) **तदर्हति** योग्यो भवति । लब्धु—लाभके योग्य है अर्थमे द्वितीयान्तसे ठञ् आदि हो, श्वेतच्छत्र=सफेदछाता पुरस्कार पानेयोग्य अर्थमे श्वेतच्छत्रसे ठ—इक आदिवृद्धि । एव प्रस्थमर्हति प्रास्थिक । पाचसेर पाने योग्य । द्रोणमर्हति द्रौणिक पच्चीस किलो पाने योग्य । ठञ् हुआ । ठक्

भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादय स्यु । श्वेतच्छत्रिक श्वैतच्छत्रिक ।(२९) **छेदादिभ्यो नित्यम् ५।१।६४।।** नित्यमाभीक्ष्ण्यम् । छेद हित्यमर्हति छैदिको वेतस । छिन्नप्ररूढत्वात् । 'विराग विरङ्ग च' विराग नित्यमर्हति—वैरङ्गिक । (१७३०) **शीर्षच्छेदाद्यच्च ५।१।६५।।** शिरश्छेद नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्य — शैर्षच्छेदिक । यट्ठको' सन्नियोगेन शिरस शीर्षभावो निपात्यते । (३१) **दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६।।** एभ्यो यत्स्यात । दण्डमर्हति दण्ड्य । अर्घ्यं । वध्य । (३२) **पात्राद्घश्च ५।१।६८।।** चाद्यत् । तदर्हतीत्यर्थे । पात्रिय

मे **श्वैतच्छत्रिकः** । खारीमर्हति **खारीक** । एक कुन्तल पाने योग्य । शतमर्हति शत्यः। **शतिक** । सहस्रमर्हति साहस्र सौ हजार पाने योग्य ।

(२९) **छेदादिगण** पढे शब्दोसे नित्य=प्रतिदिन अर्हति करने योग्यादि अर्थ मे द्वितीयान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हो । नित्यका अर्थ आभीक्ष्ण्य पुन.-२ प्रवृत्तिः पौन पुन्य रोज कर्तन छटनीका विषय हो । छेद=काटनेके लिए नित्य योग्य है अथमे ठ—इक आदि छैदिक । बेंतको नित्यकाटनेसे बढता रहता है अत कहा छिन्नप्ररुढत्वात् । वस्तुत नित्यका पौन पुन्य प्रत्यय अर्थ नहीं होगा, आरम्भ सामर्थ्यसे । नित्य प्रत्ययके अर्थमे विशेषण नही हो सकता । नित्य छेदमर्हति असम्भव हैं । कोई एक वस्तु नित्य नही छटती । वेतसादि अर्ध कटे हो बढते है नित्य नही कटते । छेद, भेद द्रोह-दोष आदिभी मान्य । भेदमर्हति **भैदिक** । द्रोहमर्हति द्रौहिकः । दोषमर्हति दौषिकः (ग) **विराग**के स्थानमे विरङ्ग आदेश हो, उक्त अर्थमे, ठकभी हो । ससारसे अनुराग हटना विराग है वैसा नित्य हो अर्थमे ठ—इक आदि विरङ्गआदेश आदिवृद्धि वैरङ्गिक ।

(१७३०) **शीर्षच्छेद से** यत् हो अर्हति, नित्य शिर काटने योग्य अर्थमे । शिर्षाणा छेदन शिरच्छेदसे यत् **शिरच्छेद्य** । पक्षमे आर्हीय ठ—इक आदि **शैर्षच्छेदिक** । **छन्दसि=वेदमे** ही शिरसको शीर्ष आदेश नियम है यहा कैसे ? तब कहा यट्ठको =यत् और ठक्के सयोगसे शिरस्के स्थानमे शीर्षभाव निपातनसे । (३१) **दण्डादि** गणमे पढे शब्दोसे योग्यो भवति अर्थमे यत् हो । दण्ड अपराध समन यं—डडा खाने योग्य यर्थमे यत् । यस्येति अकारलोपे । **दण्ड्य** । अपराधी या वृद्ध, छडीसहारावाला । **अर्घ्य**' अर्घ्यमर्हति **मूल्ये पूजाविधौ अर्घ** मूल्य पाने योग्य या पूजाके योग्य अथमे यत् अकारलोप । वधमर्हति वध्य मार डालने योग्य । अचो यत् सूत्रके भाष्यमे हनो **वा यद्वधादेशश्च वध्यः**

पात्र्य । (३३) **कडङ्करदक्षिणाच्छ च ५।१।६९॥** चाद्यत कड करोतीति विग्रहेऽत एव निपातनात्खच् । कडङ्कर माषमुद्गादिकाष्ठमर्हतीति कडङ्करीयो गौ । कडङ्कर्य । दक्षिणामर्हतीति दक्षिणीय —दक्षिण्य । (३४) **स्थालीबिलात् ५।१।७०॥** स्थालीबिलमर्हन्ति स्थालीबिलीयास्तण्डुला, स्थालीबिल्या पाकयोग्या इत्यर्थं । (१७३५) **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ५।१।७१।** यथासंख्य स्त । यज्ञमृत्विज वार्हति यज्ञिय, आर्त्विजीनो यजमान । 'यज्ञर्त्विग्भ्या तत्क-

---

घात्य । तद्धितो वा वधमर्हति प्रमाणसे यत् विधान उचित, य पढना अनुचित । अर्हति क्रियामात्रका बोधक है। (३२) **पात्रसे** यत् हो, घन् भी । लब्धु योग्यो भवति अर्थमे । पात्र लब्धुमर्हति पाप्रत्रय पीनेके लिये पात्र । पात्रसे घ—इय । यत् होनेपर अकारलोप पात्र्य ।

(३३) **कडङ्कर** और दक्षिणासे छ हो यत् भी (कड—मदे) अहकार करना कडन कड =मद (घञर्थे क) त करोति विग्रहे निपातनसे खच् । खित् मानकर मुम् । कडङ्करञ्च दक्षिणा च समाहार द्वन्द्वपञ्चमी । माष उरद् मूग आदि । खाद्य लाभके योग्य अर्थमे छ—ईय । आयनेयी इति सूत्रेण । कडङ्करीय डागर गाय बैल । नीवारपाकादिकडङ्करीयै । उरद मूग पसन्द करते है । यत् होने पर दूसरा रूप । दक्षिणा लाभके योग्य अर्थमे छ—ईय **दक्षिणीय** । यस्येति आकार लोप । यत् होनेपर दक्षिण्य । (३४) स्थालीबिल शब्दसे अर्हति पकाने योग्य (चावल) अर्थमे यत् हो, छ भी । छ—यत्, तदर्हति अनुवर्तन्ते । स्थालीके भीतरी भागमे पकाने भरके योग्य चावल अर्थमे स्थालीबिलसे छ—ईय बहुवचन **स्थालीबिलीया** । यत् होनेपर दूसरा रूप । बटलोहीमे पकाने योग्य तण्डुल ।

(१७३५) **यज्ञ** और ऋत्विज् शब्दसे घ और ख हो अर्हति—योग्यो भवति अर्थमे । अमर्थी सर्थो विद्वान् । यज्ञमर्हति **यज्ञिय**.। यज्ञानुष्ठाने योग्य पण्डित यज्ञ करानेमे कुशल घ—इय । ऋत्विजमर्हति होता पुरोहित, कर्मकाण्डीको चाहता है अर्थमे ऋत्विजसे ख—ईन आदिवृद्धि **आर्त्विजीन** यजमान, अनुष्ठान के लिये कर्मकुशल चाहता है। (वा०) **यज्ञ** कर्म ऋत्विक् पुरोहित कर्म अर्हति अर्थमे ऋत्विक् शब्दसे गणना क्रमसे घ और खञ् प्रत्यय कहे । यज्ञ कर्म करने योग्य देश स्थान अथमे घ—इय **यज्ञिय** यज्ञानुष्ठानमर्हति ऐसा देश । ऋत्विक् कर्तव्य कर्मकुशलताके योग्य अर्थमे ख—ईन आदि **आर्त्विजीन** पुरोहित । यज्ञ

मार्हतीत्युपसख्यानम् । यज्ञियो देश । आर्त्विजीन ऋत्विक् ।इत्यार्हीयाणा ठगादीना द्वादशाना पूर्णोऽवधि ।

अथठञधिकारे कालाधिकारप्रकरणम् ॥३४॥

अत पर ठञेव । (३६) पारायणतुरायणचान्द्रायण वर्तयति ५।१।२॥ पारायण वर्तयति पारायणिकश्छात्र । तुरायण यज्ञविशेष त वतयति तौरायणिको यजमान । चान्द्रायणिक । (३७) सशयमापन्न ५।१।७३॥

ऋत्विक् शब्दका कममे लक्षणा, तथापि मुख्य अर्थमे प्रत्यय हो यह ज्ञापनका फल । आर्हीय प्रकरणमे प्राग्वते से लेकर तेन तुल्य सूत्र तक त्रयोदश प्रत्यय कहे गये । उनमेसे ठञ्को छोडकर शेष ठक् आदि द्वादश प्रत्ययका विधान, उनकी अवधि पूर्ण हुई । यहासे आगे ठञ ही होगा ।

अथठञधिकार —

तद्धितमे तेन तुल्य क्रियाचेद्वति सूत्रतक ठञ्का अधिकार । उसमे कालका अधिकार समझानेकेलिये कहा अत पर ठञ् एव । आर्हीयअर्थोमे ठञ्का बाधक ठक्। आदि प्रत्ययोकी अवधि पूरी होनेपर उनकी अनुवृत्ति असम्भव । अत ठञ् ही चलेगा । (३६) **पारायण** तुरायण चन्द्रायणके द्वितीयान्त दशासे वर्तयति—पाठका आचरण करता है अर्थमे ठञ् हो । पारायण वेदाध्ययनम् आदि से लेकर अन्त तक अखण्ड पाठ अध्ययन, आवृत्ति अर्थमे ठञ् हो । पारायण वर्तयति वेद शास्त्र रामायणका अखण्ड पारायण अविच्छेदेन आवृत्ति अर्थे पारायणशब्दात ठ—इक आदि **पारायणिक** अखण्ड आवृत्ति करनेवाला । शिष्य अर्थ मे प्रत्यय हुआ । यद्यपि यह पारायण गुरु शिष्यके सन्निधान=एक दूसरेकी क्रियासे पूर्ण मानी जाती है तथापि शिष्य अथमे प्रत्यय होना इष्ट है, गुरु अर्थमे नही । अत छात्र कहा । तुरायण किसी यज्ञका नाम उसको वतयति आवतयति बार—बार आचरण करता है, तुरायणसे ठ—इक आदि तौरायणिका यजमान । यद्यपि पुरोहित यजमान दोनोके मेलसे यज्ञ होगा तथापि यजमान अर्थ मे प्रत्यय । चन्द्रायण वर्तयति कृच्छ्रव्रत कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको एक ग्रास द्वितीयाको दो तृतीयाको तीन ग्रास बढ़ते—२ अमावस्या तक पन्द्रहग्रास पश्चात् एकमको चौदह ग्रास दूजको तेरह तृतीयाको बारह घटत—२ पूर्णमासीको एक ग्रास। इस व्रतका नाम चान्द्रायण, आचरण अर्थमे ठ—इक आदि ।

(३७) **सशय** सन्देहमे पड गया इस अर्थमे द्वितीयान्त सशय शब्दसे ठक् हो

सशयविषयीभूतोऽर्थ । साशयिक । (३८) योजन गच्छति ५।१।७४।। यौजनिक, 'क्रोशशतयोजनशतयोरुपसख्यानम्', क्रोशशत गच्छति कौशशतिक, यौजनशतिक । 'ततोऽभिगमनमर्हतीति । क्रौशशतिको भिक्षु । यौजनशतिक आचार्य । (३९) पथ ष्कन् ५।१।७५।। षो ङीषर्थ । पन्थान गच्छति पथिक । पथिकी । (१७४०) पन्थो ण नित्यम् ५।१।७६।। पन्थान नित्य गच्छति । पान्थ –पान्था । (४१) उत्तरपथेनाहृत च ५।१।७७।। उत्तर-

---

आङ् पूर्वक पदसे कर्तामे क्त आपन्न विषतया प्राप्त । उपसगवलसे अर्थमे बदल होता है सन्देहका विषय बना अर्थ हो । जैसे स्थाणुर्वा पुरुषो वा सूखा पेड है या मनुष्य सन्देह प्राप्त होनेपर सन्देहकी वस्तु अर्थने ठ–इक आदि साशयिक =सन्देहका विषय आधार । सन्देह कर्ता अर्थमे प्रत्यय नही जिसके प्रति सन्देह न हो वह प्रत्ययका अर्थ । अमरकोशमे **साशयिक सशयमापन्नमानस** पढा है, सन्देह कर्ता अर्थ कैसे ? सशय मापन्नमानस यस्मिन् विषये स विषय इत्यर्थ,

(३८) **योजन** चार कोश जाता हे अर्थमे योजनसे ठञ् इक आदि **यौज-निक** । द्वितीयान्त योजनसे गच्छति अर्थमे **ठञ** हुआ । कोशशत योजनशतके द्वितीयान्त दशासे गच्छति अर्थमे ठञ् । सौ कोश जाता है । **क्रौशशतिक** क्रोशशतसे जाने अथमे ठ—इक आदि । योजनशत गच्छति चार सौ कोश चलता है । अर्थ ठ–इक आदि । (वा०) ततो क्रोशशत पञ्चम्यन्तदशासे (ल्यप् लोप पञ्चमी) सौ कोशपार करके भिक्षु पहुचता है अर्थमे क्रोशशतातमे ठञ् आदि **क्रौशशातिक** भिक्षु सन्यासी योगी सौ कोश चलते हैं । योजनशतात् अभिगमनम् अर्हति अर्थमे ठ–इक आदि **यौजनशतिक** आचार्य चार सौ कोश पार करते थे ।(३९) **पथ**. द्वितीयान्त पथिन् शब्दसे गच्छति अर्थमे ष्कन् (ङीष् वास्ते, ष इत्) है । पन्थान रास्ते पर चलता है । पथिन्से क । पदान्तनकार-लोप ङीष् भी पथिकी ।

(१७४०) **पथके** स्थानमे पन्थ आदेश हो, ण भी । नित्य गमन अर्थमे । नित्यका गच्छतिसे सम्बन्ध । महाविभाषाकी निवृत्ति फल । नित्य क्यो पढा ? पथिक । नित्य नही जाता । न पन्थादेश । भाष्यमे नित्यको उडा दिया है पन्थान–प्रतिदिन मार्गपर चलता है **पान्थ** रोजगारी । पथको पन्थ आदेश, ण प्रत्यय अ, आदिवृद्धि । टाप् हुआ तब **पान्था** राहपर चलनेवाली ।

(४१) **उत्तरपथेन** आहृत=हरण किया हुआ और गच्छति अर्थमे ठञ् हो ।

पथेनाहृतमौत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिक । आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसंख्यानम् । वारिपथिकम । (४२) **कालात् ५।१।७८॥** 'व्युष्टादिभ्योऽण्' इत्यत प्रागधिकारोऽयम् । (४३) **तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९।** आह्ना निर्वृत्तम् 'आह्निकम्' ।(४४)**तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ५।१।८०॥** अधीष्ट सत्कृत्य व्यापारित । भृतो वेतनेन क्रीत । भूत स्वसत्तया व्याप्तकाल । भावी तादृश. एवानागतकाल । मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापक । मास भृत मासिक कर्मकर । मास भूतो मासिको व्याधि ।

उत्तरपथ—उत्तरदिशाके रस्तेसे लायी हुई अथमे ठ—इक आदि **औत्तर पथिकी** । उत्तरके रास्तेसे जाती है । (वा०) **आहृत** आहरण—लानेअर्थ के प्रसङ्गमे वारि जङ्गल स्थ । कान्तार पूर्वमे हो पथिन्मे तृतीया हो तब आहरण और गमन अर्थमे ठञ हो । वारिपथेन (जलमागमे सामान लाया अर्थमे) वारिपथसे ठ—इक आदि । जङ्गलपथेन आहृत जङ्गली रास्तेसे लाया हुआ या जाता है अर्थमे ठ आदि । जाङ्गलपथिक, स्थलपथेन स्थालपथिक, कान्तारपथेन कान्तारपथिक । हरे भरे जङ्गलसे लाया हुआ । (४२) **कालात्** काल अर्थवाचक शब्दोसे अण् हो, अधिकार कहातक ? दिष्टादिभ्यो अण् सूत्रतक कालसे पल विपल दण्डप्रहर दिन मास पक्ष ऋतु वर्ष युग लिये जायेगे, स्वरूप नही । (४३) तेन—तृतीयान्तसे निर्वृत्त=फल सिद्धि अथमे ठञ् हो । यथा अह्ना दिनमे सिद्ध कार्य या कर्म या फल अथमे अह्नसे ठ—इक आदिवृद्धि **आह्निक** नित्य कर स्नान, शौच, पूजा आदि, टच् नही होगा अह्नष्टखोरेव सूत्रकेनियम से, नस्तद्धितेसे टिलोप नही । तेनमे करणे तृतीया मान्य, दिनेननिवृत दैनिक, यजमानेन सिद्ध । (४४) **तमधीष्ट** अत्यन्तसयोगे द्वितीया अन्तमे हो उससे अधीष्ट=स्वागत=सत्कारका व्यवहार शोभन, आगमन, उपवेशन जलपानादि प्रेरण अर्थ, भृत=वेतन देकर खरीदा हुआ, भूत=होनेका समासकाल (वर्षो हुआ महीनो हुआ) भावी=होनेका भविष्यकाल तादृश—भू सत्तायाका भविष्य काल । यथा मासमधीष्ट एकमहीनेतक सम्मान समादर पाया हुआ अध्यापक अर्थमे माससे ठ—इक **मासिक** सम्मानपर महीनेभर पढानेवाला । एकमहीना भृत=वेतनपर सेवक अर्थमे ठ आदि **मासिक** कर्मचारी । महीने भर वेतन पर काम करता है । महीने भर भूत हो गया व्याधि, उसका नाम **मासिक** इस रोगको एक महीना हो गये । वह उत्सव मासभर होनेवाला अर्थमे मासिक । एव दिनमधीष्टः **दैनिक** दिन भर स्वागत सेवा प्राप्त करता । दिन भृतो

मास भावी मासिक उत्सव । (१७४५) **मासाद्वयसि यत्खञौ** ५।१।८१। मास भूतो मास्य –मासीन । (४६) **द्विगोर्यप्** ५।१।८२।। मासाद्वयसीत्यनुवर्तते। द्वौ मासौ भूतो द्विमास्य । (४७) **षण्मासाण्ण्यच्च** ५।१।८३।। वयसि इत्येव। यबप्यनुवर्तते चाट्ठञ्। षण्मास्य –षाण्मास्य –षाण्मासिक । (४८) **अवयसि ठश्च** ५।१।८४।। चाण्ण्यत्। षण्मासिकी व्याधि षाण्मास्य (४६) **समाया ख** ५।१।८५।। समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समीन । (१७५०) **द्विगोर्वा** ५।१।८६।। समाया ख इत्येव। 'तेन परिजय्य' इत्यन

दैनिक प्रतिदिनका मजदूर, दिन भूत दैनिक सघर्ष । दिन भावी दैनिक । एव वार्षिक वर्षभरका प्राध्यापक, उत्सव आदि ।

(१७४५) **मासाद्वयसि** मासशब्दसे वयसि अवस्था अर्थमे यत् हो खञ् भी। इस सूत्रमें भूत आया। अत द्वितीयान्तसे भूत अर्थमे यत खञ, अवस्था अर्थ खुलनेपर। चारोके अधिकारमे भूत ही आया। क्योकि मास सम्पन्न होता है, उसका स्वागत। नौकरी स्तुत्य नही। शरीरकी अवस्था कालकृत=मास भूत महीना हो गया अथमे यत **मास्य** । ख—ईन मासीन उत्सव । एक महीनेका बच्चा। (४६) **द्विगो** –सख्यापूर्व हो मासके साथ समास हुआ हो तब भूतअथ मे य हो। अवस्था अर्थ खुलने पर। पूर्वसूत्रसे मासाद्वयसि आया। दो महीने हो चुके ऐसा बच्चा **द्विमास्य** । द्विगुममास है सख्या पूर्व होनेसे यप् हुआ।

(४७) **षण्मास**शब्दसे भूत अर्थमे ण्यत् यप् ठञ् भी हो। अवस्था अर्थमे चकारसे ठञ् आया, यप्की अनुवृत्ति। षण्मासा भूत छ महीनेका बालक **षाण्मास्य** षण्मास शब्दसे ण्य। यप होनेपर आदिवृद्धि नही। ठ—इक तीसरा रूप। छ महीनेकी अवस्थावाला अर्थ। (४८) **षण्मास** शब्दके द्वितीयान्तसे भूत कालमे, अवस्था अर्थ न हो तब ण्यत् हो, ठञ् भी। षण्माससे अवधि अर्थमे ठ—इक यत् आदि। छ महीनेकी अन्तिमेत्थ निर्णयका अवसर। (४६) **समाया**= समाशब्दके द्वितीयान्तसे अधीष्ट भृत भूतो भावी, अथमे ख ही, जो अनुवृत्ति से आया। हायनोऽस्त्री शरत्समा इत्यमर। वर्ष ऋतु अर्थमे समा शब्द है। समामधीष्ट वर्षभर था, ऋतु भर स्वागत पाया। वेतन लिया। कार्य हुआ होगा अर्थमे ख—ईन आलोप **समीन** । महीना बारह महीनाका उत्सव

(१७५०) **द्विगु**सख्या पूर्वसमासमे समासान्त हुए शब्दसे ख ही हो, पक्षमे ठञ् भी। **अप्सुमन समासिकता वर्षाणा बहु व** बहुवचन है। और समा—समा

प्राङनिर्वृत्तादिषु पञ्चस्वर्थेषु प्रत्यया । द्विसमीन –द्वैसमिक ।(५१) **रात्र्यहःसंवत्सराच्च ५।१।८७॥** द्विगो इत्येव । द्विरात्रीणः–द्वैरात्रिक । द्व्यहीन द्वैयह्निक । समासान्तविधेरनित्यत्वान्न टच । द्विसवत्सरीण । (५२) **सख्या**

विजायते सूत्रसे एक वचन भी है । इस सूत्रके अथसे सिद्ध है कि तेन–परिचट्य सूत्रके पहले–निर्वृत्त, अधीष्ट भृत भूत भावी पाचअर्थोमे प्रत्यय होगे। द्वाभ्या समाभ्या–दो वर्ष या ऋतु तक फलसाधक कार्य या स्वागत सत्कार आदिअर्थ मे ख–ईन द्विसमीन । पक्षमे प्राग्वहतेष्ठञ्, इक आदिवृद्धि । द्वैसमिक दो वर्ष का उत्सव या हुई व्याधि या पारिश्रमिक, कर्मचारी आदि ।

(५१) **रात्र्य**–रात्रि अहन् सम्वत्सर अन्तमे हो ऐसे द्विगु (सख्यापूर्व)शब्द से निर्वृत्त अधीष्ट भृत भूत भावी अर्थोमे ख हो ठञ् भी । द्विगुसमाससे ही हो । द्वाभ्या रात्रिभ्या निर्वृत्त । दो रातमे पूरा हुआ, कार्य उत्सव द्विरात्रि अधीष्ट दो रातका सत्कार्य, पारिश्रमिक, हुआ विवाद, भावी, उत्सव अर्थमे सख्यापूर्व द्विगुसमास । द्विरात्रिसे ख–ईन णत्व इकारलोप **द्विरात्रीण** , पक्षमे ठ –इक आदिवृद्धि **द्वैरात्रिक** । कविगोष्ठी द्वाभ्या अहोभ्या निर्वृत्त । द्वे अह्नी अधीष्ट दो दिनमे सिद्धकाय । दो दिनका स्वागत सत्कार, पारिश्रमिक भूत भावी उत्सव आदि । तद्धितार्थोत्तर—द्विगुसमासे ख—ईन अह्नष्टखोः से टिलोप, यण् **द्व्यहीन** । समाहारद्विगु होता तब टच् होकर अह्न न मिलता पक्षे ठ–इक । अह्नसे ट ख परे ही टिलोपका नियम है । यहा ठ है टिलोप, नही किन्तु अकारलोप, अह्न आदेश, यण्,न य्वाभ्यासे ऐच् **द्वैयह्निक** । द्व्यह्न इत्यत्र तद्धितार्थ द्विगु समासे कृते । रात्यह सवत्सराच्चेति खम्बधित्वा परत्वा राजाह सखिभ्यष्टचि । अह्नादेशे तस्य स्थानिवद्भावेन अह्नशब्दसम्भवेऽपि टजन्त न मिलिष्यिति । ख प्रत्ययो न स्यात् । तदाह समासान्तविधि टजादि अनित्यः । तस्मात् टच् न भवति, यदा न टच् तदाह्न आदेशो न । समासान्त प्रत्ययपरे तद्भवति । समासान्तविधे अनित्ये प्रमाण द्वित्रिभ्या पाद्दन्मूर्धसु त्रे भाष्ये दत्त, द्वाभ्या सवत्सराभ्या निर्वृत्त (दो वर्षमे पूरा हुआ) सेतु सडक आदि द्वे वत्सरे अधीष्ट दो वर्ष तक सम्मानित अध्यापक, वेतनेन क्रीत भूत भावी वस्तु या कार्य अर्थमे द्विसवत्सरसे ख–ईन णत्व **द्विसवत्सरीण** । जब ठ—इक हुआ तब तद्धितेष्वचाम् आदे अचो वृद्धि प्राप्त हुई, आदि अच्को बाधकर । उत्तरपदके आदि अच् की वृद्धिका सूत्र ।

या॰ संवत्सरसख्यस्य च ७।३।१५॥ सख्याया उत्तरपदस्य वृद्धि स्यात् ञिदादौ। द्विसावत्सरिक । द्वे षष्टी भूतो द्विषाष्टिक । परिमाणान्तस्येत्येव सिद्धे सवत्सरग्रहण परिमाणग्रहणे कालपरिमाणस्याग्रहणार्थम् । तेन द्वैसमिक इत्युत्तरपदवृद्धिर्न ।(५३)**वर्षाल्लुक्च** ५।१।८८॥ वषशब्दान्ताद् द्विगोर्वा ख, पक्षे ठञ् वा च लुक । त्रीणि रूपाणि । द्विवर्षीणो व्याधि द्विवर्ष । (५४) **वर्षस्याभविष्यति** ७।३।१६॥ उत्तरपदस्य वृद्धि स्यात् । द्विवार्षिक । भविष्यति तु द्वैवर्षिक । अधीष्टभृतयोरभविष्यतीति प्रतिषेधो न । गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता, न तु तद्धितार्थ । द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति

---

(५२) **सख्याया**—आदिवृद्धिके प्रसङ्गमे उत्तरके अधिकारका सूत्र=सवत्सरश्च सख्या च समाहार द्वन्द्वसे षष्ठी, सख्यासेपरे सवत्सर उत्तरपद हो तब अच् की वृद्धि हो, उत्तरपदकी आदिअच्की वृद्धिसे **द्विसावत्सरिक** प्रयोग बना। द्वे षष्टी बासठवर्षका, पारिश्रमिक पर खरीदा हुआ, स्वागत पाया या होनेवाला जीवन अर्थमे द्विषष्टि से ठ—इक आदि। उत्तरपदके आदि अचकी वृद्धि। **द्विषाष्टिक** । सख्याका सख्याके साथ समासका फल। शङ्का—सूत्रे संवत्सर पठन व्यर्थमस्ति यतोहि द्वादशमासिक सवत्सर परिमाणी अस्ति परिमाणान्तस्यासज्ञा। विप्रति—सूत्रेण कार्यसिद्धिर्भविष्यति, तदा ब्रूते कालस्य द्वादश मासस्य यत्परिमाण तस्य ग्रहण, मा भवतु एतदर्थं सवत्सरग्रहण, तस्य इद फल द्वाभ्या समाभ्या निर्वृत्त॰ अधीष्ट भृत भावी अर्थे ठ—इक। अत्र आदिवृद्धिर्भवति। उत्तरपदस्य वृद्धि न भवति। (५३) **वर्षा** शब्द अन्तमे हो ऐसे द्विगु समाससे ख हो, विकल्पसे, पक्षमे ठञ्। दोनोका लुक् विकल्पसे। द्वाभ्या वर्षाभ्या निर्वृत्त दो वर्षमे पूरा हुआ ख—ईन आदि **द्विवर्षीण** व्याधि, रोग दो वर्ष का रहा। स्वागत पाया, पारिश्रमिक लिया, भावी कार्य। पक्षमे ठञ्, जब दोनोका लुक् तब **द्विवर्ष** । शब्दमे वही शक्ति अर्थ बोधकता। ठञ् होनेपर आदिवृद्धि प्राप्त हुई उसका बाधक सूत्र—

(५४) **वर्षशब्द** उत्तरपदमे हो आदि अच् की वृद्धि हो, भविष्य अर्थमे ञ् इत् प्रत्यय न हुये हो तब। निर्वृत्त॰ आदि पाच अर्थोमे। भावी भविष्यकाल अर्थको छोडकर अन्य अर्थोके लिए सूत्र है। दो वर्षोमे पूरा हुआ कार्य **द्विवार्षिक** दो वर्ष तक सत्कार पाया, नौकरी किया कार्य हुआ। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा विग्रहे ठ-इक। भविष्य अर्थ नही है उत्तरपदके आदिअच् की आदिवृद्धि। भविष्य अर्थ होगा तब आदिवृद्धि होकर **द्वैवार्षिक** । अत्यन्त

द्विवार्षिको मनुष्य । 'परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयो' । द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविक । द्वाभ्या सुवर्णाभ्या क्रीत द्विसौवर्णिकम् । द्विनैष्किकम् । 'असञ्ज्ञा' इति किम् । पञ्च कपाला परिमाणमस्य पञ्चकपालिकम् । तद्धितान्त सञ्ज्ञा, द्वैशाणम् कुलिजशब्दमपि केचित्पठन्ति । द्वैकुलिजिक । (१७५५) चित्तवति नित्यम् ५।१।८९।। वर्षशब्दान्ताद् द्विगो प्रत्ययस्य नित्य लुक् स्याच्चेतने प्रत्ययार्थे । द्विवर्षो दारक । (५६) षष्टिका. षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ५।१। ९०।। बहुवचनमतन्त्रम् । षष्टिको धान्यविशेष । तृतीयान्तात्कन् रात्रशब्द-लोपश्च निपात्यते । (५७) तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ५।१।९३।।

संयोगे द्वितीया । चित्तवति नित्यसे नित्य लुक् कहेगे । यहा अचित्तवान्–जो चेतन नही है वह प्रत्ययका अर्थ , इसलिए व्याधि कहा । यदि ऐसा तब द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यति । भविष्य अर्थ है, द्विवार्षिक मे उत्तरपद वृद्धि कैसे ?तब कहा अधीष्ट =सत्कार ,भृत वेतन क्रीत अर्थमे अभविष्यतिका निषेध नही लगेगा । क्योकि भविष्य अर्थ जान पडता है । वह तद्धितप्रत्ययार्थ नही है । सत्कार भरण अर्थ (अधीष्ट भृत) मे क्त प्रत्ययका भूतकाल शब्द शक्तिसे ज्ञात है । तद्धितप्रत्यय से दोनो कर्म जान पडते है । कर्म करिष्यति जान पडता है तद्धितार्थ नही है । उत्तरपदवृद्धि हुई । द्विवार्षिको मनुष्य मनुष्यो मनुष्यसदृश प्रतिमा व्याख्याय स्थितस्य गति समर्थनीया । चित्तवति नित्यसे नित्य लुक् न हो । भूतकाल अर्थमे नित्य लुक् है नित्य ग्रहणके प्रमाण से । परिमाण वाचक शब्द अन्तमे हो, उत्तरपदके आदि अच्की वृद्धि हो । शाण पूजका दो कुडव–किलो मात्रा अर्थ है ठ–इक । उत्तरपदकी आदिवृद्धि । दो सुवर्ण परिमाणसे खरीदा हुआ अर्थमे अण् आदि । दो निष्कप्रमाणसे क्रीत अर्थे ठकादि । असञ्ज्ञा क्यो पढा ? पाच कलाप ग्राम–मात्रा है इस अर्थमे ठञ् आदि । यह किसीकी स ा है रूढि नाम नही । उत्तरपदकी वृद्धि । तद्धितान्त तक सञ्ज्ञामान्य एव द्वैशाणिक आदिवृद्धि हुई हो ।

(१७५५) चेत–प्रत्ययका अर्थ व्यक्ति हो, तब वर्षशब्द अन्त द्विगुसमाससे प्रत्ययका नित्य लुक् हो । ख और ठञ् दोनोका लुक् । द्वौ वर्षौ भूत द्विवर्ष बालक , सम्मानित गुरु , भृत्य । (५६) षष्टिका साठी चावल जो साठ रातमे पकता है । बहुवचन इष्ट नही । तृतीयान्तसे कन् हो रात्रका लोप भी हो । षष्टिरात्रसे कन्, रात्रका लोप षष्टिक । धान्यविशेष ।

(५७) उक्त पाच अर्थ रुक गये । तेन=तृतीयान्तसे परिजय्य–जीतने योग्य, लभ्य-पानेयोग्य, कार्यकरने योग्य, सुकर–सरल, अर्थमे ठञ् हो,मासेन=एकमास

मासेन परिजय्यो जेतुं शक्यो मासिको व्याधिः। मासेन लभ्यं कार्यं सुकरं वा मासिकम्। (५८) **तदस्य ब्रह्मचर्यम्** ५।१।९४॥ द्वितीयान्तात्कालवाचिनोऽस्येत्यर्थे प्रत्ययः स्यात्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। मासं ब्रह्मचर्यमस्य स मासिको ब्रह्मचारी। आर्धमासिकः। यद्वा प्रथमान्तादस्येत्यर्थे प्रत्ययः। मासोऽस्येति मासिकं ब्रह्मचर्यम्। * 'महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम्' महानाम्न्यो नाम 'विदामघवन्–' इत्याद्या ऋचः तासां ब्रह्मचर्यमस्य माहानाम्निकः। हरदत्तस्तु 'भस्याढे—' इति पुंवद्भावान्माहानामिक इत्याह। * 'चातुर्मास्याण्यो यज्ञे, तत्र भव इत्यर्थे' चतुर्षु मासेषु भवन्ति। चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि। *

मे जीतने योग्य रोग अर्थमे माससे ठ–इकादि मासिक। मासेन लभ्य मासिक वेतन, मासेन कार्यं **मासिकम्** अध्ययन, मासेन सुकर मासिकम् पारायण, क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे। (५८) **तदस्य**–द्वितीयान्त कालवाची हो उससे सम्बन्धित अर्थ ब्रह्मचर्य हो तब ठञ् आदि। ननु सूत्रे तत् प्रथमान्त है वृत्तिमे द्वितीया कैसे ? तब कहा–कालके साथ अत्यन्तव्याप्त काल हो, तब द्वितीया मान्य। तब एकमास ब्रह्मचर्य–टिकता हैं ठञ्–इक आदि **मासिक ब्रह्मचारी**। पन्द्रह दिनका ब्रह्मचर्यरक्षक। आर्धत्परिमाणस्यसे दोनोपदकी आदिवृद्धि। इद शब्दका अर्थ ब्रह्मचारी ही प्रधान है, अर्धमास तक व्याप्त ब्रह्मचर्य विशेषण। यद्वा–अथवा प्रथमान्तसे सम्बन्धित ब्रह्मचर्य अर्थमे प्रत्यय। प्रथमान्त कालवाची शब्दसे सम्बन्धित ब्रह्मचर्य अर्थमे ठञ् हो। इस पक्षमे प्रत्ययका अर्थ ब्रह्मचर्य ही प्रधान है इदमर्थ विशेषण। मासो यस्य–महीने भर बधा हुआ ब्रह्मचर्य मासिक ठञ् आदि (वा०) **महानाम्नी** आदि शब्दके षष्ठ्यन्त दशासे अस्य ब्रह्मचर्य अर्थमे ठञ् हो। ऋचा—मन्त्रविशेषमे रूढ़ है। नित्य स्त्रीलिङ्ग। पुलिङ्ग भाषित नही, भस्याढे से पुवद्भाव नही। महानाम्नी नामसे विदा मघवन् आदि ऋचाए प्रसिद्ध है। तासा–उनका ब्रह्मचर्य अभ्यास वेदपारायण से सम्बन्धित अर्थमे ठ–इक आदि माहानाम्निकः। हरदत्तके मतमे भस्याढे से पुलिङ्ग होकर टिलोप होगा। **महानामिक**। उसकी उपेक्षाके कारण भाष्यमे **माहानाम्निक**। (वा०) **चतुर्मासके** सप्तम्यन्तपदसे तत्र भव अथमे ण्य हो। चार महीनोमे होनेवालेयज्ञ कर्म **चातुर्मास्यानि**, चातुर्मास्यसे ण्य–य आदिवृद्धि, नपुसक–बहुवचन। मासशब्द कालवाची अत कालाधिकारका वार्तिक (वा०) चतुर्मास शब्दसे भव अर्थमे ण हो सज्ञा–नाम होनेपर। चार मासोमे होनेवाली पूर्णमासी आषाढी। फल्गुनी नक्षत्रके पूर्णमासीसे लेकर आषाढा नक्षत्रकी पूर्णमासीका नाम चातुर्मासी सज्ञा है। चतुर्मासिसे अण् आदि, ङीप् भी

'अण् सञ्ज्ञायाम्' चतुर्षु मासेषु भवति चातुर्मासी आषाढी पौर्णमासी। अण्णन्तत्वान्ङीप्। (५६) **तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः** ५।१।९५॥ द्वादशाहस्य दक्षिणा द्वादशाहिकी। आख्याग्रहणादकालादपि। आग्निष्टोमिकी। वाजपेयिकी। (१७६०) **तत्र च दीयते कार्यं भववत्** ५।१।९६॥ प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यम्। शारदम्।

इति तद्धिते प्राग्वतीये ठञधिकारे कालात् इत्यधिकार सम्पूर्ण।

अथठञ्विधिप्रकरणम् ॥३५॥

(६१) **व्युष्टादिभ्योऽण** ५।१।९७॥ व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम।

(टिड्ढाणञसे) यद्यपि तत्र भव से अण् होकर सिद्ध होता तथापि द्विगोर्लुक रोकनेके लिए वार्तिक पढा।

(५६) **तस्य च** दक्षिणा अर्थे यज्ञकालमे वर्तमान शब्दसे ठञ्। षष्ठ्यन्तसे द्वादशदिनका साध्य सुत्या—नामक यज्ञ द्वादशाह, तस्य दक्षिणा अर्थमे ठ—इक आदि०। **द्वादशाहिकी**—बारह दिनकी दक्षिणा। द्वादश दिन कालवाचक है। नन्वेव अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिकी प्रयोगमे ठञ् नही हो पायेगा क्योकि कालवाचक दिन माह वर्षसे सम्बन्ध नही है। अत कहा **यज्ञेभ्य** पढने से ही कार्यं सिद्ध होता,आख्याग्रहण व्यर्थ है। उसने नियम किया। **अकालादपि** कालवाचक न रहे तब भी ठञ् हो। यही आख्या पढनेका फल है। भाष्यमे सर्वेभ्यो यज्ञवाचिभ्य ठञ् मिलता है। वाजपेयस्य दक्षिणा अर्थमेभी अणादि।

(१७६०) **तत्र च**—सप्तम्यन्तके कालवाची शब्दसे दीयते=दिया जाता है कार्यं करने योग्य है, अर्थमे भववत=तत्र भव की तरह प्रत्यय हो। प्रावृषि= वर्षा ऋतुसे दीयते (दिया जाना है कार्यं करने योग्य) अर्थमे एण्य प्रत्यय, तत्र भव अर्थमे हुआ। स्वादिकार्ये। **प्रावृषेण्य** वर्षा ऋतुके बीज वृष्टि यज्ञ ज्ञान आदि। शरदि दीयते कार्यं वा **शारद**। शरद् ऋतुमे दिया जाय या किया कार्यं अर्थमे सन्धिवेलादि सूत्रसे अणादि। वस्तुत तत्र दीयते कार्यं वा यज्ञकर्म के लिए ठीक है। अग्निष्टोमे दीयते भक्त **आग्निष्टोमिक**, यदि हिरण्य हो तब प्रत्यय नही होगा। ठञ्के अधिकारमे कालका अधिकार पूर्ण हुआ।

अथठञ्विधिप्रकरणम्—

अब ठञ के विधानमे साधक बाधक सूत्र। (६१) **व्युष्ट** तीर्थ संग्राम प्रवास आदि गणपठितशब्दोसे दीयते कार्यं अर्थमे सप्तम्यन्तसे अण् हो, ठञ् बाधकर व्युष्टे अहर्मुखे प्रभाते दीयते। प्रात: काल दिया जाय या किया जाय,

व्युष्ट, तीर्थ, संग्राम, इत्यादि । *अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्' अग्निपदे दीयते कार्यं वा आग्निपदम् । पैलुमूलम् ।(६२) **तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ** ५।१।९८।। यथाकथाचेत्यव्ययसंघातात्तृतीयान्ताद्धस्तशब्दाच्च यथासंख्यं णयतौ स्त । 'अर्थाभ्यां तु यथासंख्यं नेष्यते' । यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम् । अनादरेण देयं कार्यं वेत्यर्थं । हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम् । (६३) **सम्पादिनि** ५।१।९९।। तेन इत्येव । कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकं मुखम् । कर्णालङ्काराभ्यामवश्यं शोभत इत्यर्थं । (६४) **कर्मवेषाद्यत्** ५।१।

दान या कर्म अर्थमे ठञ् बाधकर सूत्रसे अण् । न य्वाभ्यासे ऐच्=ऐ, य के पहले व को ऐ वैयुष्ट, सुबहका दान या कर्म सन्ध्या वन्दन आदि । एवं तीर्थे दीयते कार्यं वा तैर्थम । तीर्थका दान या अन्य कर्म पिण्डदान या यज्ञ । संग्रामे दीयते साग्राम युद्धमे दिया जाय युद्धकी सामग्री गोला बारूद साग्रामम् । प्रवासे दीयते कार्यं वा प्रावास अण् आदि । (वा०) **अग्निपद** आदि शब्दसे भी अण् कहे । अग्निपदे दीयते अग्निस्थानमे दिया जाय **आग्निपदम्** श्मशान, पीलुमूले दीयते । पैलुमूलम् । (६२) तेन तृतीयान्तके यथाकथाच, इस अव्यय समुदाय से और हस्त शब्दसे क्रमश ण और यत् हो (वा०) **अर्थाभ्यां**–दोनो प्रकृति और दोनो प्रत्ययका यथासंख्य गणना क्रम है । दीयते कार्यके साथ नही, व्याख्यान बलसे । यथाकथाच जिस किसी प्रकारसे दिया जाय, किया जाय, कर्म अर्थमे अण् आदिवृद्धि **याथाकथाचम्** अर्थात् अनादरसे दिया, विवश होकर किया कर्म । हस्तेन दीयते हाथसे दिया या किया जाता है वह दान या कर्म **हस्त्यम्** हस्तसे यत् आदि ।

(६३) सम्पादि तेन इत्येव । तृतीयान्तसे ही सम्पादि अर्थमे इनि प्रत्यय हो । सम्पाद सम्पत्ति गुणोत्कर्ष शोभा अस्यास्ति सम्पादि । जिसमे विश्व-व्यापी गुण शोभा धन सम्पत्ति हो शरीर वाणी वस्त्र, विभव आदि । कर्ण-वेष्टक कनफूल कर्णालङ्कारसे मुखकी शोभा आह्लादमे उत्कर्ष बढ गया अर्थ मे ठ–इक आदि । **कार्णवेष्टकिकम्** । कर्णपुष्पसे अलकृत मुख कानोकी अवश्य शोभा बढती है । वस्त्रयुगेन सम्पादि शरीर **वास्त्रयुगिक** दो वस्त्रसे अलकृत शोभायमान शरीर । उष्णीषेण सम्पादि **औष्णीष**. शिर । मालया सम्पादि मालिका ग्रीवा । (६४) **कर्मन्शब्द** वेषशब्दके तृतीयान्त दशासे सम्पादिनि अर्थमे यत् हो, कर्मणा–अपने कर्मसे अपनी शोभा तेज ऐश्वर्य बढाये वह **कर्मण्य** कर्मन्से यत् आदि । पुरुषार्थ वीरता जो अपनेकर्तव्यसे अलकृत करते है । वेष.

१००॥ कर्मणा सम्पादि कर्मण्य शौर्यम् । वेषेण सम्पादि वेष्यो नट । वेष कृत्रिम आकार । (१७६५) **तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्य** ५।१।१०१॥ मन्तापाय प्रभवति सान्तापिक । साग्रामिक । **योगाद्यच्च** ५।१।१०२॥ चाट्ठञ् । योगाय प्रभवति । योग्य यौगिक । (६७) **कर्मण उकञ्** ५।१।१०३॥ कर्मणे प्रभवति । कार्मुकम् । (६८) **समयस्तदस्य प्राप्तम्** ५।१।१०४॥ समय प्राप्तोऽस्य सामयिकम् । (६९) **ऋतोरण्** ५।१।१०५॥ ऋतु प्राप्तोऽस्य आर्तवम् । 'उपवस्त्रादिभ्य उपसख्यानम्' । उपवस्त्रा प्राप्तोऽस्य औपवस्त्रम् । प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम् । (१७७०) **कालाद्यत्**

कृत्रिम आकार बनावटी वेष । उससे सम्पादि अलकृत शोभायमान अर्थमे यत् वेष्य नट बहुरुपिया विचित्र वेष बना–बनाकर मोहित करते है ।

(१७६५) **तस्मै** चतुर्थ्यन्त सन्ताप आदि गणपठित शब्दसे प्रभवति–शक्तिशाली, समर्थ होने अर्थमे ठञ् आदिवृद्धि । सान्तापिक. । परपीडामैं पूर्ण समर्थ शक्तिशाली । शत्रुणा पीडायै शक्नोति । सग्रामाय प्रभवति–घमासान लडाईमे मे समर्थ अर्थमे ठञ् इक आदि साग्रामिक दङ्गली । (६६) योगमे यत् हो, ठञ् भी । प्रभवति अर्थे चतुर्थ्यन्त समर्थसे योगाय (योग कर्मषु कौशल कर्ममे कुशलता ही योग है) या सिद्धि असिद्धिमे समभावना भी योग है । या एकाग्रता समान ऐसे योगसे लिये जो समर्थ हो वह योग्य । यत् हुआ । जब ठञ्-इक तब आदिवृद्धि यौगिक योगसाधना कर्म कुशलतामे दक्ष । (६७) चतुर्थ्यन्त कर्मन् शब्दसे उकञ् हो प्रभवतिअर्थमे कर्मकेलिए जो समर्थ्य हो वही कार्मुकम् । कर्मन् से उकञ् टि (अन्) का लोप । धनुष लक्ष्य बेधमे कुशल है ।

(६८) **समय** प्रथमान्त समय शब्द अस्य प्राप्त (इसको प्राप्त हुआ) अर्थमे ठञ् हो । तत् और प्राप्तमे सामान्य नपुसक । जिस फल या वस्तुका समय हो गया हो, अर्थमे ठ–इक आदि समायिक फलम् ।

(६९) **ऋतुसे** अण् हो प्रथमान्त ऋतु शब्दात् प्राप्तोऽस्य अर्थमे अण् जिसका समय ऋतु प्राप्त हो वह आर्तवम् । ऋतुसे अण् ओर्गुण आदिवृद्धि, रपर । जिस फलकी ऋतु आ गयी हो । पुष्पम् (वा०) उपवस्तृ आदि शब्दसे भी अण् कहे । उपवस्ता 'वस निवासे, कर्तरि तृच् पासमे निवास कर्ता, मिल गया अर्थ मे अण् यण आदि । प्राशिता भोगलगानेवाला प्राप्त हो प्राशितृसे अण् यणादि,

(१७७०) **काल** शब्दसे अस्य प्राप्त अर्थमें यत् हो । कालः प्राप्तो अस्य कालसे यत् काल्यं–शीतकाल, प्रात कालअर्थमें, कल्यवन् अव्युत्पन्न प्रातिपदिक

५।१।१०७।। काल प्राप्तोऽस्य काल्य शीतम् । (७१) **प्रकृष्टे ठञ् ५।१।१०८।।** कालात् इत्येव । यस्येति च प्रकृष्टो दीर्घ॰ कालोऽस्येति कालिक वैर । (७२) **प्रयोजनम् ५।१।१०९।।** तदस्य इत्येव । इन्द्रमह प्रयोजनमस्य ऐन्द्र महिकम् । प्रयोजन फल कारण च । (७३) **विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयो॰ ५।१।११०।** आस्यामण्स्यात्प्रयोजनमित्यर्थे क्रमान्मन्थदण्डयोरर्थयो । विशाखा प्रयोजनमस्य वैशाखो मन्थ । आषाढो दण्ड । चूडादिभ्य उपसख्यानम्' । चूडा–चौडम् । श्रद्धा–श्राद्धम् । (७४) **अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ५।१।१११।।**

है । प्रत्यूषो अहर्मुख कल्यम्-अमरप्रमाण । कल्यमेव काल्य-ग्रीष्मकाल, वर्षाकाल भी कल्य है । (७१) **प्रकृष्यते** दीर्घीक्रियते अय प्रकृष्ट दीर्घकाल अर्थमे कालशब्दसे ठञ् हो, यत्को बाधकर । प्रकृष्टका अर्थ समझाये कि दीर्घ कालोयस्य लम्बा समय है ऐसी शत्रुता अर्थमे ठ–इक आदि **कालिकम्** कालिक पुरुष लम्बी आयुवाला । कालिका वृष्टि महीनोका बरसना । प्रकर्ष काल का विशेषण । (७२) **प्रयोजनम्** । तदस्य आया । सम्बन्धितफल अर्थमे प्रथमान्तसे ठञ् हो । मह उत्सव । इन्द्रस्य मह उत्सव' प्रयोजन फल कारण अस्य ऐन्द्रमहिक इन्द्रमहसे ठ–इक आदि । इन्द्रका उत्सव प्रयोजन है वह प्रयोजनका फल और कारण कैसे ? प्रयुज्यते प्रवृत्या निष्पाद्यते । कर्मणि ल्युट फलवाची प्रयोजनशब्द फल पाने पर मनोरथ सिद्ध । जब प्रयुज्यते प्रवर्तते पुरुषो अनेन साधनेन–करणे ल्युट करेंगे, तव प्रयोजनका प्रेरक साधन अर्थ । अत कहा फल करण च प्रयोजनम् ।

(७३) **विशाखा** आषाढा शब्द जो मन्थनदण्ड और दण्ड अर्थमे रूढ है । उनके प्रथमान्त दशासे अस्य प्रयोजन अर्थमे अण् हो, क्रमसे । यदि समुदाय और दण्ड तद्धितार्थ हो । दधि विलोडनका आधारभूत काष्ठ विशेषमन्थ है । एक मोटा काष्ठ दण्डमथानी जिसमे नीचे उपर रस्सी लपेटकर–मन्थन–दधि विडोलन होता है वही स्थूणा मन्थन है और दण्ड भी । इन्ही दोनोंमे वैशाख आषाढ रूढ हैं । अवयव अर्थ न ले । विशाखासे दधिमन्थनका फल—कारण अर्थमे अण् । आलोप आदिवृद्धि । **वैशाख** मन्थनदण्ड । आषाढा प्रयोजन यस्य, अण् आदि **आषाढ** दण्ड । अर्थ पूर्ववत् । (वा०) **चूडा** आदिगण पठित शब्दोसे अण् कहे । चूडा प्रयोजनमस्य गर्भका वाल बनवाना मुण्डन सस्कार फल हो जिस कर्मका । चूडासे अण् आलोप आदि चौड, ड–ल के अभेदसे चौल भी । श्रद्धा प्रयोजन यस्य कर्मण अण् आदि । श्राद्धम् यहा प्रयोजनका कारण

अनुप्रवचन प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम् । (१७७५) **समापनात्सपूर्वपदात् ५।१।११२॥** व्याकरणसमापन प्रयोजनमस्य व्याकरणसमापनीय । (७६) **एकागारिकट् चौरे ५।१।११३॥** एकमसहायमगार प्रयोजनमस्य मुमुषिषो स एकागारिकश्चौर ।(७७) **आकालिकडाद्यन्तवचने ५।१।११४॥** समानकालावाद्यन्तौ यस्येत्याकालिक. । समानकालस्याकाल आदेश । आशु विनाशी-त्यर्थ । पूर्वदिने मध्याह्नादावुत्पद्य दिनान्तरे तत्रैव नश्वर इति वा ।*'आकाला-ठञ्च । आकालिका विद्युत् ।

इति तद्धिते प्राग्वतीयस्य ठञ पूर्णोऽवधि ।

अथ श्रद्धाके कारण कर्म । (७४) अनु० प्रवचन आदि शब्दके प्रथमान्तदशासे प्रयोजन अर्थमे छ हो । उपनयनसस्कारका अङ्गभूतकर्म अनुप्रवचन आश्वलायन सूत्रमे प्रसिद्ध है । ब्रह्मसूत्रका धारण, अङ्गका प्रयोजन अर्थ छ–ईय

(१७७५) **स पूर्वपद** हो और समापन–समाप्त करना प्रयोजन हो (जैसे मङ्गलाचरणका प्रयोजन ग्रन्थसमाप्ति) उस मङ्गलाचरण अर्थमे छ-ईय । व्या-करणसमापनीय-सिद्धान्तकौमुदी समापनम् अस्य मङ्गलाचरणस्यप्रयोजन कौमुदी समापनीय, मीमासासमापनीय, विवाहसमापनीय । (७६) ऐकागारिकट् चौरे (ऐके मुख्यान्य केवलाः) एकशब्द असहाय प्रधान, दूसरा, केवल अर्थमे हैं, एक है असहाय निर्जन आगार स्थान प्रयोजन है इस चोरका । अर्थमे इकट् प्रत्यय एकागार शब्दसे हो । उसीका निपातन ऐकागारिकट है । टित् ङीप् वास्ते । यह कार्य प्रयोजनसे भी होता यह सूत्र चोर अर्थमे ही लगता है । मोषिषोः चौर्यं कर्तुमिच्छो मोषितुमिच्छति मोषिषतीति मोषिषु तस्य । चोरको निर्जन एकान्त स्थान इष्ट है छिपनेके लिये । चोर क्यो पढा ? एकागार प्रयोजन अस्य भिक्षो' एकान्तकुटिया भिक्षुको आवश्यक है वाक्य ही रहे ।

(७७) **आकालिकट्**–आदि–अन्तवचन, उत्पत्ति–विनाश, समानकालौ=एक ही समय उत्पत्ति, तत्काल विनाश हो वह आकालिक विद्युत् । समानकालके स्थानमे आकाल आदेश हो, इक प्रत्यय परे, निपातनसे । उत्पत्ति विनाश एक साथ सम्भव नही,तब कहा आशुविनाशी अथवा पूर्वदिने मध्याह्नदिन दोपहरमें उत्पन्न हो । दिनके अन्त तक नष्ट हो जाय । समानकालसे इकट् । आकाल आदेश है आदि(वा०)आकालसे ठन् हो ठञ्भी, आद्यन्त=उत्पत्ति–विनाश अर्थमे आकालसे ठ–इक टाप् आकालिका । जब ठञ् तब ङीप् आकालिकी–बिजली चमकती है । तत्काल नष्टभी होती है । प्राग्वते ठञ्की सीमा समाप्त ।

अथतद्धितेषु भावकर्मार्थाः ॥३६॥

(७८) **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५॥** ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते । क्रिया चेत् इति किं ? गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।
(७९) **तत्र तस्येव ५।१।११६॥** मथुरायामिव मथुरावत्स्रुघ्ने प्राकारः ।

अथभावकर्मार्था —

भवन भाव विशेषण, जो व्यक्तिमे रहे । जैसे गुण, जाति क्रिया किसी आधार व्यक्ति द्रव्यमे । यथा ब्राह्मणत्व—व्यक्ति तप स्वाध्याय गुण,योनि जन्म क्रिया आदि विशेषण ही भाव है । कही क्रियामे, कही जातिमे, कही गुणमे प्रत्यय होगे । करोति=क्रिया फल धारयति कर्म अर्थमे प्रत्यय होगे । भावश्च कर्म च भावकर्मणी तयो । प्रत्यानामर्था भावकर्मार्था प्रत्यया प्रारभ्यन्ते बोध्यन्ते । (७८) **तेन तुल्य** मे सामान्ये नपुसकम्, तृतीयान्तसे तुल्य अर्थमे वत् प्रत्यय हो, वह तुल्यता बराबरी क्रियाकी हो तब यत्तुल्य सा क्रिया चेत्, तुल्या क्रिया अर्थे वति । यथा ब्राह्मणेन तुल्यमधीते विग्रहवाक्यमे अध्ययनक्रिया की तुल्यता समानता अर्थमे ब्राह्मणसे वत् हो । तद्धितान्तसे प्रा० सज्ञा आदि **ब्राह्मणवत्** क्षत्रिय अधीते । परन्तु यथाविप्र अधीते तथा क्षत्रियादिकर्तृकाध्ययनमिति वाक्यार्थोऽसगत । तत्र कहा ब्राह्मणशब्द स्वकर्तृक अध्ययन अर्थमें लाक्षणिक हैं । ब्राह्मणके तुल्य अर्थ नही, किन्तु उसके अध्ययन क्रियाके तुल्य अन्यकर्तृक अध्ययन अर्थ है । क्रियाकी समानता—**हस्तिवत्** गच्छति महीषी, हथिनीके सदृश गमन करती है । **भीमवत** युध्यति दुर्योधन । **अर्जुनवत्** सचालयति कर्ण । क्रियाकी समानता क्यो ? इसलिए कि गुणकी तुल्यता बराबरी हो या द्रव्यकी वहा वत्प्रत्यय न हो । जैसे पुत्रके समान मोटा है । स्थूलता गुण है उसकी विशेषता होनेसे वत् नही हुआ । **पुत्रवत्** नही बना । यदि पुत्रेण तुल्य खादति क्रियाकी बराबरी हो तब पुत्रवत् होगा पुत्रवत्पालयति शिष्यम् । अत ब्राह्मणेन सदृश क्षत्रिय । यहा सदृश अर्थगुण है वाक्य ही रहेगा, वत् करना असाधु है । चैत्रेणतुल्य धनीमैत्र धनद्रव्य है । उसकी समानतामे वत् नही होगा । चैत्रवत् नही बनेगा । यही कारण है कि अय एव न तद्वत्से तेन तुल्यसे वत् साधुके लिये आह=क्रियापदका प्रयोग है । पर्वतोह्निमान् महानसवत् यहा भी वत्प्रत्ययकी साधुत्वके लिये पर्वतो वह्निमान् भवितुमर्हति । क्रियापदका प्रयोग अनुभवी करते है । इससे स्पस्ट है यत्र क्रियायाः समानता तत्र सहार्थे वति । अत पर गुणद्रव्यकी समानता उदाहरणार्थ ।(७९) **तत्र, तस्य** सप्तमी—अन्त, षष्ठी—अन्त शब्दसे वति प्रत्यय हो ।

चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गाव । (१७८०) **तदर्हम्** ५।१।११७।। विधिमर्हति विधिवत्पूज्यते, क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्या अनुवर्तते तेनेह न। राजानमर्हति छत्र । (८१) **तस्य भावस्त्वतलौ** ५।१।११९।। प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भाव

क्रिया नहीआयी । इससे स्पस्ट हैकि द्रव्यगुणकी समानता है इसीसूत्रके प्रमाण से । इव शब्द । षष्ठीके अर्थमे सप्तमीभी होती है । उदाहरण—मथुरायामिव प्राकार । घेरा, चहरदिवारी जैसे मथुरामे वैसे स्रुघ्नमे हैं । द्रव्य शब्दकी समानता, तुल्यता बराबरी है । यहा द्रव्य घेराकी समानता अर्थमे वत् मथुरावत् । षष्ठी अर्थे सप्तमी । मथुरासम्बन्धीप्राकारसदृश प्राकार इति बोध' । चैत्रकी तरह मैत्रकी गायें हैं । गायद्रव्यकी समानता अर्थमे वत चैत्रवत गाव । दशरथ पुत्र इव क्षेत्राणि अन्यस्य ।

(१७८०) **तदर्हम्** । अर्हति योग्यो भवति (अर्हंपूजाया पचादि अच्) तत्से कर्म-द्वितीयान्त लब्धु योग्यो भवति । कृदन्तके सम्बन्धमे षष्ठी न होना । ऋषिणा प्रोक्त आर्ष प्रमाण, वति आया । कतृकर्मणो की षष्ठीके अनित्यत्व प्रमाणसे द्वितीयान्तसे प्रत्यय हो । इसका स्पस्टीकरण तिङन्तविग्रह 'विधि-मर्हति' से करते हैं । विधि षोडशोपचारप्रक्रिया पूजा लब्धु योग्यो भवति अर्थे वत् । विधिवत्पूज्यते हरि । विधानके अनुकूल पूजाके योग्य । पूजाक्रियासे निश्चित हुआ । मण्डूकप्लुत्या=मेढक उछाल न्यायसे क्रिया आयी प्रत्ययविधान मे स्वीकृत हुई । विधि लब्धु योग्य हरिपूजनम् । अर्थात् विधानका उल्लङ्घन न हो । यथाशब्द वृत्तिविषये सत्वार्थक । तथात्व यथात्व आदि शब्दोमे त्व तल् दृष्ट हैं । हरिके विषयमे देवदत्तकीपूजा अर्थ । क्रिया आनेका फल तेनेह न=इसलिये यहा नही हुआ । राजाको छत्र चाहिये । क्रिया नही है, न वत् ।

(८१) **तस्य** षष्ठयन्तसे भाव अर्थमे त्व तल् हो । भावका क्या अर्थ है । भवन्ति अर्थबोधाय प्रवर्तन्ते अनेन । साधने अर्थे घञ् भाव । जो अर्थज्ञान का मुख्य कारण प्रवृत्तिनिमित्त हो । बोधकी प्रवृत्तिमे विशेषण ही भाव है । अभिप्राय आदि अर्थ नही । या कश्चिद्धर्म गोत्व, पशुत्व द्रव्यत्वमेव न गृह्यते । तब क्या लिया जाय । तब कहा—**प्रकृतिजन्यबोधे**=यस्मात्प्रत्यय सा प्रकृति । (जिससे त्व तल् हुए हो) उस व्यक्तिका ज्ञान होनेपर उससे यत् । जात्यादिक विशेषणतया भासते जाति गुण कर्म आदि । उस व्यक्तिके बोधमे जितने विशेषण कारण हो सभी इष्ट है । यथा गोशब्दसे गोव्यक्तिके ज्ञानमे गोत्व धर्मका ज्ञान कारण है । गोत्व ही भाव हुआ । समस्त गाय व्यक्तिके बोध गोत्वमे शक्तिज्ञान, गोत्वका त्यागकर गोमे शक्तिग्रह सम्भव नही । भूत भविष्य

गोर्भावो गोत्वम । गोता । 'त्वान्त क्लीबम' 'तलन्त स्त्रियाम्' । (८२) आ च त्वात् ५।१।१२०॥ 'ब्राह्मणस्त्व' इत्यत प्राक्त्वतलावधिक्रियने । अपवादै सह समावेशार्थ, गुण वचनादिभ्य कर्मणि विधानार्थं चेदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थं । स्त्रिया भाव स्त्रैणम्–स्त्रीत्वम्–स्त्रीता । पौंस्न

वर्तमान सब कालमे गोत्वसहित गायका ज्ञान, प्रतीति सुनिश्चित हैं। अतएव प्राणीत्व पशुत्व द्रव्यत्व आदि विशेषणसे गायका ही ज्ञान नही होता उससे भैंस बकरी हाथी, घोडा, गर्दभ आदि अलग होते है। पशुत्व या प्राणित्वसे चेतन मात्रका ज्ञान होने लगेगा। घट आदि शब्दका ज्ञान घटत्वसे है, द्रव्यत्व मृत्तिकात्वसे नही। शब्दके बोधका कारण ही भाव है। गोर्भाव गायके ज्ञान मे हेतुभूत गोत्व अर्थमे त्व आदि। **गोत्वम्**। यहा गोशब्द अर्थ रूपमे या शब्द रूपमे मान्य। यदा अर्थरूप तदा धर्मविशेष प्रत्यार्थ। जो धर्मरूपमे जान पडेगा। यदि ऐसा तब **प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भाव** क्यों पढा ? प्रयोग की उपाधिमात्र वास्ते। जब शब्दरूप है तब उसके बोधमे प्रकार प्रत्ययार्थ, जो धर्मविशेष ही है। जैसे पाचकत्व कर्तृत्व कर्ताका सम्बन्ध पाकक्रियाके साथ विशेषण प्रकार हैं। पच्यमानत्वमे कर्मणि प्रत्यय होनेसे त्वका कर्मत्व। सम्बन्धमे, औपगवत्व–जन्यत्वसम्बन्ध त्वका अर्थ। राजपुरुषत्वमे स्वरूपसम्बन्ध त्वका अर्थ। भर्तृहरिकी टीकामे **कृत्तद्धितसमासेभ्य सम्बन्धाभिधान भावप्रत्ययेन** कृदन्त तद्धितान्त और समाससे हुआ त्व प्रत्ययका सम्बन्धार्थ है। त्व अन्त में हो। सदा नपुमक। तल् अन्तमे हो सदा स्त्री०।

(८२) **आङ्मर्यादा** अथमे, चसे त्व तल् आये। ब्राह्मणस्त्व–सूत्रके पहलेतक त्व तल् अधिकृत है। आङ्की अवधिसीमा मर्यादा अर्थ। यद्यपि तस्य भाव से त्व तल् उत्तर सूत्रोमे भी। (अनुवृत्तिसे) होते ही, अधिकार सूत्र क्यो ? तब कहा **अपवादैः**=बाधक सूत्र पृथ्वादिभ्य इमनिच्वा आदि प्रत्यय जो अपवाद बाधक है। उनका भी एक साथ मेलके लिये अधिकार मान्य, अन्यथा जहा इमनिच् आदि होते वहा त्व तल् न हो पाते। उन्हीसे आकाङ्क्षा शान्त हो जाती। अण अधिकारे अण अत इञ् इत्यादौ प्रवृत्ति स्यात्। दूसरा फल गुण वचन आदि शब्दसे कर्ममे विधानके लिए, त्व तल्का अधिकार आवश्यक। आ त्वात् इतना ही पढते, त्व तल् अधिकारसे आते, उनके आकर्षणार्थ चकार क्यो ? तब कहा नञ् स्नञ्के साथ त्व तल्के समावेशवास्ते, दोनो अन्यत्र सावकाश थे। अपवाद प्रबल–बाधक नही बन सकता। स्त्रीका भाव गुण

पुंस्त्वम्—पुंस्ता। (८३) न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटयुधकतरसलसेभ्य ५।१।१२१॥ इत पर ये भावप्रत्ययास्ते नञ्तत्पुरुषान्न युश्चतुरादीन्वर्जयित्वा। अपतित्वम्। अपटुत्वम्। नञ्पूर्वात्किं? बाहस्पत्यम्। तत्पुरुषात्किं? नास्य पटव सन्तीत्यपटु तस्य भाव आपटवम्। अचतुर—इति किं? आचतुर्यम्। आसङ्गत्यम्। आलवण्यम्। आवटचम्। आयुध्यम्। आक-

---

विशेषता (दाढी, मूछका न होना) कोमल बोल आदि भावमे अण आदि स्त्रैण स्त्रीका लक्षण त्व, स्त्रीत्व, तल् स्त्रीता। पुस भाव (पुरुषका लक्षण परिचय) नञ् आदिवृद्धि पौस्न, सयोगान्त लोप होनेपर अम् परे खञ् पुन्के म को ह आदि त्व। पुस्त्व, तल्=अनुस्वार विसर्ग पाक्षिक है।

(८३) न नञ्—इत पर=यहासे लेकर त्व तल् विधिके बाद जितने भाव विशेषताबोधक प्रत्यय है वे नञ् तत्पुरुष समाससे न हो। चतुर सगत लवण वट, युध—कत रस, लस, इनको छोडकर। इनके नञ् समासमे भावप्रत्यय होते है। पति स्वामी रक्षक: न पति अपति तस्य भाव अपतित्व, जिसका रक्षक न हो उसकी विशेषता। पत्यन्तपुरोहितादिभ्य से यक् नही हुआ। निषेधसे। अपटुत्व न पटु अपटु तस्य भ (जो कुशल न हो) उके गुणादि इगन्ताच्च लघूपूर्वात्से प्राप्त अणका निषेध हुआ। त्व हुआ। नञ् पूर्वात् किं? नञ्समास पहले हो ऐसा क्यो? बृहता पति बृहस्पति तस्य भाव वाणीके स्वामीकी विशेषता, पत्यन्तपुरोहितादि मानकर यक् आदि। नञ्समास नहीं, न निषेध। तत्पुरुष क्योपढा? नास्य पटव (इसके पास पटु लोग नही) अपटु उसके भाव गुण विशेषता अर्थमे इगन्ताच्च लघुपूर्व देखकर अण् आदि आपटवम्, यहा तत्पुरुष नही, न निषेध। अचतुर=चतुर सगत आदिको वर्जयित्वा =छोडकर क्यो कहा? भावमे प्रत्ययका निषध न होनेके लिये। न चतुर अचतुर तस्य भाव. (पटुताविहीनकी गुण विशेषता अर्थमे) ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ्। आदिवृद्धिआदि आचतुर्यम। न सगतम् असगतम् तस्य भाव आसगत्य सत्सगविहीनकी विशेषता। असगतमे ष्यञ् आदि, न लवण अलवण तस्य भाव आलवण्य नमकविहीनकी विशेषता। न वट अवट तस्य भाव आवटचम् अशृखला, न युध- अयुध तस्यभाव आयुध्यं। युद्ध न करनेकी विशेषता। आयुधसे ष्यञ् आदि। न कत अकत तस्य भाव आकत्य, न रस अरस तस्य भाव आरस्य रसविहीनकी विशेषता। लसतीति लस जो चिपके, स्फूर्त पटु, न लस अलस, तस्यभाव. आलस्य आलसीकी विशेषता। यहा तक भाव प्रत्ययका निषेध नही होता।

त्यम । आरस्यम । आलस्यम् ।(८४) पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२॥ वा वचनमणादिसमावेशार्थम ।(१७८५)र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१॥ हलादेर्लघोऋ्कारस्य र स्यात् इष्ठेमेयस्सु । (८६) टेः ६।४।१५५॥ भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु । पृथोर्भाव प्रथिमा–पार्थवम् । म्रदिमा–मार्दवम् । (८७) वर्णदृढादिभ्य ष्यञ्च ५।१।१२३॥ चादिमनिच् । शौक्ल्यम्–

(८४) पृथ्वादिभ्य षष्ठचन्त पृथु मृदु आदिगणपठितशब्दसे भाव अर्थमे इमनिच् हो । अणादि भी हो विकल्प फलित । समर्थाना प्रथमाद्वा मे वा पढा ही था । यहा वा पढना अनावश्यक तत्र बोले—वावचन=वा का पढना अण् आदि प्रत्ययके समावेशवास्ते ताकी पृथु मृदु इत्यादि सूत्रोसे, इगन्ताच्चसे अण् । चण्ड खण्डादिको ष्यञ्, बालवत्सादिका अञ, स्वाभाविक अञ्का भी समावेश हो । नही तो महाविभाषावशात् अपवादेन मुक्ते पुनरुत्सर्गो न प्रवर्तते बाधकके हटनेपर स्वाभाविक सूत्र न लगता ।

(१७८५) र ऋतो=र प्रथमान्त हलादि के लघु ऋकारको र हो, इष्ठन् ईयसुन् प्रत्यय परे । तुरिष्ठेमेय सु आया । अङ्गकाअधिकार, अदन्त र आदेश, इमनिच् परे भी । हलादि क्यो पढा ? ऋत्विक् ऋत्विजीयान् । लघु क्यो ? कृष्णिमा । (८६) टे भसज्ञक टिका लोप हो, इष्ठन् इमनिच् ईयस् परे । पृथोर्भाव मोटा–स्थूल या राजाकी गुण विशेषता प्रथिमा प्रसिद्धि । पृथु शब्दसे इमनिच् । च इत्, अकार उच्चरणार्थ । ऋको र, ओर्गुण उकारका गुण बाधकर टिका लोप, प्रथिमन् स्वादिकार्य । पक्षमे इगन्त मानकर अण् । पृथु अ ओर्गुणे आदिकार्य पार्थवम् । मृदोर्भाव म्रदिमा मुलायमपनकी विशेषता । मृदु से इमनिच् ऋको र टिलोप आदि पूर्ववत् । जब न इमनिच् तब इगन्ताच्च अण् ओर्गुणे मार्दव, कोमलता । (८७) वर्णवाची और दृढ आदिगण पढे शब्दो के षष्ठी अन्तदशासे ष्यञ् हो भाव अर्थमे । यह कार्य गुणवचन मानकर होता यह सूत्र इमनिच् प्रत्यय सग्रहके लिये । शुक्लस्य भाव सफेदीसे चमक या विशेषताअर्थमे शुक्लसे य आदि शौक्ल्य, जब इमनिच् तब शुक्लिमन्से सु आदि कार्य । दृढस्य भाव दार्ढ्य मजबूत टिकाऊ, लौह पुरुषकी गुण विशेषता अर्थ मे दृढसे ष्यञ्, आदिवृद्धि अलोप । जब इमनिच् तब (वा०) पृथु मृदु भृश, कृश, दृढ परिवृढ इनके ऋको र कहे, इमनिच् परे । तब द्रढिमन् तत स्वादि-कार्य । भ्रशिमा, क्रशिमा, द्रढिमा, परिव्रढिमा आदि । ष्यञ्का ष-ङीष्के लिये, उचितस्य भाव औचिती (ब्राह्मणादिगणको आकृतिगण मानकर) उचितशब्दात्

शुक्लिमा। दार्ढ्यम्।* 'पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्' द्रढिमा। षो ङीषर्थं। औचिती। याथाकामी। (८८) **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४॥** चाद्भावे। जडस्य कर्मभावो वा जाड्यम्। मूढस्य भाव कम वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्। अर्हतो नुम् च। अर्हतो भाव कर्म वा आर्ह-

---

ष्यञ् आदि। षित्से ङीष, हलस्तद्धितस्य यलोप। यदि दृढादिमे होता इमनिच् हो जाता। काममनतिक्रम्य यथाकामम इच्छानुसार। चतुर्वर्णादिगण मानकर स्वार्थमे ष्यञ्। ष लोपसे स्त्री ङीष्। यहा दो गणसूत्र है। **वेर्यात लाभमतिमन शारदानाम्।** विसे यात लाभ मति मनस् शारदके साथ समास के बाद ष्यञ हो। वियातस्य भाव **वियातत्व** वियायता। इमनिच् **वियातिमा** ष्यञ् आदि वैयात्य। विलाभिमा वैलभ्यम्। नष्ट लाभकी विशेषता शोक विमति दुर्बुद्धि' तस्य भाव **विमतिमा**। जब ष्यञ् आदि **वैमत्यम्** तब विरोध इक अन्तसे अण् भी वैमत, विमतिमा। वैमनस्य—विमनस भाव मनमुटाव। विशारदस्यभाव विशारदिमा, वैशारद्य,खिली विद्वता, त्व तल्भी। विलाभत्व विलाभिता, विमतित्व विमतिता। **दूसरा गणसूत्र—समो मतिमनसो।** समसे परे मति और मनस् हो, तब समासके बाद ष्यञ् हो। सम्मतेर्भाव सम्मतिमा समतित्व, समतिता सामत्यम्। इगन्त मानकर अण् भी सामत—सपूर्वक मनस के समासान्तर, भावमे त समनस्त्व समनस्ता। समनिमा साभनस्यम्।

(८८) **गुणवचन**। ष्यञ् आया। कम=क्रिया कार्य भी। शरीर पवित्रकर्ता, शौचादिक्रिया, शस्त्रविहित यागादि कर्म कार्य है। गुणोपसर्जन द्रव्यवाची शब्द ब्राह्मणादिगण पठितशब्दके षष्ठयन्त दशासे भाव और कर्म अर्थमे ष्यञ् हो। यथा जड—अविवेकीकी क्रिया उसका भाव गुण विशेषता अर्थमे जडसे ष्यञ् अनुबन्धलोप। जड य। आदिवृद्धि, यस्येति अकारलोपे, आदि **जाड्यम्**। अविवेक पूण कर्म। मूढ=मोहितका भाव मूलविशेषता कर्म क्रिया **मौढ्य**, ब्राह्मणस्य भाव कर्म वा **ब्राह्मण्य** तप सदाचार। (वा०) **अर्हतो** (अर्ह प्रशासाया धातुसे शतृ) अर्हत् शब्दसे पूजा प्रशसा वाचक अर्थमे ष्यञ् हो। प्रकृति को नुम् मित् है। अन्त्य अच्से परे होगा। अर्हत पूज्यस्य भाव कर्म वा आर्हन्त्यम् अर्हसे ष्यञ् नुम् हुआ। मित्से अन्त्य अचसे परे हुआ। न को अनुस्वारपरवण। नपुसक या स्त्री० लोकानुसारी। जब आर्हन्त्यसे ङीष् होगा तब हलस्तद्धितस्यसे यलोप, आकृतिगण मानकर ब्राह्मणादिके अनुकूल कार्य समझे, दोनो शब्द नञ्, पूर्वपद है उनसे ष्यञ् आदिवृद्धिकी विशेषता बोले—एकभाव

न्त्यम् । आर्हन्ती । ब्राह्मणादिराकृतिगण । (८९) **यथातथायथापुरयो पर्यायेण** ७।३।३१।। नञ परयोरेतयो पूर्वोत्तरपदयो पर्यायेणादेरचो वृद्धि-ञ्रिदादौ । अयथातथाभाव आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम् । आयथापुर्यम्-अयाथापुर्यम । आपादसमाप्तेर्भावकर्माधिकार । 'चतुर्वर्णादीना स्वार्थे उपसख्यानम् (वा०) । चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यन् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् । त्रैलोक्य-मित्यादि । सर्वे वेदा सर्ववेदास्तानधीते सर्ववेद 'सर्वादे' इति लुक् । स एव

त्रिभाव अन्यभाव इनका पाठ स्वार्थमे प्रत्ययके लिये । इसका प्रमाण प्रत्याहाराह्निकका वार्तिक । आन्यभाव्यमिति कालशब्दव्यवायात् अन्यभाव । एव आन्यभाव्य अन्यत्व (८९) **यथातथा** नञ्से परे यथातथा और यथापुर शब्दके दोनो पदके आदि अच्की पर्यायसे वृद्धि हो । ञ, ण, क इत्प्रत्यय परे,कभी पूर्वपदकी कभी उत्तर । यथातथा भाव कर्म वा अर्थमे ष्यञ् निपातन से । उत्तरपदकी आदिवृद्धि । अयाथातथ्य, नञ् समाससे यथार्थ न होने की विशेषता । जब पूर्वपदकी आदिवृद्धि तब आयथातथ्यम् । असत्यका भाव । यथाके चार अर्थ-पदार्थका अनुल्लघन, सादृश्य आदि । पुरके समान या मर्यादा न लाघकर अर्थमे यथाके साथ समास । पुन नञ्के साथ समास । अयथा पुरः भाव **आयथापुर्यं** ञ ष्यञ्परे पूर्वपदकी आदिवृद्धि । पक्षमे उत्तरपदकी ।

भावकर्मके अधिकारका निर्णय, **आपाद्**-तीसरे पादकी समाप्तितक अधिकार चलेगा (वा०)**चतुर्वर्ण** आदि शब्दके(स्वप्रकृति तस्य अर्थ)स्वार्थमे ष्यञ् कहे । चत्वारो वर्णा चारजातिके आपसमें समास-मेल, एकार्थीभाव, पूर्वकालैकसर्वजरत्सुसे हुआ । चतुर्वर्णस्य भाव कर्म वा अर्थमे चतुर्वर्ण शब्दात् ष्यञ् आदि वृद्धि अलोप आदि । **चातुर्वर्ण्यं** (चारो वर्णो) मया सृष्ट गुणकर्म विभागश । स्वार्थमे प्रत्यय । चत्वारो आश्रमा चातुराश्रम्य, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यासका समास, तद्धित प्रक्रिया पूर्ववत् चारो आश्रमोकी विशेषता धर्म कर्म । त्रय स्वरा त्रिस्वर तस्य भाव कर्म बा त्रैस्वर्यम्-उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनो स्वरोकी विशेषता उपयोगिता या (स्वार्थे प्रत्यय) त्रय स्वरा एव त्रैस्वर्यं, षड्गुणा एव षाड्गुण्य-छ गुण जायते तिष्ठति वर्धते अपक्षीयते नश्यति-जन्म उपस्थित बढना क्षीणता नष्ट होना । सेना एव सैन्य, सन्निधि एव सानिध्य समीपता । समीप एव सामीप्य, उपमा एव औपम्यम् । एक अर्थ त्रिलोक एव त्रैलोक्यं, तीनो लोक आदि । सर्ववेदा (एव सम्पूर्ण वेद है) तान् अधीते उनको जो पढ़े वह **सर्ववेद** । तदधीते तद्वेदसे अण्, उसका सर्वादय सूत्र

सार्ववैद्य । चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च । चतुरो वेदानधीते चतुर्वेद । स एव चातुर्वैद्य । चतुर्विद्यस्य इति पाठान्तरम् । चतुर्विद्य एव चातुर्वैद्य ।(१७९०) स्तेनाद्यन्नलोपश्च ५।१।१२५।। न इति सङ्घातग्रहणम् । स्तेन चौर्ये' पचाद्यच् । स्तेनस्य भाव कर्म वा स्तेयम् । स्तेनात् इति योग विभज्य—स्तैन्यमिति ष्यञन्तमपि केचिदिच्छन्ति । (९१) सख्युर्य ५।१।१२६।। सख्युर्भाव कर्म वा सख्यम् । 'दूतवणिग्भ्या च' दूतस्य भाव कर्म वा दूत्यम् । वाणिज्यम् ।

से लुक । समस्तवेदोका अध्ययनकर्ता अर्थमे शक्ति और स्वार्थमे सर्ववेदसे ष्यञ् दोनो पदकी आदिवृद्धि सार्ववैद्य समस्त वेदोका अध्येता (वा०) **चतुर्वेद शब्द** से भी स्वार्थमे ष्यञ् तथा दोनो पदकी आदिवृद्धि कहे । चार वेदोका अध्ययन कर्ता तद्धितार्थसे द्विगुसमास । अध्ययन अर्थके अण्का लुक् । द्विगोर्लुगनपत्ये । चतुर्वेद स एव उसी अर्थमे ही य । दोनोपदकी आदिवृद्धि, अकारलोप आदि । **चातुर्वैद्य** चारवेदोका अध्येता । कही चतुर्विद्य वार्तिकमे पढा है तत्र चतस्रो विद्यामधीते । तद्धितार्थोत्तरपदसमास । विद्यालक्षण मानकर यक्, उसका द्विगोर्लुक् । चतुर्विद्यसे स्वार्थमे य दोनो पदकी आदिवृद्धि चातुर्वैद्य चारो वेदों का अभ्यासी ।

(१७९०) स्तेन शब्दसे यत् हो नकार लोप भी । न—अ समुदायका ग्रहण (लोपमे) यद्यपि नकारलोप कहते, अकारलोप यस्येति चसे होता तत्र, अकारके स्थानिवद्भावसे एकारको अयादेश हो जाता । नानर्थकेऽलोन्त्य—चोरी अर्थमे स्तेन धातुसे पचादिगण मानकर अच् । स्तेनस्य चोरी कर्मकी कला विशेषता क्रिया कार्य अर्थमे यत् । न लोप आदि **स्तेयम्**, केचिन्महापुरुषा इच्छन्ति यत् सूत्रमे स्तेनात् अश अलग कर ष्यञ् भी चाहते है । ताकि **स्तैन्य** आदिवृद्धि करके बने । चोरीकी क्रिया कर्म कुशलता कार्य अर्थ । **समासकृदन्त तद्धितान्त अव्यय सर्वनाम जाति सख्या संज्ञा शब्दभिन्न अर्थवान् शब्दरूपकी गुणवचन संज्ञा** । भाष्यमे उक्त है । कृदन्त होनेसे प्राप्त नही था अत सूत्र पढा । यदि अव्युत्पन्नप्रातिपदिकको गुणवचन कहे । तब पक्षमे यत्प्रत्यय होनेके लिए सूत्र यन्नलोपश्च । यह योगविभाग भाष्यमें नही है । अत अप्रामाणिक ।

(९१) **सखि शब्दके षष्ठी** अन्त देशसे भाव विशेषता गुण कर्म क्रिया कार्य अर्थमे 'य' हो । सख्यु मित्रकी मित्रता दुखमे सहायता गुण विशेषता क्रिया कार्य अर्थमे 'य' सखि—य, यस्येति इकारलोप **सख्यम्** । (वा०) **दूत और** वणिक् शब्दसे भी य प्रत्यय कहे । समाचार आदान प्रदान कर्ता दूतके **धर्म**

इति काशिका । माधवस्तु 'वाणिज्याशब्द स्वभावास्त्रीलिङ्ग । भाव एव चात्र प्रत्ययो न तु कर्मणि' इत्याह भाष्ये तु 'दूतवणिग्भ्या च' इति नास्त्येव ब्राह्मणादित्वाद्वाणिज्यमपि । **(९२) कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७।।** कापेय । ज्ञातेयम् । **(९३) पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८।।** सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् । 'राजाऽसे' राजन्शब्दोऽसमासे यक लभत इत्यर्थं । राज्ञो भाव कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादि वात्ष्यञ्, आधिराज्यम् । (९४)

चातुर्य सवाददान कुशलता क्रिया कलाप अर्थमे दूतसे 'य' प्रत्यय । अनोप दू य वणिज भाव कर्म वा **वाणिज्य** वैश्यके कृषि गोरक्षा क्रय विक्रय क्रिया कर्म व्यापार अर्थमे य । नपुसक-काशिकाकारका मत । माधवाचार्य स्त्रीलिङ्ग कहते है । भावमे ही प्रत्यय है कर्ममे नही, वृत्तिपठित वार्तिकम् । अत प्रत्यय कर्मे हुआ । तब कहा ब्राह्मणादि मानकर ष्यञ । **वाणिज्य** भी बनेगा । अग्निसे **दौत्य** भी । (९२) **कपि** और ज्ञातिसे भी ढक कहे । पञ्चमी अर्थमे षष्ठी । यहा कपि और ज्ञातिका भाव कर्मके साथ गणना क्रम नही, व्याख्यान वलने । कपे भाव कर्म वा बन्दरकी उछल कूद चञ्चलता अविश्वास क्रिया कार्य अर्थ मे कपिसे ढक । आयनेयी–सूत्रसे ढको एय । आदिवृद्धि कापेयम् । ज्ञाते भाव कर्म वा जातिविरादरीकी गुणविशेषता धर्म रीतिरिवाज अर्थमे जातिसे ढकादि ज्ञातेयम् । (९३) **पत्यन्त**–पतिशब्द अन्तमे हो और पुरोहित, सग्रामिक, पथिक सारथिक आदिगणपठित शब्दसे भाव कर्म अर्थमे यक् हो । यथासख्य नहीं है । सेनापते भाव कम वा अर्थे यक् । आदिवृद्धि इकारलोपे, **सैनापत्य** सेनापतिकी वीरता कर्तव्य क्रिया कार्य । पुरोहितस्य भाव कर्म वा पाण्डित्य धर्म शिक्षा धार्मिकनेतृत्व आदर्श सदाचार, नित्यकर्म अर्थमे पुरो अग्रे हित पुरोहित से यक्, अलोपादि । **साग्रामिक्य** युद्ध वीरता शस्त्र आदि । पाथिक्यम, सारथिक्य कर्तव्य आदि (ग) **पुरोहितादि** का गणसूत्र–राजाशब्दसे उक्त अर्थमे यक् हो । उससे समास न होनेपर । 'स' इति समासस्य प्राचा सज्ञा । राजाकी विशेषता गुण प्रजासेवा आदर्शक्रिया कलाप अर्थमे राजन्से यक् टिलोप । भाव कर्म है प्रकृतिभाव नही हुआ । **राज्य**–राजाका अनुशासन, समासमे ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ्, अधिराजन्से राजाके अधिकारमे आदर्श क्रियाकलाप । यद्यपि गणमे राजन् पढा है अधिराजन् नही तथापि 'असे' का निषेध प्रमाण बनता है कि अस्त्यत्र प्रकरणे राजन्शब्देन तदन्तविधि । कोई आकृतिगण मानकर समाधान । शाबरभाष्यमे राज्ञ कर्म राज्य ब्राह्मणादि मानकर ष्यञ्

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ५।१।१२९॥ **प्राणभृज्जाति** आश्वम्, औष्ट्रम् । वयोवचन कौमारम् । कैशोरम औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् । सौष्ठवम् । दौष्टवम् । (१७९५) **हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ५।१।१३०॥** द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । यौवनम् । स्थाविरम् । 'श्रोत्रियस्य यलोपश्च श्रौत्र ।

क्रिया । स्वरमे अन्तर । (९४) **प्राणभृत्** जाति, वयोवाची । उद्गात्र आदिके षष्ठी अन्तशब्दसे भाव कर्ममे अञ् हो । मुखनासासचारीवायु प्राण नाकसे, मुहसे हवाका निर्गम, अन्तर्गमरूप वायुका नाम प्राण है । प्राणधारणवाली जाति, अश्वस्य भाव कर्म वा घोडेका अनुशासित चाल, शानदार स्वरूप अर्थे अञ् आदि **आश्वम्** । उष्ट्रस्य भाव ऊटकी भारवाहनशक्ति लम्बा होना, क्रिया कर्म **औष्ट्रम्** । ये प्राणधारक है । प्राणभृत् क्यो पढा ? तृणत्व तृणतासे अञ् न हो । जाति क्यो देवदत्तत्व, देवदत्त गुणकी विशेषता क्रियाकर्म अञ् नही हुआ, अवस्थावाचक शब्दसे अञ्–कुमारस्य भाव **कौमारम्**, पाचसे दशवर्षकी अवस्था की विशेषता क्रिया कार्य शरीरका वर्धन अथमे कुमारसे अञ् आदि कौमार । किशोरस्य भाव कर्म वा दशसे पन्द्रह वर्षकी अवस्थाकी विशेषता क्रियाकलापे अर्थे अञ् आदि **कैशोरम्**, । यून भाव **यौवन** पन्द्रह–पचीस । प्रौढस्य भाव पच्चीस–पचास प्रौढ, स्थविरस्य भाव **स्थाविर**, वृद्धस्य भाव बार्धक्यम्, उद्गात्रस्य भाव कर्म वा **औद्गात्रम** । उभरते हुए शरीर वालेकी प्रगति कार्य अञ् आदि । ऊची शरीरकी विशेषता । उन्नतस्य भाव एकटक ताकने की आकर्षकविशेषता । जो ऋत्विक् है उनसे होत्राभ्य छ प्राप्त था, बाधकर अञ् । सुष्टु भाव, सौष्ठवम क्रिया अच्छे गुण विचार दुष्टु कर्म भाव दौष्टव दूषित भाव दुष्टविचार । यहा गुण लक्षणमानकर ष्यञ् प्राप्त । वधूसे ष्यञ् प्राप्त उसे बाधकर अञ् । वधूसे इगन्तलक्षण अण् । शेषे । त्व तल्को बाधकर अञ्, सुभगशब्द मन्त्रमे पढा गया है । **महते सौभगाय सौभाग्यमस्मै दत्ताय । सर्वे विधय छन्दसि विकल्पा भवन्ति ।**

(१७९५) । **हायनान्त**=हायनशब्द अन्तमे हो युवन् स्थविरके षष्ठयन्तदशा के भाव कर्ममे अण् हो । द्वे हायने यस्य स द्विहायन तस्य भाव कर्म वा (दो वर्षके बच्चेका हाव भाव चेष्टा क्रिया कार्य अर्थमे, त्व तल्को बाधकर) अण् आदिवृद्धि **द्वैहायन** त्रीणि हायनानि यस्य स त्रिहायन तस्य भाव कर्म (तीन वर्षके बच्चेकी चेष्टा क्रिया) अर्थे अण् आदि **त्रैहायनम्** । यून भाव कर्म वा यौवन युवन्से अणादि । वयोवचनलक्षण अञ्को बाधकर । युवककी चेष्टा

कुशलचपलनिपुणपिशुनकुतूहलक्षेत्रज्ञाः युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते । कौशल्यम्–कौशलमित्यादि । (९६) इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१॥ शुचेर्भावः कर्म वा शौचम् । मौनम् । कथ काव्य । कविशब्दस्य ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । (९७) योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् ५।१।१३२॥ रामणीयकम् ।

क्रिया वृद्धि कार्य । मनोज्ञादिगणपाठसे वुञ् अक आदि **यौनकम+प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवान** से प्रकृतिभाव। अन्का लोप नही । स्थविरस्य भाव कर्म वा **स्थाविर** स्थविरसे अण आदि बुढौतीकी शिथिनता क्षीणता ।(वा०) **श्रोत्रिय** शब्दसे अण् हो यलोप भी । **श्रोत्रिय छन्दोऽधीते** जो वेद पढना है अथमे छन्दस्से अण् **छान्दस** को श्रोत्र आदेश घ–इय भी । यस्येति अकारलोप श्रोत्रियस्य भाव कर्म वा वेद पाठककी विशेषता गुण क्रिया कार्य अर्थमे अण् अकारसहित य का लोप। यस्येति अलोपादि **श्रौत्र** वेद पढनेवालेका कर्म आचरण आदि, कोई **'श्रोत्रियस्य यलोपश्च'** ऐसा पढते है हरदत्त आदि । कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ ये युवादिगणमे और ब्राह्मादिगणमे पढेगये है । उसके अनुसार ष्यञ् भी होगा । कुशलस्य भाव कर्म वा अर्थे य आदि० । कौशल्य,चतुरता कुशलकार्य दक्षता,जब अण् तब **कौशलम्** । चपलस्य भाव कर्म वा **चापल्य** चापलम् । निपुणस्य नैपुण्य नैपुण, पिशुनस्य–चुगुलखोरका स्वभाव क्रिया कार्य **पैशुन्य** पैशुन, कुतूहलस्य उत्सुकताका भाव परिणाम कौतुहल्यम् कौतुहलम् । क्षेत्रज्ञस्य भाव स्थान खेतका मर्मज्ञ, उसकी पटुता, क्रिया कलाप क्षैत्रज्ञम । (९६) **इगन्तात्** इक्=इ उ ऋ लृ अन्तमे हो लघु पूर्वो अवयवो यस्य । कहासे पूर्व, इक्से । लघु अक्षर पूर्वमे हो ऐमा इक् ऐमा प्रातिपदिक षष्ठी अन्तसे भाव कर्ममे अण्, गुणवचन ब्राह्मणादिको बाधकर । यथा शुचि पवित्रता सदाचारवान्के गुणभाव विशेषता क्रिया कलाप अर्थमे शुचिसे अणादि **शौच**–शुद्धता । मुनेर्भाव कर्म वा **मौन**, मुनिसे अण् आदि० । मनन क्रिया, फल आदि० । यदि ऐसा कविशब्द भी लघु पूर्व अन्त है । अण् (काव) क्यो नही होता तब कहा कविशब्द ब्राह्मणादि गणमे पढा है । उससे ष्यञ् ही होगा, कवे फ काव्य कविकीकिया कलाप । इगन्त क्यो कहा घटत्व, लघुपूर्व क्यो पाण्डुत्वं । (९७) **योपधात्** य उपधामे है । गुरु दीर्घ उपोत्तम (अन्तके समीपमे हो)ऐसी षष्ठी अन्त प्रातिपदिक से भाव कर्ममे वुञ्–अक हो । रमणीयस्य भाव कर्म वा **रामणीयकम्**। वु–अक आदि० । अभिधानीयस्य भावः

आभिधानीयकम् । 'सहायाद्वा' साहाय्य–साहायकम् । (६८) **द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ५।१।१३३॥** शैष्योपाध्यायिका । मानोज्ञकम् ।(६९) **गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ५।१।१३४॥** अत्याकारोऽधिक्षेप । तदवेत ते गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी प्राप्त अवगतवान्वा । गार्गिकया श्लाघते । गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थं । गार्गिकया अत्याकुरुते । गार्गिकामवेत । (१८७०) होत्रा-

---

कर्म वा प्रवचनके विषयका प्रभाव । वु–अक आदि० । य उपधामे क्यो ? विमानत्व, गुरु समीपमे क्यो ? क्षत्रियत्व ।(वा०) **सहाय** शब्दसे वुञ् विकल्पसे हो, पक्षमे ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ् हो । सूत्रसे नित्य प्राप्त था । विकल्पके लिये वार्तिक–सहायसे वु=अक आदि० । **साहायक** सहायताका असर महयोग । जब ष्यञ् तब **सहाय्यम** ।

(६८) **द्वन्द्व** समास और मनोज्ञ, प्रियरूप, बहुल अवश्य आदि गणपढ शब्दो से भाव कर्म **अर्थ**मे वुञ् हो, षष्ठी अन्त दशासे । शिष्यश्च उपाध्यायश्च द्वन्द्व-समास से बुञ्–अक आदिवृद्धि टाप् 'प्रत्ययस्थात'से इत्व शिष्य और अध्यापक के बीच गुण विशेषता आज्ञा पालन अनुशासन सम्बन्ध कार्य अथमे । गोपालश्च पशुनालश्च, दोनो की कुशलता क्रिया अर्थमे प्रत्यय । गोपाल पशुपालकम । मनोज्ञस्य भाव कर्म वा–मन जानने वालेका भाव कर्म अर्थमे बु–अक आदि **मानोज्ञकम्** । प्रियरूपस्य भाव **प्रैयरूपकम्** । बहुलस्य भाव कर्म वा बाहुल-कम् । आवश्यकम । (६९) **गोत्र** अर्थमे हुआ प्रत्यय अन्तमे हो **चरण**=शाखा अध्ययनकर्ता । षष्ठयन्त शब्दसे भाव और कर्ममे वुञ् हो । श्लाघा प्रशसा अत्याकार (दूसरोको फटकार झेपना) **तद्वेत** तत्से गोत्र, और शाखासे भाव और कर्म इष्ट है । अवपूर्वक इण् से (प्राप्ति अर्थमे या ज्ञान कर्ता अर्थमे प्राय हो । **अवेत तद्वेत** उनका ज्ञान हो गया हो इस **अर्थ**मे वुञ् हो, अपत्याधिकारसे अन्यत्र और प्रवर अध्यायमे प्रसिद्ध हो, ऐसा लौकिक गोत्र । गार्गिकया गार्ग्यस्यापत्य गार्ग्य गोत्र अर्थमे यञ् प्रत्ययका लोप, उससे गुणविशे-षता क्रिया कलाप अर्थमे वु–अक टाप् इत्व आदिवृद्धि । कठ चरण शाखा है । श्लाघाका विषय है, कठस्य भाव कर्म वा **काठका** बु–अक आदि । तथा प्रसशा विषय अपनेको गार्ग्य गोत्रका, कठ शाखाका कहकर विकथ्यते–अपनी प्रसशा करता है । अथवा गर्गगोत्र, कठशाखा का कहकर अत्याकुरुते–नीचा दिखाता तिरस्कृत करता है । यह गर्गगोत्रको प्राप्त हुआ अवगतवान् जाना ।

(१८००) **होत्रा** आदिगण पढेसे भाव कर्ममे छ हो, षष्ठी अन्तसे । होत्रा

भ्यश्छः ५।१।१३५।। होत्राशब्दो ऋत्विग्वाची स्त्रीलिङ्ग । बहुवचनाद्विशेष-ग्रहणम् । अच्छावाकस्व भाव कम वा अच्छावाकीयम् । मैत्रावरुणीयम् । (१८०१) ब्रह्मणस्त्व ५।१।१३६।। होत्रावाचिनो ब्रह्मन्शब्दात्व स्यात् । छस्यापवाद । ब्रह्मत्वम् । नेति वाच्ये त्ववचन तलो बाधनार्थम् । ब्राह्मणपर्यायाद्ब्रह्मन्शब्दा नु त्वतलौ । ब्रह्मत्वम्-ब्रह्मता ।

इति तद्धिते भावकर्माधिकारप्रकरणम् ।

अथपाञ्चमिकप्रकरणम्

(१८०२) धान्याना भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१।। भवन्त्यस्मिन्निति भव

शब्द ऋत्विक्=ऋतुओमे यज्ञ करानेवाले अर्थमे है । स्त्रीलिङ्ग है । बहुवचनसे विशेष अथ । अच्छावाक-स्वच्छ नि सकोच, स्पष्ट वाणीकी विशेषता गुण प्रभाव अर्थमे छ-ईय अच्छावाकीय तर्कपूणवक्तृत्व । आच्त्वात् सूत्र तक त्व और तल्का भी ममावेश । मित्रावरुणस्य भ व कर्म वा अर्थमे छ आदि ।

(१८०१) ब्रह्मण होत्रार्थकशब्द ब्रह्मन्से त्व हो, छको बाधकर । ब्रह्मण भाव कर्म वा ब्रह्मत्वम् । ऋतुओमे यज्ञ कराने वाला अर्थवाचक ब्रह्मन्से गुण विशेषता क्रिया कलाप अथमे त्व । शङ्का—त्व तल्के रूपमे बनता 'ब्रह्मणो ।' इतना ही पढते, छका निषेध होता ही, तब कहा नेति वाच्ये 'न' ऐसा पढना त्व तल बाधनेके लिये, जो अधिकारसे प्राप्त थे । यदि ब्राह्मण अर्थमे ब्रह्मन् शब्द हो उससे त्व तल् होता ही है ब्रह्मत्व आदि बनते हो । यहा तक भाव कर्म अर्थमे नञ् स्नञ् का अधिकार पूर्ण हुआ ।

अथपाञ्चमीका.—

पञ्चमे भवा पञ्चमाध्यायवर्तिन प्रत्यया पाचवे अध्यायके प्रत्ययोका प्रकरण । (१८०२) धान्य ना=धान्यवाची शब्दोके षष्ठी अन्तसे भवने क्षेत्रे= उपजकी खेत अर्थमे खञ् हो । शब्दार्थ=धिवि प्रीणने—भूखेको प्रसन्न करना धातु का अर्थ । कर्तामे बहुल ण्यत् । धिन्व य । सूत्रके निपातनसे साधनिका स्वीकार अन्त्य व का लोप, विमे इ को आत्व, धिनोनि—बुभुक्षितान् प्रीणाति धान्य सभी ढगके अन्न ध न्य हे । मन्त्रमे धान्यमसि धिनुहि देवान् पढ़ा है । तुम अन्न हो देवताओको प्रसन्न करो । धान्यनामे कर्तरि षष्ठी । भवन्ति अस्मिन् भवन तस्मिन् भवने, क्षेत्रे खेत (जो होनेका आधार है) जिस अन्नका उपजाऊ जो खेत है उससे उसी अथमे खञ है । अधिकरण-आधार अर्थमे ल्युट । भावमे होता तब खेत अथ न निकलता । उत्पत्ति अर्थमेभू धातु , अत भवनका धान्योत्पत्ति

नम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् । (१८०३) **व्रीहिशाल्योर्ढक्** ५।२।२।। व्रैहेयम् । शालेयम् । (१८०४) **यवयवकषष्टिकाद्यत्** ५।२।३।। यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् । (१८०५) **विभाषा-तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** ५।२।४।। यद्वा स्यात् पक्षे खञ् । तिल्य–तैलीनम् । माष्यं माषीणम् । उम्यं औमीनम् । भङ्ग्यम् भाङ्गीनम् । अण्व्यम्

स्थान क्षेत्रम् अर्थ, केदारः क्षेत्रमित्यमर । क्षेत्र पढनेसे उत्पत्ति अर्थक भूधातु मान्य । यदि क्षेत्र न पढते तो खेत अर्थ न निकलता, सत्ता वर्तमान अर्थमे भवनका गोदाम कुठिला, गृह, कुसूलादि सामान्य आधार अर्थ होता । यदि भवने न पढते तब क्षेत्र शब्दसे काशी, प्रयाग आदि पूर्ण प्रदेश लिये जाते । दोनोके होनेसे धान्योत्पत्ति स्थान अर्थ निश्चित । मूगकी उत्पत्तिके खेतका नाम् **मौद्गीन** मुद्गसे उपजाऊ खेत अर्थमेख–ईन आदि० । चणकाना भवनं क्षेत्र **चाणकीन** गोधूमाना **गौधूमीन** क्षेत्र, मुद्गाना भवन–गृहभूतोऽस्य कुसूल । धान्य क्यो पढा ? तृणाना भवन क्षेत्र, केवल घास–उत्पत्ति क्षेत्र । यहा खञ् न हो । (१८०३) **व्रीहि**, शाली शब्दके षष्ठी अन्तसे भवने क्षेत्रे (उपजाऊखेत) अर्थमे ठक् । व्रीहिभवने क्षेत्रे । धान बहुल उपजका खेत अर्थमे व्रीहिशब्दात् ठक अनुब धलोपे । आयनेयीनीयिय से ढ को ऐय, आदिवृद्धि, तद्धितान्तत्वात्प्राति पदिकसज्ञाया स्वादिकार्ये व्रैहेयम् । शालीना भवन क्षेत्र सावा, कोदोकी उपज का खेत अर्थे ढ–ऐय आदि **शालेय** क्षेत्रम् ।

(१८०४) **यव** यवक षष्टिक शब्दके षष्ठी अन्तसे भवने क्षेत्रे अर्थमे यत् हो खञ बाधकर । धान्यानाके आनेसे षष्ठी ही समर्थ विभक्ति है । यवके **उपजाऊखेत** अर्थे यत्, अलोप आदि । **यव्य** जौका खेत । यवकाना भवन, षष्टिकाना भवन क्षेत्र, साठी उपजका खेत । यत् आदि ।

(१८०५) **विभाषा** तिल, माष, उमा, भङ्गा अणुसे धान्य । (भूखेकी प्रसन्नता) वाचक, षष्ठी अन्तसे विकल्पसे यत् हो, खञ भी । तिलाना भवन क्षेत्र, तिलका उपजाऊ खेत **तिल्य** यत् हुआ । जब खञ्–ईन आदि० तब **तैलीनम्** । माषाणा उरदका उपजाऊखेत अर्थे यत माष्य, ख–ईन ण **माषीणम्** । उमाभङ्गौ धान्यविशेषौ भाष्यके प्रमाणसे धान्य मान्य । **उमा स्यादतसी क्षुमा** इत्यमर । तीसी अर्थमे उमाना भवन क्षेत्र तीसीका उपजाऊ खेत यत् **उम्यम्**, खञ्–ईन **औमीन**, **भङ्गा**ना भाँग या चायकी पत्तीका उपजाऊखेत यत् हुआ ख–ईन भी उक्त रूप । वेदमे **व्रीहींश्च मेशालयश्चमे मासाश्चमे कल्पयन्ताम्** । अणु

प्राणवीनम् । (१८०६) **सर्वचर्मणा कृत खखञौ ५।२।५।।** असामर्थ्येऽपि निपातनात्समास । सर्वचर्मणा कृत सर्वचर्मीण सार्वचर्मीण । (१८०७) **यथामुखसम्मुखस्य दर्शन. खः ५।२।६।।** मुखस्य सदृश यथामुख प्रतिबिम्ब, निपातनात्सादृश्येऽव्ययीभाव । सम सर्व मुख सम्मुख । समशब्द यान्तलोपो निपात्यते । यथामुख दर्शनो यथामुखीन । सर्वस्य मुखस्य दर्शन स मुखीन । (१८०८) **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्र व्याप्नोति ५।२।७।।** सर्वादे

(खाद्य वस्तु) यत् ओर्गुण । वान्तोयि अव् । प्रणव्यम् । पक्षे ख–ईन ।

(१८०६) **सर्वचर्मन्** शब्दके तृतीया–अन्तसे सर्व कृत अर्थमे ख हो खञ् भी । तृतीया ही समर्थ विभक्ति है । सवका कृतसे सम्बन्ध, चर्मसे नही, सामर्थ्य नही, समास कैसे ? तब कहा **असामर्थ्ये**=शक्ति न होनेपर भी निपातनात् सूत्रमे पढे जानेसे समासकी कल्पना । सम्पूर्ण चमडेसे बनाया हुआ है अर्थमे ख–ईन णत्व । नस्तद्धिते टिलोप **सर्वचर्मीणः** । जब खञ् तब आदिवृद्धि । यदि सर्वेण चर्मणा कृत कहेगे तब ख, खञ् नही होगे–व्याख्यानसे ।

(१८०७) **यथामुख** और सम्मुख शब्दोके षष्ठी अन्तसे दर्शन अर्थमे ख हो । दृश्यते रूपमस्मिन्निति दर्शन अर्शादि अच् । आधारे अर्थे ल्युट् दीखनेका विषय अर्थ । मुखस्य सदृश यथामुखम्–प्रतिबिम्ब मुखकी छाया मुखमदृशम् । यहा अव्ययीभावसमास कैसे ? असादृश्ये यथाशब्द समस्यते । समानता सादृश्य अर्थ न रहे तभी समास होता है । तब कहा निपातनात्=सूत्रमे स्वीकार करने की शक्तिमे सादृश्य अर्थमे समास माना गया । आभिमुख्य (आमने–सामने) अर्थमे सम्मुखशब्दके सम उपसर्ग नही (किन्तु सम सर्वपर्याय) सबके समक्ष मुख सम्मुख । सम च तन्मुख सम्मुख, कर्मधारय । समशब्दके अन्त्य अ का लोप निपात्यते । सूत्रसे स्वीकार किया गया । यथामुख मुखके समान छाया का दर्शन । यथामुखेन सीताया पुप्लुवे बहुतोषयन् । ख–ईन आदि सम्मुखो भव,मे अभिमुख अर्थ भी है । यदि ऐसा (सयुगे **सम्मुखीन तमुद्गतप्रसहेत्क**) हरदत्तके मतमे सामर्थ्याद्भविष्यति । अत सभी के मुखके दर्शनका विषय जो हो वह **सम्मुखीन** ।

(१८०८) **तत्सर्व**=पथिन्, अङ्ग कर्मन्, पत्र, पात्र इनके आदिमे सर्वशब्द हो, ऐसे प्रातिपदिकके द्वितीयान्तसे व्याप्नोति अर्थमे ख हो । द्वितीया समर्थका सूचक । तत्पञ्चमी अर्थे द्वितीया तदन्तविधि । सर्व आदिमे हो पथ्यादि अन्त मे तब द्वितीयान्तसे ख । सर्वपथान् सभी रास्तेको घेर लिया **सार्वपथीन** जन

षष्ठ्याद्यन्ताद्द्वितीयान्ताश्च स्यात। सर्वपथान्व्याप्नोति सर्वपथीनः। सर्वाङ्गीणः सर्वकर्मीणः। सर्वपत्त्रीणः। सर्वपात्रीणः। (१८०९) **आप्रपदं प्राप्नोति ५।२।८॥** पादस्याग्रं प्रपदं, तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदम्, आप्रपदीनः पटः। (१८१०) **अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ५।२।९॥** अनुरायामे सादृश्ये वा। अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत। सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः। अयानयः स्थलविशेषः। तं नेयः अयानयीनः शारः। (११)**परोवर-**

सेना वा रक्षक। सर्वपथिन्से ख—ईन टिलोप। सर्वे पन्था सर्वपथ ऋक्पूरब्धू समासान्त अच। सर्वाङ्गान् व्याप्नोति पूरे अङ्गमे फैला विष लेपन **सर्वाङ्गीण**। सर्वाङ्गसे ख—ईन णत्व आदि। सर्वाणि कर्माणि व्याप्नोति हरफनमौला प्रत्येक कार्यमे कुशल **सार्वकर्मीण**। सर्वाणि पात्राणि व्याप्नोति सभी पत्तोमे छेद किये, सर्वपात्रीण' कीट, सर्वाणि पत्राणि व्याप्नोति प्रत्येक बर्तनमे लगा हुआ घी। (१८०९) **आप्रपदम्** इस अव्ययीभावके द्वितीयान्तसे व्याप्नोति अर्थमे ख हो, पदके अग्रभाग-ऊगलीतक जो फैला रहे वह आप्रपद, लुङ्गी मर्यादा सीमा, अङ्मर्यादाभिविध्यो से अव्ययीभाव। पदस्याग्र पदाग्र व्याप्नोति ख—ईन **आप्रपदीन** धोती साडी पैरकी ऊगली तक लहराते है पट।

(१८१०) **अनुपद सर्वान्न, अयानय** इनके समाहारद्वन्द्वसे द्वितीया। बद्धा भक्षयति, नेय (इनके द्वन्द्वसे सप्तमी) अर्थमे ख हो। आर्ष प्रमाणसे तिङन्तका द्वन्द्वमे प्रवेश। गणना क्रम आवश्यक। अनुका आयाम—विस्तार सादृश्य समानता अर्थ अव्ययीभाव समास (यस्य चायाम यथार्थे अव्यय) पादस्य अनु पैरके विस्तार या समान उपानद जूता। बद्धा=बधी हुई। पद सम्बन्धि दैर्घ्येऽपि-लक्षिता, पदसदृशी। पद परिमाणा अनुपदसे ख—ईन टाप् अनुपदीना पैरके नाप वाली पनही। सर्वान्नीन भिक्षु सब प्रकारका अन्न खाता है। सर्वशब्द (प्रकार) सम्पूर्ण अर्थमे। उष्णानि शीतलानि सरसानि नीरसानि यानि अन्नानि लभ्यन्ते तानि सर्वाणि भक्षयति (ताजा बासी शुष्क सरस सब प्रकार का अन्न भोक्ता) अर्थमे सर्वान्न शब्दात् ख—ईन आदि। अयानय—शतरजमे स्थल स्थलका नाम या (द्यूते साराणा—दक्षिण परिवर्तन अय, जूए सार पाशा आदिका दाहिने घुमाना अय, बाये अनय है। अय सहित अनय अयानय। ऐसे स्थान पर सारको रख देकि दूसरेका आक्रमण असम्भव हो वह स्थान, लक्षणासे। द्यूतशास्त्रमे सहायस्य सारस्य परैर्नाक्रिम्यते पदम्। असहास्तु शारिण परकीयेण बाध्यते। तमानेय उस स्थानपर प्रापणीय पहुचाना। प्रधाने कर्मणि

परम्परपुत्रपौत्रमनुभवति ५।२।१०।। पराश्चावराश्चानुभवतीति परोवरीण। अवरस्योत्त्व निपात्यते। पराश्च परतराश्चानुभवति परम्परीण। प्रकृते परम्परभावो निपात्यते। पुत्रपौत्रान् अनुभवति पुत्रपौत्रीण.। परम्पराशब्दस्तु अव्युत्पन्न शब्दान्तर स्त्रीलिङ्गम। तस्मादेव स्वार्थे ष्यञि पारम्पर्यम्। कथ परोवर्यवदिति। असाधुरेव। खप्रत्ययसन्नियोगेनैव परोवरेति निपातनात्।

(१२) **अवारपारात्यन्तानुकाम गामी** ५।२।११।। अवारपार गामी अवारपारीण अवारीण, पारीण, पारावारीण। अत्यन्त गामी अत्यन्तीन।

यत्। अप्रधाने द्वितीया। (११) **परोवर** परम्पर पुत्रपौत्र इनके द्वितीयान्तसे अनुभवति अर्थ ख हो। पराश्चावराश्च बडोका छोटो (राजा रङ्क) का अनुभवी **परोवरीण**। अथवा परे च अवरे च परावरे तान् अनुभवति अर्थ ख–ईन आदि अवरको उत्व निपातनसे। गुणे। ख प्रत्ययके योगमे आदि अकारको उत्व। परान्–अगली पीढी, परतरान् उसके बादकी पीढीया जो अनुभव करे समझे। वह **परम्परीण**। परम्परा वेत्ता व्यक्ति। ख होनेपर प्रकृति (पर परतर) को परम्पर आदेश, सूत्रमे स्वीकृतिसे। पुत्र और पौत्रका अनुभव करनेवाला पुत्र पौत्रीण। पुत्राश्च पौत्रांश्च सुख जानाति। यदि ऐसा तब कल्याणपरम्परा कैसे क्योकि परम्परभाव, खप्रत्यय परे होता है, तब कहा वह **अव्युत्पन्न**=जिसमेभेद विभाग न हो ऐसा कोई अन्यशब्द हैं। उससे ख नही होना, किन्तु स्वार्थमे ष्यञ् आदि। **पारम्पर्य**, यदि एसा तब परोवर्यवत् कैसे बनेगा ? बोले—वह असाधु ही है, क्योकि खप्रत्ययके सम्बन्धमे **परोवर** स्वीकार है, मतुप् परे नही अतएव भाष्ये पराश्चावराश्च अनुभवति यही विग्रह दिया।

(१२) **अवार** पार अत्यन्त अनुकाम इनसे गामी अर्थमे ख हो। भविष्यति गम्यादय–भविष्यति अर्थमे गमसे णिनि। णित्। अवश्य गमिष्यन् आवश्यकाधमर्ण्ययो णिनि। बहुलमाभीक्ष्ण्ये। अवारपार इस पारसे उस पार अवश्य गामी–जाने वाला अर्थ ख–ईन णत्व **अवारपारीण** अवारपारके विगृहीत अलग अलग, विपरीत उलटकर भी ख आदि। अवारगामी **अवारीण**, पारङ्गामी **पारीण** अवश्यपार गन्ता। पारावारङ्गामी उस पारसे इस पार अवश्य आने वाला है। आयनेयी० सूत्रसे खको ईन। णत्व आदि। **अत्यन्तम्** अनेकबार या तेज चलने अर्थमे ख–ईन आदि **अत्यन्तीन** भृश गन्ता। काम इच्छा तस्य सादृशमनुकामम् या तामनतिक्रम्य इच्छाके समान या इच्छाका उल्लघन न करके। अनुकाम यथेच्छ स्वैर गामी मनमानी चलने वाला। अनुकामसे ख–

भृश गन्तेत्यर्थ । अनुकाम गामी अनुकामीन. । यथेष्ट गन्ता । (१३) **समा समा विजायते ५।२।१२।।** यलोपोऽवशिष्टविभक्तेरलुक्च पूर्वपदे निपात्यते । समांसमीना गौ । 'समासमीना सा यैव प्रतिवर्षंप्रसूयते' इत्यमर +'खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्य' * । समां समा विजायते । समाया समाया वा । (१४) **अद्यश्वीनावष्टब्धे ५।२।१३।।** अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वडवा । आसन्नप्रसवेत्यर्थ । केचित्तु विजायत इति नानुवर्तयन्ति । अद्यश्वीन मरणन् । आसन्नमित्यर्थ । (१८१५) **आगवीन. ५।२।१४।।** आङ्पूर्वाद् गौ कर्मकरे खप्रत्ययो निपात्यते । गो प्रत्यर्पणपर्यन्त य कर्म करोति स आगवीन,

---

ईन । (१३)**समा**=प्रतिवर्ष विजायते प्रसव बच्चा पैदा करने अर्थमे ख हो । वि पूर्वक जन धातुका गर्भविमोचन प्रसव अर्थ है । विजायते=गर्भविमोचति गर्भ शब्द धातुके अर्थमे विलीन है अत अकर्मक । कर्म न होनेसे कर्मणि द्वितीया न, किन्तु सप्तमी, समाया (नित्यपीप्सयो) द्वित्वे यलोपो=यकारका लोप । शेष विभक्तिका अलुक् । निपातनसे पूर्वपदमे विभक्तिके अवयव य का लोप । अवशिष्ट विभक्तिका अलुक् । समाया समाया विजायते प्रति वर्ष प्रसववाली । यदि इस विग्रहमे ख होगा,तब तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिकसज्ञा दोनोकी सप्तमी का लुक् होगा । समासमीन बनेगा । तब कहा यलोप आदि । पूर्वपदमे विभक्तिका लुक् नहीं होता । भाष्यमे यलोप निपातनादवशिष्ट विभक्त्यशस्य न लुक कहा गया ख–ईन टाप् । **समांसमीना**–वार्षिकप्रसवा गाय प्रतिवर्ष प्रसूयते बच्चा दे।(वा) खप्रत्ययकी उत्पत्ति दोनो पदमेभी न हुई हो विभाषाके कारण । तब यकारका लोप विकल्पसे कहे । अत दोनो रूप बनेगा । समाया, समाया विजायते, जब यकारका लोप होगा तब समा–समा बनेगा ।

(१८१४) **अद्य श्वो वा** विजायते (आज या कल व्यायेगी) अर्थमे अद्यश्वस् समुदायसे ख हो । **अवष्टब्धे**=आसन्न अर्थमे, गोसमूह **अद्यश्वीन** गोमण्डलम् । अद्यश्वीना बडवा घोडी आज या कल ब्यायेगी । तीनों लिङ्गमे इष्ट ख–ईन टाप् । प्रसवकाल समीप है । किसीके मतमे विजायते गर्भविमोचन अर्थमे नही, अत' अद्यश्वो–आज या कल मृत्यु आसन्न है आज या कल गायका गोशाला बनेगा । आदिभी सिद्ध होते है ।

(१८१५) **आगवीन'** आङ् पूर्वक गोशब्दसे कर्मकरे । भृति–पारिश्रमिक वेतन गृहीत्वा यह कर्म करो । स गोपाल प्रातर्गां गृहीत्वा जङ्गल गच्छति गा चारयित्वा साय स्वामिनो गृह प्रत्यर्पयति अर्थमे खप्रत्यय निपातनसे (गायको

(१६) **अनुग्वलगामी** ५।२।१५।। अनुगु-गो पश्चात्पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपाल । (१७) **अध्वनो यत्खौ** ५।२।१६।। अध्वानमलं गच्छति अध्वन्य –अध्वनीन । 'ये चाभावकर्मणो ' 'आत्माध्वानौ खे' ४ इति सूत्राभ्या प्रकृतिभाव । (१८) **अभ्यमित्राच्छ च** ५।२।१७।। चाद्यत्खौ । अभ्यमित्रीय —अभ्यमित्र्य –अभ्यमित्रीण । अमित्राभिमुख सुष्टु गच्छतीत्यर्थं । (१९) **गोष्ठात्खञ्भूतपूर्वे** ५।२।१८।। गोष्ठो भूतपूर्व गौष्ठीनो देश । (१८२०) **अश्वस्यैकाहगम** ५।२।१९।। एकाहेन गम्यते इत्येकाहगम आ-

---

चराकर शाम तक लौटा दे) इस अथमे आगुशब्दसे ख–ईन अवादेश आदि। गो शब्दो लक्षणया गोप्रतिदाने वर्तते। आङ्मर्यादा अभिविधि अर्थे वर्तते। गोस्त्रियो इति ह्रस्वे। (१६) **अनुगु** शब्दसे अलगामी (पूरा चलनेवाला अर्थमे ख। गो पश्चात् गायके पीछे अर्थमे अव्ययीभाव समास ह्रस्व। अनुगुसे अलङ्गामी अर्थे ख–ईन। क्रियामे विशेषण होनेसे द्वितीया समर्थविभक्ति। पर्याप्त गमन करता है गोपाल जितनीतेज गायचले उतना चलता है। गोपाल गापालयति। अनुगु–ईन ओर्गुणे अवादेशे। अनुगवीन ।

(१७) **अध्वनसे** अलङ्गामी–पर्याप्त गमन=चलने अर्थमे यत् हो ख भी। अध्वान रास्तेमे खूब चलता हैं। अर्थमे यत् अध्वन्य । जब ख–ईन आदेश तब **अध्वनीन** । तद्धित परे टि (अन) लोप नही होता। दो सूत्र प्रकृतिभाव करते है। यत्परे ये चाभावकर्मणो और ख परे–आत्माध्वानौ। (१८) **अभ्यमित्रसे** छ हो, च पढनेसे यत् और ख भी हो। मिते दुखात्त्रायते मित्रं, न मित्रममित्र शत्रु तमभिमुखो भूत्वा अर्थमे लक्षणेन=अभिके साथ अव्ययीभावसमास। अभ्यमित्रसे अलङ्गामी अथमे छ–ईय आदि **अभ्यमित्रीय** शत्रुके सामने तेज दौडनेवाला। यतका और ख–ईनका उदाहरण मान्य। अमित्राभिमुख=शत्रुके समक्ष तावसे जाता है। (१९) **गोष्ठसे** भूतपूर्व अर्थमे ख हो। गाव तिष्ठन्ति अस्मिन् गोष्ठ घञर्थे क। अम्बाम्बगोभूमिसे ष। पूर्वभूतो भूतपूर्व। गोष्ठसे ख–ईन आदिवृद्धि। यह वह देश है जहा पहले गोशाला थी **गौष्ठीन** ।

(१८२०) **अश्व** शब्दके षष्ठी अन्तसे एक गम अर्थमे खञ् हो। एक ही दिनमे पहुचा जानेवाला ग्राम सूत्रमे स्वीकारसे कर्ममे गमसे अप् कर्तृकरणे कृता–समास। कर्तामे षष्ठी अश्वस्य एकाहगम घोडेसे एक दिनमे पहुचा जाने वाला मार्ग **अर्थे** अश्वसे ख–ईन आदिवृद्धि **आश्वीन** अश्वेन कर्त्रा एकाहेन गन्तु शक्य मार्ग । (२१) **शालीन** कौपीनसे क्रमश अधृष्ट ढीठ जिद्दी अकार्यं

श्वीनोऽध्वा । (२१) **शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः** ५।२।२०।। शाला-प्रवेशमर्हति शालीनोऽधृष्ट । कुपपतनमर्हति कौपीन पात्र म् । तत्साधनत्वात्त द्दगोप्यत्वात वा पुरुषलिङ्गमपि, तत्सम्बन्धात्तदाच्छादनमपि । (२२) **व्रातेन जीवति** ५।२।२१।। व्रातेन शरीरायासेन जीवति न तु बुद्धिवैभवेन स व्रातीन । (२३) **साप्तपदीन सख्यम्** ५।२।२२।। सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम् । (२४) **हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम्** ५।२।२३।। ह्योगोदोहस्य हियङ्गरादेशो विकारार्थे खञ च निपात्यते । दुह्यत इति दोह क्षीरम् । ह्योगोदोह-

अथमे खञ हो, जबरन घरमे घुसनेवाला,शाला प्रवेशसे ख–ईन आदि **शालीन** शिष्ट, प्रवेशकालोप । कूप पतन कूयेमे गिरानेवाला कार्य अर्थे ख–ईन पतनका लोप । आदिवृद्धि **कौपीन** पाप है जो नही करना चाहिए । तत्साधनत्वात् वह कूप छिद्र नरकमे गिरानेका साधन होनेसे पापकीतरह गोपनीय–छिपानेयोग्य नरक पतन साधन अकार्य पापकी तरह होनेसे पुरुष चिह्नभी **कौपीन** जो पाप का साधन पापकी तरह छिपाने योग्य है । लक्षणासे नगोटा भी कौपीन है । पुरुष चिह्नसे सम्बन्धित ढकनेवाला वस्त्र खण्ड लक्षित लक्षणा कौपीन, केचित् अकाय शब्दे य करोति स क्रिया सामान्यवचन तेन लज्जा हेतुना अदर्शनीय त्वात पुरुष लिङ्गमपि कौपीनम् । अस्पृश्यत्वात् आच्छादनमपि ।२२ व्रातशब्दके तृतीयान्त समर्थसे जीवति अथमे खञ् हो । जिन लोगोको जीवन निर्वाहक धन प्राप्त नही, बोझा ढोकर, गाडी खीचकर कष्टसे जीवन चलाते हैं । उनका सघ समुदायका नाम व्रात । जीवनार्थं कष्ट **कर्म करोति तदिह व्रातम्** । अत व्रातेन का अर्थ शरीरायासेन कठिन श्रमसे जीता है अर्थमे ख–ईन आदि **व्रातीनः** कठोर परिश्रमी । (२३) **सप्तपद** से प्राप्त मित्रता, सह भाव सख्यम् अर्थमे खञ् । सातपग साथमे चलनेसे जीवन भरकी मित्रता । अत विवाहमे सप्तपदी होती है । सप्तभि' पदै सात कदम चलनेसे (अवाप्यते) प्राप्त हो अर्थमे खञ् । सम्भाषण या पाद विक्षेप पदका अर्थ । सप्तपदसे ख–ईन आदि **साप्तपदीन** । समथविभक्ति तृतीया है । सम्भाषण या पाद विक्षेप, पदका अर्थ ।

(२४) **हैयङ्गवीन**=नवनीत मक्खन अर्थ हो सज्ञामे । ह्यस्=(बीता दिन) अव्यय है पूर्वेद्यु =बीता दिन अथमे उत्पन्न, गोदोह=गायसे दुहा दूध गोपय ह्यो गोदोह (गोर्दोह) षष्ठीसमास उसके साथ ह्यस्का सुप्सुपा समास उसके षष्ठी अन्तसे विकार अर्थमे खञ्–ईन हो प्रकृति(ह्योगोदोह)के स्थानमे हियङ्गु आदेश हो, ओर्गुणे अव् । आदिवृद्धौ **हैयङ्गवीनम्** । गायके दूधसे उत्पन्न मक्खनका नाम

स्य विकारो हैयङ्गवीन नवीनतम् । (१८२५) **तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्य कुणब्जाहचौ** ५।२।२४।। पीलूना पाक पीलुकुण । कर्णस्य मूल कर्णजाहम् । (२६) **पक्षात्ति** ५।२।२५।। मूलग्रहणमात्रमनुवर्तते। पक्ष मूल पक्षति । (२७) **तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ** ५।२।२६।। यकार प्रत्यय योरादौ लुप्तनिर्दिष्ट, तेन चस्य नेत्सज्ञा । विद्यया वित्तो विद्याचुञ्च । विद्याचण । (२८) **विनञ्भ्या नानाञौ नसह** ५।२।२७।। असहार्थे पृथग्भावे

अनुदात्त वाले अञ्को बाधकर खञ । दुह्यते जो दुहा जाय क्षीर भाष्यमे घृतम अर्थ । **तत्तुहैयङ्गवीन स्यात ह्योगोदोहोद्भव घृतमित्यमर** । कल गायके दूधसे उत्पन्न घीका नाम । हरदत्त आदिके अनुरोधमे घृत स्थाने नवनीत इष्ट हैं ।

(१८२५) **तस्य पाक** परिणाम मूल उपक्रम (पाककी प्रारम्भिक क्रिया) षष्ठी अन्त हो उससे पीलु कर्कन्धु, शमी, करीर कुवल, बदर अश्वत्थ, खदिर आदिसे पाक=पका हुआ अर्थमे कुणप् हो और कर्ण अक्षि, नख मुख, केश, पाद, गुल्फ, भ्रू, शृङ्ग, दन्त, ओष्ठ, पृष्ट इन शब्दोसे मूल प्रथम 'जाहच्' प्रत्यय हो । तद्धित है क की इत्सज्ञा नही (अतद्धिते=लशकुके इत्सज्ञा विधान से) ज इतका प्रयोजन नही है । पीलूना वृक्षः या फलका परिणाम=पकाहोना अर्थमे कुणप् । पीलुकुण । पक रहा फल । कानके मूल (जड) मे स्फोट लक्षण फोडा अर्थमे जाहच् कर्णजाहम (कानकी जडमे लक्षण) अक्षिण मूल अक्षिजाहम मुखस्य मूल मुखजाहम, केशजाह, दन्तस्य मूल दन्तजाह, पृष्ठस्य मूल पृष्ठ जाहम् । कर्कन्धुकुणः पक रहा बेर। शमीकुण, करीरकुण ।

(२६) **पक्षसे** मूल जड अर्थमे ति प्रत्यय हो । इसमे मूलमात्र आया । पाक मूलमे समास है । उसके एकदेशमे स्वरित प्रतिज्ञाके बलसे मूल आया । तस्य भी । षष्ठयन्त पक्षसे मूल अर्थमे तिप्रत्यय **पक्षति** । पखकी जड या प्रतिपदा । पक्षिणा पक्षमूल च, शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षकी मूल जड प्रतिपद है ।

(२७) **तेन**=तृतीयान्तसे वित्त=प्रसिद्ध, प्रतीत अर्थमे चुञ्चप् और चणप प्रत्यय हो । दोनो पत्ययके आदिमे चकारलोप हुआ । रूपमे निर्दिष्ट उच्चारित है । इस कारण चकी इत्सज्ञा नही होती । उपदेशमे आदि य है जो लुप्त है, च नही । वित्तो भोग' प्रत्ययो–निपाननसे तको न नही होता । लुप्त निर्दिष्ट जो लोप हुए रूपमे उच्चारित है । विद्यया=तृतीयान्त विद्यासे वित्त प्रसिद्ध अर्थमे प्रत्यय **विद्याचुञ्चु** ज्ञानसे प्रसिद्ध । जब चणप् तब विद्याचण नामी विद्वान् । (२८) **वि** और नञ्से न सह (असहाय अर्थमे) वर्तमान रहनेपर या

वर्तमानाभ्या स्वार्थे प्रत्ययौ । विना, नाना । (२९) वे शालच्छङ्कटचौ ५।२।२८।। क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात्स्वार्थे । विस्तृत–शिलालन् । विश ङ्कटम् ।(१८३०) **सम्प्रोदश्च कटच् ५।२।२९।।** सकटम् । प्रकट । उत्क- टम् । चात् विकटम *। 'अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसख्यानम्' । अला- बूना रज अलाबूकटम् । * 'गोष्ठजादय स्थानादिषु पशुनामभ्य' । गवा स्थान गोगोष्ठम् । * 'सघाते कटच्' । अवीना सघात अविकट ।* 'विस्तारे

अलग भाव हो तब स्वार्थमे ना और नाञ् प्रत्यय हो, विसे (असहाय या अन- गाव अर्थमे) ना प्रत्यय । विना । पृथक अर्थ । नसे ना प्रत्यय नाञ् प्रत्यय । न ना । आदिवृद्धि नाना का भी पृथक् अर्थ । दो नञ् प्रकृति अर्थपोषक । न सह का साथ नही अर्थ । (२९) वेः=विशब्दसे (क्रिया सहित कारक अर्थ खुलता हो) स्वार्थमे शालच् शङ्कटच् प्रत्यय हो । क्रिया सहित कर्ता कर्म आदि खुले । विस्तृत विस्तार क्रियासे पूर्ण भवन, स्थान जङ्गल आदि कारक अर्थमे विसे शालजादि विशाल–बहुत विस्तार **विशङ्कटम्** भयकी क्रिया कारककी प्रतीति ।

(१८३०) **सम्प्र उदसे** क्रियासहित कारक वाचक शब्दसे स्वार्थमे कटच् हो च पाठसे विसे भी । **सङ्कट** सहत, निबिडीकृत=सघन होनेकी क्रिया सहित कारक अर्थमे कटच् । सकटम् । अत्यन्त परेशानी, भयकर भीडअर्थमे प्रसे कटच् प्रकट, प्रज्ञात, प्रकाश होना, समझमे आना । उत्कटम । उन्नत अधिक उद्भूत क्रिया अथमे उत्से कटच् । चसे विकट विषम क्रियाविशिष्ट अथ, विकृति । ये रूढ़शब्द है । व्युत्पादन किसी प्रकार (वा) अलाबू तिल उमा, भङ्ग इनके षष्ठी अन्तसे रज, चूर्ण पाउडर अर्थ होता हो तब कटच् कहे । विकार प्रत्यय बाधकर । चूर्ण रेणु रज अलाबू=लौकीका चूर्ण अर्थमे कटच् ओरञ् अथवा मयट् प्राप्त था । तिलाना चूर्ण **तिलकटम्** तिल्लीका चूरा । उमाना तीसीका पाउडर **उमाकट**, रज अर्थमे प्रत्यय प्रधान तद्धितार्थ (वा०) **गोष्ठजादय** = पशुनामवाले शब्दसे अनेक स्थान, गोशाला आदि अर्थमे गोष्ठच् आदि प्रत्यय बोलें । उनके अर्थ स्थान आदि । सघाते कटच्से छः वार्तिक तक कहे जायेंगे पशुनामसे हो (उद्देश्य) विधेय होगे गायोके स्थान गोशाला अर्थमे गोसे गोष्ठच् आदि । अश्वाना स्थानम् **अश्वगोष्ठम्** घुडशाला अर्थमे प्रत्यय । हस्ति गोष्ठ, शूकरगोष्ठ सूअरबाडा (वा०) **सघात** अथमे कटच् प्रत्यय पशुनामसे । अप्रसृतावयव न फैला हुआ समूह समुदाय विस्तार है । अवीना भेडोका एकजुट समुदाय **अविकटः** अविसे कटच् भेड झुण्ड । हस्तिकट उष्ट्रकट, श्वकट ।

पटच्'। अविपट ।* 'द्वित्वे गोयुगच्'। द्वौ वृषौ वृषगोयुगम् *। 'षट्त्वे षड्गवच्'। अश्वषड्गवम्। स्नेहे तैलच्'।* तिलतैलम्। सर्षपतैलम्।* 'भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ'। इक्षुशाकटम्। इक्षुशाकिनम्। (३१) **अवात्कुटारच्च ५।२।३०॥** चात्कटच्। अवाचीनोऽवकुटार। अवकट। (३२) **नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ५।२।३१॥** अवात् इत्येव। नत नमनम्। नासिकाया नतम् अवटीटम्। अवनाटम्। अवभ्रटम्। तद्योगान्नासिका अवटीटा। पुरुषोऽप्यवटीट। (३३) **नेर्बिडज्बिरीसचौ ५।२।**

(वा०) विस्तार अर्थमे पटच् प्रत्यय हो, पशुनामसे। अवीना विस्तार भेडोका फैलाव अर्थमे पटच् **अविपट** दूरतक विस्तार। हस्तिपट, उष्ट्रपट गोपट गोकट। (वा०) द्वित्वे प्रकृतिका अर्थगत द्वित्व=दो सख्या हो, तब युगच्। दो ऊटोका समुदाय प्रत्ययका अर्थ। उष्ट्रगोयुगम् ऊटकी दो सख्याका समुदाय, अत एकवचन, वृषगोयुग दो बैलका समूह। स्वभावसे एकवचन, मर्कटगोयुग, (वा०) षट्त्वे छसख्या अर्थमे षड्गवच् हो। अश्वाना षट्त्वम् अश्वषड्गवम्, उष्ट्रषड्गव, हस्ति-पशु-षड्गवम्। (वा०) स्नेहे चिकनाहट अर्थमे तैलच् हो। तिलाना स्नेह तिलतैल (तिल्लीका) तेल अर्थे तैलच्, सर्षपाणा स्नेह सरसोका तेल अर्थे तैलच्। सर्षपतैलम्। इङ्गुदीतैल, उमातैल (तीसीतेल) वा०) भवने क्षेत्रे भवन्तिऽस्मिन्भवनम उपजाऊ खेत अर्थे शाकट् शाकिन् प्रत्यय हो। इक्षुणा भवन क्षेत्र गन्नाउत्पत्तिका खेत अर्थे शाकट्। शकिन्से दूसरा रूप। यव शाकट, कलायशाकिनम्।(३१) **अवात्**=क्रियाविशिष्टकारक अर्थ वाचक अवसे स्वार्थमे कुटारच् और कटच् प्रत्यय हो, **अवाचीन** अधोमुख या प्रसिद्धि अर्थमे वर्तमान अवसे कुटारच्। पक्षमे कटच् भी नतानन अवकटम्।

(३२) नते=नमन अर्थमे नासिकाको 'अव' हो उससे टीटञ् नाटञ् भ्रटच् प्रत्यय हो, सञ्ज्ञाया=नाम होनेपर। अवसे ही हो। णमु प्रह्वत्वे। जिसका नमन अर्थ है। नाकका नत-झुका होना अर्थमे अवसे प्रत्यय अवटीट, जब नाटञ् तब अवनाट, भ्रटच् पर भी। अर्थ एक। झुकी नाक वाला। नाकका झुकना अवटीट है। **अवटीटा** नासिका कैसे? तब कहा तद्योगात्=नमनके योगमे नासिकाभी अवटीटा। उससे सम्बन्धित पुरुष भी **अवटीट** तीनो लिङ्ग।

(३३) **निशब्द** से नासिकाके नत अर्थे बिडच बिरीसच् प्रत्यय हो। नते नासिकाया, सञ्ज्ञाया अनुवतते। नासिकाया नत निबिड नाककानमन, चिपटी निबिरीस गोल फैली झुकी नाक। यदि ऐसा निबिडा केशा निबिड वस्त्र

३२॥ निबिडम । तिबिरीमम् । (३४) **इनच्पिटच्चिकचि च ५।२।३३॥** ने इत्येव । नासिकाया नतेऽभिधेये इनच्पिटचौ प्रत्ययौ प्रकृतेश्चिकचि इत्यादेशश्च । *'कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ'* । चिकिनम् । चिपिटम् । चिक्कम् । 'क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी' क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चिल्ल । पिल्ल, 'चुल् च' ।* चुल्ल । (१८३५) **उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ५।२।३४॥** संज्ञायां इत्यनुवर्तते । पर्वतस्यासन्न स्थलमुपत्यका । आरूढ स्थलमधित्यका । (३६) **कर्मणि घटोऽठच् ५।२।३५॥** घटत इति घट । पचाद्यच् ।

निविड॰ वृक्षा । घने केश, मोटा वस्त्र, सटे पेढ अर्थमे विडच् कैसे ? उपमानाद्भविष्यति । (३४) **इनच्** पिटच् (समाहारद्वन्द्व प्रथमा एकवचन) चिकच् भी हो, निसे ही । नासिकाके नमन अर्थमे । प्रकृति निको चिकच् आदेश हो इनच् परे चिकच् । पिटच् परे 'चि' हो (वा०) उक्त निसे कप्रत्यय हो, प्रकृति नि को चिक आदेश भी हो । ककारान्त आदेश है नासिकाया नत **चिकिन**, निसे इनच्, निको चिक आदेश आदि । पिटच् परे नि को चि आदेश, तब **चिपिट** कप्रत्यय परे चिक आदेश **चिक्क**, नाककी चिपटी होना अर्थ । (वा७) **क्लिन्नस्य** दुखती, पीडित उठी हुई आखवाला अर्थमे चिल् पिल् आदेश हो ल प्रत्यय भी । क्लिन्ने—खजमजाई दर्दकरती आखवाला । क्लिन्ने अस्य चक्षुषी लप्रत्यय । क्लिन्नको चिल् पिल् आदेश । लप्रत्यय चिल्ल पिल्ल गडती, दुखती आखवाला, क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चुल्ल । नेत्रामय प्रयुक्त जल निस्यन्दवती, पानी कीचड भरी आख । क्लिन्नचक्षुष्क ।

॥ ३५ ॥ **उप** अधि अव्ययके गणनाक्रमसे आसन्न आरूढ अर्थमे त्यकन्प्रत्यय हो । आसन्न का समीप, आरूढका उचाई अर्थ । नते नासिकाया से 'संज्ञायाम्' आया क्योकि किसके समीप, किसकी ऊँचाईकी आकाक्षा पर संज्ञा अधिकारसे पहाड के पासकी समतल भूमि **उपत्यका** । उपसे त्यकन् टाप् । लोकसे स्त्री० । प्रत्ययस्थात् से इत्व नही त्यकनश्चके निषेध से । आरूढ पहाडकी ऊँचाई पर समतल भूमि अर्थ मे अधिसे त्यकन् आदि । **अधित्यका** ॥ ३६ ॥ **सप्तमी** अन्त कर्मन्से घटचकर्म कुशल अर्थ अठच् हो । मठसे कलश अर्थका भ्रम हटाने के लिए कहा—**कर्मणि घटते** काम मे कुशल रहे, व्याप्रियते क्योकि घटते इति घट जो घटे कुशलता सिद्ध करे । पचादि अच् घट का व्यस्त-कुशल अर्थ । कर्मन्मे अठच् । न स्तद्धिते से टिलोप **कर्मठ** । अङ्ग से परे ठको इक होता है, अत्र तथा न । न ठस्येक ।

कर्मणि घटते कर्मठ पुरुष । (३७) तदस्य सञ्जात तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६।। तारका सञ्जाता अस्य तारकित नभ । आकृतिगणोऽयम् । **(३८) प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७।।** तदस्य इत्यनुवर्तते । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्न । ऊरुमात्रम् । 'प्रमाणे ल' शम । दिष्टि । वितस्तित ।* 'द्विगोर्नित्यम्' । द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमम् । 'प्रमाणपरिमा-

॥ ३७ ॥ **तदस्य** । प्रथमान्त तारक आदि गणसे इतच् हो अस्य तत् सञ्जातम्—इसको वह हो चुका हो । यथा तारका सञ्जाता तारागण हो चुके है झिलमिला रहे हैं । वह आकाश **तारकित** सञ्जातनक्षत्र, यह सूत्र आकृति गण है, अत पुष्पाणि सञ्जातानि अस्य **पुष्पित** बन, फलानि सञ्जातानि अस्य फलित, पुलकित, रोमाञ्चित, शरीर, फलितो वृक्ष इत्यादि अनेक रूप ॥ ३८ ॥ **प्रमाणे** (इस प्रमेय का इतना प्रमाण है) अर्थमे विद्यमान प्रथमान्तसे द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् प्रत्यय हो । प्रमाण (मात्रा) वाला प्रत्यय का अर्थ है । **प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम** । इस भाष्यसे यहभी सिद्ध है जितने परिच्छेदक मापक है सभी प्रमाण है । मात्रच् सब से । तदस्य आया । उरू जघाभर पानी प्रमाण है (इस नाला नदी का) अर्थमे उक्त प्रत्यय उरूद्वयस, जघनमात्र जलम । कटिदघ्न कमर तक पानी । प्रस्थ परिमाणमस्य पसेरीभात्रा का बीज प्रस्थमात्रम् । **उर्ध्वावस्थिनेन येन मीयते तदूर्ध्वमाण** जिस अर्थ मे द्वयसच् दघ्नच् ही होते है तिर्यक् मान मे नही होते । अत दण्डद्वयस क्षेत्र, रूप नही बनता (वा०) **प्रमाण** अर्थ (मापक मात्र) मे प्रत्ययका (ल) लुक् हो जो पूर्व आचार्यो से मान्य, प्रमाणे अर्थे प्रसिद्ध । उससे परे प्रत्यय का लुक् (द्वयसच् आदि का) यथा **शम** प्रमाणमस्य (अनूर्ध्व मान विशेष शम है) जैसे इन्च, फुट, गज इनके वाचकसे मात्रच् प्रत्ययका लुक् हो । अन्यका लुक् असम्भव । इन्च मात्र अर्थमे शमसे मात्रच् उसका लुक्, प्रमाणे ल वार्तिकसे । यहा **आयामस्तु प्रमाण स्यात्** विस्तारकी सीमा मात्रा प्रमाण है । दिष्टि (फुट) प्रमाणम् । अस्ति दिष्टिसे मात्रच् उसका लुक् । **वितष्टि** प्रमाणमस्य गज भर भूमि या पानी अर्थे उसका लुक् । पक्षमे न लुक् (वा०) **द्विगु**—सख्या पूर्वके साथ समास हुआ हो, तब द्वयसच् आदिका नित्य लुक् हो, द्वौ शमौ दोइन्चका है अर्थमे मात्रचादि । उसका लुक् । द्विशम, द्विदिष्टि, द्विवितस्ति । नित्य लुक् ।(वा०) प्रमाण और परिमाणसे सख्याके भी सन्देहमे मात्रच् प्रत्यय हो । यहा प्रमाण—आयाम

गाभ्या सख्यायाश्चापि सशये मात्रज्वक्तव्य' शममात्रम् । प्रस्थमात्रम् । पञ्चमात्रम् । 'वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम्' ।* तावदेव तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् । (३६) **पुरुषहस्तिभ्यामण्च ५।२।३८॥** पुरुष प्रमाणमस्य पौरुषम् पुरुषद्वयसम् । हास्तिनहस्तिद्वयसम् । (१८४०) **यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् ५।२।३९॥** यत्परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् । (४१) **किमिदम्भ्यां वो घः ५।२।४०॥** आभ्या वतुप् स्याद्वस्य च घ ।

विस्तार है । आयामस्तु प्रमाण स्यात । शम स्यान्न वा (एक इन्च हैकि नही) सशय अर्थमे मात्रच् शममात्रम । प्रस्थम् अस्ति न वा (पसेरी भर है कि नही) अर्थे मात्रच् । सख्याका सन्देह पञ्च अस्ति न वा(पाच है या नही) अर्थे मात्रच् पञ्चमात्र (वा०) **वतु अन्त** शब्दसे स्वार्थमे द्वयसच् मात्रच् हो, बहुलम्=इच्छा अनुसार । तत्परिमाणमस्य वतुप्रत्ययान्त वावत्से एव—स्वार्थमे द्वयसच् । तावद् द्वयस (उतनी मात्रा) मात्रच् हुआ । प्रत्यये भाषाया नित्यसे अनुनासिक **ताव-न्मात्र** । (३९) **पुरुष** और हस्तिसे प्रमाण अर्थमे द्वयसच् आदि हो, अण भी । पुरुष प्रमाण है इस जलका **पौरुष** जलम एक पोरिषा । द्विपुरुष दोपोरिषा अण् आदिवृद्धि । पक्षमे द्वयसच् हस्ती प्रमाणमस्य **हास्तिन** दोहाथी डुबाव जल अण् आदिवृद्धि । पक्षमे द्वयसच्—द्विपुरुषकम् उदकम् ।

(१८४०) **यत्** तत एतत् प्रथमान्त हो परिमाण अर्थमे हो तब इनसे(अस्य तत्परिमाणम्) इसका उतनी मात्रा अर्थमे वतुप् हो । यत्परिमाणमस्य जितनी मात्रा हो इसकी, **यावान्काल** जितना समय । यत्से वतुप । उप्—इत । वत् शेष । आ सर्वनाम्न आत्व यावत्सु 'उगिदचा' से नुम यावन्त्सु अत्वसन्तस्येति दीर्घ । सुलोपमयोगान्तलोपौ । **यावान्** । तत्परिमाणमस्य **तावान्** उतनी मात्रा, एतत्परिमाणमस्य इतनी मात्राका काल (कुछ घण्टे) वतुप्, आत्व, नु, दीर्घादि पूर्ववत् । सूत्रमे प्रमाणे आता ही, परिमाण पढना प्रमाण परिमाणमे भेदके लिये । अर्थ भेदभी, परिमाणन्तु सर्वत । आयामस्तु प्रमाण स्यात् । विस्तार अर्थमे विस्तारकी मात्रा प्रमाण है । परिमाण=सभी माप साधन है । यावान् अध्वा, यावन्ती रज्जू मे आयाम मात्र है । यावान्धान्यराशि । उपमानसे सिद्ध । (४१) **किम्** और इद शब्दसे अस्य परिमाणेऽर्थे वतुप् हो व को घ भी, प्रथमान्तसे । किं परिमाणमस्य कियान् (कितनी सख्या, मात्रा, वस्तु, जिज्ञासा विषयक) प्रश्नवाचक किं शब्दसे वतुप्=वत् व को घ, घ को इय । किं इयत्

कियान्। इयान्। ।४२। **किम सख्यापरिमाणे डति च ५।२।४१।।** चाद्व-तुप्। तस्य च वस्य घ स्यात्। का सख्या एषा ते कति कियन्त। क्षेपे तु न, का सख्या एषा दशानाम्। ।४३। **संख्याया अवयवे तयप ५।२।४२।।** पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतय दारु। ।४४। **द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा ५।२।४३।।**

इति दशायाम् इद किमो. किं स्थाने की आदेशे, की इयत्। यस्येति ईकारलोपे कियत्से सु। नुम दीर्घ सुलोप, नलोप, **कियान्** कितना है। इद परिमाणमस्य इयान् (इतनी मात्रावाला) इदसे वतुप् वत्। वको घ, घको इय, नु, दीर्घ आदि, इयान् अस्ति, इतना है। इद किमो से इश सर्वादेश, यस्येति इकारलोप लोगसे इयत्प्रत्यय मात्र शेष रहता है, पढाभी है।

उदितवति परस्मिन्प्रत्यये शास्त्रयोनौ, गतवति विलय च प्राकृतेऽपि प्रपञ्चे।
सपदि पद मुदित केवल प्रत्ययो यत् तदीयदिति निमेषेको हृदापण्डितोऽपि।

प्रक्रिया, व्याकरण उपनिषद्विधि भेदसे दो अर्थक श्लोक।

(४२) **किम** शब्दसे सख्याका परिमाण परिच्छेद (भेद) अर्थमे डति=अति हो, वतुप् भी। सख्याके विषयमे जो प्रश्न हो उसमे वर्तमान प्रथमासमर्थ किं से षष्ठी अर्थमे। डतिसख्या परिमाण क्यो पढा ? क्षेपे मा भूत्। आक्षेपकी स्थितिमे डतिप्रत्यय न हो। **का सख्या इय एषा दशाना** इन दशो सख्या (सिह के लिये) क्या है। **अव्रतानाम् अमनुष्याणा** जातिमात्रोपजीविनान्। सहस्रश समेताना **परिषत्व** न विद्यते। सख्येयके द्वारा सख्याकी कुत्सा निन्दा है। 'का अस्य सख्या' प्रश्न सम्भव। का सख्या एषा, किं **शब्दसे** डति=अति किं क कति कितनी सख्या (षट् सज्ञक) नित्य वहुवचनान्त षड्भ्य परस्य जश्शसोर्लुक्। का सख्या एषा कियन्त। किं शब्दात् वतुप्। वको घ, घको इय आदि कियान् कियन्तौ कियन्त। इद किमो से 'की' आदश।

(४३) **सख्याके** अवयव द्वि त्रि आदिके अवयवी समुदाय अर्थमे प्रथमान्तसे अस्य अवयविन अर्थमे तयप् हो। य प्रति अवयव सोऽवयवी प्रत्ययार्थ। पाच अवयव सख्या है इस अवयवी (पाचा) पाच अड्गुलवाला अथमे तयप्, नकार लोप **पञ्चतय**–पाच खूटीकी तकडी जो सख्याका समुदाय है। (४४) **द्वि त्रि** से परे तयप् स्थानमे अयच् विकल्प हो, द्वौ अवयवौ अस्यसमुदायस्य दोभाग मिल गये। द्विसे अवयव (मिलित) अर्थमे यतप्। उसको द्वित्रिभ्यासे अयच्। स्वादिकार्यें यस्येति ईलोप (दो का समुदाय) पक्षमे तयप् ही रहा। त्रयो अवयवा

द्वय, द्वितय। त्रयम्-त्रितयम्। ।१८४५। **उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४।।** उभशब्दात्तयप् आदेशोऽयच स्यात्, स चोदात्त । उभयम्।

इति तद्धिते पाञ्चमिका ।

अथमत्वर्थीयप्रकरणम् । ३८।।

(४६) **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्ड. ५।२।४५।।** एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्। * 'शतसहस्रयोरेवेष्यते'। नेह। एकादश अधिका अस्या विंशतौ। * 'प्रकृतिप्रत्ययार्थयो समानजातीयत्वमेवेष्यते' नेह। एकादश

यस्य तत्त्रय तीनसख्यकसमुदाय तयप् **त्रितय**, जब अयच् तब यस्येति इकार लोप। **त्रय**-त्रयो अवयवा तन्तुव यस्य त्रय-तीनलडीका सूत्र, यहा घट गया। परन्तु मुनित्रय कैसे ? अन्य पदार्थ अवयवी कहा है। अत एव समुदाय ही अवयवी होगा।

(१८४५) **उभशब्दमे** परे तयप्को अयच् हो वह उदात्तमान्य। आदिउदात्त अन्तउदात्त चित से होना अयच् प्रत्ययका उद्देश्य है। तयप् आदेश वार्तिकानुरोधेन। उभौ अवयवौ यस्य उभय समुदाय दोका मेल। उभमे तयप् उसको अयच् स्वादिकार्य उभयम्। इति पाञ्चमीका।

अथमत्वर्थीया —

मतुप् अर्थवाले प्रत्ययोका प्रकरण आरम्भ। भूम, निन्दा, प्रशसासु, नित्ययोगे अतिशायने। सम्बन्धे छ अर्थोमे मतुप्। प्रथम भूम (अधिक) अर्थका सूत्र।

(४६) **तदस्मिन्** अधिक वह सख्या इसमे अधिक है अर्थमे प्रथमान्त दशन् शब्द अन्त समाससे 'ड' प्रत्यय हो प्रत्ययविधिमे तदन्तविधिके निषेधसे अन्त ग्रहण किया। निर्देशसे पञ्चमी अर्थमे सप्तमी। एकादश माषा या रूपया पैसा अधिक है इससे। एकसे दूसरेकी अधिकता प्रत्ययका अर्थ। एकादशन्=दूसरे शब्दसे ड-अ। टिलोप स्वादि। **एकादश**। परन्तु (वा०) शत और सहस्रसे अधिक अर्थमे ही ड इष्ट है। **एकत्रिंश** शत एकचत्वारिंश सहस्रम्। अस्मिन्मे औपश्लेषिकाधिकरण सप्तमी है। नेह=इह न एकादश अधिक है। इस बीस सख्यामे। यहा ड नही हुआ अन्तग्रहण क्यो किया ? दश अधिका अस्मिन्शते यहा 'ड' न हो अन्त पढनेसे दशान्तसे ही ड होगा। (वा०) **प्रकृति** और प्रत्यय की एकजाति-मिलता जुलता अर्थ रहनेपर ही ड होना इष्ट है। एकादशमाषा

माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते (४७) शदन्तविंशतेश्च ५।२।४६।। ड स्यादुक्तेऽर्थे । त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंश शतम् । विंशम् । (४८) **सख्याया गुणस्य निमाने मयट् ५।२।४७।।** भागस्य मूल्ये वर्तमानात्प्रथमान्तात्सख्या वाचिन षष्ठचर्थे मयट् स्यात् । यवाना द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम् । गुणस्य इति किम् । द्वौ ब्रीहियवौ निमानमस्योदश्वित निमाने किं । द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुण क्षीर पच्यते तैलेन । (४९)

(इस सोनेके सैकडामे) अधिक है । मापा मुवणशतका समान जाति नही, न ड ।(४७) **शत्** अन्त हो और विंशतिसे तदस्मिन् अधिक (वह इसमे अधिक है) अर्थमे डप्रत्यय हो । त्रिशत सख्या अधिक है इस सैकडासे । अयम त्रिंशत्से ड डित्से टिलोप । त्रिंश अ स्वादि त्रिंशम, एव विंशमधिकशत बीमसख्या अधिक है इस सौ मे, विंशति अधिका अस्मात् विंशति , अधिका अर्थे विंशति शब्दात् ड । तिविंशते डितिमे टिलोप आदि **विंशम** विंशम् । अन्तग्रहणसे डिति । एक विंश । एकत्रिंश शतम् । (४८) **सख्याया** =सख्यासे गुण—भाग—अशके निमान-स्य=निमीयते क्रीयते अनेन खरीदा जाय जिस साधनसे वह साधन निमान । मूल्य रूपया—जिसे देकर सामान लिया जाय । निपूर्वक (मेड प्रणिदाने)धातुसे साधन अथमे ल्युट्, अर्थमे मयट् हो भागके मूल्यमे वर्तमान सख्यावाचीसे षष्ठी अर्थमे मयट् हो । यवाना जौके दो भाग, दो पसेरी मिलकर उदश्वित् प्रस्थ हुआ । तब यह वाक्य **द्विमयम्** । सख्या दो है । द्विसे मयट् १० कीलो जौ । गुण क्यो भाग अश क्यो कहा ? **द्वौ ब्रीहियवौ**=धान्य और यव इन दोनोकी (सख्यासे विशिष्ट) राशि है अस्य=इस उदश्वित् निमान=मूल्यका । इस विग्रह मे मयट न हो, इसलिए । क्योकि जितना उदश्वित् है उसमे भाग अश स्पष्ट नही, किन्तु ब्रीहि यव राशिका दुगुना (दोभाग) होना इष्ट नही, निमान =मूल्य (क्रय साधन) अथ क्यो कहा ? द्वौ गुणौ दुगुना दूधका, एकगुना तेलका **द्विगुण**=क्षीरसे तेल पकाता है अथवा द्विगुण क्षीर पच्यते तैलेन । एकत्व गुणस्य इति विवक्षित, तेनेह न भवति—यवाना द्वौभागौ निमानमेषामुदश्वितस्त्रयाणा भागाना भूयसश्च वचिकाया सख्याया प्रत्यय ईष्यते । तेनेह न—एको भागो निमानमस्य ।

(४९) तस्य षष्ठी अन्तका सूचक है । एकत्व इष्ट नही, एकसे एकका पूरक अश असम्भव, क्योकि पूर्यते अनेनपूरण करणमे ल्युट् । सख्याया आया, सख्येय=गणनाकी वस्तुका सख्यावाची षष्ठी अन्तशब्दसे प्रवृत्तिनिमित्त अवयव

तस्य पूरणे डट् ५।२।४८।। एकादशाना पूरण एकादश ।(१८५०)**नान्ता-दसख्यादेर्मट् ५।२।४९।।** डटो मडागम स्यात् । पञ्चानां पूरण पञ्चम । नान्तात्कि ! त्रिंशः । असख्यादे कि ? एकादश (५१) **षट्कतिकतिपय-चतुरा थुक् ५।२।५१।।** एषा थुगागम स्याड्डटि षण्णा पूरण षष्ठ । कतिथ । कतिपयशब्दस्यासख्या वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथ । चतुथ

सख्या का पूरक अथमे डट् हो । दो तीन चार आदिका अवयव सख्या होगी, एककी नही । यद्वा एकादशाना=ग्यारह सख्याकी पूरणी सख्या (जो अवयव पूरक) है जिसके कारण ग्यारहवी सख्या पूर्ण हो (वह अवयव) अर्थमे एकादश शब्दसे डट्=अ, स्वादिकार्य । एकादश यस्मिन्नुपात्ते सा पूर्यते सो अवयव ,जैसे अतिशायने तमप्, याप्ये पाशप्मे धर्म, कारण, प्रवृत्तिनिमित्त, भावका ही अतिशय कुत्सित आदि देखे जाते है, उसी तरहसे भाव =अवयवसख्या पूरक है। एकादशाना घटना पूरण जलादि मे अति प्रसङ्ग नही । यदि भावपे पूरणार्थक प्रत्यय होगा, तब एकादशत्वस्य पूरण विग्रह होना चाहिए तत्र, यतोहि याप्यो वैयाकरण न तु याप्य वैयाकरणत्व, विग्रह प्रवृत्तिनिमित्त अवयव अर्थमे होगा ।

(१८५०) नान्त पञ्चन् आदिसे (यदि उसके आदिमे सख्या न हो) डट्को मट् आगम हो, ट—इत्, अ-उच्चारणार्थ अन्ये तु मट प्रत्ययत्वेऽपि अकारसहितो मकारो विधेय , आगमत्वे तु मकारमात्रम । पाच सख्याकी पूरकसख्या अर्थमे पञ्चनसे डट् नान्तसे परे उसको मट्—म आगम । नलोप **पञ्चम** । यद्यपि मट को प्रत्यय मानते तो भेद न पडता तथापि स्वरके लिए मट आगम मान्य । दशाना पूरण दशम । नवाना पूरण नवम । अष्टम , सप्तम । नान्त क्यो कहा ? विंश मे मट् आगम न हो। क्योकि विंशते पूरण अर्थमे डट् । विंशते डित् परे तिलोप । अकारलोप त्रिंश । नान्त नही, न मट । सख्या आदिमे न हो ऐसा क्यो ? एकादश मे मट् न हो । एकसख्या आदिमे होनेसे ।

(५१) षट् कति कतिपय चतुर इनसे थुक्=थ आगम हो डट् परे । डट्को ही थुक् । क इत उ उच्चार । कितसे अन्त्य अच्से परे । षष्ठी उच्चारणसे षट् आदि आगमी है थुक् आगम है । षण्णा=छ सख्याकी पूरक सख्या अर्थमे षष् से डट्—अ, उसको थुक् थ, षष् थ, ष्टुत्व ठ, षष्ठ -छठीसख्या । कतीना पूरण कितनेकी पूरणी सख्या अर्थमे कतिसे डट् थुक् । अनुबन्धलोप **कतिथ** कितनी सख्या । कतिपयशब्द, कुछ वस्तु अर्थमे है, सख्या अर्थ नही, डट् कैसे ? तब

* 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरस्य लोपश्च' तुरीय -तुर्य । (५२) **बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् ५।२।५२।।** 'डटि' इत्येव । पूगसङ्घयोरसङ्ख्यात्वेऽप्यत एव डट् । बहुतिथ इत्यादि । (५३) **वतोरिथुक्** ५।२।५३।। डटि इत्येव । यावतिथ । (५) **द्वेस्तीय** ५।२।५४।। डटोऽपवाद । द्वयो पूरण द्वितीय । (१८५५) **त्रे सम्प्रसारणं च** ५।२।५५।। तृतीय । (५६) **विंशत्यादिभ्यस्तमड-**

कहा **अतएव ज्ञापकात्**=सूत्रमे पढे जानेके प्रमाणसे, ज्ञापनसे डट मान्य । कतिपयाना पूरण कुछका पूरक अर्थमे डट् थुक् आदि । **कतिपयथ** । चतुर्णा पूरण. चारका पूरक अवयव । चतुरसे डट् थ आदि चतुर्थ । अन्दान्त रेफको विसर्ग नही, एव षष्ठ षस्य न जश्त्वम् ।(वा०) चतुरसे (षष्ठी अन्तसे) पूरणी सख्या अर्थमे छ, यत् प्रत्यय हो आदि अक्षरका लोप भी । च इति सघातस्य लोप । विशेषविधानसे डट् प्रत्यय नही बाधा जाता, थुक् विधानशक्तिसे । अत चतुर्थ सिद्ध । चतुरसे पूरण अर्थमे छ–ईय । आदि अक्षर (च) का लोप तुरीय तुर्य चतुर्थ –चौथी सख्या,अच्सहित व्यञ्जनको अक्षर कहते है व्यञ्जन चका लोप । (५२) **बहुपूग**, गण सघ, इनके तिथुक् आगम हो, डट परे । क इत् उ उच्चा० । कित्से अन्त्य अच्से परे । पूग सघ (झोपडी और समुदाय) सख्या नही है डट कैसे ? सूत्रमे पढे जानेकी शक्ति (ज्ञापन) से डट् मान्य । बहूना पूरण **बहुतिथ** बहुतोका पूरक । डट् थुक् आदि । पूगाना पूरण **पूगतिथ** । सघाना सघतिथ । गणाना पूरण गणतिथ ।

(५३) **वतो**=वतुप्प्रत्यय अन्तसे इथुक् आगम हो डट् परे । यावता पूरण अर्थमे यावत्से डट्, इथुक् **यावतिथ** । जितनी सख्या, तावता पूरण **तावतिथः** एतावता पूरण एतावतिथ । गोमता गोमतिथ आदि । बहुगणवतुसे सख्या सज्ञा मानकर तस्य पूरणे डट् ।(५४) **द्विशब्द** (षष्ठी अन्त) पूरण अर्थमे तीय हो डट्को बाधकर । दो सख्या पूरा करनेवाला द्वितीय द्विसे तीय ।

(१८५५) **त्रिसे** पूरण अर्थमे तीय प्रत्यय हो, रेफको ऋ सम्प्रसारण हो । त्रयाणा पूरण विग्रहे त्रिसे तीय, रेफको ऋ सम्प्रसारण हुआ । सम्प्रसारणाच्च से पूर्वरूप तृतीय । हल· से दीर्घ नही, ढ्लोपेसे अण् आनेसे । (५६) **विंशति** आदि शब्दोसे परे डट्को तमट् आगम हो विकल्पसे, ट इत् । मका अ उच्चा० पक्तिविंशतिसूत्रमे स्वीकृतिविंशति आदि मान्य । लोकप्रसिद्ध एकविंशति आदि अमान्य । विप्रकर्षात् । वृत्तिकारके मतमे विंशति आदि लौकिक सख्या स्वीकार है । एकविंशतितम की सिद्धि वास्ते । तदन्तविधिका ग्रहणवता प्रावि

न्यतरस्याम् ५।२।५६।। एभ्यो डटस्तडागमो वा स्यात् । विंशतितम –विंश एकविंशतितम –एकविंश । (५७) **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** ५।२।५७।। शतस्य पूरण शततम । एकशततम । मासादेरत एव डट् मासतम । अर्धमासतम । संवत्सरतम । (५८) **षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः** ५।२।५८। षष्टितम । संख्यादेस्तु । * 'विंशत्यादिभ्य' इति विकल्प एव । एकषष्ठ –एकषष्टितम । (५९) **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** ५।२।५९।। मत्वर्थे छः स्यात् । अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति अच्छावाकीय सूक्तम् । वारवन्तीय साम । (१८६०)

पदिकेनसे निषेध होगा । विंशते पूरण डट । उसको तमट् **विंशतितम** । पक्ष मे डट रहा तिर्विंशतेडिति तिलोप **विंश** ।एव एकविंशते पूरण इक्कीससख्या का पूरक । डट् तमट् एकविंशतितम । पक्षमे केवल डट् एकविंश ।

(५७) **नित्य** । शत आदिमे हो, मास अर्धमास और सवत्सरसे परे डट्को तमट् आगम हो । सौवी सख्याकी पूरणी सख्या अर्थमे डट्को तमट । **शततम** जो शतस्यमे षष्ठी देखकर 'षष्ठ्यादेश्च, सूत्रसे सिद्ध होता, तब कहा **एकशततम** । एक सख्या आदिमे है तमट् न हो पाता । मास, अर्धमास सवत्सर तो सख्या नही, डट् प्राप्त नही तमट कैसे ? तब कहा मासादे सूत्रमे पढे जाने की शक्तिसे ज्ञापनसे डट् होगा । मासस्य पूरण मासतम., आधामास पूरेमहीने का पूरक है । अर्धमासस्य पूरण आधे महीनेका पूरक अवयव तिथि अमावस्या या पूर्णमासी **अर्धमासतम** । सवत्सरस्य पूरण वर्षकी पूरणीसख्या बारहवा महीना है । डट् तमट् आदि ।(५८) **षष्टि** सप्तति इत्यादि । (उसके आदिमे सख्या न हो) से परे डट्को तमट् आगम नित्य हो। विंशत्यादिभ्य के विकल्प को बाधकर । षष्टे पूरण **षष्टितम्** साठवी सख्या (अवयव) के पूरक अथमे डट् आदि । **सख्यादे** =यदि सख्या आदिमे हो तब विंशत्यादिभ्य से विकल्प डट् को तमट् हो । यथा **एकषष्टितम** एकसठवी सख्या । यदा न तमट् तदा यस्येति इलोपे **एकषष्ट** । (५६) **मतौ**=मतुप्प्रत्ययका विषय हो ऐसे अर्थमे लाक्षणिक (अस्य अस्मिन) सम्बन्धित या आधार अर्थमे सूक्त या समान अर्थ खुलनेपर अच्छावाक शब्दो अस्मिन्नस्ति अर्थमे अच्छावाकसे छ–ईय **अच्छावाकीय** वह सूक्त स्तुति मन्त्र है जिसमे अच्छावाक शब्द जुडा है । प्रथमान्तसे छ–ईय । **अश्व नत्वावारवन्त** मन्त्रमे वारवन्त शब्द पढ़ा है । युक्त है, छ–ईय आदि । अस्यवामशब्दसे जुडा मन्त्र छ–ईय अस्यवामीयम् ।

अध्यायानुवाकयोर्लुक् ५।२।६०।। मत्वर्थस्य छस्य। अतएव ज्ञापकात्तत्र छः विधानसामर्थ्याच्च विकल्पेन लुक। गर्दभाण्ड –गर्दभाण्डीय। (६१) **विमुक्तादिभ्योऽण्** ५।२।६१। मत्वर्थेऽण् स्यादध्यायानुवाकयो। विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्ति वैमुक्त दैवासुर। (६२) **गोषदादिभ्यो वुन्** ५।२।६२।। मत्वर्थेऽध्यायानुवाकयो। गो दक। इषेत्वक। (६३) **तत्र कुशल पथ.** ५।२।६३।। वुन् स्यात्। पथि कुशल पथक। (६४) **आकर्षादिभ्य कन्** ५।२।६४।। आकर्षे कुशल आकर्षक। आकर्षादिभ्य इति रेफरहितो मुख्य पाठ। अकषो निकष।(१८६५) **धनहिरण्यात्कामे** ५।२।६५।। काम इच्छा। धने कामो

(१८६०) **अध्याय** और अनुवाकसे मतुप् अथमे छप्रत्ययका लुक् हो। इसी सूत्रके प्रमाणसे छप्रत्यय होता है ज्ञापनसे। विधानकी शक्तिमे छका विकल्प लुक्। भाष्यमे अध्यायानुवाकयो वा लुक् वक्तव्य वचन ही पढा है। गर्दभाण्डशब्दसे जुडा अध्याय, सर्ग, अनुवाक सूक्त स्तुति हो (अस्य अस्मिन् अस्ति) अर्थे छ–ईय। पक्षमे लुक् भी। (६१) **विमुक्त** आदिगण पढे शब्दसे मतुप् अर्थमे अण् हो, अध्याय या अनुवाकमे रहने पर। विमुक्तशब्दसे सम्बन्वित या आधारित अध्याय अर्थमे अण् आदिवृद्धि **वैमुक्त**। देवासुरशब्दयुक्त अध्याय मन्त्रो वा अर्थे अणादिवृद्धि **दैवासुर**। (६२) **गोषद** आदिशब्दसे जुडा अध्याय आदि अर्थमे वुन् हो। गोषदशब्दो अस्मिन्निति अर्थे वु-अक। **गोषदक**। ईषेत्व शब्द जिस अध्याय या मन्त्रमे हो उसका नाम **इषेत्वक** वु–अक। प्रकृतिवन् अनुकरणकी अनित्यतासे सुपका न लुक्।

(६३) **तत्र**—सप्तम्यन्त पथिन्शब्दसे कुशल अर्थमे वुन् हो। पथि=मार्गमे चतुर कुशल अथमे पथिन्से वुन्–अक नस्तद्धिते टिलोपे **पथक**। (६४) **आकर्ष** आदि पढे शब्दसे कुशल अर्थमे कन् हो। आकर्षण खीचने, चुम्बनमे कुशलऽर्थे कन् आकर्षक चुम्बक खीचनेवाला, वुन्से यह सिद्ध होता है किन्तु इदन्त उदन्त **शकुनिक अमनिक**—इसरुकके लिये कन् पढना आवश्यक। शकुनौ कुशल शकुनिक। रेफरहित 'आकष' पढना मुख्य है। उससे कन् **आकषक**। सोना परखनेकी कसौटीका पत्थर निकष, उपल, परीक्षण पत्थर आकषन्ति सुवर्णादिकम् अस्मिन् आकष। पुसि सज्ञाया घ।

(१७६५) **धन** हिरण्यके सप्तमी अन्तसे काम इच्छा अर्थमे कन् हो। तत्र आया। (धनमे इच्छा) अर्थे कन् **धनक** देवदत्तकी इच्छा धनमे है धनक का धनमे कामना इच्छा अर्थ। हिरण्येकाम सोम सुवर्णमे इच्छा है चैत्रकी, कन्।

धनको देवदत्तस्य । हिरण्यक । (६६) **स्वाङ्गेभ्य प्रसिते ५।२।६६।।** केशेषु प्रसित केशक । तद्रचनाया तत्पर इत्यर्थ । (६७) **उदराट्ठगाद्यूने ५।२।६७।।** अविजिगीषो ठक् स्यात्कनोऽपवाद । बुभुक्षयात्यन्तपीडित उदरे प्रसित औदरिक । आद्यूने किं ? उदरक । उदरपरिमार्जनादौ प्रसक्त इत्यर्थ । (६८) **सस्येन परिजात ५।२।६८।।** कन् स्वर्यते न तु ठक् । सस्यशब्दो गुणवाची न तु धान्यवाची । शस्येन इति पाठान्तरम । सस्येन गुणेन परिजात सम्बद्ध सस्यकः साधु । (६९) **अश हारी ५।२।६९।।** हारी इत्यावश्यके णिनि । अतएव तद्योगे षष्ठी न । अशको दायाद । (१८७०) **तन्त्रादचि**

---

(६६) **स्वाङ्गे**=अपना अङ्ग केश, कान, कण्ठ, मुख, ओष्ठ आदि अङ्गसे प्रसिते=प्रसाधन श्रृङ्गार सजावट अथमे सप्तमी अन्तमे कन् हो । प्रसित का वेणी जटा आदिके ग्रथन, कघीसे सवारनेमे उत्सुक प्रसितका अर्थ । केशेषु= बालोके सजानेमे, ग्रथनमे प्रसित–उत्सुक तत्पर अर्थमे कन् **केशकः** केशकी सजावटमे जुटा हुआ । **ओष्ठक** । पदे प्रसित पदक पैरकी लाली महावर । मुखक: मुखे प्रसित । (६७)**उदरसे** ठक् हो तत्र प्रसित अर्थमे आद्यूने=विजयकी इच्छा न होनेपर पेटपूजा भोजनकी दशामे । दिवोऽविजगीषायाम अथमे निष्ठाके त को नत्वसे कन्को बाधकर । भूखसे बहुत व्याकुल क्षुधा, पीडित, उदरपरिमार्जनादौ प्रसित पेट भरनेमे प्रसक्त (मल्ल युद्धमे विजयकी इच्छासे नही) अथमे उदरसे ठ–इक अलोपादि **औदरिक** भूख बुतानेमे तत्पर । आद्यूने क्यो पढा ? विजयकी इच्छासे पेटको ठोस मजबूत, कडीमार सहनेमे प्रसक्त, तत्परमल्ल । यहा कन् हुआ, ठ नही । (६८) **सस्येन**–तृतीयान्त सस्यशब्दसे पर्याय अथमे कन् हो । ठक् क्यो नही आया ! तब कहा स्वरित प्रतिज्ञासे, कन् आया । न ठक् । पाणिनीयपरम्पराके प्रमाणसे परितो जात परिजात चारो तरफ सम्बद्ध । सस्यकागुण अर्थ –व्याख्यान प्रमाणसे । धान्य अर्थ नही क्योकि ससु स्तुनौधातु से कर्ममे यत । सस्यका स्तुति अर्थ गुणरूप है । शस्य=बडा श पाठभी मिलता है शस्येन गुणेन स्तुत्य प्रशसनीय गुणोंमे परिजात घिरा, बधा हुआ अर्थमे कन् शस्यक सज्जन परोपकारी प्रसशनीय गुणोसे घिरे है ।

(६९) **अश**–द्वितीयान्त अश(हिस्सा) शब्दसे हारी–हरण करने अर्थमे कन् हो । हारी कृदन्त है उसके योगमे अशमे षष्ठी होनी चाहिए द्वितीया कैसे ? तब कहा हारीमे आवश्यकाधमर्ण्ययो.से णिनि है । हरतीति हारी हरणकर्ता

पहृराते ५।२।७०।। तन्त्रक. पट । प्रत्यग्र इत्यर्थ । (७१) **ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्** ५।२।७१।। आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन्देशे स ब्राह्मणक । अल्पमन्न यस्या सा उष्णिका यवागू । अल्पान्नशब्दस्योष्णादेशो निपात्यते । (७२) **शीतोष्णाभ्या कारिणि** ५।२।७२।। शीत करोतीति शीतकोऽलस । उष्ण करोतीत्युष्णक शीघ्रकारी । ।७३। **अधिकम्** ५।२।७३।। अध्यारूढ-शब्दात्कनुत्तरपदलोपश्च । ।७४। **अनुकाभिकाभीक· कमिता** ५।५।७४।। अन्वभिभ्या कन्, अभे पाक्षिको दीर्घश्च । अनुकामयते अनुक । अभिकामयते

अतएव=इस कारण कृतके योग मे षष्ठी नही, अकेनो–सूत्रके निषेधसे । अश हरति **अशक** । अशसे हारी अर्थमे कन् । दाय आदत्ते दायाद दामाद । अपना अश–दहेज लेता है । या भ्राता ।

(१८७०) **तन्त्र** शब्द पञ्चमी अन्त हो तब **अचिरापहृते**=तत्काल हरण किया हुआ अर्थमे कन्, अचिरेण कालेन अपहृत , तन्यन्ते तन्तव अस्ति अस्मिन् तन्त्र तन्तुवायशलाका, वस्त्र बुननेका साधन, कालापरिमाणिना समास, प्रत्यग्र नूतन वस्त्र–तुरन्त चुराया हुआ । कन् **तन्त्रक** अभी–अभी हरण हुआ कपडा ।

(७१) **ब्राह्मण**, उष्ण आदेशसे कन् हो । सज्ञाया=नाम होनेपर । आयुध (शस्त्रजीवी ब्राह्मण हों जिस देशमे) प्रथमान्तसे कन् निपातनमे **ब्राह्मणक** । अल्प अन्न हो जिसमे वह हलुआ **उष्णिका**, अल्प अन्नसे कन्,प्रकृतिको उष्ण।देश निपातनसे टाप् इत्व, उष्णिका । अन्तको ही उष्णादेश ।(७२) **शीत** और उष्ण से कारिणि कर्ता अथसे कन् हो, क्रियाविशेषण । द्वितीयान्तसे कन् शीत–मन्द करोति (शीघ्रकर्तव्य कार्यको) धीरे–धीरेसे करता है। आशुकतव्यान अर्थात् चिरेण करोति । **शीतक** आलसी, दीर्घसूत्री, अथवा(फ्रीज)शीतलयन्त्रम । उष्ण मेव उष्ण–शीघ्र करोति (धीरे करणीय कायको) शीघ्र करता है हडबडाहटसे **उष्णक** कन् हुआ । सज्ञाया कहनेसे । अलस =शीघ्रकारी अर्थे रूढ ।

।७३। **अधिक**–अध्यारूढशादसे कन् हो उत्तरपद आरूढका लोप हो(जिसका फल अधिक प्रयोग बनना) शुद्ध रूढ है, अतएव **अध्यारूढो द्रोण**, खारीं **प्रा न् शत इतिवत्** द्वितीया बाधकर पञ्चमी,सप्तमीभी । अधिको द्रोण , खर्या -खर्या प्रथमाभी । अधिका खारी द्रोणेन । ७४। **अनुक** अभिक अभीक (समाहारद्वन्द्व है) सौत्र पु० । क्रिया विशिष्ट साधनवाची अभिसे कन् हो । स्वार्थमे निपातन से । अभिको पक्षमे दीर्घभी । अनु–पश्चात् कामना करता है अर्थे कन् **अनुक** ।

अभिक अभीक । ।१८७५। पार्श्वेनान्विच्छति ५।२।७५।। अनृजुरुपाय पार्श्वम, तेनान्विच्छति पार्श्वक । ।७६। अय शूलदण्डाजिनाभ्या ठक्ठञौ ५।२।७६।। तीक्ष्णोपायोऽय शूल, तेनान्विच्छति आय शूलिक साहसिक । दण्डाजिन दम्भ , तेनान्विच्छति दाण्डाजिनिक ।(७७) तावतिथ ग्रहणमिति लुग्वा ५।२।७७।। कन् स्यात्पूरणप्रत्ययस्य च लुग्वा । द्वितीयक-द्विक वा ग्रहण देवदत्तस्य । द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमित्यर्थ । * 'तावतिथेन गृह्णातीति कन्व

पीछे सोचनेवाला, अभि=सामने कामना करनेवाला अभिक , अभिसे कन्, पक्ष मे दीर्घ भी प्रत्यक्ष इच्छुक ।

(१८७५) पार्श्वेन=तृतीयान्त पार्श्वशब्दसे अन्विच्छति मार्गण— खोजनेऽर्थ मे कन् हो सज्ञाया-नाम होनेपर । आकर्षादिभ्य से कन्आया । पार्श्वमिव पार्श्व मानो पासमे ही है । किन्तु सरलतासे खोजनेयोग्य वस्तुको कठिनाईसे खोजता है । अर्थे कन् पार्श्वक । अन्वेष्टाऽख्यान् अर्थात अनृजुनोपायेन अन्विच्छति अत कहा अनृजु । (७६) अय शूल और दण्डाजिनके तृतीयान्तसे अन्विच्छति अन्वेषण—खोजने अर्थमे ठक हो ठञ् भी । अय शूलमिव अय शूल ठोस लोहे की तरह साहस, मुलायम तरीकेसे प्राप्तव्य अर्थको कठिन रीति उपायसे खोजने अर्थमे ठ-इक आदिवृद्धि आय शूलिक । कठोर उपायवाला, साहसिक प्रचण्ड दण्डाजिनका दम्भ, थोथापन अर्थ है । दम्भमे लाक्षणिक, उससे अन्वेषण-खोजकर्ता अर्थमे ठक्, ठञ् आदि दाण्डाजिनिक । दाम्भिकाः प्रायेण दण्डाजिन धारयन्ति । (७७) तावता पूरण तावतिथ-वतोतियुक्, पूरणप्रत्यान्तका सूचक प्रथमा अर्थमे तृतीया । तृतीयान्त हो पूरणार्थक हो, उससे ग्रहण अर्थमे कन् । पूरण अर्थके प्रत्ययका लुक् विकल्प । द्वितीयक (दूसरी बार देवदत्तका प्रसाद ग्रहण) अथमे द्वयो पूरण द्वितीय से कन् । पूरणप्रत्यय तिका लुक् । द्विकम् । देवदत्तका दूसरी बार ग्रहण । द्वितीयेन=दूसरे रूपसे लेना । इससे तृतीया ही समर्थविभक्ति । इति शब्द लोकानुसारी ग्रन्थविषयक सिद्ध । द्वितीय ग्रहण (देवदत्तेन दण्डस्य) से कन् नही होगा(वा०) तावतिथेन पूरणप्रत्यान्तसे गृह्णाति अर्थमे कन् कहे । ग्रहणेऽर्थे विहित गृहीतरि न प्राप्नोति इत्यारम्भ , पूरणप्रत्यय का नित्य लुक् । यथा षष्ठेन छठी बार या छठारूप बनाकर लेनेवाला षष्ठक षण्णां पूरण षष्ठ तेन गृह्णाति, कन हुआ । थट् (पूरणप्रत्यय) का लुक् भाष्य से प्रमाणित है । पञ्चाना पूरण पञ्चम । तेन रूपेण गृह्णाति-पाचवा रूप

त्वयो नित्य च लुक' । षष्ठेन रूपेण गृह्णाति षट्को देवदत्त । पञ्चक । (७८) स एषा ग्रामणी ५।२।७८।। देवदत्तो मुख्य एषा देवदत्तका । त्वत्का । मत्का. । (७९) शृङ्खलमस्य बन्धन करभे ५।२।७९।। शृङ्खलका करभ , (१८८०) उत्क उन्मना ५।२।८०।। उद्गतमनस्कवृत्तेश्छन्दसात्स्वार्थे कन् । उत्क उत्कण्ठित (८१) कालप्रयोजनाद्रोगे ५।२।८१।। कालवचनात्प्रयोजनवचनाच्च कन् स्याद्रोगे । द्वितीयेऽहनि भवो द्वितीयको ज्वर । प्रयोजनकारण रोगस्य फल वा । विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पक । उष्ण कार्यमस्य उष्णक । रोगे किं ! द्वितीयो दिवसोऽस्य । (८२) तदस्मिन्नन्न प्राये सञ्ज्ञायाम् ५।२।८२।। प्रथमान्तात्सप्तम्यर्थे कन्स्याद्यत्प्रथमान्त अन्न चेत्प्रायविषय तत् । गुडापूपा

बनाकर लेता है अर्थे कन् पञ्चक , सप्तक अष्टक आदि ।

(७८) स ऐषा ग्रामणी—नापिने पुंसि श्रेष्ठ ग्रामाधिपे त्रिषु इ यमर । ग्राम प्रधान नापित या श्रेष्ठ व्यक्ति, मुखिया अर्थमे कन् हो । मुखिया जिन लोगोके हो वे लोग देवदत्तका इमे । देवदत्तसे कन् आदि । मुख्यका पर्याय ग्रामणी । त्व मुख्य ऐषा त्वत्का:, अह मुख्य ऐषा मत्का । तुम प्रधान हो, मै प्रधान हू जिनके । कन, बहुवचन । प्रत्ययोत्तरपदयोश्चसे त्व म आदेश । (७९) शृ खलसे अस्य बन्धन अर्थमे कन् हो करमे=उष्ट्रबालक अर्थे । शृखलेन बद्ध कन् शृ ख लक जजीरसे बधा हुआ । काष्ठमय पाश यत्पादे व्यतिषज्यते तत् शृ खलम् ।

(१८८०)उत्क उद्गते=उन्मनस्क, उत्सुक उत्कण्ठित उल्लास भरा मन हो, उत् शब्दसे स्वार्थमे कन । उत्क उत्सुक , उत्कण्ठित उल्लसित । (८१) काल प्रयोजनका समाहार द्वन्द्व । कालवाची प्रयोजनवाची यथाउचितविभक्ति अन्तसे कन् हो, रोग अर्थ होनेपर । कालशब्दसे कालमे वर्तमान पूरणप्रत्यान्त द्वितीय तृतीय आदि शब्द हो—लिये जायगे । मास वर्ष आदि नही, व्याख्यानसे । यथा द्वितीये अहनि=दूसरे दिन आनेवाला ज्वर अर्थे कन् । द्वितीयक , तृतीये अहनि भव तृतीयक तिजारी । चतुर्थक । प्रयुज्यते अनेन प्रयोजन साधन, करणे ल्युट्, प्रयुज्यते असौ कर्मणि ल्युट् पर प्रयोजनका फल अर्थ । अत सूत्रमे कहा प्रयोजन कारण, रोगस्य फल अर्थ है । विषके फलसे जनित—उत्पन्न रोग अर्थ मे कन् विषपुष्पक । छू जानेसे उत्पन्न रोगके कारण अथवा रोगका फल-फोडा फुसी पीलिया आदि । उष्ण गरमदिमाग, हडबड कार्य है, अर्थ कन् उष्णक: । बीमारीका फल । रोग क्यो पढा ? द्वितीय दिन हो गया इसको पैदा हुये,रोग नही, न कन् । (८२) तदस्मिन्=प्रथमान्त अन्नवाचक शब्दसे अस्मिन्=आधार

प्रायेणान्नमस्या गुडापूपिका पौर्णमासी । * 'वटकेभ्य इनिर्वाच्य' वटकिनी । (८३) **कुल्माषादञ् ५।२।८३।।** कुल्माषा प्रायेणान्नमस्या कौल्माषी (८४) **श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ५।२।८४।।** श्रोत्रिय । वा इत्यनुवृत्तेश्छान्दस । (१८८५) **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ५।२।८५।।** श्राद्धी । श्राद्धिक । (८६) **पूर्वादिनि ५।२।८६।।** पूर्व कृतमनेन पूर्वी । (८७) **सपूर्वाच्च ५।**

अर्थमे कन् हो । अन्नस्य वैपुल्ये गम्ये—प्रथमान्त, अन्नका भी विषय हो तब । यथा गुण और अपूप मालपूआ अन्न की प्राय अधिकता हो जिस तिथि पूर्णमासीमे उसका नाम **गुडापूपिका** । गुडधानिका अष्टमी (वा०) **वटक** आदिसे प्रत्यय हो अस्ति अस्मिन् अर्थे । **वटका** प्रायेण अन्नमस्या पौर्णमास्या सा वटि **किनी** पौर्णमासी दहीबाडा, गुलगुला अन्नकी प्रधानता हो जिस तिथिमे । बटकसे इनि बटकिनी डीप् ।

(८३)**कुल्माषसे** अन्नम् अस्मिन् प्रायेण अर्थमे अञ् हो,कन् बाधकर । अमर कोषमे—**स्याद्यावकस्तु कुल्माष** , चणको हरिमन्थक । हलुआ चना बेसनसे बनी फुलौरी अन्नकी मुख्यता हो जिस तिथिमे उसका नाम **कौल्माषी** अञ् आदिवृद्धि डीप् । (८४) **श्रोत्रिय** छन्द वेद मन्त्र अध्ययनकर्ता—यश्छन्दो अधीते । द्वितीयान्त छन्द शब्दसे अध्ययन कर्ता अर्थमे घन्, छन्दको श्रोत्र आदेश हो । निपातनसे अध्ययन अर्थके अण्को बाधकर विकल्पसे । छन्द अधीते विग्रहमे छन्दस्से अध्ययनकर्ता अर्थमे घ-इय, छन्दस्को श्रोत्र आदेश । श्रोत्र—इय अकार लोप स्वादिकार्य । श्रोत्रिय । जब घन् नही, तब अध्ययन अर्थे अण् । आदि वृद्धि **छान्दस** । यदि वा न आता तब घन्से अण् बाधा जाता । एका शाखा मधीत्य श्रोत्रियो भवति । तावतिथ सूत्रसे मेढक उछाल न्यायसे 'वा' आया ।

(१८८५) **श्रद्धा** अस्मिन्कर्मणि अस्ति तत्कर्म श्राद्ध, श्रद्धा जिस कर्ममे हो उसका नाम । प्रज्ञाश्रद्धा अर्चासे 'ण' । पितृकर्म । किसीका भोजन नही हो सकता, अत वह कर्म भोजन साधन वस्तु द्रव्य अर्थमे (श्राद्ध शब्द) लाक्षणिक है । प्रथमान्त श्राद्धशब्दसे भुक्त (खाया हुआ) अर्थमे इन्, ठन् हो । श्रद्धया भुक्त अनेन **श्राद्धी** पुरुष । श्रद्धा प्रेमका भोजन किया हुआ । इन स्वादिकार्य, पक्षमे ठ—इक आदि श्राद्धिक । (८६) **पूर्वात्** शब्दसे इनि प्रत्यय हो, अनेन भुक्त पीतम अधीत जिस किसीक्रियापदका अध्याहार, क्रिया सामान्य अर्थमे कृतका प्रयोग । पूर्व कृत पहले किया, खाया पढा (क्रिया कर लिया) अनेन (इस व्यक्तिने) अर्थमे इनि । पूर्व इन् यस्येति अकारलोप पूर्विन् स्वादिकार्य ।

२।८७।। कृतपूर्वी कटम् ।(८८) इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८।। इष्टमनेन इष्टी अधीती। (८९) छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ५।२।८९।। लोके तु परिपन्थिशब्दो न न्याय्य । (१८९०) अनुपद्यन्वेष्टा ५।२।९०।। अनुपदमन्वेष्टा गवामनुपदी । (९१) साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञाया ५।२।९१।। साक्षाद्द्रष्टा साक्षी। (९२) क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्य ५।२।९२।।

---

(८७) **सपूर्वात्**=पूर्वमे पद वतमान रहे उससे अनेन कृत भुक्त पीत पठित आदि अर्थ इनि अस्तु । अर्थात्पूर्वान्तिसे तदन्त विधिके निषेधसे यह सूत्र । कृत पूर्वम् अनेन पहले कर लिया, खा लिया, पढ लिया जिसने । कृतपूर्वके बीच सुप्सुपासे समास, उससे इन् आदि । (८८) **इष्ट** आदि गणमे पढे तृतीयान्त शब्दसे अनेन इष्ट (इसने यज्ञ सेवा सत्सग दान कर लिया) अर्थमे इनि प्रत्यय हो । इष्टमनेन देव पूजा किया अर्थमे इष्ट शब्दसे इनि आदि इष्टी । नान्त उपधाको दीर्घ सुलोप नलोपौ । अधीतमनेन अधीती । अधीतसे पढा है अर्थ मे इन । अधीतिन् नान्तत्वात्सु । नान्त उपधाको दीर्घ सुलोप, नलोप ।

(८९) **छन्द सु**=परिपन्थिन् परिपरिन् दोनो शब्द वेदमे निपातनसे सिद्ध हो । पर्यवस्थातरि–शत्रु अर्थमे **पर्यवस्थातृ**शब्दसे इनि, अवस्थातृको पन्थ आदेश परिपन्थिन् । जब अवस्थातृको परि आदेश तब परिपरिन् निपातनमे बने । उसका उदाहरण **मात्वाविदन् परिपन्थिन** मातृपरिपरिणे विदन् । दुश्मन मुझे न समझ पाये । यह सूत्र वैदिक प्रकरणके योग्य । लोकमे नही बनता । अनु-पस्थितं परिपन्थिभि पार्थिवं इत्यादि । लोकमे पर्यवस्थाता **पढना** ही ठीक ।

(१८९०) **अनुपदी**। पदस्य पश्चात् **अनुपदम्** अव्ययीभाव सप्तमी को अम् । अनुपदसे अन्वेष्टा खोज करनेवाला अर्थमे इनि हो । निपातनसे । अभी—अभी गाय खोजनेवाला है । अन्वेषण अर्थमे इनि आदि । हरदत्त मतम गवामेव अन्वेषणे इनि । हिरण्यादौ अन्वेषणेतु न भवति(९१) **साक्षात्** (अव्यय है) प्रत्यक्ष द्रष्टा अर्थमे इनि हो । स्वय न कर्म किया हो किन्तु करने वालेको देखा हो वही **साक्षी** साक्षात् शब्दसे णिनि प्रत्यय । अव्योका (भसज्ञा मात्रमे) टिलोप होता है । साक्षातमे आत्का लोप साक्षिन्से स्वादिकार्य । (९२)**क्षेत्रि-यच्** प्रत्यय हो, परक्षेत्र शब्दके सप्तमी अन्तसे घच् प्रत्यय हो, परका लोप, निपातनसे । पर=अन्यक्षेत्र शरीर परक्षेत्र दूसरे शरीरमे चिकित्स्य =प्रतीकाय इलाज, रोग हटे । इस शरीरसे नही (कितेर्व्याधिप्रतीकारे) परक्षेत्रशब्द से चिकित्सा उपचार अर्थमे घच् । परका लोप घ–इय **क्षेत्रिय** । रोग दूसरे

क्षेत्रियो व्याधि । शरीरान्तरे चिकित्स्य । अप्रतीकार्य इत्यर्थ ।(९३) **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ५।२।९३।।** इन्द्र आत्मा, तस्य लिङ्ग करणेन कर्तुरनुमानात् । इतिकरण प्रकारार्थम् । इन्द्रेण दुर्जयमिन्द्रियम् । (९४) **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४।।**

जन्मके शरीरमे नष्ट होगा । अर्थात् अप्रतीकार्य हैं, दवासे शान्त नही होगा । क्षेत्रियं विष—छूतकी बीमारी, पर शरीरे चिकित्सा योग्य, यथा **क्षेत्रियाणि तृणानि**=यानि सस्यार्थे क्षेत्रे जातानि विनाशयितव्यानि (कृषी निरावहि चतुर किसाना) अथवा क्षेत्रिय: पारदारिक ।

(९३) **इन्द्रिय** रूप बनेगा । इन्द्रसे उक्त अर्थोमे घच् निपातनसे । आयनेयी सूत्रसे घको इय । **इन्द्रियम्** इसके बहुत विग्रह बनेंगे । इन्द्रका आत्मा अर्थ , यथा स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यत् इदमदर्शमिति तस्मादिन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते इति श्रुति । तस्य लिङ्ग उसका परिचायक क्या है समझाते है । करणसे कर्ताका ज्ञान, कर्ताके सचालनबिना करण साधन क्रियान्वयि नही हो सकता । इति शब्द विशेषणम् अर्थबाधकम् । इन्द्रसे दुर्जय=जीता न जा सके-अर्थमे घ—इय आदि **इन्द्रियम्** । इन्द्रस्य लिङ्गम् इन्द्रिय, चक्षुरादिः इन्द्रियम । इन्द्रेण दृष्ट इन्द्रिय, ज्ञातम्, इन्द्रेण सृष्ट मिन्द्रिय इन्द्रेण जुष्ट, सेवित, प्रेरित इन्द्रियम् । इन्द्रसे देखा हुआ, जाना गया, सृष्टि प्रीति सेवा । इन्द्रसे जो प्रसन्न किया जाय, सेवित हो जुडा हो वह भी **इन्द्रिय** । अदृष्ट सृष्टिदत्त विषेभ्य यथायथम् ।

(९४) **तदस्य** तत अस्य अस्ति (वह इसका है) तत अस्मिन् अस्ति (वह इसमे है) विग्रहमे, अस्तिके सम्बन्धमे प्रथमान्तसे अस्य=सम्बन्धित अस्मिन्=आधारः अर्थमे मतुप् (उप इत्) मत् शेष रहा । इति शब्द विषय लाभके लिये । यथा गाव गाये है इसकी या इसमे गोमान् । गायवाला या गोशाला । प्रथमान्तसे ससर्गमे मतुप् गोमत् तद्धितान्त, प्रा० सज्ञा सु । नु दोर्घ, सुलोपन लोपौ गोमान् देशः । अस्तिसे प्रथमपुरुष एकवचन अविवक्षित है । वर्तमान काल ही मान्य । धने गते भाविनि वा दशाया—धनवान् इति न भवति । मतुप् अर्थका विशेष सूचक इति शब्द है । विषय बोले (श्लोक, वार्तिक) भूमा=बहुत्व(किसीकी अपेक्षा अधिकता) यथागोमान्, यवमान् गाये अधिक है । अन्य की अपेक्षा जौ अधिक है । यवमान् । विद्यावान् अन्यसे अधिक विद्वान् धनवान् दूसरोसे अधनी । बहुत बोधके लिए बहुशब्द । पञ्चषाभि. गोभि देव-

गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोनान्।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगे-तिशायने।
संसर्गेऽस्तिविवक्षाया भवन्ति मतुबादय ॥

(१८९५) **रसादिभ्यश्च ५।२।९५॥ मतुप्। रसवान् रूपवान्। अन्य-मत्वर्थीयनिवृत्यर्थं वचनम्। रस, रूप, वर्ण, गन्ध स्पर्श, शब्द, स्नेह, भाव।** *

दत्त गोमान भवति, वह्वचो गाव इति व्यवहार। राजाके पास हजार गाय है। गोमान् नही होता उसके लिये अल्प हैं, बहुत नही। जिसके पास खारी (क्विटलोसे) नापा जौ है, वह **यवमान्**। हजार दाना हो वह नही। यव-वद्भि अद्भि यूप प्रोड्क्षति। यहा जाति सम्बन्धमे मतुप। भूमादि अर्थ प्रायः है। अतिरिक्तभी—निन्दा अर्थमे ककुदावर्तिनी कन्या-जीभ लोढने लपकानेवाली लडकी, निन्दा मे इनि डीप। प्रशसा मे मतुप्। रूपम् अस्ति अस्य अस्मिन् वा **रूपवान्** मनमोहक। **रूपसे** मतुप्, गोमान् इव सिद्धि। नित्ययोग= अर्थवत् शब्दके अर्थका सम्बन्ध नित्य है। अर्थसे मतुप् मको व। **क्षीरणो** वृक्षा, क्षीरसे वृक्षके साथ नित्य सम्बन्ध अर्थमे इन्। अतिशायने=उदरम् अतिशय लम्बम् यस्या सा कन्या **उदरिणी**। अधिक निकला पेटवाली। ससर्ग = सयोगसम्बन्ध। दण्डी दण्डमस्ति अस्य हस्ते। यहा सम्पर्क अर्थमें इन्। छत्र-मस्ति अस्य हस्ते (छाता इसके हाथमे है) अर्थमे इन्। **छत्री। ससर्ग वृत्ति** नियामक सयुक्तदण्ड ही हो। घरमे पडा दण्ड नही। पुरुषीदण्ड या पुरुषवान् दण्डः नही होता। वृत्तिका नियामक सम्बन्ध होनेसे। छ अर्थोमे अस्ति कहने से मतुप् आदि प्रत्यय होते है।

(१८९५) रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, गुण हो, तब अस्ति अस्य अर्थमे प्रथमान्तमे मतुप् हो। रस अस्ति अस्य अस्मिन्वा रसवान् (जिसका या जिसमे रसवाला) रससे मतुप् आदि। रूपमस्ति अस्य अस्मिन्वा रूपवान्। जिसका या जिसमे रूप हो वह। रसादिभ्यश्च सूत्र क्यो पढा ? पूर्वसूत्रसे मतुप् होता ही तब कहा—अन्य मत्वर्थीय (अत इनठनौ) के निवारण वास्ते सूत्र पढा। रसादिगणसे मतुप् ही हो अन्य प्रत्यय नहो। यदि ऐसा रूपिणी कन्या, रसिको नटः। यहा मतुप् नही है किन्तु अन्य=इन् ठन् क्रमसे देखे गये। तब कहा—रसादिगणमे (गुणात्) पढा गया। अन्य मत्वर्थीय प्रत्यय गुणवाचीसे निसिद्ध है। रूपिणीमे रूपसे सौन्दर्य मान्य गुण नही, रशना ग्राह्य नही, रसि-

'गुणात्' ।* 'एकाच' । स्ववान् । गुणग्रहण रसादीना विशेषणम् ।(९६) **तसौ मत्वर्थे १।४।१९।।** तान्तसान्तौ भसंज्ञौस्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे ।* 'वसो सम्प्रसारणम्' । विदुष्मान् * 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्ट॰' । शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्ल पट । कृष्ण । (९७) **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ८।२।९।।** मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य व

क का भी भावुक अर्थ है । रसना ग्राह्य गुण नही इससे सिद्ध हैकि जल द्रव्य गन्ध आदिका ग्रहण नही(ग०)एक अच् सेभी मतुप् । स्व अस्ति अस्य आत्मीय जनवाला या धनवान । स्वमे एक अच् है । उससे मतुप् आदि । रसादि छ शब्दोमे विशेषण गुण है । जिसका फल जो गुण नही उसका ग्रहण न हो, भाष्यमे रसिको नट । **स्पर्शिकम्** वारि प्रयोग दर्शनमे यह सूत्र प्रत्याख्यात है, विद्वत्शब्दसे मतुप् होनेपर भसज्ञा नही होगी । यजादि स्वादि परे ही भसज्ञा होती है । वसो सम्प्रसारणसे सम्प्रसारणसज्ञा कैसे ? तब कहा—

(९६) **तसौ** त, स अन्तमे हो उसकी भसज्ञा होती है । मतुप् अथकप्रत्यय परे । तदन्तविधि, प्रातिपदिक विशेषणमे । विदुष सन्ति अस्मिन्ग्रामे विदुष्मान्ग्राम । विद्वानोका स्थान । सान्त होनसे भसज्ञा वमके वको सम्प्रसारण उ, स को ष, विदुष्मन्से विभक्ति कार्य सु—नुन, दीर्घ आदि । (वा०) **गुणवचन** से मतुप्का लुक् इष्ट साधु है । गुणमे गुणवान्मे जो प्रसिद्ध शुक्ल पीत आदि है । वही मान्य । रूप आदि शब्द नही । अत रूप वस्त्रम् ऐसा नही होता । यथा शुक्लो गुणो अस्ति अस्य वस्त्रस्य अर्थे तदस्यास्ति सूत्रेण मतुप् । शुक्ल पट गुणवानस्ति सफेदी गुणसे भरपूर है । अत गुणवचन हो गया । गुणा उच्यन्ते अस्मिन्निति गुणवचन । अत गुणे गुणवति च प्रसिद्धा ये शुक्लादय शब्दा ते एव गृह्यन्ते, मतुप्का लुक्=अदर्शन हुआ इस तरह शुक्ल का श्वेतो गुणवान्वस्त्र अर्थ है । कृष्णः गुणो अस्यास्ति काला गुणवाला कपडा । कृष्णसे मतुप्, उसका लुक् गुणवचनसे परे होनेपर । (९७) **मात्** उपधायाश्च (दूसरा मात् आया । म च, अश्च समाहारसे पञ्चमी, एकवचनभी, प्रत्ययसे आक्षिप्त प्रातिपदिक विशेषण तदन्तभाव । अत कहा—म अन्त या अ अन्तसे अथवा म और अ उपधा (अन्तिम अन् का पूर्ववर्ण) हो उससे परे मतुप् के म को व हो, **अयवादिभ्य** =यव आदिगणसेपरे व न हो तब । किम अस्य अस्मिन् वा अस्ति किंवान् इसका या इसमे क्या है विग्रहमे मतुप्, मको व, सु नु दीर्घ आदि । ज्ञानमस्ति अस्य ज्ञानवान् । ज्ञान अकारान्त है, मतुप्, मको व । ज्ञानवत् तद्धितान्त प्रा०

स्यात् । किवान् । ज्ञानवान । लक्ष्मीवान् । यशस्वान् । भास्वान् । यवादेस्तु यवमान् । भूमिमान् । (९८) झय ८।२।१०।। झयन्तान्मतोर्मस्य व स्यात् । अपदान्तत्वान्न जश्त्वम् । विद्युत्वान् ।(९९) सञ्ज्ञायाम् ८।२।११।। मतोर्मस्य व स्यात् । अहीवती । मुनीवती । शरादित्वाद्दीघ । (१९००) आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ८।१।१२।। एते षट् सञ्ज्ञाया निपात्यन्ते । आसनशब्दस्यासन्दीभाव । आसन्दीवान् ग्राम । अन्यत्रासनवान्,

---

सना सु नु, दीर्घ आदि । तपर न होनेसे दीघ भी स्वीकार । विद्यास्ति अस्य विद्यावान् क्रिया पूर्ववत्, । लक्ष्मी अस्ति अस्य शुभ लक्षणवाली घरमे हो वह लक्ष्मीवान् । म उपधाका उदाहरण है । अकार उपधा—यश अस्ति अस्य अस्मिन्वा यशस्वान् । यशस्से मत्, व आदि । सको पदान्त मानकर रु क्यो नही ? तसौ मत्वथके भसञ्ज्ञासे पदका बाध, रुत्व न । आकार उपधा–भा अस्ति अस्य भास्वान् सूर्य तेज प्रकाशवाला । भाससे मतुप् आदि, यवादिगण मे पढे शब्दोसे मतुप्के मको व नही होता । यथा यव अस्ति अस्य यवमान् कुशूल । यवसे भरा कुठिला (कण्डाल) । भूमि अस्ति अस्य भूमिमान् जमीदार । यहा मतुप्के मको व नही हुआ, सूत्र न लगनेसे । विद्युत् अस्ति अस्य अस्मिन् बिजली जिसमे हो विद्युत् शब्दसे मत् । यह न मान्त है, न अकारान्त उपधामे न तो म है, न अ । तब मको व कैसे ? अत बोले—

(९८) **झय** झयसे कप तकके अक्षर अन्तमे हो, तब मतुप्के मको व होता है । विद्युत्वत् सु । नु दीर्घ आदि । तको जश्त्व द क्यो नही । पदान्त है, तब कहा तसौ मत्वर्थके भसञ्ज्ञासे पदका बाध होनेसे । अपदान्त होनेसे न जश्त्व । इस युक्तिसे बह्निमद्वान्मे द पढना अशिष्ट । घत्व ढत्वकी असिद्धि से गोधुड्मान् मधुलिण्मान्मे झय से वत्व नही होता । (९९) **सञ्ज्ञामे** भी मतुप्के मको व हो । अहि अही द्विवचन दो सापवाली नदीका नाम है अहिमत्के मको व हुआ । मुनीवती (नगरीका नाम) दो प्रसिद्ध मुनिकी सञ्ज्ञा है । मको व हुआ । अहि, मुनिमे शरादिके चसे दीर्घ मान्य, गणपाठमे ।

(१९००) **आसन्दीवत**–सूत्रमे समाहार द्वन्द्वमे ह्रस्व **आसन्दीभाव** आदि छ शब्दोकी सिद्धि निपातनसे, सञ्ज्ञा होनेपर । आसनानि सन्ति अस्मिन् आसनी बनाने वालोका गाव अर्थमे मतुप्, आसनको आसन्दी आदेश आसन्दीवत् सु नुम् आदि ग्रामका नाम होनेपर । अन्यत्र जहा किसीका नाम न हो वहा आ-

अस्थिशब्दस्याष्ठीभाव । अष्ठीवान । अस्थिमानन्यत्र । चक्रशब्दस्य चक्रीभाव चक्रीवान्नाम राजा । चक्रवानन्यत्र । कक्ष्याया सम्प्रसारणम् । कक्षीवान्नामर्षि । कक्ष्यावानन्यत्र । लवणशब्दस्य रुमणभाव । रुमण्वान्नाम पर्वत । लवणवानन्यत्र । चर्मणो नलोपाभावो णत्व च । चर्मण्वती नाम नदी । चर्मवत्यन्यत्र । (१९०१) उदन्वानुदधौ च ८।२।१३।। उदकस्योदन्भावो मताबु धौ सज्ञाया च । उदन्वान्समुद्र ऋषिश्च । (१९०२) राजन्वान्सौराज्ये ८।२। १४।। राजवन्ती भू । राजवानन्यत्र । (१९०३) प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६। चूडाल –चूडावान । प्राणिस्थात किं ? शिखावान्दीप ।

सन्वान् ही बनेगा । अस्थि अस्ति अस्य या अस्मिन् अर्थे मतुप् । अस्तिको अष्ठी आदेश मको व इत्यादि **अष्ठीवान्** किसी ऋषिका नाम । यदि किसी का नाम नही तब अस्थिमान् हड्डी इसकी या इसमे है । चक्रम् अस्ति अस्य अस्मिन्, मतुप् चक्रको चक्री होकर **चक्रीवान्** चक्रवाल। राजाका नाम । अन्य स्थलमे चक्रवान् । चक्री आदेश नही हुआ । कक्ष्याको सम्प्रसारणभी कहे, दीर्घ होकर कक्षीवान् ऋषि । जब नाम नही तब सम्प्रसारण भी नही । लवणमस्ति अस्मिन् अर्थे मतुप् । लवणको रुमण आदेश, मको व–रुमण्वान् । नमक पहाड का नाम । यदि किसीका नाम नही, तब लवणवान् । लवण नमकीन चर्मन् शब्दसे नलोपका आभाव और णत्व हो, निपातनसे । चर्मास्ति अस्य **चर्मण्वती**, नदीका नाम अन्यत्र=चर्मवती चमडेवाली ।

(१९०१) **उदकको** उदन आदेश हो मतुप्परे, उदधि समुद्र या सज्ञा अर्थ होनेपर उदकमस्ति अस्मिन् (जल इसमें है) तब । समुद्र अर्थ अस्य=जल इसका है, तब ऋषि अर्थ । उदकसे मत, मको व, उदन आदेश । ।०२। राजा अस्ति अस्मिन् उस राज्यमे राजा है । **राजन्वान्** सुव्यवस्थित शासकेके राज्यमे । सु शोभन राजा अस्य देशस्य स देश सु राजा । तस्य भाव सौराज्य, इस अर्थमें राजन्से मतुप् मादुपधाया से म को व ।

(१९०३) **प्राणिषु** तिष्ठति प्राणिस्थ (जीवमे रहे) अर्थवाचक शब्द हो । अकारान्त हो उससे मतुप् अर्थमे लच हो, विकल्पसे । चूडा अस्ति अस्य विग्रह में लच् आदि । **चूडालः** कुक्कुट (मुर्गा) अरुणशिखा लालचोटी वाला । पक्षमे मतुप् मको व आदि । चूडावान् अर्थ वही । प्राणिस्थ क्यो कहा ? शिखास्ति अस्य शिखावान् दीप ज्योतिवाला । यह शिखा प्राणिस्थ नही है । दीपका अग्र भाग है, लच् नही हुआ । यह हरदत्तका मत है । **चूडावान्वृक्ष** । प्रत्युदा-

आत किम्। हस्तवान्। * 'प्राण्यङ्गादेव' नेह। मेधावान। प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धे अन्तोदात्तत्वे चूडालोऽसी यादौ 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' इति स्वरित-बाधनार्थश्चकार। (१९०४) सिध्मादिभ्यश्च ५।२।९७॥ लज्वा स्यात्। सिध्मल सिध्मवान्। अन्यतरस्या ग्रहण मतु समुच्चयार्थं, न तु प्रत्ययविकल्पार्थ, तेन अकारान्तेभ्य इनिठनौ न। 'वातदन्तबलललाटानामूङ् च' वातूल।

हर ामे वृक्ष भी प्राणि है तब कहा नही, मुखनाशा सचारी वायु प्राण। मुख और नाकसे आने जानेवाली हवाकानाम प्राण है। ऐसे प्राणिस्थसे मतलब है। सूत्रमे आकारान्त क्यो पढा? हस्तौ स्त अस्य हस्तवान् यहा आकारान्त नही, न लच्, मतुप् आदि। प्राणिचेतन श्वास लेनेवाले अङ्गसे ही लच् हो। इसका फल नेह-यहा नही हुआ—मेधा बुद्धि प्रति । अस्ति अस्य मेधावान् पुरुष — बुद्धिमान् प्रतिभाशाली, लच नही, चेतनका अङ्ग न होनेसे। लच्का च पढ़ना व्यर्थ है, उसका अन्तोदात्त—प्रत्यय स्वर से सिद्ध होना— अत कहा—प्रत्यय स्वरेण—परन्तु प्रत्यय स्वरको स्वरितो वानुदात्ते पदादौ—को बाधकर स्वरित करता। चूडालोऽसिमे अन्तोदात्तके लिये चकार पढा। चित० सूत्र लगे—क्योकि उसमे तिङतिङ से निघात हैं। चूडा न सु, सको रु उत्व। सुप् पित् है, अनु-दात्तगुणको एकादेश उदात्तेन—से उदात्त। असि का अकार पूर्वरूप, एकादेश होनेपर पदादि मिलता, वहा स्वरित रोकनेके लिए 'च' इन माना।

(१९०४) सिध्म—आदिगणपढे शब्दसे मत्वथ=भूम, निन्दा, नित्ययोग आदि अर्थमे लच विकल्पसे हो। गडु, मणि विजय निष्पाव पांसु हनु पार्ष्णि इत्यादि सिध्मादि है। लच् सिध्मल। जब मतुप् आदि कार्य, तब सिध्मवान्, सिद्धि-सफलतावाला। गडु अस्ति अस्य गण्डुल—फोडा गलमण्डवाला। मणिल मणिमान्। विजय अस्ति अस्य विजयल। विजयवान्। पासुल, हनुल• इत्यादि। अन्यतरस्या पूर्वसूत्रसे आया—लच् विकल्पके लिये नही, किन्तु मतुप् भी होनेके लिये। क्योकि अन्य तरस्याम् अव्यय है अनेकार्थक है। तब लच्, मतुप् दोनो हुए। लच्के अभाव पक्षमे मतुप् ही हो, अत इनठनौ न हो। यह समुच्चयका भाव है अत अकारान्तसे इन् ठन नही हुए। लच् वा म, वा च के अर्थमे। क्योकि—वा स्यात् विकल्पोपमेययोरेवार्थेऽपि समुच्चय इत्यमर। (ग) वातदन्त, बल, ललाट, इनसे लच् हो, प्रकृतिको ऊङ् भी। आदेश सूचक ऊङ् प्रत्यय नही। वात वायुरोग (बहुत बोलना) अस्ति अस्य अर्थमे लच हो, तमे अको ऊङ वातूल। इक ही। एव दन्ता सन्ति अस्य दन्तूल। बलमस्ति

(१९०५) **वत्सांसाभ्यां कामबले ५।२।९८।।** आभ्यां लच् स्याद्यथा-सख्यं कामवति बलवति चार्थे। वत्सल । अंसल । (१९०६) **फेनादिलच्च ५।२।९९।।** चाल्लच् । अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुः समुच्चयार्थमनुवर्तते। फेनिल, फेनल-फेनवान् । (१९०७) **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००।।** लोमादिभ्यः श । लोमश -लोमवान् । रोमश -रोमवान् । पामादिभ्यो न । पामन । × 'अङ्गात्कल्याणे' अङ्गना। × 'लक्ष्म्या अच्च'।

अस्य बलूल । ललाटमस्ति अस्य ललाटूल चौडा मस्तक ।

(१९०५) वत्स और अंस (कधा) से परे मतुप् अर्थमे लच् हो विकल्पसे । यथा क्रमसे कामवान् बलवान् अर्थमे । काम अस्ति अस्य कामल बलमस्ति अस्य वत्सल स्नेहवान् लच हुआ। । वृत्तिविषये वत्स अंशशब्दौ स्नेहबलयो वर्तते । अंस (स्थूल स्कन्ध) अस्ति अस्य अंसल डील, मोटा कन्धावाला बलवान् अर्थमे कमजोरमे असमान् दुर्बल । (१९०६) फेन आदि गणपढे शब्दसे इलच् हो, लच् भी । अन्यतरस्या का आना मतुप् सग्रहके लिये । फेन अस्ति अस्मिन्फेनि । समुद्र । मतुप् हुआ तब फेनवान् गाज भरा जलाशय या मुख ।

(१९०७) लोम, पाम, पिच्छ आदि गण पढे शब्दसे क्रमश श, न, और इलच् प्रत्यय हो, मत्वर्थ-भूम-निन्दा आदि अर्थोमे । लोमादिसे श लोमश रोवा वाला । पक्षमे मतुप् रोमवान् रोगटेवाला, एव रोम अस्ति अस्य रोमश भेड-भालू । पामादिगणमे पढे शब्दोसे 'न' प्रत्यय हो । पाम व्याधि रोगअस्ति अस्य पामन । पामसे 'न' हुआ, रोगी पापवाला । पिच्छिल मयूर पखवाला (ग) अङ्गसे कल्याण अथमे न प्रत्यय हो, पामादिका गणसूत्र । कल्याणानि मनोहराणि अङ्गानि अस्या सा । अङ्ग शब्दसे सुन्दर मनमोहक अर्थमे न प्रत्यय टाप् अङ्गना (ग) लक्ष्मीसे मतुबर्थमे 'न' प्रत्यय हो । 'इ' को 'अ' हो लक्ष्मी अस्ति अस्य विग्रहे 'न' प्रत्यय, इको अ, णत्व लक्ष्मण शुभ चिह्न या धनवान् । (वा) शाकी, पलाली दर्दूसे 'न' हो, ह्रस्व भी । महच्छाक शाकी तदस्ति अस्य शाकिन-सागका विशाल भण्डार शाकीको ह्रस्व न । महत्पलाल पलाली । पुआलका गोदाम, हो जिसमे न-प्र०, ह्रस्व । पलालिनम् । दरिद्रासे ऊ प्रत्यय । इ, आ का लोप । दर्दू । त्वक्रोग दाद, खुजली हो जिसके दर्द्रुण । न । ह्रस्व । (वा०) विष्वक् (पामादिगण सूत्र है) के उत्तरपदका लोप हो 'न' प्रत्यय भी । विषु-विषु=नानादिक्षु अञ्चति विष्वड, सर्वतो गामी । सभी दिशाओमे व्यापककाल, विषु अव्यय है सर्वत व्यापक अर्थमे । धूर्तस्वामी सर्व-

लक्ष्मण । * विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धे ' विषुण । पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिल –पिच्छवान् । उरसिल –उरस्वान् ॥(१९०८) प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो ण ५।२।१०१॥ प्राज्ञो व्याकरणम् । प्राज्ञा । श्राद्ध । आर्च ।*'वृत्तेश्च' वार्त्त । (१९०९) तप सहस्राभ्या विनीनी ५।२।१०२॥ विनीन्योरिकारो नकार-

तो गामी कहते है । भवस्वामी तिर्यक् अर्थे । भट्ट भास्कर पराङ्मुख अथमे । अकृतसन्धे =विषु अञ्च–इस दशासे जब सन्धि न की गयी हो तब मतुप् अर्थमे 'न' प्रत्यय हो । उत्तरपदका लोप भी । यह वार्तिक समर्थाना प्रथमाद्वाका बाधक है । विना यण् किये अञ्चका लोप । 'न' प्रत्यय मान्य । यदि यण होना तब उत्तरपदका लोप होता तब वनिपरे लोप होकर विष्ण ऐसा बनता । अत विष्वङ् अस्यास्ति लौकिक विग्रहे । विषु अञ्च अलौकिकविग्रहे । तब 'न'प्रत्यय अञ्चका लोप, णत्व विषुण । विषुवदाख्य काल । पिच्छादिगणसे इलचप्रत्यय हो । पिच्छ मोरपख अस्ति अस्य इलच पिच्छिल । पक्षमे मतुप् पिच्छवान् । उर. वक्षस्थलमस्ति अस्य उरसिल । उरससे इलच् चौडी छातीवाला मतुप् सु, नुम् आदि उरस्वान् ।

(१९०८) प्रज्ञा श्रद्धा अर्चा इनसे मत्वर्थ=भूम निन्दा आदि अर्थमे णप्रत्यय हो । प्राज्ञ व्याकरणका विशेष वेत्ता । गुणीभूतक्रियाके साथ कर्मत्वसम्बन्ध । प्रज्ञान प्रज्ञा–खुलाज्ञान स्त्रियाके अधिकारमे प्रपूर्वक ज्ञा धातुसे आतश्चोपसर्ग-क सूत्रसे भावमे ण । टाप् प्रकर्षज्ञान तेजबुद्धि, प्रज्ञा अस्ति अस्य बुद्धि प्रतिभा वाला अर्थमे ण । यस्येति आ लोप । पुन टाप प्रज्ञा–व्याकरणकी सूक्ष्मज्ञान वाली । कृतिके योगमे ही षष्ठी मान्य, तद्धितयोगमे अमान्य । न कहियेकि प्रजा नाति इति प्रज्ञ –प्रविष्टवेत्ता, इगुपधज्ञासे क, प्रज्ञ एव प्राज्ञ स्वार्थे अण् । यदि ऐसा कहेगे तब स्त्रीविवक्षामे ङीप् होने लगेगा । अत प्राज्ञा कहा—स्त्रिया टाप् होनेके लिये । यदि प्रज्ञादिभ्यश्चसे अण् होता तब ङीप हो जाता । श्रद्धा अस्ति अस्य श्राद्ध , श्रद्धालु भक्त । श्रद्धासे ण–अ, यस्येति आलोप । अर्चा अस्ति अस्य आर्च पूज्य (वा०) वृत्तेश्च मतुप् अर्थमे ण प्रत्यय । वृत्ति अस्ति अस्य वार्त जीविकावाला व्यावहारिक ।

(१९०९) तप और सहस्रसे क्रमश विनि इनि प्रत्यय हो, दोनोमे इ उच्चा० । किन्तु दोनोके नकारकी इत्सज्ञा क्यो नही हलन्त है । तब कहा— नकारके परित्राण–रक्षाके लिये इकार पढा । उपदेश दशाका अन्त्य हल् नकार नही है । उपदेशे अन्त्यभावात् न इत्सज्ञा । तपः अस्ति अस्य विग्रहे

परित्राणार्थ । तपस्वी । सहस्री । असन्तत्वाददन्तत्वाच्च सिद्धे पुनर्वचनमणा बाधो मा भूदिति । सहस्रात्तु ठनोऽपि बाधनार्थम् ।(१९१०) **अण् च ५।२।१०३॥** योगविभाग उत्तरार्थ । तापस । साहस्र । ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् । ज्यौत्स्न । तामिस्र । (११) **सिकताशर्कराभ्यां च ५।२।१०४॥** सैकतो घट । शार्कर । (१२) **देशे लुबिलचौ च ५।२।१०५॥** चादण्मतुप्

तपस्से विनि । तपस्विन् प्रा० संज्ञा सु । नान्त–उपधा दीर्घ आदि । तपस्वी कल्याणके लिये ताप–सहनशक्तिवाला । सहस्रमस्ति अस्य सहस्री इन्–अन्नस्वादिकार्ये । हजार व्यक्ति या वस्तुवाला । अत्र शङ्का—असन्तत्वात्–तापस् मे अस देखकर अस्मायामेधा–सूत्रसे विन होता, सहस्रको अदन्त देखकर अत इन्ठनौसे इन् हो जाता, तथापि अगले सूत्रमे विधान किये गये अण्से असन्त–विन् अदन्त इन् बाधे जाते । अत. पुन विन इन् पढा । सहस्रशब्दसे ठन्कोभी बाधनेके लिये, इन् है ।

(१९१०)**अण्च** तपस् और सहस्रसे मत्वर्थमे अण्भी हो, यदि ऐसा होना है तब सूत्रमे विनीन्यण ऐसा एक सूत्र पढते । योग विभागः=योगस्य सूत्रस्य विभाग विश्लेष अलगाव किस लिये ? उत्तरार्थ अगले सूत्रमे अण्की ही अनुवृत्तिके लिये । तपः अस्ति अस्य तापस अण, आदिवृद्धि (तप सन्तापे) सहस्रमस्ति अस्य साहस्र हजार वाला, अणादि (वा) ज्योत्स्ना आदिगण पढेसे भी अण् कहे । ज्योत्स्ना—चन्द्रिका अस्ति अस्य । अण् आदिवृद्धि ज्यौत्स्न शुक्ल पक्ष । चादनीका पक्ष । तमिस्रा तमो युक्ता रात्रय , (घोर अन्धकार) ता सन्ति अस्य विग्रहे ज्योत्सनादिभ्य से अण्आदिवृद्धि तामिस्र कृष्णपक्ष । अधेरी रातका अथवा नरकविशेष तम समूह तमिस्र–तमस निपातनसे मत्वर्थीय र । अवयव भूतानि तमासि विद्यन्ते तानि सन्ति अस्मिन् विग्रहे रान्तादण् डीप् तामस्री, तमिस्रा तामसी रात्रि ज्यौत्स्नी चन्द्रिकयान्विता इत्यमर ।

(११) **सिकता** और शर्करासेभी मत्वर्थमे अण् कहे । सिकता सन्ति अस्य सैकत घट बालूसे भरा घडा । सिकतासे अणादि । शर्करा सन्ति अस्मिन्शाकर । अथवा देशविशेष अर्थमे किसी नगर या देशके नामसे प्रसिद्ध घडा आदि शार्कर चीनी बहुल देश । अप्सुमन समासिकतावर्षाणाबहुत्व इस लिङ्गानुशासनसे नित्य बहुवचनान्त । (१२) **देशे**=देश अर्थ खुलता हो, तब पूर्वसूत्रसे विधान हुए अण्का लुप् हो । और इलच् प्रत्यय, अण् भी हो । समीपी होनेसे मतुप् भी हो । प्रत्ययोके संग्रहके लिये समुच्चयार्थक अन्यतर-

च। सिकता सन्त्यस्मिन्देशे सिकता–सिकतिल–सैकत–सिकतावान्। एव शर्करेत्यादि। (१३) दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६॥ उन्नता दन्ता सन्त्यस्य दन्तुर। (१४) ऊषसुषिमुष्कमधो र. ५।२।१०७॥ ऊषर। सुषिरः। मुष्कोऽण्ड मुष्कर। मधुमाधुर्यम्–मधुर।* 'रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसख्यानम्'। खर। मुखर। कुञ्जो हस्तिरस्ति कुञ्जर। * नगपासुपाण्डुभ्यश्च'। नगरम्। पासुर। पाण्डुर। पाण्डरशब्दस्त्वव्युत्पन्न एव।* 'कच्छ्वा

स्याम् आया। रेता हो जिस देशमे उसका नाम सिकता। पूर्व सूत्रके अण्का इस सूत्रसे लुप्। स्वभावत बहुवचन। जब सिकनासे इलच् हुआ तब यस्येति आकारलोप सिकतिल। अण् हुआ तब आदिवृद्धि होकर सैकत। मतुप् होने पर धनवान इव सिकतावान्। इसी तरह शर्करा शर्करिल शार्कर शर्करावान्। एका सिकता तैलदाने असमर्था इस भाष्य प्रमाणसे एकवचनान्त भी मान्य। अमरकारने-स्त्री शर्करा शर्करिल शार्कर शर्करावती। देश एवादिमौ देश एवमेवमुन्नेरा। सिकतावती दोनोका उदाहरण।

(१३) दन्त ऊचा उठा हो निकला दात) शब्दसे मतुप् अर्थमे उरच् हो, ऊचे दातवाला। दन्तसे उरच् अकारलोप दन्तुर। (१४) ऊष सुषि मुष्क मधु इनके बीच समाहारद्वन्द्व। सौत्र पुम। इनसे मतुप् अथमे र हो ऊषर. स्यादूष क्षारमृत्तिका। नमकीन मिट्टी रेहटाकी भूमि अथमे र–ऊषर (ऊषरबरसै तृण नहि जामा) सुषि बिल छिद्रमस्ति अस्य सुषिर छेदवाला। र प्रत्यय मधुशब्द मधुमक्षिका निर्मित रस विशेष अर्थमे ही मान्य। अत कहा मधु माधुय, मधु अस्ति अस्य मधुर। मुष्क अस्ति अस्य मुष्कर अण्डावाला या मधुका पात्र। (वा०) रके प्रकरणम ख, मुख और कुञ्जको भी गिनें। ख महत्कण्ठ विवर अस्ति अस्य खर गलेका छिद्र बडा हो शखध्वनि लायक। अत खरो गदभ धृष्ट नि शील, असभ्यवक्ता मुख–व चालशक्ति अस्ति अस्य मुखर बडबडानेवाला, नेता, अग्रणी। कुञ्जमस्ति कुञ्जर। तुण्ड शुण्डवाला, (वा०) नग पासु पाण्डुसे भी र प्रत्यय कहे। नगा पर्वता वृक्षा (जातिशब्द हे) सन्ति अस्मिन् नगर। पासु अस्ति अस्मिन् पासुर धूलि भरा पथ। पाण्डु अस्ति अस्य शुक्लवर्ण धवलिमावाला। पाण्डुर कैसे बनेगा ? वह अव्युत्पन्न है रूढ। हरिण. पाण्डर पाण्डु गुणमात्रे गुणिनि च वतने। गुणे शुक्लादय पुसि गुणि लिङ्गास्तु तद्वति इत्यमर। [वा०) कच्छू शब्दसे र हो। ऊको

ह्रस्वत्व च'। कच्छुर ।(१९१५) द्यु द्रुभ्या म ५।२।१०८।। द्युम । द्रुम । (१६) **केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९।।** प्रकृतेनान्यतरस्या ग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणमिनिठनो समावेशार्थम् । केशव केशी–केशिक –केशवान ।* 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'। मणिवो नागविशेष । हरिण्यवो निधिविशेष ।* 'अर्णसो लोपश्च'। अर्णव । (१७) **गाण्ड्यजगात्सज्ञायाम् ५।५।११०।।** ह्रस्वदीर्घयोर्यण् । तन्त्रेण निर्देश । गाण्डिवम्-गाण्डीवमर्जुनस्य धनु । अजगव पिनाक ।

ह्रस्व हो। शुना रोग चच्छुर । रप्रत्यय और ह्रस्व आदेश कुत्तेकी बीमारी ।

(१९१५) द्यु द्रु इनसे अस्ति अस्य अर्थमे म हो । द्यौ अस्ति अस्य आकाश पोल है इसमे । दिवसे म, दिव उत् वको 'उ', दिमे इको अण् । स्वादिकार्यं घट मठ अर्थ । द्रुर्वृक्ष छाया सो अस्यास्ति (छाया जिसकी हो वह) म प्रत्यय जनकतया द्रुमोपि वृक्षएव । पलाशो द्रु द्रुमागमा रूढ शब्द है । मतुप् इष्ट नही, जो अर्थ खोलनेमे असमर्थ है

।१६। केश–से मतुबर्थमे वप्रत्यय हो विकल्पसे । सूत्रमे अन्यतरस्या क यो पढा ? समर्थानासे वा आता ही, अत कहा—**प्रकृतेन**=प्रसङ्गसे विकल्पका सग्रह होता, तो मतुप् हो जाता । पुन अन्यतरस्या पढना इन् ठन्के भी स्वीकृतिवास्ते, अन्यथा सिध्मादिभ्यश्च सूत्र तक मतुप् आता,इन् ठन न आते । इस प्रकार व प्रत्यय, इन्ठन्, मपुप् होनेसे चाररूप, केश अस्ति अस्य केशव केशसे सम्बन्धित अर्थमे व । इन् हुआ तब केशिन्से स्वादिकार्य केशी । ठन्से केशिक मतुप्से केशवान् (वा] **अन्येभ्यः** केशसे भिन्नशब्दसे भी व दृष्ट है । मणि अस्ति अस्य मणिव हाथी व प्रत्यय , मणिधर नाग समुद्रश्च । हिरण्यमस्यि अस्य सोनाकी खान निधिविशेष अर्थमे व । हिरण्यव सुवर्णकोश (वा] **अर्णस्** से व हो, सका लोप भी । अर्तें असुन् नुट् च अर्ण जल–प्रभूत मस्ति अस्मिन् अर्थे व । **अर्णव** अपार जलाशय। अथवा अर्ण वडवानलमस्ति अस्मिन् । इद वार्तिक भाष्ये न दृश्यते ।(१७) गाण्डी गाण्डि और अजगसे सज्ञा किसीका नाम होनेपर व प्रत्यय हो, ह्रस्व दीर्घ दोनोका सूचक यण् है, **तन्त्रेण**=क्रमसे उच्चारण समझे जैसे ख्यत्यात्परस्य यण्से खिति खीतीका ज्ञान रूढ है । मतुप् नही होता। गाण्डी अस्ति अस्य झुककर निशानेकी शक्तिवास्ते अर्थे व **गाण्डिवम्** । दीर्घसे व होनेपर **गाण्डीवं** सज्ञा है अर्जुनके धनुषकी । अजग अस्ति अस्य (बहुत भारी है) व प्रत्यय **अजगव** शिवधनुषका नाम । अधिरोहति गाण्डिव महेषौ गाण्डीवी कनकशिलानिभ भुजाम्यामिति ।

(१८) काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ५।२।१११॥ काण्डीर । आण्डीर ।(१९) **रज कृष्यासुतिपरिषदो वलच् ५।२।११२॥** रजस्वला स्त्री । कृषीवल । 'वले' इति दीर्घ । आसुतीवल । शौण्डिक । परिषद्वल ।* 'पर्षत्' इति पाठान्तरम । पर्षद्वलम् ।* 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' भ्रातृवल । पुत्रवल । शत्रुवल । * 'वले' इत्यत्र 'सञ्ज्ञायाम्' इत्यनुवृत्तेर्नेह दीर्घ । **(१९२०) दन्तशिखात्सञ्ज्ञायाम् ५।२।११३॥** दन्तावलो हस्ती । शिखावल केकी (२१) **ज्योत्स्ना-**

---

(१८) **काण्ड आण्डसे** क्रमश ईरन इरच् हो भूमा निन्दा आदि अर्थे । काण्डमस्ति अस्मिन् अर्थे र **काण्डीर** सर्ग अध्यायका ग्रन्थ । जैसे बालकाण्ड सुन्दरकाण्ड । आण्डमस्ति अस्य **आण्डीर** भगवान् (रोम रोम प्रतिभागे कोटि ब्रह्माण्ड) (१९) **रजस्**, कृषि, आसुति परिषद् इनसे भूम निन्दा, नित्ययोगादि अर्थमे वलच् हो । रज अस्ति अस्या **रजस्वला** रजोधर्मवती मासिकवाली । रजस् शब्दसे अस्ति अस्य विवक्षामे वलच , अनुबन्धलोप, टाप् । कृषि अस्ति अस्य अर्थे वलच खेती बारीवाला किसान । कृषीवल । वल परे दीर्घ हुआ । असुनि अस्ति अस्य अभिषेक, स्नादि हो गया हो **आसुतीवल** । सू–अभिषवे । आङ्सुसे क्तिन् वल परे दीर्घ , स्नान किया हुआ रुद्राभिषेक इव । परित सीदति, शौण्डिक (हाथी झुण्ड) अस्तिअस्य **शौण्डिक** । परिषद् चारो तरफ फैली सभा । सत्सु-क्विप् सदिरप्रते षत्व । परिषद् अस्तिअस्य परिषद्वल सभा यक्षः सभापति , । षर्षद ऐसा भी पाठ है । जैसे शृ दृसे 'अदि' होता है ऐसे ही पृषसे अद, पृषद् । तत्रभव **पार्षद** । भाष्यमे **पार्षदकृतिरेषा, तत्र भवता सर्ववेद पार्षद हीद शास्त्रम** यह शास्त्र सभी शास्त्रोका अध्यक्ष हैं । **पर्षदेषा दशावरा इति मनु** । बलच् हुआ **पर्षद्वल** (वा०) अन्य शब्दसे भी बलच् देखा जाता है । भ्राता अस्ति अस्य **भ्रातृवल** (द्रलोपेसे अण् आनेपर अङ्गको ही वले मे दीर्घ) यहा नही हुआ । पुत्र अस्ति अस्य पुत्रवल पुत्रवान् । शत्रु अस्ति अस्य शत्रुवल दुश्मन् । पुत्रवल इत्यादिमे 'वले' से दीघ क्यो नही ? इसलिये कि वले सूत्रसे सञ्ज्ञायाके आनेमे सञ्ज्ञामे ही दीघ करता है ।

(१९२०) **दन्त** और शिखासे मत्वर्थमे वलच् हो । सञ्ज्ञाया—दन्तश्च शिखा च अनयो समाहारसे पञ्चमी । दन्तौ स्त अस्य दन्तावल हाथी । दोदात वला । मनुष्य अर्थमे वलच् नही होगा अत हस्ती कहा । शिखा अस्ति अस्य चोटीवाला केकी–मयूर अर्थमे वलच् **शिखावल** । चोटीवाला मनुष्यसे न हो परन्तु केकी अर्थमें वलच् । (२१) **ज्योत्स्ना** तमिस्रा, शृङ्गिन्, ऊर्जस्विन्,

तमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसा ५।२।११४।

मत्वर्थे निपात्यन्ते । ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः । ज्योत्स्ना । तमस उपधाया इत्वं रश्च । तमिस्रा । स्त्रीत्वमतन्त्रम् । तमिस्रम् । शृङ्गादिनच् । शृङ्गिणः । ऊजसो वलच् । तेन बाधा माभूदिति विनिरपि । ऊर्जस्वी । ऊर्जस्वलः 'ऊर्जोऽसुगागमः' इति वृत्तिस्तु चिन्त्या 'ऊर्जस्वती' इतिवदसुन्नन्तत्वेनैवोपपत्तेः । गोशब्दान्मिनिः । गोमी । मलशब्दादिनच् । मलिनः । ईमसश्च । मलीमसः ।

(२२। अत इनिठनौ ५।२।११५।। दण्डी दण्डिकः ।।२३। व्रीह्यादिभ्य

ऊर्जस्वल गोमिन् मलिन मलीमस ये शब्द मतुबर्थमें निपातनसे सिद्ध है। चाँदनीरात अर्थमें प्रकाशके अवयव होनेपर ज्योतिशब्दसे 'न' प्रत्यय, इलोपभी निपातनसे। इण् से परे जो षत्व था, वह हटा। टाप्। ज्योत्स्ना चन्द्रिका कौमुदी चन्द्रमामें प्रकाश अवयव है। तम अस्ति अस्या तमिस्रा तामसी रात्रि घोर अन्धकार। तमस्शब्दसे रक्। उपधा (ममें अ) को इत्व, निपातनमें। अतः कहा—तमसके उपधाको इत्व और र होता है। निघण्टुमें तम पर्याय तमिस्रा पढा है। समूहसमूहिनो अभेद। तमिस्र गृह, नपुसक कैसे? तब कहा सूत्रमें स्त्रीरूप पढना अनिवार्य नहीं, व्याख्यानसे। अतः नपुसक शृङ्गसे इलच् अलोप णत्व **शृङ्गिणः** शृङ्गमस्य अस्ति सींगवाला। ऊजस्से वलच्, निपातनात्। ऊर्ज—बलप्राणनयो धातुसे असुन्। ऊर्जस् प्रातिपदिक है। यद्यपि अस अन्त देखकर अस्मायामेधासे विन् सिद्ध था। इस सूत्रमें पढना व्यर्थ, तब कहा तेन—विशेष विधानसे बलच्प्रत्यय द्वारा अस्मायामेधाका विनि रोट न जाय, अतः विनिका भी निपातन। ऊर्ज अस्ति अस्य ऊर्जस्वी तेज ताकतभरा पक्षमें वलच् ऊर्जस्वल प्रतिभाशाली। ऊर्जको असुक् आगम कहना (वार्तिककारका) चिन्तनीय है क्योंकि ऊर्जस्वता शब्दमें वलप्रत्यय न देखता असुक् आगम न करता, किन्तु असुक् देखकर बलच् सिद्ध है। असुन अन्तसे ही वलच् होता है। गौ अस्ति अस्य गोमी गोभक्त, गोसे मिनि। मलमस्ति अस्मिन्न-लिन' मलशब्दसे इनच्। धूमिलदेह। जब ईमस तब मलीमस मलिनवस्तु।

(२२) अत्—ह्रस्व अकारान्त शब्दसे नित्ययोग अतिशायन आदि अर्थमें इनि ठन् हो। दण्डमस्ति अस्य सयोगसम्बन्ध इन् दण्डिन्, सु आदि दण्डी—दण्डधारी। जब ठ—इक दण्डिक यती। सूत्रमें अत का त क्यो पढा? इसलियेकि ह्रस्वसे हो, और दीर्घसे इनिठनौ न हो। खट्वावान् आ अन्त है न इन्। किन्तु मतुप् यह सूत्र कुछ स्थलमें नहीं लगता। एकाक्षरात् कृतो जाते

इच ५।२।११६॥ व्रीहि—व्रीहिक । न च सर्वेभ्यो व्रीह्यादिभ्य इनिठनावि-ष्येते । किं तर्हि ।* 'शिखामालासञ्ज्ञादिभ्य. इति , यवखलादिभ्य इक ' अन्येभ्य उभयम् । ।२४। **तुन्दादिभ्यइलच्च ५।२।११७।** चादिनिठनौ मतुप् च । तुन्दिल —तुन्दी—तुन्दिक —तुन्दवान् । उदर, पिचण्ड, यव व्रीहि ।* स्वाङ्गाद्वि-वृद्धौ' विवृद्ध्युपाधिकात्स्वाङ्गवाचिन इलजादय स्यु । विवृद्धौ कर्णौ यस्य स कर्णिल —कर्णी—कर्णिक —कर्णवान । ।१९२५। **एकगोपूर्वाट्ठञ्नित्यम्**

सप्तम्याञ्च न तौ स्मृतौ । एकाक्षर—स्ववान्, स्व धन आत्मीयता वा अस्ति अस्मिन् मतुप् हुआ । इन ठन् नही । कृत—कारक मस्ति अस्मिन कारकवान्, जाते , वृक्षाः सन्ति अस्मिन् वृक्षवान्ग्राम व्याघ्रवान् सिहवान्वनम् इन्ठन नही हुये, जाति होनेसे । दण्डा सन्ति अस्या शालाया दण्डवतीशाला बहुन लाठी भरी भुशुण्डवती बहुत बन्दूक भरी । सप्तम्यन्त विग्रह है इनि ठन् नही हुये । परन्तु यह नियम प्रायभव प्रायिक है । क्योकि कार्यी कार्यिक । तण्डुली तण्डुलिक आदि अदन्तसे भी इन् ठन देखे गये । कृदन्तसे जातिसे भी ।

(२३) **व्रीहि** आदिगण पढे शब्दसे भी इन् ठन हो । व्रीहि अस्ति अस्मिन् धान्य जिससे भरा हो अर्थे इन्, इलोप सु आदि, **व्रीही** । बोरा,कुठला कण्डाल ठ—इक **व्रीहिक** । शङ्का—क्या सभी व्रीहि आदिगणमे पढेसे इनि ठन् इष्ट है, तब कहा नही, किन्तु निर्णायक (वा०) शिखा, माला, सञ्ज्ञा, वीणा, वडवा, वलाका, पताका, वर्मन शर्मन् इन शब्दोसे इन ही हो, ठन् न हो । और यव, खल, नौ कुमारी इनसे ठन् हो, न इन् । शेषगणपठितसे दोनो हो । इति वृत्ति कारः । (२४) **तुन्द** आदिगण पढेसे इलच् हो, इन् ठन्, मतुप् भी हो, अन्य-तरस्याके आनेसे तुन्दमस्ति **तुन्दिल** । निकला पेटवाला तुन्दसे इलच् । जब इन् सु आदि तब **तुन्दी** । ठ—इक तुन्दिक , एव उदरमस्ति अस्य **उदरिल** । उदरी उदरिक उदरवान्, पेटवाला **पिचण्डिल** पिचण्डी । पीठीभरा । यव अस्ति यवी यविल व्रीहिल व्रीहिवान् (ग) **स्वाङ्गात्** विवृद्धि=विशेष बढा हुआ अपना अङ्ग=कर्ण, नेत्र, भुजा, स्कन्ध आदिसे इलच् इन्ठन् मतुप् आदि हो । विवृद्धौ कर्णौ अस्य अर्थमे कर्णसे इलच् कर्णिल बढा कानवाला । इन्—कर्णी, ठ—इक कार्णिक ।

(१९२५) **एकगोशब्द** पूर्वमेपद हो, उससे नित्य ठञ् कहे, इन्ठन् निवृत्ति के लिये । अन्यथा अन्यतरस्या के आनेसे मतुप् भी होता । एक शतमस्य अस्ति एक सौ इसके पास है वह व्यक्ति अर्थमे ठ—इक **ऐकशतिकः** । एकसहस्रमस्या

५।२।११८॥ एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिक । ऐकसहस्रिक । गौशतिक । गौसहस्रिक । ।२६। **शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ५।२।११९॥** निष्कात्परौ यौ शतसहस्रशब्दौ तदन्तात्प्रातिपदिकाट्ठञ्स्यान्मत्वर्थे । नैष्कशतिक । नैष्क-सहस्रिक । २७। **रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ५।२।१२०॥** आहत रूपमस्यास्तीति रूप्य कार्षापण । प्रशस्त रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौ । आहत–इति किं। रूपवान् ।* अन्येभ्योऽपि दृश्यते' । हिम्या पर्वता । गुण्या ब्राह्मणा । ।२८।

अस्ति एक हजार इसके पास हे अर्थमे ठ–इक आदिवृद्धि सख्याया सवत्सरसे उत्तरपदकी वृद्धि नही प्रतिपदोक्ता तद्धितार्थकी ही मान्यता । गवा शत गो शतमस्ति अस्य ठ–इक आदि **गौशतिक** सौ गायवाला । गवा सहस्र गोमहस्र ठ–इक हजार गायवाला, षष्ठी तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्वसे कर्मधारय नही होते, अत एकविंशति अस्यास्तिसे नही हुआ, नित्यपढा-मतुप् बाधनार्थ । यदि ऐसा तब एकद्रव्यवान्मे मतुप् कैसे ? असाधु है या एकेन द्रव्यवान् विग्रह । एक दण्डी कैसे ? एकदेशिना–एकाधिकरणे प्रमाणेन इनिरपि क्वचिद्भवति ।

(२६) शत और सहस्र अन्तमे निष्कसे परे हो । तब शत अन्त, सहस्र अन्त प्रातिपदिकसे ठञ् हो मतुबर्थमे । निष्क ग्राम का नाम । सौ ग्राम जिससे हो **नैष्कशतिक** । निष्क शतमस्ति अस्मिन् ठ–इक एव निष्कसहस्रमस्ति अ-स्मिन् हजार ग्राम (किलो) ठ–इक आदि । (२७) रूपशब्दसे आहत हननम् ताडनम् और प्रशसा अर्थमे यप् हो । आहत ताडनेन निष्पन्न रूप यस्य, रूपसे यप् (ताडनसे चोट घाव अर्थमे) धवहारूप हो या ताडनसे फूटी हुयी कौडी कार्षापण, परिमाण जिसमे रजत सुवर्णकी मुद्रिका जडी हो । उसमे सोनार ठोक–ठोक कर (स्वर्णकार कृता हननक्रिया तथा निष्पाद्य) रूपसे य, यस्येति अलोप रूप्यः धट । कुम्भकार ताडनकर तैयार करता है । प्रशसा अर्थे प्रशस-नीयरूप हो जिसका सुडौल बैल रूप्य , यहा यपका प्रशसनीय अर्थ प्रशस्तरूप सम्पन्न । आहत (ठोक-२ कर तैयार किया, ऐसा) क्यो ? नर–नारी रूपवान् हो वहा यप् न हो । क्योकि उनकी सुन्दरता ताडनसे तैयार नही (वा०) अन्य शब्दोसे भी यप् देखा है । यथा–बहुल हिममस्ति एषु, भूमा अर्थमे यप् (बहुत बर्फ जिस पहाडपर हो) **हिम्या** । हिमसे यप् बर्फ गिरना आहत है । प्रशसामे प्रशस्ता गुणा येषु ते ब्राह्मणा गुण्या प्रशस्तगुणसम्पन्ना । गुणसे यप् जस् । दृषि पढनेसे इनि भी मान्य । माघमे गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत् गुणी–अगुण्य इति पदच्छेद । (२८) **अस्** (अन्त) माया मेधा स्रजसे इन विनि हो अस्ति

अस्मायामेधास्रजो विनिः ५।२।१२१॥ यशस्वी-यशस्वान्। मायावी। व्रीह्यादिपाठादिनिठनौ। मायी, मायिक। क्विन्नन्तत्वात्कु। स्रग्वी। आमयस्योपसङ्ख्यानम् दीर्घश्च आमयावी। * 'शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्'। शृङ्गारक। वृन्दारक। * 'फलबर्हाभ्यामिनच्'। फलिन। बर्हिण। * 'हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्'। इनिठनौ मतुप्च। हृदयालु-हृदयी-हृदयिक-हृदयवान्। * 'शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने'। शीतं न सहते शीतालु। उष्णालु * 'स्फायितञ्चि' इति रक्। तृप्र पुरोडाश, तं न सहते तृप्रालु। तृप्रं दुःखम्' इति माधव। * 'हि

अस्य अर्थमे यश अस्ति अस्य यशस्वान्। अस् अन्त यशस्से विन् यशस्विन् स्वादिकार्य। तसौ मत्वर्थके भसञ्ज्ञासे पदका बाध है सको रुत्व नही। एकगो पूर्वात्-सूत्रमे नित्य पढनेसे मतुप् रुका था उसके सग्रहवास्ते-मेडक उछालन्याय से अन्यतरस्या आया मतुप् हुआ। माया अस्ति अस्य मायावी। व्रीहि आदि गणमे पढा मायाशब्दसे इन् ठन् भी हुये। माया इन्। आलोप सु आदि। मायी, ठ-इक मायिक। व्रश्चभ्रश्च सूत्रसे स्रजके जको षत्व क्यो नही (क्विन्प्रत्यय हुआ है) जको कुत्वेन ग होनेमे। अत सक्-माला अस्ति अस्मिन स्रग्वी मालाधारी। विन्। सु आदि (वा०) आमयशब्दसे भूमा नित्ययोग आदिअर्थमे विनि हो, प्रकृतिको दीर्घभी। आमय व्याधि रोग अस्ति अस्य आमयावी। आमयसे विन्, दीर्घ, सु आदि (वा०) शृङ्ग और वृन्दसे आरकन् कहे। शृङ्ग अस्ति अस्य आरकन् सींगवाला। वृन्द समूहमस्ति अस्य आरकन् वृन्दारक (वा०) फल और बर्हिसे इनच् कहे। फल फलानि सन्ति अस्मिन् फलिन। फलसे ढेर अर्थमे इनच् अलोप। बर्हा सन्ति अस्मिन्बर्हिण बहुतसे पख है। जिसमे वह मयूर। इनच् णत्व (वा०) हृदय से आलुच् हो, अन्यतरस्यासे इन्ठन्का लाभ। मतुप् सवत्र सुमुच्चायित एव। हृदयमस्ति अस्य आलुच् हृदयालु, भावुक सरस पुरुष। जब इन, सु आदि तब हृदयी। ठ-इक मतुप् सब का अर्थ समान। प्रत्यय भिन्नसेभेद (वा०) शीतोष्णतृप्रेभ्यः तन्न सहने वार्तिक का अर्थ सग्रह। शीत, उष्ण, त्रिप्र इनके द्वितीयान्तसे न सहत=असहन अर्थमे आलुच् हो जो पूर्वसूत्रसे आया। शीतका न सहन करनेवाला अर्थमे शीतसे आलुच् शीतालु। ठण्ड बर्दाश्त न हो। उष्ण न सहते उष्णालु गर्मी सहन न हो। त्रिप धातुसे रक प्रत्यय त्रिप्र-हवनकी खीर न विप्रा उर्व्यत्याश इस मन्त्र के भाष्यमे ऐसा अर्थ है। त न सहते=उसको देख न सके। माधव मतमे दुःखं

माच्चेलु ' हिम न सहने हिमेलु ।* 'बलादूल ' बल न सहते बलूल ।* 'वाता-त्समूहे च'। वात न सहने वातस्य समूहो वा वातूल ।* 'तप्पर्वमरुद्भ्याम' । पर्वत । मरुत । ।२९। ऊर्णाया युस् ५।२।१२३।। सित्वात्पदत्वम् । ऊर्णा-यु । अत्र छन्दसि इति केचिदनुवर्तयन्ति । युक्त चैतत् । अन्यथा हि 'अहशु-भमो.' इत्यत्रैवोर्णाग्रहण कुर्यात । ।१९३०। वाचोग्मिनि ५।२।१२४।। वाग्मी। ।३१। आलजाटचौ बहुभाषिणी ५।२।१२५।। * 'कुत्सित इति

न सहते अर्थ है (वा०) हिमसे न सहते अर्थे एलुच् । अकारलोप हिमेलु बर्फ न सहना (वा०) बलसे न सहने अर्थमे ऊलच् बलूल किसीकी शक्ति सहन न होना। (वा०) वातशब्दसे समूह अर्थमे भी ऊलच् हो । षष्ठयन्तसे, द्वितीयान्त से असहने अर्थे ऊल् हो । वायुको सहन न करे अथवा वायुके झुण्ड बवण्डर अर्थमे ऊल् वातूल, या किसीकी बात न सहना(वा०)तप् प्रत्यय हो, पर्व और मरुतसे । हरदत्त वृत्तिकार 'तन्' होना कहते है । पर्वमस्ति अस्य अर्थे त । पर्वत अनेक ग्रन्थि, चोटी जिस पर है । मरुन सन्ति अस्मिन् अनेक प्रकारकी वायु हो तप् । मरुत । मरुतचले उन्चास ।

(२९) ऊर्णासे युस् हो भूमादि अर्थमे । ऊर्णास्ति अस्य (अन् हो जिसमे) अर्थे युस् भेडकी ऊन है । यस्येति चसे अकारलोप न हो अत कहा सित्वात्—सिति चसे पदसज्ञा जिसका फल भसज्ञाका बाध । इस सूत्रमे बहुल छन्दसिकी अनुवृत्ति करते है ठीक भी है । क्योंकि अहु शुभमोर्युस सूत्रमे ऊर्णा पढ देते प्रयोग बन जाता अलग सूत्र पढना छन्दसिकी अनुवृत्तिमे प्रमाण ।

(१९३०) वाच शब्दसे भूमादि अर्थमे ग्मिनि प्रत्यय हो । नकी रक्षावास्ते इकार । अतद्धिते पढनेसे तद्धितमे लश कवर्ग इत्सज्ञक नही । वाक् अस्ति अस्मिन् बोलनेकी शक्ति हो जिसमे । वाचसे ग्मिनि चको कुत्व—क जश्त्व—ग वाग्मिन् सु आदि कार्य । पक्षमे मतुप् वाग्मिवान् । द्वयो सहारयो श्रवण, प्रत्ययमे ग पढना प्रत्यये भाषायासे अनुनासिक अभाववास्ते । (३१) आलच् आटच् प्रत्यय वाचशब्दसे हो । मत्वर्थ=बहुभाषी अर्थमे । इस सूत्रमे (वा०) कुत्सित निन्दित अर्थभी पढे, ग्मिनिको बाधकर । कुत्सितम्=अनाप सानाप, बहुत बोलना अर्थमे आलच् वाचाल अशिष्टवक्ता । जब आटच् वाचाट अप्रिय वक्ता । यस्तु—जो व्यक्ति सम्यक् सन्तुलित मर्यादित सूझबूझसे बहुत बोलता है वह वाग्मी है प्रामाणिकवक्ता, नेता । बहु—अकुत्सित यो वदति तत्रापि

वक्तव्यम्' कुत्सित बहुभाषते वाचाल वाचाट । यस्तु सम्यग्बहुभाषते स वाग्मीत्येव ।।३२। **स्वामिन्नैश्वर्ये ५।२।१२६।।** ऐश्वर्यवाचकात्स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच् । स्वामी । ।३३। **अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७।।** अर्शांस्यस्य विद्यन्ते अर्शस । प्राकृतिगणोऽयम् ।३४। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनि ५।२।१२८।।** द्वन्द्व । कटकवलयिनी । शङ्खनूपुरिणी । उपतापो रोग कुष्ठी, किलासी । गर्ह्यं निन्द्यम् । ककुदावर्ती काकतालुकिनी । प्राणिस्थात् किं ?

वाग्मी । कुतो न भवति भाष्ये—योहि सम्यग्बहुभासते स वाग्मी इत्येव भवति । इस प्रमाणसे सम्यग्बहुभाषी अर्थमे ही ग्मिन् होगा ।

(३२) **स्वामिनि**=ईश्वरस्य भाव ऐश्वर्यंका वाचक स्वशब्दमे भूमा, नित्य योग आदि अर्थमे आमिनच् हो । स्व ऐश्वर्यंमस्ति अस्मिन् (ईशिता हि ईश्वर प्रभुत्वसम्पन्न) ईश्वरभाववाला अर्थमे आमिनच् । स्वामिन् से सु आदि वागीश एव वाचस्पति वाच स्वामी। ऐश्वर्य क्यो पढा ? स्ववान् धनवान अर्थमे। आमिनच् न हो, स्वामी न बने । (३३) **अर्शस्शब्द** आदिमे हो उस गण पठित शब्दोसे अच हो, भूमा आदि अर्थमे । अर्श गुदरोग विशेष उपस्थमार्ग पर दाने—अर्शांसि सन्ति अस्मिन् अर्थे अच् **अर्शस** अतिसाररोगी । यह गण आकृतिं दृष्ट्वा गण्यन्ते शब्दा । मत्वर्थमे अच् दिखाई दे वह गणमान्य । स्वाङ्गात् हीनान गणमे पढा है । खञ्ज पादो अस्ति अस्य खञ्ज लगडा लूलू । काण चक्षुरस्य अस्ति काण काना ।

(३४) **द्वन्द्वसमास** से उपताप रोगवाचक, गर्ह्य निन्दा अर्थक शब्दसे इनि हो । प्राणिस्थ चेतन जीवका विषय होने पर । भूमनिन्दा आदि अर्थमे । द्वन्द्वका उदाहरण । कटकञ्च बलयश्च आकृतिभेद, कल्पनासे द्वन्द्व । कटकवलय अस्ति अस्य, इनि सु आदि । **कटकवलियिनी** कुण्डलवानी । शङ्खश्च नूपुरश्च । शङ्कनुपुरौ अस्ति अनयो **शङ्खनूपुरिणी** । उपताप रोगका नाम । कुष्ठमस्तिस्य **कुष्ठी** कोढ रोगी । किलास अस्ति अस्य किलासी गलितकुष्ठ, निन्द्य अर्थमे ककुद ग्रीवाके नीचे पीछे अवस्तात् पृष्ठ भाग मोटे कन्धेपर आवर्त भवरीका होना निन्द्य है । ककुदावर्तं अस्ति अस्य ककुदसे इनसु आदि ककुदावर्ती, काकस्य इव तालुके काकतालुके ते अस्या स्त कौवाके तारुके समान तारु हो । जिसके—इनि आदि । प्राणिस्थ (चेतन) क्यो कहा ? पुष्पाणि च फलानि च सन्ति अस्मिन्पुष्पफलवान् घट । चेतन नही है इन् न हो (वा०) प्राणि का कोई अङ्ग हो, उससे न हो । पाणिश्च पादश्च प्राणिपादौ अस्त अस्या पाणि

पुष्पफलवान्घट । 'प्राण्यङ्गान्न' । पाणिपादवती । 'अत' इत्येव । चित्रकललाटिकावती । सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम् । (१६३५) **वातातीसाराभ्या कुक्च ५।२।१२६।।** चादिनि । वातकी । अतिसारकी । रोगे चायमिष्यते । नेह । वातवती गुहा ।* 'पिशाचाच्च' पिशाचकी । (३६) **वयसि पूरणात् ५।२।१३०।।** पूरणप्रत्ययान्तान्मत्वर्थे इनि स्याद्वयसि द्योत्ये । मास सवत्सरो वा । पञ्चमोऽस्यास्तीति पञ्चम्युष्ट्रः । ठनादिबाधनार्थमिदम् । वयसि किं ? पञ्चमवान् ग्राम । (३७) **सुखादिभ्यश्च ५।२।१३१।।** इनिर्मत्वर्थे । सुखी । दु खी ।* 'मालाक्षेपे' माली । (३८) **धर्मशीलवर्णान्ताच्च ५।२।**

पादवती, अङ्ग होनेसे इनि नही हुआ । अत इत्येव ह्रस्व अकारसे ही इन हो, आकारसे नही । मण्डूकप्लुतिसे अत् आया । चित्रकञ्च ललाटिका च द्वन्द्व **चित्रकललाटिकावती** अस्ति अस्याः आकारान्त है न इनि, किन्तु मतुप् ङीप् । अत इन्ठनौसे इन आजाता, यहा क्यो पढा ? सिद्धे—इन् प्रत्यय तो सिद्ध है पुन पढना ठन् मतुप् बाधनेके लिए ।

(१६३५)**वात**, अतिसारसे भूमा, नित्ययोग आदि अर्थमे इनि कहे । प्रकृति को कुक् हो, क इत् उ उच्चा० । कित्से अन्त्य अवयव । वात वायुरोगमस्ति अस्य **वातकी**—गठिया रोग । वातसे इन्, क । वातरोगवान्, अतिसार गुदरोग अस्ति अस्य इन् । कुक् । अतिसारकी ।(वा०) **रोगे**=रोगमात्रमे इन् और कुक् होगे । नेह—यहा नही हुआ, वात अस्ति अस्या **वातवती** हवादार गुफा । यहा रोग अर्थ न होनेसे कुक् नही हुआ ।(वा०) पिशाचसेभी इन्,कुक् कहे पिशाचकी पिशाचवाली गुफा । ।३६। **वयसि**—पूरण अर्थक प्रत्यय अन्तसे इनि हो । अर्थके मत्वर्थमे, आयुका विषय हो । मास—महीना या सवत्सर (वर्ष पाचवा है) अर्थ पञ्चाना पूरण पञ्चम से इन् सु आदि । **पञ्चमी** पाचवामाह या वर्ष का ऊट बालक, वय का विषय है । अत इनिठनौसे इन् आता ही, इस सूत्रमे इन् पढना ठन्बाधनेवास्ते । वयसि किम् ? अवस्थाका विषय क्यो ? पञ्चम अस्ति अस्य पञ्चवान्ग्राम अवस्था नही खुली, न इन् ।

।३७। **सुख** आदिगणपढे शब्दसे इनि हो, भूमादि अर्थमे, ठन् रोकनेके लिये सूत्र । सुखमस्ति अस्य सुखसे इनि, सु आदि । **सुखी** । दुखमस्ति अस्मिन् **दु खी** दु खसे इन् दुखिन् सु आदि । [ग] **माला** से क्षेप निन्दा तिरस्कार अर्थमे इनि हो । सुखादिका गणसूत्र । माला अस्तिअस्य मालीका निन्दामे योग, इन्आदि

[३८] **धर्म, शील, वर्ण** अन्तमे हो उससे इनि ही कहे, नित्ययोगभूमादि

१३२॥ धर्माद्यन्तादिनिर्मत्वर्थं। ब्राह्मणधर्मी। ब्राह्मणशीली। ब्राह्मणवर्णी। (३९) **हस्ताज्जातौ ५।२।१३३॥** हस्ती। जातौ किं? हस्तवान्पुरुष। (१९४०) **वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ५।२।१३४॥** वर्णी। (४१) **पुष्करादिभ्यो देशे ५।२ १३५॥** पुष्करिणी। पद्मिनी। देशे किं? पुष्करवान्करी।* 'बाहूरुपूर्वपदाद्बलात्' बाहुबली। ऊरुबली।* 'सर्वादेश्च' सर्वधनी। सर्वबीजी।*

अर्थमे ब्राह्मणस्य धर्मं ब्राह्मणधर्मं अस्ति अस्मिन्। इन्, सु, आदि ब्राह्मणधर्मी विप्रकी गुण विशेषता जिसमे हो। ब्राह्मणवन शील, स्वभाव अस्ति अस्य इनि आदि। ब्राह्मणशीली। ब्राह्मणवत्=वर्ण आकृति रूपमस्ति अस्य **ब्राह्मणवर्णी**। वर्ण अन्तसे इन् हुआ। शील अन्त, धर्म अन्त। ब्राह्मणवत् धर्मो अस्ति णस्य। [३९] **हस्त** शब्दसे नित्य योगादि अर्थमे इनि हो, समुदायसे जाति अर्थं जान पडने पर। हस्त अस्तिअस्य हस्ती—हाथी जाति समुदायका अर्थ खुल रहा है। हस्तसे इन—हस्तिन् सु आदि **हस्ती**। जाति क्यो हस्तौ अस्ति अस्य हस्तवान् पुरुष हाथवाला चैत्र। जाति नही जान पडी, न इन्।

(१९४०) **वर्ण** से इन हो नित्यसम्बन्ध मे। समुदायसे ब्रह्मचारी अर्थं खुले। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनोका यथा उचितमस्तु (बसन्त आदिकालमे उपनयन ही **वर्ण** है) सो अस्यास्ति अर्थे इन् वर्णिन् सु। नान्त उपधाको दीर्घ, **सुलोपनलोपौ वर्णी**—ब्रह्मचारी। (४१) **पुष्कर** आदि गण पढे शब्दसे सम्बन्ध अर्थमे इनि हो, समुदायसे देश अर्थमे। पुष्कर. अस्ति अस्मिन् **पुष्करिणी** फूल बहुलदेश। पद्मअस्ति अस्मिन्देशे **पद्मिनी** कमल बहुलदेश। देश क्यो पढा? पुष्करवान् हाथी फूलवाला है, देश अर्थ नही खुला, न इन्। (वा०) बाहु, ऊरु पूर्वपद हो, वलसे भूमानित्यसम्बन्धादि अर्थमे इनि ही हो। बाहुबलमस्ति अस्य भुजामे भारीशक्ति अर्थे, इन्आदि। ऊरुबलमस्तिस्य जघनमे शक्तिवाला समुदायार्थ (वा०) **सर्वादेश्च**=सर्वशब्द आदिमे हो, तब इन्प्रत्यय ही कहे। सर्वधनमस्ति अस्य **सर्वधनी**, सभी धनवाला। सर्वबीजमस्ति अस्य सर्वबीजी, सभी बीजका व्यापारी। सर्व आदिमे है अतः इन हुआ। (वा०) **अर्थ** से इनि हो यदि वह अर्थ असन्निहित—विषयक अर्थ शब्दात् इनिरेव। असन्निहितो अर्थो अस्ति अस्य **अर्थी**, याचक, भिक्षुक जिसके पास धन नही, विद्याया अर्थः प्रयोजनमस्ति अस्य विद्यार्थीके पास नही हे अत **विद्यार्थी**। विद्या होती विद्वान् होता। धन नही अत धनार्थी, धन होता धनवान् कहलाता। अथवा उपयोगिता समाप्त वस्तु या व्यक्तिभी असन्निहितका अर्थ। मरा मनुष्य, अनुप-

'अर्थाच्चासन्निहिते' अर्थी । सन्निहिते तु अर्थवान् ।* 'तदन्ताच्च' धान्यार्थी । हिरण्यार्थी । (४२) **बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ५।२।१३६।।** बलवान, बली । उत्साहवान्–उत्साही । (४३) **सज्ञाया मन्माभ्याम ५।२।१३७।।** मन्नन्तान्मान्ताच्चेनिर्मत्वर्थे । मन्–प्रथिमिनी । दामिनी । म–होमिनी सोमिनी । सज्ञाया । किं ? सोमवान ।(४४) **कशभ्या बभयुस्तितुतयस. ५।२।१३८।** कम्, शम् इति मान्तौ । कम इत्युदकसुखयो, शम इति सुखे । आभ्या सप्त

योगी शव अर्थी है । अस्ति न कहे । वतमानमे अर्थके अभावके कारण ञन इनिठनौसे इन अर्थसे इन् सु आदि अर्थी पढा । सन्निहिते तु यदि उपस्थितअर्थ हो तब मतुप् होगा, अथवान् बनेगा । तदन्त=प्रत्ययविधिमे तदन्तका निषेध होनेसे वार्तिक पढा । तदन्ताच्च=अर्थशब्द अन्तमे हो उससेभी इनि कहे । अत धान्यस्य अर्थ धानकी आवश्यकता हो, (अस्ति अस्य) धान्यार्थी अथ अन्तमे है इनि हुआ । हिरण्यस्य अर्थ आवश्यकता अस्ति अस्य सोनालोभी । वस्त्रार्थी भोजनार्थी । (४२) बल आदिगण पढे शब्दसे मतुप् विकल्पसे हो, नित्यसम्बन्ध भूमा अर्थमे । बलमस्ति अस्य बलवान् बडो शक्तिवाला । मतुप् । अभावपक्षमे इनि । बली बलिनौ बलिन । उत्साह अस्ति अस्मिन् उत्साही उत्साहवान् । मतुप और इनके उदाहरण उत्साहका नित्यसम्बन्ध ।

(४३)सज्ञाया–किसीका नाम होनेपर मन् अन्त और म अन्त शब्दसे इनि हो अस्मिन्नस्ति अस्य अर्थमे । प्रथिमा अस्ति अस्याः प्रथिमिनी । प्रसिद्धि हुई तारिका । पृथ्वादिभ्य से इमनिच् प्रथिमन् । यद्यपि यहा मन अनर्थक है । अर्थवद् ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणन्तथापि अ-इन्अस्मन् ये अनर्थक भी मान्य है । प्रथिमिन्से इन, टिलोप । नान्त मानकर ङीप् । दामिनी । (ददाति प्रकाश) दा धातुसे मन । दामन् अस्ति अस्मिन् विद्युत जिसमे हो । दा–इन्प्रत्यय नस्तद्धिते टिलोप । ऋन्नेभ्यो ङीप् दामिनी । बादल बिजली जिससे है । होमस्ति अस्मिन् होमिनो । हुधातुसे हवनकर्ता अर्थमे मन् । सु धातुसे मन् सोमन् । अर्ति स्तु सु हु सृ घृ आदि उणादि सूत्रसे मन् । इन्, होम सोम शब्द म–प्रत्यान्त है । उससे इन् ङीप् हवनकर्ता जिस क्रियाका हो । सोमलता निचुडे जिस क्रियामे वह सोमिनी । सज्ञाया किसीका नाम हो ऐसा क्यो ? सोम अस्ति अस्मिन् सोमवान्ग्राम सोमलताका रस कही भी हो सकता है । किसीका नाम नही । (४४) कम शम शब्दसे ब भ युस् ति, तु, त, य ये सात प्रत्यय हो, इनके बीच द्वन्द्व, प्रथमबहुवचन । क जल और सुख अर्थमे हो, और शम केवल सुख अर्थमे तभी इनसे सात प्रत्यय हो । मत्वर्थमे युस् और असूका स पदसज्ञा

प्रत्यया स्यु । युस्यसो सकार पदत्वार्थं । कव्व । कम्भ । कय्यु । कन्ति, कन्तु । कन्त । कय्य । शव्व । शम्भ । शय्यु । शन्ति । शन्तु । शन्त । शय्य । अनुस्वारस्य वैकल्पिक परसवर्णं । वकारयकारपरस्यानुनासिकौ वयौ,

(१९४५) तुन्दिबलिवटेर्भः ५।२।१३९॥ वृद्धा नाभिस्तुन्दि । 'तुवन्धो-पधोऽयम्' इति माधव । तुन्दिभ । वलिभ । पामादित्वाद् बलिनोऽपि ।(४६)

अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०॥ 'अहम्' इति मान्तमव्ययमहङ्कारे । शुभमिति शुभे । अहयु, अहङ्कारवान् । शुभयु, शुभान्वित । इति मत्वर्थीया ।

के लिये है, अन्यथा भसज्ञासे पदसज्ञा न हो पाती । तब अनुस्वारभी न हो पाता । क–जल सुख अस्ति अस्य कम्बः–जलाशय या सुखी । कम–से वप्रत्यय भ होनेपर कम्भ । कम् यु युस् । अनुस्वार परसवर्णमे यवलपरे यवला(वा)कम् से ति, मको अनुस्वार परसवर्ण कन्ति । तु त य सभी रूपोके एक अर्थ । कम् उदक अस्ति अस्य । जलाशय या सुखी । एव श, सुखमस्ति अस्मिन् शम्ब । सुखी । भ, युस् आदि होनेपर अर्थ समान । सबका मस्त अर्थ । सयु यहा यवलपरे यवला वा । शन्ति शन्तु शन्त का अर्थ सुखवाला । श सुखमस्ति अस्य शन्त । अनुस्वारस्य विकल्पेन परसवर्ण । व और यपरे अनुनासिक व य ही हुआ करता है । बहुव्रीहि दन्त्योष्ठयादि, न तु पवर्गतृतीय ।

(१९४५) **तुन्दि** वलि, वटि इनमे (अयमस्ति अस्य) अस्मिन्वा अर्थमे भ–प्रत्यय हो । समाहारद्वन्द्व, पञ्चमी एकवचन । पु, ऋषि प्रमाणसे । वृद्धा=बढी हुयी नाभिको तोद कहते हे । तुन्दि अस्ति अस्य अर्थं भ **तुन्दिभ** । तोद वाला । माधवके मतमे (तुडि तोडने) अर्थमे तुण्डधातु । वृद्धा नाभिस्तु-ण्डि अस्ति अस्य **तुण्डिल** । तदैव तुण्डिभ तुण्डी (वलि वटेर्भ) बलमस्ति अस्य **बलिन** । (वल प्राणने) वटि –ऐठन दिया हुआ है उसमे वटिभ वटी हुई रस्सी (वट् वेष्ठने लपेटने) अर्थमे इन् । वटिशब्द पामादिगणमे है । अत वटि-न भी होगा । वटन वटि सो अस्यास्ति । अत बलिन भी बनेगा ।

(४६) **अह** शुभसे युस् हो अह मान्त अव्यय, अहकार अयमे । अह करो मिति अहकार स अस्ति अस्मिन् अर्थे युस् **अहयु** घमण्डी । पक्षमे मतुप् शुभ मङ्गलकल्याणमस्ति अस्मिन् शुभ सु शुभसे जुडा हुआ । अनुस्वार परसवर्ण पूर्ववत् । **इति मत्वर्थीयप्रकरणम्** ।

अथप्राक्दिशीया —

पञ्चम अध्यायके तृतीय प्राग्दिशीयप्रकरण समझाते है । इस अध्यायमे

अथतद्धिते प्राग्दिशीयप्रकरणम् ॥२६॥

(४७) प्राग्दिशो विभक्ति ५।३।१॥ दिक्छब्देभ्य इत्यत प्राग्वक्ष्यमाणा प्रत्यया विभक्तिसञ्ज्ञा स्यु । अथ स्वार्थिका प्रत्यया । 'समर्थानाम्' इति 'प्रथमात्' इति च निवृत्तम् । 'वा' इति त्वनुवर्तत एव ।(४८) किंसर्वनामबहुभ्यो ऽद्व्यादिभ्य ५।३।२॥ किम सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते । (४९) इदम इश् ५।३।३॥ प्राग्दिशीये परे । (१९५०) एतेतौ रथो: ५।

जितने प्रत्यय है उनके अन्य हल्को चुटु, लशकु—अतद्धिते, आदिसे इत्सञ्ज्ञा प्राप्त है उनका बाधक सूत्र **न विभक्तौ तुस्मा** । विभक्तिमे त थ द ध न–स, म, इत्सञ्ज्ञक नही होते (निषेधके लिये) विभक्तिसञ्ज्ञासूत्र । (४७) **प्राक्**=दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य सूत्रसे पहलेकहे जानेवाले प्रत्ययोकी विभक्तिसञ्ज्ञा हो । दिक्शब्दघटित सूत्रमिष्टम् । विभक्तिसञ्ज्ञाका चार फल—न विभक्तौ तुस्मा से निषेध, विभक्तिपरे त्यदादीनाम से अत्व, इदम इश, ऊजिडम्पदात्से स्वर होना । वे प्रत्यय स्वार्थिक है स्व प्रकृति तस्य अर्थ स्वार्थः तत्र भवा स्वार्थिका । प्रत्ययका अपना अर्थ नही होता । प्रकृतिके अर्थसे अर्थवान् है । क्योकि तसिल्, त्रल्, द्, अत् दा, दानीम् आदिके अर्थ निर्दिष्ट नही तथा अतिशायने तमबिष्ठनौ इष्ठन् तमप्का अतिशय वृद्धि, अधिक अथ प्रकृतिमे ही सम्भव, प्रत्ययका निजीअर्थ नही । इसका परिणाम निकलाकि समर्थाना और प्रथमात् का अधिकार समाप्त हुआ । क्योकि अलग अर्थ मिलकर समर्थ होते है । स्वार्थ मे सामर्थ्य नही रहा । केवल वा (विकल्प) आता ही हैं, व्याख्यान प्रमाणसे । अधिकारसूत्र । (४८) **किं** । सभी सर्वनाम और बहु शब्दसे प्रत्यय हो, **अद्व्यादिभ्य** =द्वि युष्मद् भवतुको छोडकर । द्वि आदिके अधिकारके निषेधसे किम्को सर्वनाम होनेपर भी अलग पढा । इस सूत्रमे विधेय (प्रत्यय)का उच्चारण न होनेसे **अधिकारोऽय** । कहा तक प्राग्दिश तक । द्वि आदिमे किम् ? के पाठ का फल क्या है । त्व च कश्चको, तुम और कोई । अह च कश्च कौ, मै और कोई । भवाश्च कश्च कौ, इन प्रयोगोमे किं शेष रहा । क्योकि **त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परे तत् शिष्यते** । किं परमे है उसीका शेष । वक्षमाण तसिल् त्रल् आदि प्रत्यय परे कार्य होनेके लिये सूत्र ।

(४९) **इद** स्थाने इश् हो द्विक्शब्देभ्यः सूत्रसे पहलेके प्रत्यय तसिल् दा आदि प्रत्ययपरे रहते । शित् है, सर्वादेश हो, यथा—इत । अस्मात् विग्रहमे इदं से तसिल् इदको इश् । शित्सर्वस्य सम्पूर्णके स्थानमे इ । तस् । स को रुत्व विसर्ग इत: ।

३।४।। इदशब्दस्य 'एत' 'इत' इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। इशोऽपवाद। (५१) **एतदोऽन्** ५।३।५।। योगविभाग कर्तव्य। एतद। एतेतौ स्तो रथो। 'अन्'। एतद इत्येव। अनेकाल्त्वात्सर्वादेश। *'नलोप प्रातिपदिकान्तस्य' (५२) **सर्वस्य सोऽन्यतरस्या दि** ५।३।६।। प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्ययेपरे सर्वस्य सो वा स्यात्।(५३) **पञ्चम्यास्तसिल्**

(१९५०) एत इन् आदेश इदके स्थानमे हो, र, थ आदिके प्रत्ययपरे। जो प्राग्दिशीय=दिक शब्देभ्य के पहले पढे है। एतश्च इच्च द्वन्द्वसे प्रथमा—द्विवचन। रश्च थ च रथौ तयो रथो। र मे अ उच्चारणार्थ। रथो मे सप्तमी यस्मिन्विधि से तदादि। अत रेफादिपरे इदको एत्, यादिपरे इत् आदेश क्रम से हो। यथा अस्मात् अस्मिन्काले अथ। एर्तांह हिल्। इदको एत् एर्तांह। अनेन प्रकारेण इत्थम्। इदसे थम प्रत्यय। इदको इत् आदेश इत्थ, इस प्रकार से। इदम इशको बाधकर सूत्र लगेगा। (५१) **एतद**—दिक्शब्देभ्य मे पहलेके प्रत्ययपरे एतन शब्दको अन्आदेश हो स्वार्थमे। इमसे सिद्ध है कि एतत्को अन् ही हो, एत, इन् आदेश नही। वृत्तिकार एतदोऽश पढकर शकारको सर्वादेश अर्थ कहे। इस प्रसङ्गमे योगविभाग=सूत्रका अलगावकर दो अर्थ करते है। **एतद**=प्रथम सूत्रका अर्थ एतद्को एत, इन हो, रथो =र आदि, थ आदि प्रत्यय परे। जिसका एर्तांह **इत्थम्** उदाहरण। दूसरा सूत्र 'अन्' एतद्के ही स्थानमे अन् हो, रथो नही आया। **अत**, **अत्र** उदाहरण है। एतस्मिन्निति। अत्र सप्तम्यन्तसे त्रल्। एतद्को अन् अ अत्र ईस स्थानमे एतस्मादिति अत परम्। एतस्मिन्से तस् अन् आदेश। यदि अन्यादेश तदा नस्य इत्संज्ञा, अकारान्त। तब कहा अन्के अनेक अल् होनेसे सम्पूर्णके स्थानमे आदेश होगा। नकारकी इत् संज्ञाका फल नही इन् कैसे ? नित्स्वरका फल प्रत्ययस्वरसे होगा, परन्तु तस्मिन्काले तर्हि, अत, आदिमे नकार सुनाई न पडे तब कहा-**नलोप**=प्रातिपदिकका अन्त नकारका लोप होगा। (५२) **सर्वशब्द**के स्थानमे 'स' हो, विकल्पसे। दिक्शब्दके पहलेके दकरादि **प्रत्ययपरे**, यस्मिन् विधि से दि—का दकारादि अर्थ, सर्वस्मिन्काले **सदा**। सर्वसे दा, सर्वको स आदेश सदा—सभीसमय।

इस प्रकार कुछ आदेशोका विधान कहकर तसिल् आदि प्रत्ययपरे कहे गये प्रत्ययोका उपक्रम। (५३) **पञ्चम्यन्त**, किं, सर्वनाम और बहुशब्दसे तसिल् हो द्वि, युष्मद्, अस्मद् भवतुको छोडकर। कस्मात् इति कुत आगमन,

५।३।७॥ पञ्चम्यन्तेभ्य किमादिभ्यस्तसिल्वा स्यात् । (५४) कु तिहो. ७।२।१०४॥ किम कु स्यात्तादौ हकारादौ च विभक्तौ परत । कुत कस्मात् । यत । तत । अत । इत । अमुत । बहुत । द्व्यादेस्तु । द्वाभ्याम् ।(१९५५) तसेश्च ५।३।८॥ किंसर्वनामबहुभ्य. परस्य तसेस्तसिलादेश स्यात् । स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च वचनम् । (५६) पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥ आभ्यां तसिल् स्यात ।*'सर्वोभयार्थाभ्यामेव' परित ,इत्यर्थं । अभित उभयत इत्यर्थं ।(५७)

किस स्थानसे आये ? किं शब्दसे पञ्चमी अथमे स्वार्थिक तसिल् हुआ । अनुबन्धलोप, किम तस् ।(५४) कु-किम् के स्थानमे कु आदेश हो त, ह आदिपरे । तिश्च ह च तिहो । इ-उच्चा० । कु लुप्त प्रथमा, किम आया । जष्टन् आसे विभक्तिभी । तदादिविधि, किम कु, रुत्व विसग **कुत** । तसिलादय प्राक्पाशप कहनेसे अव्यय मान्य । वा का फल बोले— **तस्मात्** भी रहेगा । ति–ह परे नही, कु आदेश **भी** नही । सर्वनामका उदाहरण—यस्मात् विग्रहे यत्प्रत्यय **तद्धितान्त–**प्रा० सज्ञक । सुपोलुक् । यत्, तस्, तासिल्को विभक्तिसज्ञाका फल **त्यदादीनाम से अत्व,अतो गुणे पररूप** । पक्षमे **यस्मात** । एव तस्मात् इति **तत** । तस्, विभक्तिसज्ञा, अत्व, पररूप पूववत् । एतस्मात् **अत** । तसिल्, सुपो लुक्, एतद् स्थाने अत्, सर्वादेश' नतोरा । पक्षमे एतस्मात् । जब इत् आदेश तब **इत** । इद शब्दसे पञ्चम्यन्त देखकर तमिन्का लुक्, इदको इश । इत । पक्ष मे **अस्मात** भी । अमुष्मात् इति **अमुत** । अमुकव्यक्तिसे । अदस्के पञ्चम्यन्तसे तसिल् । **अदसेऽसेर्दादुदोम** अमुत पक्षे अमुस्मात् । बहुभ्य इति बहुत दो रूप, तसिल्के विकल्पसे । द्वि आदिमे तसिल् नही होता द्वाभ्या ही रहेगा । **अद्व्यादिभ्यः** के निषेधसे ।

(१९५५) **तसेश्च** किं, सर्वना बहुशब्दसेपरे तस्को तसिल् आदेश हो । स्वर मे अन्तर है । लित्स्वर । हन प्रतियोगे पञ्चम्यास्तिसि , अपादाने चाहीयरुहो से तस्को तसिल् इष्ट, लित्स्वर भेदक है । विभक्तिनिमित्तक त्यदादीनाम से अत्व वास्ते । क्योकि तस प्राग्दिशीय नही, विभक्तिसज्ञा नही होगी । अत्व **भी नही** होगा । (५६) **परि, अभि** से भी स्वार्थ मे तसिल् कहे ।(वा०) सर्व उभय के लिये भी तसिल् मान्य परित सिञ्चति परिसिञ्चति । परिसे परे तसिल् हुआ । 'वा' के आनेसे पक्षमे नही हुआ, अभिसे भी । अभित सिंचति चारो तरफ सीचता है दोनो ओर सीचता है । क्योकि परि=सर्वके **अथमे** 'अभि' उभय **अर्थमे** । **शब्दका अभिधान स्वभाव हेतुसे है** । भेदमे परि उपरि **आभि**

सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥ कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र । ।५८। **इदमो हः ५। ३।११॥** त्रलोऽपवादः । इहादेशः । इह । ।५९। **किमोऽत् ५।३।१२॥** वाग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे । त्रल् । (१९६०। **क्वाऽति ७।२।१०५॥** किमः क्वादेशः स्यादति । क्व कुत्र । ।६१। **वा ह च च्छन्दसि ५।३।१३॥** 'कुह स्थः' । 'कुह जग्मथुः' ।६२। **एतदस्त्रतसोस्त्र-**

मुख्ये अर्थे । अभि अर्थमे भी तसिल् । 'वा' कि अनुवृत्तिसे ।

(५७) **किं सर्वनाम** बहु–सप्तम्यन्त हो द्वि आदिको छोडकर उनसे त्रल् हो, कस्मिन् इति कुत्र । त्रल् होनेपर (कुतिहोः) से किं को कु आदि । कुतः की तरह त्रल् और तसिल् स्वतन्त्र प्रत्यय है। यस्मिन्स्थाने **यत्र** तस्मिन्स्थाने तत्र । बहुषु स्थाने **बहुत्र** । सप्तम्यन्तमे त्रलको विभक्तिसंज्ञाका फल=यत्र तत्रमे अत्व आदि, कहा जहा तहा, बहुत स्थानमे, क्रमसे अर्थ कुत्र बहुत्र । कुतः बहुतः मे त्र तसिल् स्वतन्त्र प्रत्यय है । सप्तमी पञ्चमीके स्थानमे आदेश नही । इसका फल अच्च-र्घेडिति का न लगना । (५८) **इदः** शब्दके सप्तमी अन्तमे ह हो, स्वार्थमे, त्रल्को बाधकर । अस्मिन्स्थाने **इह** । इद ङि । सप्तम्यन्तमे ह प्रत्यय । इदम इश् इदके स्थानमे इ आदेश हुआ । **इह** । इस स्थानमे–स्फोटार्थ ।

(५९) **किम्के** सप्तमी अन्त दशासे अत हो विकल्पसे, पक्षमे त्रल भी । उत्तरसूत्र वा, ह, च, छन्दसि से 'वा' आया, आकर्षणमे व्याख्यान प्रमाण । **अत्** मे त इत् का निषेध, न विभक्तौ तुस्मासे नही होता । क्योकि **तवर्गस्य इत्व प्रतिषेध –अतद्धिते** । वार्तिक प्रमाणसे । अथवा न विभक्तौका निषेध अनित्य है, थमुका उकार मकारका रक्षक होनेसे ।

(१९६०) **क्व अति**–इदके स्थानमे क्वआदेश हो अत्प्रत्यय परे । किम क से किम आया । कस्मिन्स्थाने इति **क्व कुत्र** । किम ङि दशासे किमोऽत्–अत्प्रत्यय किम को क्व आदेश । क्व कहा पर । किममे कुत्र–किम्से । त्रल् पाक्षिक है । कुतिहो से किम को कु आदेश । **कुत्र** कस्मिन्स्थाने, **भागवृत्तिकार**=भाषामे त्रल् नही चाहते तथापि बहुत प्रयोगोके दर्शनसे त्रल्स्वीकृत । यथा **नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषमित्यमरः** । बोन्ने–**साहचर्याच्च कुत्रचित्** । इन वाक्योमे कुत्र पढा, भाषामे त्रल् दीखा । (६१) **वा ग्रहण** के आकर्षणका स्फोटकसूत्र । ह लुप्ता प्रथमा । सप्तमी अन्त किम्से ङिसे ह प्रत्यय हो । चसे अत् त्रल् भी हो, छन्द वेदमे । इसे वैदिक प्रक्रियामे पढना था, यहा क्यो (वा०) के **अपकर्षण** ज्ञानके लिये । कस्मिन्स्थाने **कुह** स्थः, कहा पर ठहरे । कहा जाओगे । कुह जग्मथुः ।

तसौ चानुदात्तौ २।४।३३।। अन्वादेशविषये एतदोऽश् स्यात्स चानुदात्तस्त्र-तसो परत, तौ चानुदात्तौ स्त । एतस्मिन्ग्रामे सुख वसाम । अतो अत्राधीमहे, अतो न गन्तास्म । ।६३। **इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४।।** पञ्चमी-सप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । * 'दृशिग्रहणाद्भवदादियोग' एव स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । त भवन्त । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम । एव दीर्घायु । देवाना प्रिय । आयुष्मान । ।६४। **सर्वैकान्यकिय-**

कु कहा पर । (६२) **एतद** इस सूत्रमे अन्वादेश, अश्, अनुदात्त तीनो आये । इदमो अन्वावशे सूत्रसे अन्वादेश (एक काम हो गया है दूसरेमे लगना है ऐसे) विषयकी स्थितिमे एतद् स्थाने अश् सम्पूर्ण आदेश हो । त्र और तस् अनुदात्त मान्य । एतस्मिन् इस गावमे सुखसे हू । इसलिए **अत्र**=यहा पढ़ता हू **अत** अन्य गावोमे नही जाऊगा । निवास काम पूरा हुआ अध्ययन चल रहा है । अन्वादेशका विषय बना । एतद् ङि से त्रल्, एतन्को अश्, अनुबन्धलोप । **अत्र अधीमहे** । इस गावमे पढता हू । जब तसिल् तब **अत** । शेष कार्यपूर्ववत् । नही जाऊगा क्योकि सुखसे रहता हू । एतदो अन्से भी सिद्ध होता, किन्तु अनुदात्तके लिए अश् पढा ।(६३) **इतर**=पञ्चमी सप्तमीसे भिन्न प्रथमा द्वितीया आदि । विभक्ति अन्तसे भी त्र, तसिल् आदि देखे । (वा०) **सूत्रके** दृशिग्रहणसे स्पष्ट है कि भवतु किम् आदिके सयोग=सम्बन्धमे ही अन्य विभक्तियोंसे ही तसिल्, त्रल हो । जैसे तस्मात् विग्रह है प्रथमान्त ततसे तसिल् । जिसको विभक्तिसज्ञा त्यदादीनाम से तको अत्व, अतो गुणे पररूप । तत , अथवा त्रल् अत्व आदि । तत्र भवान । यहा प्रथमान्तसे प्रत्यय देखे गये । द्वितीयान्तसे भी विग्रह **त भवन्त**, पश्य—पैदा होते हुए उसको देखो । तत् अम्, से तस् त्रल् विभक्तिसज्ञा । जिसके परे अत्व पररूप । **तत** तत्र—यहा द्वितीयान्तका क्रिया जन्य फलाश्रय अर्थ । इसी तरह **कि भवान् कुतो भवान् कुत्र भवान्**, आप क्या है । **स दीर्घायु** विग्रहसे तस् । **ततो दीघायुः**, जब त्रल् । **तत्र दीर्घायु** । त दीर्घायु , ततो, तत्र । स देवाना प्रिय तव । तत्र स आयुष्मान् । ततः का प्रथमान्तार्थ ही तद्धितार्थ है । स आयुष्मान् त, ततो, तत्र आयुष्मान् आदिके सम्बन्धमे ही इतर विभक्तियोसे त्र आदि होते है । **ततो भवता, तत्र भवता तस्मै भवते** ततो भवते तत्र भवते । तस्य भवत ततो भवतः तत्र भवत इत्यादि ।

।१९६४। **सर्व एक** अन्य किम यत् तत् शब्दसे सप्तमी अन्तसे कालसमय सूचक अर्थमे वा प्रत्यय हो, किं, सर्वनाम आदिसे सभी काल (भूत भविष्य

त्तद काले दा ५।३।१५।। सप्तम्यन्तेभ्य कालार्थेभ्य स्वार्थे दा स्यात् । सर्वस्मिन्काले । सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किं ? सर्वत्र देशे । **१६६५ इदमो हिल् ५।३।१६।।** सप्तम्यन्तात्काले इत्येव । हस्यापवाद । अस्मिन्काले एतर्हि । काले किम् । इह देशे ।**६६। अधुना ५।३।१७।।** इदम सप्तम्यन्तात्कालवाचिन· स्वार्थे अधुनाप्रत्यय स्यात् । इश् ।* 'यस्य' इति लोप अधुना । ।**६७। दानी च ५।३।१८।।** इदानीम् । ।**६८। तदो दा च ५।३।१९।।** तदा—तदानीम् ।* 'तदो दावचनमनर्थक

वर्तमान) कहना से सर्व ङि—से सभीकालमे दा । सर्वस्य सोऽन्यतरस्यादि से सर्वको 'स' विकल्पसे । **सदा** । पक्षमे सर्वस्मिन्काले भी रहेगा **सर्वदा** भी, विकल्प स भाव होनेसे । एकस्मिन्काले **एकदा** एक ही समय मे । दा होने पर तद्धितान्त प्रा० संज्ञा, सुपो धातुप्रातिपदिकयो से सुप लुक् **एकदा** । अन्यास्मिन्काले **अन्यदा** मिल, दूसरे समयमे मिलो । कस्मिन्काले **कदा** किस समय पढू । किम् शब्दसे दा । किं को क आदेश । यस्मिन्काले **यदा** । तस्मिन्काले **तदा**—दाको विभक्तिसज्ञा जिसके परे अत्व आदि । सूत्रमे काल क्यो कहा ? सर्वस्मिन्देशे **सर्वत्र** देश स्थान अर्थ खुल रहा हो दा न हो किन्तु त्रल् ।

१६६५ । **इद** से हिल् हो काल अर्थमे, सप्तम्यन्तसे । ह को बाधकर अस्मिन्काले **एतर्हि** । इसी समय । इद से हिल् इदं को 'एतैतो रथो' से एत आदेश एतर्हि । क्यो आया, देश अर्थमे न होने वास्ते । अस्मिन्स्थाने देशे **इह** ह प्रत्यय इश् आदेश । ।६६। **अधुना** सप्तमी अन्त, इद से काल अर्थ वाचकसे स्वार्थमे अधुना प्रत्यय । इद, सप्तम्या, काले तीनोकी अनुवृत्ति अस्मिन्काले **अधुना** । इद स्थाने इश् । यस्येति **च** से इ का लोप । अधुना प्रत्यय शेष रहा । प्रामाणिक बोले—

उदितवति परस्मिन्प्रत्यये शास्त्रयोनौ, गतवति विलय प्राकृतेऽपि प्रपञ्चे । सपदि पदमुदित केवल प्रत्ययो यत्, तदियदिति मिमीते कोऽधुना पण्डितोऽपि ।

व्याकरण और उपनिषदकी प्रक्रिया भेदसे दो अर्थ वाला श्लोक । १६६७ । **दानीं** सप्तम्यन्त कालवाचक इद से स्वार्थमे दानी प्रत्यय भी हो । अस्मिन्काले (इद शब्दात) दानीम् प्रत्यये इश आदेशे **इदानीम्** । १६६८ । **तदो** सप्तमी अन्त कालवाचक तत् शब्दसे दा हो, दानीम् भी । तस्मिन्काले **तदा** तत् से दा और दानी होने पर **तदानीम्** उस समय (वा०) तत्से दा

विहितत्वात्' **१९६९ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१॥** कर्हि-कदा। यर्हि-यदा। तर्हि-तदा। एतस्मिन्काले एतर्हि। **१९७० सद्यः परुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ५।३।२२॥** एते निपात्यन्ते।* 'समानस्य सभावो द्यस् चाहनि' समानेऽहनि सद्यः। 'पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः, उदारी च प्रत्ययौ संवत्सरे' पूर्वस्मिन् वत्सरे परुत्। पूर्वतरे, वत्सरे परारि।* 'इदम इश् समसण् प्रत्ययश्च संवत्सरे' अस्मिन्संवत्सरे ऐषमः। 'परस्मादेद्यव्यहनि' (वा)। 'परस्मिन्नहनि परेद्यवि। 'इदमो-

---

वचन अनावश्यक है क्योकि सर्वैकान्य सूत्रमे दा कहा गया।

।१९६९। अनद्यतने=आजका भूतकाल (भविष्ककाल वर्तमान को छोडकर) अनद्यतन भूत या भविष्य कालमे वर्तमान किम् यत् तत् एवत् के सप्तमी अन्त दशासे र्हिल् विकल्पसे हो। पक्षमे दा भी कस्मिन्काले कदा आगतवान् आगमिष्यति वा। कर्हि। कालवाचक किम् शब्दसे अद्यभिन्न भूतकालमे र्हिल्। किम- क। तर्हि किस समय खाया या खायेगा। कब मिलेगा। पक्षमे दा। यस्मिन्काले तर्हि मेलापकम् आसीत्। जब मेला लगा थी। तस्मिन्काले तर्हि यदा यत् तत् से र्हिल्। विभक्तिसज्ञा अत्व, पररूप। एतस्मिन् (इसी काल मे) एतर्हि एतत् के योग विभागसे रेफ परे एत् आदेश। सद्य परुत्, परारि इत्यादि सूत्रमे पढे शब्द निपातन (कल्पित प्रकृतिप्रत्यय) से सिद्धमान्य। सद्य समानेऽहनि आगमन, मेलनम् एकही दिन दिनो मिले, समानको 'स', अहनि को 'द्य' आदेश, निपातनसे हुआ। समानका विषय 'स', अहनि का विषय 'द्य' निर्णीत हुआ। ये इस सूत्रके सभी प्रयोग भाष्यवचनसे सिद्ध, जो मूलमे दिये गये है (वा०) पूर्व पूर्वतर सप्तम्यन्त दशासे पर, उत् आदि प्रत्यय हो, संवत्सर=वर्ष अर्थ खुलने पर। पूर्वस्मिन्वत्सरे गतवर्ष कहना हो, तब पूर्वके स्थानमे पर आदेश, उससे उत् प्रत्यय मिलकर परुत् बना। पारसाल अर्थ। पूर्वतर=उसके भी पहलेका वर्ष (परियार साल अथ) कहना हो पूर्वतर स्थाने पर आदेश। उससे आरि प्रत्यय परारि। (वा०) इद स्थाने इश हो। उससे समषण् प्रत्यय, वर्ष अर्थ मे। अस्मिन् इसी वर्ष अर्थ कहना हो, तब इद के स्थानमे इश् समस्। ण इत्। स मे अ अच्या०। णित् का फल आदिवृद्धि। इ को ऐ। ष को सत्व रुवि०। ऐषमः अस्मिन्वत्सरे (इसी साल) पुत्रो भविता (वा०) पर से

:श् भावो द्यश्व' अस्मिन्नहनि अद्य । 'पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च' पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्यु । अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्यु । उभयोरह्नोः, भयेद्यु । 'द्युश्चोभयाद्वक्तव्य' उभयद्यु । ७१ **प्रकारवचने थाल् ५।३।** २३।। प्रकारवृत्तिभ्य किमादिभ्यास्थाल्स्यात्स्वार्थे । तेन प्रकारेण तया । यथा ॥ ७२ **इदमस्थमु ५।३।२४।।** थालोऽपवाद । 'एतदो वाच्य' अनेन एनेन

ाहनिके स्थानमे एद्यवि आदेश हो । परस्मिन् अहनि (परसो के दिन अर्थ कहना हो) तो पर से दिन अर्थ मे एद्यवि मिलकर **परेद्यवि**–परसो । (वा०) दके स्थानमे अश हो द्य आदेशभी । अस्मिन् अहनि (आजही के दिन) ाथिति तुरन्त । इद को अश, अहनिको द्य आदेश । **अद्य** (आज) उत्सव । (वा०) **पूर्व अन्य** अन्यतर इतर, अपर, अधर, उत्तर–इनसे एद्युस् हो (भ ष्य चन है) पूर्व दिन अर्थमे एद्युस् **पूर्वेद्यु** पहले दिन । अन्यस्मिन् दूसरे दिन अर्थ मे **अन्येद्यु** । दोनो दिन अर्थमे **उभयेद्यु** उत्सव । (वा०) **उभय** शब्दसे द्यु भी हो । **उभयद्यु** दोनो दिनो की व्यस्तता ।

। १९७१ । **प्रकारवचने** सामान्यधर्म, भेदकधर्मका नाम प्रकार–विशेषण है । जैसे बहुभि प्रकारैर्भुङ्क्ते । कई तरहसे खाता है । खानेकी क्रियासे जो तरीका–ढग विशेषण ही प्रकार है । यहाँ सादृश्य नही लिया जाता क्योकि सर्वप्रकारेण **सर्वथा** कहने पर किससे समानता है समझ मे नही आती । **प्रकारे गुणवचनस्य**–प्रकारका सादृश्य अर्थ है वैसा यहा नही । परन्तु अव्यय विभक्ति सूत्रमे यथाशब्दका सादृश्य अर्थ भी कहा गया । यहाँ थाल् प्रत्ययका तुल्य अर्थ नही, किन्तु शैली, तरीका, भेद, विविध क्रिया आदि अर्थ । अत कहा प्रकारवृत्तिभ्य –तरह तरह का तरीका **अर्थमे** वर्तमान किम यत्, तत आदिसे स्वार्थमे थाल् हो । प्रथमान्त से नही होता अत तृतीयान्त पढा । तेन प्रकारेण विशिष्ट **तथा** । **यथा** हरि तथा हर । जो गुण हरिमे वही शङ्कर मे । हरि सदृशो हर इस **अभिप्रायसे** । यथा शब्द सादृश्य अर्थमे है । येन प्रकारेण **यथा**—थाल्से जातीयर् प्रत्यय नही बाधा जाता, अर्थभेदसे प्रकार अथमे थाल् **यथा** । स्वभावसे थाल् होनेपर तदन्तसे जातीयर होता है । **तथाजातीय यथाजातीय** अन्यथाजातीय ।

।१९७२। **इद** से प्रकार **अर्थमे** थमु प्रत्यय हो । उ–उच्चा, मकार रक्षणार्थश्च । यद्यपि न विभक्तौके निषेधसे मकी रक्षा होती है, तथापि निषेध के अनित्यत्व ज्ञापन के लिये मकार पढा (वा०) **एतद्** शब्दसे भी थम

वा प्रकारेण इत्थम् । (७३) **किमश्च ५।३।२५।।** केन प्रकारेण कथम् ।

इति तद्धिते प्राग्दिशीयप्रकरणम् ।।

अथप्रागिवीयप्रकरणम् ।।४०।।

१९७४ दिक्छब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्व-स्ताति ५।३।२७।। सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रूढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्य स्वार्थेऽस्तातिप्रत्यय स्यात् । **१९७५ पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ।५।३।३९।।** एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसिप्रत्यय स्यात् । तद्योगे चैषा क्रमात् 'पुर्' 'अध्' 'अव्' इत्यादेशा स्यु । **१९७६ अस्ताति च ५।३।४०।।** अस्तातौ परे पूर्वादीना पुरादय स्यु । पूर्वस्याम्–पूर्वस्या –पूर्वा वा दिक् । पुर –पुर–

कहे । अनेन एतेन वा (इस प्रकार से कार्य करे) इत्थम् । इदसे या एतद् से थम् । एतेतो रथो, यादिप्रत्ययपरे इदको इत् । योग–विभाग प्रमाणसे एतद् को इत् आदेश इत्थम् । ७३ । **किमश्च**=किमस भी प्रकार अर्थमे वर्तमान शब्दसे थम हो । किम क आदेश । किस प्रकार तरीकेसे अर्थमे किम् से थम् । क आदेश **कथम्** । प्राग्दिशीय प्रत्ययो की विभक्तिसज्ञाकी सीमा अवधि पूर्व हुई । अगले प्रत्यय विभक्तिसज्ञा से मुक्त हुये ।

प्राक् इवीया=इवे प्रतिकृतौ सूत्रके पहले हुये प्रत्यय का प्रकरण–इवे भवा इवीया । ७४ । **दिक्** दिशा अर्थमे रुढ शब्द हो, सप्तमी पञ्चमी या प्रथमा अन्तमे हो, दिशा देश काल तद्धितार्थ हो तब स्वार्थ–प्रकृति के अर्थ मे अस्ताति प्रत्यय हो । इकार उच्चारणार्थ । त अन्तसे सख्याया विधार्थे धा सूत्रतक अनुवृत्ति । अस्तातिको छोडकर अन्य शब्दपढनेसे रूढ अर्थ खुला, यथासख्य नही होगा । १९७५ । **पूर्व अधर**, अवरसे असि प्रत्यय हो, जो लुप्त प्रथमा है क्रमसे पूर्व को पुर्, अधर को अध्, अवर को अव् आदेश हो, जिनके बीच द्वन्द्व प्रथमा,बहुवचन है अस्तातिके अर्थमे दिग्देशकाल तद्धितार्थ खुलता हो, तब असि त्यय ।

। ७६ । **अस्ताति** लुप्ता सप्तमी । तकारान्त–सप्तमी एकवचन स्तातिपरे पूर्व अधर अवरके स्थानमे क्रमसे पुर, अध्, अव् आदेश हो जो अनुवृत्तिसे आये है । अस्तातिपरे पुरादि आदेश विधानके लिये सूत्र आवश्यक । सप्तमी पञ्चमी प्रथमा अन्तसे प्रत्यय का उदाहरण–पूर्वस्या पूर्वदिशामे, पूर्वदिशाका, पूर्वदिशा कहना हो, पूर्वाशब्दसे असि । पूर्वाको पुर् आदेश । पुरस् रुत्व विसर्ग

स्तात्। अध –अधस्तात्। अव। ७७। **विभाषाऽवरस्य ५।३।४१॥** अवरस्यास्तातौ परेऽव् स्याद्वा। अवस्तात्–अवरस्तात्। एव देशे काले च। दिशि रूढेभ्य. किम्? ऐन्द्रया वसति। सप्तम्याद्यन्तेभ्य किं? पूर्व ग्राम गत। दिगादिवृत्तिभ्य किम्। पूर्वस्मिन् गुरौ वसति।* 'अस्ताति च' इति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते। ७८। **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ५।३।२८॥** अस्तातेरपवाद। दक्षिणत, उत्तरत। ७९। **विभाषा परावराभ्याम् ५।३।२९॥**

पुर.। पक्ष मे अस्ताति प्रत्यय और पुर् आदेश हुआ। **पुरस्तात्** जिसका अर्थ पहलेके देश या कालमे। पहलेकी दिशा या देश कालका। अथवा दिशा-देशकाल ही अर्थ हुआ। **अध अधस्तात्**। अधरस्याम् अधरस्या अधरा वा दिक्। अधरशब्दसे असि और अस्ताति। अधरको अध् आदेश। रूपसिद्ध। दिशा, देश, कालके आधार अवधि प्रातिपदिकार्थमे अर्थ प्रत्यय। अध **अवस्तात्**। दिशा देश, कालके (पश्चात् अर्थके) अवरसे असि, अव् आदेश अवस् स–रुवि० अव। ७७। **विभाषा** अवरके स्थानमे अस्ताति परे अव् आदेश विकल्पसे हो। **अवस्तात्**। जब अव् नही तब **अवरस्तात्**, यदि ऐसा तब **पश्यामि तामित पुरतश्च पश्चात् इति भवभूति। स्यात् पुर पुरतो अग्रत इत्यमर., पुरत प्रथमेऽथाग्रे इति विश्व। समानकालीन पूर्व**कालीन, की तरह प्रमादवश मानिये। एव पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वो वा देश –**पुर, पुरस्तात्** पहलेके देशमे, देशसे या देश अर्थ। अथवा पहलेका काल, कालसे या काल, **पुरस्तात्** का अर्थ। **अव** पश्चात् अर्थ, दिशा देशकाल अथ। दिशिशब्देभ्य क्यो पढा? इन्द्र देवता अस्या, ऐन्द्री–पूर्वदिशामे रहता हे। यह निवास अर्थमे ऐन्द्री पूर्वदिशा रूढ नही, अस्ताति न हो। सप्तमी, पञ्चमी, प्रथमा अन्त क्यो कहा? पूर्वं ग्राम गत (पहले गाँव गया) द्वितीया अन्त है प्रत्यय न न हो, दिशादि–दिशा देशकाल अर्थमे वर्तमान हो ऐसा क्यो पढा? पूर्वस्मिन् गुरौ–पूर्वकालिक अध्यापनकर्तरि। पहले पढाते थे–यहाँ स्ताति न हो ऐसा क्यो दिशा देशकाल अर्थ नही खुलता, प्रत्यय न हो। स्ताति च सूत्रके ज्ञापन-प्रमाणसे असि प्रत्यय अस्ताति को नही बाधेगा। यदि बाधता तो अस्ताति च सूत्र व्यर्थ होता।

। ७८। **दक्षिण**, उत्तरशब्द दिशादेश काल अर्थमे हो, उससे अतसुच् कहे, अस्तातिको बाधकर। (दक्षिणस्या दक्षिणस्या दक्षिणा वा दिक् देश काल दक्षिणासे दक्षिण दिशासे का) दक्षिणदिशा अर्थमे अतस् **सर्वनाम्नो**

परत । अवरत । परस्तात् । अवरस्तात् । १९८० । अञ्चेर्लुक् ५।३।३०।। अञ्चत्यन्ताद्दिक्छब्दादस्तातेलुक्स्यात् ।* 'लुक्तद्धितलुकि' । प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक् प्राक् । उदक् । एवं देशे काले वा (१९८१) उपर्युपरिष्टात् ५।३।३१।। अस्तातेर्विषये ऊर्ध्वशब्दस्योपादेश स्यात्, रिल्रिष्टातिलौ च प्रत्ययौ । उपरि-उपरिष्टाद्वा वसति, आगतो, रमणीय वा । (१९८२) पश्चात्

वृत्तिमात्रे पुलिङ्गभाव दक्षिणत, उतरे उत्तरात् उत्तरा वा दिक् देशकाल अर्थ मे अतसुच अतस्–**उत्तरत** । ७९ । **विभाषा** विकल्पसे पर अवर शब्दसे अत-सुच्प्रत्यय हो, दिशा देश काल अर्थमे । परे, परात्, परा वा दिक् **परत** या परदेशे, वसति । परात आगत । परे रमणीय, काल से भी अतस् हुआ । **परत** बना । अवरस्मिन् ग्रामे वसति । अवरात् पश्चात् आगच्छति । अवरकाल अतस् अवरत , पक्षमे अस्ताति **परस्तात्** परकालमे से कालअर्थ । अवरस्तात् उस देशकालके बादका देशकालमे निवास आगमन आदि ।

(१९८०) **अञ्चे**=अञ्चधातु अन्तमे हो दिशा अर्थक शब्दसे परे अस्ताति का लुक् । प्राच्या=पूर्व दिशामे, प्राच्या =पूर्व दिशासे, पूर्व दिशा अर्थ कहना हो तब प्राची शब्दसे आधार, अवधि, नामार्थसे अस्ताति प्रत्ययका लुक् हो, क्यों कि प्रकर्षेण अञ्चति, अस्या दिशाया प्राक्—अञ्च अन्त है । दिशावाचक शब्द है, तद्धित प्रत्ययका लुक् हुआ हो, उसके पूर्वके प्रत्ययका भी लुक् हो । लिङ्ग विशिष्ट परिभाषासे अस्तातिका लुक् हुआ । पूर्वदिशा । देशकाल अर्थ, उदीच्या उदीच्या उदीची वा दिक् **उदक्** । उद् अञ्चतिसे उदीची बना उत्तरदिशामे से, आना, रमणीय । इसी तरह देश काल भी उत्तरभागके खुलते हो तबभी स्तातिका लुक् । उसके परे पहलेके प्रत्ययका लुक् । (८१) **उपरि** । **अस्ताते-र्विषये**=दिशा देश काल अर्थ खुलता हो,सप्तमी पञ्चमी प्रथमान्त हो,उर्ध्वशब्द को उप आदेश और रिल् रिष्टातिल् प्रत्यय भी हो । उर्ध्वे वसति, उर्ध्वात् आगच्छति उर्ध्वं रमणीय तीनो विभक्तियोके अन्तसे रिल् उर्ध्वको उपादेश । **उपरि** । जब रिष्टातिल् तब **उपरिष्टात्** उपरभागमे (के ऊपर) तद्धितार्थ । पक्षमे उर्ध्वे वसति, प्राच्या दिश आगत **प्रागागत** । उत्तरादागत , अधरा दागत (**पुर अग्रगमने**) आगे चलनेकी अनुकूलक्रिया ।

(८२) **पश्चात्** अपरके स्थानमे पश्च आदेश हो, आति प्रत्यय भी । इ—उच्चा० । अस्तातिका विषय—दिशा देशकाल अर्थ खुलनेपर अस्तातिको बाधकर अपरस्याम् अपरस्या अपरा दिक् पश्चात् । अपरस्थाने पश्च आत्–पश्चात् ।

५।३।३२।। अवरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययोऽस्तातेर्विषये । (८३) **उत्तराधरदक्षिणादाति** ५।३।३४।। उत्तरात । अधरात । दक्षिणात । (८४) **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या** ५।३।३५।। उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतो सामीप्ये पञ्चमी विना । उत्तरेण । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षे यथास्व प्रत्यया । इह केचिदुत्तरादीननुवर्त्य दिक्छब्दमात्रादेनपमाहु । पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण ग्रामम् । (१९८५) **दक्षिणादाच्** ५।३।३६।। अस्तातेर्विषये । दक्षिणा वसति । अपञ्चम्या इत्येव । दक्षिणादागत । (७६)

अपरस्मिन्अपरात अपर देश काल अन्यदिशामे (के) दिशा । अन्य देशमे (के) देश, अन्यकालमे, (के) काल अर्थ ।(८३) **उत्तर** अधर दक्षिणसे दिशा देशकाल अर्थमे आति हो । उत्तरस्या उत्तरस्या उत्तरा वा दिशा । उत्तर शब्दसे आत् **उत्तरात्** । उत्तरस्मिन् उत्तरात । उत्तर देश कालश्च उत्तरदिशामे (के)दिशा उत्तरात का अर्थ । उत्तरका देशकाल आदि । अधरस्याम अधरस्या वा दिशा नीचेकी दिशामे(के) और दिशा नीचेका देश रसातल पाताल आदि । दक्षिणस्या दक्षिणस्या दक्षिणदिशामे (के) दिशा अर्थमे दक्षिणासे आत **दक्षिणात्** । दक्षिणका देशकाल ।(८४) **एनप्** प्रत्यय हो विकल्पसे अदूरे=समीप अर्थमे पञ्चम्यन्तको छोडकर । **अपञ्चम्या** इति प्रागसेरिति भाष्यम् । उत्तर अधर दक्षिणसे एनप् हो अवधि अवधिमान् के समीपसम्बन्धमे । अदूरेका अर्थ अवधि अवधिमान्का समीपसम्बन्ध । उत्तरे उत्तर ग्राम उत्तरेण गावके उत्तरभागके समीप मे या पाससे गया, या उत्तरके समीप अर्थमे एनप् । उत्तरदेश दिशाकालके पासमें गाव । अधर स्याम् अधरादिशा निचले भागका । अर्थमे एनप् । अधरेण लोक , नीचेका देश या काल । अदूर सीमाका समीपसम्बन्ध अर्थ । दक्षिणस्या दक्षिणा दिशा अर्थमे एनप् । दक्षिणदिशामे समीप गाव दक्षिणदिशाके पासका स्थान । पक्षमे यथास्व जैसा प्रत्यय प्राप्त हुआ । अतसुच् **दक्षिणत उत्तरत.** । अस–अध अधस्तात् । आत् उत्तरात् अधरात् दक्षिणात । इह **केचित**=इस प्रसङ्गमे कोई उत्तरा अधरा दक्षिणाकी अनुवृत्ति न कर केवल दिशा मात्र अर्थमे एनप् कहे हैं । उनके मतमे गावकी पूर्वदिशा अर्थमे ग्रामसे एनप् पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण दूसरी दिशाके पासमें गाव ।

(१९८५) **दक्षिण** शब्दसे आच् हो अस्तातिका विषय–दिशा देशकाल अर्थ खुलनेपर, इससे अदूरेका न आना सिद्ध । आच् होनेपर **दक्षिणा** वसति, दक्षिण मे निवास । पञ्चमी अन्तसे नही होता **दक्षिणादागत** मे आच् नही हुआ,

आहिच दूरे ५।३।३७॥ दक्षिणाद् दूरे आहि स्यात्। चादाच्। दक्षिणाहि-दक्षिणा। (८७) **उत्तराच्च ५।३।३८॥** उत्तराहिउत्तरा। (१९९८) **संख्याया विधार्थे धा ५।३।४२॥** क्रियाप्रकारार्थे वर्तमानात्सख्याशब्दात्स्वार्थे धा स्यात्। चतुर्धा, पञ्चधा। (८९) **अधिकरणविचाले च ५।३।४३॥** द्रव्यस्य सख्यान्तरापादने सख्याया धा स्यात्। एक राशिं पञ्चधा कुरु। (९०) **एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ५।३।४४॥** ऐकध्यम्

पञ्चम्यन्त होनेसे। आत् दक्षिणात्। अतसुच् दक्षिणत त्रीणि रूपाणि।

(८६) आहि दक्षिणा शब्दसे दूर अर्थमे आहि हो। दक्षिणस्या दूरे भव। **दक्षिणाहि** आहि प्रत्यय हुआ—दक्षिणसे दूर अर्थ। पक्षमे आच् भी दक्षिणा दक्षिणात् **दक्षिणत** चत्वारि रूपाणि। (८७) **उत्तरशब्द** सेभी दूर अर्थमे आहि आच, अतसुच्, आत् होनेसे चार रूप। उत्तरदिशामे दूर निवास उत्तरावसति **उत्तरत**। उत्तरात् निवसति। (८८) **सख्याया.** विधाशब्दका अर्थ प्रकार है जो सामान्य धर्मका भेदक है। **विद्या—विधौ प्रकारे च इत्यमर**। अभिधानके स्वभावसे क्रियाके विषयमे भेदमान्य। अत कहा क्रियाके प्रकारार्थे=भेदविभाग अथमे **वर्तमान** सख्या शब्दसे स्वार्थ=प्रकृतिके अर्थमे धा हो। ओदन पिण्डभी विद्या है पर मान्य नही। चतुष्प्रकार **चतुर्धा** खादति, चार ढग से खाता है। खाना क्रियाके भेदमे धा। चतुष्प्रकारा भोजनक्रिया। पञ्चप्रकारा गमनक्रिया। पञ्चधा प्रविशति पाच प्रकारसे खुलता है। यदि क्रियाका भेद मान्य है तब नवधा द्रव्य, बहुधा गुणा मे द्रव्य गुण है, क्रिया नही, धा कैसे ? वहाँ भी उपदिश्यते भवति, आदि अश्रुत क्रियाका अध्याहार करके धा प्रत्यय है।

। ८९ । **अधिकरण**=द्रव्य, गुण क्रियाका आधार द्रव्य है उसका विचलन विचाल' सख्यान्तर करणम्, अन्यसख्यामे बदलना, अलग करना। अत कहा द्रव्यकी राशिका सख्यान्तर—दूसरीसख्या अनेक हो या एक उससे अपादाने अलग करने या मिलाने अर्थमे धा हो। न्यूनसख्याको अधिक करना, अधिक सख्याकी कमसख्या। प्रथमका प्रमाण एकराशिको पञ्चप्रकार **पञ्चधा** पॉच भाग करो, **पञ्चराशीं** कुरु। एकराशिको पाँचभाग करने अर्थमे धा पञ्चधा। द्वितीयेतु—अनेकम् **एकधा** कुरु, कई भागको एकमे मिलाओ, यहाँ राशि विषयक विभाग स्पष्ट है क्रियाका विभाग नही अत सूत्रारम्भ—

। १९९० । **एकात्**=एकशब्दसे हुये धा प्रत्ययके स्थानमे। ध्यमुञ् आदेश हो, विकल्पसे। एकप्रकारः **एकधा** भुङ्क्ते एक रीतिसे खाता है। धाके स्थान

एकधा। (९१) **द्वित्र्योश्च धमुञ्** ५।३।४५।। आभ्या 'धा' इत्यस्य धमुञ् स्याद्वा। द्वैधम्। द्विधा। त्रैधम्–त्रिधा।* '**धमुञन्तात्स्वार्थे डदर्शनम्**' पथि द्वैधानि। (९२) **एधाच्च** ५।३।४६।। द्वेधा। त्रेधा। (९३) **याप्ये पाशप्** ५।३।४७।। कुत्सितो भिषक् भिषक्पाश। (९४) **पूरणाद्भागेतीयादन्** ५।३।४८।। द्वितीयो भागो द्वितीय। स्वरे विशेष।

मे ध्यम्। ञित् से आदिवृद्धि। ऐकध्य यह प्रत्यय स्वतन्त्र मान्य क्यो नही? **अन्यतरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो** वा न्यायसे अधिकरण विचाले च के विषयमे ही विकल्पविधान वास्ते। परतन्त्र विधि है। **ऐकध्य** भुङ्क्ते। जब अधिकरण विचाले पक्षमे लगेगा तब ऐकध्य राशि कुरु अनेकराशिको एक करो।

।९१। **द्वि त्रिसे** धाके स्थानमे धमुञ हो विकल्पसे, षष्ठी पञ्चमी अर्थमे। ध, अन्यतरस्याम आये। एक राशि द्वि प्रकार द्विधा, द्वैध कुरु। दो भाग करो, द्वि से भाग करने अर्थमे धमुञ्। अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। पक्षमे धा ही रहा। त्रिप्रकार त्रिधा तीनभाग करो। त्रि से धा उसके स्थानमे धमुञ् (वा०) **धमुञ्** अन्त शब्दसे ड का दर्शन हो। स्वं प्रकृति तस्य अर्थ स्वार्थ मे डके साथ दर्शन–पढनेसे कही नही भी होता है। पथि—रास्तेके दो भागमे बाँटा हुआ तृण। द्वैध धमुञ् अन्त है उससे ड प्रत्यय। ड इत्के सामर्थ्यसे टिलोप। द्वैधानि–भाष्यप्रयोगसे अव्यय। यथासख्य निवारणाय योगविभाग।

।९२। **एधाच्च**–द्वित्रिसे परे धा स्थाने एधात आदेश हो। द्वि+एधा। इकारलोप द्वेधा। त्रिप्रकार, त्रेधा–तीन ढगसे। त्रिसे परे धा एधात, इकार लोप। पञ्चम्यास्तसिल् से लेकर एधाच्च तक विधान किये गये प्रत्ययान्त अव्यय सज्ञक है। ९३। **याप्ये निकृष्टप्रतिकृष्ट अर्वरेफयाप्याऽवमाऽधमा इत्यमर** अत्यन्त बुरा, बहुत खराब अधम आदि याप्यके अर्थ हैं। कुत्सित भ्रष्ट विश्वास घाती, छली अर्थमे वर्तमान शब्दसे पाशप् हो स्वार्थमे। प्रवृत्तिनिमित्त धर्म कर्तव्यगुणकी निन्दामे यह सूत्र लगता है। जिस निन्दितमे जातिगुणक्रियाका सम्बन्ध नही वहाँ कुत्सिते सूत्र लगता है। भ्रष्ट अधकचरा ज्ञानका भिषक्-वैद्यका नाम भिषक्पाश। नीम हकीम खतरे जान। अल्पविद्याभयङ्करी।

।९४। **पूरण** अर्थका प्रत्यय अन्तमे हो भाग हिस्सा अश अथमे। स्वार्थके अन् हो। दूसरा भाग मेरा है। द्वितीय ममास्ति द्वयो पूरण द्वितीय। पूरण अर्थके तीय प्रत्यय अन्तमे है उससे भाग अर्थमे अन्। त्रयाणा पूरणः

'तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्य' द्वैतीयीक –द्वितीय । तार्तीयीक –तृतीय ।* 'न विद्याया'। द्वितीया, तृतीया विद्येत्येव । (१९९५) **प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि ५।३।४९॥** पूरणप्रत्ययान्ताद्भागेऽन् । चतुर्थ । पञ्चम । ९६ **षष्ठाष्टमाभ्या ञ च ५।३।५०॥** चादन् । षष्ठो भाग षाष्ठ –षष्ठ । आष्टम· अष्टम. । (९७) **मानपश्वङ्गयो कन्लुकौ च ५।३।५१॥** षष्ठाष्टमशब्दाभ्या क्रमेण कन्लुकौ स्तो माने पश्वङ्गे च वाच्ये । षष्ठको भाग मान चेत् । अष्टमो भाग पश्वङ्गे चेत् । अस्यानो वा लुक । चकाराद्यथाप्राप्तम् । षष्ठ —षाष्ठ,

---

तृतीय से भाग अथमे अन तृतीयो भाग ममास्ति । अन् न होता क्या फर्क पडता, क्या विशेषता निकली–स्वरमे अन्तर । इञ्नित्यादिनित्यम । (व०) **तीय** प्रत्ययान्त से ईकक् हो स्वार्थमे । इष्ट सामके भाष्यमे है द्वितीयो भाग द्वैतीयक । द्वितीयसे ईकक् आदिवृद्धि । पक्षमे नही । तृतीयो भाग तार्तीयक तृतीयसे ईकक् । किति च आदिवृद्धि । तृतीय भाग तवास्ति (वा०) **विद्या** अर्थमे वर्तमान तीय प्रत्ययान्तसे ईकक् नही होता । द्वितीया दूसरी विद्या । यहाँ निषेधसे ईकक् नही हुआ । एव तृतीया विद्यात्वे वर्तते न ईकक्

। ९५ । **प्रागेका**=एकादश–ग्यारह सख्याके पहलेके शब्दोसे पूरण अर्थमे प्रत्यय रहने पर अन् हो । भाग अश अर्थमे । द्वितीयतृतीय शब्दसे अन्प्रत्यय कहा गया । चतुर्थसे दशतकके उदाहरण बोले–चतुर्णा पूरण **चतुर्थ** य: भाग सोऽपि **चतुर्थ** । अन् । चौथीसख्या का पूरकसे चौथा भाग अर्थमे अन् । पञ्चाना पूरण पञ्चम य भाग सोऽपि **पञ्चम** । पाँचवी सख्याके पूरक पाचवाँ भाग अथमे अन् । जब इस सूत्रसे सिद्ध है पूर्व सूत्र क्यो पढा ?–वेदमे भी होने वास्ते (९६) **षष्ठ** और **अष्टम** शब्दसे भाग अर्थमे ञ् हो, अन् भी । षष्णा पूरण **षष्ठ** य भाग सोऽपि षष्ठ । छठवी सख्यापूरक शब्दसे भाग अर्थमे ञ–अ आदिवृद्धि **षाष्ठ** । पक्षमें अन् छठाँ भाग अर्थ । अष्टाना पूरण: अष्टम भाग **अष्टम** । आँठवी सख्यापूरकसे भाग अर्थमे अन् अष्टम । पक्षमे ञ–अ आदिवृद्धि **आष्टम** । इस सूत्रका विषय पूर्व सूत्रका ही है । ञ आदि-वृद्धिकी (९७) **मान** और पशुका अङ्ग अर्थ खुलना हो तब षष्ठ, अष्ठम शब्दसे क्रमश कन् हो लुक भी, ञ हो अन् भी । भाग अर्थमे । षष्ठो भाग **षष्ठक** –मान चेत–तौला हुआ होने पर कन् । अष्टम आठवाँ भाग पशुका अङ्ग है । ञ प्रत्यय और अन्का लुक् विकल्पसे हुआ । सूत्रमे य पढनेसे यथा प्राप्त=जैसा प्राप्त था ञ, अन् भी हुये । **षाष्ठ** , आष्टम कह चुके हैं जिनसे

अष्टम आष्टम । महाविभाषया सिद्धे लुग्वचन पूर्वत्र ञान। नित्याविति ज्ञापयति। (१८) **एकादाकिनिच्चासहाये ५।३।५२॥** चात्कन्लुकौ। एकाकी -एकक -एक । (१९) **भूतपूर्वे चरट् ५।३।५३॥** आढ्यो भूतपूव आढ्यचर । (२०००) **षष्ठ्या रूप्य च ५।३।५४॥** षष्ठ्यन्ताद् भूतपूर्वेऽर्थे रूप्य स्याच्चरट् च। कृष्णस्य भूतपूर्वो गौ कृष्णरूप्य —कृष्णचर । तसिलादिषु रूप्यस्यापरिगणितत्वान्न पुवत् । शुभ्राया भूतपूव शुभ्रारूप्य । (२००१) **अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५॥** अतिशयविशिष्टार्थवृत्ते

ञ अन् नित्य प्राप्त रहे, पक्षमे लुक् होनके लिये। ननु समर्थाना प्रथमाद्वा सूत्रसे वा—विकल्प आता ही, ञ अन्का पक्षमे अभाव होता ही। पक्षमेअष्टमो भाग बनता ही, लुक्का विधान व्यर्थ ? अत कहा विभाषा=अधिकारका विकल्प से सिद्ध होना, लुक् वचन व्यर्थ होकर प्रमाणित करता है कि ञ और अन् नित्य है पूर्व षष्ठाष्टमाभ्या मे ।

(१८) **एकाद्**—अकेला एकशब्दसे निम्नी अर्थमे आकिनिच् च से कन्, लुक् भी,**असहाय** एक अर्थ आकिनिच् **एकाकी**। कन् **एकक** । दोनो प्रत्ययका लुक् तब एक (१९) **भूतपूर्वे**—पहले हो चुके हो अर्थमे वर्तमानप्रातिपदिक से स्वार्थमे चरट् हो। आढ्य धनवान् पहले था अब नही, अर्थमे चरट् **आढ्यचर** पहलेका धनी,प्राचार्य भूतपूर्व ,**प्राचार्याचर मूखचर** कालिदास विश्चर ,ग्रामचर खडहर । २००० । **षष्ठ्या** षष्ठी अन्तशब्दसे भूतपूव अर्थमे रूप्य प्रत्यय हो, चरट् भी । कृष्णकी पहले की गाये । **पूर्वभूत** भूतपूव अर्थमे रूप्य **कृष्णरूप्य** पहले गायवाला अर्थ चरट् होनेपर **कृष्णचर** । भूतपूर्वगतया कृष्णसम्बन्धी गौ तसिलादि तसिलादय प्राक् पाशप. इस वार्तिकके परिगणनमे रूप्यकी गणना नही अत पुलिङ्ग नही होता । शुभ्राकी पहलेकी गाय अर्थमे रुप्य **शुभ्रारूप्य** भूतपूर्वगतया शुभ्रासम्बन्धी गौ' । पुलिङ्ग ह्रस्व नही हुआ ।

। २००१ । **अतिशायन** अथमे वर्तमानशब्दसे स्वार्थ =प्रकृतिके अर्थमे तमप् इष्ठन् प्रत्यय हो । अतिशायनका अर्थ प्रकर्ष हो न्यूनीकरण, अभिभव । क्योकि अतिपूर्वक शीङ धातु उपसर्ग वलसे उत्कर्ष, बडा-चढा हुआ अर्थमे । केवल अधिक अर्थ नही किन्तु, अधिक होकर धिक्कार, तिरस्कार, दबोच, पराजय आदि अर्थ हराना । **पूर्वान्महाभागतयातिशेषे** प्रयोग दर्शनसे केवल अधिक अर्थ होगा तब अकमक हो जायेगा । सकर्मक मानना आवश्यक । शुक्लतर सफेदियोको दबोच लिया । कृष्णमतिशेते **कृष्णतर** , कालोसे भी काला । भाष्य

स्वार्थे एतौ स्त । अयमेषामतिशयेनाढय आढचतम लघुतम, **लघिष्ठ** ।

२००२) **तिङश्च** ५।३।५६॥ **तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप्स्यात्** । (२००३)

प्रयोगके विरोधमे विकल्पसे कर्ता अर्थ ल्युट । निपातनसे दीघ । अतिशायन प्रकृतिके अर्थमे विशेषण अतिशय=प्रत्ययका अर्थ नही यदि होता लघो अतिशायन लघुतमम् हो जाता । प्रकृति का अर्थ भी नही है । प्रकर्षका अतिशय नही अपितु आढचका अतिशय इस लिए कहा **अतिशयविशिष्टार्थवृत्ते** । यदि भावमे ल्युट् होता प्रत्ययार्थ प्रधान हो जाता । **शुक्लतर शुक्लतरा** न बनता । यथा दो व्यक्ति या वस्तुके बीच एकको अतिशय कहना हो तब तरप और ईयसुन् ये अपवाद प्रत्यय कहे जायगे । **परिशेषात्**=बहुतोके बीच एकको श्रेष्ठ अन्यको न्यून सिद्ध करना सूत्रका विषय । **बहुना मध्ये यदा एकस्य निर्धारण सोऽस्य विषय** । अय (यह व्यक्ति) एषाम इन लोगोसे अतिशयेन उत्कृष्ट श्रेष्ठ अधिक महान, बहुत धनवान् अर्थमे आढय से तपम **आढचतम** । द्रव्यजातिका स्वय उत्कर्ष अपकर्ष, ह्रास-विकास नही होता , किन्तु गुणके द्वारा द्रव्य और जातिकी विशेषता श्रेष्ठता सिद्ध होती है । आढचतम शब्दमे उत्कर्षविशिष्ट आढय बहुत धनी, प्रकृतिका अथ, तमप् उसका प्रकाशक तमप् होने पर सुपो धातुप्रातिपदिकयो से सुपका लुप होना है । क्योकि सुबन्तात्तमप्=हुआ है । यद्यपि ङीप्, अप्, प्रातिपदिककी अनुवृत्ति आती है तथापि सुबन्तमानकर तमप हो । यत **घकालतनेषु** सूत्र प्रत्यय परे रहते सप्तमीका अलुक् कहता है । इसकी सफलता सुबन्तसे प्रत्यय होने पर ही है अत पूर्वाह्णेतमामे सप्तमीका अलुक हुआ । अतिशयेन **विद्वान विद्वत्तम** सबको पराजित कर्ता । **अतिशयेन** गुणवान् गुणवत्तर । बलवान् बलवत्तर । अतिशयेन लघु **लघिष्ठ** लघुशब्दसे सबकी अपेक्षा विशेष छोटा अर्थमे इष्ठन घु मे उ को ओर्गुण प्राप्त, किन्तु इष्ठेमेयसु से टिलोप स्वादिकार्य ।

।२००२। **तिङश्च** यह प्रातिपदिक नही है अत तिङन्तसे अतिशय दूसरो की अपेक्षा स्वादिष्ट **पकाने** आदि क्रिया कर्ता अर्थमे तमप् हो, अर्थकी अतिशयितामे । अजादि गुणवचनादेव नियमसे इष्ठन् नही आया, क्रियावचन होनेमे,

। २००३ । **तरप्** और तमपको घ सज्ञा हो । इसी अतिशायनेके प्रसङ्गमे प्रकरणके अन्तमे, प्रकरणान्तरमे अलग सूत्र पढना (तरप स्वार्थिक भी है) सूचित हुआ । अतिशयके प्रसङ्गमे भी स्वार्थिक मान्य । अत **अल्पाच्तर, लोपश्च बलवत्तर** आदि सिद्ध हुये, **वाल्पाजेव** अल्पाच्तर, यह स्वार्थिक **है** दोमे

तरप्तमपौ घः १।१।२२॥ एतौ घसंज्ञौ स्त । (२००४) **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** ५।४।११। किम एदन्तातिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तात्आमु स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरु । (२००५) **द्विवचनविभज्योपपदे**

एकका अतिशयनिर्धारण न होनेसे ।

। २००४ । **किम्**, एत, तिङ्, अव्यय, इन चारो के द्वन्द्वकी प्रकृतिमे घ हुआ हो किम् आदि अन्तमे हो, उनसे, तिङन्तसे, अव्ययसे हुए घ प्रत्यय अन्तसे आम हो । उकार उच्चारणार्थ । द्रव्यका प्रकर्ष अतिशायन–अधिकता न होने पर जातिगुण, क्रिया, सज्ञासे, उनके समुदायसे एकको अलग करना निर्धारण है । किम् शब्दसे न जाति, न गुण, क्रिया, न सज्ञा समझमे आती है प्रश्नवाचक होनेसे इससे सिद्ध है द्रव्यका प्रकर्ष नही है । अत अत्यन्त स्वार्थिक तपम किन्तु तमको घसज्ञा, जिसका फल किमेत्तिङ् सूत्रसे (घ अन्तसे) आम हुआ । **किन्तमा** बना । प्रश्नविषयक जिज्ञासा मात्र अर्थ । प्राह्णे पूर्वाह्णे अमरकोषमे **प्राह्णापराह्णमध्याह्णा त्रिसध्यमित्यमर** । अतिशयिते पूर्वाह्णे दिनका पहला भाग प्रकर्ष प्रसन्न शोभायमान होनेसे अह्न निस्य उत्कर्षो वोध्य । यहा अह्न द्रव्य नही सूर्योदयसे सूर्यास्त तक सीमित दिन है उससे अधिककाल अह्नका अर्थ । उदय का की क्रिया सहितसे द्रव्य नही, अत तमप घसज्ञा, आम तीन काम हुए । **पचतितमाम्** अतिशयेन पचति सबसे अच्छी पाक क्रियाकर्ता अर्थ पचतिसे तमप् । घ सज्ञा, आमुप्रत्ययसे बना रूप । यहा क्रियाका प्रकर्ष है, द्रव्यका नही । **उच्चैस्तमाम्** आशमितृ अतिशयेन उच्चै ऊचे स्वरसे गाथा गाता है । क्रियाका उत्कर्ष है द्रव्यका नही यदि द्रव्य–वस्तुका उत्कर्ष होगा तब **उच्चैस्तम** । यह तरु वृक्ष अतिशयेन उच्चै = बहुत ऊचा है ऊचाई द्रव्य–वृक्ष मे है अत आम् नही हुआ । आमुमे उकार क्यो पढा ? किन्तमा प्रयोगमे यस्येति च के लोपको परत्वान् बाधकर ह्रस्वान्त निमित्तक ल्युट्निवृत्त वास्ते उकार पढा । अन्यथा **निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्** परिभाषया नुड्विधौ नास्यग्रहणम् ।

। २००५ । **द्विवचन** द्वयो अर्थयो वचन (जिस पदसे दो अर्थ कहा जाय) उच्यते अनेन वचन, करणमे ल्युट द्विवचनसज्ञा अर्थ नही, विभज्य अलग करके ऋहलोर्ण्यत्को बाधकर, निपातनसे यत् । द्विवचनञ्च विभज्यञ्च समाहार उपपद च ण्यत् होता 'चजोः' से कुत्व हो विभाग्य होता । अर्थ

तरबीयसुनौ ५।३।५७॥ द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्त । पूर्वयोरपवाद । अयमनयोरतिशयेन लघु लघुतर —लघीयान । उदीच्या प्राच्येभ्य पटुतरा —पटीयाम । (२००६) **अजादी गुणवचनादेव ५।३।५८॥** इष्ठन्नीयसुनौ गुणवचनादेव स्त । प्रथिष्ठ , प्रथीयान । नह, पाचक.

दोके बीच एककी अपेक्षा अतिशय भेद कहना हो, विशेषता बोलनी हो, अलगावका कारण धमवाचक शब्दमे स्वाथमे तरप् ईयसुन् प्रत्यय हो । सुबन्त या तिङन्त=प्रकृति हे, सुप्तिङ दो प्रत्यय भी । किन्तु सख्या क्रम नही, व्याख्यानसे । दो अथ वाचक विभजनीय शब्द उपपद हो, उपोच्चारित पद सुबन्त हो या तिङन्त कतृक नही । विग्रहमे उपपद आवश्यक, पूर्वप्रत्यय, तरप् तपम्को बाधकर । यथा अयम अनयो इन दोनोमे यह व्यक्ति अतिशयेन लघु (बहुत ज्यादा छोटा है) अर्थमे सुबन्तलघुसे तरप् । तद्धितान्त, प्रा० सज्ञा स्वादिकार्य । लघुता गुण है, दो अर्थ बडा छोटा उसका निर्णायक तरप् लघुतर अतिशयलघु अर्थमे । जब ईयसुन् हुआ, तब न्— इत् । उ उच्चा० । लघुईयस् । प्रा० सज्ञा सु उ इत् से उगित् मानकर नुम । लघीयनस् सान्त—महत से दीघ । सुके स् का सयोगान्त लोप **लघीयान्** । टिलोप होने पर । द्विवचनोपपदका उदाहरण—उदीच्या उत्तर वाले पूर्ववालोसे अतिशयेन पटु बहुत अधिक चतुर है । **पञ्चमीविभक्ते**=यदि द्विवचन उपपदहोता दन्ता **स्निग्धतरा** दातबहुत चमकीले है बहुवचन मे तरप् नही होता । बहुषु पुत्रेषु एतदुपपन्न भवति अय मे ज्येष्ठ, अय मे मध्यम , अयमे कनियान् परुद्भवान् पटु आसीत् परसाल आप चतुर थे । ऐषमस्तु **पटुतर** इस साल बहुत चतुर निकले यहा एकवचन ही है । कच्चित्स एवासि धनञ्जयत्व पटुसे तरप्**पटुतर** अतिशयेन पटव **पटायान्** बहुत कुशल । पटुसे ईयस् । भसज्ञा टिलोप **पटीयस्** । टिलोप, नु, दीर्घ लोपादि । अयम् अनयो आतिशयेन गुरु **गुरुतर गरीयान्** इन दोनोम यह भारी बहुत ज्ञान । पाश्चात्याः दक्षिणाभ्य पटीयास' ।

। २००६ । **अजादि**=अच् आदौ ययो प्रत्ययो· इष्ठन् ईयसुन् अजादि है, वे गुणवचनसे हो । तरप् तमप् रोकनेके लिए इष्ठके निर्णयार्थं एव पढ़ा । इससे प्रत्यय नियम सिद्ध एव, न होता, प्रकृतिनियम भी बनता, तब पटुतर पटुतम न सिद्ध होते । गुणा उच्यन्ते येन तत् गुणवचन यथा पृथु अस्ति अस्य या अय अनयो पृथु प्रसिद्धः स्थूल , यह इन दोनोमे मोटा नामी अथमे पृथुसे इष्ठन् उका लोप, 'रम्' आगम, नकार लोप, **प्रष्ठ** । ईयसुन् होनेपर प्रथीयस्

तर, पाचकतम। (२००७) **तुश्छन्दसि** ५।३।५९।। तृन्तृजन्तादिष्ठन्नी-यसुनौ स्त.। (२००८) **तुरिष्ठेमेय·सु** ६।४।१५४।। तृशब्दस्य लोप स्यात् एषु परेषु। अतिशयेन कर्ता करिष्ठः दोहीयसी धेनु। (२००९) **प्रशस्यस्य श्र** ५।३।६०।। अस्य श्रादेश स्यादजाद्यो। (२०१०) **प्रकृत्यैकाच्** ६।४। १६३।। इष्ठादिष्वेकाच्प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठ—श्रेयान्। (११) **ज्य च** ५।३।

से सु आदि **प्रथीयान्**। गुणवाचक शब्दसे प्रत्यय हुये। नेह—यहा नही हुआ अतिशयेन पाचक पाचकतर अय एषाम् अतिशयेन पाचक पाचकतम। यह इन लोगोमे बहुत स्वादिष्ट पकाता है अर्थे तपम्। क्रियावाचक शब्द है, शब्द-वाचक है। गुणवाचक नही।

।२००७। **तुश्छ**—तृ स्थाने पञ्चमी एकवचन तु छन्दसि वेदमे तृन् तृच् अन्त शब्दसे इष्ठन् ईयसुन् दोनो अजादि प्रत्यय हो। यह सूत्र गुणवचनके बिना भी विधानके लिये केवल वेदमे। यथा अय अनयो अतिशयेन कर्ता, है। कर्तृ से इष्ठन्। नलोप। टिलोप प्राप्त हुआ। २००८। **तुरिष्ठे**=तृ—तृन् अन्तमे हो तृ का लोप हो, इष्ठन् इमन् ईयस परे रहते। टे सूत्रसे अन्त्य ऋ का लोप प्राप्त था। सामर्थ्यसे पूरे तृ को लोप **करीष्ठ**। कुशल कार्यकर्ता **दोहीयसी** इन दोनोमे यह बहुत दूध देती है। इयम् अनयो अतिशयेन दोग्ध्री दोग्धृ शब्दसे इष्ठन्। भस्याढे से पुलिङ्ग। ङीप हटा। तब तृ का लोप पर निमित्त नही रहा, "दादेर्धातो" से हुआ घ लौट गया। उगित्—ङीप् **दोहीयसी**। पुगन्तसे हुआ गुण नही हटा, उसका कारण तृच् लुप्तेऽपि प्रत्यय-लक्षणसे बना रहा।

।२००९। **प्रशस्य** से स्थानमे श्र आदेश हो **अजाद्यो**=इष्ठन् इयसुन् परे प्रशस्यका प्रशसनीय गुण अर्थ। गुणवचन मानकर इष्ठन् और श्र आदेश गुणे श्रेष्ठ। एवम् अयम् एषाअतिशयेन प्रशस्य प्रशसनीय अर्थे ईयस्। श्र ईयस प्राप्ते इष्ठेमेयसु सूत्रसे टिलोप प्राप्त हुआ उसका बाधक।१०। **प्रकृत्या** एको अच् यस्य इष्ठन् आदि प्रत्ययपरे हो तब एकाच श्र, ज्य आदिका टिलोप नही होता। अल्लोपोऽन, नस्तद्धिते, यस्येति च, टे सभी सूत्र नही लगते प्रकृतिभाव होनेसे। तब गुण, हुआ **श्रेष्ठः**। अतिशयेन प्रशस्तः। अजाद्यो क्यो पढा? **प्रशस्यतर** प्रशस्यतम मे श्र आदेश न हो।

।११। **ज्य च**। प्रशस्यके स्थानमे ज्य आदेश हो। अजादि प्रत्यय परे। अयम् अनयो अतिशयेन प्रशस्त **ज्येष्ठ**। प्रशस्न से इष्ठन् और ज्य आदेश

६१॥ प्रशस्यस्य ज्यादेश स्यादिष्ठेयसो । ज्येष्ठ । (१२) **ज्यादादीयस.** ६।४।१६०॥ 'आदे परस्य' ज्यायान् । (१३) **वृद्धस्य च** ५।३।६२॥ ज्यादेश स्यादजाद्यो । ज्येष्ठ—ज्यायान् । (१४) **अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ** ५।३।६३॥ अजाद्यो । नेदिष्ठ –नेदीयान् । साधिष्ठ.–साधियान् । (२०१५) **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणा यणादिपर पूर्वस्य च गुणः** ६।४।१५६॥ एषा यणादिपर लुप्यते, पूर्वस्य च गुण इष्टादिषु । स्थविष्ठ । दविष्ठ ।

एकाच् है । प्रकृतिभावसे टिलाप नही हुआ । गुणे ज्येष्ठ । इयसुन् परे ज्येयान् प्राप्त हुआ । उसका निवारक सूत्र (१२) **ज्यादात्** ज्यात्—ज्यसे परे ईयस्को आकार हो । अनेकान् होनेसे अन्त्य स्थाने आदेश प्राप्त था, आदे- परस्य लगा । परको विहित कार्य आदिके स्थानमे हो । ई–को आ हुआ, दीर्घ । ज्यायान् (१३) **वृद्ध के** स्थानमे ज्य आदेश हो, अजादौ–इष्ठन् ईयसुन् परे ही । अयम् अनयो अतिशयेन वृद्ध (यह इन दोनोमे बहुत ज्ञानी सयाना अनुभवी या बुड्ढा है अर्थमे) इष्ठन् । वृद्धको ज्य आदेश । गुण आदि, ज्येष्ठ क्रममे बडा । ईयसुन् परे ज्य आदेश होने पर इ को आ हुआ । स्वादिकार्य ज्यायान् ।

।१४। **अन्तिक** (समीप अर्थमे) बाढ (स्वीकारानुकूल अर्थमे) को नेद और साध आदेश क्रमसे हो, इष्ठन ईयसुन परे । अयम अनयो अतिशयेन अन्तिक (इन दोनोसे यह ज्यादा समीप है) इष्ठन् । अन्तिकको नेद आदेश, अकार लोप गुणे **नेदिष्ठ** । ईयसुन् नेदीयस्से सु, नुम्, दीर्घ, सुलोप, म ायान्तलोप नेदीयान् । अयम् अनयो अतिशयेन बाढ, **भृशप्रतिज्ञयोर्बाढ**मित्यमर । **अति- बलभृशात्यर्थातिमात्रो बाढनिर्भर**मिति च । बाढसे इष्ठन् । साध आदेश **साधिष्ठ** । इन दोनोमे यह ठीक है इयसुन् होनेपर **साधीयान्** । साधीयसमे सु, नुम्, दीर्घ आदि । (१५) **स्थूल** दूर युवन् ह्रस्व क्षिप्र क्षुद्र इनके पर=अन्तमे यण् यवरल्का लोप हो । यण्के पूर्व गुण हो । इष्ठन् आदि परे अल्लोपोऽन से लोप आया । कर्मणि घञन्त । अयम् अनयो अतिशयेन स्थूल से इष्ठन् । न का लोप । स्थूलदूर–आदि सूत्रकी असिद्धिसे ओर्गुण नही लगा । स्थविष्ठ दोनोमे बहुत मोटा (अतिशयेन) दूर शब्दसे इष्ठन् सूत्रके रका लोप, उ– को गुण, जब **दविष्ठ** बहुत दूर । उन दोनोसे अतिशयेन युवा अर्थमे युवन् से इष्ठन् और (वुन्) का लोप गुणादि **यविष्ठः** अधिक जवान् । सूत्रमे यणादि पर न कहते, यू का भी लोप होता । अतिशयेन ह्रस्व. दोनोमे बहुत

यविष्ठ । ह्रसिष्ठः । क्षेपिष्ठ । क्षोदिष्ठ एवम्—ईयस् । ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वात् । ह्रसिमा । क्षेपिमा । क्षोदिमा । (१६) **प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ६।४।१५७॥** प्रियादीनां क्रमात्प्रादयः स्युरिष्ठादिषु । प्रेष्ठ । स्थेष्ठ । स्फेष्ठ । वरिष्ठ । बंहिष्ठ । गरिष्ठ । वर्षिष्ठ । त्रपिष्ठ द्राघिष्ठ वृन्दिष्ठ.

छोटा ह्रस्वसे इष्ठन् । व का लोप । **ह्रसिष्ठ** क्षिप्रसे इष्ठन् र लोप । पुगन्त गुण । **क्षेपिष्ठ** शीघ्र कर्ता । अयम् अनयो अतिशयेन क्षुद्र इन दोनोमे यह बहुत निकृष्ट है । क्षुद्रसे प्रत्यय, र लोप, गुण **क्षोदिष्ठ** बहुत नीच । उक्तशब्दो से इयसुन्प्रत्यय होने पर, पूर्वकी क्रिया परमे, यण्का लोप, गुण, अव, आदि तब **स्थवीयान्**—बहुत मोटा । द्रवीयान् अधिकदूर । यवीयान् तगडा, ह्रसीयान् क्षेपीयान् शीघ्रकारी, क्षोदीयान् क्षुद्रकर्ता । इमन्भी आया । उसका प्रयोजन बोले **ह्रस्व क्षिप्र** क्षुद्र ये पृथ्वादिगणमे पढे गये । उनसे इमन् होने पर यण्का लोप आदि कार्य होगे । ह्रसिल आदि अर्थपूर्ववत् ।

(१६) **प्रिय स्थिर** स्फिर, अरु, बहुल, गुरु, वृद्ध तृप्र दीर्घ, वृन्दारक इन दशशब्दोके स्थानमे क्रमसे **प्रादय** प्र, स्थ, स्फ, वर, वंहि, गर वर्षि, त्रप, द्राघि वृन्द ये दश आदेश हो । इष्ठन् इमन् ईयसुन् परे रहते (जो तुरिष्ठेमेय से आये) । अतिशयेन प्रेयान् **प्रेष्ठ** बहुत प्यारा वत्स । प्रियसे अधिक प्यार अर्थमे इष्ठन् । पक्षमे इयसुन् प्रियको प्र आदेश गुण आदि । अकार उच्चारण से न टिलोप । अतिशयेन स्थेयान् स्थेष्ठ बहुत टिकाऊ । स्थिरसे अर्थकी अधिकतामे इष्ठ । इयस् । स्थिरको स्थ जो एकाच् है प्रकृतिभाव से, न टिलोप । गुणादि । अतिशयेन स्फेयान् **स्फेष्ठ** बहुत हल्का, कमजोर, गाज जैसा इष्ठ, ईयस् । स्फिरको स्फ आदि । अतिशयेन वरीयान **वरिष्ठ** । सबसे वर आदेश । ईयस् होने पर सु, नु दीघ, लोप आदि । विशेष—अतिशयेन बहुल से अजादि आदेश-बहुलको बंहि आदेश । इकार उच्चाराय । **बंहिष्ठ** बंहीयान् बहुत अधिक । अतिशयेन गुरु गरीयान् गरिष्ठ । गुरुको इष्ठनादि परे 'गर' आदेश । अतिशयेन वृद्ध **वर्षीयान्** वर्षिष्ठ बहुत बुड्ढा । वृद्धको वर्षि आदेश इ-उच्चा० अतिशयेन तृप्र त्रपीयान् **त्रपिष्ठ** । बहुत लज्जालु, अतिशयेनदीर्घ-द्राघीयान् **द्राघिष्ठ** दीघको द्राघि आदेश (इ-उ०) बहुत लम्बा । अतिशयेन वृन्दारक वृन्दीयान् **वृन्दिष्ठ** । बडा झुण्ड । इयसुन् इष्ठन् दोनोके रूप । किन्तु इमन्प्रत्ययके विषय मे बोले—प्रिय, उरू, बहुल, गुरु, दीर्घ आदि

एवमीयसु । प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात् प्रेमा इत्यादि । (१७) **बहोर्लोपो भू च बहोः** ६।४।१५८।। बहो परयोरिष्ठेयसोर्लोप स्याद्बहोश्च भूरादेश । भूमा भूयान् । (१८) **इष्ठस्य यिट् च** ६।४।१५९।। बहो परस्य इष्ठस्य लोप स्यात् यिडागमश्च । भूयिष्ठ (१९) **युवाल्पयो कनन्यतरस्याम्** ५।३।६४।। एतयो कनादेशो वा स्यादिष्ठेयसो कनिष्ठ, कनियान् । पक्षे यविष्ठ , अल्पिष्ठ इत्यादि । (२०२०) **विन्मतोर्लुक्** ५।३।६५।। विनो

शब्दसे पृथ्वादि मानकर इमनिच् । तत्र प्रेमा, वरिमा, वहिमा गरिमा **द्राघिमा** लम्बाई ।

(१७) **बहुसे** परे इष्ठन् इमन् ईमस् (जो अनुवृत्तिसे आय) उ का लोप हो, बहु स्थाने भू हो, इष्ठन्का असम्बन्ध । अगले सूत्रसे अन्यकाय होनेसे । आदेः परस्यसे प्रत्ययके आदि अक्षरका लोप । बहुत्व इति **भूमा** । अधिकता अर्थमे बहु शब्दसे पृथ्वादि इमनिच्==इमन बहुको भू आदेश, उससे परे ईमन् के इकारका लोप–सु, अयम् अनयो अतिशयेन बहुइति **भूयान्**, दोनोमे यह विपुल भारी लम्बा है । बहु शब्दात ईयस् (बहोर्लोप सूत्रेण) । बहु स्थाने भू आदेश । इकार लोप । सु, नु, दीर्घ आदि । भूको ओर्गुण क्यो नही होता । भू आदेशकी (आभीयत्वेन) असिद्धिसे ।

(१८) **भूयिष्ठ** बहुसे परे इष्ठनके इ-का लोप हो, यिट्=ट इत् । यि आगम **भूयिष्ठ** दोनोमे यह ज्यादा । टित् प्रत्ययके आदि अवयवका यदि लोप न हो, तब य आगम । (१९) **युव** अल्पको कन् आदेश हो वा विकल्प से, अजादि इष्ठ ईयस् परे । कनिष्ठ का अर्थ है । अयम् अनयो अतिशयेन युवा (जवान) अल्प वा । इन दोनोमे यह बहुत तगडा, बहुत छोटा है अर्थमे युवन् या अल्पसे इष्ठन् । सूत्रेण इष्ठ परे युव स्थाने कन् । अल्वस्थाने कन् । **कनिष्ठ** । दोनोमे यह अधिक जवान या छोटा युवा अल्प अर्थ होनेसे । जब यु या अल्पसे ईयस् होगा और कन् आदेश कनीयस् । सु नुम्, आदि कनीयान् बहुत बलवान् या दुर्बल, कनके अभावमे युवन्–इष्ठ दशामे स्थूलदूर युव-आदि सूत्रसे वन्--का लोप । यु मे उ को ओर्गुण' अवादेशे, वर्णसम्मेलनं **यविष्ठ** बहुत युवक । **अल्पिष्ठ** बहुत छोटा । यवीवान् आदिका अर्थ । सूत्रमे युवा शब्द मान्य, युवापत्य नही, अल्पके सहवाससे, प्रयोग-साधनिकासे भी ।

(२०२०) **विन्** और मतुप्का लुक हो । अजादि–इष्ठ–ईयस् परे । अतिशयेन स्रग्वी बहुत अधिक मालाधारी **स्रजिष्ठ.** । स्रक् अस्ति अस्य अस्मिन्

मतुपश्च लुक्स्यादिष्ठेयसो । अतिशयेन स्रग्वी, स्रजिष्ठ –स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठ –त्वचीयान् । (२१) प्रशसाया रूपप् ५।३।६६।। सुबन्ता तिडन्ताच्च । प्रशस्त पटु पटुरूप । प्रशस्त पचति पचतिरूपम् । (२२) इषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर. ५।३।६७।। ईषदूनो विद्वान्विद्वत्कल्प ।

(माला इसका या इसमे है) अथविन्अन्त स्रग्विन से इष्ठ परे विनका लुक् । जिस कारण पदत्व नही रहा, कुत्व नही हुआ । एव स्रजीयान् बहुत माला भरा स्थान । त्वक मोटाचर्म, वल्कल जिसमे हो त्वग्वन्से इष्ठ और मतुप्का लुक् । **त्वचिष्ठ** मोटा चर्म, छिलका वाला जैसे मूली, हाथी भाली। ईयस् परे मतुपका लुक होगा तब सु आदि त्वचीयान् । इसी सूत्रके प्रमाणसे इष्ठन् इयसुन् हुए । तस्मादेव ज्ञापकात् अगुणवचनत्वेऽपि अजादिप्रत्ययौ भवत (२१) **प्रशसाया**=सुबन्त तिडन्त और प्रातिपदिकसे रूपप्प्रत्यय हो, प्रशसा अर्थमे। प्रकृतिके अर्थकी परिपूर्णता ही प्रशसा है। केवल स्तुति नही। घकालतनेषु सूत्रके प्रत्ययपरे विभक्तिका लुक न होना, सुबन्तसे प्रत्यय होनेका प्रमाण हुआ । प्रशसा अर्थमे वर्तमान सुबन्तसे, तिडन्तमे रूपप् हो, प्रशस्त पटुः बहुत कुशल प्रशसनीय, धन्यवाद योग्य अथमे रूपप पटुरूप' सराहनीय चतुर। प्रशसनीय पचति पाक क्रिया करोति अच्छी पाक क्रियाकर्ता । क्रियाप्रधान माख्यात, सत्व प्रधानानि नामानि । रूपप्–पचतिरूप प्रशसनीय पाकक्रिया । प्रकृति पचति या पटु है उसीकी परिपूर्णता । अतएव **चौररूपोऽय यदक्षणोरञ्जनमपि हरति** । प्रशस्त चौर चौररूप कुशल तस्कर । आखका अञ्जन भी चुरानेसे नही चूकता । **गुप्त वस्तुनोऽपि अपहरणेन चौर्य परिपूर्यते** । यद्यपि अमत्व क्रिया है, तथापि एकवचन स्वाभाविक है । अत पचतो रूप, पचन्ति रूप भी पचतिरूपके समान एकवचन, नपुसक ।

(२२) **ईषत्** असमाप्ति थोडा अपूर्ण अर्थमे वर्तमान सुबन्तसे स्वार्थमे कल्पप्, देश्य, देशीयर प्रत्यय हो । ईषदून विद्वान् थोडा कम विद्वत्तावाला अर्थमे विद्वत्से कल्पप् अनुबन्धलोप आदि विद्वत्कल्प । असम्पूर्ण विद्वान् विफल अध्येता । विद्वानके समान है पूर्ण नही । ईषदसमाप्ते यशः, **यशस्कल्प** असम्पूर्णयश, यशके समान है पूर्ण नही । सोऽपपादौ से यशः के विसर्गको स । इषदून पटु थोडा कम, असम्पूर्ण पटु, पारङ्गत नही है । इण ष से विसर्गको ष । इषत् न्यून विद्वान् अर्थमे विद्वत् से देश्य । **विद्वद्देश्य** । असम्पूर्ण विद्वान् । जब देशीयर प्रत्यय, तब **विद्वद्देशीय** । **स्वार्थिका प्रत्यया**।

यशस्कल्पम । यजुष्कल्पम् । विद्वद्देश्य । विद्वद्देशीय । पचतिकल्पम ।
(२३) विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु ५।३।६८।। ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव, न तु परत । ईषदून पटु बहुपटु । पटुकल्प । सुपः किं ? **यजतिकल्पम्** ।**(२४) प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९।।**

प्रकृतितो लिङ्गवचनानि अनुवर्तन्ते । प्रकृतिका लिङ्ग पुलिङ्ग हुआ । **पचतिकल्प** असम्पूर्णा पाकक्रिया, थोडा कम अर्थमे कल्पप् हुआ । लिङ्गवचन, पचति रूपमिव । **वृषभकल्प** मे भी प्रकृतिका लिङ्ग परन्तु **क्वचित्स्वार्थिका प्रत्यया लिङ्गवचनानि प्रतिवर्तन्ते** । यथा गुडकल्पा द्राक्षा । प्रकृतिका लिङ्ग बदलगया (२२) **विभाषा** ईषद् असमाप्तिका, आगमन । थोडा हो, समाप्त न हुआ हो उससे विशिष्ट अर्थमे सुबन्तशब्दसे बहुच् हो । वह प्रकृतिसे हो, परमे न हो, ईषदून (थोडा कम चतुर अर्थमे पटुके पूर्वमे बहुच् हुआ) पटु । उसको प्रातिपदिकसज्ञा अर्थवत्सूत्रसे या तद्धितान्तविशिष्ट अर्थ कहकर कृत्तद्धित सूत्रसे प्रा० सज्ञा हो, तब सुप्का लुक् । पुन समुदायसे सुप् बहुपटु । कमचतुर पटुकल्प । ईषदून थोडा कम चतुर, पटुकल्पः चतुरके लगभग । तु-शब्द अवधारण अर्थकी अपेक्षा, अन्य भी प्रयोजन है । लिङ्गसख्या प्रकृतिदशायामे देखे गये है । बहुच्का प्रयोग प्रकृतिसे पहले होता है । बहुगुड । द्राक्षालघु । वहुतृण नर प्रकृतिवत् लिङ्ग दृष्ट है **स्वार्थिका प्रत्यया प्रकृतित लिङ्गवचनानि लभन्ते** । वही ज्ञापन करता है । तु शब्दका ज्ञापन है कि स्वार्थिका प्रत्यया ईषदसमाप्तौ अर्थे अभिधेयवत् लिङ्गवचने स्त । **तेन शर्कराकल्प गुडः** बना । सुप किम ? सुप क्यो पढा ? सुबन्तसे तद्धितका आना ज्ञापित है ही, अत पूछा सुप किम् । तिङश्चकी अनुवृत्ति और निवृत्तिवास्ते । वह सुप् व्यर्थ होकर बोला स्वार्थिकप्रत्यय प्रकृतिके लिङ्गवचनको स्वीकार करे । तिरस्कार भी । अत **यजतिकल्प** तिङन्त । यजतिसे बहुच नही हुआ । तिङन्त होने से, सुप न आनेसे ।

(२४) **प्रकारवचन अर्थसे** जातीयर हो । विशेषण धर्म गुण क्रिया जिसमे हो वह प्रकारवान् है उसी अर्थमे प्रत्ययमानकर, प्रकार अर्थमे थाल होता है । केन प्रकारेण कथा । येन प्रकारेण यथा । तेन प्रकारेण तथा । यहा प्रकारका तरीका युक्ति उपाय विशेषण मात्र अर्थ, किन्तु जातीयरका गुणवान् उपायवान् । विशेषण अर्थसे अन्तर । वस्तुत उभयमपि न्याय्यम् अविशेषात् । अन्यथा तथा प्रकार इत्येव स्यात् इति जयादित्य । अत्र प्रकारोभेद सामान्य

प्रकारवति चायम्, थाल तु प्रकारमात्रे। पटुप्रकार । पटुजातीय । (२०२५) **प्रागिवात्क** ५।३।७०॥ 'इमे प्रतिकृतौ' इत्यत प्राक्काधिकार (२६) **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टे** ५।३।७१॥ 'तिङश्च' इत्यनुवर्तने। (२७) **कस्य च दः** ५।३।७२॥ कान्ताव्ययस्य दकारोन्तादे स्यादकच्चा। (२८) **अज्ञाते** ५।३।७३॥ कस्यायमश्वोऽश्वक । उच्चकै । नीचकै । सर्वके । विश्वके । 'ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टे प्रागकच्, अन्यत्र तु सुबन्तस्य टे प्रागकच् । यवकयो । आवकयो । युष्मकासु । अस्मकासु । यु-मकाभि ।

का भेदक धम प्रकार है, थालप्रत्ययकी दशामे। वामन जी **सादृश्य भेदश्च उभयमपि प्रकार** समानता और भेद दोनो प्रकारका अथ। पटुप्रकार भेदक धर्म वाला, बटखरा, किलो आदि अर्थमे जातीयर **पटुजातीय** ।

(२०२५) **प्रागिवात्**। इव शब्द जिस सूत्रमे हो, इवे प्रतिकृतौ से पहले सुवन्त से क प्रत्यय हो। क का अधिकार चलता है। सुप् आया। तिङन्त नही। (२६) **अव्यय** सवनाम और तिडन्त जो अनुवृत्ति से आये, टि—अन्तिम अचके पहले अकच् हो। तिङ् आता है मण्डूकप्लुतिसे। क मे अ उच्चा० च इन्। क अन्त प्रत्यय। अकच्भी इवे प्रतिकृतौ के पहले तक चलता है।

(२७) **कस्य**—क अन्त अव्ययके, द अन्त आदेश हो, अकच् भी। स्वरित प्रतिज्ञा बलसे अव्यय आया। जहा अकच् होगा वहा प्रकार होगा। (२८) **अज्ञाते**। जिसके विषयमे ज्ञान न हो ऐसे अर्थमे वर्तमान सुबन्तसे स्वार्थमे क प्रत्यय हो। अव्यय सर्वनाम तिडन्तके टिसज्ञक के पहले अकच् हा कर अन्त अव्यय को द अन्तादेश। कस्य-किसका घोडा है। अज्ञानका अभिनय अर्थमे क अश्वक अज्ञात घोडा। अज्ञात उच्चकै: ऊचाई समझ न पाये, अव्यय। उच्चै के टि से पहले अकच् अज्ञात। नीचै नीचकै नीचला भाग ज्ञात न हो। अकच् अज्ञाता सर्वे सर्वके। अज्ञाता विश्वके टि (ए) के पहले अकच्। सभी अज्ञात अर्थका सूचक। अव्यय सर्वनाम्ना अकच्—से सुप् आता। सुबन्तसर्वनामसे टि के पहले अकच् हो। यदि ऐसा युवयो युष्मासु युष्माभि । आदिमे ओकार सकार भकार सुबन्तके टि के पहले अकच् होगा। युवकयो आदि बनेगा। लुप् के न आनेसे त्वकया, मकया होगा। अत बोले (वा०) **ओकार** सकार भकार आदिमे ऐसी विभक्तिपरे सर्वनाम के टि के पहले अकच् हो। अर्थात् ओस् सुप् भिस् भ्यस् से भिन्न सुबन्त, सर्वनामके 'टि' के पहले अकच् हो। यह वार्तिक केवल युष्मद् अस्मद मे लगता है अन्य सर्वनामके प्राति-

अस्मकाभि । ओकार–इत्यादि किं ? त्वयका मयका ।* 'अकच्प्रकरणे तूष्णीम का वक्तव्य' मित्वादन्त्यादच पर तूष्णीकामास्ते । 'शीले को मलोपश्च' तूष्णींशील तूष्णीकः । पचतकि । जल्पतकि । धकित् । हिरकुत् । (२९) कुत्सिते ५।३।७४।। कुत्सितोऽश्वोऽश्वक । (२०३०) सञ्ज्ञायां कन् ५।३। ७४।। कुत्सिते कन्स्यात्तदन्तेन चेत्सञ्ज्ञा गम्यते । शूद्रक । राधक । स्वरार्थं वचनम । (३१) अनुकम्पायाम् ५।३।७६।। पुत्रक । अनुकम्पित पुत्र

पदिक के टि के पहले अकच् । इसका फल सवकेण की सिद्धि । अतएव विभक्तौ परतो निहित किम क आदेश । साकच्कार्थक क कौ के । ओकार परे अकच् युवकयो । युष्मासुमे सुप् परे अकच् युष्मकासु युष्माभि । ओकार सकार आदि क्यों पढा ? त्वयका सुवन्तके टि के पहले अकच् होनेके लिये (वा०) अकच् के प्रसङ्गमे तूष्णीम् इस अव्यय को 'काम्' इकारके ऊपर अकारान्त आगम हो । मित् होनेसे अन्त्य अच् परे हुआ । अकच्–को बाधकर । तूष्णिका मौन है । (वा०) शीले स्वभाव या नियम अर्थ खुले तब तूष्णीसे क हो, मका लोप भी, तूष्णीक । भाष्यमे दीर्घ दर्शनसे केऽणे से ह्रस्व नही हुआ । तिङ की अनुवृत्तिका फल–पचतिसे टि (इ) के पहले अकच् । क मे अ उच्चा०—जिसका फल आद्गुण नही लगा) । पचति–इ के पहले अकच् जल्पतकि (वकवासता है) । धिक्कार अर्थमे धिक् मे इक्के पहले अकच् धकित् । धक्के क को द–त हुआ (कस्य च द) निषेध अर्थमे हिरुक् से टे प्राक् अकच् कास्य च द हिरकुत् ।

(२९) कुत्सिते–जिस गुण धर्मसे व्यक्ति निन्दित है उससे युक्त प्रातिपदिकसे स्वार्थमे अकच् हो, अव्यय, सर्वनामके टि से पहले । क अन्त हो तो दकारान्त आदेश हो । तिङश्च आया । घोडा कुत्सित क्यो ? धावनक्रियाकी त्रुटिसे, युक्त अर्थ क अश्वक (कदम नही लेता) सर्वनाम, अव्यय, तिङन्तके उदाहरण मान्य । प्रवृत्तिमे निमित्तका निकृष्ट भाव पाशप्का अर्थ ।

(२०३०) सञ्ज्ञाया–यदि किसीका याम हो कुत्सा निन्दाकी दृष्टिमे शूद्रसे कन्, शूद्रक सस्कारहीन । कुत्सित राध राधक (राध साध ससिद्धौ) वडा भारी आधारक वना है (निन्दा) अलगसे क्यो पढा ? स्वर एव अर्थः प्रयोजन तत् स्वरार्थ, नित स्वरके लिए । (३१) अनुकम्पायुक्त अर्थवाचक शब्दसे आत्मीय अर्थमे क हो । कृपा दया, अनुकम्पा स्यादित्यमर । अनुकम्पितः पुत्र पुत्रक । दया कृपा अर्थमे कन् कृपापात्र । अनुकम्पित छात्र। छात्रकः

इत्यथ (३२) **नीतौ च तद्युक्तात् ५।३।७७॥** सामदानादिरूपा नीति। तस्यां गम्यमानायामनुकम्पायुक्तात्कप्रत्ययः स्यात्। हन्त ते धानका। गुडका एहकि। अद्धकि। पूर्वेणानुकम्प्यमानात्प्रत्यय। अनेन तु पर-परासम्बन्धेऽपीति विशेष। (३३) **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ५।३।७८॥** पूर्वसूत्रद्वय-विषये। (३४) **घनिलचौ च ५।३।७९॥** तत्रैव। (२०३५) **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ५।३।८३॥** अस्मिन्प्रकरणे यष्ठोऽज दिप्रत्ययश्च तस्मिन्प्रत्यये

गुरुक, भृत्यक। (३२) **नीतौ च**=साम (शान्ति) दाम, दण्ड, भेद चार ही नीति है। जिसके खुलने पर अनुकम्पा, दया युक्त शब्दसे टि के पहले क हो। क को द पूर्ववत। यथा—हन्त हर्षे अनुकम्पायामित्यमर। हर्ष—दया-सूचक हन्त शब्द है। हे पुत्र ते **धानका** तुम्हारे धान भगवत्कृपासे पूण हे। स्त्री०—धानासे क परे पूर्व अण्को ह्रस्व, टाप् धानका प्राय पठ्यते। अतः प्रत्ययस्थादिति नेत्वम्। स्वार्थिका प्रकृतिलिङ्ग **क्वचिदननुवर्तन्ते**। अत धानका पुलिङ्ग। अनुकम्पायक्ता गुडा **गुडका** सुरक्षित गुड अर्थमे कप्रत्यय परे पर्वस्य अण ह्रस्वे, टाप। एहि=तिङन्तके टि—इ के पूर्व **अकच** **एहकि** आगच्छ (तिङके आनेसे) **अद्धि** टि—इके पहले अकच् स्वार्थमे। **अद्धकि**। खाद् अद्भक्षणे—खाने अर्थ मे। आगमन भोजन अनुकम्पाके विषय हैं। पूर्वेग=पूर्व-सूत्र अनुकम्पाया से क, अकच् आदि होते, यह सूत्र क्यो? अन्तर बोले कि पूर्वसूत्र—साक्षात दया **कृपा** अनुकम्पाका विषय (पुत्र) है **किन्तु** धाना गुडा आदि पुत्र के द्वारा दया सुरक्षा कृपाके विषय है यही विशेषता मोदिका है।

(३३) **बहु अच** =**पूर्वसूत्रद्वयविषये**=अनुकम्पाया, नीतौ च दोनो सूत्रके विषयमे बहुत (दो से अधिक) अच् हो, मनुष्यका नाम हो ऐसे प्रातिपदिकसे ठच् विकल्पसे। पक्षमे क भी (३४) **घन्** इलच भी हो। **तत्रैव**=बहु अच्के विषयमे।

(२०३५) **ठाजादौ**=**अस्मिन्प्रकरणे**=अनुकम्पाया, नीतौ च सूत्रके विषयमे यष्ठ=जो ठ और अजादिप्रत्यय, उसके परे प्रकृतिके दूसरे अच् से ऊपरके सभी वर्णका लोप हो। उर्ध्व पढनेसे **सर्वलुप्यते** अर्थ निकला। अन्यथा आदे परस्य सूत्रसे आदिका ही लोप होता। **अजिनान्तस्य**—से लोप आया, कर्ममे लुप्यते वना। दया कृपाका पात्र देवदत्त (बहु अच्) से ठच्। द्वितीय अच्से परे 'दत्त' का लोप, ठ को इक। सु आदि **देविक**। जब घ—इय, दत्तका लोप तब **देविय**। इलच् दत्तका लोप देविल। जब क हुआ तब **देवदत्तक**। ठ या

परे प्रकृतेर्द्वितीयादच ऊर्ध्व सर्व लुप्यते । अनुकम्पितो देवदत्तो देविक –देविय देविल -देवदत्तक । अनुकम्पितो वायुदत्त वायुक । ठग्रहणमुको द्वितीयत्वे कविधानार्थम् । वायुक –पितृक । 'चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्य'* अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिक । 'अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्य'* देवदत्तक –देवक । 'लोप पूर्वपदस्य च'* दत्तिक –दत्तिय,-दत्तिल –दत्तक । 'विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वक्तव्य'* देवदत्त –दत्त देव । सत्यभामा भामा–सत्या । 'उवर्णाल्ल इलस्य च'* भानुदत्त –भानुल । 'ऋवर्णादपि'* सवित्रिय । सवितृल ।

अजादि परे न होनेसे दत्तका लोप नही । चारोका दयापात्र देवदत्त तद्धितार्थ हुआ । एव अनुकम्पित=दया कृपाका पात्र वायुदत्तसे ठ, दत्तका लोप उक् से परे ठ को क **वायुक** । शङ्का– ठ–को इक होने पर अजादि परे दत्तका लोप होता, ठा-जादौ सूत्रमे ठ क्यो पढा ? यदि ठ को इक होकर दत्तका लोप होता, तब उक्से परे क आदेश न हो पाता । वायु–इक ही रहता । अत कहा **द्वितीयत्वे**=दूसरे प्रयोगमे ठ विधानके लिए । क-**वायुदत्तक** । अनुकम्पित पितृदत्त से ठ, दत्तका लोप, ठको क **पितृक** दयापात्र । क प्रत्यय भी ।

चतुर्थादनजादौ च । इस श्लोकवार्तिकको खण्डश व्याख्यान वास्ते बोले (वा०) ठ और **अजादि** प्रत्यय परे चतुर्थ अच्के ऊपरका लाप बोले । दया कृपा का पात्र बना **बृहस्पतिदत्तसे** ठच् दत्तका लोप ठ-को इक **बृहस्पतिक** कृपापात्र पूर्वसूत्र दूसरे अच्के ऊपरका लोप बोला था । (वा०) **अनजादौ**=इस प्रसङ्गमे हलादि प्रत्यय परे लोप विकल्प बोले । अनुकम्पित देवदत्त से 'क' दत्तका विकल्प लोप, हलादि प्रत्यय परे क है (वा०) **लोप**=इस प्रसङ्गमे पूर्वपदका भी लोप विकल्प से कहे । अनजादौ नही आता । ठच्, घन्, इलच्, क, चारोके क्रमश रूप कृपापात्र देवदत्तसे ठ–इक देवका लोप **दत्तिक** । घ–इय दत्तिय । इलच दत्तिल । क **देवदत्तक** । अजादि–हलादि दोनो प्रत्यय परे पूर्वपदका लोप प्रमाणित । **अप्रत्ययेतथैवेष्ट.** की व्याख्या–(वा०) **विनापि**= प्रत्यय परे न रहे तब भी पूर्वपद उत्तरपदका लोप विकल्पसे बोले ? **देवदत्त** । जब पूर्वपदका लोप तब दत्त । उत्तरपद लोपे सति **देव** । इसी प्रकार अनुकम्पिता **सत्यभामा** पूर्वका लोप–**भामा** । उत्तरका लोप–सत्या । विना प्रत्यय-परे भी सिद्ध (वा०) **उवर्णसे** परे ल =लोप हो इलस्य=इलच्का । आबे परस्यसे आदि इका लोप । चकारसे ठ अजादिपरे द्वितीय अच्के ऊपरका लोप प्रमा-

चतुर्थादनजादौ वा लोपः पूर्वपदस्य च ।
अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च ॥'

(३६) **प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ५।३।८०॥** उपशब्दपूर्वात्प्रातिपदिकात्पूर्वविषये अडच् वुच् एतौ स्तः । चाद्यथाप्राप्तम् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः उपड –उपक –उपिय –उपिल –उपिक –उपेन्द्रदत्तक षड्रूपाणि । (३७) **जातिनाम्नः कन् ५।३।८१॥** मनुष्यनाम्न इत्येव । जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयस्तस्मात्कन्स्यादनुकम्पायां नीतौ च । सिंहकः ।

णित । (वा०) **ऋवर्ण** से भी परे इलच् के आदिका लोप कहे । अनुकम्पित सवितृदत्त से घ–इय, दत्तका लोप, यण् सवित्रिय । इलच् होने पर इ का लोप । इस प्रकार व्याख्यान किया हुआ पूरा वार्तिक पढे–**चतुर्थादनजादौ** च इत्यादि । (३६) **प्राचा**=पूर्वसूत्रे=बहु अच् मनुष्यका विषय हो, उप शब्द पूर्वम हो ऐसे प्रातिपदिकसे अडच् वुच् बोले । प्रकृतिशब्दके दूसरे अच् से ऊपरी भागका लोप हो । **च** मे यथाप्राप्त–ठ घ, इन, भी । प्राचीनमत यद्यपि विकल्प आता, तथापि पूजार्थ=समादरवास्ते । यथा अनुकम्पित दया-योग्य. उपेन्द्रदत्तसे अडच् बहु=अच् से मनुष्यनाम अर्थमे । द्वितीय अच् उपे उसके ऊपर न्द्रदत्त लुप्त हुआ । उपे अड । 'द्वितीय सन्ध्यक्षर' सूत्रसे एकारका लोप । नेन्द्रस्य परस्यके ज्ञापनसे उपेन्द्रमे एकादेश नही होगा । तब यस्येति च अकार लोप । वुच्–अक । एकारादि लोपे । **उपक** । घ–इय **उपिय** । इल उपिल । ठ–इक उपिक । क प्रत्यय **उपेन्द्रदत्तक** । ठ या अजादि परे न होने से, इन्द्रदत्तका लोप नही । छ रूपका एकही अर्थ । दयापात्र उपेन्द्रदत्त नामक मनुष्य अर्थ । उपेन्द्र , उपगु , उपकर्ता आदि मनुष्यका नाम हो । इन पाचोका रूप समान है तथापि प्रसङ्गमे अन्तर निश्चय करें ।

(३७) **जाति**–जो शब्द अन्य जातिमे प्रसिद्ध हो, मनुष्य नामसे व्यवहृत उपयुक्त-नियुक्त हो, उनसे कन् । अत कहा जातिशब्द मनुष्यनाम हो उससे (अनुकम्पायां नीतौ च सूत्रको बाधकर) कन् हो । यथा किसी मनुष्यको सिंह कहना हो, अनुकम्पित सिंह **सिंहक** । यह वीरमनुष्य कृपापात्र बना । सिंहसे कन् अथवा साम दाम दण्ड भेद नीति है । अनुकम्पित शरभ (कन्) शरभक कृपापात्र अनुकम्पित रासभ (कन्) **रासभक** कृपापात्र गदहा । (वा०) **द्वितीय.** सन्धि अक्षर–जुडा हुआ (ए ओ ऐ औ) अक्षर हो तदा उसके आदिका लोप हो । **एचः सन्ध्यक्षराणि प्राञ्च** । ऋषिकानाम कहोड । अनुगृहीत होने

शरभक । रामभक । 'द्वितीय सन्ध्यक्षर चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्य'* कहोड कहिक । 'एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्य'* वागाशीर्दत्त वाचिक । कथ षडङ्गुलिदत्त षडिक इति 'षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम्'। (३८) शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ५।३।८४।। एषां मनुष्यनाम्नां ठाजादौ परे तृतीयादच ऊर्ध्वं लोप स्यात् । पूर्वस्यापवाद । अनुकम्पित शेवलदत्त शेवलिक –शेवलिय –शेवलिल । सुपरिक । विशालिकः । वरुणिक अर्यमिक । (३९) अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ५।३।८२।। अजिनान्ता

पर सन्धि अक्षर ओ, उसमे अ उ स्थाने गुण है । आदि उ–लोप–अलोपौ । ठ–इक कहिक । (वा०) एक अक्षर=व्यञ्जन सहित एक अच्, एकाच्क, पूर्वपद हो उनके बीच उत्तरभागमे जितने पद हो उनका लोप हो । यथा वाचिक वाचि आशीर्यस्य, न तु मनसि एव स वागाशी तेन दत्त वागाशीर्दत्त से ठ । वाक् एक अच् वाला पूर्वपदके आगे आशीर्दत्तका लोप । ठ—इक वाचिक । यद्यपि द्वितीय अच् से ऊपर शीर्दत्तका लोप, तथा यस्येति च से आ लोप, कुत्व, जश्त्व हटने पर वाचिक बनेगा, तथापि वागिक के वारण-वास्ते । यदि ऐसा तब षडङ्गुलिदत्तके कृपापात्र होने पर षडिक कैसे ? अङ्गुलिदत्तका लोप होनेसे इक प्रत्ययके आधारपर भसज्ञा पदका अभाव, जश् नही होगा ड कैसे ? तब कहा(वा०)षष शब्दस्य=पूर्वपद रहते ठ अजादि प्रत्यय परे दूसरे अच् स ऊपरका ही लोप हो, उत्तरपदका नही इस बचनसे षडिक बना । इसमे अके ऊपरकालोप और यस्येति चसे अकारलोप तब जश्त्व सम्भव ।

(३८) शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण अर्यमन् ये शब्द मनुष्यके नाम हो उनको ठ, हो अजादि प्रत्यय परे, तृतीय अच् से ऊपरभागका लोप हो । अनुकम्पित दयापात्र, शेवलदत्त शब्दात् ठच् । तृतीय अच्सेपरे दत्ताका लोप । ठ–इक (पूर्वके ठच् आदि को बाधकर) शेवलिक कृपापात्र शेवलदत्त अर्थ । घ—इय, दत्ताका लोप पूर्ववत् । इलच्=शेवलिल शेवलादिके तृतीय अच् से उर्ध्वका लोप कहा गया, वह विना सन्धि किए हुए दशाका समझे । अनुकम्पित सुपरिदत्त' से ठच् । दत्तका लोप आदि सुपरिय सुपरिल । विशाल दत्तसे ठजादि विशालिल विशालिय । अनुकम्पित विशालदत्त- तद्धितार्थ । कृपापात्र वरुणदत्त से ठच् । आदि वरुणिक' वरुणिय वरुणिल । अनुकम्पितवरुणदत्त अर्थ अर्यमदत्तसे ठ—अ दि अर्यमिक । अनुगृहीत अर्यमदत्त अर्थ । अकृतसन्धि दशा ने क्यो कहा ? सु पर्याशी इति ।

मनुष्यनाम्नोऽनुकम्पाया कन् तस्य चोत्तरपदलोप । अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो व्याघ्रक । सिहक । (२०४०) अल्पे ५।३।८५।। अल्प तैल तैलकम् । (४१) ह्रस्वे ५।३।८६।। ह्रस्वो वृक्षो वृक्षक । (४२) सज्ञाया कन् ५।३।८७।। ह्रस्वहेतुका या सज्ञा तस्या गम्यमानाया कन । पूर्वस्यापवाद । वशक । वेणुक । (४३) कुटीशमीशुण्डाभ्यो र ५।३।८८।। ह्रस्वा कुटी कुटीर । शमीर । शुण्डार । (४४) कुत्वा डुपच ५।३।८९।। ह्रस्वा कुतू

---

(३९) अजिनशब्द अन्तमे हो उससे अनुकम्पित अर्थमे कन् । कहे मनुष्य-भावमे और उत्तरपदका लोप भी । दयापात्र व्याघ्राजिन (किसी मनुष्यका नाम) से कन अनुग्रह अर्थमे अजिन का लोप । सु आदि व्याघ्रक मनुष्य नही बाघ है । या बाधका खाल ओढे है, उस पर अनुकम्पा सूचक कन् । अनुकम्पित सिह सिहक । किसी मनुष्यको सिह कहना है । जनप्रिय अर्थे कन् अ जिनका लोप ।

(२०४०) अल्पे अल्पत्वविशिष्टे=थोडे अथमे वर्तमान शब्दसे यथायोग्य प्रत्यय हो । अल्प तैल तैलकमानय, कम तेल है । सर्वकम सभी अल्प है । सर्वम उच्चै उच्चकै । अल्प पचति पचतकि, भी उदाहरण । अल्प सुख सुखकम् । अल्प ज्ञानम । अल्प पठति पठतकि । खादतकि । अल्प भाषते भाषतके । ह्रस्वत्व विशिष्टे छोटा नाटा कम अर्थमे वर्तमानशब्दमे यथायोग्य प्रत्यय हो । 'अल्पे' (४९) सूत्रसे कार्य हो जाता किन्तु महत्वप्रतिद्वन्द्वि अल्पत्व दीर्घत्व प्रतिद्वन्द्विह्रस्वत्वम् बडोका विरोधी और अधिकका विरोधी अल्प है । दीर्घका विरोधी ह्रस्व । यही अन्तर है । ह्रस्व-छोटा-नाटा पेड अर्थ कन् वृक्षक जो दीर्घ नही, छोटा नाटा है । ह्रस्व. नर नरकः । गुरुक छोटा गुरु । (४२) सज्ञाया=ह्रस्वका कारणसज्ञा, नाम जान पडने अर्थमे कन् हो, पूवको बाधकर । ह्रस्व वश किसी बास जातिका नाम वेणुक ।

(४३) कुटी शमी शुण्डाकी अल्पता छोटाई अर्थ बोधक र प्रत्यय हो । छोटी कुटिया अथ सूचक र-कुटीर पुलिङ्ग हुआ । क्योकि स्वार्थिकप्रत्यय कही प्रकृतिके लिङ्गका उल्लघन करते है । ह्रस्व शमी शमीर छोटा शमीका वृक्ष । ह्रस्वा शुण्डा शुण्डारः । सूड तुण्ड छोटा हो । (४४) कुतू शब्दसे ह्रस्व अर्थमे डुपच् हो । अनुबन्धलोप (उप=शेष) ह्रस्वा कुतू छोटी कुप्पी । कुतूसे डुपच् कुतू उप । डित्से टि-ऊका लोप कुतुप तेलकी कुप्पी स्त्रीभाव त्यागकर पुलिङ्ग । अमरकोशप्रमाण-कुतू=तेल पात्र छोटा हो तब पुलिङ्ग, कुतुप ।

कुतुप । 'कुतू' कृत्तिस्नेहपात्र ह्रस्वा सा कुतुप पुमान्' इत्यमर । (२०४५) **कासूगोणिभ्या ष्टरच् ५।३।९०।।** आयुधविशेष कासू । ह्रस्वा सा कासूतरी । गोणीतरी । (४६) **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ५।३।९१।।** वत्सतर । द्वितीय वय प्राप्त । उक्षतर । अश्वतर ऋषभतर । प्रवृत्ति-निमित्ततनुत्व एवायम । (४७) **कियत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्**

(२०४५) कासू और गोंडीसे ह्रस्व अथमे ष्टरच् हो । तर शेष । आयुध=शस्त्रविशेषका नाम । कारतूस गोली नानार्थमालामे कासूयुद्धे कुवाच्येऽस्त्रे । कहा गया । वह बोली बुद्धिकी गोन्नी है कासूसे (ह्रस्व छोटी हो तब) ष्टरच् अनुबन्धलोप, षित् होनेसे ङीष् । कासूतरी छोटी हृदय विदारक गोली । ह्रस्वा गोणीसे तर । ङीप् गोणीतरी छोटी गोनरी ।(४६) वत्स उक्षन्, अश्व, ऋषभ, इनसे ननुत्वे=न्यूनता पतला दबाव अर्थमे वर्तमानसे ष्टरच् हो । ह्रस्व हटा । प्रवृत्ति निमित्त=गुण धर्मकी न्यूनता प्रत्ययार्थ । अन्य धर्मो की भी । प्रथम वय—अवस्थाके न्यूनता दबाव अर्थमे वत्ससे ष्टरच । अनुबन्धलोप, वत्सतर प्रथमवय का तनुत्व—समाप्त है । दूसरी अवस्था पहुची । पहली दब गयी, दूसरे धर्मका आक्रमण । अत कहा द्वितीय वय प्राप्त । उक्षा=तरुणो वलीवर्द। तगडाबैल । तरुणका दबना तनुत्व, तृतीय अवस्थाके आनेसे । उक्षन से ष्टरच् । नलोप। (प्रातिपदिकान्तस्य) उक्षतर । अश्वतर । अश्वाया गर्दभेन उत्पादितः गदहासे घोडीमे पैदा हुआ एक जाति, धर्मकी न्यूनता, दवना, अन्य जातिका मिश्रण धर्मान्तरण है । अश्वतर अश्वको अपेक्षा कम अम तद्धितार्थ । घोणीमे घोडामे उत्पन्न जाति शुद्ध हैं किन्तु गदहेके साहचर्यसे अन्यपिता होना न्यूनता है । ऋषभ भारवोझा—वोकावाहक, भारढोनेमे मन्दशक्तिता कमजोरी, तनुत्व है । उमी अथमे 'तर' प्रत्यय ऋषभतर । ये सभी अर्थ तनु =कृश वत्स वत्सतर से क्यो नही कहा । कृश उक्षतर । कमजोर घोडी अश्वतरी कमजोर भारवाहिका ऋषभतरी । कम ढोने वाली, ऐसा क्यो नही ? तब कहा—प्रवृत्तिमे जो निमित्तकारण उसका तनुत्व कृशता, मन्दशक्तिता ही प्रत्ययका अर्थ । वत्सत्व, अक्षत्व अश्वत्व. ऋषभत्वका दबना फल है । बछडा घोडी आदिका नही ।

(४७) किम्—यत् तत् (समाहार द्वन्द्व) से डतरच् हो । दोमे एकका निर्धारण, गुणधर्म नाम विशेषतामे निश्चय कथन पर । अनयो =इन दोनोमे वैष्णव कौन है । वैष्णत्व गुण उर्ध्वपुंड्र आदि अधिक होना । किम् इदम् अर्थसे

५।३।९२।। अनयो कतरो वैष्णव । यतर । ततर । महाविभाषया क । य. । स (४८) **वा बहूना जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३।।** बहूना मध्ये निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। 'जातिपरिप्रश्ने' इति प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवता कठ । यतमः । ततम । वाग्रहणमकजर्थम् । यक । सक ।

निश्चय करते है। किम शब्दसे डतरच् । अनुलन्त्रलोप, डित्की शक्तिसे टिका लोप। किं मे क शेष **कतर** । **यतर** अनयो य उर्ध्वपुड्र खडीतिलकधारी। यत्से डतरच् टि तत्कालोप **यतर** । अनयो स लोकप्रिय **ततर** तत्से डतरच् आदि। यदि क्रियासे दोमे एककी अधिकता निर्धारित हो। अनयो क अध्यापक अध्यापन क्रिया कुशल का इन दोनोमे निर्धारण। अनयो य पुस्तकधारी **यतर** । अनयो म लोकप्रिय **ततर** । सज्ञासे निर्णय—अनयो. क देवदत्त य त्रिपुड्र स सनातमधर्मी **ततर** । नर्धार्यमाण=जिसको निश्चित किया जाय उससे प्रत्यय। कयो अन्यतर, ययो अन्यतर, तयोरन्यतर यहा भी निर्धारण है। किम शब्दसे डतरच् न हो। तद्धितमे महाविभाषा (समर्थाना प्रथमाद्वा)-के विकल्पसे अनयो क किम् क आदेश। य स किम् यत तत्से सु अत्व, पररूप आदि।

(४८) **वा बहूना** इस सूत्रमे किं यत् तत, निर्धारणे, एकस्यकी अनुवृत्ति। बहूना निर्धारणे षष्ठी, जातिश्च, परिप्रश्नश्च जातिप्ररिप्रश्ने समाहारद्वन्द्व। बहुतोके बीचमे जाति या परिप्रश्न जो किं का ही विशेषण है। अर्थमे निर्धारणमे डतमच हो। जातौ तु सर्वेषा विशेषणम–क्रियागुणसज्ञाके निश्चय करने मे डतमच् । क्षेपार्थक किं हटनेवास्ते। भाष्यमे जाति और परिप्रश्न का तात्पर्य **प्रत्याख्यातम्=अस्पष्ट** वतलाया। क्योकि बहुतोके वीच एकका निश्चय करने अर्थमे डतरच् इष्ट ही है। वार्तिक भी **किमादीना द्वि—बहु—मर्थे प्रत्ययविधानात् उपाधीनामानर्थक्यम्। जातिपरिप्रश्नेन कर्तव्ये इतिकैयट।** कतम =क एषा पाचक शूर, पाकक्रिया, शूरता गुणमे देवदत्तनामके निश्चय मे डतमच् होता है। एषा कतरो देवदत्त कतम, भवतामध्यापक। बहुतोके बीच देवदत्ताका अर्थ डतरच् । अत प्रत्यय—सूत्रके भाष्यमे बहुषु आसीनेषु कश्चित्पृच्छति कतरो देवदत्त। **प्रत्यय** येषा मध्ये भवता कठ क ? इन शाखाओके बीच कठ है। जो गोत्र च चरणै सहसे जाति है। कि से डतमत् टिलोप आदि। **कतम** । येषा मध्ये गोत्रसज्ञक । **यतम** । तेषा स कठ लोकप्रिय **ततम** । यत् तत् से डतमच् । टिलोप। सूत्रमे वा पढनेका फल अकच्

महाविभाषया क, य, स । किमोऽस्मिन्विषये डतरजपि । कतर (४९) **एकाच्च प्राचाम् ५।३।९४॥** डतरच् डतमच्च स्यात् । अनयोरेकतरो वैद्य एषामेकतम । (२०५०) **अवक्षेपणे कन् ५।३।९५॥** व्याकरणकेन गर्वित येनेतर कुत्स्यते तदिहोदाहरणम् । स्वत कुत्सित तु 'कुत्सिते' इत्यस्य ।

इति तद्धिते प्रागिवीयप्रकरणम् ।

अथ तद्धिते स्वार्थिकप्रकरणम् ॥ ४१ ॥

(५१) **इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६॥** कन्स्यात् । अश्व इव प्रतिकृति

होना है । उसका फल एषा क कठ कक, । य यक । स सक अकच् हुआ । महाविभाषासे नही भी हुआ । इसी सूत्रमे अकच् आनेके लिए वा का विशेष फल, अन्यथा डतरच् विषयमे अकच् न आता । महाविभाषाका फल—क एतयो अर्थयो विशेष तमादय प्राक अवक्षेपणे कनो नित्या प्रत्यया यह प्रतीक है । किम से डतरच् भी हो । वा बहूना—सूत्रके विषयमे अनेकके बीच एकका निश्चय कतर इनमे कौन है ।

(४९) **एकाच्च** प्राचीनके मतमे एकशब्दसे डतरच् हो डतमच् भी । इन दानो मे मैत्र कौन है अर्थमे एक शब्दसे डतर आदि । एकतर । डतम् एकतम । इनमे मैत्र कौन है महाविभाषयैव सिद्धे प्राचा ग्रहण पूजार्थम् ।

(२०५०) **अवक्षेपणे**=गर्वसे किसीको कुछ न समझने अर्थसे कन् । कुत्सित अर्थमे क । **व्याकरणेन गर्वित** इति व्याकरणक कन् हुआ । व्याकरण स्वय तिरस्कार्य नही है । उसके पढनेवालोमे कुत्साका हेतु गर्व धारण । यद्यपि अवक्षेपण ही कुत्सा है व्याकरणकी निन्दा कैसे घटेगी ? तब कहा **येनइतर**—अवक्षेपणमे करणे ल्युट है । जिससे इतर अन्य कुत्स्यते तिरस्क्रियते वह उदाहरण है जो स्वत निन्दित है वह कुत्सितेका उदाहरण ।

इति प्रागिवीयप्रत्ययोकी अवधि पूर्ण हुई ।

अथस्वार्थिका—स्व प्रकृति तस्य अर्थ स्वार्थ, तत्रभवा स्वार्थिका । जिससे प्रत्यय हो उस प्रकृतिका अर्थ ही प्रत्ययका अर्थ है । उसका अध्याय । इस प्रकरणके सभी प्रत्ययोका निजी अर्थ नही है । (५१) **इवे**=सदृशकी तरह उपमान, जैसा अर्थमे वर्तमानप्रातिपदिकसे कन् हो । जो उपमेय है वह प्रतिकृति =मूर्ति फोटो मृदादिनिर्मिता—प्रतिमा मिट्टीकी बनी मूर्ति हो । अवक्षेपणेसे कन् आया । इवका उपमान अर्थ । किसीका मत है । चित्रकी समा-

अश्वक । प्रतिकृतौ किम् । गौरिव गवय । (५२) **सञ्ज्ञायां च ५।३।९७॥** इवार्थे कन् स्यात्समुदायश्चेत्सञ्ज्ञा । अप्रतिकृत्यर्थमारम्भ । **अश्वसदृशस्य सञ्ज्ञा** अश्वक । उष्ट्रक । (५३) **लुम्मनुष्ये ५।३।९८॥** सञ्ज्ञायां चेति विहितस्य कनो लुप्स्यान्मनुष्ये । 'चञ्चा तृणमय पुमान्' । चञ्चेव मनुष्यश्चञ्चा । वध्रिका । (५४) **जीविकार्थे चापण्ये ५।३।९९॥** जीविकार्थं यदविक्रीय-

---

नतासे स्वार्थिक नही है। अन्यमते सादृश्य हेतुसे गौर्वाहीक की तरह अश्व शब्द मूर्ति अर्थमे है। उसीका बोधक प्रत्यय है। **अश्व इव**-घोडेकी तरह-घोडा चित्र अर्थे कन्। **अश्वक** घोडमुहा। प्रकृतिके स्त्रीलिङ्ग पर भी स्वार्थिक प्रत्यय लिङ्गको लाघते है अत पुलिङ्ग अश्वक । घोडा और चित्रके बीच घोडा उपमान, चित्र उपमेय। जो प्रतिकृति-मूर्ति है उससे अभिन्न बोध। सूत्रमे चित्र अर्थ क्यो कहा ? गौरिव गवय -गायके समान लीगाह है। उपमेयके चित्ररूप होनेसे न कन्। क्योकि तृण चर्म काष्ठ कागज स्याही आदि से बनी प्रतिमाका नाम **प्रतिकृति** है। नैव गबय ।

(५२) **सञ्ज्ञाया** इवार्थे=सदृश अर्थमे कन् हो प्रकृतिप्रत्यय समुदायसे सञ्ज्ञा नाम अर्थ होने पर। यह कन् पूर्वसूत्रसे हो सकता था इस सूत्रका फल-जो प्रकृति-मूर्ति, चित्र नही है। उसके लिए आरम्भ। इमी प्रमाणसे प्रतिकृति रुकी, इव ही आया। यथा अश्वके समान नामवाला अर्थमे कन् **अश्वक** घोडेकी तरह नाम। उष्ट्र सदृशास्य सञ्ज्ञा। ऊटके समान नाम **उष्ट्रक** ऊटकी तरह है। सूर्यका। चन्द्रसदृश चन्द्रक । (५३) **लुम्मनुष्ये**=सञ्ज्ञामे **विधान** किया गया कन्का लुक् हो, मनुष्य अथ खुलने पर। इवे प्रतिकृतौसे विधान पुन कन् का लुप् नही होता, प्रतिकृति—चित्र होनेसे। **चञ्चा**-धोख पुतला, तृणका बना मनुष्य अथमे कन्। चूकि मनुष्यधोख है। इसलिए कन्का लुप् हुआ। **चञ्चा** यही रहा। इव—समानाथक चञ्चा सुत्यो **मनुष्योऽय चञ्चासञ्ज्ञक** । वध्रि इव वध्रिका चममयी प्रतिकृति चगडेकी बनी मूति, आकारके तुल्य मनुष्यनाम। युक्तवद्भावसे स्त्री०। सु आदि।

(५४) **जीविकार्थे**=जीविकाके लिए बनाई हुई मूति (जो वेचनेके लिये नही है) अर्थको खुलना हो तब कन्का लुप् हो। यथा चित्रवाला अर्थमे कन् किन्तु वह मूति जीविकार्थ है पर बेचने के लिए नही। यथा प्रतिमा प्रतिगृह्य गृहात् गृह भिक्षामणा अटन्ति-कुछ पैसे चढाये उनके प्रति प्रयोग मूर्ति है। भिक्षा मागते है। तब कन्का लुप् **वासुदेव** तुन्या जीविकार्था । शिव इवचित्र

माण तस्मिन्वाच्ये कनो लुप्स्यात। वासुदेव । शिव । स्कन्द । देवलकाना जीविकार्थासुदेवप्रतिकृतिष्विदम । अपण्ये किम् । हस्तिकान्विक्रीणीते ।

(२०५५) **देवपथादिभ्यश्च ५।३।१००।। कनो लुप्स्यात् । देवपथ ।**

शिव भोलेनाथ समान रूप अर्थमे कन् । जीविकाके लिए शिवमूर्ति लेकर घुमना हो तब कन्का लुप । **शिव** । अपण्य है। पणितु योग्यं पण्य (पण व्यवहारे) वेचनेकी वस्तु । न पण्यन् अपण्यं वेचने की वस्तु न हो, किन्तु किन्तु दिखाकर मागने की हो । **स्कन्द** इव मूनि कार्तिकेय के समान **चित्र** अर्थे कन । वह चित्र जीविकार्था =घर घर दिखाकर मागने की वस्तु है अतः कन् का लुप् हुआ । यदि मन्दिरमे प्रतिष्ठिन मूर्तिकी पूजा हो तब अगले सूत्र से लुप् होगा । चित्रके विक्रेय न होनेपर जीविकार्थत्व कैसे ? तब कहा **देवलकाना प्रतिमा गृहीत्वा भिआर्थं प्रतिगृहमटताम्**, ऐसे भिक्षु मान्य है। जो पूजनके योग्य है-यथा- अर्चासु पूजनार्हासु चित्रकर्मध्वजेषु च ।

इवे प्रतिकृतौ लोप कनो देवपथादिषु ।

कैसी भी प्रतिमा हो, पूजनके योग्य हो। (घरमे या मन्दिरमे) जो प्रतिमायें पूजी जाती है। चित्रमे क्रियामे ध्वजाओ मे मूर्तिया लक्षित है। उनसे कन् लुप् अर्थात् पूजार्थासु तासु चित्रकमषु ध्वजेषु च। देवपथादिगणे पठितेषु इवे प्रकृतौ सूत्रस्य कनो लुप् । अर्चा-प्रतिमा मूर्ति शिव विष्णुगणपति आदिकी पूज्य है। **चित्रकारी**=कर्म-रावण. कुभंकर्ण इन्द्रजीत अर्जुन. दुर्योधन । ध्वजा-मे कपि गरुण वृषभ सिंह सुपर्ण मकराद ये राज्ञा, ध्वजेषु सन्ति प्रमाणिक लोग---

राम सीता लक्ष्मणश्च जीविकार्थे विक्रीणीने यो नरस्त च धिक-धिक ।
अस्मिन्पद्ये योऽपशब्द न वेत्ति, व्यर्थप्रस पण्डित त च निग्धिक् ।

जो लिए रामसीताको बेचते है उन्हे धिक्कार है। इस पद्यमे अशुद्धिको न समझने वाले व्यर्थ विद्वानको धिक्कार बारबार है । क्योकि बाजारमे विकने वाली मूर्ति वाचक शब्दसे कन्का लुक् दुर्लभ । कन् न होना हस्तिकान्की **रामक सीतिकां लक्ष्मणक** प्रयोग साधु है, कन् लुप् असाधु-अपशब्द है । **अपण्ये** किं, दुकानमे विकनेवाली मूर्ति न हो, ऐसा क्यो ? हस्ति इव प्रतिकृति. हाथीके समान चित्रको बेचता है पण्यकी प्रतीतिसे कन्का लुप नही होता ।

(२०५५) **देवपथ** गणमे पढ़े शब्दोसे परे कन्का लुप हो । देवाना पन्था देवपथः । जिसके सदृशय मूति अर्थमे इवे प्रतिकृतौसे कन् । उसका लुप् । देव-

हसपथ । आकृतिगणोऽयम् । (५६) **वस्तेर्ढञ्** ५।३।१०१।। इवे इत्यनुवर्त्तत एव । 'प्रतिकृतौ' इति निवृत्तम् । वस्तिरिव वास्तेयम् वास्तेयी । (५७) **शिलाया ढः** ५।३।१०२।। शिलेव शिलेयम् । योगविभागात् ढञपीत्येके । शैलेयम । (५८) **शाखादिभ्यो य** ५।३।१०३।। शाखेव शाख्य । मख्य । जघनमिव जघन्य । अग्रच । शरण्य । (५९) **द्रव्यं च भव्ये** ५।३।१०४।। द्रव्यम, अय ब्राह्मण । (२०६०) **कुशाग्राच्छ** ५।३।१०५।। कुशाग्रमिव कुशाग्रीवा वुद्धि । (६१) **समासाच्च तद्विषयात्** ५।३।१०६।।

मार्गका चित्र । एव हसाना पन्था अथमे कन् उमका लुक् हसोकी गमनपक्ति आकृत्या स्वरूप परिचीय गण्यते बोध्यतेऽसौ आकृतिगण । चित्र अर्थे कन् लुप मान ले । (५६) वस्ते । सूत्रमे इव आया, स्वरित सकेतमे । प्रतिकृतौ लौटा, स्वरित न होनेसे, अनपेक्षा से । इव=सादृश्य अर्थम ढञ् हो । वस्तिर्नाभे रधो द्वयो इत्यमर । नाभिके नीचे हानियाका नाम वस्ति है कष्ट अथमे ढ—एय । इलोप आदिवृद्धि **आकृतिगण** । टिड्ढा—ङीप् **वास्तेयी** हार्निया बिमारी ।

(५७) **शिला**से समानता अर्थमे ढ हो ढञ् भी । योग विभाग=सूत्र अलगाव के कारण किसीके मतमे ढञ । । शिला इव आस्ते पत्थरके समान ठोस वस्तु **शिलेय** शिलासे ढ—एय । जब ढञ् तब आदिवृद्धि । **शैलेयम्** । (५८) **शाखा**—गण पठितशब्दसे यत हो, समानतामे 'मुख्यो भवति' आदिमे उदात्तदर्शन से यत् पठना उचित । शाखा इव फूटी हुई टहनी डालीकी तरह अथमे यत् यस्येति आलोप । **शाख्य** । मुखमिव मुख्य प्रधान मुखिया, सबका अध्यक्ष मुखसे यत आलोप **मुख्य** । जघनमिव **जघन्य** =दोनो जघोके बीचकी तरह अर्थमे य, अकार लोप । घृणित । अग्र इव=अग्रणीके समान व्यक्ति वस्तु अर्थ यत् **अग्र्य** । शरणमिव शरणमे आये हुयेके समान **शरण्य** ।

(५९) **द्रव्य**—द्रुशब्दसे इव=समान अर्थमे य 'हो' निपातनमे । **भव्ये**= उपमेये गम्ये अभिमत अर्थका पात्र हो, (द्रव्य आत्मवान्) प्रियता । द्रु=वृक्ष इव समान =जैसे पुष्प फलका पात्र वृक्ष, उसी तरह अभिमत इष्ट फलका पात्र ब्राह्मण है । अथवा कल्पवृक्ष, के समान मनोरथ पूरक, अभिमतार्थभाक् । द्रु से य । उ स्थाने गुण , अवादेश , स्वादि । द्रव्य वृक्षके समान (ज्ञान कल्याण आदि) फलसे भरा वृक्ष । उपमेय ब्राह्मण उपमान वृक्ष ।

(२०६०) **कुशाग्र**से इव अर्थमे छ हो । सूक्ष्मताकी समानतासे कुशाका अग्र भाग सूक्ष्म नोकीला अर्थमे, कुशाग्रसे छ— ईय टाप् **कुशाग्रीया** । कुशाग्र-

इवार्थविषयात्समासाच्छ स्यात । काकतालीयो देवदत्तस्य वध । इह काक-तालसमागमसदृशश्चोरसमागम इति समासार्थ । तत्प्रयुक्त काकमरणसदृशस्तु प्रत्ययार्थ । अजाकपाणीय । अतर्कितोपनत इति फलितोऽर्थ । (६२) शर्क-

---

वत्सूक्ष्मा तेजबुद्धि । (६१) समासात्=समास होनेपर तद्विषयात्=नहत्र इवार्थस्य विषया तद्विषया इवके अर्थका विषय हो, उससे छप्रत्यय हो। तत शब्द=इवका अर्थ (सादृश्य समानता=तुल्यता उपमानउपमेय भावका विषय) बोधक है। समाससे छ हो। चकार पढनेसे। पूर्व सूत्रके छ की अनुवृत्ति इव अर्थमे पुगान्त्य तक इवका अधिकार। इवार्थ=समस्यमान यावत्पदे समास की स्वीकृतिसे घनश्याम से छ नही हुआ। काकतालीय । देवदत्तकी मृत्यु काक-तालीयसे हुई जैसे—कौआ तालके नीचे अकस्मात् पहुचा, त्यो ताडफलके पतन चोटसे मर गया। तथैव—देवदत्त अचानक निर्जन स्थानमे पहुचते ही चोरसे मारा गया, समासार्थमे सादृश्य, प्रत्यार्थमे या अन्यमे तुल्यता भाषित है निर्णय के लिए काकागमनमिव तालपतनमिव विग्रहे अस्मादेव विधिबलात् सुप्सुपा समासे। क्योंकि काकताल शब्दका मिलित अन्वय एकत्र न होनेसे न द्वन्द्व, असामर्थ्य भी है। काकशब्द स्व आगमनके समान देवदत्त आगमनमे लाक्षणिक है, तालशब्द भी तालपतनतुल्य चोर आगमन का बोधक। काक आगमनके समान देवदत्तका आना, तालपतन तुल्य चोरका आना, काकताल समास हुआ, काक तालफल सयोग सदृश्य, देवदत्त चोरका समागम समासार्थ हुआ। इस प्रकार समास हो, तब काकतालसे इवान्तरार्थे सादृश्यान्तरे छ—ईय काकतालीयः चोरकृत देवदत्तवध । उपमेय, तालपतनकृत काकमरण उपमान सम्बन्ध प्रत्ययार्थ है। अत कहा तत्प्रयुक्त तादृश तालपतनप्रयुक्त, काकमरण सदृश चोरकृतो देवदत्तस्य वध । अत भाष्यमे काकतालमिव काकतालीयम् कहा। एव अजाकृपाणीय । अजागमनमिव कृपाणपतनमिव अजाकृपाण, बकरा ज्यो आया कृपाण बरस पडा, मर गया। तदिव=उसी तरह चोरसे देवदत्तका वध अर्थमे छ—ईय। अधाकृपाणीय अजाकृपाण सयोगकेसमान देवदत्त चोरकृत समागम, समासका अर्थ (कृपाणपतनसे अचानक अजामरण तुल्य चोरकृत अचानक देवदत्त का वध प्रत्ययार्थ। इस उपमानउपमेय भावके साधारणधर्म अतर्कित उपनत अप्रत्याशित परिणाम, अचिन्तितकार्य ।

(६२) शर्करादिगणमे पढे शब्दोसे अण् हो, इव—समान अर्थमे। शर्कराके समान जो वस्तु। अण् आदि शार्कर वालू चीनी। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृतिके

रादिभ्योऽण् ५।३।१०७।। शर्करेव शार्करम् । (६३) **अङ्गुलादिभ्यष्ठक् ५।३।१०८।।** अङ्गुलीव अङ्गुलिक । भरुजेव भारुजिक । (६४) **एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ।५।३।१०९।।** एकशालाशब्दादिवार्थे ठञ्‌ वा । पक्षे ठक् । एकशालेव एकशालिक –एकशालिक । (२०६५) **कर्कलोहितादीकक् ५।३।११०।।** कर्क शुक्लोऽश्व । स इव कार्कीक । लौहितीक । स्फाटिक । (६६) **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ६।३।११२** इवार्थो निवृत्त । नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधाना सङ्घा पूगा तद्वाचकात्स्वार्थे ञ्य स्यात । लौहितध्वज्य । 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम व्रात । कापोतपाक्य च्फञ् ।

लिङ्ग वचनको लाघते है । विशेष्य परायण होनेसे । (६३) **अङ्गुलि** आदिमे ठक् हो इव आदि **आङ्गुलिक** अङ्गुल भरका । लिङ्गवचन विशेष्यके अनुसार भरूजा इव अर्थ ठ–इक आदि । (६४) **एकशालाशब्दसे** इव अर्थमे ठञ् हो ठक् भी । अन्यतरस्या पढनेसे एकशालाकी तरह भवन है । ठञ् इक एकशालिक जब ठक् तब च कितिसे आदिवृद्धि गृह' । एकशालिक

(२०६५) कर्क और लोहितसे इव अर्थमे ईकक् हो । सफेदघोडाका नाम सित कर्क उसकी तरह जो हो अर्थप ईकक् । किति च आदिवृद्धि । अकारलोप **कार्कीक** । श्वेन अश्व सदृश है । लोहितमिव लालसदृश ईकक् । किति च आदिवृद्धि **लौहितीक** । स्फटिक मणि जपा पुष्प के सम्पर्कसे लोहित इव (६६) **पूगात्**=(इव अर्थ रुका) व्याख्यानसे । नाना जातिके लोग जिनका कर्म व्यवहार जीविका **एकढङ्ग**का निश्चित नही, धर्महीन, अर्थकाम भोग प्रधान ऐसा सघ=समुदायका नाम पूग है उससे स्वार्थमे ञ्य हो । ग्रामणीवाचक शब्दपूर्वमे न रहे तब । लोहिता ध्वजा यस्य सघस्य लोहितध्वज जिस धर्महीन समुदायका झण्डा लाल हो । स्वार्थमे ञ्य आदि । इसमे स्वरूप अमान्य है । देवदत्तो ग्रामणीर्येषा ते देवदत्ताका=समुदाय पूगवचन है, ञ्य न हो । अत अग्रामणीपूर्वात् पडा ? । (वा०) **व्रात** और च्फञ् अन्तसे ञ्य हो स्त्रीलिङ्गके बिना । भार ढोना, गाडी खीचना आदि शरीरश्रमजीवी, नाना जातिके धर्महीन समाजका नाम **व्रात** है । यथा कपोतान् पक्षिविशेषान्भक्षणाय पचति **कपोतपाक** उसी अर्थमे ञ्य आदिवृद्धि । पच्से घञ्, परे चजो'कु । कुञ्जस्य गोत्रापत्य कौञ्जायन । गोत्रे कुञ्जादिभ्य. च्फञ् । फको आयन स्वार्थ मे ञ्य आदि । ब्रध्नस्य गोत्राऽपत्य ब्राध्नायन. तत स्वार्थे ञ्य. ।

कौञ्जायन्य । ब्राध्नायन्य । (६७) **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ५।३।११४॥** वाहीकेषु य आयुधजीविसङ्घस्तद्वाचिन स्वार्थे । ञ्यट । क्षौद्रक्य । मालव्य । टित्त्वान्ङीप् । क्षौद्रकी । आयुध-इति किम् । मल्ला । सघ इति किम । सम्राट् वाहीकेषु किम । शबरा अब्राह्मण—इति किम् । गोपालका सालङ्कायनी । ब्राह्मणार्थे तद्विशेषग्रहणम् । राजन्ये स्वरूपग्रहणम् । (६८) **वृकाट्टेण्यण् ५।३।११५॥** आयुधजीविसघवाचकात्स्वार्थे । वार्केण्य । आयुध इति किम् । जातिविशेषान्मा भूत् । (६९) **दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ५।३।११६॥** दामन्यादिभ्यस्त्रिगतषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसङ्घवाचिभ्य स्वार्थे छ स्यात् । त्रिगत षष्ठो वर्गो येषा ते त्रिगर्तषष्ठा ।

---

(६७) **आयुध**=शस्त्रसे जीविकावालोका समुदाय वाचक शब्दसे ञ्यट् हो। **वाहीक** ग्राममे या देशमे । ब्राह्मणक्षत्रियके समुदायको छोडकर । वाहीक देशवासी समुदाय का नाम क्षुद्रक, उसी अथमे प्रत्यय आदि। मालव नामक शस्त्रजीवियो का समुदाय वाहीक देशमे है। स्वार्थमे प्रत्यय **मालव्य** । टित् होनेसे टिड्ढासे ङीप् **क्षौद्रकी** देवी । धर्महीन समाजकी स्वामिनी । शस्त्र-जीवि क्यो पढा ? मल्ला (पहलवानी विद्यासे जीते है प्रत्यय) न हो। सङ्घ क्यो कहा ? सम्यक् राजते असौ सम्राट् एक राजा । सङ्घ नही है । बाहीकदेश क्यो ? **शबरा** जङ्गलीजाति। अब्राह्मण पढनेका फल बोले--गोपालकाः ब्राह्मण है, प्रत्यय न हो। ब्राह्मणमे विशेष, राजन्यमे स्वरूप भी स्वीकार। (६८) **वृकशब्द** शस्त्रजीवी समुदाय अर्थमे हो उससे टेण्यण् । वृक एव वार्केण्य । शस्त्र जीवियोका समुदाय वृक उससे एण्य आदिवृद्धि रपर। आयुध क्यो कहा—केवल जीवका सघ हो, केवल जातिवाचक समुदाय हो, या पशु उससे एण्य न हो।

(६९)**दामनि** आदिर्यस्य दामन्यादि , त्रिगर्त षष्ठो यस्य वर्गस्य दोनोके बीच समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी। दामनि आदि शब्दसे, त्रिगर्त षष्ठसे शस्त्र जीवी समुदाय होने पर स्वार्थमे 'छ' हो। जिन शस्त्र जीवियोके छ—वर्ग है उनमे छठा वर्ग त्रिगर्त है। जो आहु—कहे गये। क्या ? कौण्ठोपरथ दाण्डकि कौष्टुकि जालमानि ब्राह्मगुप्त जालकि । ये त्रिगर्त षष्ठ है जिसका दूसरा नाम जालकि । इनमे कौण्डोपरथ ब्राह्मगुप्त शब्द शिवादिभ्य से अण्न्त है। अन्त इञन्त । दामादिगणका उदाहरण—दामिनि एव बिजली ही **दामनीय**

'आहुस्त्रिगतषष्ठास्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
क्रौष्टुकिर्जालमानिश्च ब्राह्मगुप्तोऽथ जालकि ॥'

दामनीय । दामनीयौ । दामनय । औलपि, आलपीय । त्रिगर्त, कौण्डोपरथीय । दाण्डकीय । (२०७०) **पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ५।३।११७॥** अ युधजीविसघवाचिभ्य एभ्य क्रमादणञौ स्त स्वार्थे । पार्श्व । पार्शवौ । पार्शव यौधेय । यौधेयौ । यौधेया । ।७१। **अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणोयञ् ५।३।११८॥** अभिजिदादि-

---

छ -ईय-इलोप । वह सघ जो विद्युत्की तरह टूट पडे । द्विवचनमे दामनीयौ । किन्तु बहुवचनमे छ प्रत्ययका लुप् होना है । बहुत्वे तद्राजत्वाल्लुक् । **औलपि** एव **औलपीयः** स्वाथमे छ–ईय प्रकृतिदर्शना मनमोहक । यहा भी बहुवचनमे छका लुक् । हरय की तरह औलपय बनेगा । त्रिगतका प्रयोग कौण्डोपरथ ही अर्थमे छ–ईय । दण्डकस्यापत्य दाण्डकि से स्वार्थमे छ–ईय । वहुवचनमे कौण्डो-परथा , दाण्डकय बनेगा । छ प्रत्ययका लुक्-से क्रोष्टुकस्यापत्य क्रौष्टुकि से एव छ–आदि **क्रौष्टुकीय** जालमानि एव जालमानीय । ब्राह्मगुप्तीय जाल-कीय । बहुवचनमे ईय-का लोप । ऋषि सतान, जालिया, वेदब्राह्मणसे रक्षित पानीका स्रोत या जाल ।

(२०७०) **पर्शु** आदि और यौधेय आदिगण पढे शस्त्रजीवीसघ–समुदाय वाची शब्दसे क्रमश अण् अञ् स्वार्थमे हो । पर्शु शब्द जनपद क्षत्रियविशेष-वाचक अपत्य अर्थमे द्व्यञ्मगध–सूत्रसे अण् उसके अस्त्रजीवी समुदाय अर्थमे अणादि । **पार्शव** बहुवचनमे अपत्य प्रत्ययका ञ्यादयस्तद्राजासे लुक् । प्रसङ्ग के अणका भी लुक् । **पर्शव** । **यौधेय** युध्यते असौ । युधाया अपत्य=लडने-वालोकी सतान । द्व्यच से ढक्–एय यौधेय । पुन अपत्यसघकी विवक्षामें अञ् । ञ् इत्का फल आदिउदात्त । अपत्यसघ बहुवचन इच्छासे तद्राजस्य अञ्का लुक् । यौधेयस्याङ्को लक्षण वा सङ्घाङ्कलक्षणसे अञ् । एव **शौक्रेय** ।

(७१) **अभिजित्** विदभृत शालावत् शिखावत् शमीवत् ऊर्णावत् श्रुमत शब्दोके बीच समाहार द्वन्द्व कर पञ्चमी का लुक । अभिजित् आदि अण् अन्त हो तब निजी अर्थमे यञ हो । आयुधजीवी सघ रुक गया । यथा अभि-जित की सतान अथमे तस्यापत्य से अण् आदि आभिजित एव **आभिजित्य** प्रकृति अर्थमे ही प्रत्यय । वेदभृतोऽपत्य वैदभृत स एव अर्थे यञ् **वैदभृत्य** । शालावतो अपत्य शालावत स एव **शालावत्यः** । शिखावतो अपत्य **शैखावतः**

भ्योऽणन्तेभ्य स्वार्थे यञ्स्यात । अभिजितोऽपत्यमाभिजित्यः । वैदभृत्य शालावत्य । शैखावत्य । शामीवत्य । और्णावत्य श्रौमत्य । ।७२। ञ्यादयस्तद्राजा ५।३।११९।। 'पूगाञ्ञ्य—' इत्यारभ्य उक्ता एतत्सञ्ज्ञा स्यु । तेनास्त्रिया बहुषु लुक । लोहितध्वजा, कपोतपाका, कौञ्जायना, ब्राध्नायनाः इत्यादि । ।७३। पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ५।४।१।। लोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम्, अतो न स्थानिवत् ।* 'पाद पत्' । 'तद्धितार्थ'

स एव शैखावत्य चोटीवालेकी सतान । शमीवतो अपत्य शामीवत स एव शामीवत्य शमीलकडीवालेकी सन्तान । ऊर्णावतो अपत्य और्णावत यञ ऊनवालेकी सतान । श्रुमतो अपत्य श्रौमत स एव श्रौमत्य । अभिजितो मुहूर्त मे यञ् नही होता । अपत्य अणन्तसे ही होने से ।

(७२) ञ्यादय पुगाञ्ञ्य सूत्रसे लेकर यहा तक उक्ता=कहे गये प्रत्यय तद्राजसज्ञक हो, जिसका फल स्त्रीलिङ्गको छोडकर अन्यके बहुवचनमे लुक् होना । लोहिता ध्वजा यस्य लाल झण्डीवाला अर्थमे पुगात् मे—ञ्य उसको तद्राजसज्ञा । बहुवचनपर लुक् लोहितध्वज्य । कपोतान्पचति कपोतपाक. स एव कपोतपाक्य । तद्राजसज्ञा, य का लुक । कौञ्जायन्य मे भी य का लोप । वातच्फञो के ञ् का लुक् ब्राध्यायना इत्यादि । क्षौद्रक्य क्षुद्रका आयुधजीवी, यका लुक्, वार्कैण्य । वृकाट् टेण्यण का लुक् । दामनीयौ दामनयः कौण्डोपरथो मे दामन्यादिके छ का लुक् । पार्शव । यौधेय अण् अञ्का लुक् अभिजित, विदभृत मे यञका लुक् । इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पाद ।

(७३) पादशत—पादश्च शत च अनयो समाहार से वुन् की अपेक्षा पचमी । सख्यावाचक शब्द पूवमे हो, पाद या शत से (वीप्सा=अनेक बार अथमे वर्तमान) से स्वार्थे वुन् हो । प्रकृतिके अन्तकालोप भी । जब वुको अक आदेश तब यस्येति च सूत्रसे लोप होगा ही, यहा लोप अर्थ क्या है तब कहा लोपवचन-लोपका पढना अनैमित्तिकत्वार्थ न निमित यस्य स अनिमित्तिक विना किसी कारणके लोप होनेके लिए । इस कारण स्थानिवद्भाव न हो और पादके स्थानमे पद आदेश हो । यदि यस्येति च से लोप होता । जो पर निमित्तक है । अच परस्मिन्से परनिमित्तक अजादेश (लोप) देखकर स्थानिवत् होता तब पाद पत आदेश न होता । अत लोप पढा । तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च, सूत्रमे समास होने पर ही वुन्प्रत्यय होगा । न

इति समासे कृते प्रत्यय । वुन्नन्त स्त्रियामेव । द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकाम् द्विशतिकाम् । 'पादशतग्रहणमनर्थकम, अन्यत्रापि दर्शनात् । द्विमोदकिकाम् । (७४) **दण्डव्यवसर्गयोश्च** ५।४।२।। वुन्स्यात् । अवीप्सार्थमिदम् । द्वौ पादौ दण्डित द्विपदिकाम् । द्विशतिकां व्यवसृजति । ददातीत्यर्थं । (२०७५) **स्थूलादिभ्य प्रकारवचने कन्** ५।४।३।। जातीयरोऽपवाद स्थूलक स्थूल-

---

च स्वार्थिक प्रत्यय अर्थवान् नही, तद्धितार्थोत्तरसे समास कैसे ? वुन्के द्योत्य अर्थसे अर्थवान् होने से । **वुन्नन्त**=स्वभावसे वुन्प्रत्यय स्त्रीलिङ्गमे होते है । यथा दो दो पाद देते है दो चवन्नी अथवा दो दो चरण प्रहार अर्थमे द्विपाद से, वु-अक । अन्त्य द मे अ का लोप । पाद स्थाने पत् आदेश । टाप् अम । **द्विपदिका** ददाति । समर्पणमात्र ददाते अर्थ, पर स्वत्वसमापनना नही । अन्यथा उत्तर सूत्रका विषय बनेगा । द्वे शते ददाति अथमे वु-अक । टाबद दि । शत् के अन्त अ का लोप **द्विशतिका** ददाति । दो दो सौ देता है । (वा) **पादशत** पढना व्यर्थ है, क्योकि **अन्यत्रापि**-अन्य स्थलमे भी वुन, लोप, देखे जानेसे । यथा द्वौ मोदकौ ददाति अथमे वु-अक आदि होते है । द्वौ द्वौ माषौ ददातिमे नही होता, अनभिधानसे ।

(७४) **दण्ड** =हठपूर्वक धन लेना । व्यवसर्ग=देना अर्थमे सख्या आदि, पाद और शत शब्दसे वुन् हो, प्रकृतिके अन्तका लोप भी । स्त्रीलिङ्ग अर्थ मानकर । तद्धितार्थ । यह कार्य पूर्व सूत्रसे होता यह सूत्र क्यो ? तब कहा **अवीप्सार्थ**=विना वीप्साके वुन् लोप के लिए । यथा देवदत्तेन यज्ञदत्त द्वौपादौ दण्डित बलात्कृत्य ग्राहित । दो चौथाई ग्रहण कराया या दो लात मारा गया । द्विपादसे पूर्वकार्य । द्वे द्वे शते ददाति द्विशतिका व्यवसृजतिका ददाति अर्थ । दण्डि दण्डग्रहणार्थं । द्विकर्मकमे पढा है । दो चौथाई देनेका विषय बना यज्ञदत्त ।

(२०७५) **स्थूलादिभ्य** स्थूल आदि प्रथमान्तशब्दसे प्रकारवचने अर्थमे कन् हो, जातीयरको बाधकर । यहा प्रकारका भेद-अलग करना, सादृश्य समानता खोजने अर्थमे वर्तमानशब्दसे यथायोग्य कन् हो । इमसे सिद्ध है कि प्रकारवान् **अर्थमे कन** । केवल प्रकार अथमे नही । स्थूलप्रकार मोटा व्यक्ति स्थूलता, विशेषण है अर्थमे प्राप्त जातीयरको बाधकर कन **स्थूलक** । मोटा है पतला नहीं भेद हुआ । अणुप्रकार अणुक-सूक्ष्मके समान अर्थमे कन् (वा०) चञ्चद् वृहतसे प्रकार भेद या उपमान उपमेयमे कन् हो, चञ्चत्क चलता हुआ है ।

प्रकार । अणुक । 'चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्' । चञ्चत्क । बृहत्क । 'सुराया अहौ' सुरावर्णोऽहिः सुरक । (७६) **अनत्यन्तगतौ क्तात् ५।४।४॥** छिन्नकम् । भिन्नकम । अभिन्नकम् । (७७) **न सामिवचने ५।४।५॥** सामिपर्याये उपपदे क्तान्तान्न कन । सामिकृतम् । अर्धकृतम् । अनत्यन्तगतेरिह प्रकृत्यैवाभिधानात्पूर्वेण कन्न प्राप्त, इदमेव निषेधसूत्रमत्यन्तस्वार्थिकमपि कन ज्ञापयति । बहुतरकम् । (७८) **बृहत्या आच्छादने । ५।४।६॥** कन्स्यात् । 'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा' इत्यमर । 'आच्छादने' किम् ? बृहती छन्द । (७६) **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः**

चञ्च धातु चलने अर्थमे । अचलनमपि । य चलन्निव दृश्यते स **चञ्चत्कः** । पानीमे मणि है पानीके हिलनेसे हिलता हुआ मणि स्पन्दमान स्वच्छ जल-मध्यतो सादृश्येऽर्थे कन्, अबृहन्मणि बृहन्इव दृश्यते स **बृहत्क** बडा नही है । शीशा विशेषसे विशाल छाया (ग०) सुरासे कन् हो समानता अर्थमे । सुरा मदिरा रङ्गका सर्प अर्थमे कन् । केऽण' से ह्रस्व सुरक सुरा सदृश सर्प ।

(७६) **अनत्यन्त गतौ**=सम्पूर्ण अवयवसे सम्बन्ध न हो उस दशामे क्तान्तसे छिन्न किञ्चिद अङ्ग **छिन्नकम्** एक ही अङ्ग कटा है । अर्थे कन् । भिन्नम् एकम अङ्ग **भिन्नकम्** एक अङ्ग टूटा है सम्पूर्ण नही । अभिन्नम् एकम् अङ्गम् **अभिन्नकम** एक अङ्ग जुडा है सब नही । (७७) **न सामि**=अर्ध अर्थमे वर्तमान सामि का पर्याय उपपद=पूर्वपद हो, तब क्तान्तसे कन् कहे । वचन पढनेसे पर्यायका लाभ । सामि—अव्यय आधे अर्थमे **सामिकृतम्** । आधे अथमे वर्तमान सामिका क्तान्त कृतके साथ समास । पूवसूत्रमे प्राप्त कन्का निषेध हुआ । पर्यायमे **अर्धकृतम्** (कर्मधारय) आधा काम किये । कन् का निषेध । **शङ्का**—अत्यन्तगते पूर्वसूत्रमे पढा है । उसका अर्थ सामि या अर्धसे खुल रहा है । **उक्तार्थानामप्रयोग'** । न्यायसे कनकी प्राप्ति नही निषेध कैसे ? **वह** कन् व्यर्थ होकर ज्ञापयति कि अत्यन्त स्वार्थिक भी कन है । प्रकृतिके अभिधानसे अत्यन्त स्वार्थमे प्राप्त कन निषेध वास्ते सूत्र आवश्यक । **बहुतरकम्** । बहुतरमेव अर्थमे अत्यन्त स्वार्थिक कन् हुआ । भाष्यमे प्रत्याख्यात है । यवादित्वात् स्वार्थे कन् । सुकस्तरक सिद्धम । (७८) **बृहतीसे** आच्छादन—ढकना, चादर आदि अर्थमे कन् । बृहतीएव **बृहतिका** उत्तरीय वास । कन् ह्रस्व टाप् अमरकोशमे प्रावार—घेरा, उत्तरासर्ग अङ्गप्रोक्षणी समान है । बृहतिका नाम आच्छादन आवरण क्यों कहा ? जहा छन्दका नाम बृहती हो, वहा कन् न हो ।

५।४।७।। स्वार्थे । अषडक्षीणो मन्त्र । द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थ । आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम् । निपातनात्पूर्वस्य मुम् । अलंकर्मणे अलङ्कर्मीण । अलम्पुरुषीण । ईश्वराधीन । नित्योऽय ख उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात् । अन्येऽपि केचित्स्वार्थिका प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते । तमबादय, प्राक्कन, ञ्यादय, प्राग्वुन, आमादय प्राड्मयट । बृहतीजात्यन्ता समा-

(७९) अषडक्षु अशितङ्गु, अलङ्कर्मन्, अलम्पुरुष इन शब्दोमे और अधि शब्द उत्तरभागमे पद रहे, उससे स्वार्थमे ख हो । यथा—अषडक्षीण मन्त्र । राजाका मन्त्रीके साथ किया हुआ निर्णय । छ कान मे पडा मन्त्र फैल जाता है । चार कान वाला सुरक्षित रहता है अत अविद्यमानानि षट्अक्षीणि-श्रोत्रेन्द्रियाणि यस्मिन् । छ कान अनुपस्थित हो जिस विचार निर्णयमे अक्षिका प्रत्यक्ष अर्थ । क्योकि कानसे शब्दका प्रत्यक्ष होता है । षच्अन्त शब्दसे स्वार्थ ख—ईन आदेश णत्व । मातृभोगीणकी तरह णत्व । पद व्यवायेऽपिसे णत्वका निषेध नही, पद परे जो पद उसके व्यवधानमे णत्व । दो व्यक्तिसे ही किया हुआ मन्त्र तद्धितार्थ । आशिता=खिलायी गयी गाये इस जङ्गलमे इसकानाम आशितङ्गवीनम् । अश भोजने धातु (ज्ञापनसे) कर्तामे निपातनमे क्त । आशित शब्दसे मुम्—म अनुस्वार परसवर्ण । स्वार्थमे ख ईन आशितङ्गु—ईन ओर्गुण अवादेश, रूप सिद्धम् । प्रभूत यवसम फलितोर्थ । अलङ्कर्मणे=कर्मसे विरत हो जाओ । अलङ्करणादि अर्थमे चतुर्थी समास होनेपर ख—ईन । नस्तद्धिते टि—अन्का लोप णत्व । अलम्पुरुषाय अलम्पुरुषीण । पुरुष वशके बाहर कर्मधारय समास ख आदि पूर्ववत् । प्रतिमल्लादे । ईश्वराधीन=ईश्वरे अधीन भगवान पर भरोषा । यस्मादधिक सूत्रसे सप्तमी । शौण्डै से समास, स्वार्थे ख ईश्वराधीन । यह सूत्र नित्य ख करता है । समर्थाना प्रथमाद्वासे वाका विकल्प नही आता आगे विभाषाञ्चे सूत्रमे विभाषा पढनेके प्रमाणसे । प्रसङ्गसे अन्येऽपि=दूसरे सूत्रोमे भी कुछ स्वार्थी प्रत्यय नित्य होते है । इष्यन्ते=भाष्यकारेण । यथा तमबादय: अतिशायने तमपसे लेकर अवक्षेपणे कन्के पहले तक विधान किये गये प्रत्यय नित्य होते है । पूगाञ्ञ्य सूत्रसे लेकर पादशतस्य सख्यादेर्वुन् के पहले तक विधान किये गये नित्य है । आमादय:=किमेत्तिङव्ययधादाम् सूत्रसे लेकर प्रकृतिवचने मयट् के पहलेके प्रत्यय नित्य । बृहती शब्दसे बृहत्या आच्छादनेसे कन् नित्य । जात्यन्तसे बन्धुनि अर्थमे छप्रत्यय नित्य । समासान्त प्रत्यय भी नित्य है । बहुवचनसे(पाशप्से लेकर षष्ठ्या रूप्य च तक)के प्रत्यय

सान्ताश्च' इति भाष्यम। (२०८०) **विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम् ५।४।८॥** अदिक्स्त्रीवृत्तेरञ्चत्यन्तात्प्रातिपदिकात्ख स्याद्वा स्वार्थे। प्राक्—प्राचीनम। प्रत्यक्—प्रतीचीनम्। अवाक—अवाचीनम्। निकृष्टप्रतिकृष्टावरेफयाप्यावमाधमा' इत्यमर। अवन्तमञ्चतीति अर्वाक—अर्वाचीनम। अदिक्स्त्रियाम किं? प्राची दिक्, उदीची दिक्। दिग्ग्रहण किं? प्राचीना ब्राह्मणी। स्त्रीग्रहण किम? प्राचीन ग्रामादाम्रा। (८१) **जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ५।४।९॥**

नित्य मान्य। वस्तुनस्तु परिगणिता एव नित्या।

(२०८०)**विभाषा**—दिक् चासौ स्त्री च दिक्स्त्री, दिशा हो स्त्रीलिङ्ग हो उसको छोडकर अञ्च अन्त प्रातिपदिकमे स्वार्थमे ख हो, विकल्पमे। यथा प्राक् देश अर्थमे अञ्च अन्त प्राञ्चमे अस्ताति प्रत्यय, उसका अञ्चे लुक्। लुक्तद्धितसे शब्दका प्राचीन देश अर्थमे ख—ईन **प्राचीनम** आधेयपरक है। स्वभावसे ही नपुसक, एक वचन है। यदा न ख तदा प्राक् इति रूप, विशेष्य प्रधान या आधार। लिङ्ग के त्यागमे प्रमाण नही। यथा प्राचीना आम्रा। प्राचीना शाटी। प्राचीन वनम आदि। अव अञ्चति **अवाक्** देशकार्य अर्थमे हुये अस्तातिका लोप। पक्षमे ख—ईन **अवाचीनम**। रसातल—नीचेदिशाके लोक, अमरकोषमे अवनका अर्थ निकृष्ट, अधम, प्रतिकृष्ट उससे भी अधमकी तरह। अञ्चति गच्छति चलता है अर्वाञ्चसे अस्ताति। अच मे अकार लुप्त। चौ सूत्र से दीर्घ। पक्षमे ख—ईन। अधम देश अर्थ। दिशावाचक स्त्रीलिङ्गको छोड कर क्यो कहा? प्राची दिक पूर्वदिशा। उदिची उत्तर दिशा अर्थ होनेपर ख प्रत्यय नही। लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे प्राप्त। दिशा क्यो पढा? अस्त्रिया पढना ही पर्याप्त था, प्राचीना ब्राह्मणी=पुरानी ब्राह्मणपत्नी, दिशा अर्थ नही है ख—ईन हुआ। अदिशि पढना पर्याप्त था स्त्रीवृत्ते क्यो पढा? अव्याप्ति परिहारार्थ बोले—प्राचीन ग्रामात् आम्रा गावसे पूर्व आम है। प्राच्या दिशि पूर्व दिशामे अर्थ अस्तातिका लुप् होनेपर प्राक् यह प्रकृति होगा। अव्यय होने से स्त्रीलिङ्ग नही, ख होता ही है।

(८१) **जाति** अन्त प्रातिपदिकसे बन्धुनि अर्थमे वर्तमानसे स्वार्थमे छप्रत्यय हो, द्रव्य अर्थमे बन्धु है जातिका आश्रय व्यक्ति फलित हुआ। ब्रह्मणो जातिर्यस्य स ब्राह्मणजाति उसका आधार व्यक्ति अर्थमे छ—ईय **ब्राह्मणजातीयः**। पुरुष जातिका आधारभूतपिण्ड। सूत्रमे बन्धुनि क्यो पढा? शुद्ध जाति अर्थ मे छप्रत्यय न होनेके लिए। यथा ब्राह्मणस्य जाति शोभना। यहा पुरुष अर्थ

ब्राह्मणजातीय । बन्धुनि किं ? ब्राह्मणजाति शोभना । जातेर्व्यञ्जक द्रव्यं बन्धु । (८२) **स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ५।४।१०॥** सस्थानेन तुल्येन चेत्स्थानान्तमर्थवदित्यर्थ । पित्रा तुल्य पितृस्थानीय –पितृस्थान । सस्थानेन किं ? गोस्थानम् । (८३) **अनुगादिनष्ठक् ५।४।१३॥** अनुगदतीत्‍ अनुगादी । स एव आनुगादिक । (८४) **विसारिणो मत्स्ये ५।४।१६॥** अण्स्यात् । वैसारिण । मत्स्ये इति किम् । विसारी देवदत्त । (२०८५) **सख्याया क्रियाभ्यावत्तिगणने कृत्वसुच् ५।४।१७॥** अभ्यावृत्तिर्जन्म ।

नही है । क्योकि बध्यते व्यज्यते जाति अस्मिन् बन्धु व्यक्ति । बन्ध धातुमे अधिकार अर्थमे उ प्रत्यय । अत कहा जातिका द्योतक बोधक द्रव्य बन्धु है । आप्तका पर्याय नही, नपुसक उच्चारणसे । रूढ, आप्त पर्याप्त, पुलिङ्ग है ।

(८२) **सस्थानेन**-तुल्य रूप **अर्थ**मे यदि स्थानान्त शब्दस्वरूप अथवान होता है उससे छ हो विकल्पसे । समानरूप प्रतीति प्रत्ययार्थ । इति शब्दसे अर्थ वत्का लाभ । पूजनीय आदरणीय अर्थमे स्थान शब्द है । पितृ स्थानमिव स्थान यस्य बहुव्रीहि, पित मे पालनकी शक्ति पूज्यगुण सम दर भावके समान पुत्र शिष्य, अन्य पुरुष, पितृस्थान के अथमे छ–ईय **पितृस्थानीय** । पक्षमे छ नही हुआ । पितृतुल्य इत्यथ । सस्थानेन तुल्येन अर्थ क्यो कहा ? तिष्ठन्ति अस्मिन्निति स्थान, गवा स्थान गोशाला किसीके तुल्य अथ खुल नही रहा है न छ । (८३) **अनुगादी०** शब्दसे ठक हो स्वार्थमे जो नित्य है । आप्ता.य — प्राडमयट पढने जानसे । अजातो सुपि णिनि प्रकृति निर्णयके लिए, उसी अर्थ मे ठक् आदि **आनुगादिक** भाषान्तरवक्ता । नस्तद्धिते टिलोप । (८४) **विसारिन्** शब्दसे मत्स्य अथ खुलता हो तब स्वार्थमे अण् कहे । णित् से आदिवृद्धि, इनणिके प्रकृतिभ वने टिलोप नही । मत्स्य क्यो कहा ? देवदत्त विसारी लम्बा पडा है । यहा अण् न हो ।

(२८५) **सख्याया:** क्रिया– भोजन गमन पठन, आदिकी अभ्यावृत्ति=पुन पुन जन्म (जनी प्रादुर्भावे) बार-बार होना । अभि आ–उपसर्ग वृतसे वृतु वतने धातुका अनेकवार होना अथ । उससे भावमे क्तिन् । अभ्यावृत्ति क्रियाका बारबार होना उसकी गणनामे बर्तमान सख्या वाचक शब्दसे स्वार्थमे **कृत्वसुच्** हो । हलन्त्यसे च् इत् । उ–उच्चारणार्थ । तसिलादिमे गणनासे कृत्व अथवाले, अव्यय मान्य । पचकृत्व पचबारमुत्पन्ना भोजनक्रिया, पाचबार खाता है अत्र वाचक पञ्चन्के अर्थमे कृतम् । पचन् कृत्वस् प्रातिपदि-

क्रियाजन्मगणनवृत्ते संख्याशब्दात्स्वार्थे कृत्वसुच्स्यात्। पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते। सङ्ख्यायाः किं? भूरिवारान्भुङ्क्ते। (८६) द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८॥ कृत्वसुचोऽपवादः द्विर्भुङ्क्ते। त्रिः।* 'रात्सस्य'। चतुः। (८७) एकस्य सकृच्च ५।४।१९॥ 'सकृदित्यादेशः स्यात्' चात्सुच्। सकृद्भुङ्क्ते।* 'संयोगान्तस्य' इति सुचो लोपः, न तु 'हल्ङ्याप्' इति, अभैत्सीदित्यत्र सिच इव सुचोऽपि तदयोगात्। (८८) विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ५।४।२०॥

कान्तस्य नस्य लोप। सकारस्य रुत्वे उत्वे गुणे। संख्यायाः किं? गणनामे वर्तमानसंख्या शब्द क्यों कहा? भूरिवारान् बहुत बार खाता है। संख्या निश्चित नहीं है, प्रत्यय न हो। भूरिका बहु अर्थ। वारका क्रियापर्याप्तिकाल अर्थ। उससे अत्यन्त संयोगमें द्वितीया। बारशब्दका काल अर्थ, अब भूरिका भी काल अर्थ क्यों नहीं? समान अधार होनेसे। बहुत बारका भोजनक्रिया अर्थ बहुत अर्थात् गम्यते। वारशब्दसंख्या नहीं है न कृत्वसुच्। अभ्यावृत्ति क्यों पढ़ा? पञ्चपाका, दशपाका क्रियामात्रकी गणना में न हो। पुनः पुनर्दण्ड, पुन पुन स्थूल आदि द्रव्यगुणकी बारबार उत्पत्तिमें प्रत्यय न हो। यदि भवनक्रियाका पुनर्जन्म है ऐसा कहे तब उत्तरसूत्रके लिए क्रिया आवश्यक।

(८६) द्वित्रि चतुर शब्दसे क्रियाके बारवार पुन पुनर्जन्म होने पर सुच् हो, कृत्वसुको बाधकर। च इत्। उ उच्चा–। अव्ययपूर्ववत्। दो बार खाता है खादन क्रियाका दो, कालवाचक द्वि से सुच्। अनुबन्ध लोप। स को रु–वि–। द्विर्वचनेऽचि, द्वि आवृत्ति द्वि प्रयोग, द्विर्बद्ध', सिद्धा साध्या क्रियाका आवृत्तिमे प्रमाण। द्वि कर्ता पचकृत्व कटान कर्ता। इत्यादि गुणभूत क्रिया योगमे भी साधुत्व इष्ट। त्रि =तीन बार भोजनकिया अर्थमे सुच् स को रु–वि। चतुर्वार चार बार खाता है अर्थमे सुच् चतुर्स्। रात्सस्य से परे स् का लोप। रको विसर्ग। चतु इति सिद्धम्। (८७) एकस्य= एक बार की क्रिया अर्थमे एकके स्थान मे सकृत् आदेश हो सुच भी। एक शब्दसे सुच्, एक को सकृत आदेश हुआ। सकृत् स् संयोगके अन्तमे स–का लोप हुआ। एक बार खाता है एकत्व विशिष्टा भुजिक्रिया। अत्र शङ्का हल्ङ्याभ्य से संयोगान्तलोप असिद्ध होगा, तब कहा अभैत्सीत्मे सिच् का लोप नहीं। तदयोगात्=हल्ङ्याप् से सम्बन्ध नहीं।

(८८) विभाषा अविप्रकृष्ट आसन्न–समीपकालिक क्रिया पुन पुन होनेकी गणना अर्थमे वर्तमान बहु शब्दसे धा प्रत्यय हो विकल्प से। पक्षमे कृत्वस्।

अविप्रकृष्ट आसन्न । बहुधा बहुकृत्वो वा दिवसस्य भुङ्क्ते । आसन्नकाले किम् बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते ।(८९) **तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१॥** प्राचुर्येण प्रकृत, तस्य वचन प्रतिपादनम् । भावेऽधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये प्रकृतमन्नमन्नमयम् । अपूपमयम् । यवागूमयी । द्वितीयेऽन्नमयो यज्ञ । अपूपमय पर्व । (२०९०) **समूहवच्च बहुषु ५।४।२२॥** सामूहिका प्रत्यया अतिदिश्यन्ते,

---

अभी खाया फिर खा रहा है। थोडे समयके अन्तर पर बारबार खाया अथमे वर्तमान बहु शब्दसे धा हुआ—**बहुधा**। पक्षमे कृत्वस् **बहुकृत्व** दिनमे प्रात से प्रति घण्टा भोजन—किया। दिवसस्य अत्र–शेषत्वविवक्षाया षष्ठी इति नवीनाः। हरदत्तमते कृत्वोऽर्थं प्रयोगे कालेऽधिकरणे षष्ठी। आसन्नकाल क्यो कहा ? महीनेमे बहुत वारकी भोजनक्रिया। प्रतिघटे अर्थ नही, न धा। (८९) **प्रकृतिवचने**। तत् प्रथमान्त है प्रकृति शब्दका प्रस्तुत उपस्थित अर्थ रूढ तथापि वचन पढनेसे प्राचुर्य, अधिक मात्रा, बहलतया उपस्थित, प्रस्तुत, अर्थ प्रकृत है। उपसर्गबलसे उसका प्रतिपादन, ज्ञान कराना अर्थ। भावमे ल्युट् प्रसङ्गके बोध होनेपर। अर्थ प्राचुर्य अधिकता विशेषणवाली वस्तुमे वर्तमान-प्रथमान्तसे स्वार्थमे मयट् हो प्रसङ्गकी अधिकताका प्रकाशक है। यदि अधि**करणे**=आधार अर्थमे ल्युट् कहे, प्राचुर्य=विशेषवस्तु जिसमे हो उसके आधार सहित अर्थमे वर्तमान शब्दसे मयट्] अधिकवस्तु प्रकृतिका अर्थ, आधार प्रत्यय का आद्ये—भावे ल्युट् पक्षमे प्रथमान्तमे प्रसङ्गका प्रकाशक प्रत्यय होगा। लिङ्गवचन प्रकृतिके अनुसार प्रकृत—प्रचुर प्रस्तुतम् अन्नम **अन्नमय** खाद्यकी ढेर अन्नमय स्वार्थिक है। प्रकृतिका लिङ्ग होगा। प्रस्तुतम् अपूपम् अपूपमय ढेरमालपूआ। प्रचुरा यवागू अर्थमे मयट्, टित्से ङीप्, बहुत हलुआ। कही लिङ्गवचनका उल्लघन भी होता है। **द्वितीये**=अधिकरणे ल्युट् पक्षमे **अन्नमयो यज्ञः** ढेर खाद्यका आधार यज्ञ है। उसी अर्थमे मयट्। **इष्टिषु दशौदना पशौ ते सोमसहस्रम्** आदिवाक्यसे अधिकसे अधिक अन्न। विशेष्यका लिङ्ग। अन्नसे मयट्। प्रचुरो अपूप अस्मिन् पर्वणि क्रियते इस त्योहारमे अधिकसे अधिक मालपूआ वनाओ जिसका अधिकरण पर्व अर्थमे मयट् **अपूपमय** पर्व नपुसक।

(२०९०) **समूहवत** समूहेन तुल्य, तस्य समूह के अधिकारमे वर्तमान सभी प्रत्ययोका अतिदेश होता है अत- बहुषु=प्रचुर अधिक अर्थमे वर्तमान शब्दसे

चान्मयट्। मोदका प्रकृता, मौदकिक मोदकमयम्। शाष्कुलिक—शष्कुलीमयम्। द्वितीयेऽर्थे मौदकिको यज्ञ। मोदकमय। (९१) **अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्य ५।४।२३॥** अनन्त एव आनन्त्यम्। आवसथ एव आवसथ्य। इतिह इति निपातसमुदाय ऐतिह्यम। भेषजमेव भैषज्यम्। (९२) **देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ५।४।२७॥** तदथ एव तादर्थ्यम्। स्वार्थे ष्यञ्। अग्निदेवताय

स्वार्थमे प्रत्यय हो। अथवा बहुत मख्यावाली, अधिकवस्तु जिस आधारमे हो उस वस्तु वाचक शब्दमे समूह अर्थ वाले प्रत्यय हो। **प्रथम का प्रयोग**—मोदक लड्डू ममुदाय का (प्रकृता) ढेर बहुत अधिक अर्थमे वर्तमानमोदक शब्दसे 'अचित्तहस्ति' सूत्रसे ठक् अतिदिष्ट हुआ। ठ इक किति च आदिवृद्धि। प्रकृतिके लिङ्गका लङ्घन कुटीरवत्। **मौदकिकम च** पढनेसे मयट्। **मोदकमय मन्दिर।** **शाष्कुलिकम्** शष्कुलय प्रचुरा बहु अधिका। पूडीकी ढेर अर्थमे अचेतन जानकर ठ—इक आदिवृद्धि प्रकृतिके लिङ्गका लङ्घन। जब मयट तब **शष्कुलीमय** गृहम्। द्वितीये—आधार अर्थमे प्रत्ययका उदाहरण-मोदका सन्ति अस्मिन्यज्ञे लड्डू का आधार यज्ञ है। अचेतन समुदायके आधार अर्थमे ठ—इक आदि। **पक्षे** मयट् **मोदकमय** उत्सव।

(९१) **अनन्त**, आवसथ, इतिह, भेषज इनसे **स्वार्थमे** ञ्य् हो। अन्त नाश तस्य अभाव अनन्त नाशरहित। अर्थके अभावमे नञ् तत्पुरुष, अव्ययीभाव भी विकल्पसे। स्वार्थे ञ्य। अनुबन्धलोपे आदिवृद्धि। **आनन्त्यम आवसथ** अर्थमे ही प्रत्यय आदि **आवसथ्यम्** का अर्थ गृहम। इति ह दोनो निपात समुदाय है इतिका बीती हुई घटना, ह का निश्चय। अथ उसीसे ञ्य, आदिवृद्धि **ऐतिह्यम्।** इतिहास=भूतकालिकघटना **पारम्पर्योपदेशे ऐतिह्यम्** इतिहाव्यम् इत्यमर। **भेषजऔषध भैषज्यानि इत्यमर।** औषधि अर्थमे ही ञ्य आदि। (९२) **देवता** अन्त शब्दसे यत् हो **तादर्थ्ये**=देवताशब्दके अर्थमे। तस्मै अर्थ तदर्थं प्रकृतिके अर्थमे य। देवता क्या है **त्याज्यमानद्रव्योद्देश्यविशेषो देवता मन्त्रस्तुत्या च** दान दिये वस्तुका उद्देश्य=स्वीकर्ता देवता है जो स्वाहा, देय वस्तु अग्निके लिए हो, उस अर्थमे देवतान्त अग्निदेवताशब्दसे यत् **अग्निदेवत्यम्।** पितरश्च ता देवताश्च **पितृदेवता।** ताभ्य इद पिण्ड जल वा अर्थे यत् **पितृदेवत्य।** हविके प्रति पितर ईश्वर स्वामी। परन्तु इद यजमानकी वस्तु है जिसके लिए देगा वही देवता। यदि पुराण प्रसिद्ध देवता देवा मनुष्या पितर असुरा रक्षांसि पिशाचा लिये जाय तब अव्याप्तिदोष

इदमग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ।(९३) **पादार्घाभ्यां च ५।४।२५।।** पादार्थमुदकं पाद्यम । अर्घ्यम् । 'नवस्य नू आदेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्या नूत्नम्—नूतनम्, नवीनम् ।* 'नश्च पुराणे प्रात्' पुराणार्थे वर्तमानात्प्रशब्दान्नो वक्तव्य चात्पूर्वोक्ता । प्रणम्—प्रत्नम्–प्रतनम्—प्रीणम् ।* 'भागरूपनामभ्यो धेय' भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ।* 'आग्नीध्रसाधारणादञ्' आग्नीध्रम् । साधारणम् । स्त्रियां ङीप्-आग्नीध्री, साधारणी । (९४) **अतिथेर्ञ्यः ५।४।२६।।** तादर्थ्ये इत्येव । अतिथये इदमातिथ्यम् । (२०९५) **देवात्तल् ५।४।२७।।** देव एव देवता । (९६) **अवेः कः ५।४।२८।।** अविरेवाविकः । (९७) **यावादिभ्यः कन् ५।४।२९।।** याव एव यावकः । मणि

होगा । (९३) पाद अर्घसे भी तादर्थ्य=पैर धोने जलपिलाने अर्थमे यत् हो । पादार्थ–पादप्रक्षालनार्थ पानी **पाद्य** है अथमे पादसे यत् । अर्घार्थम् उदकम् **अर्घ्यं–मूल्ये पूजाविधौ अर्घ** इत्यमर । पूजन जल, यत् अलोप आदि (वा०) नव शब्दको नू आदेश हो त्नप् तनप् और ख प्रत्यय भी । अत्यन्त स्वार्थमे नया अर्थके नव शब्दमे उक्तप्रत्यय, नवको नू आदेशी नूत्न, जब ख–ईन नूभाव उ को गुण अवादेश **नवीन** (वा०) पुराण अर्थमे वर्तमान प्र शब्दसे न प्रत्यय हो । च से पूर्वोक्त=त्नप् ख भी हो । पुराने अर्थमे प्र से न णत्व **प्रणम्** । तनप् हुआ । **प्रतनम्** । ख–ईन अकार लोप नकारस्य णत्वे **प्रीणम्** । (वा०)–भाग, रूप, नाम शब्दमे निजी अर्थमे धेय हो । यथा–भाग एव **भागधेय**, रूप एव **रूपधेय**, नाम एव नामधेय । अर्थ वही रहेगा (वा०) **आग्नीध्र** और साधारण अर्थमे अण् हो । अग्नीध शरणम् **आग्नीध्रम्** । तत स्वार्थे अञ् । व्यापक सम्बन्ध साधारण है । अञ् हुआ जिसका फल स्त्रीलिङ्ग मे टिड्ढाणञ् से ङीप् । **आग्नीध्री** शाला मे अग्निहोत्र होता है । समान धारण अस्या **साधारणी** भूमि । पृषोदरादिसे समानको स । जब अञ् नही तब टाप आग्नीध्रीशाला, साधारणा भूमि ।

(९४) **अतिथि** शब्दसे तादर्थ्ये चतुर्थी अन्तसे ञ्य हो । अतिथिके लिए सत्कारकी वस्तु अर्थमे ञ्य आदि **आतिथ्य**, न तिथि अतिथिः ।

(२०९५) **देवसे** तल् हो अत्यन्त स्वार्थमे देव ही देवता तल् टाप् । लिङ्ग लक्षण पु–से स्त्री । (९६) **अवि** से–य । हो स्वार्थमे । **अवय शैल मेषार्का इत्यमर** । भेडा अर्थमे अवि से क **अविक**. ।९७) **यव** आदि गणमे पढे शब्दसे कन् हो । यवाना अयम् **याव** ओदनादि सक्तु अथवा अलक्तक वृक्ष ।

क । (९८) **लोहितान्मणौ ५।४।३०॥** लोहित एव लोहितको मणि ॥ (९९) **वर्णे चानित्ये ५।४।३१॥** लोहितक कोपेन । * लोहितात्लिङ्गबाधनं वा' लोहितिका, लोहिनिका कोपेन । (२१००) **रक्ते ५।४।३२॥** लाक्षादिना रक्ते यो लोहितशब्दस्तस्मात्कन्स्यात् ।* 'लिङ्गबाधन वा' इत्येव । लोहितिका, लोहिनिका शाटी । (२१०१) **कालाच्च ५।४।३३॥** वर्णे चानित्ये' 'रक्ते' इति द्वयमनुवर्तने । कालक मुख वैलक्ष्येण । कालक पट । कालिका शाटी । (२१०२) **विनयादिभ्यष्ठक् ५।४।३४॥** विनय एव वनयिक । सामयिक

यवो अलक्ते द्रुमामय अमर । पेडका लाल रोगन लाली ही अर्थोमे कन् **यावक**' । मणिरेव **मणिक** , कन होनेपर भी वही अर्थ ।

(९८) **लोहित** शब्दसे लालमणि अर्थमे वर्तमानसे कन् हो । माणिक्यमयो मणि । लोहितसे स्वार्थमे कन् हो **लोहितक** । जपा कुसुमके कारण लाली हो तब रक्ते सूत्रसे सिद्ध (९९) **वर्णे अनित्ये** । नाशवान् रगमे विराजमान लोहित से कन् हो, मणि न हो तब । देवदत्त कोपेन लोहितक क्रोधसे लाल हुआ । अनित्य रग है । कन् । यह लाली क्रोधसे है जिसके उतरने पर उतर जाती है । जो आश्रय द्रव्यनाश तक रहे, वह नित्य है । अनित्य क्यो ? लोहितं रुधिर, लोहिता लाक्षामे लाली नित्य है । **प्रत्रप्रश्न** स्त्री कोपेन लोहिनिका लोहितिका जाता । क्रोससे लाल हो गई । दोनो रूप आवश्यक है । लोहितसे वर्णादनुदात्ताके नत्व डीप्को बाधकर कन् । तब नत्व सहित डीप् नही होगा । क्योकि तोपध नही रहा । कोपध हो गया । टाप् इत्व होकर **लोहितिका** एक रूप बनेगा । अत कहा (वा०) **लोहितात्**=लोहितशब्दसे स्त्रीलिंगक प्रत्यय डीप् का कन् से बाध विकल्प हो । लोहिनीसे कन्, केऽण से ह्रस्व टाप् । **लोहिनिका** ।

(२१००) **रक्ते**=लाक्षा आदिसे रगा हुआ अर्थमे वर्तमान लोहितसे कन् हो । लिङ्गका बाधन विकल्पसे । डीप्का बाध प्रभावित । लाल साडी अर्थमे लोहितसे डीप् त-को न, टाप् **लोहिनिका** । पक्षमे कन इत्व टाप् । (२१०१) **काल** शब्द से भी कन् हो । अनित्य वर्ण और लाल रग दोनों अर्थ खुलने पर अनित्य वर्णका उदाहरण-काल इव **कालक मुखम्** । लज्जा असूया ईर्ष्या कोप से काला हुआ । कालसे कन् । अनित्य=उतरता है । रंगा हुआ वस्त्र कालक पट । नीलसे रगा कपडा । इसी तरह कानी साडी । काला एव कालिका । (२१०२) **विनयादि** । गण पढे शब्दसे ठक् हो । विनय शब्दके अर्थमे ठ-इक

उपायाद्ध्र स्वत्व च' औपयिक । (२१०३) **वाचो व्याहृतार्थायाम् ५।४।३५।।** सन्दिष्टार्थाया वाचि विद्यमानाद्वाक्छब्दात्स्वार्थे ठक्स्यात् । 'सन्देशवाग्वाचिक स्यात्' इत्यमर । (२१०४) **तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ५।४।३६।।** कर्मैव कार्मणम् । वाचिक श्रुत्वा क्रियमाण कर्मेत्यर्थ । (२१०५) **ओषधेरजातौ ५।४।३७।।** स्वार्थेऽण् । औषध पिबति । अजातौ किम् ? ओषधय क्षेत्रे रूढा । (२१०६) **प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८।।** प्रज्ञ एव प्राज्ञ । प्राज्ञा स्त्री । दैवत । बान्धव । (२१०७) **मृदस्तिकन् ५।४।३९।।** मृदेव मृत्ति-

---

आदि **वैनयिक**, समय एव **सामयिक** । समय से स्वार्थमे ठ–इक । किति च आदिवृद्धि (ग) **उपाय** शब्दसे ठक् हो प्रकृतिके दीर्घको ह्रस्व भी । उपाय एव **औपयिक** उपायसे स्वार्थमे ठक् । पामे आको ह्रस्व इक । आदिवृद्धि अकस्मात शब्दमेभी ठक् इक, टिलोप **अव्ययानाभमात्रे** । **आकस्मिकम** ।

(२१०३) **वाचोव्याहृतार्थायाम्**=दूत द्वारा भेजनेका सदेश व्याहृत है । वह अर्थ हो जिसका । सदेशवाहक दूतकी वाणी अर्थमे वर्तमान वाक शब्दसे ठ–इक । स्वार्थिक प्रत्यय लिङ्गवचन लाँघते है । वाचिकम । सदेश वाहक **दूतकी** वाणी अर्थ क्यो ? देवदत्तस्य मधुरा वाक् मीठी बोल । न सदेश है न ठक् । (३१०४) **तद्युक्तात**=सदेश वाहक दूतकमका फल कर्मन्शब्दसे स्वार्थमे अण् आदि । **कर्म ही कार्मणम्** । दूतसे सदेशसुनकर किया हुआ कार्य प्रत्युनर वाणी सुनकर क्रियमाण कार्य ।

(१२०५) **औषधे**=जाति अर्थ न हो, ओषधि शब्दसे स्वार्थ मे अण् । शुण्ठि मरीचि आदिके चूर्ण जलसे मिलाकरपीना है ऐसे ओषधिसे अण् । जाति नहो, है । अनुबन्धलोप आदि **औषध** पिबति । जातिहीन क्यो ? ओषधय गेहूँ चावल, साठी आदि **क्षेत्रे रूढा** खेतमे उत्पन्न है । यहाँ जाति है न अण् । (२१०६) **प्रज्ञादिगण** पढे से स्वार्थमे अण् । प्रजानाति इति प्रज्ञ.=स्पष्ट-ज्ञानी । प्रज्ञामे इगुपधज्ञा से क । प्रज्ञ । उसी **अर्थमे** अण् आदि प्राज्ञ, स्त्रित् से ङीप् प्राज्ञी । यदि प्रज्ञाऽस्ति अस्या प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्य से ण अत, तब टाप् । देवता एव **दैवत** देवता अर्थमे अण् । यस्येति च इन् आकार लोप । आदिवृद्धि **दैवत** । बन्धु एव बन्धुसे अण आदि, ओर्गुणे अवादेशे **बान्धव** । (२१०७) **मृदसे** तिकन् हो स्वार्थे । मृद् तिक–द को चर्त्व टाप् **मृत्तिका** । पञ्चभि मृत्तिकाभि क्रीत घट **पाञ्चमृत्तिक** ।

का। (२१०८) **सस्नौ प्रशंसायाम् ५।४।४०।।** रूपपोऽपवाद। प्रशस्ता मृत् मृत्सा मृत्स्ना। उत्तरसूत्रे अन्यतरस्या ग्रहणान्नित्योऽयम्। (२१०९) **बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२।।** बहूनि ददाति बहुश। अल्पानि अल्पश। * 'बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम्' नेह—बहूनि ददाति-निष्टेषु। अल्प ददात्यभ्युदयिकेषु। (२११०) **संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५।३।४३।** द्वौ द्वौ ददाति द्विश। माष माष माषश। प्रस्थश। परिमाण

(२१०८) **सस्नौ** प्रशंसनीय मिट्टी अर्थमे वर्तमान मृद् से स्वार्थमे स और स्न दोनो प्रत्यय हो। प्रशंसाया रूपप्को बाधकर। प्रसशनीय मृत् से 'स' प्रत्यये मृत्सा। जब स्न टाप् मृत्स्ना। यह नित्य सूत्र है। अगले सूत्रमे अन्यतरस्या पढे जाने से (मृन्मृत्तिका मृत्सा मृत्स्न च मृत्तिका इत्यमर।

(२१०९) बहु अल्प अर्थके कारक वाचक शब्दसे स्वार्थमे शस् प्रत्यय हो, बहूनि ददाति **बहुश** बहुत देता है। बहु अर्थमे शस् प्रत्यय। कारकमे-बहुभ्यो ददाति बहुश। अल्पेभ्यो ददाति अल्पश। चतुर्थी कारकसे शस् आदि। बहु अल्प अर्थ क्यो ? गा ददाति। अश्व ददाति। न बहुत है न अल्प हे न शस्। अर्थ पढनेसे पर्याय भी प्रमाणित। **भूरिश** ददाति। **त्रिश**। कारक क्यों ? बहूना स्वामी अल्पाना स्वामी कारक नही, न शस् (वा०) बहुअल्पसे मङ्गल अमङ्गल अर्थमे शस, **बहुशो** ददाति। आभ्युदयिकेषु कर्मसु-वृद्धिवाले कर्ममे बहुत देता है। अनिष्टेषु कर्मसु अल्प ददाति अल्पश। उन्नतिमे अधिक दान, अवनतिमे अल्पदान मङ्गल है। उसके विपरीत दान अमङ्गल है। अनिष्टेषु बहुददाति, ह्रासमे बहुत देता है, भय आदिके कारण उन्नति अभ्युदय कल्याण की स्थितिमे अल्प ददादि कम देता है। शस् नही हुआ। स्तोकश ददाति मङ्गलमे शस् अमङ्गलमे नही। विपरीत दान अमङ्गल।

(२११०) **संख्या** हो एक वचन भी, प्रातिपदिकसे क्रिया सम्बन्धमे **शस्** हो विकल्पसे। वीप्साया=अनेक बार उच्चारण परे। सङ्ख्या च वचनञ्च समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी। उच्यते अनेन वचन। एक सङ्ख्या अर्थ निकलने पर। यथा द्वौ ददाति—यजमान दो दो रूपया देता है, नित्य वीप्सयो से द्विर्वचन। द्विसे दो दो रुपया देने अर्थमे शस् द्विश। यहा द्विको द्वित्व नही होता शस्से द्विवचन उक्त होनेमे। तद्धितश्चासर्वविभक्ति। यह सूत्र शस् प्रत्ययसे लेकर डाच् तक अव्यय सज्ञक। एकत्वका उदाहरण—माष माष एक—एक माषा सोना, ददाति देता है। परिमाण अर्थमे माष हैं। उरद नही। शस् माषश

शब्दा वृत्तावेकार्था एव सङ्ख्यैकवचनात् किं ? घट घट ददाति। वीप्सायाम् किं ? द्वौ ददाति। कारकात् इत्येव। द्वयोर्द्वयो स्वामी। (११) **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ५।४।४४॥** प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः स्यात्। प्रद्युम्न कृष्णत प्रति। 'आद्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' आदौ आदित। मध्यत। अन्तत। पृष्ठत। पार्श्वत। आकृतिगणोऽयम्।

ददाति। प्रस्थ प्रस्थ ददाति एक एक पसेरी देता है अर्थे शस् **प्रस्थश**। अत्र शङ्का घट घट ददाति घटश क्यो नही बनता। एक सख्या सहित अर्थ खुल रहा है, अत कहा **परिमाणशब्दा**=किसी मात्रा (तोला माषा सेर पसेरी किलो क्विटल) मे वर्तमान शब्दका वृत्ती–समास आदिमे एक अर्थ वाले होने ही है। परार्थाभिधान वृत्ति पर एकार्थीभाव रूप समुदाय: वृत्ति। एक अर्थकी उपस्थिति, एक वचनका भाव है। इस प्रकार परिमाण मान्य। अत माषश —एक एक माषा सोना देता है। तद्धितमी वृत्ति है। एकार्थीभाव होनेसे नियत है। प्रस्थमे भी। घटदाता कहनेपर घटाना दाताकी प्रतीति है। एक-एक घट अर्थ नही खुलता। यह जयादित्यका मत। वामनजी उक्त नियम मे प्रमाण न होनेस जाति शब्दसे भी शस् कहते है। सख्या एकवचन न कहते, घट घटसे भी शस् हो जाता। जाति शब्द एकार्थ नही होते। कुण्डश ददाति वनश ददाति प्रमाणसे जाति शब्दसे भी। प्रसङ्गत वृत्तिमे एकार्थ होते है अत शस्, परन्तु **एकैकश पितृसयुक्तान** एक–एक का द्वित्व होना, उभो अर्थमे शस् होना सभव कैसे ? **आर्षम्** ऋषिप्रोक्तम। हरदत्तमते **एकैकश** भाष्य प्रयोगसे स्वार्थिक शस् होना समाधान। वीप्सा क्यो ? द्वौ ददातिमे वीप्सा दो बार उच्चारण नही। क्रियान्वयी होनेपर क्यो ?(दो दोका स्वामी)क्रिया नही न शस् (११) **प्रतियोगे** कर्मप्रवचनीयसज्ञक प्रतिके सम्बन्धमे हुई पञ्चमी अन्तसे तसि हो। प्रद्युम्न कृष्णके प्रतिनिधि स्थानापन्न है। **प्रतिशब्द प्रतिनिधि प्रतिदान** अर्थमे। कर्मप्रवचनीयसज्ञक, उसके योगमे प्रतिनिधि दाने च सूत्रसे पञ्चमी अन्त देखकर स्वार्थमे तस् हुआ। स को रुत्व विसर्ग **कृष्णत प्रति**। कृष्णस्य प्रतिनिधि अर्थ। शिष्य **गुरुत प्रति**, पुत्र पितु प्रतिनिधि। पितृत प्रति (वा०) आद्य आदिगण मे पढे शब्दसे सभी विभक्तियो से तसि हो। अय तसिः सार्वविभक्तिक। इसमे प्रमाण **तस्यादित उदात्त** सूत्रमे आदौ इति **आदित** सप्तम्यन्तसे तस्का प्रदर्शन है। मध्ये मध्यात् मध्याय मध्येन मध्यत आदि अन्तसे तसि। तद्धितान्त प्रातिपदिकसज्ञा। सुपोधातुसे लुक्। पुन स्वा-

स्वरेण स्वरत । वर्णत । (१२) **अपादाने चाहीयरुहो ५।४।४५।।** अपादाने या पञ्चमी तदन्तात्तसि स्यात् । ग्रामादागच्छति । ग्रामत । अहीयरुहो किम् ? स्वर्गाद्धीयते । पर्वतादवरोहति । (१३) **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः ५।४।४६।।** अकर्तरि तृतीयान्ताद्वा तसि स्यात् । अतिक्रम्य ग्रहोऽतिग्रह । चारित्रेणातिगृह्यते । चारित्रेणान्यानतिक्रम्य वर्तत इत्यर्थ , अव्यथनमचलनम् । वृत्तेन न व्यथते, वृत्ततो न व्यथते, वृत्तेन न चलतीत्यर्थ. । क्षेपे-वृत्तेन क्षिप्त वृत्तत क्षिप्त , वृत्तेन निन्दित इत्यर्थ । अकर्तरि इति किम्

दिकार्ये मध्यत अन्त अन्तेन अन्तत. अन्ते समीके अन्तसे तस् **अन्ततः** । अन्तमे अन्तसे, के लिए, का, आदि । पृष्ठवत् इति **पृष्ठत** पीछे से । पृष्ठस्य आदि पार्श्वस्य **पार्श्वत** पार्श्वात से, मे, के, ने, के लिए पासमे । यह गण आकृति स्वरूपयोग्यता मात्रसे मानने लायक । यथा स्वरेण **स्वरत** तृतीयान्तसे तस् हुआ । वर्णात वर्णत वर्णेन ।

(१२) **अपादाने**—अलगाववाली पञ्चमी अन्तसे तस हो हीय—गिरना रूह—चढना अर्थमे नही । हीयते के एकदेशका अनुकरण हीय । गाँवसे आता है आगमन क्रिया की अवधि ग्राम है । अपादाने पञ्चमीसे तस् आदि **ग्रामत** । विद्यालयत । नगरात् आयाति **नगरत** । गुरो आगच्छति गुरुत । शिक्षकत कूपत जलमानयति । हीय रूह को छोडकर क्यो ? त्रिशङ्कु स्वर्गसे गिरता है । स्वर्गसे तस् न हो । पर्वतसे उतरता है । तस् न हो । एव अध्ययनात्पराजयते अध्ययनत । चोरत विभेति ।

(१३) **अतिक्रम्य**—सबसे बढ चढकर श्रेष्ठता या अधमताका ज्ञान होता हो, लोक व्यवहारमे सबसे विलक्षण हो, तब **अकर्तरि**—कर्तामे तृतीया न हो, अन्य तृतीयान्तसे तस् विकल्पसे हो । यथा चरित्रमेव, चारित्रम् । चरित्रबल पर सबसे (विलक्षण) बढ चढकर हो इस हेतुसे हेतौ तृतीया अन्तसे तस् **चारित्रत** सच्चलनसे सबसे श्रेष्ठ । अपने चरित्रसे अन्यलोगोका लघन कर कर लिया । **अव्यथन** (व्यथभयचलनयो) भयभीत होना, ठीकसे चलना अर्थकसे ल्युट् अन । व्यथनके विरूद्ध **अव्यथन**, न चलना भयभीत न होना, **वृत्तेन**—व्यवहारसे विचलित नही होते । हेतु तृतीया अन्तसे तस् **वृत्तत** । न व्यथते—डिगता नही । क्षेप निन्दा । वृत्तेन क्षिप्त —व्यवहारसे गिरा हुआ । हेतौ तृतीया गिरनेके कारण व्यवहार तस् **वृत्तत** क्षिप्त. निन्दापात्र बना । अकर्तरि क्यो ? कर्तामे हुई तृतीया अन्तसे

देवदत्तेन क्षिप्त।।१४। हीयमानपापयोगाच्च ५।४।४७।। हीयमानपापयुक्तादकर्तरि तृतीयान्ताद्वा तसि। वृत्तेन हीयते। वृत्ततो हीयते। वृत्तेन पाप। वृत्तत पाप। क्षेपेऽन्याविवक्षायामिदम्। क्षेपे तु पूर्वेण सिद्धम्। अकर्तरि इति किम्? देवदत्तेन हीयते। (२११५। षष्ठ्या व्याश्रये ५।४।४८।। षष्ठ्यन्ताद्वा तसि स्यान्नानापक्षसमाश्रयणे। देवा अर्जुनतोऽभवन्। आदित्या कर्णतोऽभवन्। अर्जुनस्य कर्णस्य पक्षे इत्यर्थ। व्याश्रये किं? वृक्षस्य शाखा।।१६। रोगाच्चापनयने ५।४।४९।। रोगवाचिन षष्ठ्यन्ताद्वा तसिश्चिकित्सायाम। प्रवाहिकात. कुरु। प्रतीकारमस्या कुर्वित्यर्थ। अपनयने किम्, प्रवाहिकाया प्रकोपन करोति।।१७। कृभ्वस्तियोगे सम्प-

तस् न हो। देवदत्तसे क्षिप्त (फेका गया) कर्तामे तृतीया है। (१४) हीयमान के योगमे, पापके योगमे भी कर्तारहित तृतीयान्तमे तस् हो। (वा०) वृत्तेन हीयते व्यवहारसे गिर रहा है। तृतीयान्तसे तस् हीयमान। गिरते हुए का योग वृत्त, चरित्र है। वृत्तेन पाप चरित्रसे भ्रष्ट पापी। पाप अस्ति अस्य पाप क्षेपकी अविवक्षा होनेपर यह सूत्र। क्षेप अर्थमे पूर्वसूत्रमे तस् होता ही यह सूत्र क्यो पढा? अविवक्षा वास्ते। तत्र कथने। अकर्तरि क्यो कहा? देवदत्तेन मे कर्तरि तृतीया है, उससे तस् न हो।

(२११५) षष्ठी अन्त शब्दसे विकल्प तस् हो, व्याश्रये=नानापक्षसमाश्रये अनेक पक्षमे एक पक्षका आश्रय लेना। सब उपयोगी पक्ष छोडना अर्थमे तस् हो। यथा देवा अर्जुनस्य पक्षे अभवन्। षष्ठी अन्तसे तस् अर्जुनत अर्जुनस्य पक्षे देवा आसन। आदित्या द्वादशसूर्या कर्णस्य पक्षे आसन् षष्ठी अन्त कर्णस्यसे तस् आदि कर्णत। व्याश्रये क्यो पढा? नानापक्ष जहा न हो वहा तस् न हो, वृक्षस्य शाखा। पेडकी एक ही शाखा है। नाना शाखा न होनेसे न तस्। (१६) रोगके अपनयन दूरीकरण प्रतीकार चिकित्सा इलाज अर्थमे षष्ठी अन्त शब्दसे तस् विकल्प हो। प्रवाहिकात कुरु। विषूचिका=चेचक रोगकी चिकित्सा करो अर्थमे प्रवाहिकाया से तस् आदि। प्रच्छर्दिकात कुरु, वमन, व्याधिका प्रतीकार करो। रोगहटानेमे तस्। ऐसे रोगकी इलाज अपनयन क्यो पढा।? प्रवाहिका=चेचकको कुपित कर्ताका है। विषूचिको बढाता है घटाता नही, न तस्।

(१७) कृभ्वस्ति—कृ भू अस्तिके सम्बन्धमे सम्पदा=विकार सम्पन्न होता हो कर्तामे च्वि हो। विकारात्माका अर्थ (वा०) अभूततद्भाव=पहले जो नही था

द्यकर्तरि च्वि ५।४।५०।। 'अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्' विकारात्मता प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे।

।१८। अस्य च्वौ ७।४।३२।। अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ। वेर्लोपः। च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णं कृष्णं सम्पद्यते, तं करोति—कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति,

---

वह अब विकृत होकर हो गया। विकारको प्राप्त हुए प्रकृति अर्थमे वर्तमान विकार शब्दसे स्वार्थमे च्वि हो, कृ भू असके सम्बन्धमे। प्रकृतिमे विकार गौड है। जिस रूपमे जो वस्तु पहले नही थी अब हो गयी। विकार और प्रकृति जहा अभिन्न हो वही प्रत्यय होगा। सपूर्वक पद धातुसे निपातनसे श—अ प्रत्यय। दिवादिश्यन् सपद्य। कर्तामे षष्ठीसमास। किस रूपसे सम्पन्नता है इस आकाक्षासे अभूततद्भाव पढा। प्रकृतिका विकार रूपसे सम्पन्न होना। विकारसे प्रत्यय, प्रकृतिवाचकसे नही। डुकृञ् करणे भू सत्तायाम्, अस् भुवि, इनके योगमें। च इत् इ-उच्चारणार्थ। (१८) अस्य अकारान्त शब्दके अ को ईत्व हो, जो ई धातुमो से आया च्वि परे रहते। च इत् चुटू। वेरपृक्तस्य वका लोप। च्वि अन्त होनेसे अव्ययसज्ञा। ऊर्यादिच्विडाचश्च सूत्रके निपातन से स्वरादि, निपातन अव्यय होते है। किसीके मतमे तद्धितश्चासर्वविभक्ति सूत्र पर शस्प्रभृतय प्राक्समासान्तेभ्य मे गणनासे अव्यय। कृञ्योगका उदाहरण—जो नट कृष्ण नही है वह लीलामें कृष्ण बन गया सम्पद्यते। त करोति कृष्णीकरोति। नटको कृष्ण बनाया लीलाके लिये। अथवा जोकाला नही था उमें काला करता है। अकृष्ण कृष्णरूपेण सम्पद्यमान करोति विग्रहे। करोति के योगमे कृष्णसे सम्पन्नता वेषवनाने, काला होने, अर्थमे च्वि। सम्पूर्णलोप 'चुटू', वेरपृक्तस्यकी सहायतासे। अस्य च्वौ-सूत्रसे इत्व कृष्णींकरोति। प्रकृति नट है वह कृष्ण भावमे बना। सम्पन्न होना सम्पद्य कर्ता उसमे अभेद का आरोण कर विकार बना कृष्ण शब्दसे प्रत्यय। कृष्ण इकारान्त अव्यय। कृष्णीभवति। अब्रह्म ब्रह्म सम्पद्यमानो भवति जो जीव था वह ब्रह्म हो रहा है। ब्रह्मन्से च्विपूर्णलोप। अन्तर्वर्तिनी—शब्दके भीतरकी लुप्त विभक्ति के आधार पर पद मानकर नलोप। अकारान्त जानकर इत्व, च्वि परे हुआ हो। अत्यन्तस्वार्थी प्रत्यय भी प्रातिपदिकसे होते है—पदसज्ञाके लिये। अतः अगौ गौ सम्पद्यते गोऽभवत्। यहा सुबन्तसे च्वि मानकर भी पदान्त एङ् को पररूप होता है। इति भाष्यम्। गङ्गीष्यात् अगङ्गा गङ्गा सम्पद्यमाना, अव-

गङ्गीस्यात।* 'अव्ययस्य च्वावीत्व नेति वाच्यम' दोषाभूतम् अह । दिवाभूता रात्रि । एतच्च 'अव्ययोभावश्च' इति सूत्रे भाष्ये उक्तम्।(१९) **क्यच्व्योश्च** ६।४।४२।। हल परस्यापत्ययकारस्य लोपः स्यात्क्ये च्वौ च परत । गार्गी-भवति। (२१२०) **च्वौ च** ७।४।२६।। च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घं स्यात्। शुचीभवति। पटूस्यात्। 'अव्ययस्य दीर्घत्व न' इति केचित्, तन्निर्मूलम्। 'स्वस्तिस्यात्' इति तु महाविभाषया च्वेरभावात्सिद्धम। 'स्वस्तीस्यात्'

जल पवित्र हो गया। गङ्गाका धर्म त्रिलोकपावनत्व रूप विकारको प्राप्त होने अर्थमे स्यात्के योगमे गङ्गा से च्वि, (पूर्णलोप)परे अकारको इत्व, गङ्गीस्यात्। (वा) अव्यय को च्वि परे इत्व न बोलें। दोषाभूतमह दिन रात इव हो गया। 'घनघोर घटा घेरे बादलोसे'। दोषा अकारान्त अव्यय रात्रि अर्थमे है। भूतके योगमे दोषासे च्वि, पूर्णलोप, अस्य च्वौ से इत्वप्राप्त, अव्ययको इत्व निषेध। दिवाभूता-रात्रि यह रात्रि चन्द्रमाकी चमकती चाँदनीसे दिन हो रही है। दिवा अकारान्त अव्यय, दिन अर्थमे। दिवासे च्वि पूर्णलोप। इत्वनिषेध पूर्ववत। परन्तु यह निषेधवार्तिक अस्य च्वौ सूत्रके भाष्य मे नही देखा गया अत कहा एतच्च=इस वार्तिकको अव्ययीभावश्च सूत्रके भाष्यमे पढा है। 'अमूर्खा मूर्खा सम्पद्यन्ते' मूर्खीभवन्ति। अनदी नदी सम्पद्यते नदी-स्यात्। अशिष्ट शिष्ट सम्पद्यते त करोति शिष्टीकरोति। अमानव मानव करोति मानवीकरोति। अदेव देवा भवन्ति देवीस्यात्।

(१९) क्यच् और च्वि परे रहते हल्से परे अपत्य अर्थके य का लोप हो। हलस्तद्धितस्य से हल्, सूर्यतिष्य से य, और आपत्यस्य की अनुवृत्ति आई। गार्गीभवति गर्गस्यापत्य गार्ग्यं गर्गगोत्रकी सन्तान। अगार्ग्य गार्ग्य सम्पद्य-मानो भवति। जो गर्ग गोत्रका नही है, वह गर्गगोत्री बन रहा है। यञन्त गार्ग्यसे च्वि, सर्वापहारीलोप। च्वि परे हल परस्य 'य' का लोप। इत्व गार्गीभवति। च से यलोप न हो पाता। ईकारके व्यवधानसे हलस्तद्धितस्य भी नही लगेगा, अर्थवान् ईकारपरे विधानसे। अत सूत्र पढा।

(२१२०) च्वि परे रहने पूर्वको दीर्घ हो, जो अकृत्सार्वधातुकयो से आया। अशुचि शुचि भवति-अशुद्ध शुद्ध हो रहा है। भवतिके योगमे शुचिसे च्वि, पूर्णलोप जिसके परे पूव ई को दीर्घ। शुचीभवति अपटु पटु सपद्यते, अकुशल कुशल हो रहा है। पटुसे च्वि पूर्णलोप। उको दीर्घ पटूस्यात्। अगुरु गुरु सम्पद्यते गुरूस्यात्, किसीके मतमे अव्ययको च्वौ च-से दीर्घ नही होता,जिसका

इ यपि पक्षे स्यादिति चेदस्तु । यदि नेष्यते तर्ह्यनभिधानाच्विरेव नोत्पद्यत इत्यस्तु ।। 'रीङृत' । मात्रीकरोति । (२१) **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ५।४।५१।।** एषां लोप स्यात् च्विश्च । अरूकरोति । उन्मनीस्यात् । उच्चक्षूकरोति । उच्चेतीकरोति । विरहीकरोति । विरजीकरोति । (२२) **विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५।४।५२।।** च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये । (२३) **सात्पदाद्यो ८।३।१११।।** सस्य षत्व न स्यात् । दधिसिञ्चति ।

फल स्वस्तिस्यानमे न दीर्घ । परन्तु निगतमूलमस्य तन्निर्मूल=भाष्यमे दृष्ट न होनेसे । अत दीर्घ होकर स्वतीस्यात । ऐसा है ही । तत्र स्वस्तिस्यान बननेकी विधि बोले—महाविभाषाके विकल्पसे अधिकारसे पक्षमे च्वि न होनेसे, न दीर्घ । यदि नेष्यते—दीर्घ—इष्ट नही है तो अनभिधानात्=भाष्यमे अदृष्ट होनेसे च्वि होगा ही नही, शिष्टके अस्वीकारसे यदि इष्ट है तब अस्तु—हो जाय । अमाता माता सम्पद्यते त करोति मात्रीकरोति । मातृ च्वि पूर्णलोप । रीङ आदेश । मातृ ई—यण—मात्री ।(२१)अरुष् मनस चक्षुष चेतस् रहस रजस् इन शब्दोके अन्तके उका लोप हो, च्वि परे । जो पूर्वसूत्रसे सिद्ध था। किन्तु साथ मे अन्त्यके लोपके लिए यहा भी च्वि पढा। अनरुह रुह सम्पद्यते तत्करोति अरूकरोति । गीलाको शुष्क बनाता है रुक्षको सरस । अरुम्से च्वि । और अन्त्य सका लोप । च्वौ चसे उ को दीर्घ । उन्मनीकरोति । अनुन्मना उन्मना सम्पद्यते जो उदास नही था वह उदास हो रहा है त करोति उसको उदास करने वाला । उन्मनस्से च्वि, सलोप अस्य च्वौ ईत्व । उच्चक्षूकरोति । अनुच्चक्षु उच्चक्षु सम्पद्यते नीचे गिरी पलकको ऊपर करे । उच्चक्षुस्से च्वि अन्त्य । सलोप दीर्घ । उच्चेतीकरोति अनुच्चेता उच्चेता सम्पद्यते—गिरे मनका मनोबल बढा रहा है ऐसी क्रिया करनेवाला । च्वि सलोप ईत्व । विरहीकरोति रह निर्जनस्थान, विशिष्ट रह विरह । अविरहो विरह सम्पद्यते तत्करोति चहल पहलको शान्तिमे बदलनेवाला । च्वौ अन्त्य लोप ईत्व । विरजीकरोति । अविरजा विरजा सम्पद्यते त करोति जो रजोगुणी नही था वह रजोगुणी हो रहा हैं ऐसी क्रिया कर्ता । कार्य पूर्ववत् ।

(२२) विभाषा साति लुप्ता प्रथमा । च्विविषये=अभूततद्भाव=सम्पद्यकर्ता कृ भू अस्तिके योग—विषयमे साति प्रत्यय विकल्पसे हो, शाकल्ये=सम्पूर्ण अर्थमे

(२३) सात्प्रत्यय का अवयव स और पदके आदिमे सको षत्व न हो । (न रपरसृपिसे)न,(अपदान्तस्य) मूर्धन्य आये । पदादि सको षत्व निषेध । दधिसि-

कृत्स्न शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति । अग्नीभवति । महाविभाषया वाक्य मपि । कार्त्स्न्ये किम् ? एकदेशेन शुक्लीभवति पट । (२४) **अभिविधौ सम्पदा च ५।४।५३।।** सम्पदा कृभ्वस्तिभिश्च योगे सातिर्वा स्याद्व्याप्तौ । पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्वि । सम्पदा तु वाक्यमेव । अग्निसात्सम्पद्यते, अग्नि-साद्भवति शस्त्रम्, अग्नीभवति । जलसात्सम्पद्यते, जलीभवति लवणम् । एकस्या व्यक्ते सर्वावयवावच्छेदेनान्यथाभाव कार्त्स्न्यम् । बहूना व्यक्तीना

व्याप्ति । षिचिर क्षरणे धात्वादे ष स । आदेशप्रत्ययो से षत्व प्राप्त, उसका निषेध (पदके आदिमे सकार होनेमे) हुआ । कृत्स्न=सम्पूर्ण अवयव वाला शस्त्र अग्निमय-जो लाल नही था वह लाल सम्पन्न हो रहा है । भवतिके सम्बन्धमे अग्निसे सात् **अग्निसाद्भवति** । षत्व प्राप्त था, सातकि स होनेन सात्पदाद्यो इति निषेध । **अग्निसात्सम्पद्यते** । जो ठण्डा रहा, वह गरम हो रहा है तद्भ वति=अग्निसे च्वि सर्वापहार । दीघ मह विभाषा या प्रथमाद्वासे वा पूरेतद्धित मे आ रहा है । उससे पक्षमे वाक्य भी रहता है । साति नही होगा तब च्वि होनेके लिये भी विभाषा(विषाष्यते विकल्प्यते)पढा । शाकल्य क्यो पढा ? एक अङ्गमे विकार होता हो तब साति प्रत्यय न हो । कपडा एक अशमे सफेद हो रहा है । पूरे अङ्गमे श्वेत विकार नही । न साति । किन्तु च्वि, इत्व आदि । अशुक्लः शुक्ल सम्पद्यते **शुक्लीभवति** । (२४) **अभिविधौ**–चकार कृ–भू अस् का सग्राहक । सम्पदा सम्पन्नता विकारात्मासे कृ–भू अस के सम्बन्धमे भी साति प्रत्यय हो, विकल्पसे । व्याप्तौ=अभिविधि थोडे अशमे । पक्षमे कृ–भू अस के योगमे च्वि होता है, सम्पदा योग पक्षमे । जब साति नही, तब वाक्य ही रहे । सम्पदा=पूर्ण विकारात्माका उदाहरण—अनग्नि अग्नि सम्पद्यते अग्नि स्वरूप हो रहा है लोहा लाल । अग्निसे साति, कृ–भू अस्के योगमे सातिप्रत्यय होनेपर **अग्निसाद्भवति**, अग्निसात्करोति । अग्निसात्स्यात् । सम्पूर्ण अवयवमे व्यक्ति अग्निसे वस्तु लाल हो रहा है । अपङ्क पङ्क सम्पद्यते पङ्कसाद्भवति सूखास्थान कीचड हो रहा है । पङ्कसात्करोति । पक्षमे च्वि, पूरा लोप, च्वौ चसे दीर्घ । **पङ्कीभवति** । अग्नीभवति शस्त्र लोहा आँख । अजल जल सम्प द्यते जलसाद्भवति । जल नही था जलमय हो रहा है । जलसात्सम्पद्यते । जलसे साति अभूततद्भाव अर्थमे । जब च्वि, लोप, ईत्व तब जलीभवति । लवण, नमक जल नही था अब गलकर जल हो रहा है । अलवण लवण सम्प द्यते **लवणीभवति** वास्तुकम् शाक बथुआका साग नमकीन होरहा है । कार्त्स्न्य

किञ्चिदवयवावच्छेदेनान्यथात्व त्वभिविधि । (२१२५) **तदधीनवचने** ५।४।५४।। सानि स्यात्कृभ्वस्तिभि सम्पदा च योगे । राजसात्करोति, राजसात्सम्पद्यते । राजाधीनमित्यर्थः । (२६) **देये त्रा च** ५।३।५५।। तदधीने देये त्रा स्यात्सातिश्च, कृभ्वादियोगे । विप्राधीन देय करोति-विप्रत्रकरोति । विप्रत्रा सम्पद्यते । पक्षे विप्रसात्करोति । देये किं ? राजसाद्भवति राष्ट्रम् ।
(२७) **देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्** ५।४।५६।।
एभ्यो द्वितीयान्तेभ्य सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा स्यात् । देवत्रा वन्दे रमे वा । बहु-

---

और अभिविधिमे अन्तर बोले—एकस्या व्यक्तेः=एक ही वस्तु या व्यक्ति सर्वावयवावच्छेदन=सम्पूर्ण अङ्गके साथ अन्यथाभाव अन्य दूसरे रूपमे बदल जाना कात्स्न्य हैं पूर्ण परिवर्तन । बहुत व्यक्तियोके बीच किसी अङ्गके अशमे अन्यथात्व=परिवर्तन रङ्गबदल अभिविधि । आशिक विकार ।

(२१२५) **तदधीन** तत =वह साति प्रत्यय हो, अधीनवचने=कृ—भू अस् और सम्पदा सम्बन्धमे । (अभूततद्भावे रुका)न राजा अराजा राजा सम्पद्यते त करोति राजासत्करोति । प्रजाको राजा बना रहा है। **राजसात्सम्पद्यते ।** छोटी नगरी राजधानी हो रही है । गुरुसात्सम्पद्यते जो गुरुकुल नहीं था वह गुरुकुल हो रहा है । (२६) **तदधीन** वचन आया । देये=जिसके अधीन देना हो उससे त्रा प्रत्यय हो, सानि भी, कृ—भू अस्के योगमे । यथा विप्रके अधिकारमे देय वस्तु है । अर्थमे त्रा **विप्रत्राकरोति** ब्राह्मणके हवाले करता है । सम्पन्न अर्थमे भी त्रा । विप्रके आधीन योग्यता सम्पन्न हो रहा है । विप्रत्रा सम्पद्यते । जब त्रा नही, तब सात **विप्रसात्करोति** विप्रके आधीन करता है । देय वस्तु अर्थ क्यो ? राष्ट्र राजाके आधीन हो रहा है । यहा त्रा न हो

(२७) **देवमनुष्य** पुरुष पुरु मर्त्य इन शब्दोसे द्वितीयान्त या सप्तम्यन्तसे त्रा हो अन्यन्त स्वार्थी । यहामे साति कृ—भू अस् प्रयोग रुक गये । यथा—**देवान्वन्दे** अथवा **देवेषु** रमे । **त्रा—देवत्रा** देवको नमन या देवताओमे रमण या देव रमण,देवत्रा रमे । मनुष्यान् गच्छति मनुष्यत्रा गच्छति । मनुष्येषु मिलति मनुष्यत्रामिलति । पुरुषान् प्राप्नोति, **पुरुषत्राप्राप्नोति** । पुरुषेषु वसति पुरुषत्रावसति । पुरुशब्द बहुका पर्याय । पुरुषु या पुरु गच्छति वसति **पुरुत्रा** । मर्त्यान मर्त्येषु वा वर्तते **मर्त्यत्रा** । बहुल पढनेसे अन्य स्थलमे भी त्रा देखा गया । **जीवतो मन बहुषु विषयेषु गच्छति** । बहूनि व्याप्नोति जीवति मनुष्य

लोकतेरन्यत्रापि। बहुत्रा जीवतो मन । (२८) **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** ५।४।५७॥ द्व्यच् अवर न्यूनम्, न तु ततो न्यूनम्, 'अनेकाच्' इति यावत्। तादृशमर्धं यस्य तस्माड्डाच्स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे। 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्'।* नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्'। डाच्पर यदाम्रेडित तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयो पररूप स्यात्। इति तकारपकारयो पकार। पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति। अवर-इति किं? घरटघरटाकरोति। त्रटत्रपटाकरोति। 'अनेकाच' इत्येव सूत्रयितुमुचितम्, एव हि डाचीति परसप्त-

---

का मन बहुत विषयोमे फैलता है। अर्थमे त्रा बहुत्रा गच्छति। बहुतमे जाता है। (२८) अव्यक्त=जिस ध्वनिमे अकारादिवर्ण स्पष्ट न हो उस अव्यक्त ध्वनिका अनुकरण अव्यक्तानुकरण है। द्व्यच् अवरार्धात्। द्वौ अचौ यस्य दो अच् जिसमे उससे अवर=न्यूनसख्या न तु ततो न्यून-माने एक अच्से कम न हो। अर्थात् अनेकाच् तादृशमर्धम्=अनेकाच्के आधाभागवाचक शब्द से डाच् हो, कृ भू अस्के योग (जो मेढक उछालन न्यायसे आया) अर्थात् अनेकाच् वाले भाग से जुडा हो, अव्यक्तका अनुकरण शब्दसे डाच्। जैसे बगीचेमे आम गिरा पट पट। किसीने अनुकरण किया पटत्-२ जो अनेकाच् है। ध्वनिका अनुकरण पटत्से डाच्। अनुबन्धलोप आ। (वा०) डाच् की विवक्षा=वक्ताकी इच्छामे अनुकरणशब्दको द्वे=दो बार उच्चारण हो बहुलम्-आवश्यकतानुसार। डाचि मे सति सप्तमी हैं। यदि पर सप्तमी कहे, तब अन्योऽन्याश्रय एक दूसरेका मुख देखना होगा। जब डाच् हो तब द्वित्व। जब द्वित्व तब डाच्। अत सति सप्तमी मान्य। द्वित्व हुआ। पटत् पटत् आ करोति इति दशाया(वा०) आम्रेडितसे डाच् हुआ हो, अथवा डाच् परक आम्रेडितके परे पूर्व और पर वर्णके बीच परवर्णका रूप हो। अत त्-पके बीच पर रूप प हुआ। पट-पटत् आ। डित्से टि-अत्का लोप। पटपटाकरोति। अव्यक्तका अनुकरण क्यो कहा? दृषत्करोति। पत्थरकी शील चकला बनाना हैं यहा डाच् न हो, अनुकरण न होनेसे। द्व्यच् अवरार्ध क्यो पढा? श्रत्करोति एक अच् है डाच् न हो। अवर न्यून अच् क्यो? घरटत् घरटत् करोति। अव्यक्त अनुकरणसे डाच्। द्वित्व,पररूप, टिलोप होनेपर हुआ। अर्धभाग घरटत्मे दो अच् नही बहु अच् है डाच् न हो। नाक घरर घरर बोलती है-खरटत् खरटत् करोति खरर खरर करता है अनेकाच् पढना उचित था द्व्यच् अवरार्ध न पढने। तत्र विशेष

स्येव द्वित्वे सुवचेत्यवधेयम् । अनितौ किं ? पटिति करोति । (२९) **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ५।४।५८॥** तृतीयादिभ्यो डाच्स्यात्कृञ एव योगे कर्षणेऽर्थे । बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम् । द्वितीय तृतीय कर्षण करोति । द्वितीयाकरोति । तृतीयाकरोति । शम्बशब्द प्रतिलोमे । अनुलोम कृष्ट क्षेत्र पुन प्रतिलोम कर्षति, शम्बाकरोति । बीजेन सह कर्षति, बीजाकरोति । (२१३०) **सङ्ख्यायाश्च गुणान्ताया. ५।४।५९॥** कृञो योगे कृषौ डाच्स्यात् । द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् । क्षेत्रकर्मक द्विगुण कर्षण करोतीत्यर्थ । (३१) **समयाच्च यापनायाम् ५।४।६०॥** कृषौ इति निवृत्तम् । कृञो यो`गे डाच्स्यात । समया क`रोति । कालं यापयतित्यर्थ । (३२) **सपत्त्रनिष्पत्त्रादतिव्यथने ५।४।६१॥** सपत्त्राकरोति मृगम् ।

लाभ एवा हि=**अनेकाचौ अनितौ** डाच् पढनेपर द्वित्वके पहले अनेकाच् मानकर डाच् होता है । डाच् परतो द्वित्व, पर सप्तमी सुलभ । अनितौ किम्—इति परे न हो ऐसा क्यो ? पटिति पटदिति । इति परे है डाच् न हो ।

(२९) कृञो द्वितीय तृतीय शम्ब, बीज इनसे डाच् हो करोतिके योगमे, कर्षणे—खेत जोतनेके विषयमे । भू—अस् रोकनेके लिये कृञ् पढा । जो मद्रात्परि वापणे तक जायेगा । **बहुलोक्ते**=डाचिबहुल द्वे भवत । मे बहुल पढनेसे अव्यक्तके अनुकरणको ही द्वि व हो, अन्यको नही । यथा **द्वितीय** दो बार जोतना । तृतीय **कर्षण** तीसरीजोत, अर्थमे डाच द्वितीया करोति दूबही करना हैं । तृतीया करोति तिबही, करता है । डाच् हुआ, अनुकरण नही, न द्वित्व । **शम्ब** शब्द प्रतिकूल उलटा जोतनेमे अनुलोम कृष्टम=अनुकूल जोता खेतको प्रतिलोमम उलटा जोतने अथमे डाच् **शम्बाकरोति**, कुल्सी करना है । बीजके के साथ जोतना बोना, साथमे **बीजाकरोति** । अथवा बीज बोनेके बाद बीज बोना । शप् होनेपर कर्षति । तुदादिका श होनेपर कृषति ।

(२१,३०) **सख्याया** गुण शब्द अन्त हो, सख्यावाचकसे कृ के सम्बन्धमे डाच्-आ हो । कृषौ=खेत जोतने अर्थमे । अद्विगुण द्विगुण करोति अर्थे डाच् **द्विगुणाकरोति** । खेतको दूसरीबार गोड रहा है । दुगुना जोतना । त्रिगुणा करोति—तीसरी गोड कर्षण । (३१) **समय** से डाच् हो । यापनाया—कालक्षेपे समय विताने अर्थमे । **कृषौ** इति खेत जोत रुक गया । कृञके योगमे । कर्तव्यस्य अवसर प्राप्ति समय अद्य इद कर्तव्यमिति तस्य अतिक्रमण यापना अर्थमे डाच् समयाकरोति कालक्षेप करोति ।(३२) **सपत्त्र** और निष्पत्त्र शब्दसे अति

सपुङ्खशरप्रवेशेन सपत्रं करोतीत्यर्थः । निष्पत्राकरोति । सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वे निगमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः । अतिव्यथने किम् ? सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम् । (३३) **निष्कुलान्निष्कोषणे** ५।४।६२।। निष्कुलाकरोति दाडिमम् । निर्गतकुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच् । (३४) **सुखप्रियादानुलोम्ये** ५।४।६३।। सुखाकरोति प्रियाकरोति गुरुम् । अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः । (२१३५) **दुःखात्प्रातिलोम्ये** ५।४।६४।। दुःखाकरोति स्वामिनम् । पीडयतीत्यर्थः । (३६) **शूलात्पाके** ।५।४।६५।। शूलाकरोति मांसम् शूलेन पचतीत्यर्थः । (३७) **सत्यादशपथे** ५।४।६६।। सत्या-

---

व्यथने=बाणके आरपार होने अर्थमें डाच् । व्यध ताडने । पीडा पहुचाने अर्थमें व्यध । अतिक्रम्य वेध चुभकर पार होना **अतिव्यधनम्** । लक्ष्ये शरा पतन्ति अनेन पत्रम् । शराणां पुङ्खगत मृगपर बाण चुभते हैं । शर अग्रभाग **सपत्रा करोति** । मृगको बाण चुभा है । पुङ्ख-फण सहित बाणके प्रवेशसे मृगको सपत्र बनाता है । अतिपीडा डाच्का अर्थ । **निष्पत्राकरोति** । चुभे हुए बाणको पार निकालना अतिव्यथा अर्थ डाच् । फण सहित बाणके दूसरे भागसे निकालना, अतिपीडा क्यो पढा ? भूतलपर पत्ते गिरते है । अथवा झाड बुहार रहा है । बाणकी नोक जमीनमे गाड, उखाड रहा है । पीडा नही, न डाच् । अथवा पत्राणि पर्णानि तत्सहित रहितम् वा करोति ।

(३३) **निष्कुल** शब्दसे निष्कोषणे=भीतरकी वस्तु खोदकर बाहर निकालना । अन्तर्गतावयवाना बहिः निष्कासनम् अर्थमे । दाडिमम् अनारको खोल कर भीतरी तत्वको प्रकाशित करता है । कुल शब्द भीतरीभागके समूह अर्थमे है । डाच बहुव्रीहिसे । निकल गया है भीतरीभागके गुदा या दाना जिससे । निष्कोण क्यो ? दाँत खोदना न हो किन्तु शत्रुके वशका विनाश हो तो डाच् न हो । यथा निष्कुल करोति शत्रुम । (३४) **सुख** और **प्रिय** शब्दसे आनुलोम्ये अनुकूल आचरणसे आनन्द देता है अर्थमे डाच् । प्रियाकरोति प्रियसे डाच् आराध्य माता पिता गुरुका प्रिय करता है मनके अनुकूल सुखी बनाता है

(२१३५) दुःखसे डाच् हो प्रातिलोम्ये=आराध्य माता पिता गुरुके चित्त को दुःखी दुःखाकरोति रक्षक पालकको पीडित करता है । आराध्य प्रतिकूलाचरण **प्रातिलोम्यम्** । (३६) **शूल** शब्दसे डाच् हो पाके—पकाना अर्थमे । लोहकी कटिया अर्थमे शूलसे डाच् **शूलाकरोति** । मांस पकाता है । पाके किं, शूलाकरोति कदन्नम् । खराब अन्न पेटरोग बढाता है । (३७) **सत्यशब्दसे**

करोति भाण्ड वणिक् । क्रेतव्यमिति तथ्य करोतित्यथ । शपथे तु सत्य करोति विप्र । (३८) मद्रात्परिवापणे ५।४।६७।। मद्रशब्दो मङ्गलार्थं । परिवापण मुण्डनम् । मद्राकरोति । माङ्गल्यमुण्डनेन सस्करोतीत्यर्थं *'भद्राच्चेति वक्तव्यम्'* भद्राकरोति । अर्थ प्राग्वत् । परिवापणे किम् ? मद्र करोति । भद्र करोति ।

इति स्वार्थिकप्रकरणम । इति तद्धिता ।।

अथ भ्वादयः द्विरुक्तप्रकरणम् ।।४२।।

(३९) **सर्वद्वे स्य** ।।८।१।। इत्यधिकृत्य । (२१४०) **नित्यवीप्स-**

डाच् **अशपथे**=निश्चय न कहने अर्थमे । सत्य शब्दस तथ्य अथमे । सत्य तथ्य ऋत सम्यक् इत्यमर । सत्येनोत्तभिता भूमि । सत्सु साधु. सत्यम् । साधु अर्थे यत् सत्यसे डाच् सत्याकरोति—रत्नादिद्रव्य जटितपात्र खरीदने के लिए बयाना सुरक्षामूल्य देना । **मयैव एतद ग्राह्यम् एतावता मूल्येन इद क्रयगाहं** अतो अधिक मूल्येन नहि इति सत्यङ्कारद्रव्यप्रदानेन क्रेतुम् । अत कहा क्रेतव्यम् निश्चित खरीदना अशपथ है । जहा शपथ झूठ छल, बहाना, वहा न डाच् **शपथेतु**=सत्यकरोनि कसम शपथ करता है अवश्य खरीदू गा सुरक्षा मूल्य नही देता । (३८) मद्रसे परिवापण मुण्डन कर्म अर्थमे यन् । किसान सिर मुड जाता है । चौल कर्ममे सस्कार मङ्गल है डाच् । **मद्राकरोति** । (वा०) भद्रसे डाच् हो । मुण्डन दीक्षा तिलक आदिसे मनुष्य भद्र होता है । उससे डाच् भद्राकरोति । मङ्गलाकरोति । परिवापण क्यो—चौल दीक्षा तिलक आदि अर्थ मे डाच क्यो इसलिए कि किसीका कुशल मङ्गल करने अर्थमे डाच् न हो । मद्र भद्रंका क्षेम करोति अर्थ ।। इति प्राभाकरीटीकाया तद्धिता समाप्ता ।।

अथ द्विरुक्तप्रकरणम्—

पूर्वप्रकरणमे प्रातिपदिक या सुबन्तसे प्रत्यय हुए क्योकि तेभ्य प्रयोगेभ्य **प्रातिपदिकेभ्य**, सुबन्तेभ्य हिता तद्धिता इस प्रकरणमे प्रातिपदिकका अधिकार नही । किस दशामे किन शब्दोका दो बार उच्चारण हो, निर्णय की प्रक्रिया ।(३९) **सर्वस्य द्वे** सभी शब्दोके द्विर्वचनका अधिकार । केवल सर्वशब्द का द्वित्व नही । **नित्यवीप्सयो** आदि सूत्रमे किसको किस अर्थमे क्या कार्य हो निश्चित नही । आकाक्षा जगनेसे स्वरितसज्ञासे द्वे का अधिकार । अत कहा इत्यधिकृत्य । द्वित्वरूपार्थमधिकृत्य ।

यो ८।१।४।। आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्विर्वचनं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च। पचति पचति। भुक्त्वा भुक्त्वा।

(२१४०) नित्य=आभीक्ष्ण्य–पुनः पुनः उच्चारण ही नित्यत्व है और व्याप्तुमिच्छा वीप्सा–अनेक बार कहनेकी इच्छा जो प्रयोगमे है व्याप्ति बोधका विषय–वि पूर्वक आप धातुका सर्वावयव व्यापक सम्बन्ध अर्थ है। उपसर्गबलसे पदका अधिकार। सर्वस्य–स्थानषष्ठी। द्वे का शब्दरूपमे अन्वय। स्वरूपत अर्थतश्च अन्तरतमे पदे अन्तरतमपरिभाषया लभ्यते। ततश्च पौन पुन्ये कार्त्स्न्ये च गम्ये। शब्दार्थ समानतामे पदको द्वित्व हो। द्योत्यञ्च द्योत्या च तस्मिन् द्योत्ये। नपुसकमनपुमक–एकवत् एकशेष एकत्व नित्य वीप्सा और प्रकृतिका ज्ञान प्रकाशित। द्वित्व प्रकृतिसे अलग नही। एक आदेशमे दो पद होना। इससे दोनो पद सिद्ध है। दोनो पदका समुदाय स्थानिवद्भावसे सुबन्त है। अवयव अवयवी दोनोके पद होनेका फल–ङमुट् पचन्नित्यत्र। वृक्षा न्वृक्षान् पदान्तस्यसे णत्व निषेध। अग्रेऽग्रेमे एङन्तात्पदान्तात् मानकर पूर्वरूप, इन स्थलोंमे अवयवको पद मानकर कार्य होते है। समुदायको पदसंज्ञाका फल पुन पुन भव ठक् पौनःपुनिक। भ वे ष्यञ् पौनःपुन्य सुबन्तसे प्रत्यय। द्वे उच्चारणे सत कहते सभी पदका दो उच्चारण फल होता, आदेशपक्ष प्रशस्त। नित्यत्वका अथ आभीक्ष्ण्य पौनःपुन्य बार बार होना प्रधानभूत क्रियाका ही। क्योकि क्रियाप्रधानमाख्यातम्, अव्यय, कृदन्त क्त्वा तुमुन् आदिमे भी क्रिया प्रधान्य। अव्यय कृतो मात्रे प्रमाणसे पौनःपुन्य अर्थक द्विर्वचन तिङन्त मे अव्ययसंज्ञक कृदन्तमे ही होते है। पचति पचति। यहा द्वित्वका पुन पुन क्रियाका होना बार बार पकाता है। भुक्त्वा बार बार खाकर। द्वित्वका फल व्याप्ते इच्छा वीप्सा। प्राय द्रव्यको द्वित्व वृक्ष वृक्ष सिञ्चति। क्रिया सभी वृक्षकी। वृक्षका दोबार उच्चारण। इसका सभी वृक्षका सिञ्चन् अर्थ। अत्र प्रश्न–संसारके सभी वृक्षका सेचन अशक्य है। परन्तु जगतीतल स्थित सभी वृक्षका वाचक सर्वस्य द्वे होकर भी प्रसङ्गत वाटिका फुलवाडी के पूरे वृक्षका सिञ्चन सङ्गत। वृक्षमे एकवचन प्रसङ्गसे एक वाटिकागत वृक्ष सङ्गत। जगतीतल मात्रकी संज्ञा नही। अतो न बहुवचनम्। एकैकस्य प्रामाणात्। सर्वस्य न पढते वृक्षाभ्यामे स्वादिष्वसर्वनामसे पदसंज्ञा मानकर प्रकृति वृक्ष मात्रको द्वित्व होता। अत सर्वग्रहण पढनेपर सम्पूर्णपदके द्वित्व का लाभ होता, पद क्यो पढा ? वाक्यको द्वित्व न हो। ग्रामो ग्रामो रमणीयः

वीप्सायाम्-वृक्ष वृक्ष सिञ्चति । ग्रामो ग्रामो रमणीय । (४१) **परेर्वर्जने** ८।१।५।। परि परि वङ्गेभ्यो वृष्टो देव । वङ्गान्परिहृत्येत्यर्थ ।* 'परेर्वर्जने वावचनम्' । परिवङ्गेभ्य । (४२) **उपर्यध्यधस सामीप्ये** ८।१।७।। उपर्युपरि ग्रामम्, ग्रामस्योपरिष्टात्समीपे देशे इत्यर्थ । अध्यधिसुखम्, सुखस्योपरिष्टात्समीपकाले दु खमित्यथ । अधोऽधो लोकम, लोकस्याधस्तात्समीपे देशे इत्यर्थ । (४३) **वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु** ८।१।८।। असूयायाम्—सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दयम् । सम्मतौ—देव देव

ग्राम पद है द्वित्व हुआ । जिसका प्रत्येक ग्रामकी रमणीयता अथ ।

(४१) **परे** वजन त्यागकर अर्थमे वतमान परि को द्वित्व हो । यथा बगाल को छोडकर सब स्थलमे इन्द्र ने वर्षा की। परिका वजन द्योतक द्वित्व (वा०) परि शब्द के वर्जन अर्थमे द्वित्व विकल्प बोले । **अपपरीवर्जने**-परिको कर्मप्रवचनीयसज्ञा पञ्चम्यपाङ्परिभि इति पञ्चमी । परन्तु परि हरे ससार मे परिको द्वित्व नही, परेरसमासे वार्तिककी कृपासे । परिवङ्गेभ्य मे परिको न द्वित्व, 'वा' वचनसे (४२) **उपरि** अधि अधस इन को द्वित्व हो समीप अर्थ खुलने पर । समीपका अर्थ प्रत्यासत्ति-निकट सटा हुआ । यथा—देश या काल का सामीप्य गाव के उपरि=बाद का सटा स्थान अर्थमे द्वित्व हो । उपरि उपरि यण उपर्युपरि । **अधोऽधोलोकम्** मृत्युलोकके निचे समीप रसातल निकट अर्थमे द्वित्व दो उच्चारण । **अधस्तात्** समीप देश निचले भागके स्थान । **अध्यधि सुखम्** । यहा कालकृत समीपता—सुखका समय है शीघ्र दु ख का समय आवेगा । समीप (काल) एव सामीप्य क्यो पढा ? उपरि च द्रमा बहुत दूर है, समीप नही, न द्वित्व । उपरि शिरसो घट धारयति । अत्र न द्वित्वम् । सामीप्यस्य अविवक्षितत्त्वात ।

(४३) **वाक्यादे** किसी वाक्यके अ दिमे आसत्तित-सम्बोधनपद आदिमे हो, उसको द्वित्व कहे । असूयाईर्ष्या, सम्मति सद्भाव, कोप्—क्रोध , कुत्सन-तिरस्कार, धिक्कार भर्त्सन (फटकार) अर्थ खुलने पर । असूया हे सुन्दर तुम्हारी सुन्दरता मेरे सामने व्यर्थ है । तथापि असहनीय होनेसे वाक्यके आदिमे आमन्त्रित सुन्दरको द्वित्व । सम्मति—**तव वन्दन सम्मतम्** हे देव वन्दनीय हो । आदिमे सम्बोधन देवको द्वित्व हो । क्रोधसे भरा हुआ व्यक्ति । ऐ दुर्विनीत अभी तुझे बतलाता हूँ । दुष्टता का फल समझमे आयेगा । सम्बोधन को द्वित्व । कुत्सन—युद्धमे असमर्थ के प्रति निन्दा का वचन। ऐ

वन्द्योऽसि । कोपे-दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि । कुत्सने-धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनु । भर्त्सने—चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम् । (४४) एक बहु-व्रीहिवत ८।१।९।। द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत्स्यात् । तेन सुब्लोपपुंवद्भा-वौ । एकैकमक्षरम् । इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि कृते बहुव्रीहिवद्भावादेव प्राति-पदिकत्वात्समुदायात्सुप् । एकैकया आहुत्या । इह पूर्वभागे पुंवद्भावाःवग्रहे

धनुषचालक तुम्हारा धनुष व्यर्थ है । चोरको कुवाच्य बोलना—कि अभी मारता हू । चोरको द्वित्व । सर्व प्लुतो विकल्प्यते । ननु कोप, असूया कुत्सन भर्त्सनमे गतार्थ क्योकि असूया विना कुत्सा न भवति तन्न, माता पिता गुरु हितैषी विना कोपके भी फटकारते हैं विना ईर्ष्याके निन्दा करते है । उस दशासे कोप असूया आवश्यक । उक्त च **सामृतैं पाणिभिर्हन्ति गुरवो न विषोक्षितैं । लालनाश्रयिणो दोषा ताडनाश्रयिणो गुणा ।** (४४) एक द्विरुक्त—दो वार उच्चारण हुआ एकशब्द बहुव्रीहिणा तुल्य बहुव्रीहिवत् कार्य हो । जैसे सुप् का लोप, पुलिङ्गभाव । प्रसङ्गमे लब्ध पूर्वपदप्रकृतिस्वर भी । सुप् लोप का उदाहरण—**एकैकमक्षर** परिचिनोमि-एकएक वर्ण पहचानता हू । एकमको द्वित्व होने पर एकम एकम अक्षरमिति दशाया **एकबहुव्रीहि-वत्** सूत्रेण द्वि उच्चरितस्य एकम एकम इत्यस्य बहुव्रोहिसज्ञा । तस्या फल प्रातिपदिकसज्ञा सुपो धातुप्रतिपदिकयो सुपो लुक । एक एकम वृद्धिरेचि वृद्धौ **एकैकम्** । अत्र शङ्का इह प्रसङ्गे दोनो सुपोका लुक होने पर भी **यत्र सघाते पूर्वोभाग पद तस्य चेद्भवति तर्हि समासस्यैव** । इति नियमेन न प्राति-पदिकसज्ञा, न सुपो लुक्, समुदायात कथ सुप् आयास्यति तदा अचकथत् बहुव्रीहिवद्भावात् एव । बहुव्रीहि धर्म प्रातिपदिकसनाके आरोप से ही समुदाय से सुप होगा । प्रातिपदिकका **लुपोर्लुकि समुदायात्सुप** । दोनो स्थानमे अन्वय **मध्यमणिन्याय** से । अतो न दोषः । पुभाव का उदाहरण—**एकया**= एकएक आहुतिसे हवन करता है । एकया स्थाने दो वार उच्चारण एकया-एकया इति दशाया बहुव्रीहिधर्मस्य प्रातिपदिकस्य समुदाये आरोप कृत्वा सुपोधातुप्रातिपदिकयो सूत्रेण सुपो लुकि कृते, एका एका इति दशाया पूर्व-भागे पहले भागको पुलिङ्ग होनेपर समुदाय से तृतीया आई । वृद्धि । एकै-कया रूप बना । यह सूत्र न होता समुदायको प्रा० सज्ञा न होती, पूर्वभाग को पुलिङ्ग न होता, उत्तरपदपरे न मिलने से । क्योकि समास का अन्तिम अवयव उत्तारपद है एकैका देहि वृत्तिमात्रे सर्वनाम पुलिङ्गो भवति । तथापि

विशेष ।९ 'न बहुव्रीहौ' इत्यत्र पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं मुख्यबहुव्रीहिलाभार्थम् । तेनातिदिष्टबहुव्रीहौ सर्वनामतास्त्येवेति प्राञ्च । वस्तुतस्तु भाष्यमते प्रत्याख्यातमेतत्, सूत्रमतेऽपि बहुव्रीह्यार्थेऽलौकिके विग्रहे निषेधक, न तु बहुव्रीहौ-विहीहातिदेशशङ्कैव नास्ति । एकैकस्मै देहि (२१४५) **आबाधे च** ८।१।१०।। पीडाया द्योत्याया द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च । गतगत । विरहात्पड्यमान-

तत्र न लगति । पूर्वस्य पुलिङ्गकरणे प्रमाण भस्त्रैषा । अत्र प्रश्न –सुप् लुक् होनेपर पूर्वभाग के एका शब्दको पुलिङ्ग हो या न हो, पुलिङ्ग करके एकै-क्या रूप बनेगा तब कहा द्वित्व होने पर पूर्व खण्डका नाम अवग्रह प्राति-शाख्यमे तस्य पूर्वोऽवग्रह पढा भी है। एकएकया पढना इष्ट है। उसके लिए पुलिङ्गभाव आवश्यक । अत तैत्तिरीयशाखावाले एका एकया-यही मानते है। एक समासवत् ही पढते ? तथापि बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपद स्वारार्थम् । न च बहुव्रीहिवत भावसे दोष होगा कि न बहुव्रीहि सूत्रके स्व–समासमे सर्वनामसज्ञाके निषेध से एकैकस्मै देहि एक एक को दो इत्यादिमे सज्ञाके निषेधसे सर्वनाम कार्य–स्मै आदि कैसे होगे तन्न, न बहुव्रीहौ सूत्रमे विभाषा दिक्समासे सूत्रसे आता ही बहुव्रीहि क्यो पढा वह व्यर्थ होकर बोला मुख्य बहुव्रीहिलाभार्थम् समासमे सज्ञाका निषेध हो जो अतिदेश--आरोपसे आया । सर्वनामसज्ञाका निषेध न करे। अत कहा अतिदिष्ट आरोपित समासमे सर्वनामसज्ञा है ही इति प्राचीना । वस्तुत सिद्धान्त यह है कि भाष्यमतमे न बहुव्रीहौ सूत्र प्रत्याख्यात है निषेध न होने से सर्वनामसज्ञा भाष्य सम्मत है निर्बाधम । सूत्रमते=पाणिनिके मतमे भी बहुव्रीहिमे उपसर्जन होनेसे निषेध की आशङ्का करके अलौकिक विग्रहवाक्यमे ही समाससे पहले सर्वनामसज्ञा का निषेध। समास होने पर निषेधकी शङ्का ही नही उठती । अत एकै-कस्मै दोनो दल मे सूत्र से लुक् होने पर सर्वादि मे पढ़ा एक शब्द से स्मै होगा ही ।

(४५) **आबाधे** –पीडा अर्थका प्रकाशन व्यञ्जनमे द्वित्व हो जिससे बहुव्रीहिकी तरह सुलोप आदिकार्य हो । गतगत प्रिया बिना काला । काल गत समय प्रिया के बिना निकल गया । आ समन्तात् बाध पूर्व सर्वाङ्गीण व्याप्त कष्ट की आह भरी वेदना स्त्रीके वियोगमे विरह व्यथासे व्याकुल व्यक्तिकी वाणी है । गत पीडा प्रकाशक द्वित्व । बहुव्रीहिभाव से प्रातिपदिक-सज्ञा, समुदाय को । तेन सुपो लुक् । समुदायसे सु आदि । गतगता प्रिया ।

यस्रोमुक्ति । बहुव्रीहिवद्भावात्सुब्लुक् । गतगता । इह पुंवद्भाव । (४६) कर्मधारयवदुत्तरेषु ८।१।११।। इह उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत्कार्यं न् । प्रयोजन सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि । (४७) प्रकारे गुणवचनस्य ८।१।१२।। सादृश्ये द्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्तस्तच्च कर्मधारयवत् । 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' इत्याधिकारात् । तेन पूर्वभागस्य पुंवद्भाव, 'समासस्य' इत्यन्तोदात्तत्व च । पटुपट्वी । पटुपटु । पटसदृश, ईषत्पटुरिति

इयमपि स्त्रीविहरात् पीड्यमानस्य=प्रेमिका गतगता—हाय चली गयी । गता को द्वित्व=पूरे शरीरमे व्याप्त अर्थ, एक ही थी, जो चली गयी । उसके दोउच्चारण से समानरूप । उत्तारपद मे स्त्रीलिङ्ग । पूर्वपद मे स्त्रिया पुंवत् बहुव्रीहिसे उत्तरपदत्व मिलता है ।

(४६) कर्मधारयके तुल्य कार्य हो । उत्तरेषु=उत्तरभागमे पढे सूत्रोसे द्विर्वचन हो । उत्तरेषु पढना स्पष्ट ज्ञानके लिए । अन्यथा वह अधिकारसे सुलभ था । कर्मधारय होनेका फल सुप्का लोप । पुलिङ्गभाव, अन्तोदात्त लाभ । प्रयोजन—मे एकवचनका भाव, एक एक मे अन्वय है । (४७) प्रकारे= सादृश्य अर्थ खुलता हो तब गुणवचनस्य= (गुण वक्ति गुणवचनस्तस्य) गुणवाचक शब्दको द्वित्व हो कर्मधारय के तुल्य सुलोपादिकार्य हो, जिसका उत्तरसूत्रोमे अधिकार है । उसका फल पूर्व भागको पुलिङ्ग होना । समासस्य—सूत्रसे अन्त उदात्त होना । यद्यपि भेद, सादृश्य दो अर्थ है । बहुभि प्रकारै भुङ्क्ते भिन्न-भिन्न तरीकेसे खाता हे । ब्राह्मणप्रकार ब्राह्मणसदृशः । आकडारात्सूत्रस्थ भाष्यमे गुणवचन गिनाये गये है । वोतो गुणवचनात् पर भी । पटुपटवी पट्वी शब्द को कुछ कुशल अर्थमे द्वित्व हो । कर्मधारयसज्ञासे पूर्वखण्डको पुलिङ्ग । यद्यपि बहुव्रीहिभावमे 'स्त्रिया पुंवत्' से भी सिद्ध था तथापि कारिका आदि कोपधके लिए (पुंवत् कर्मधारयवत्) आवश्यक । जब वोतो गुणवचनात्से न ङीप् किन्तु पुलिङ्ग । पटुको द्वित्व आदि—जो सदृश्य चतुरके समान है अर्थात् कमचतुर । जातीयर भेद रूप अर्थमे सावकाश है । गुणवचनक्यो पढा ? अग्नि माणवकः, सिंहो माणवक द्रव्य है, न गुण । यद्यपि अग्निसिंहशब्दमे तेज और क्रूरता गुण है तथापि इसमे गुण गौण है । मुख्य नही, नवनव प्रीतिरहो करोति विप्सा मे द्वित्व । यदि प्रकारे द्विर्वचन होता, सुप लुक हो जाता । नवनवाबनवायुभिरादद गुणवचन मान कर पुंवत् । भीतभीत इव शीत मयूखः । अतिभीत इत्यर्थः । खिन्न-खिन्न रिपु यद

यावत् । गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिन केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते । शुक्लशुक्ल पट ।* 'आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये' मूले मूले स्थूल । * 'सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्ट-मनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्ध' । सर्प सर्प । बुध्यस्व बुध्यस्व । सर्प सर्प सर्प । बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व । * 'क्रियासमभिहारे च' लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । * 'नित्यवीप्सयो' इति सिद्धे भृशार्थे द्वित्वार्थमिदम् । पौन पुन्येऽपि

न्यस्य । क्षीण. क्षीण' परिलघुपय. स्रोतसा चोपयुज्य । **मन्द मन्द नुदति पवन** । **गुणोपसर्जन**=गुण जिसमे विशेषण हो ऐसा द्रव्य जैसे **शुक्लशुक्ल पट** । पट मे विशेषण शुक्लको द्वित्व । शुक्लसदृश कुछ सफेद । अथवा केवल गुणवाची को द्वित्व हो । शुक्लशुक्लम शुद्ध गुण है थोडा सफेद । (वा०) **आनुपूर्वी**=पूरे प्रयोगको द्वित्व हो । **मूलेमूले स्थूल** । मूल जडके प्रत्येक भागकी मोटाई । कर्मधारयन नही आता, सुपलोप न होनेसे । (वा०) **सम्भ्रमेण**=भय या समादरकी शीघ्र प्रवृत्तिमे **यथेष्टम्**=इच्छानुसार अनेक बारका उच्चारण होना न्यायत मान्य है । केवल अनेकधा पढते तब द्वे न ठहरता, जब तक बोद्धा अर्थ न समझे तावद्वार प्रयोग कर्तव्य । भयसे व्याकुल किसीके पास साप पहुच रहा था देखनेवाला घबड़ाके बोला सर्प सर्प समझो समझो । यावद्वार न बुध्यते तावद्वार प्रयोग करणीय ।

(वा०) **क्रिया**के समभिहार—बार बार होने अर्थमे, भृश अत्यधिक होनेका सूचक द्वित्व हो इस वार्तिकका विषय लोट् अन्त शब्द ही है । **क्रियासमभिहारे लोट लोटो हिस्वौ** वा च तध्वमो । इससूत्रके भाष्यमे लिखा है लोट्के मध्यम पुरुष एकवचनको दो उच्चारण होता है । इसी मतबलसे कहा **लुनीहि**=काटो काटो कह कर यह काटता है । लूञ् छेदने धातुसे क्रियाके पुन भृशार्थमे लोट हो जिसको हि आदेश, श्ना विकरण, दीर्घ । लुनीहिको द्वित्व । यथाविधि अनुप्रयोग । अतिशयेन पुन वा लवनम । लुनीहि लुनीहि द्वित्वका अर्थ एकही व्यक्ति बहुत अधिक कटाई करता है । शङ्का=नित्यवीप्सयो. सूत्रसे पुन अर्थ प्रकाशक द्वित्व होना सिद्ध था तथापि भृशार्थे—अतिशय अर्थमे द्वित्व के लिए वार्तिक पढा । यदि ऐसा **भृशे च द्वित्व** यही पढते, क्रियासमभिहार क्यो पढा ? इसलिए कि पुन पुन अर्थमे भी लोटके साथ सम्बन्ध जोडने के लिए मिलाकर द्योतक बने । लुनीहि आदिमे लोटको द्वित्व कर दोनोके सग्रहार्थ । लोट से ही पुन पुन अर्थ खुलता तब नित्यवीप्सयो द्वित्व न कर पाता । (वा०) **कर्मव्यतिहारे**=क्रियाका विनिमय अदला बदली एकदूसरेके प्रति

लोटा सह समुञ्चित्य द्योनकता लध्धु वा। * 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्' बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत् इतरशब्दस्य तु नित्यम ।* 'असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुप सुर्वक्तव्य' अन्योन्य विप्रा नमन्ति । अन्योन्यौ । अन्योन्यान अन्योन्येन कृतम् । अन्योन्यस्मै दत्तमित्यादि ।

व्यवहार अर्थ खुलता हो तब सर्वनामसंज्ञावालेका द्वित्व=दो उच्चारण नित्य हो। दोनो पदोका बहुलम्=आवश्यकतानुसार समासकी तरह कार्य हो, बहून् अर्थान् लाति **बहुलम्**। बहुल पढनेका फल बोले कि अन्य और पर शब्दोको समाससंज्ञा न हो, उपयोग न होनेसे। इतरको द्वित्व होनेपर द्वित्व और समासवत् नित्य हो (वा०) **अन्य** और पर शब्दको द्वित्व होनेपर दोनो पदके समासका पद न होनेसे विभक्तिका लुक् नही होगा। पूर्वपदमे स्थित सुप =सातो विभक्तियो के स्थानमे प्रथमाका एकवचन सु हो। यहा क्या द्वित्व प्रथमाके एकवचनका विषय है या किसीका मत है। परन्तु इसके विरुद्ध भाष्य मे सभी विभक्तियोके स्थानमे सु होनेका उदाहरण मिलते है। यथा **अन्योन्यम्** ब्राह्मणगण आपसमे नमन करते है। सपुटीकृतकर शिर सयोग दण्डवतसे एक दूसरेको बडा, अपनेको छोटा मान रहे है। नमनका कम अन्य को दो उच्चारण। क्रियाके आपसी व्यवहारसे अन्यम अन्यमको समासभाव नही हुआ। तब विभक्ति लोप नही । **असमासवदभावे**=वार्तिकसे पूर्वपदके सुप् को सु स को रु–उ–गुणे **अन्योऽन्यम** शब्दसिद्ध। एवम **अन्योऽन्यौ**=विप्रगण दो दो को प्रणाम करते है। अन्यौ दो दो मिलकर आपसी नमस्कार सत्कार अर्थमे सर्वनामको द्वित्व। अन्य औ, अन्य औ। बहुलकी कृपासे न समास हुआ, न सुप का लुक्। तब पूर्वपदके औ को सु–रु–उ गुण **अन्योऽन्यान्**। शब्दमे सभी लोग सबको प्रणामकरने अर्थमे द्वित्व–**अन्यान् अन्यान्** बना, पूर्वपदको विभक्ति **शस्**को सु–रु–उ गुण **अन्योनेन कृतम्**। एक दूसरेकी सहायताकी अदला बदली क्रिया विनिमयसे। अन्येनको **द्वित्व अन्य** टाप् अन्येन टाको सु–रु–उ गुण । **अन्योऽन्यस्मै दत्तम**। एक दूसरेके लिए दिया गया दान। क्रियाका विनिमय अन्यस्मै। द्वित्व होनेपर, अन्य **ङे** अन्यस्मै। ङेको सु आदि। इससे सिद्ध है कि पूर्वपदके सभी विभक्तियोके स्थानमे सु है। षष्ठी विभक्तिको सु होनेमे प्रमाण **अन्योन्येषाम्**। अन्येषामको द्वित्व, पूर्वपदके आम्को सु आदि। फूलोसे एक दूसरेका आलिङ्गन। एव इस प्रकार **परस्पर**। नमन्ति विप्रा । पर परम् एक दूसरेको प्रणाम अर्थमे द्वित्व। पहलेके अम्को सु। रुत्व विसर्ग पर परम्।

'अन्योन्येषा पुष्करैरामृशन्त ' इति माघ । एव परस्परम् । अत्र कस्कादित्वा-द्विसर्गस्य स । इतरेतरम्, इतरेतरेणेत्यादि । ॥ 'स्त्रीनपुसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्य ' अन्योन्योन्याम्-अन्योन्यम्, परस्परा-परस्परम्,

---

विसर्गको स का बाधक उँप की शङ्का हटानेके लिए कहा कष्कादिगणमे । पाठ मानकर विसर्गको स हुआ । परम्परान् परस्परेण कृतम । परस्पस्मै दत्तम् । एवम इनरेतरम् इतर लोगोने एक दूसरेको नमस्कार किया । इतर सर्वनाम को द्वित्व हुआ । इतरम् इतरम्को समासवत्कार्य । प्रातिपदिकमज्ञा सु लोपादि हुए । पुन समुदायसे सुप अम् आदि । इतरेतरौ । इतरेतरान् नमन्ति । इतरे तरस्मै दत्तम् । इतरेतरेषाम् भोजनादि ।

(वा०) स्त्रीनपुँसकयो =स्त्रीलिङ्ग नपुसकलिङ्गमे वर्तमान अन्य, पर इतर शब्दोको द्वित्व हो क्रियाविनिमय अथमे । उत्तरपदकी विभक्तिका आम आदेश हो आवश्यकतानुसार । अन्योऽन्याम् ईमे ब्राह्मण्यौ । ये दोनो ब्राह्मणी एक दूसरेका भोजन करती है । कुलमे नपुसक लिङ्ग । ये दोनो वश एक दूसरे कुल को खिलाते है । अन्या ब्राह्मणी अन्या खादयति । अन्य कुल म् अन्य खादयति अन्याम्को द्वित्व । भोजन क्रियाके विनिमय अर्थमे । पूर्वपदकी विभक्तिको आम् बिकल्पसे हुआ । अन्योऽन्याम् । स्त्रीलिङ्गमे आम् होनेपर कोई अन्तर नही । नपुसकमे अन्योऽन्याम् अन्योऽन्यम् । तृतीया चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी विभक्ति उत्तरपदमे हो उनको आम् होना है । पूर्वपदमे हो सु । स्त्रीलिङ्गका ब्राह्मण्यौ, नपुमकका कुले । आपसी भोजनमें तात्पर्य अन्योऽन्याम् । अन्यो-ऽन्यानि । परस्परां परस्परेण । परस्परा परस्परस्मै इमे ब्राह्मण्यौ कुले भोज-यत । प्रसङ्गमे अन्याम्को द्वित्व होनेपर दोनो पदमे टाप्का आभाव कहा जायगा । जब समास नही रहेगा पूर्वपदके विभक्तिको सु 'अतो रोरप्लुतात्' से उत्व, आद्गुण । उत्तरपदकी विभक्तिको आम् । अन्योऽन्याम् बना । जब आम् नही तब पुलिङ्ग होनेसे टाप् हटेगा । सु होगा पुलिङ्गवत् रूप । इयं ब्राह्मणी अन्या ब्राह्मणी भोजयति । अन्या तु इमाम् इति विनिमय । इदं कुलम्—अन्यकुल भोजयति । अन्यत्कुल विनिमयेन कुले भोजयत । नपुसकमे भी पूर्वपदकी विभक्तिको सु उत्तरपदकी आम् । अन्योऽन्याम् । जब आम्आदेश नही तब पुलिङ्गभावसे अदड नही होगा । अन्योऽन्यम् । पुलिङ्गवत् रूप होगा, एव परस्परा भोजयत. । स्त्रीसे पराको द्वित्व परा—परा दोनो दलको पुलिङ्ग टाप हटा । पूर्वपदकी विभक्तिको सु,उत्तरपदकी विभक्तिको आम् परस्पराम् ।

इतरेतराम् इतरेतर वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयत.। अत्र केचित्-अनादेशो द्वितीयाया एव भाष्यादौ तथैवोदाहृतत्वात् तेन स्त्रीनपुंसकयोरपि तृतीयादिषु पुंवदेव रूपमित्याहु । अन्ये तूदाहरणस्य दिङ्मात्रत्वात्सर्वविभक्तीनामामादेश-माहु ।

दलद्वये टाबभाव , क्लीबे चाद्ड्विरह स्वमो ।
समासे सोरलुक्चेति सिद्ध बाहुलकात्त्रयम् ।।

तथाहि— अन्योन्य परस्परमित्यत्र दलद्वयेऽपि टाप्प्राप्त । न च 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे (वा) इति पुंवद्भाव । अन्यपरयोरसमासवद्भावात् । न च द्विर्वचन मेव वृत्ति ।* 'या या प्रिय प्रैक्षत कातराक्षी सा सा' इत्यादावतिप्रसङ्गात् ।

जब आम् नही तब पुलिङ्ग होनेसे परस्पर नपुंसकमे भी आम आदेश की विशेषता । पक्षमे दूसरा रूप । इतरेतरा स्त्री०मे द्वित्व । इतराम् इतराम् । उत्तरपदकी विभक्तिको आम् । समासवत् होनेसे विभक्तिका लुक् । जब न आम-इतरेतर खादयत । एक दूसरेको खिलाते है । पूर्वपदकी विभक्तिका लुक् उत्तरपदकी विभक्तिको आम्, दोरूप ।

अत्र केचित्— भाष्य आदिमे द्वितीया विभक्तिको ही आम् होना प्रमाणित । अन्य विभक्तिको आम् आदेश नही, ऐसा किसी प्राचीनने कहा, भाष्य उदाहरणको प्रमाण माना । अत तृतीया चतुर्थी आदि विभक्तियोको आम् नही होता । स्त्री नपुसक का भी पुलिलङ्गवत्रूप चलेगा । किन्तु अन्ये— प्रामाणिक विद्वानोने भाष्यके उदाहरणको दिशामात्र कहा, उपलक्षण—अपना और अन्यका भी बोधक है । अत सभी विभक्तियोके स्थानमे आम् आदेश ठीक है । बहुलकी अनुवृत्तिका तीन फल कहनेमे । प्राचीन मतका श्लोक । दलद्वये=द्वित्व होनेपर दोनो दल (पद)से टाप् हटता है । क्लीबे=नपुसकलिङ्ग मे सु अम्को अद्ड् आदेश नही होता । समासमे सुका लुक् न होना,तीन कार्य बहुल पढनेसे सिद्ध ।

स्त्रीलिङ्गमे अन्य, पर, इतर शब्दको कर्म=क्रियाके विनिमय अदलाबदली मे द्वित्व होनेपर दोनो दल बाहुलकसे पुलिङ्ग होगे, जिसका फल टाप् निवृत्ति है । उत्तरखण्डमे टाप् अभावके लिये बहुल पढना आवश्यक, अन्योन्यमे सु अम् को अद्ड् न होना भी फल है । समासमे पूर्वखण्डके सुका लोप न होना भी फल है । इस कारिकाके तीनो फलोकी उदाहरणसहितव्याख्या=अन्योन्य परस्परमे दोनो दलके पदको टाप प्राप्त था । उसकी निवृत्ति—सर्वनामके वृत्ति (समास आदि) मात्रमे पुल्लिङ्ग भावसे टाप्का हटना सिद्ध । बहुलको न पढ़ें ।

अन्योन्यमितरेतरमित्यत्र च 'अद्ड्तरादिभ्य.' इत्यद्ड प्राप्त । अन्योन्यस-सक्तमहस्त्रियामम् 'अन्योन्याश्रय 'परस्पराक्षिसादृश्यम्' अपरस्परे इत्यादौ सोर्लुक् च प्राप्त । सर्वं बाहुलकबलेन समाधेयम् । 'प्रकृतवार्तिकभाष्योदाहरणम्' 'स्त्रियाम्' इति सूत्रे 'अन्योन्यसश्रय त्वेतद्', इति भाष्य चात्र प्रमाणमिति ।

(४८) अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् ८।१।१३॥ प्रियप्रियेण ददाति प्रियेण वा । सुखसुखेन ददादि सुखेन वा । द्विर्वचने कर्मधारयवद्भावात्सुब्लुकि

अन्योन्य परस्परमे समास नही है । पुवत् नही होगा । समासवद्भाव बहुलसे अन्य, पर शब्दको नही होता । वह केवल इतरको करता है । यदि कहिये कि द्विर्वच स्वय वृत्ति है । पुलिङ्ग (अन्य परको होगा) द्विर्वचनको वृत्तिमे मानेंगे तब या-या प्रिय प्रैच्छन्, सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव । प्रियने जिनको देखा उनकी नजरे गिर गयी । या या, या सा सा के पूर्वपदको पुलिङ्ग हो जायगा । यश यस बनेगा । यहाँ पुवन् न हो, अत द्वित्वको वृत्ति न माने ।

दूसरा प्रयोजन क्लीबे—नपुसकमे अदड् का न होना बहुलका फल है । अन्योय इतरेतरमे इतरादिभ्य अदड् प्राप्त । उसका रोकना बहुलके आधीन

तीसरा प्रयोजन समासमे सुको लुक् न होना । क्योंकि अन्य, परको समास नही होगा । द्वित्व होनेपर अन्य किसीके साथ समास हो गया हो उस दशामे पूर्वखण्डके सु का लुक् न हो, इसी दृष्टिसे अन्योन्यससक्तम् । अन्योऽन्येन ससक्त एक दूसरेसे सटा हुआ । तृतीया समास है । अहश्च । त्रियामाच समाहारद्वन्द्व । अहस्त्रियामम् । अन्योऽन्येन सयुक्त, दिन रात एक दूसरेसे जुड़े है । अन्योऽन्यस्य आश्रय अन्योऽन्याश्रय । षष्ठीसमास । अक्ष्णा सादृश्य परस्परस्य अक्षि सदृश, एक दूसरेकी आखकी तुलना । न परस्परे अपरस्परे । इन स्थलोमे समास हो चुका है । प्रातिपदिकसज्ञासे सुप्का आदेश सु-का लुक् प्राप्त, इनसभी स्थलोमे बाहुलक समाससे समाधान करे । पुवद्भाव पहले चरितार्थ, बहुलग्रहणसे तीनोंके समाधानमे क्या प्रमाण हैं। तब बोले प्रकृत वार्तिक—स्त्रीनपुसकयोरुत्तरपदस्थाया इस वार्तिकमे (अन्योन्य ब्राह्मणे) इसे पढा ?, इतरेतर इसे कुने उदाहरण दिया । स्त्रिया सूत्रके भाष्य मे अन्योन्यसश्रय पढा । इन प्रमाणोसे सु का लुक् न होना सिद्ध है ।

(४८) अकृच्छ्रे—कजूसी नही उदारता । बिना कष्टके सरलता क्रिया अर्थ मे वर्तमान प्रिय और सुखको द्वित्व विकल्प हो । प्रियेण ददाति प्रसन्नतासे देता है । जब बहुत उदारता सरलता अतिप्रियवस्तु भी अनायास, बिना

पुनस्तदेव वचनम् । प्रतिप्रियमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थ । (४९) **यथा स्वे यथायथम्** ८।१।१४।। यथास्वम् इति वीप्सायामव्ययीभाव । योऽयमा-त्मा यच्चात्मीय तद्यथास्वम्, तस्मिन्यथाशब्दस्य द्वे क्लीबत्व च निपात्यते । यथायथ ज्ञाता, यथास्वभावमित्यर्थ । यथात्मीयमिति वा । (२१५०) **द्वन्द्वं रहस्य मर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु** ८।१।१५।। द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्य अम्भावोऽत्व चोत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपा यन्ते एष्वर्थेषु । तत्र रहस्य द्वन्द्वशब्दस्य वाच्यम, इतरे विषयभूता । द्वन्द्व मन्त्रयते रहस्यमित्यर्थ । मर्यादा—स्थित्यनतिक्रम । आचतुर हीने पशवो द्वन्द्व मिथुनी यन्ति । माता पुत्रेण मिथुन गच्छति । पौत्रेण प्रपौत्रेणापि मर्यादीकृत्य व्युत्क-

---

कष्टके सरलतासे देने अर्थमे प्रियेणको द्वित्व । कर्मधारय मज्ञाका फल सुप्का लुक् । प्रियप्रिय समुदायसे तृतीयाका एकवचन प्रियप्रियेण । एव सुखेन ददाति प्रसन्नतासे देता है अधिक प्रसन्नता सरलता अथमे द्वित्र । सुखेन सुखेन । समास, सुप लुक्,सुखसुखसे तृतीयाका टा-इन, गुण, सुखसुखेन । द्वि व होनेपर कर्मधारय मानकर सुप लुक् । (४९) **यथास्वे**-स्व आत्मा आत्मीय अर्थमे यथा शब्दको द्वित्व हो निपातनसे नपुसक भी । वीप्साया पूर्णरूपसे सम्बन्ध अर्थमे । स्वशब्दका अर्थगत पूर्णप्रकाशक यथा का स्वके साथ अव्ययीभाव । योऽयम् आत्मा अपना रूप है जितने अपने लोग है सभी यथास्व—यथा शब्दस्य द्विन्व नपुसकलिङ्ग, यस्य फलम् ह्रस्व इति । **यथायथम्** । स्वके चार अर्थोमे आत्मा आत्मीय मान्य, ज्ञाति धन अमान्य । ज्ञातामे तृन है, न षष्ठी, न लोकाव्यय के निषेधसे । कर्मणि द्वितीया । तृच् अश होता षष्ठीका निषेध न हो पाता ।

(२१५०) **द्वन्द्व**-द्विशब्दको द्वित्व हो । द्वि औ द्वि औ पूर्वपदके औको अम्, कमधारयभावसे सुप्का लुक् । द्वि—द्वि समुदायमे पुन॰ सुप । पहले द्वि के इ को अम् मान्त । दूसरे द्वि के इ को अ । म को अनुस्वारपरसवर्ण, नपुसक द्वन्द्व सिद्ध हो । **एषु अर्थेषु=रहस्य** अर्थ हो जैसे द्वन्द्व मन्त्रयते एकान्तमे दो दो विचारते है । वाक्यगत रहस्य—दो दो की मन्त्रणा अन्य अर्थ विषयभूत है । जैसे **मर्यादा** स्थितिके धर्म नियमका **अनतिक्रम**—उल्लङ्घन न होना । यथा—**आचतुर ही मे पशवः** । आचतुर चौथी पीढी तक द्वन्द्व दो—दो के बीच मिथु-नीयन्ति -मिथुनस्य कर्म मैथुनम् इच्छन्ति । सुप् आत्मन क्यच् । माता पुत्रके साथ मिथुन परस्पर मिलती है । पौत्र प्रपौत्रके साथ चार पीढी तक मर्यादा

मण पृथगवस्थानम् । द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ता द्विवर्गसबन्धेन पृथगवस्थिता । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । द्वन्द्वं सङ्कर्षणवासुदेवौ, अभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थ । योगविभागादन्यत्रापि द्वन्द्वमिष्यते । इति द्विरुक्तप्रकरणम् ।

इति श्रीभट्टोजीदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यां पूर्वार्धं समाप्तम् ।

के साथ रहती है । सयुक्त परिवारके साथ लोक प्रसिद्धि भी अभिव्यक्त है । व्युत्क्रमणका अलग होना अर्थमे द्वन्द्व सिद्ध करे । दो दो व्यक्ति दो पार्टीसे सम्बन्ध जोडकर अलग हो गये दो–दो व्यक्ति । यज्ञ पात्रका प्रयोग आपसमे करते है इस अर्थमे द्वन्द्व, सकर्षण और वासुदेव एक दूसरेके द्वन्द्व साथ रहनेसे अभिव्यक्त ज्ञानका विषय हे । इन अर्थोमे द्वौ द्वौ विग्रहमे द्वित्व कमधारय समास जिसका फल सुप् लुक् । समुदायसे सुप् अम् अ । नपुसकसे द्वन्द्व सिद्ध हुआ । योगविभाग=सूत्रके द्वन्द्वको अलग पढ दे, तब अन्य अर्थमे भी द्वित्व आदि कार्य होते है । द्वन्द्वानि सहते, सघर्ष सहते है । शीतम् उष्णञ्च द्वन्द्व सहने । सुखन्दुखञ्च, क्षुधा तृष्णा च स्वार्थमे द्वन्द्व है । रूपसिद्धि पूर्ववत् अन्यत्रमे प्रमाण चार्थे द्वन्द्व हैं । निपातनसे ।

इति प्राभाकरीटीयाया द्विरुक्तप्रकरण परिपूर्णम् ।



स्वादि क्यो पढें ?   प्रकरण सगतिः । भूमिका—

अथसुबन्ततिडन्त पदम्—

(विभक्त्यर्थ कारको) की साधनिकाके पश्चात् क्रियाप्रधान प्रकरणका का आरम्भ प्रसङ्गसङ्गत है । क्योकि प्रथमा द्वितीया आदि प्राय कारक है । क्रियान्वयि जनक वा कारकम् । सुबन्तपदको तिडन्तपदकी आकाङ्क्षा है । साकाक्षङ्पदसमुदाय वाक्यम् । एकतिङ् प्रधान वाक्य,क्रियाप्रधान माख्यातम् । सुप्तिङन्त पद आदि प्रमाणोसे सिद्ध है कि सुबन्तसे तिडन्तपद जुडे है । कारकोका क्रियाके साथ सम्बन्ध है । क्योकि उनमे क्रिया प्रधान, (कर्म प्रधान विश्व करि राखा । सारे ससारका आधार) क्रिया रूप काल है । काल क्रियात्मकमाहु. । गीतामे पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्, गच्छन् अश्नन् स्वपन्, श्वसन् । प्रलपन विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन्, निमिषन्नपि-इससे पूरा

विश्व कियारूप सिद्ध है। ससरतीति समार निरन्तर क्रियाशील रहे, उस क्रिया कालचक्रका प्रयोक्ता सचालक बोधक तिडन्तपद करोति, पचति, भवति, खादति पठति आदि है। क्रियाका वाचक धातु है। दधाति क्रियाफलरूपमर्थमिति। धातु भूवादयो धातव से क्रियावाचक मानकर। क्रियावाचिनो भ्वादय धातुसज्ञका है। तिङ्अन्ते भावी यस्य स तिडन्त—धातु तस्मिन् तिडन्ते भ्वादय -भूआदौ येषान्ते भ्वादिगणधातव। शप् विकरण प्रकरणका प्रारम्भ-धातुके दो अर्थ—फल और (क्रिया) या या क्रिया सा सा फलवती। यथा—पच् धातुका फल पाक चावलका मुलायमपन, अवयव शिथिलता, ठोस का ढीला होना उसके अनुकूल आग जलाना, लकडी लगाना चूल्हेपर चढाना पकाना क्रिया। पठ् धातुका पढना क्रिया, स्पष्ट उच्चारण फल। खाद, भक्षका चबाकर लीलना क्रिया, गलबिलाधःसयोग (तृप्ति) फल। यज् धातुका यज्ञ करना क्रिया, सत्सग पूजा दान स्वर्ग प्राप्तिफल है। भजति-भज धातुका सेवा बढाना क्रिया, प्रीति पसन्नता फल। एधका वृद्धिफल, शीङ् का शयन फल, निद्रावश होना क्रिया आदि। फलक्रियावाचक धातुसे तिङ् प्रत्यय हो।

प्रत्यय-तिङ् का चार अर्थ—कर्ता कर्म सख्या काल। जिसका उपदेश ल कर्मणि आदि सूत्र मे होगा। क्रियाका आधार कर्ता, फलका आधार कर्म। राम शिव भजने। कर्ता राम (जो भजनक्रियाका स्वतन्त्र आधार) है स्वतन्त्र कर्ता। उस क्रियाका फल—प्रीति प्रसन्नता जिसका—आधार शिव है (फलाश्रय कर्म) करोति क्रियाफल धारयति। काल अर्थ कहा जायेगा। प्रत्येक तिडन्त-पदमे यथायोग्य अर्थ मिलते है। तिङ् आदेश है उसके स्थानीकी कल्पना होनी चाहिए तब बोले—लट लिट लुट् आदि दश लकार स्थानी है। सबके स्थानमे तिप् तस् झि आदि आदेश होते है। इनके उच्चारण का क्रम अ इ ऌ ए ओ के क्रमानुरोधसे। चार ङित् लकारोमे भी तथा। ये धातु से होते। बिना धातुके धातुगण कहना सङ्गत कैसे? भाविनीसज्ञा मानकर।

यथा कुलालस्य गृहेषु दोहनी सा वै कथ दोहनिकेति सज्ञा।
तथैव सर्वे पठिता हि धातव, सज्ञां विना धातुगणेषु पाठ.॥

कुम्हारसे दोहिनी दूधहाडी मागा, बिना दूधदुहे दूधहाडी कैसे? भाविनी-सज्ञा। अस्य सूत्रस्य शाटक वय। अभी सूत है साडी कैसे? भविनीसज्ञा। ऐसे ही धातुसज्ञा भी।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

(प्राभाकरीटीकायुता)

श्रौत्राहन्तीचणैर्गुण्यैर्महर्षिभिरर्हादिवम् ।
तोष्टूय्यमानोऽप्यगुणो विभुर्विजयतेतराम् ॥ १ ॥

मध्यमङ्गलाचरण क्यो-शास्त्रकी प्रसिद्धिके लिए, वीरपुरुष वाला शास्त्र के लिए, वि-विशेषेण ईरयन्ति लोके, हिताहितोपदेश प्रेरयन्ति येभ्यस्तानि शास्त्राण्यपि वीरपुरुषकाणि भवन्ति। स्वाध्यायकर्ता मङ्गलयुक्त हो, **मङ्ग विघ्न-विनाश लोकप्रसिद्धि मोक्ष च लातीति मङ्गल,** समाजमे कीर्तिमानग्रन्थका सफल उपयोग निर्विघ्न ग्रन्थसमाप्ति के लिए, शिष्योमे मङ्गलकी परम्परा जगानेके लिए, मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुष-काणि आयुष्मत्पुरुषकाणि च शास्त्राणि भवन्ति। अध्येतारश्चमङ्गलयुक्ता स्यु।

वस्तुनिर्देशात्मक मध्यमङ्गल-**श्रौत्राहन्तीचणै गुण्यै महर्षिभि तोष्टूय्यमान अपि अगुण विभु विजयतेतराम्**। वेदका अध्ययन कर्ता आर्यो से प्रशसनीय, वैदिक नियम धर्म कर्म कुशलता योग्यतासे ससारमे प्रसिद्ध, विवेक विराग शम दम मुमुक्षुत्व आदि प्रशसनीय गुणोसे परिपूर्ण महर्षियो (त्यागियो अतितपस्वियोसे रात दिन वार वार बहुत अधिक गुण-वर्णनात्मक स्तुति किये जाने पर भी निर्गुण निराकार व्यापक क्रियात्मक भगवानकी बहुत शक्तिशाली विजय हो। क्रिया निराकार है।

व्याख्या=श्रौत्राहन्ती चणै=वेदस्य अध्ययनकर्ता श्रोत्रिय, य, छन्दोऽधीते। वेदका पर्याय छन्दके द्वितीयान्त दशाके अधीते अर्थमे घञ्। श्रोत्रियको श्रोत्र आदेश, निपातनसे। घ-को इय श्रोत्रिय। तस्य भाव=वेदपाठकके गुण विशेषता, ब्राह्ममुहुर्तमे चिन्तन तप आदि अर्थमे अण्। **श्रोत्रियस्य यलोपश्च**से य का पूर्णलोप, इ का यस्येति च मे लोप, आदिवृद्धि श्रौत्रम्—वेदमे निष्ठज्ञान। अर्हति अर्ह प्रशसायाम्, सन्ध्या वन्दन अग्निहोत्र अतिथिसेवन आदि वेद समर्थित कर्ममे योग्य होना। अर्हसे शतृ अर्हन् अर्हतो भावः आर्हन्ती। अर्हत्से ष्यञ् नुम् आदि। षित्से ङीष्। हलस्तद्धितस्य यलोप, यस्येति च अलोप। ओ ङसे स्त्री०, **श्रौत्रञ्च आर्हन्ती च श्रौत्राहन्त्यौ, ताभ्यां वित्ता चतुरा=श्रौत्राहन्ती-चणा**, तै। तेन वित्तः से=प्रसिद्धिअर्थमे चणप्। वेद विहितकर्ममें वेदाध्ययन की योग्यतामे ससार प्रसिद्ध महर्षियोसे गुण्यै=प्रशस्तगुणसम्पन्नै. सत्य

पूर्वार्द्धे कथितास्तुर्यपञ्चमाध्यायवर्तिन.।
प्रत्यया अथ कथ्यन्ते तृतीयाध्यायगोचरा. ॥२॥

असत्यका निर्णय न लोक परलोक-भोगसे विराग, मन—शम, दम और मोक्षकी कामना आदि प्रशस्तगुण है। गुणसे प्रशमा अर्थमे यप्। गुण्या ब्रह्मणा, भाष्य प्रमाणमे। महान्तश्च ते ऋषय कर्मधारय। आ महत से आत्वगुण, महर्षय. तै अतितरस्विभि मनीषिभि अर्हदिवम् अहश्च दिवा च (व्याप्ति. इच्छा वीप्सा मे द्वन्द्व, 'अचतुरविचतुर' के निपातनसे) अहनि अहनि ऐसे तप पूत महर्षियोसे तोष्टूय्यमानोऽपि=पुन अतिशयेन वा स्तूयते इति तोष्टूय्यते असौ तोष्टूय्यमान. ष्टुञ् स्तुतौ। गुणवान रूपमे कहना स्तुति। देवान्स्तौति देवता गुणवान है। विश्वकल्याणकर्ता रक्षक। स्तुतिका कर्म देवान्। केवल गुणवर्णन स्तुति नही, अकर्मक होनेके नयसे। धातुके आदि षको स। तब ष्टुत्व हटा। स्तुधातु धातोरेकाचो हलादे से गुणवान्की अधिकप्रशमा अर्थमे यङ्। अकृत्सार्वधातुक दीर्घ। स्तूय सन्यङो द्वित्व। शर्पूर्वा खय अभ्यासके स का लोप, हलादिशेष, तुस्तूय-गुणो यङ् लुको से अभ्यास के उ को ओ गुण। षत्व तोष्टूयको वार-वार स्तुतिके अनुकूलक्रिया अर्थमे सनाद्यन्ता धातव -धातुसज्ञा। कर्ममे लट् शानच, आनेमुक्, सार्वधातुके यक्। यङ्के अका अतो लोप, तोष्टूय्यमान.। अचिन्त्य अनन्त जगदाधार ब्रह्माण्ड रचना, सत् चित् आनन्द स्वरूप (सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म) औदार्य भक्तवत्सल उद्धारकर्ता, आदि गुणसे बहुत प्रशसनीय भृश सत्कीर्त्यमान—भगवान् होकर भी अगुणः=निर्गण इत्यर्थ (साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च) श्रुति प्रमाणसे निर्गुण है गुणवान कैसे ? न सन्ति गुणा यस्मिन् अथवा निर्गताः गुणा यस्मात्। यदि गुण नही स्तुति कैसे ? वह तो गुणवानकी सम्भव। यह विरोध अपि शब्दसे खुलता है। उत्तर मीमासा मे विरोध परिहार बोले—कि व्यवहारमे गुण सत्य है अत गुणवान् भगवानकी स्तुति सत्य है। परमार्थमे गुण असत्य हैं अत निर्गुण है। न विरोध। सर्वव्यापक, परमेश्वर विभुका अर्थ उनकी व्यापक विजय हो (विजयतेतराम्) अतिशयेन विजयेन अकर्मक। जि जये धातु। उत्कर्षेण वर्तन जय—सबसे श्रेष्ठ महाराजा होना। वि उपसर्गसे आत्मनेपद विजयते विपराभ्या जे। अतिशय विजय अर्थमे तिङश्च सूत्रसे तरप् किमेत्तिङ् से स्वार्थे आम। आमन्त अव्यय है। तसिलादिमे पढे जानेसे। विउपसर्ग द्योतक है, वाचक नही। तिङन्त मानकर तरप् सत्य है।

प्रकरणमे प्रतिपाद्य विषयकी सूचना देनेके लिए बोले पूर्वार्धे—इति।

अथभ्वादिप्रकरणम्

तत्रादौ दश लकारा प्रदर्श्यन्ते—लट् । लिट् । लुट् लृट् । लेट् लोट । लङ् । लिङ् लुङ् । लृङ । एषु पञ्चमोलकारश्छन्दोमात्रगोचर । (५१) वर्तमाने

सिद्धान्तकौमुदी के प्रथम अधभागमे चौथे पाचवे अध्यायके प्रत्यय कहे गये कथिता । जैसे स्पृशोऽनुदके क्विन्,ऋत्विग्दधृक् आदि । तुर्य का चतुर्थ अर्थ । चतुर्णा पूरण अर्थमे चतुरसे यत् । आदि अक्षर च का लोप । **अर्थ=** उनकी चौथे पाचवे अध्यायके प्रत्ययकी साधनिका समझानेके बाद तृतीय अध्यायके **गोचरा**=प्रतिपाद्य विषय खोलने वाले प्रत्यय और साधनिका **कथ्यन्ते**=कहे जायेंगे जिसमे णच स्त्रियाम,अणिनुण का प्रसङ्ग है। प्राय तृतीयाध्यायके प्रत्यय ही कहे जायेंगे ।

तत्रादौ=तेषु इति तत्र=तीसरे अध्यायके प्रत्ययोमे (निर्धारित सप्तमी अन्तमे त्रल्) **आदौ**—प्रथम स्थितिमे धातुसे होनेवाले लकारोका प्रवचन किया जा रहा है। **दशलकारा** कैसे ? अ इ उ लृ ए ओ आदि अनुबन्ध भेदसे लकारमे भेद । छात्रा दश लकारान् पश्यन्ति तान्कश्चन् प्रेरयति तै लकारा **प्रदर्श्यन्ते** कमणि प्रत्यय । ६–टित् लकार–लट् लिट् लुट् लृट् लोट् । ४–ङित्-लकार लङ् लिङ् लुङ् लृङ् एषु **पञ्चम** =इनमे पाचवा लिडर्थे लेट लकार **छन्दोमात्र**=वेदके व्याकरणमे दृष्ट उपयोगी है लोकमे नही । **लकारोका अर्थ-** सक्षेपमे **लट्** का वर्तमानकाल, कर्ता,कर्म, भाव आदि अर्थ सभी लकारोंके अर्थ मे गौण वा मुख्यरूपसे विशेषणविशेष्यभावसे सम्बन्धित है । **लिट्**—अनद्यतन परोक्षभूतकाल । प्रयोगकर्ता आखसे भूतकालकी क्रियासहित कर्ताको न देखा हो । **लुट्**-आगामी आधीरातके बाद का भविष्यकाल जिसमे कल परसो नरसो श्व परश्व परतरश्व दूसरा दिन सप्ताह, मास वष, आदिसे सकेत हो। **लृट्**—सामान्यभविष्य चाहे अनद्यतन हो चाहे अद्यतन । उसमे आज कल परसो नरसो का बन्धन न हो वह सामान्य भविष्य है, या अद्यमात्र हो । **लोट्**—आज्ञा प्रेरणा आशीर्वाद स्वागत सत्कार सप्रश्न निवेदन आदि । **लङ्**—अनद्यतन भूतकाल बीती आधी रातके पहलेका भूतकाल जो ह्य परह्य परतरह्य आदि भूतकालसे बन्धित हो । **लिङ्**—लोट्की तरह अर्थ । किन्तु कार्यकारणभावमे विशेष उपयोगी । आशीर्लिङ् । लुङ—सामान्यभूत जिसमे कल परसो मास वर्षका बन्धन न हो । लृङ् कार्य कारण भाव हो । पढेंगे तब पास होंगे, उत्तीर्णताके कार्यमे पढना कारण । यदा अपठिष्यत तदा उदतरिष्यत् । विस्तार—विशेष प्रशङ्गमे देखिये—

लट् ३।२।१२३।। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातो र्लट् स्यात् । अटावितौ । (५२) **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य ३।४।६९।।** लकारा सकर्मकेभ्य कर्मणि

लकार क्यो कहलाये— सभी लकारोमे ल अक्षर प्रधान-सबमे है अन्य अक्षर सबमे नही मिलते, ल कर्मणि चाभावे-तथा 'लस्य' सूत्रका विषय बनने के लिये लकार पढा। लोट्का व्युत्पादन नही प्रदर्शन मात्र है। लट् लकार का विधि सूत्र(५१)वर्तमानकालकी क्रिया अर्थमे वृत्ते-विराजमान या वाचक धातुसे लट् हो, क्योकि धातो का अधिकार तृतीयाध्याय समाप्ति तक चलेगा।

(५२) ल कर्मणि च-एक सूत्र। भावे चाकर्मकेभ्य.—दूसरा सूत्र। ल. का लकारा प्रथमाबहुवचन। च पढनेसे कर्तरि कृत्मे कर्तरि आया। अर्थ—सभी लकार सकर्मकधातुसे कर्म और कर्ता अथमे हो। सकर्मक का ही विषय किन्तु दूसरे अशमे चकार पढनेसे कर्ता ही आया, कर्म नही असम्भवात् । अकर्मकधातुसे भाव (क्रिया)और कर्ता अर्थमे लकार हो। सकर्मकसे भाव-क्रिया प्रधान लकार होगा तब देवदत्तेन घट क्रियते नही बनेगा,कर्ममे प्रत्यय न होने

कालस्तु व्यापारे विशेषण धातुके व्यापार अर्थमे वर्तमानकाल जुडा। या या क्रिया सा सा फलवती। फल उत्पन्न होने तक चलती हुई क्रिया वर्तमान काल है। उस क्रियाका वृत्ते (वाचकत्व षष्ठयर्थ) वाचक धातुसे लट्। क्रिया ही काल है। कालक्रियात्मकम् हु । क्रिया है आत्मा जिसका। क्रिया चलती हैं मानो काल ही चलता हैं। इसी कालके तीन भेद-भूत, भविष्य,वर्तमान। काल एक है (अखण्ड) भेद कैसे ? चलती क्रिया वर्तमानकाल। समाप्तक्रिया। भूत काल। भविष्यकाल अतीतानागतभिन्नकालत्व, भूतभविष्यन्—भिन्नत्व वर्तमानत्वम्। जो भूत भविष्यकालका प्रतिद्वन्द्वी है। यह काल क्रियामे विशेषण है, कर्ता कर्ममे नही। यदि कर्तामे कालविशेषण होता तब भोजन भले ही बन गया हो कर्ता भण्डारीके रहत भूतकाल कभी नही हो सकेगा। मरने पर ही भूतकाल होगा, पचति पिण्ड नही छोडेगा। लट् वर्तमानकालिक क्रियाका द्योतक प्रकाशक है, वाचक नही। वस्तुत वाचक भी है। द्योतिका वाचिका वा स्नु द्वित्वादीना विभक्तय। अटौ इतौ लट्मे उपदेशे अनुनासिक अच्-अकी इत्सज्ञा उपदेशमे अन्त्य हल् ट् इत्। अकारको उच्चरणार्थक न माने। इसलिये कि लिट् लुट् सबमे उच्चारणार्थक न मानना पडे। बिना इत्सज्ञाके लोप नही होगा। अत इत्सज्ञाही आचरणीय है।

से। अनुक्ते कर्मणि द्वितीया होगी, घट क्रियते बनेगा। अकर्मकशब्दसे अविवक्षित कर्म भी मान्य। देवदत्तेन भुज्यते। ओदन कर्मकी अविवक्षा करके भाव मे लकार होना ही है। सकर्मक, अकर्मक, कर्ता कर्म भावका परिचय—

सकर्मक—पृथक्कर्मणा सह वर्तते सकर्मक। धातुके दो अर्थ फल और क्रिया। दोनो अलग आधारमे रहे सकर्मक। यथा **भक्त. हरिं भजति** इसमे भज धातुका प्रीति-प्रसन्नता फल है,(पूजा जप कीर्तन आरती)क्रिया जो **भक्त में** है। फल (प्रसन्नता) **भगवान्मे**। दोनोका अलग आधार। **धात्वर्थ फलाश्रयो भिन्न. व्यापाराश्रयो भिन्न** आधार सकमक। आधार भेद है अथवा परगामी क्रियाफल सकर्मक'। जहा किम्का प्रश्न उठे। यथा—राम' अपूप खादति, पुस्तक पठति। कर्ताके साथ प्रश्न उठा किं खादति—अपूप, किं पठति पुस्तक। यह भाव श्लोक बद्ध है।

क्रियापद कर्तृपदेन युक्त, व्यपेक्ष्यते यत्र किमित्यपेक्ष्यम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति, शेषस्ततो धातुरकर्मक. स्यात्।

भज खाद पठ आदि सकर्मक है।

अकर्मक.—धातुमें किं प्रश्न न उठे। यथा शेते—शयन क्रियामे किं प्रश्न नही उठा, शाययति सकर्मक है किं प्रश्न उठता क शाययति पुत्र,**धात्वर्थफल क्रिययो: एकाधारोऽकर्मक**। फल क्रिया एकमे हो। कृष्णश्शेते। बलराम जागर्ति,शयन-क्रिया एकआधार कृष्णमे। एव निद्राक्षय और क्रिया बलराममे। **कर्तृगामी (क्रियाफलेअकर्मक)** परिचायक श्लोक—

लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्।
शयनक्रीडारुचि दीप्त्यर्थकधातुगणं तमकर्मकमाहु:॥

कर्ता—किसी क्रिया का स्वतन्त्र आधार कर्ता है। क्रियाया स्वातन्त्र्येण विवक्षित'। उसीधातुसे उपस्थित क्रियाजन्य फलका आधार **कर्म** है। कराभि क्रिया फलं धारयति। **तात: तण्डुलं पचति**। पचका फल भाने (चावलका मुलायमपन) तण्डुलमें है, कर्म बना। **फलाश्रय कर्म.**। पकानेके अनुकूल क्रियों देवदत्तमें **(क्रियाश्रय: कर्ता)**

भाव—धातुसे उपस्थित क्रियाको भाव कहते है;देवदत्तेन शय्यते। **भगवता भूयते**। शयन भवन क्रिया मुख्य है। अनुक्त कर्तामें तृतीया। इसस लकारके तीन अर्थ सिद्ध है—कर्ता कर्म भाव तीनों वाच्य वक्तु योग्य है। लकार: वाचक। यदि क्रिया, कर्तामे लकारसे कही जाय वह **कर्तृवाच्य**। यथा. राम.

कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च। (५३) **लस्य** ३।४।७७॥ अधिकारोऽयम्। (५४) **तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्** ३।४।७८॥ एतेऽष्टादश लादेशा स्यु। (२१५५) **ल परस्मैपदम्** १।४।९९॥ लादेशा परस्मैपदसज्ञा स्यु। (५६) **तङानावात्मनेपदम्** १।

रावण हन्ति। यहाँ तिका अर्थ कर्तामे लकार हुआ। जब तिङ् कर्म अथको बोलेगा वह वाक्य **कर्मवाच्य**। रामेण रावण हन्यते, रावण मारा गया। हनन क्रियाफल-मृत्युका आधार कर्ममे ल्, **यस्मिन्प्रत्यय स उक्त**। जिस अर्थमे प्रत्यय हो वही प्रधान है, **उक्ते प्रथमा विभक्ति** होती है। नैयायिक प्रथमान्तार्थ प्रधानबोध मानते है। रामेण रावण हन्यते कम अथमे प्रत्यय मुख्य रहा रावणसे प्रथमा, अनुक्त कर्ता राममे तृतीया। जिम वाक्यमे तिङ्से क्रिया कही जाय वह भाव वाच्य, उसका वाचक लकार। यह अकर्मक तक सीमित। महाभारत भूयते, त्वया उच्यते, मया शय्यते।

प्रथमान्तो यदा कर्ता, द्वितोया कर्मणस्तदा।
यदा कर्ता तृतीयान्त, प्रथमा कर्मणस्तदा॥ इति विवेक

(५३) **लस्य**—अधिकार सूत्र है धातुके अधिकारमे लके स्थानमे आदेश हो। स्थानी लसे आदेशकी कल्पना, स्थानषष्ठी। लकी इत्सज्ञा नही, उच्चारणके सामर्थ्यसे, इन होता उच्चारण क्यो करते। लित्स्वर फल नही। णल्के लकारके लित्स्वराभाव ज्ञापनसे (५४) **तिप् तस् झि। सिप् थस् थ। मिप् वस् मस्। त आता झ। थास् आथा ध्वम्। इट् वहि अहि।** इनका समाहार द्वन्द्व करके प्रथमा एकवचनका सूत्र। लके स्थानमे ये अठारह आदेश उपस्थित हुए। ये प्रत्यय है इनका प्रत्यय, परश्च, आद्युदात्त से सम्बन्ध है, लको आदेशकी आकाक्षासे १८ आदेश खले कपोतन्यायसे लके स्थानमे (तस्के स को रु नही, आर्ष होनेसे)। तिप सिप् मिप्का प् अपित्सार्वधातुक ङिद्वतके लिए, अठारह भेदोमे नौ को परस्मैपदसज्ञा जिसका परिचायक सूत्र—

(२१५५) **ल** मे स्थान षष्ठी। लके स्थानमे जितने आदेश उपस्थित है सबको परस्मैपद सज्ञा हो। परसे स्मै, दूसरेके लिए। परसे स्वका आक्षप क्रियाफल दूसरेके लिएभी है। यद्यपि ल एक है आदेश अठ्ठारह सगति कैसे? (प्रतिप्रधान गुणावृत्ति) न्यायसे प्रधान आदेशके अनुरोधसे ल की अठ्ठारह आवृत्ति होगी। उच्चारण सामर्थ्य—कारण बनेगा।

(५६) **तङ् च आनश्च द्वन्द्व तङानौ**—त आताम्से लेकर महिङ्के ङ

४।१००॥ तङ् प्रत्याहार । (तादिनवक) शानच्कानचौ चैतत्सञ्ज्ञानि स्यु । पूर्वसञ्ज्ञापवाद । (५७) **अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२॥** अनुदात्तेत उपदेशे यो ङित् तदन्ताच्च धातोर्लस्य स्थाने आत्मनेपदं स्यात् । (५८) **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२॥** स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मने

तकका प्रत्यय तङ्प्रत्याहार है । तादिनवक को और आन=शानच् कानच्को एतत्सञ्ज्ञा=आत्मनेपदसञ्ज्ञा हो । पूर्वसञ्ज्ञा परस्मैपदको बाधकर । लके स्थान मे शानच कानच मान्य चानश नही, लादेश न होनेसे । ये कृदन्तमे मिलेंगे आत्मनेपदका निर्णायक सूत्र—

(५७) **अनुदात्तश्च** ङ् च अनुदात्तङौ तौ इतौ यस्य, अनुदात्तङित् तस्मात् द्वन्द्वसमासके अन्तमे सुना गया पद प्रत्येकसे जुडता है । इत् दोनोसे जुडा । तब कहा—अनुदात्त इत्सञ्ज्ञक धातु और उपदेशमे, ङ इत् ङित् धातु, तदन्तसे हुए ल के स्थानमे परस्मैपदसञ्ज्ञक हो । उपदेशेऽजनुनासिकसे उपदेश आया । मण्डुकप्लुतिसे । ङित्से जुडा अनुदात्तसे नही । सम्भव है, व्यभिचार नही । भूवादय से धातु आया । पञ्चमीमे बदला, अनुदात्तेत् और ङित् का विशेष्य । केवल ङित् अशमे तदन्तविधि । ल के स्थानमे आत्मनेपद । जैसे एध वृद्धौ—धमे अ अनुदात्त अनुनासिक अच् होनेसे इत्सञ्ज्ञक । शीङ् स्वप्ने । ङ इत् होनेसे आत्मनेपद हुआ । उपदेश क्यो पढा ? चुकुटिषति यहा आत्मनेपद न हो, इसका ङित् 'ग ङ्कुटादिभ्य ''से सन्को ङित् हुआ जो उपदेशका नही है । 'धातो' क्यो पढा ? अदुद्रुवत्मे चङ्का ङित् है धातुका नही, न आत्मनेपद । ङित् अशमे तदन्तविधिका फल बोभूयतेमे आत्मनेपद होना । वहाका यङन्त सनाद्यन्तासे धातुसञ्ज्ञक है । (५८) **स्वरित** उदात्तधर्म अनुदात्तसे मिला अ इत्यस्य स्वरित है ऐसे अच् इत्सञ्ज्ञक और ञित् धातुसे लके स्थानमे आत्मनेपद हो,क्रिया और फल कर्तृगामी कर्तामे रहे । स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ तौ इतौ यस्य तस्मात् बहुब्रीहि । इनका दोनोसे योग । कर्तारमभिप्रैति गच्छति कर्ता के अभिप्राय उपलब्धिके लिए फल,कर्मणि अण् । कर्त्रभिप्राये-आचार्य यजति यज्ञका स्वर्ग फल यजमानको मिला, परगामी परस्मैपद हुआ । आचार्य को दक्षिणा ही मिली-जो यज धातुका अर्थ नही पारिश्रमिक है, न आत्मने पदम् । वेतनेन भृत्य भोजन पचति । भोजनका फल तृप्ति स्वामोको मिला, पाचकको नही । परगामीफलसे परस्मैपद । कर्ता भृत्यके गलविलाध सयोग, चबाकर लीलना न होनेसे, आत्मनेपद नही । परन्तु आचार्य या पाचकको

पद स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले। (५९) **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** १।३।७८॥ आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातो कर्तरि परस्मैपद स्यात्। (२१६०) **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा** १।४।१०१ तिङ उभयो पदयोस्त्रयस्त्रिका क्रमादेतत्सज्ञा स्यु। (६१) **तान्येकवचनद्विवचनबहुवचना**न्ये-

---

अपनी क्रियाका फल दक्षिणा या वेतन लाभ होता है। जो पचतिका फल नही है। किन्तु वह लाभ पारिश्रमिक है। यजतिका फल स्वर्ग है दक्षिणा नही। पचतिका फल पाक-चावलका शिथिलीभवन है वेतन नही। लोक वेदमे फलके लिए क्रियामे प्रवृति होती है। वह उद्देश क्रिया फल कर्ताको मिले तभी आत्मनेपद, दूसरेको मिले तब परस्मैपद।(५९)शेषात्=उक्तादन्य शेष=अनुदात्त ङिन् आत्मनेपदम और स्वरित ञिन् सबमे आत्मनेपद होनेमे कारण है। उक्त है उनसे बचा हुआ कारण ऐसे धातुमे कर्ता अर्थमे परस्मैपद केवल कर्तामे परस्मैपद कहा गया, वह कर्तृवाच्यमे चलता है। आत्मनेपद कर्तृ वाच्य कर्मवाच्य भाववाच्य तीनोमे होता है। प्रसङ्गमे भू धातुसे परस्मैपद हुआ, आत्मनेपदका लक्षण नही घटा। भूधातुसे कर्तामे ल-स्थाने परस्मैपद हो परन्तु वे नौ है। तिप् तस झि, सिप् थस थ, मिप् वस् मस्। ये नौ एक साथ हो या क्रमसे दो चार हो। इनमे तीन-तीन त्रिकके प्रथम पुरुष मध्यम, पुरुषकी व्यवस्थामे बोले—

(२१६०) **तिङ उभयो** तिङ्के दोनो पद आत्मनेपद परस्मैपदके त्रयस्त्रिका—तीन तीनके समुदायको क्रमसे प्रथम, मध्यम और उत्तमपुरुषकी सज्ञा हो। यथापि १८ प्रत्यय छ त्रिक है, सज्ञा तीन है त्रिक। गणना क्रम सम्भव नही तब कहा-उभयो पदयो। परस्मैपद-आत्मनेपद (जो अनुवृत्तिसे आये है) दोनोके तीन तीन त्रिक गणनाक्रम घट जायेगा। प्रथम मध्यम उत्तम का पुरुष प्राचीन आचार्य सम्मत चित्र—

	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
परस्मैपद—	तिप् तस् झि	सिप् थस् थ	मिप् वस् मस्
आत्मनेपद—	त आता झ,	थास् आथाम् ध्वम	इट् वहि महिङ्

प्रत्येक त्रिक एक साथ हो या क्रमसे क्योकि एकसख्या उच्यते,तत्र एकवचन, द्वे सख्ये यत्र उच्येते तत्र द्विवचन,बहुषु बहुवचनम् की व्यवस्था के लिए एकवचनादि सज्ञासूत्र तत् शब्दसे प्रथममध्यमोत्तमा' तिङ् त्रीणि का स्मारक। (६१) तानि पूर्वसूत्रमे पढे गये प्रथम मध्यम उत्तम सज्ञा जो

कश १।४।१०२।। लब्धप्रथमादिसञ्ज्ञानि तिङस्त्रीणित्रीणि वचनानि प्रत्येकमेक वचनादिसञ्ज्ञानि स्यु । (६२) **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम १।४।१०५।।** तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि अप्रयुज्यमाने प्रयुज्य मानेऽपि मध्यमः स्यात् ।(६३) **प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च १।४।१०६।।** मन्यधातुरुपपद यस्य धातोस्तस्मिन्प्रकृतिभूते सति मध्यम स्या-

---

लब्ध हो चुकी है उनकी तीन-तीनका त्रिक-श्रेणीमे एकश=एक एक को प्रत्येक एकवचन-ति, द्विवचन-तस्, बहुवचन झि आदि चित्रमे देखिये। सङ्ख्या एकवचनसे वीप्सामे शस एकश । (६२) युष्मदि=शब्दके कर्ताकी स्थिति त्वं युवा यूयम्‌की दशामे उपपदे=उपोच्चारित पद तस्मिन् (त्व युवाम यूय के) समीपमे उच्चारित होनेपर(समानम् एकम् अधिकरण वाच्य यस्य तत् तस्मिन्) एक अर्थ समान आधारवाला युष्मद्‌का तथा तिङका स्थानी लकारका अर्थ कर्ताके साथ जो कारक है। इस आशयसे कहा तिङ्वाच्य कारकवाचिनि तिङ्का अर्थ कर्ता आदि कारक युष्मद हो, स्थान (प्रसङ्ग• अस्ति अस्य स्थानी तस्मिन्) लकारका प्रसङ्ग हो, वह प्रसङ्ग लका अर्थ कर्ता हो रहा हो। किन्तु उस लका प्रयोग नही रहता, आदेशके अपहरणसे उपपद युष्मद्‌का विशेषण है उसके प्रयोगके बिना भी बोध करानेपर मध्ययम पुरुष हो। अप्रयुज्यमाने स्थानी कर्ताका प्रयोग हो या न हो। यह भेद अपि शब्दसे लब्ध । यथा त्व भवसि यहाँ सिप्‌का अर्थ कर्ताका युष्मद् त्वम्‌से अभेद सम्बन्ध, भवसि क्रियामे अन्वयमे कारक भी। तिङ्का अर्थ कर्ता उसका आधार त्वम् दोनोका समाना धिकरण आधार होनेसे मध्यमपुरुष सिप् हुआ। त्वम्‌के बिना मध्यम पुरुष भवसि भी होता है। ति आदेश होनेपर स्थानी ल अप्रयुज्यमान भी है, अप-हृत होनेसे। गौण स्थलमें त्व के रहते मध्यम पुरुष नही होता। यथा अत्व त्व सम्पद्यते। भवान् आगच्छति। भवनके प्रयोगमे न मध्यम । सम्बोधन असम्बो-धन दोनोका विषय होनेसे। युष्मद् सम्बोधनका ही विषय है।

(६३) प्रहासे=परिहासकी स्थितिमे मन्य धातु उपपद-विशेषण हो उस धातुकी प्रकृतिसे मध्यम पुरुष हो। मन्यधातुसे उत्तम-उत्तम पुरुष हो,एकवच्च=वह एकवचन अर्थ कहता हो। इस सूत्रमे दो वाक्य प्रहासे च मान्योपपदे-प्रथम वाक्य। जिसमे मध्यम आया। मन्यधातु श्यन् विक रणं उपपद यस्य बहुब्रीहि धातुमे विशेषण। उस धातुसे लस्थाने मध्यम । अस्मद्‌के उपपद रहते उत्तमपुरुषका बाधकविधि है। द्वितीय वाक्य-मन्यते

त्परिहासे गम्यमाने। मन्यतेस्तूत्तम स्यात्स चैकार्थस्य वाचक स्यात्। (६४) अस्मद्युत्तम. १।४।१०७।। तथाभूतेऽस्मद्युत्तम स्यात्। (२१६५) शेषे प्रथम' १। ।१०८।। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथम स्यात। १ भू सत्तायाम्।

रुत्तम एकवचन। युष्मद्युपपदे आया। वह मनधातु, उत्तमपुरुष द्विवचन बहुवचन एकमे भी एकवचन स्वीकारता है। मध्यम उत्तमके अभ्यासार्थ सूत्र (अनुपदं उदाहरिष्यते) (६४) अस्मदि उत्तम.-तथा भूते=पूर्वसूत्रकी दशामे तिडका वाच्य अर्थं कर्ता जो क्रियामे अन्वयी है। कारक—अस्मद् (अहम आवा वयम्)आधार हो उसके विशेषण रहते ल-स्थाने उत्तमपुरुष हो। अहम् अवा वय का प्रयोग रहे या न रहे। यथा अह भवामि। तिड् वाच्य कर्ता का आधार अहम् है, कारक भी। उत्तमपुरुष मिप् हुआ। केवल भवामि दशामे मिप् वस् मस् होते है।

(२१६५) शेषे उक्तादन्य शेष—मध्यमपुरुषका विषय त्व युवा यूयम् उत्तमपुरुषका विषय अहम् आवा वय कहा गया,उनका विषय न हो। ससार के सभी कर्ताके विषयमे प्रथमपुरुष तिप् तस् झि होते हे। युष्मद्के समानाधिकरणसे भिन्न है। त्वम् अह च पचाव.। यहा परत्वात् उत्तमपुरुष हो न तु मध्यम'। चैत्र त्व च पचथ। इत्यत्रापि मध्यम न तु प्रथमपुरुष'। युष्मद् अस्मद् त्व अहम् के रहते शेष नही रहा।

भू-सत्तायां—भू धातुका सत्ता अर्थ जाति है, क्रिया नही तथापि आत्म धारण सत्ता अस्तित्व प्रकट, उत्पन्न होना, रूपधारण करना अर्थ। प्रथप भू कहना माङ्गलिक, महा व्याहृति भूव का सूचक है सत्ता अर्थ--पर ब्रह्मका स्मारक। भ्वादिगण प्रथम धातु है। गणमे भू ही पढा, अर्थका निर्देश बादमे हुआ। यह धातु अकर्मक हैं। क्योकि सत्ता उत्पत्ति रूपधारण फल, उसकी जननी क्रिया, एक आधारमे है। जैसे चैत्रो भवति। चैत्र ही फल क्रिया दोनोका आधार है। क्रियावाची भूको धातुसज्ञा, उत्पत्ति फल जननीक्रियावाचक भूधातो कर्ताकी इच्छामे ल: कर्मणि सूत्रसे लट्। क्योकि स्वतन्त्र कर्ता भवन कियाका स्वतन्त्र आधार कर्ताकी इच्छा होने पर कर्तृवाच्य=कर्ताको मुख्यरूपसे कहना हो। कर्ताका क्रियासे, क्रियाका कालसे सम्बन्ध। अत वर्तमानकाल अर्थमे भी लट्। भवनक्रियाके वर्तमान रहनेसे। अत लकारके छ' अर्थ—कर्ता कर्म भाव काल सख्या पुरुषभी। कर्तरि वर्तमानकाले अर्थे लट् भू+ल्, ल्के स्थानमे प्रथम पुरुषस्य एकवचन ति, आत्मने

कर्तृविवक्षाया भू ति इति स्थिते। (६६) **तिङ्शित्सार्वधातुकम** ३।४। ११३॥ तिङ. शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञा स्यु। (६७) **कर्तरि शप्** ३।१।६८॥ कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातो शप स्यात्। शपावितौ। (६८) **सार्वधातुकार्द्धधातुकयो** ७।३।८४॥ अनयो परयोरिग तस्याङ्गस्य गुण

नही हुआ, उसका कारण अनुदात्त डित् स्वरित ञित् आदि न होनेसे परस्मै पद। मध्यम उत्तम पुरुषका कर्ता न होनेसे, प्रथमपुरुष। एक सख्या विवक्षा मे तिप्। भू ति इति स्थिते।

(६६) तिङ् (तिप् तस् झि इत्यादि) शइन् यस्य शित्=शप् श्यन् श श्ना आदि धातुके अधिकारमे उक्ता—कहे गये उनको सार्वधातुक (सर्वधातौ भव तत्र भव ठ—क) सज्ञा हो, जो सभी धातुमे तिङ शित्को प्राप्त है। धात्व धिकार पढनेका फल हरीन्मे शमको सार्वधातुक न होना। अन्यथा अपित् को ङित होनेसे घ्क्ङितिसे गुण न हो पाता। इससे ति की सार्वधातुक संज्ञा (६७) कर्तरि=कर्ता अर्थमे सार्वधातुक परे रहते धातुसे शप् हो। लशकु से श की, हलन्त्य से प् की इत्सज्ञा। अ-शेष। भू ति के बीच बैठा। प्रकृतिप्रत्ययोर्मध्ये य तिष्ठति स विकरण जो प्रायः द्योतक है। अत्ति मे बिना विकरण प्रतीति है। तिप् आदिभी प्राय द्योतक हैं क्योकि लकारार्थ कर्ता कर्म आदि क्रियासे अभिन्न है। गुणगुणीकी तरह क्रियाक्रियावान्का समवाय स्वीकृत। भूअ ति इति स्थिते। यस्मात्प्रत्ययविधि सूत्रसे शप् परे भू को अङ्गसज्ञा जिसका फल गुण है।

(६८) सार्वधातुक (जो धातुके पूरे लकारमे प्राप्त है) (अर्धधातौ भव ठक्) आर्धधातुक (धातुसे लकारके कुछ भागमे होता है तिङ् शित् भिन्न स्थलमे लिट् के स्थानमे आदेश तिप्तस् झि आदि और स्य तास् आदि दोनो सज्ञाओके परे रहते उस) अङ्ग के इक्—(इउऋऌ इनके सवर्णीभी अन्तमे हो) गुण हो। जो मिदेर्गुण' से आया। इको गुणवृद्धीसे इक् अङ्गमे विशेषण। भू मे उको गुण ओ—अव् आदेश। भवति चैत्र। रूपधारण जनक व्यापार या उत्पत्ति—अनुकूल वर्तमानकालिक क्रियावान् चैत्र। भू धातु बहुत अर्थक है जैसे पराजित होना, बढना, छिपना, उगना, अनुभव, परतु इन अर्थोके प्रकाशक उपसर्ग है। क्योकि उपसर्गेण धात्वर्थं बलदन्य प्रतीयते। पराभवति अन्तर्भवति प्रादुर्भवति उद्भवति अनुभवति।

भवत —पैदा होना-रूपधारण क्रियाके दो कर्ता हो तब भूधातुसे दो कर्ता

स्यात् । अवादेश । भवति । भवत । (६९) झोऽन्त' ७।१।३।। प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेश स्यात् । * 'अतो गुणे' मन्ति । भवसि । भवथ । भवथ । (२१७०) अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१।।अदन्तस्याङ्गस्य दीर्घं स्याद्यञादौ सार्वधातुके परे । भवामि । भवाव । भवाम । स भवति तौ भवत' । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवा भवथ । यूय भवथ । अह भवामि । आवां भवाव ।

मे वर्तमान कालिक लट् । उत्तमपुरुष द्विवचन तस् आदेश । किन्तु शप् गुण अवादेश करके 'भव' बनाने की विधि एक ही है । स् को रुत्व विसर्ग ।

भवन्ति । बहुत उत्पन्न हो रहे है तब उत्पत्यनुकूल क्रियावाचक भू धातु से वर्तमान काल कर्ता अर्थमे लट, प्र०पु बहुवचन झि आदेश । भू+झि सार्वधातुकसञ्ज्ञा शप् । अङ्गसञ्ज्ञा, गुण अवादेश । भव झि । झको अन्त आदेशका विधिसूत्र (६९) झोन्त झ षष्ठयन्त । अन्तके न का अ उच्च० । आयनेयी—सूत्रसे 'प्रत्यय' आया । अस्वरित से आदि नही आया । प्रत्ययका अवयव झके स्थ नमे अन्त आदेश हो । प्रत्ययका अवयव क्यो कहा—उज्झिताके झको अन्त आदेश न हो । वह धातुका झ है । आदि आता शयान्तै न बनता । भव-झि । झको अन्त आदेश । भव अन्त् इ । मिल गया भव अन्ति । सवर्णदीर्घ बाधकर अतो गुणे पररूपे रूप भवन्ति छात्रा । होने क्रिया का आधार त्व हो मध्यम पु० एकवचन सिप् भवसि । दो हो थस्–भवथः तीन हो थ भवथ । सुप् तिङ् को विभक्तिसञ्ज्ञासे तवर्ग स–मकी इत्सञ्ज्ञा नही होती । भव बनानेकीविधि पूर्ववत्,भवामि, प्रकटीभवनक्रियाका आधार अहम् हो भूधातुसे मिप् । शप् गुण अव आदेशसे भव मि-इस स्थितिमे दीर्घका सूत्र ।

(२१७०) अतो=अदन्त अङ्गको दीर्घ हो यञ्=यवरट लण् से झभञ् तक के अक्षर आदि मे हो ऐसा सार्वधातुक परे (जो तुरुस्तु शम्यमः से आया) यञ्का विशेष्य बना । तदादिविधि । अङ्गस्यका अधिकार । तदन्तविधि । सार्वधातुक क्यों पढा ? केशव अङ्गनामे दीर्घ न हो । अङ्गसञ्ज्ञक भव अदन्त है । उसको मिप् परे दीर्घ हुआ । जिससे प्रत्यय हो वह अङ्ग है । भू धातु अङ्ग होगा, भव अङ्ग कैसे ? यस्मात्प्रत्ययविधिः सूत्रमे तदादि पढ़ने से । स आदिर्यस्य विकरणसहित भव भी अङ्ग है । भवामि । जब होने क्रिया का आधारकर्ता आवा(हम दोनो)तब उत्तमपुरुष द्विवचन वस्, दीर्घ । भवाव' जब कर्ता वय (हम लोग) हो तब मस् । दीर्घ स को रु० वि० भवाम. । वस् मस्के सकी इत्सञ्ज्ञा नहीं होती न विभक्तौके निषेधसे ।

वय भवाम । एहि, 'मन्ये ओदन भोक्ष्यसे' इति भुक्त सोऽतिथिभि.। एतमेत वा 'मन्ये ओदन भोक्ष्येथे । भोक्ष्यध्वे' इत्यादि । भोक्ष्ये । भोक्ष्यावहे । भोक्ष्यामहे । मन्यसे । मन्येथे । मन्यध्वे इत्यादिरर्थ ।* 'युष्मद्युपपदे' इत्याद्यनुवर्तते ।

प्रथम मध्यम पुरुषके रूपोका स्मारक वाक्य प्रयोग-स भवति। वह होता है ससार भरका पैदा होनेका एक कर्ता। यदि दो हो रहे है। तौ भवत। बहुत लोग होते हो ते भवन्ति। यदि सम्बोधन साक्षात् आकर्षणका विषय कोई हो त्व भवसि। दो सम्बोधनका विषय हो तब युवा भवथ। तुमदोनो उपस्थित हो। अनेक हो यूय भवथ। तुम लोग उपस्थित हो। आत्मनिर्देश हो तब अह भवामि मै हू। होने क्रियाका आधार हम दो है। तब आवा भवाव। हम अनेक हो तब वय भवाम। यदि दो या तीन कर्ता हो वहा अन्तिम कर्ताके अनुसार पुरुष और वचन होते है। स अह च गच्छाव। दो कर्ता है अन्तिम अहम है। उसके अनुसार उत्तम पुरुषका द्विवचन। अहम त्वम स पठन्ति तीन कर्ता है अन्तिम कर्ताके सःके अनुसार प्र० पु० बहुवचन। छात्र छात्रा अहम च भवाम। अह स त्व च खादथ मै, वह, तुम खाने हो। अन्तिम कर्ताके अनुसारँ वचन होता है। विपरीत भी क्वचित्। अहम् त्वम् स भवन्ति अन्तिमकर्ता स एकवचन है किन्तु बहुवचन होता है, अनेक कर्ता होनेसे।

अत पर=प्रहासे च मन्योपपदे। सूत्रस्य उदाहरणानि दीयन्ते। सर्वेषु भुक्तवत्सु भोक्तुमागत स्यालक जामातर वा प्रति सत्यपि ओदने परिहासाय परिहासशीलस्य वाक्यमिद) हे जामात. एहि आगच्छ ओदन भोक्ष्यसे इति मन्ये। घरमे भोजन है। परिहास मनोरजनके लिए बोले आइये—२ मै भोजन करूगा ऐसा तर मन्यसे सो उचित नही,क्यों नही ? भोजनको अतिथि लोग खा गये। ओदनः भक्षित अतिथिभि। यहा भुजसे प्रथम पु० भोक्ष्यते प्राप्त था सूत्रकी कृपासे मध्यम पु० भोक्ष्यसे हुआ। मन्य धातुके मध्यम पु० मन्यसे प्राप्त था वहा उत्तम पु० मन्ये हुआ, उक्त सूत्रसे। इण धातु लोट्का म० पु० ऐहि एतम् एत है। द्विवचनका उदाहरण-हे जामातरौ। स्यालकौ एतम्। आगच्छतम्, ओदन भोक्ष्यावहे इति मन्येथे। यह मानते होकि हमदोनो भोजन करें। यदि परिहास है तब वाक्य बदल जायेगा। भुजसे उत्तम पु० दो वचन भोक्ष्यावहेके स्थानमे म० पु० भोक्ष्येथे। मन्येथेकी जगह मन्ये। उत्तम एकवचच। भो स्यालका ओदन भोक्ष्यामहे इति मन्यध्वे तुमलोग

तेनेह न । एतु भवान्मन्यते ओदन भोक्ष्ये इति भुक्त सोऽतिथिभि । प्रहासे किं, यथार्थकथने मा भूत्। एहि मन्यसे ओदन भोक्ष्य इति, भुक्त सोऽतिभि ।

(७१) परोक्षे लिट् ३।२।११५।। भूतानद्यतनपरोक्षाथवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् ।

मानते हो कि भात खायेंगे वह अतिथि खा गये। हँसी मजाकका सूचक पु० वचनका व्यत्यास (बदलना) भुज्से उत्तमको बाधकर म० पु०, मन धातुके मध्यम पु० मन्यसे मन्येथे मन्यध्वे को बाधकर उत्तम पु० एकवचन ही हुआ। अन्य उदाहरण—एहि एतम् एत। मन्ये जल पास्यसि पास्यथ पास्यथ। एत मन्ये जल पास्यथ तत्पीतम् अतिथिभि । आगच्छ पुस्तक ग्रहिष्यसि, चौर चोरितवान्तत्। प्रहासे च सूत्रमे युष्मद्युपपदेकी अनुवृत्ति आयी जहा त्व युवा यूयम् कर्ता रहेगे वही उपहासका सूचक पु० वचनका रङ्ग बदल होगा। इसका फल तेनेह न—यहा नही हुआ, एतु भवान् आइये, माना कि भोजन करेगे सो अतिथि खा गये। यहा मध्यमको उत्तम, उत्तमको मध्यम नही हुआ। युष्मत् साक्षात् सम्बोधनका विषय है। भवत उसके बिना भी होता है पर्यायता नही है। सूत्रमे प्रहास क्यो पढा ? यथार्थकथने सत्यवचन हो वहा पुरुष परिवर्तन न हो। एहि=आइये—२ माना कि तुम भोजन करोगे क्या करू अतिथि खा गये ।

(७१)परोक्षे-अक्ष्ण पर परोक्ष आखसे क्रियाको न देखा हो, भूतानद्यतन-बीती आधी रातके पहलेकी क्रियावाचक धातुसे लिट् लकार हो। अनद्यतने (लङ्) आया। भूतेका अधिकार। भविष्य अनद्यतनको वारणके लिए भूत विशेषण। परोक्ष—क्रियामे विशेषण। मतभेद—वर्षशतवृत्तत्व परोक्षत्व। सौ वर्ष पहलेकी क्रिया परोक्ष है। एके, वर्षसहस्त्रवृत्तित्व। हजार वर्ष पहलेकी क्रिया, अपरे दो दिन या तीन दिन पहलेकी क्रिया। अन्ये कुडच कटकादि अन्तरितत्व। दीवाल पर्दाकी आड (ओट) इत्यादि पक्ष भाष्यमे है । परन्तु प्रयोक्तु इन्द्रियागोचरत्व परोक्षत्व सर्वसम्मतम्'। वाक्य प्रयोग कर्ता आखोसे क्रियाको न देखा हो वही परोक्ष है। वर्तमान भविष्यसे भिन्न समासक्रियाकाल भूत है। यद्यपि सभी क्रियायें परोक्ष ही है। भाष्यमे क्रियानाम-इयम् अत्यन्तापरिदृष्टा पूर्वापरिभूता अथवा न शक्या पिण्डीभूता निर्दर्शयितुम्। तथापि तदनुकूलशक्तिमता व्यापाराविष्टाना साधनाना परोक्षत्वमिष्ट। क्रिया अति सूक्ष्म है उसकू

लस्य तिबादय । (७२) **लिट् च ३।४।११५॥** लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञ एव स्यान्न तु सार्वधातुकसंज्ञ । तेन शबादयो न । (७३) **परस्मैपदानां णल तुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२॥** लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । भू अ इति स्थिते । (७४) **भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६।४।८८॥** भुवो

अवयव पूर्वापर नीचे ऊपर नही दिखाइ पडते कि पिण्ड लड्डूवत दिखाये जाय । तथापि क्रियासहित कर्ताका न देखा जाना ही परोक्ष है । इसलिए कर्ता सामने है, कब पकाया यह नही जानता । अत अयं पपाच । भण्डारीको देखा किन्तु पाक क्रियाको नही देखा । क्रिया सहितकर्ता प्रत्यक्ष नही । त्वं पेचिथ, तुम कब पकाये । कर्ता प्रत्यक्ष है । किन्तु पाक क्रिया सहित कर्ता प्रत्यक्ष नही । लिट् उत्तमपुरुष,अहं पपाच कैसे बनेगा । उसमे क्रिया सहितकर्ता प्रत्यक्ष ही रहेगा तन्न, जब नशावश—भ्रमवश कार्य हो जाय (पता नही मैंने कब किया) कार्यसे जब क्रियाका अनुमान हो उस दशामे उत्तम पु० बहुजगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् इतिवत् । साक्षात्करोमि एतादृश ज्ञाना-भाव । ऐसे भूतकालकी क्रिया अर्थ वाचक भूधातुसे परोक्ष भूत कालिक अनद्यतन और कर्ता अर्थमे लिट् । अनुबन्धलोप । ल शेष । लस्य=लके स्थानमे तिप् आदि नौ प्राप्त हुए । किन्तु प्रथम पु० एकवचन तिप् । भू ति ।

(७२) लिट् च-लिट्के स्थानमे हुए आदेश तिङ्=तिप् तस् झि सिप् थस थ, मिप् वस् मस्, को आर्धधातुकसंज्ञा ही हो, सार्वधातुकसंज्ञा न हो । लिट् मे लुप्ता स्थानषष्ठी । तिङ् आया आर्धधातुक (शेष) भी । इड्. शाकटाय नस्य सूत्रसे एव आया, जिसका फल दो संज्ञा प्राप्त होनेपर एकका ही होना । एक संज्ञाका अधिकार, कप् प्रत्यय तक समाप्त है । यहा अनेक संज्ञाये चल सकती है । तेन=आर्धधातुकसंज्ञाका फल हुआ कि शप् श्यन् श श्नम् श्ना आदि नही हुए । सार्वधातुक परे न मिलनेसे ।

(७३) परस्मैपदाना—लिट्के स्थानमे परस्मैपद तिबादि नौ के स्थानमें णलादि नौ आदेश हो । यथा—तिप स्थाने णल् । तस् स्थाने अतुस् । झि-उस सिप्—थल्, थस्—अथुस्, थ--अ, मिप्-णल्, मस्-म, ये क्रमसंख्यासे हुए । तिप्के स्थानमे णल् सर्वादेश हुआ । यद्यपि चुटूसे णकी, हलन्त्यम्से लकी इत्संज्ञा लोप । भू अ । अनेक अल् नही सर्वादेश कैसे ? तन्न सर्वादेशके बिना णल्मे प्रत्ययधर्म आयेगा नही उसके बिना चुटू लगेगा नही । णित्का फल जुहाव आदिमे वृद्धि । ल इत् लित्स्वरार्थं । (७४) भुवो वुक्—भूके स्थानमें

वुगागम स्यात् लुङ्लिटोरचि। नित्यत्वात् वुग्गुणवृद्धी बाधते। (२१७५) **एकाचो द्वे प्रथमस्य ६।१।१। (७६) अजादेर्द्वितीयस्य ६।१।२॥** इत्यधिकृत्य। (७७) **लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८॥** लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाच प्रथमस्य द्वे स्त, आदिभूतादच परस्य तु द्वितीयस्य। भूव् भूव् अ, इति स्थिते। (७८) **पूर्वोऽभ्यास ६।१।४॥** अत्र ये द्वे विहिते तयो

वुक आगम (मित्रवत्) हो, लुङ् लिट् सम्बन्धी अच् परे रहते। जो अच् अनु धातु से आया। अचि परे न कहते तब अभूत्‌ने भी वुक् होता। शङ्का—णल्‌को णित्परे मानकर अचोऽञ्णितिसे वृद्धि क्यों नही बभूविथमे सार्वधातुकार्धध तुकयो से गुण क्यो नही होता, वुक्‌को बाधकर। उत्तर दिया कि—वुक् नित्य विधि है वह गुणवृद्धि होनेपर भी एकदेशविकृतन्यायसे होगा। गुण वृद्धि न हो तबभी वुक् होता। कृताकृतप्रसङ्गी विधिर्नित्य। वुक् (गुणवृद्धी बाधते) क् लोप, व शेष। उकार उच्चा०। क इत्‌का फल आद्यन्तौ टकितौसे अन्त का अवयव होना। यदागम स्तद्गुणी भूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते। वुक् आगम है। भूसे भुव् माना।

(२१७५) एकअच्—धातुके प्रथम एकाच्‌को द्वत्वका अधिकार।(७६) अजादे—अच आदिमे हो यथासम्भव द्वितीयएकाच्‌को द्वित्वका अधिकार। ये दोनो छठे अध्यायके आरम्भमे अधिकार सूत्र है, विधि नही। ष्यङः सम्प्रसारण तक अधिकृत है। (७७) लिटि=लिट् लकार परे अनभ्यास=(अभ्यास सज्ञा न हुई हो ऐसे) धातुके अवयव प्रथम एकाच्‌को द्वित्व-दो उच्चारण हो। अजादिधातु के द्वितीय एकाच्‌को द्वित्व हो। इस सूत्रमे एकाचो द्वे प्रथमस्य,अजादेर्द्वितीयस्य आता, अच् आदिर्यस्य अजादि तस्मात्, कर्मधारय से पञ्चमी। अजादि धातुके एक अच्‌को ही द्वित्व हो। द्वि॰ प्रयोग द्वि व॰। हलादिके प्रथम एकाच्‌को पराच इयायमे व्यपदेशिवत्=व्यवहारमावसे एकाच् प्रथम माने। धातु क्यो पढा? धातुके प्रथम एकाच्‌को ही द्वित्वके लिए। जैसे जजागार जागृ निद्राक्षये। यहा शब्दके एकाच्‌को द्वित्व न हो। भुव् अनभ्यास है। उसको द्वित्व हुआ। परम् च एकाच् है।एक अच् अस्मिन् भू, ऊव अ भुव् किसको द्वित्व हो। वृक्षप्रचलनन्यायेन जड हिलनेस पूरा पेड हिलता है। एकाच् द्विवचनन्यायेन एकाच् समुदाय है। समुदाये द्विरुच्यमाने सर्वे द्विरुच्यन्ते। अवयवके साथ समुदाय भूव् को द्वित्व हुआ। भूव् भूव् अ। इति दशाया। (७८) पूर्वो। अत्र=छठे अध्यायके द्वित्व प्रकरणम एकाचो द्वे

पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्। (७९) **हलादिः शेषः ७।४।६०॥** अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यतेऽन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः। (२१८०) **ह्रस्वः ७।४।५९॥** अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वः स्यात्। (८१) **भवतेरः ७।४।७३॥** भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि। (८२) **अभ्यासे चर्च ८।४।५४॥** अभ्यासे झलां

प्रथमस्यके अधिकारमे ये द्वे विहिते। जो दो बार उच्चरित है उनमे पूर्व को अभ्याससंज्ञा हो। इस सूत्रसे प्रथम भूव्‌को अभ्याससंज्ञा जिसका फल–

(७९) हलादिशेष.–आदि शिष्यते, अन्त्ये हल लुप्यन्ते। अभ्यास संज्ञक शब्दका आदि शेष रहे, चाहे अच् हो या हल् या दोनो। अन्य हल्‌का लोप हो। आदिसे भिन्न हल्‌का लोप कहा। शिष्यते इति शेष लुप्यते इति लोप। कर्ममे घञ। अत्र लोपोऽभ्यासस्य आया। अथवा हलादिधातुके आदि हल् शेष रहे, दूसरा हल् लुप्त हो। अथवा आदि शेष अभ्यासका आदि शेष रहे उससे भिन्नका लोप हो। आदिका हल् अकाक्षावश अच्‌का स्मारक। इस अर्थसे पूरी समस्या हल। अहल्, आदि शेष। ऐसा योगविभाग अगतिकगति है। अभ्यासका अन्त व लुप्त। भू भूव् अ। ह्रस्वविधि सूत्र।

(२१८०) अभ्यायस्य–के अच=अ इ उ ए ओ औ अक्षरको ह्रस्व–एक मात्रा हो। इस सूत्रमे ह्रस्व सुनकर परिभाषा सूत्र अचश्च आया। ऊको उ हुआ। भु भूव् अ इति दशाया (यद्यपि भवतेर से अ होनेवाला है, ही ह्रस्व सूत्र क्यो पढा? लुलावके लिए पढना ही था प्रसङ्गसे यही पढा। अत्रैव।

(८१) भवते–भू धातुके अभ्यासके उको अ हो लिट् परे। इकस्तिपौ धातुनिर्देश। भवते मे धातु अथमे श्तिप् है। तिप् नही। उसका भू धातो अथ (अत्र लोपो) अभ्यासस्य आया। (व्यथो) से लिट् आया। भू धातुको होनेवाला अकार अन्त्य अल् उके स्थानमे हुआ। (अभ्यास विकारके बाहर नानर्थकेऽलोन्त्यविधि) भ भू अ इति स्थिते। (८२) अभ्यासे झला (जश् झशि) आया। चसे जश् भी। अभ्यासमे झल् अक्षरको चर हो, जश् भी। कितने अशमे चर्त्व हो, कितने अशमे जश्, निर्णय सुनिये–झल्‌मे २४ अक्षर उसके तीन खण्ड झश् खय् शल्। शल्‌मे श ष स ह का शर्पूर्वाःखय। सूत्र से अभ्यासके शरका लोप कहेगे। अभ्यासमे हका कुहोश्चु होगा। शेष २० बचे, उनमे किसको चर हो किसको जश् हो तब बोले—झशा जश झश्= झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द इनके स्थानमे जश्=ज ब ग ड द हो। अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ वर्णके स्थानमे जश् हो। जिस वर्गका स्थानी हो उसी वर्गका

चर स्युर्जशश्च । झशा जश । खया चर । तत्रापि प्रकृति जशा प्रकृतिजश, प्रकृतिचरा प्रकृतिचर इति विवेक, आन्तरतम्यात् । (८३)असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२॥ इत ऊर्ध्वमापादपरिसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये

आदेश भी । प्रयोग सिद्धिके अनुसार । खया चर । खय=ख फ छ ठ थ च ट त व के स्थानमे चर हो । वर्गके प्रथम द्वितीय अक्षरको चर=च ट त क प य भी हो, जिस वर्गका स्थानी, उसी वर्गका आदेश । श ष स ह च क ट आदिके स्थानमे वे ही होगे । पजन्यवत् लक्षण प्रवर्तते-बादल आवश्यक अनावश्यक दोनो स्थलमे बरसते है ।

इसी आशयसे कहा–प्रकृति जशा प्रकृति जश, प्रकृति चरा प्रकृति चर । उक्त व्यवस्था क्यो ? अत आह-आन्तरतम्यात् । अतिशयेन अन्तर सदृश समानता अन्तरतम तस्य भाव आन्तरतम्य तस्मात् । भाव यह है कि झश् प्रत्याहारके अक्षरो का घोष सवारप्रयत्न समान है । तथा खय और चर्के अक्षरोका श्वास अघोष विवार प्रयत्न समान हैं । उन वर्गोके आदेशमे उन्ही वर्गोकी स्थानसमानताका नियामक है ।

प्रसङ्गमे अभ्यासके भको जश् 'ब' हुआ । बभूव बना शङ्का –वुकको असिद्धकर अचिश्नुधातु से उवड आदेश क्यो नही होता, वुक्की असिद्धिका सूत्र ।

(८३) असिद्धवत्–अत्र आभात् । इत उर्ध्वम इसके पश्चात् आभात्= पाद समाप्ति तक भसज्ञाके अधिकारमे सभी आभीय है । जितने कार्य हो सब असिद्ध हो जाय । छठे अध्यायके चतुर्थ पादका सूत्र है । आङ्का अभि विधि–समाप्ति पर्यन्त अर्थ । इमसे पाद परिसमाप्ति तक अर्थका लाभ । कहा से आरम्भ, इसी सूत्रसे । श्नान्न लोप से लेकर भी समाप्ति तक आभीय कार्य है, असिद्ध हो । परन्तु अत्र–पदसे अर्थ निकला कि आभीय आङ् मानकर वुक्, अच् मानकर उवड् समान(आधार निमित्त) कारणवाला कार्य होउसकी कर्तव्यतामे तदसिद्ध –वह आभीयसज्ञक कार्य असिद्ध हो । यथा एधि-सिप्को हि होनेपर, हि परे हन्तेर्ज' प्राप्त, हि परे उसको एत्व अभ्यास लोप भी प्राप्त, शाधिमे हिपरे शासको शा-भाव प्राप्त सभी आभीयसज्ञक है उसी हिको आधार मानकर–शाधिमे शा हो, हुझल्भ्यो हेर्धि, सूत्रसे हि को धि होना समानाश्रय है (समानोद्देश्यकत्वसमाननिमित्तकत्व समानाश्रयत्वम्) सबको असिद्धकर धि हुआ । सनाश्रय क्यो पढ़ा ? पपुष पा धातुसे लिट् क्वसु, द्वित्व अभ्यास ह्रस्व, द्वितीया बहुवचन शस् । पपा वस्के वको सम्प्रसारण आभीय है । आतो

सवसिद्ध स्यात् । इति वुकोऽसिद्धत्वादुवडि प्राप्ते । वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ । बभूव । बभूवतु । बभूवु । (८४) आर्द्धधातुकस्येड्वलादे ७।२।३५।। वलादेरार्धधातुकस्येडागम स्यात् । बभूविथ । बभूवथु । बभूव ।

लोप, आभीये कतव्ये असिद्ध । तब सम्प्रसारण । आलोपका आश्रय शस् नही, आभीये कतव्ये क्यो ? अभाजि राग । आभात् क्यो ? भाधिकार के पहले असिद्धि न हो ।

इस सूत्रसे वुक्को (जो आभीय है) असिद्धकर उवङ् प्राप्त था (वा०) वुक् और युट् उवङ् और यण्की दृष्टिमे क्रमश सिद्ध रहे । इसके बलसे वुक् सिद्ध रहा, उवङ् नही हुआ । गुण वृद्धिको बाधनेमे वुक् सफल रहा । बभूव । एक कर्तामे परोक्ष भूतकाल की भवन क्रिया अर्थ । बभूवतु. । उस क्रिया का यदि दो कर्ता हो । तब तस् स्थाने अतुस । बभूव बनानेकी व्यवस्था पूर्ववत् बभूव् अतुस् । स को रुवि । बभूवतु । उसी क्रियाके बहुत कर्ता हो तब झि, उसको परस्मैपदाना उस् । स को रु० वि० बभूवु । प्रथम पुरुषके कर्तामे परोक्षभूत कालकी क्रिया आसारजल बभूव। राम कृष्णौ मथुराया बभूवतु । सभाया सर्वे बभूवु ।

बभूविथ—उत्पन्न(भवन) क्रियावाचक भू को भूवादयो धातव से धातुसज्ञा परोक्ष अनद्यतन भूतकालिककर्तामे लिट् हो,क्रिया तुममे हो तब म०पु०ए०व० सिप्, तत्स्थाने परस्मैपदानासे थल्, भू+थ इस दशामे इट्।(८४) आर्धधातुकस्य वल.दे =वरट लणसे लेकर हल् तक के अक्षर आदिमे हो ऐसे आर्धधातुक सज्ञक प्रत्ययको इट आगम हो । भू थ । इस दशामे लिट् च से आर्धधातुकसज्ञा मध्यमपुरुष एकवचन सिप्के स्थाने थस् । जिसे वलादि मानकर इट् । आर्धधातुकसज्ञक सिप्के स्थाने थ को स्थानिवद्भावसे आर्धधातुकसज्ञा तब इट्का आगम भू+इथ। लिट् सम्बन्धी अच्परे मिल गया, तब भुवो वुक् हुआ। अब भूव् को द्वित्व, हलादिशेष, ह्रस्व, भवतेर इस प्रसङ्गमे इट् होनेपर ही वुक् होगा । त्व बभूविथ । त्व कर्तामे रहनेवाली परोक्षभूतकालकी क्रिया उसका आधार दो हो, युवा तब भू धातुसे लिट् थस-अथुस् वुक् । द्वित्व आदि से बभूव बना ले । युवा बभूवथु किं गुरो समीपम । गुरुके पास कब थे बहुवचनमे झि—उस् । यूय बभूव । अह कर्ता उक्त क्रियाका आधार हो तब अनद्यतन परोक्षभूतकाल अथमे लिट् । उसके स्थानमे मिप्, उसपर उत्तम पुरुष एकवचन णल्—अ । बभूव । हम दो हो चुके है । उत्तम पुरुष द्विवचन

बभूव। बभूविव। बभूविम। (२१८५) **अनद्यतने लुट्** ३।३।१५॥ भविष्यत नद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात। (८६) **स्यतासी लृलुटो** ३।१।३३॥ लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्। धातो स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटो परत। शबाद्यपवाद। (८७) **आर्धधातुक शेष** ३।४।११४॥ तिङशिद्भ्योऽन्यो धातो

वस,उसपर व आदेश। भू+वको आर्धधातुक मान्य। अत इट् आगम। भूइव अब वुक् द्वित्वादिकार्य पूर्ववत्। **बभूविव** हम दोनो पहले हो चुके। वयं कर्ता हो तब उत्तमपुरुषके मस्को म आदेश। कदा वय **बभूविम**=कब हमलोग हुए थे। लिट् प्रक्रियापूर्ण।

(२१८५) **अनद्यतने**। अधिकारसे धातु आया, गम्यादय से भविष्यति आया। अनद्यतन धात्वथमे जुडा। भविष्यकालकी अनद्यतन अर्थ मे वर्तमान क्रियावाचक धातुसे कर्तामे लुट् हो। अद्यतनका अर्थ **अतीतायाः रात्रेअर्धभागात् आगामिन्या रात्रेर्यावत्सहितो** दिवसोऽद्यतन। बीती आधी रातसे आगामी आधीरात तक अद्यतन हैं। कल परसो नरसो ह्य। परश्व परतरश्व सामान्य भविष्यको छोडकर जो भविष्यकाल (कालस्तुव्यापारे विशेषणम) उस क्रिया वाचक धातुसे लुट् हो। कल होऊगा, परसो रहूगा वष बाद पैदा होगा। यहा लुट् लकार ही होगा,वह क्रिया आजकी न हो कल परसो मास वर्ष विशेषण लगा हो या प्रतीत हो तब लुट्। उत्पत्तिफल जनक क्रिया अर्थ रहनेपर भू धातुको धातुसज्ञा। अनद्यतन भविष्यकालके कर्ता अर्थ मे लुट्, उट् इत्। ल शेष। तिप्। भू ति इनि दशाया कर्तामे शप् प्राप्त हुआ। (८६) स्यश्च तासिश्च द्वन्द्व प्रथमा दो वचन। लृ अनुबन्ध रहित है। **निरनुबन्ध ग्रहणे सामान्यग्रहणम्** लृ व्यापक लृङ् लृट् दोनो का स्मरण कारक, धातुका अधिकार। धातुसे लृ या लिट्को स्य और तास् क्रमसे हो। लृ और लुट परे शप् को बाधकर। यहा लु परे है अत तास् हुआ। आदिपद से अन्य विकरण श्यन् श्न श्न आदिका भी बाधक। स्य विकरण लृङ् और लृट्मे होगा। भू तास् ति। (८७) आर्धधातुक=तिङ् शित्सार्वधातुक सूत्रके तिङ् शित् कहे गये उससे अन्य प्रत्यय स्य तास् जो धातु से विधान किया गया है उनको आर्धधातुकसज्ञा हो। अर्धधातौ भवम् आर्धधातुक जो धातुके कुछ अशमे होता है। जुगुप्सते आदिमे गुप्तिकिद्भ्य से सन्। धातुका उच्चारणकर विधान नही किया गया, अत. न आर्धधातुकसज्ञा, न इट् हुआ, प्रसङ्गमे तास् न तिङ हैं न शित। किन्त धातसे विधान हआ है। उसको आर्धधातकसज्ञा

रिति विहितः प्रत्यय एतत्सञ्ज्ञः स्यात् । इट् ।(८८) लुट प्रथमस्य डारौरस २।४।८५।। डा, रौ, रस एते क्रमात्स्यु । डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोप । (८९) पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६।। पुगन्तस्य लघूपधस्य चाऽङ्गस्येको गुणः स्यात्सर्वधातुकार्धधातुकयो । येन नाऽव्यवधान तेन व्यवहितेऽपि, वचन-

हुई । जिसका फल बलादिमान कर तास को इट् (अनुबन्ध लोप) भू इ तास् ति । आर्धधातुक परे उ सो गुण ओ, अव् आदेश भवितास ति ।

(८८) लुट लुटके स्थानमे प्रथमस्य=प्रथम पुरुष तिप् तस् झिके स्थान मे डा रौ रस् आदेश क्रमसे हो । ति को डा, तस् को रौ, (झि रस्) डा रौ रस के बीच द्वन्द्व—प्रथमाबहुवचन । लुट स्थानषष्ठी । शङ्का—परस्मैपदके तीन आत्मनेपदके तीन प्रथम पुरुष मिलकर स्थानी हो गये, ६ । आदेश डा रौ रस् तीन है गणना क्रम कैसे ? डारौरश्च, डारौरश्चका एकशेष करके भाष्यमे समाधान, डा प्रत्यय नही, चुटू-प्रत्ययके आदिको इत करता है । अत अनेकाल मानकर सर्वादेश । भवितास् आ डित्वसामर्थ्यात्=आस डित् हुआ । कप्प्रत्यय तक स्वादि विभक्तिके न रहनेसे भसज्ञा नही होगी । तास्मे आस्का टिलोप कैसे ? तब कहा—डामे ड क्यो पढा ? उसकी इत्सज्ञा क्यो हुई इसके सामर्थ्यसे टिलोप होगा । स्पष्ट है कि जहा डित हो वहा बिना भसज्ञा के भी टिलोप हो । अन्यथा डित् व्यर्थ होगा । भवित् आ । इस स्थितिमे ।

(८९) पुगन्त—(मिदे) गुण आया । अङ्गस्यका अधिकार । अवयवषष्ठी । पुगन्त लघूपध दोनो अङ्गमे विशेषण । पुक् अन्तो यस्य तत्पुगन्त, लघ्वी उपधा यस्य तत् लघू पध पुगन्तश्च लघुपध च समाहार द्वन्द्वसे षष्ठी । इक उपस्थित हो, स्थान षष्ठी अन्त हुआ (अर्थ) पुक अन्तमे हो, लघु (ह्रस्व) उपधामें, ऐसे अङ्गके इक्को गुण हो, सार्वधातुक आर्धधातुकपरे रहे । अङ्गके अवयव इक्का उदाहरण—द्वेष्टि द्वेष्टा है । इस सूत्रसे इटको गुण प्राप्त हुआ । शङ्का-अङ्गका अवयव इक्को इट् हो,उसके ऊपर तास्का त हल् है इक् नहीं । उसके व्यव-धानसे सार्वधातुकपरे न मिलनेसे गुण प्राप्त नही, तब कहा—येन नाव्यवधान जिस निमित्तके वर्णका व्यवधान अनिवार्य है अवर्जनीय है । तेन व्यवहिते-ऽपि=उस अनिवार्य वर्णके व्यवधानमे भी कार्य होता है । ऐसा क्यो ? तब कहा—वचनप्रामाण्यात् सूत्रमे लघूपधके इटको गुणका विधान मानना प्रमाण है । क्योंकि अन्तमे अल् भवित्का त् है उसके उपधामे लघु है । इससे स्पष्ट है लघूपध अङ्गके अन्तमे एकवर्ण का व्वधान अनिवार्य है । अन्यथा ऐसे गुणका

प्रामाण्यात । तेन भिनत्तीत्यादावनेकव्यवहितस्येको न गुण । भवित् आ । अत्रे-को गुणे प्राप्ते । (२१९०) दीधीवेवीटाम् १।१।६।। दीधीवेव्योरिटश्च गुण वृद्धी न स्त । भविता । (९१) तासस्त्योर्लोप ७।४।५०।। तासेरस्तेश्च लोप स्यात्सादौ प्रत्यये परे । (९२) रि च ७।४।५१।। रादौ प्रत्यये प्राग्वत् ।। भवितारौ । भवितार । भवितासि । भवितास्थ । भवितास्थ । भवितास्मि ।

विषय असम्भव होगा । अत उसका व्यवधान सह्य है। पुन शङ्का व्यवधान मे इत्को गुण करेगे तब भिनत्ति छिनत्ति आदिमे इकार को गुण हो जाय, तब कहा तेन-भिनत्ति आदिमे अनेकवर्णका व्यवधान ह । उनके इक् को गुण नही होगा । क्योकि उपधासज्ञामे अवर्जनीय व्यवधान एकवर्ण सह्य है । अनेक का व्यवधान आदरणीय नही है । भवित् आ स्थितिमे स्थानिवद्भाव से डाके आमे सार्वधातुक मानकर इटके इ को गुण प्राप्त, अङ्गसज्ञा । सूत्रमे तदादि पढनेसे विकरण भी अङ्ग विशिष्ट हे । गुण-निषेध सूत्र ।

(२१९०) दीधीङ्च वेवीङ्च, इट च द्वन्द्वसे षष्ठी ।(इको) गुणवृद्धी और न (धातुलोप) आये । दीधीङ (दीप्ति देवनयो , वेवीङ वेतिना तुल्ये) और इट्को गुणवृद्धि न हो । भविता । अद्यभिन्न भविष्यकालकी क्रियाका यदि दो कर्ता हो छात्रौ सभायां भवितारौ तब भवनार्थक भूसे अनद्यतनभविष्यकालिक क्रियाके कर्ता अर्थमे लुट । प्रथम पु० द्विवचन तस । शप्को बाधकर । स्य-तासी—सूत्रसे तास् । जिसको आर्धधातुक शेष , आर्धधातुकसज्ञा । वलादि देख कर इट् । भूमे उको गुण, अवादेश । तस् स्थाने रौ। भवितास रौ स्थितिमे ।

(९१) तास् और अस्के अन्त्य अलका लोप हो । ताश्च अस्तिश्च द्वन्द्वसे षष्ठी । तदादिविधि । स स्याद्धंसे सि आया । धातुका सूचक श्तिप है तिप् नही । उदाहरण भवितासि है । प्रसङ्गमे रादि है सादि नही अत--

(९२) रि च रकारादि प्रत्यय परे तास के अन्त्य अल् स का लोप हो अङ्गसे आक्षिप्तप्रत्ययमे विशेषण । टि—तदादिविधि । इस सूत्रमे तास् आया, अस्ति नही । उससे रादि असम्भव है आर्धधातुकमे भू से विधान हुए रौ परे तास का स लुप्त । भवितारौ मन्त्रणा उत्सवश्च । अद्यभिन्न भविष्यकालके क्रियाका अनेक आधार हो तब कर्तामे लुट् झि । उसको रस् । अन्त्यकार्य पूर्व-वत् । रस्के स को रु० वि० । तस्मिन् उत्सवे छात्रा भवितार । श्व पर-श्व परतरश्व होनेवाली क्रियाका त्व युवा यूय तुम, तुमदोनो, तुम लोग आधार हो क्रमसे सिप् थस् थ, तास्,इट गुण अवादेश,मकारलोप रुवि ।यथा

भवितास्व । भवितास्म (९३)लृट् शेषे च ३।३।१३।। भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात्क्रियार्थायां क्रियायामसत्यां सत्यां च । स्य इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्याव

योग्य । त्वं पाठशालायां परश्वः भवितासि । युवां भवितास्थः, यूयं भवितास्थ, वही क्रिया हम, हमदोनो, हमलोगोमे हो तब भू-से मिप् वस् मस् तास् इट् गुणादेश रु० वि० । यथायोग्य हो । अहं परदिने भवितास्मि, आवां मासान्तरे भवितास्वः, वयं सभायां भवितास्मः । अनेककर्तृक अनद्यतन भविष्यकालिक उपस्थिति क्रिया । (९३) लृट् शेषे च-सामान्य भविष्य अर्थ वाचक धातुसे लृट् लकार हो, क्रियार्थी=क्रियाके लिये क्रिया 'सत्या'-रहे या न रहे । शेषका अर्थ उक्तादन्य शेषः जो कहा गया है उससे अवशिष्ट शेष । तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । अर्थ निर्देश है, उससे भिन्न शेष है । शेषकी आवृत्ति करेंगे एक शेषमे भविष्यति (गम्यादयः) आया, धात्वर्थ क्रिया मे जुडा उसका अर्थ उक्तादन्य शेष के अनुरोधसे अनद्यतन भविष्य अर्थ खुला । द्वितीय शेषपदसे क्रियार्थी क्रियाका अध्याहार । इससे क्रियार्थायां क्रियायाम् असत्याम् अर्थ निकला, च पढनेसे क्रियार्थायां क्रियायां सत्याम् यहभी निकला, शयिष्यते स्थीयते इत्यादि । भाव कर्ता कर्ममें तुमुन्ण्वुलसे लृट् बाधा न जाय अतः शेष पढा । वा स्वरूपविधि क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु नास्ति । कल परसो मास वर्ष आदिसे बँधा समय न हो, वह भविष्य कालकी क्रियावाचक धातुसे लृट् हो क्रियाके लिए क्रिया हो या न हो । दूसरी क्रिया करनी पड या न पडे वहां लृट् । पठितुं गमिष्यति पढनेके लिए जाता है । गमनक्रिया पठन क्रियाके लिए है, क्रियार्थी हुई । वह तुमुन्की क्रिया रहे,या न रहे । पठिष्यति गमिष्यति भी होगा ।

भविष्यति—सामान्यभविष्यकालकी (पैदा होना) क्रियावाचक अतएव धातुसंज्ञक भू-धातुसे भविष्यकाले कर्ता अर्थमे लृट् हो । अनुबन्धलोप । लस्थाने प्रथम पु० एकवचन तिप् । स्यतासीसे स्य, उसको आर्धधातुक शेष से आर्ध धातुकसंज्ञा जिसकाफल वलादि स्यको इट् होना और गुण(आर्धधातुकपरे मान के) अव् आदेश । उक्त क्रियाका दो आधार(कर्ता)हो वहां आत्मधारणार्थकसे द्वि वचन तस—स्य—इट् गुणादि पूर्ववत् । सको रुवि० भविष्यतः । विश्वके अनेक कर्ता उक्त क्रिया और फलका आधार हो तब बहुवचन झि, झको अन्त आदेश भविष्यन्ति शिष्याः । यदि सामान्य भविष्य कालकी क्रिया फलका आधार

भविष्यामः। (९४)लोट् च ३।३।१६२॥ विध्यादिष्वर्थेषु धातो र्लोट् स्यात्॥
(२१९५) आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३॥ (९६) एरुः ३।४।८६॥

त्व यूवा यूय (तुम तुमदोनो तुमलोग) हो तब क्रमसे म० पु० का सिप् थस् थ हो। स्य–इट् गुण आदि तथा। भविष्यसि भविष्यथ आदि। वही क्रिया अहम आवा वयमे हो तब उत्तम पु० मिप् वस् मस क्रमसे होकर अहं भविष्यामि मैं उपस्थित रहूंगा, आवा विद्यालये भविष्य वः। वय सभाया भविष्याम। राम कदा भविष्यति अत्रैव। अद्य पठिष्यामि। अद्य विशेषण है लृट् हुआ। अनद्यतन भविष्य होनेसे अथवा कल परसो नरसो मास वर्ष विशेषण रहे तब लुट् लकार शुद्ध, लृट अशुद्धक। ध्यान रखे। भविष्यामिमे अतो दीर्घो यञि से दीर्घ। इति लृट् प्रक्रिया।

अथ लोट्प्रक्रिया—(९४) लोट च। विध्यादि=विधि प्रेरणा आज्ञा देना सेवकों शिष्यो निकृष्ट छोटे लोगोको कार्यमे प्रेरित करना। निमन्त्रण-श्राद्ध भोजन उत्सव आदिमे अवश्य आनेका आग्रह करना। आमन्त्रण आनेका आग्रह करना इच्छा पर निर्भर (आये या न आयें) अधीष्ट–स्वागत सत्कार। सम्प्रश्न–एकको म पूराकर दूसरे कामके लिए पूछना। प्रार्थना आदि करना हो तब धातुसे लोट् लकार हो। चकार सभी अर्थका सग्राहक है। लिङ्लकारमे विशेष व्याख्यान होगा।

(२१९५) आशिषि=आशासनम् आशी, इष्ट प्राप्तीच्छा, आशीर्वाद अर्थ कहना हो तब कर्तामे लिङ् लोट् दोनो लकारोका प्रयोग हो। अप्राप्त पुत्र आदिकी प्राप्ति–इच्छा, शुभकामना प्रदान आशीर्वाद है। यथा ते पुत्र भवतु तुझे पुत्र हो। अप्राप्त पुत्रप्राप्तिकी शुभ कामना। लङ् का अर्थ। हे हनुमन् त्वयि भक्तिर्भवतु—इति सीताया शुभकामना। अलब्ध लाभके लिए शुभ कामना अर्थ। पैदा होना क्रियावाचक भू धातुसे आशीर्वाद या आज्ञा प्रेरणा कालका आधार कर्ता अर्थमे लोट्, ओट् इत्। ल शेष। उसके स्थानमे तिप्को सार्वधातुकसञ्ज्ञा। कर्तामे शप् उसकोभी सार्वधातुकसञ्ज्ञा। भू अति इस दशामे सार्वधातुक परे भू–ऊ को गुण-ओ अवादेश। भवति-लट्के समान बना। तब विशेषता बोले– (९६) एः उ षष्ठी अन्त ए का इकार अर्थ। लोट् लकार सम्बन्धी इके स्थानमे उ हो। भवतिका ति लोट् स्थानमे आया। इसके इको उ हुआ। भवतु बना। इसमे भूप्रकृति उसका अर्थ पैदा होना क्रिया है। आज्ञा प्रेरणा स्वागत सत्कार आशीर्वाद तुका अर्थ, सभी प्रक्रियायें इन्ही अर्थो

लोट् इकारस्य उः स्यात। भवतु ।(९७) तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५।। आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेश । यद्यपि ङिच्च इत्ययमपवादस्तथाप्यनन्यार्थङित्त्वेष्वनङादिषु चरितार्थं इति गुणवृद्धि-

---

की पोषिका है। प्राय आशीर्वाद अर्थमे लोट भवतु। प्रथम, मध्यम पुरुषके एकवचनका विधिसूत्र जिसका आशीर्वादमात्र अर्थ है।

(९७) तुह्यो –तुश्च हिश्च तुही तयो। आशिषि=आशीर्वाद शुभकामना प्रदान अर्थमे तु,हिके स्थानने तातङ् आदेश विकल्पसे हो अन्यतरस्या=किसी अन्य आचार्यके मनमे। एषु अन्या अन्यतरा तस्याम्। ङ इत् अ–उचा०। तात् शेष। जिसका विशेष अर्थ आशीर्वाद भवतात्। विकल्प पक्षमे भवतु का 'तु' सभी पूर्वोक्त अर्थका प्रकाशक है। भूयात भवानीविश्वनाथयो। भवतात् कन्या सावित्री भूयात्। शङ्का–तातङ् ङित् है। ङिच्च सूत्रसे अन्त्य अल् तु मे उ को तातङ् प्राप्त हुआ, परन्तु अनेक अल् अनेकाल्शित्सर्वस्य (परशास्त्र होनेसे) प्रबल पडा। सम्पूर्ण तु के स्थानेमें तातङ् हुआ। तुल्यबल विरोधे पर कार्यम् का इष्ट कायम अर्थ है। जिससे प्रयोग सिद्ध हो वही कार्य करें। मूलमे अनेकाल्शित्से सर्वादेश (अनेक अल् मानकर) सम्पूर्ण तु को तातङ् कहा। ङित् मानकर उ को आदेश होना कहा, कि—ङिच्च सूत्र सर्वादेशका अपवाद है। निरकाशो विधि अपवाद। जैसे अनङ् आदि अन्त्य अल्के स्थानमे होते है। उसी तरह तातङ् भी अन्त्य अल् उ स्थाने होना उचित है। तब मूलमेकहा यद्यपि–ङिच्च सूत्र अपवाद–अनेकाल्सूत्रका बाधक है। अन्त्य उको आदेश क्यो नहीं ? समाधान तथापि-अनन्यार्थङित्वेषु न अन्यो अर्थ अनन्यार्थ ऐसे ङित्स्थलमे(अनङ आदि आदेश)ङित्–चरितार्थ है। उसकी शक्ति गुण वृद्धि प्रतिषेध सम्प्रसारण आदि स्थलमे उपयोग होनेसे क्षीण हुई। उत्साह घट गया। तातङ्की तरफ मन्थर प्रवृत्त धीरे धीरे बढा तब परेण बाध्यते–अनेकाल्शित्सर्वस्यसे बाधा गया। यहा उत्सर्ग, अपवाद समानबल हो गये। यद्यपि परनित्यान्तरङ्गापवादनामुत्तरोत्तरबलीय.। परशास्त्रसे अपवाद शास्त्र ङिच्च बलवान है। अत उको तातङ होना उचित। तब कहा मन्थर प्रवृत्त धीरे धीरे पहुचा, अतः ङिच्च सर्वादेशसे बाधा गया। मन्दप्रवृत्ति क्यो हुई ? तब कहा अनन्यार्थ-अनङ् आदेश वास्ते था अन्यार्थो न विद्यते यस्य स. अनन्यार्थ अनङ् आदि स्थानमे ङिच्च सफल है लब्ध प्रयोजन। जोश ढल गया

प्रतिषेधसम्प्रसारणाद्यर्थतया सम्भवत्प्रयोजनङ्कारे तातङि मन्थर प्रवृत्त परेण बाध्यते । इहोत्सर्गापवादयोरपि समबलत्वात् । भवतात । (९८) **लोटो लङ्वत् ३।४।८५।।** लोटो लङ् इव कार्य स्यात् । तेन तामादय सलोपश्च । तथा हि । (९९) **तस्थस्थमिपा तात ताम ३।४।१०१।।** ङितश्चतुर्णां नेषा तामादय । क्रमात्स्यु । (२२००) **नित्यङित ३।४।९९।।** सकारान्तस्य ङिदुत्त

अत मन्दप्रवृत्त धीरे धीरे पहुचा। तातङ् का ङित् अन्त्यादेशके अतिरिक्त किसी अन्य कामके लिए नही है। अत कहा सम्भवत्प्रयोजन=सम्भवन्ति प्रयोजनानि अन्यानि यस्य स । ऐसा ङकार तातङ् है। सम्यक् प्रयोजन कैसे ? गुणवृद्धि प्रतिषेध सम्प्रसारण आदि के उद्देश्यसे। गुणनिषेध -ब्रूतात् तातङ् हुआ, ङित्से उतोवृद्धिर्लुकि हलिसे प्राप्त वृद्धिका निषेध । वश कान्तौ से बना उष्टात्-यहा पर ग्रहिज्यावयि—से सम्प्रसारण । आदिसे स्तात्मे ब्रुव ईटि के ईटका अभाव आदि फल है। यदि ऐसा तातङ् स्थलमे ङिच्च न लगे तथापि परनित्यान्तरङ्गापवादाना—न्यायसे पर होकर भी सर्वादेशका बाधक ङिच्चका होना उचित है। तब बोले—इह उत्सर्गापवादयो=तातङ् स्थलमे उत्सर्ग=सामान्यसूत्र अनेकाल्शित्सर्वस्यका और ङिच्च (विशेष) अपवादसूत्र समबल=तुल्यबल होनेसे सामान्यशास्त्र विशेषशास्त्रेण बाध्यते। भाष्य मे ङित्वस्य सावकाशत्वान् विप्रतिषेधात् तातङ् (सर्वादेश) भवतात् ।

(९८) लोटो- लङ इव लङवत्(तत्र तस्येव षष्ठयन्तसे वति)लोट्के स्थान मे लङ्की तरह कार्य हो। जैसे लङ्के स्थानमे तस्को ताम् और सकारलोप आदिकी तरह लोट्मे भी लङ्के स्थानिवत्कार्यका अतिदेश(धर्मका आरोप)तस् को ताम आदि। लङ्परे लङ् निमित्तक अट् आगम का आरोप नही करता। तथाहि तामादय सलोपश्च ज्ञानके लिए स्पष्ट बोले—

(९९) तस् थस् थ मिप् (के बीच द्वन्द्व । षष्ठी बहुवचन) को क्रमसे ता त त अम् आदेश हो। यहा भी द्वन्द्व। (नित्य) ङित आया। अत ङितश्च तुर्णाम् ङित् लकारके स्थानमे हुए चार आदेशको तामादय आदेश हो तस् को ताम्, थस्-तम्, थ त मिप्—अम् यथासख्य-गणना क्रमसे हो। सकारलोप का विधायक सूत्र।

(२२००) नित्य सकारान्त हो, ङित् लकारके उत्तम पुरुष का सलोप हो। यद्यपि यह सूत्र उत्तमपुरुषमे प्रसङ्गसे उपस्थित किया गया। इस सूत्रमे (स उत्तमस्य आया) इतश्चसे लोप भी। ङित मे षष्ठी देखकर अन्त्य अल् स

मस्य नित्य लोप स्यात् ।* 'अलोऽन्त्यस्य' इति सस्य लोप । भवताम । भवन्तु । (२२०१) सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७॥लोट सेर्हि स्या सोऽपिच्च ।२२०२ अतो हेः ६।४।१०५॥ अत परस्य हेर्लुक्स्यात् । भव । भवतान । भवतम् । भवत । (२२०३) मेर्नि ३।४।८९॥ लोटो 'नि स्यत । (२२०४)आडुत्त

का लोप होगा । वैतोन्यत्र से वा को रोकनेके लिए नित्य पढा । भवताम् होना क्रिया अर्थक भु धातु से आज्ञा प्रेरणा आशी सत्कार अर्थके कर्तामे लोट् । दो कर्ता हो । तब प्रथम पु० का द्विवचन तस् । लोट्को लङ्की तरह कार्य हो । अत तस्थस्थमिपा-सूत्रसे तस् को ताम् हुआ । शप् गुण अवादेश पूर्ववत भवताम् । उत्पन्न होनेकी क्रियाके लिए प्रेरणा आज्ञा आदिका विषय बहुत हो, भूधातो झि,झको अन्त आदेश । एरु से इको उ । पररूप भवन्तु । प्रेरणासत्कारविषयिण' सन्तु । यदि उत्पन्न होने क्रियाका आधार त्व कर्ता हो तब भूधातुसे प्रेरणा आदि अर्थमे लोट्के स्थानमे सिप् । अन्त्य पका लोप, कर्तरि शप्–अ, गुणादि पूर्ववत् भवसि । सिको हिका विधिसूत्र ।

(२२०१) से हि (लुप्त प्रथमा) लङ्वत् से लोट् आया । लोट्के स्थानमे हुए सिको हि लादेश हो, वह अपिच्च=पित् न माना जाय, ताकि ङित् बना रहे । स्तुहि आदिमे क्ङिति च से गुण निषेध हो सके । प्रसङ्गमे अपित् होने का फल नही । आशीर्वाद अर्थ सुनना हो । तब सम्पूर्ण हिके स्थानमे तातङ् आदेश हुआ । भवतात् । जब तातङ् नही तब हिके लुक्का सूत्र । भव हि दशामे । (२२०२) अतो-अदन्त अङ्गसे परे हि का लुक् हो । जहा जहा अदन्त अङ्ग हो वहा वहा हिका लुक् । इससे सिद्ध है, देहि स्तुहिमे हि बना रहा, भवसे हि का लुक् हुआ । तब जहि मे अदन्त है परन्तु हि का लुक् नही होता असिद्धवदत्राभात्की कृपासे अदन्त अदृश्य । भव उपस्थित रहा । आशीर्वाद अर्थमे अतो हे के लुक्को परत्वात् बाधकर तातङ् भवतात् । सत्ता नुकूल क्रियाके प्रेरणा आदिका विषय युवा (तुम दोनो आधार) हो तो मध्यम पु० द्विवचन थस् शप्गुण अवादि । भव थस् स्थितिमे लोट्को लङ्वत् आरोप तस्थस्थमिपा सूत्रसे थस्को तम् आदेश । भवतम् । यूय सभी प्रेरणाका विषय हो तब थ को त पूर्ववत् । भवत । भवानि । जब उक्त क्रियाकी प्रेरणा का विषय स्वय हो आत्मधारणार्थक भू धातुसे प्रेरणा अर्थे कर्तरि लोट्, उत्तम पु० मिप् शप् गुणादि भव मि । मिप् को अम् आदेश प्राप्त था उसका बाधक विधायक सूत्र । (२२०३) मेर्नि –लोट् आया । लोट्के स्थानमे हुए मि

मस्य पिच्च ३।४।९२॥ लोडुत्तमस्याडागम. स्यात्स पिच्च। हिन्योरुत्व न। इकारोच्चारणासामर्थ्यात्। भवानि। भवाव। भवाम। ।२२०५। **अनद्यतने लङ्** ३।२।१११॥ अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्। ।२२०६। **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** ६।४।७१॥ एषु परेष्वङ्गस्याडागम स्यात्, स चोदात्तः। ।२२०७। **इतश्च** ३।४।१००॥ ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्त यत्तदन्तस्य

को नि आदेश हो। भव नि इनि स्थिते। (२२०४) आट् उतमस्य-लोट् लकारके उत्तम पुरुष मिप वस् मस् को आट् आगम हो, वह आट् पित् हो, जिससे सार्वधातुकमपित्से ङित्का न होना। जो पित् है ङित् नही जो ङित् है पित् नही। ट इनका फल आद्यन्तौसे आदिका अवयव होना। अपित्का फल ङित् होना। क्ङिति च से गुणनिषेध हो। सवर्णदीर्घ। भवानि अहम। मै उपस्थित हो जाऊ। यहा प्रेरणाका विषय स्वय बना। हिन्यो.=लोट सम्बन्धी हि और निके इ को एरु से उत्व नही होता, इकार उच्चारणके सामर्थ्यसे। यदि उत्व होता। तो नि पढना व्यर्थ होता वही इकारच्चोरा-हिन्यो ऊत्व न। भवानि मे अतो दीर्घो यञि से दीर्घ होता है। आट् क्यो किया। स्तव।नि-जहा अतो दीर्घो यञि नही लगसकता वहाके लिए आवश्यक था ही, यहा भी पढ दिया। वस मस् होनेपर आट् आगम, भव आ वस्। सवर्णदीर्घ लङ् भावसे नित्य ङित से वस्के सका लोप। भवाव, भवाम।

(२२०५) अनद्यतने=धातु और भूतकालका अधिकार। अनद्यतन भी धातुके अर्थ क्रियामे जुडा। आजकी समाप्ति क्रियासे भिन्नभूत अर्थात् अनद्यतन भूतकालकी क्रियावाचक धातुसे लङ् हो। गत आधीरातके पहले की क्रिया हो, इसका सूचक ह्य बीता कल, परह्य बीता परसो, परतह्य ऐसे कालकी क्रियाके प्रयोगमे लङ्लकार शुद्ध है। (२२०६) लुङ् लङ् लृङ् परे अधिकारसे आये। अङ्गको अट आगम हो वह उदात्त मान्य। टित है आदिमे होगा। टकितौ आद्यन्तौ भवत। परन्तु अट् को बाधकर अन्तरङ्ग-तिप् पर होनेसे तिप् शप् गुण अवादेश हुए,विकरण सहित अङ्ग भवको अट् आया लावस्थायाम् अट् यह भी एक पक्ष है। जब 'ल' तब अट् होना मान्य।

अभवत्-उत्पत्ति क्रियावाचक भूधातुसे अनद्यतन समाप्ति क्रिया कालिक कर्ता अर्थमे लङ्। लुङ् लङ् लृङ् सूत्रमे अट्। ल स्थाने ति, शप् गुण अवादेश, अभवति टित होनेसे आदिमे अट् हुआ। तिमे इका इतश्च लोप।

(२२०७) ङित् लुङ् लङ् लृ लिङ्के ल के स्थानमे हुए परस्मैपद इका-

लोप स्यात् । अभवत । अभवताम् । अभवन् । अभव । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ।२२०८। विधिनिमन्त्रणा मन्त्रणाऽधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१।। एष्वर्थेषु द्योत्येषु वाच्येषु वा

रान्त (ति) का लोप हो । अन्त्य अल् इ का लोप हुआ । अभवत् । बीते भूत कालकी क्रियाके दो कर्ता हो भूधातुसे लङ् । द्विवचन तस्–भू तस । तस्को ताम तस्थस्थमिपासे । अट् शप् गुणआदि । अभवताम् अभवन् । उक्त क्रिया के अनेक कर्ता हो भूधातुसे लङ् अट् झि शप् गुण अव आदि । अभवन्ति तब इतश्च से इकारलोप, तकारका सयोगान्त लोप । अभवन् । अनद्यतन भूत कालिक भवन क्रियाका आधार त्व युवा यूय कर्ता हो, भू धातुसे सिप् थस थ । क्रमसे हुए । शप् आदि पूर्ववत् । अभवसि इतश्च इकार लोप । स को रुवि० । अभव ,युवा अभवतम् । थस् थको क्रमसे तम् त आदेश अभवतम् । उत्तम पुरुष अहम् आवा वय कर्ता हो उसमे अद्यभिन्न भूतकालकी क्रिया हो, तब मिप् वस् मस् । अट शप् गुण अवादेश । मिप्को अम् हुआ । अट भी अभवम् । वस् मस् परे नित्य ङित से सकारलोप । अभावव । दोनो पहले उपस्थित थे । अतो दीर्घो यञिसे दीर्घ । अभवाम इति लङ् प्रक्रिया ।

अथ लिङ् प्रक्रिया—(२२०८) विधि निमन्त्रण आदि क्रियाके कर्ता अर्थ वाचक या प्रकाशक लिङ् हो । वाच्य या प्रकाश्य दोनो पक्ष है । परन्तु विधि आदि अर्थ लिङ्के वाच्य अर्थ कैसे कहा ? जैसे ल कर्मणि च भावे । सूत्रमे कर्ता कर्म क्रिया को लकारका वाच्य अर्थ माना गया । यदि प्रेरणादि वाच्य है तब उनको द्योत्य क्यो कहा ? यजेत इत्यादिमे कर्ता आदि अर्थ वाच्य नही रहेगा तब शप् आदि नही होगे, तब कहा द्योत्येषु–उक्तभाव सुननेके लिए । ल कर्मणिको अलग मानना पडेगा । जब ल कर्मणि च सूत्रका विधि निमन्त्रणके साथ कोई विरोध नही । अतः बाध्य बाधक भी नही होगे । विधि आदि क्रियासहित कर्ता अर्थमे लिङ् फलित हुआ । अत कहा वाच्येषु । भाष्य सम्मत अर्थ सुनाते है । शब्दार्थ विधि –प्रेरण । विपूर्वक धा धातुका प्रेरणा सेवकों को आदेश देना भृत्य–नौकर मजदूर निकृष्ट–छोटोको कार्यमे लगाना, भवान् वस्त्र प्रक्षालय इति स्वामी भृत्य वदति । भो बालक इह भुञ्जीत । भो शिष्या यूय विद्यालये पठेत । भो पाचक तण्डुल पच । यूय ओदन पचेत । यहा चावल पकावो । अहरह सन्ध्याम् उपासीत् । प्रति दिन सध्या करो, गुरु शुश्रूषा सन्ध्या च कुर्यात् अन्यथा पाप भवेत । विधिके

लिड स्यात्। विधि प्रेरणम्, भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। निमन्त्रण—नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादे प्रवर्तनम्। आमन्त्रण—कामचारानुज्ञा। अधीष्ट सत्कारपूर्वको व्यापार। 'प्रवर्तनाया लिङ्' इत्येव सुवचम्।

अर्थको निमन्त्रणके अर्थसे अलग करनेके लिए भृत्यादय निकृष्ट-कहा—दोनो मे प्रेरणा होनेसे पुनरुक्ति न होनेके लिए। आदि=विधि निमन्त्रणम् नियोग कार्यके लिए आग्रह पूर्वक काममे लगाना, भाई बन्धु या श्रेष्ठ जनको सम्मान पूर्वक निश्चित रूपसे लगायें। नियो। और प्रेरणाके मध्य एक अर्थका भ्रम भगानेके लिए कहा—आवश्यके श्राद्धभोजनादौ=अत्यन्त आवश्यक श्राद्धका भोजन आदिमे पवित्र दौहित्र नत्ता (पुत्रीका पुत्र नाति) को भोजनमे लगाना। त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्र कुतप तिल। श्राद्ध भोजनमे नाती भाञ्जा आदि। भो नप्त, भो भागिनेय, इह श्राद्धे भवान् भुञ्जीत। ऐमा आग्रह करना निन्त्रण। भो आचार्य भो पुरोहित ! परश्वः भाविनि उत्सवे भवन्त आगच्छेयु आगच्छन्तु, त्वम् आगच्छ। विवाहादिमङ्गल कार्यमे सभी श्रेष्ठजन कल मेरे उत्सवमे अवश्य पधारे, निमन्त्रण है जिसका अन्तर आमन्त्रणके अर्थसे करनेके लिए कहा—कामचारानुज्ञा=यथेच्छ क्रियतामित्यनुज्ञा, इसप्रेरणामे प्रेर्यमाण व्यक्तिको स्वतन्त्रता रहती है अवकाशश्चेत् इच्छा चेत् अवश्य आगच्छ, यूय आगच्छेत। निमन्त्रणमे ठोस प्रेरणा, आमन्त्रणमे इच्छाधीन कम दवाव, हलकी प्रेरणा। व्यक्ति उस आज्ञाको माने या न माने इच्छा पर निर्भर, लिङ् लोट् दोनोका प्रयोग। इह आसीन। भवान्मम विवाह महोत्सवे आगच्छतु आगच्छेत् वा। प्रीति भोजमे पधारे यह अनुरोध है आग्रह नही। अधीष्ट सत्कृत्य प्रवर्तन सत्कार पूर्वको व्यापार स्वागत, समादर से समीचीन कार्यमे लगाना। अधिपूर्वक इच्छार्थक इषधातुसे भावमे क्त किन्तु उपसर्ग बलसे अधीष्ट का स्वागतसत्कारपूवक क्रिया अर्थ। भाष्यप्रयोग मे पुलिङ्ग भी। अधीष्ट भी पाठ है। यह प्रेरणा पूज्य लोगोके प्रति होती है। सम्मानसे कार्यमे प्रेरित करना, भवान् पुत्रमध्यापयेत। शिष्यान् पाठयेयु पूज्य गुरुजनोको भवान् श्रीमान् विद्वान कहकर मेरे बच्चेको पढाये। मेरा यज्ञ कराये, सत्कार पूर्विका अध्यापना अर्थे लिङ्। स्वागत सत्कारकी चेष्टा हाव भाव समादरका प्रदर्शन अर्थ। सम्प्रश्न—इद कार्यं न वा इति निश्चायिका जिज्ञासा, उचितानुचित निर्णयके लिए प्रेरणा=परामर्श लेना, भो वेदमधीयीय वा तर्कम् वेद पढू या न्याय। कि भो व्याकरण भवान् अधीयीत वा

चतुर्णां पृथगुपादानं प्रपञ्चार्थम्। (२२०९) **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥** लिङः परस्मैपदानां यासुडागमः स्यात्स चोदात्तो

मीमांसाम्। निश्चयके लिए सलाह लेना प्रेरणा है। प्रार्थनं याच्ञा भवन् अन्नमें दद्यात् आप मुझे अन्न दें। पुस्तकं लभेय भोजनं च। पुस्तक ले भोजन भी। ६ प्रेरणायें क्रियारूप है, ये कर्तामे लक्षित हो तब धातुसे लिङ्।

परन्तु सभी क्रियायोमे प्रवृत्ति=काममे लग नेकी चेष्टा अनुस्यूत गुथी है क्योंकि प्रवृत्त्यनुकूलव्यापारः प्रवर्तना। प्रवृत्ति शिष्यादिनिष्ठा काम मे लगना क्रिया शिष्यमे, उसके अनुकूल प्रेरणा क्रिया प्रवर्तयिता गुरु आदिमे। अतः संक्षिप्त सूत्र–प्रवर्तनायां लिङ् पढना सुन्दर वचन होगा। चतुर्णाम्= विधि निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट=इन चारोंका अलग अलग पढा जाना चारोंके विषयको स्पष्ट ज्ञानार्थ है।

(२२०९) यासुट्–लिङ्के स्थानमे हुए परस्मैपद तिप् तस् झि आदिको यासुट्=यास् आगम, वह उदात्त और ङित् भी हो। ङितका फल गुणनिषेध, टित्का फल तिप्का आदि अवयव होना। वह ङित् भी हो जाय। लिङ् सी-युट्से लिङ् आया। सीयुट्का बाधक यासुट, अवयवको ङित् होना अनर्थक है। आनर्थक्यात्तदङ्गेषु न्यायसे समुदायको आगम होगा। आगम सहित तिपमे ङित् रहेगा, आगमा अनुदात्ताः। नियमसे यासुट् अनुदात्त हो रहा था कि उदात्त पढा। यासुट्को ङित् होनेका फल स्तूयात् आदिमे गुणादि निषेध। शङ्का-यदागम परिभाषासे यासुडागम परस्मैपद लिङ्का अवयव है जो तिङ् लिङ्के स्थानमे हुआ है लिङ्का ङित् स्थानिवद्भावसे यासुट् सहिततिमे आयेगा। यासुट्को ङित् होना अनावश्यक। न कहियेकि स्थानिवद्भाव नही होगा। स्थानी लिङ्का ङ अन् हे उसका इत् ङित् मानकर गुण निषेधकी दशामे अनल्विधौ स्थानिवद्भावका निषेध करेगा। लिङका ङित् यासुट्मे नही आयेगा। अतः ङित पाठ सफल। परन्तु अनल्विधौ अनुबन्ध कार्यमे नही लगता। ङ अनुबन्ध है, ङित् कार्य गुणनिषेध है। प्रमाण देते है कि घुमा-स्थागापाजहातिसां–हल्नि ङित् परे ईत्व करता है। उसका न ल्यपिसे निषेध होता है वहा भी स्थानिवदभावका निषेध होने से ङित् नही रहेगा। ईत्व प्राप्ति नही, न ल्यपि निषेध व्यर्थ। वही ज्ञापन किया कि अनुबन्धकार्यं मे अनल्विधौ निषेध नहीं करता। यहाँ भी निषेध नही करेगा। ङित् आयेगा, पुनः ङित पाठ व्यर्थ होकर रास्ता निकाला कि क्वचित् अनुबन्धकार्येऽपि

डिच्च । डित्वोक्तेर्ज्ञायते क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति प्रतिषेध' इति श्न शानच शित्त्वमपीह लिङ्गम् । (२२१०) सुट्तिथो ३।४।१०७।। लिङ-स्तकारथकारयो सुट् स्यात् । सुटा यासुट न बाध्यते । लिङो यासुट् तकारथ-कारयो सुडिति विषयभेदात । (११) लिङ सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९।।

कही अनुबन्धके कारण काय होता हो अनल्विधोस निषेध होता है। स्थ नि-वद्भावका निषेध हुआ । लिङ्का डित् नही आयेगा, डिन्का पाठ सफल । न च उक्तज्ञापन यासुट्का डित् नही कर सकता । वह तिप् सिप् मिप्के साथ यासुट्के डित् होने के लिए आवश्यक है व्यर्थ नही ज्ञापक कैसे ? लिङ् स्थाने आदेश होनेपर भी स्थानिवद्भावसे तिप सिप् मिप् डित् नही हो सकता क्यो कि वे पित् है । पिच्च डिन्न डिच्च पिन्न भाष्य प्रमाणसे जो पित् है डित् नही अतः उसके लिए डित् पाठ सफल है । तब कहा श्नादेशस्य । वधानकी सिद्धिके लिए हल' श्न शानच् पढा । श्ना-श इत्मे शित् है । उसके स्थानमे आदेश शानच्का शित् क्यो पढा ? स्थानीका धर्म आदेशमे आता ही वह व्यर्थ होकर बोला—क्वचित् अनुबन्धकार्येऽपि अनल्विधौ निषेधति । ज्ञापन फल तु वक्ष्यमाणामे ङीप्का आभाव । भवेत् होना क्रिया के धातुसज्ञक भूसे आज्ञा जोर देकर प्रेरणा इच्छानुसारिणी, आदर सत्कार निश्चय निवे-दन कार्यमे लगाने क्रियाके आधारकर्ता अर्थमे लिङ् स्थाने प्र० पु० एकवचन तिप् । अनुबन्ध लोप । भू ति इतश्च तिमे इ का लोप । भू त् कर्तामे शप्=अ को सार्वधातुकसज्ञा, सार्वधातुकार्धधातुकयो से गुण अवादेश । भवत् । तको यासुट् आगम । स्थानिवद्भावसे लिङ्का डित् नही आया, यासुट् तिका आदि अवयव हुआ, डित्, उदात्तभी । यदागम तद्गुणीभूत । यासुट् तिप्के गुणधर्म मे लीन हो गया । त का धर्म परस्मैपद तथा डित्से ओत प्रोत हो । यास त मे लीन हुआ । भव यास् त् इस स्थितिमे ।

(२२१०) सुट् तिथो —लिङ ऊपरसे आया । तिश्च थ च-द्वन्द्वसे षष्ठी ओस्, तिका इ उच्चा० । लिङके स्थानमे हुए तकार थकारको सुट् हो । ट इत् का फल त थ के आदिमे होना । उ उच्चा० । भव यास् स् त् । अत्र शसयः सुट पर है, परत्वात् यासुट्को क्यो नही बाधता । भवेयु.मे परस्मैपद परे यासुट चरितार्थ सफल है जोश ढीला पडा, अत नही बाधता, तब कहा सुटा यासुट्—सु ट्से यासुट्का बाध नही होता, विषय भेदसे । लिङ्को यासुट् सी-युट् होते है । लिङ्के एक अंश त, थको सुट् होता है । एक साथ न होनेसे

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात्। इति सकारद्वयस्यापि निवृत्तिः। सुटः श्रवणं त्वाशीर्लिङि। स्फुटतरं तु तत्राप्यात्मनेपदे। (१२) **अतो येयः** ७।२।८०॥ अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य या इत्यस्य इय् स्यात् गुणः। यलोपः। भवेत्। सार्वधातुके किं? चिकीर्ष्यात्। मध्येऽपवादन्यायेन हि अतो

तुल्यबलविरोध नही, विप्रतिषेधमे पर कार्य भी नही, न बाध्यबाधकभाव

(११) लिङ–सभे लुप्ता षष्ठी। रुधादिभ्य से सार्वधातुक आया। सार्वधातुक लिङ सम्बन्धी अनन्त्यस्य(अन्ते भव अन्त्य न अन्त्य अनन्त्य)अन्तमे न हो, मध्य या आदिमे हो ऐसे सका लोप हो। इस सूत्रसे सकारद्वयस्यापि। यास्का स और सुट्का स लुप्त हुए। बाधा न होनेसे एकसाथ लोप। लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवृत्तिस्तु पर्यायेण पुनःप्रवृत्तिनिवृत्तिपरम्। यद्यपि भव यास स त् को स्थितिमे स्कोः संयोगाद्यो से सलोप होता तथापि भवेयु॰ के लिए सूत्र। यदि सुट्का लोप होना है उसे पढा क्यो? तब कहा सुट्का सुनाई पडना आशीर्लिङ् भूयास्ताम् मे है। आर्धधातुकसंज्ञासे सार्वधातु के बाधसे स लोप नही होगा। यास आगम हैं यदागमसे सार्वधातुकका अङ्ग हो गया। व्यञ्जन एक हो या अनेक उसके उच्चारणमे क्या अन्तर? तब कहा स्फुटतर=विशेष स्पष्ट ज्ञान लिङ्मे होता है। तत्रापि=आशिषि लिङ् एधिषीष्ट इत्यादौ आत्मनेपदे, बहुत स्पष्ट दोनो सकार सुने जाते है। जहा यासुट् और सकार लोप नही होगे वहा सुटके सकारका स्पष्ट श्रवण होता है, भव या (यास) त्। (१२) अतो येय–अदन्त अङ्गसेपरे सार्वधातुकका अवयव यास्को इय हो। या लुप्ताषष्ठी। परका अध्याहार। रुदादिभ्य से सार्वधातुक आया। या को इय। भव इय त् गुणे भवेयत्। लोपो व्योर्वलिसे य लोप, वल प्रत्याहारके अक्षर परे रहते व य का लोप हो। वल प्रत्याहारमे त आता है उसके परे यलोप हुआ। भवेत्=उत्पत्तिकी प्रेरणा। यलोप अन्तरङ्ग है पहले होगा, संयोगान्त न मिलनेसे, त्रिपादी भी होनेसे यास्का सलोप नही।

सूत्रमे सार्वधातुक क्यो पढा? सार्वधातुकके अवयव यास् को इय हो, आर्धधातुकको नहो। भूयात् आदि आशीर्लिङ् आर्धधातुक है किन्तु अदन्त नही यास्को इय नही होगा। सार्वधातुक पढना व्यर्थ। तब कहा–चिकीर्ष्यात्। कर्तुम् इष्यात् कृ से सन द्वित्वादि। चिकीर्ष–यात्। अतो लोप से षमे अका लोप, यदि सार्वधातुक नही पढेंगे तब अतो येय सूत्रसे याको इय होने लगेगा, यदि सार्वधातुक पढे तब आर्धधातुकमे इय नही होगा। अत्र प्रश्न–चिकीर्ष-

लोप एव बाध्येत । भवेदित्यादौ तु परत्वाद्दीर्घ स्यात् । भवेताम् । (१३) झेर्जुस् ३।४।१०८।। लिङो झेर्जुस् स्यात् । ज इत । (१४) उस्यपदान्तात् ६।१।९६।। अपदान्तादवर्णादुसि परे पररूपमेकादेश स्यात् । इति प्राप्ते । परत्वान्नित्यत्वाच्च ।* 'अतो येय' इति प्राप्ते । यद्यप्यन्तरङ्गत्वात्पररूप न्याय्यम,

यात् की दशामें नित्यसूत्र अतो लोप स अकारलोप होता है तब अदन्त नही, याको इयभी नही, सार्वधातुक पाठ व्यर्थ ? तब कहा—मध्ये अपवादाः पूर्वान् विधान्बाधन्ते नोत्तरान् इस न्यायसे अतो येय (७–२) द्वितीय पादका सूत्र उसके पूर्वमे षष्ठ अध्यायके चतुर्थपादके अतो लोप को बाधेगा । अपनेसे उत्तरमे अतोदीर्घो यञिको नही बाधेगा । तब अदन्त अङ्ग मिलेगा । याको इय होगा,अतिव्याप्ति नही रुकेगी । अत सार्वधातुक पढना सफल । भवेत् इत्यादि मे विधिलिङ् तिप् । भव यात् स्थितिमे इयको बाधकर परत्वात् अतो दीर्घो यञिसे दीर्घ होकर भवा यास बनेगा । इय आदेशके लिए सार्वधातुक पढे । निरवकाशत्वाद्दीर्घका बाधक बने । भवेताम् । उपस्थित या उत्पन्न होने क्रिया वाचक भू धातुसे निवेदन निमन्त्रण प्रेरणा आदिका आधारकर्ता अर्थमे लिङ । दो कारक हो द्विवचन तस । तस्थस्थमिपाम् सूत्रसे तस्को तामादेश, शप् गुण अवादेश यासुट, सुट् लोप । इय गुण यलोप पूर्ववत । जब भूधातुसे सम्भाविनी प्रेरणाका कर्ता हो तब लिङ् । वे बहुत हो तब लिङके स्थानमे झि, कर्तरि शप् सार्वधातुकगुण, अवादेश, परस्मैपदपरे यासुट् सलोप, झको झोऽन्त से अन्त आदेश प्राप्त ।

(१३) लिङ्के स्थानमे हुए झिको जुस् हो । अनेक अल होनेसे सम्पूर्ण झिको जुस । उसमे प्रत्ययधर्म आरोपितकर चुटूसे ज इत, तस्य लोप । भव या उस् इस स्थितिमे या को इय आदेश प्राप्त था । बाधकर पररूपकी शङ्का—

(१४)उसि अपदन्तात्-पदान्त न हो,ऐसे अवर्णसे उसिपरे पूर्वपरके स्थान मे पररूप एकादश हो । एक पूर्वपरयो का अधिकार । आद्गुण से आत्, एङिसे पररूप आये । अच्परे है (इको यण्से अचि आया)इससे पररूप प्राप्त । आ—उस्के बीच आद्गुण को बाधकर यदि पररूप होगा तब ('या उस्) ऐसा भेद नही रहेगा, इय आदेश नही होगा तब बोले परत्वात्=पररूपसे इय आदेश पर है, नित्यभी । अकृते कृते च प्रवृत्त । पररूप हो या न हो इय आदेश होकर रहेगा, एकदेशविकृतन्यायसे । अथवा एकादेशमे पूर्वान्तवद्भावसे इय अवश्य होगा । पररूप बाधकर इय आदेश गुण । भवेयुः । ऐसा प्राचीन

तथापि 'यास' इत्येतस्य इय् इति व्याख्येयम्। एवं च सलोपस्यापवाद इय्। 'अतो येय' इत्यत्र तु सन्धिरार्षः। भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम। (२२१५) लिङाशिषि ३।४।११६॥ आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात्। (१६) किदाशिषि ३।४।१०४॥ आशिषि

मानते है। नवीन कहते है पररूप अङ्गाधिकारी नही। अङ्गापेक्षम् अन्तरङ्ग है। और इय आदेश बहिरङ्ग है। अङ्गको प्रकृतिप्रत्ययकी अपेक्षा है। पर नित्यसे भी अन्तरङ्गशास्त्र (पररूप)बलवान् है क्यो नही होता, समाधान=तथापि अतो येय सूत्रका 'अत यास् इय' ऐसा पद भेद करेगे। यास्मे लुप्ता षष्ठी। अदन्त अङ्गसे परे यासके स्थानमे इय हो ऐसी व्याख्या करेगे। न कहियेकि अन्त्य=सके लोपसे इय आदेश बाधित होगा। तब कहा एवञ्च सकारान्त यास्की इय विधानकी शक्तिसे सकार लोपको भी बाधकर इय आदेश होगा। जबसे अन्त रहेगा तब पररूपकीदाल नही गलेगी। येय मे सन्धि आर्ष है। ऋषिणा-पाणिनिना प्रोक्त आर्ष। यास् इय दशामे स को रु रुको य, यका लोप, या- इय। तब गुण करेगे। यलोप असिद्ध होगा गुण कैसे? आप होनेस भवे। भवनक्रियाके विषयमे आज्ञा प्रेरणा काममे लगानेकीक्रिया का कर्ता त्व युवा यूय हो तब भू धातुसे लिङ्-सिप् थस् थ। इतश्चसे सिमे इकारलोप, शप् गुण अव्। यासुट् सलोप। इय गुण, यलोप। रुवि०। भवे, पहलेकी तरह एव थस्को तम। युवा भवेतम्। तुम दोनो उपस्थित होना थको त, भवेत। जब उक्त क्रियाकाका कर्ता अह आवा वय होगा। तब मिप् वस् मस्। किन्तु भवेय-मिप् दशामे तस्थस्थमिपासे मिप्को अमादेश। अनादि. पूर्ववत्। भवेव। नित्य ङित से वस् मस्के सका लोप। वयम् तत्र भवेम। इ॰। विधिलिङ्प्रक्रिया।

अथाशीर्लिङ् (२२१५) लिङमे लुप्ता षष्टी। तिङ्शित्-से तिङ् आया। आशीर्वाद अर्थक लिङ्लकारके स्थानमे आदेश तिङ्को आर्धधातुकसञ्ज्ञा हो। सार्वधातुको बाधकर, ताकि शप् श्यन् श्नम श्ना आदि न हो।

(१६) किद्=आशीर्वाद अर्थक लिङ्को हुआ यासुट् आगम कित् हो। इस सूत्रमे लिङ सीयुट्से लिङ्, यासुट् (परस्मैपदेषु) आये। यह यासुटके ङित्का बाधक है। यद्यपि ङित्से भी गुणनिषेध होता, तथापि इज्यात्मे वचिस्वपिसे सम्प्रसारणके लिए कित् होना आवश्यक। प्रसङ्गसे यहा भी पढा। भवनार्थक भूधातुसे आशीर्वादकर्ता अर्थमे लिङ् तिप् आर्धधातुकसञ्ज्ञासे शप् रुका। इतश्च

लिङो यासुट्किस्यात् ।* 'स्को' इति सलोप । (१७) क्क्ङति च १।१।५।। गित्किङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्त । भूयात् । भूयास्ताम् ।

इकारलोप, यासुट् । तिथो सुट । भू यास् स् त् । स्को सयोगाद्यो —पदान्त सयोगादिसे सुट्के सका लोप । यासुट्का स भी तथा । सयोगादिका सकार होना उचित । सकारद्वय लुप्त हुये । ते शुभ भूयात् । यहा सुट् और यासुट्का सभी पदान्त सयोगादि=यास् स त्, उसका आदि दोनो सका लोप । प्रश्न सकारलोप को असिद्धकर सयोगान्त लोप क्यो नही । समाधान=सयोगादि लोपके अनवकाश—अपवाद होनेसे बाध्यते । भूयात् मे उको आर्धधातुकपरे मानकर गुण क्यो नही, निषेध सूत्र—

(१७) क्ङिति च—ङ् इत् ङित्, क इत् कित्, ग इत् गित् प्रत्यय परे हो उसीको निमित्तकारण मानकर इग्लक्षणे=इक इ उ ऋ लृ को लक्षण उद्देश्य या स्थानी मानकर गुण तथा वृद्धि नही होती । ग क ङ इनका समाहारद्वन्द्व । गके चर्त्वका सकेत,ग क ङ इत् यस्य द्वन्द्वके अन्तमे सुना गया इत् शब्द प्रत्येक से जुडा । गिति किति ङिति निमित्ति सप्तमी । सूत्रमे इक् पढा, अत इको गुणवृद्धी आया । चकारसे । न धातुलोपसे न आया । जहा इक्को गुण वृद्धि प्राप्त वही निषेध निश्चित । प्राय सार्वधातुकार्धधातुकयो, पुगन्त लघूपधस्य च,सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु । मिदेर्गुण इत्यादि निषेधके स्थल है । जहा इक्का उच्चारण नही वहा न निषेध । गित् न पढते जिष्णु मे गुण निषेध न होता । वहा जिसे ग्लाजिस्थश्च ग्स्नु , गित्परे रहते,न कहियेकि कित् से गुण निषेध हो जाता गित् क्यो पढा ? धुमास्थासे कितिपरे इत्वके भयसे । यदि ऐसा छिन्न भिन्न क्त परे लघूपधगुणका निषध नही होगा, स्थानिभूत इक्का हल्से व्यवधान है । इक् लक्षण उच्चारण क्यो ? लिगोरपत्य लैगवायन नडादि फक् । आदिवृद्धि और गुणका निषेध न हो । ते सुख भूयात् । विवाहश्च विद्या च भूयात् । उत्पन्न होने क्रियावाचक भू धातुसे आशीर्वाद (दुर्लभवस्तुके सुलभ होनेकी शुभ कामना) अर्थमे लिङ् । प्र० पु० एक० तिप् । ङित् लकार है इतश्चसे इलोप । भू त् यासुट् आगम । तपरे सुट्भी ।

भूयास् स् त् । आशिषि लिङ्के आर्धधातुक होनेसे लिङ सलोप नही होता । अत स्को सयोगाद्यो को नही भूल सकते (न विस्मर्तव्यम्) सयोगके आदि दोनो सका लोप । सुट् यासुट् प्रत्यय अपृक्तसज्ञक नही, न हल्ङ्याबादि

भूयासु । भूया । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ।
(१८) लुङ् ३।२।११०॥भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात् । (१९) माङि लुङ् ३।

लोप । सार्वधातुक नही, न शप् । इगन्त अङ्ग भूको आर्धधातुकपरे गुण प्राप्त, किदाशिषि सूत्रसे यासुट् कित् हुआ उसका फल क्ङिति चसे गुण निषेध । एक कर्तामे अलब्ध लाभकी शुभकामनाके अनुकूल क्रिया । भूयात्का स्फोटार्थ—दो कर्तामे आशीर्वादकी क्रिया विराजमान हो तब लिङ् स्थाने तस् । भू तस् सस्थस्थ—सूत्रसे तस्को ताम । आर्धधातुकसज्ञासे न शप् । यासुट । भू यास् ताम् । अदन्त नही, न इय आदेश । सुट । झलपरे सयोगके आदि यास् के सका स्को से लोप । गुणका क्ङिति चसे निषेध । भूयास्ताम् सुटके सका लोप नही । पदान्त न होनेसे । त-मे अके कारण उस आशीर्वादके पात्र ससारके अनेक जन हो तब बहुवचने झि,झेर्जुस् यासुट् कित् है । गुणनिषेध रुवि०, जब सम्बोधन (त्व युवा यूय) अप्राप्त प्राप्तिकी शुभ कामनाका विषय हो । तब लिङस्थाने सिप् थस् थ । भू यास् सिप् । इतश्च इ लोप । यास्का स (स्को से) लोप । आशिषिमे कितका फल गुणनिषेध रुवि । भूया भूयास्त, थसको तम् तुम दोनोफूलो फलो सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे । यको त । तुमलोग उपस्थित रहो । इतश्च इकारलोप यास्के सका सयोगादिलोप । जहा शुभ लाभकी कामना क्रियाका आधार (अहम आवा वय) हो वहा उत्तमपुरुष मिप् वस् मस् मिप्को अम् । नित्य ङित से वस् मस्के सका लोप । इस प्रक्रियामे उत्पन्न होना भूका अर्थ, पुत्र आदि लाभकी कामना लिङका अर्थ । इति आशीर्लिङ्

अथलुङ् प्रक्रिया— (१८) लुङ्—भूतकाल अथमे वर्तमानधातु (क्रिया वाचक) से लिङ हो । धातो और भूतका अधिकार । यह सामान्य भूतकाल है । इसमे अनद्यतन बन्धन नही । (१९) माङ्का प्रयोग हुआ हो तब धातु से लिङ् हो, सभी लट् लिट् आदि लकारोको बाधकर । अन्यथा पूर्वसूत्रसे लुङ् होता यह सूत्र व्यर्थ हो जाता । इससे स्पष्ट है कि वर्तमान, भविष्य, प्रेरणा भूत सभी लकारोका विषय है । माङ्के रहते लुङ् ही होगा । अन्य लकार नहीं । यथा—क्लैब्य मास्मगम पार्थ हे अर्जुन निष्क्रिय (नपुसक) कायर मत बनो । यहा लट् या लिङ्का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि भूतकाल नही है तथापि लिङ्को बाधकर लुङ् हुआ । माके योगसे । एव शोक वृथा माकृथा । व्यर्थ शोक मत करो । लुङ् हुआ लिङ् नही । सब लको बाधकर लुङ् ही हो, यदि ऐसा मा वद् ।मा वदेत् प्रमाच्छन्द इन उदाहरणोंमे मा है लुङ् नही,

३।१७५॥ सर्वलकारापवाद । (२२२०) **स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६॥** स्मोत्तरे माङि लङ् स्याल्लुङ च । (२१) **च्लि लुङि ३।१।४३॥** शबाद्यपवादः (२२) **च्लेः सिच् ३।१।४४॥** इचावितौ (२३)**गातिस्थाघुपाभूभ्य सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७॥** एभ्य सिचो लुक्स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गह्यने । (२४) **भूसुवोस्तिङि ७।८८॥** भू सू एतयो सार्वधातुके

इसलिएकि इनमे मा शब्द अव्यय–निषेध अर्थमे है । जिसके योगमे लुङ्, वह माङ् ङित है आङ्माडोश्चके भाष्य प्रमाणसे । अव्यय भिन्न माङ् मान्य ।

(२२२०) स्म उत्तर भागमे हो माङ्के योगमे लङ् । चसे लुङ् भी हो । स्म अव्ययम् उत्तर यस्मात् स्मोत्तरे । यह सूत्र भी सभी लकारका बाधक उसके अर्थका साधक है । जैसे मा स्म भवन, मा स्म भूत् । चकारने लुङ्को अनुकृष्यते खीच लाया । (२१) च्लि । लुप्ता प्रथमा । लुङ् परे धातुसे च्लि प्रत्यय हो शप् श्यन् श श्नम् आदि विकरणको बाधकर ।

(२२) च्ले –च्लिके स्थानमे सिच् आदेश हो । इच् इत् । स शेष । च इत् फल चित्स्वर । इकार इत्का फल इदित् होना ताकि अमस्तमे अनिदिता हल्मे उपधालोप न हो ।(२३) गा स्था–घुसञ्ज्ञक, पा भू–इन धातुओके (द्वन्द्व से पञ्चमी बहुवचन) परे सिच्का लुक् हो, परस्मैपद रहते । गातिमे गाधातु है । स्तिप् निर्देशसे । दाधाघ्वदाप्का घुसञ्ज्ञक दाधा मान्य । ण्य क्षत्रियाषसे लुक् आया । श्लु–का आना अनुपयोगी । गापौ इह=गातिस्थाघुपा सूत्रमे गापा कौन लिए जाय,पा पाने या पा रक्षणे, गाङ्गतौ या इण्को गाङ् आदेश, तब कहा–इणादेशपिबती–इण् गतौके स्थानमे (विकरण लुक्) इण्को गा आदेश हुआ हो मान्य । उससे सिच्का लुक् । जिस पाको पिब आदेश हो, शप् विकरण पा से सिच् लुक् । भाष्यमे गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम् ।

अभूत् । उत्पन्न या उपस्थित होना क्रियावाचक भूधातुसे बीता हुआ कालके कर्ता अर्थमे लुङ् । भू ल् लुङ् परे च्लि । उसके स्थानमे सिच् । लुङ् स्थाने तिप् इतश्चसे इलोप । च्लिने शप्को बाध लिया था । भू स् त् । गातिस्था–सूत्रसे सिच्का लुक्–लुङ् लङ् सूत्रमे अट् अभूत् । यहा ति पित् है ङित् नही । निषेध असम्भव । अत सार्वधातुकार्धध तु–से गुणप्राप्त–

(२४) भू और सू इन दोनो धातुको गुण नही होता सार्वधातुक तिङ् परे मिदेर्गुण से गुण, नाभ्यस्तसे न और सार्वधातुक अनुवृत्त । इति गुणनिषेधे । षूङप्राणिगर्भविमोचने । लुक् विकरण मान्य । सुवति शप् विकरण, सूयति

तिङिपरे गुणो न स्यात्। (२२२५) अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥ सिच्च अस् चेति समाहारद्वन्द्वः। सिच्छब्दस्य सौत्र भत्वम्। अस्तीत्यव्ययेन कर्मधारय तत पञ्चम्या सौत्रो लुक। विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः स्यात्। इति ईट् नेह, सिचो लुका लुप्तत्व त्। अभूत्। हल किं ? ऐधिषि, अपृक्तस्य इति किम्। ऐधिष्ट। अभूताम्।(२६) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।

श्यन् विकरण असामान्य। अभूत्मे तको इट्की आशङ्का।

(२२२५) अस्तिश्च सिच् (समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी) (सूत्र) ईट् आया। अस्तिसिच की पञ्चमीसे अपृक्तस्यमे षष्ठीकल्पना। अस् सिच्से परे अपृक्तसंज्ञक हल्को ईट् आगम हो। इति प्राचीनमते। नव्या स्थानिवत्भाव से सिच्से परे त् अपृक्तहल् है, ईट् प्राप्त। एवम् अगात् अस्थात् अप त् आदि मे भी सिच् लुक्को स्थानिवद्भावसे इट् सम्भव। तब मूलमे कहा-सिच् च अस् च समाहारद्वन्द्व ,सिच् अस् पूर्वखण्डकी अन्तर्वर्तिनी(भीतरी) विभक्तिसे पद मानकर चो कुत्व क्यो नही। सिच् शब्द सूत्रमे पढ़ा है भसंज्ञा। सूत्रे जात सौत्र से कल्पित है। भसंज्ञासे पदके बाधसे न कुत्व। यद्यपि सिचस् शब्दमे अस् पढा है। अलगसे अस्ति क्यो पढा ? तब कहा अस्तीत्यव्ययेन विद्यमान अर्थमे विभक्तिका प्रतिरूपक बोधक अव्यय अस्तिका सिचस्के साथ कर्मधारयसमास। अस्तिसिचस् एकपद। पञ्चमीका सुपासु लुक्से सुका लुक् अर्थ विद्यमान-उपस्थित सिच् और अस् से परे हल् (एक अल् रूपप्रत्यय) को इट् आगम हो। उतो वृद्धिर्लुकिसे हलि आया। षष्ठीमे बदला। इस सूत्र से अभूत्मे इट् नहीं होता। सिच्का लुक्शब्दमे लोप होनेपर प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षण नही लगता। न लुमताङ्गस्यके निषेधसे। सिच् विद्यमान नही, ईट आगम भी नही। अगात् सिच् लुक् है। अस्तिको भू आदेशसे परे भी न ईट्। हल्को ईट् क्यो ? ऐधिषिमे उत्तमपुरुष इट है। सिच्से परे है, वहा ईट् आगम न हो, अच्परे है, हल्परे नही। अपृक्तस्य किम् ? एक अल्(बिना अच्का अक्षर) ऐसे हल्को ईट क्यो ? ऐधिष्टमे त प्रत्यय सिचके स से परे है। परन्तु तमे अ है एक अल् नही, न ईट्। अभूताम्-सत्ता अर्थक भूधातुसे समाप्तक्रियाके कर्ता अथमे लुङ्। द्विवचने तस् जिसको ताम् आदेश। भूताम् च्ले सिच्। अट, गुण निषेध। अ-भू स-झि। या रूपधारण समाप्तक्रियाके अनेक कर्ता हो, तब भूधातुमे भूतकालके कर्ता अर्थमे लुङ्। बहुवचन झि। शप् बाधकर च्लिको सिच्, अट् आगम। अ भू स झि। गतिस्था-से चिनका लुक्

४।१०९।। सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् स्यात्। इति प्राप्ते। (२७) आत ३।४।११०।। सिज्लुक्याद‍न्तादेव झेर्जुस् स्यात्। अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम् अभूव। अभूम। (२८) न माङ्-

झिको जुस् प्राप्तिका सूत्र।

(२६) सिच् अभ्यस्त विदिसे परे ङित्सम्बन्धी झिको जुस् हो। झेर्जुस् और (नित्य) ङित अनुवृत्त। (२७) आत इसमे भी झेर्जुस् आया। सिच्का लुक् हुआ हो तब आदन्तसे परे ही झिको जुस् हो। वार्तिक भाष्यमे पढा है। आत सिज्लुगन्तात्तदिति वक्तव्यम्। यह सूत्र सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च सूत्र पर नियामक है। सिचि लुकि आदन्तादेव। भू आदन्त नही न जुस्। अभू झि न्तश्च इलोप। ओऽत नको अन्त। सिच् लुक्। अट् आगम, अभू अन्त्। लुङ् मम्म धी अच् परे भूवो वुक्लुङ्लिटो से वुक्=व हुआ अभूव् अन्त् तका संयोगान्तलोप। अभूवन् गोप वृन्दावने। तत्र त्व अभू वहा तु थे, । युवा अभूतम। यूयम अभूत् तुम लोग वहा उपस्थित थे। उपस्थित क्रिय वाचक भू धातुका समाप्त क्रियाके सम्बोधन कर्ता त्व युवा यूय अर्थ मे लुङ्। सिप् थस् थ। च्लि—सिच् लुक् अट् इलोप सको रुवि। अभू। थस् तमादेश अभूतम्। थको त अभूत। अह अभवम् मे था, प्रकट होनेकी क्रियार्थक भूधातुसे समाप्त भवन क्रिया कर्ता अर्थमे लुङ्। मिप्को अम्। च्लि सिच् लुक् अट् वुक् अचि। अभूव। अभूम वस् मस परे नित्य ङित से सलोप। शेष कार्य पूर्ववत्।

सभी लकारोका उपदेशके अनुकूल प्रयोग। अधर्मात् दुःख भवति, धर्मात्सुख। दशरथस्य ध्रुवस्य च सुख बभूव। तथैव श्वः परश्व वा तवापि सुख भविता। धार्मिकस्य सदा सुख भविष्यति। सदाचारे सन्ध्ययाञ्च अनुरागो भवतु। भगवत शरणागतस्य सुखम अभवत्। त्वयि सुख भवेत्। भगवन् ते सदा सुख भूयात्। पितु पुण्येन सुखम भूत्। यदा परिश्रमेण पठनम भविष्यत्तदा परीक्षा उत्तीर्णा अभविष्यत्। (२८) धातुसे माङ्के योगमे लुङ् विधानका फल बाले—माङ्के योगे=सम्बन्धमे धातुको अट् आट् नही होते जो लुङ् लङ् लृङ्क्षुसे अट्, आट् (अजादीनामसे) प्राप्त थे, अनुवृत्त है। यथा—मा भवान् भूत् आप नही थे, या न रहे, नही होगे। लकारार्थके सभीकाल मे लुङ् मान ले, जो सब लकारका बाधक है। मा भूत् के मध्य अट् हो या न हो कोई विशेषता नही, मध्यमे भवान पढा। स्मोत्तरे लङ् च उदाहरण—

ङ्योगे ६।४।७४॥ अडाटौ न स्त । मा भवान् भूत । मा स्म भवत । भूद्रा

(२९) **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ** ३।३।१३९॥ हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ स्यात्क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ।

बहुवचनमे मास्म भवत् मा स्म भूत् । लकारके सभीकालसे लङ् लुङ्का प्रयोग, उसी व्यभिचारसे अट् आट् मना हुए । मा शब्दका भूधातुसे सम्बन्ध हो गया अत न अट् । एव मा स्म भवत् उत्तरभागमे स्म है उसकाधा तुके साथ सम्बन्ध हुआ इसी प्रकार भास्मागम । आप न जाय, न खाय । मास्म खादी• । इति लुङ् प्रक्रिया ।

अथ लृङ्विधि —(२९) लिङ् निमित्त=हेतु हेतुमद्भाव जहा फल लाभ के लिये क्रियाके मध्य कार्य कारण (हेतु कारण । हेतु. अस्ति अस्य हेतुमत्कार्यं हो) जो लिङ् लकारका बीज है । वहा भविष्य अर्थमे लृङ् लकार हो। क्रिया अनिष्पत्तौ=क्रिया फल सिद्धि सम्भावना हो तब गम्यमानाया—जान पडती हो । भविष्यत् (मर्यादावचने) की अनुवृत्ति । लिङ्का निमित्त । यथा—कृष्ण नमेत चेत्सुख यायात् । भगवानको प्रणाम करे तब सुख मिले । सुख लाभ कार्य (हेतुमत्) है नमस्कार कारण (हेतु) है परन्तु क्रिया असिद्ध है । न नमन है न सुख । क्रियातिपत्ति का अर्थ है फलकी असिद्धि अलाभ । यथा सुवृष्टिश्चेद् अभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् जब अच्छी वर्षा होगी तब हरियाली धन धान्य सम्पन्नता होगी जो कार्य है । अच्छी वृष्टि कारण सुख समृद्धि काय है । किया भविष्यकालकी । दोनो (कार्यं और कारण) क्रियाको कहनेवाला लृङ् लकार है। अभविष्यत्, पैदा होना या उपस्थित होनेके अनुकूल क्रियावाचक भूधातुसे क्रियाओके कार्यकारणभावकी सम्भावना अर्थमे लृङ् भूको अङ्गसज्ञा अट् आगम अ भू ल् । ल स्थाने तिप् इतश्च इकारलोप, अभू त् । शप्को बाधकर स्यतासी सूत्रसे स्य प्रत्यय जो न तिङ् है न शित् । आर्धधातुकसज्ञक व ादि है ही आर्धधातुकस्येड्वलादे इट् । गुण अवादेश, षत्व (प्रत्ययका अवयव सकार होनेसे) अभविष्यत् । रामलक्ष्मणौ यदा अभविष्यताम् तदा उग्रवादस्य उत्कोचग्रहणस्य समाप्ती अभविष्यताम् । तभी उद्दण्डता घूसखोरी मिटेगी। अभविष्य बनानेकी विधि समझाई गयी । केवल द्विवचन तस्को तस्थस्थमिपासे ताम् आदेश । यदा सर्वे अभविष्यन् तदा कार्यमकरिष्यन् । स्य अट् इट् आदि । अभविष्य झि झको अन्त

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्य। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम् अभविष्याव। अभविष्याम। (२२३०) ते प्राग्धातो. १।४।८०। ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातो प्रागेव प्रयोक्तव्या। (३१) आनि लोट् ८।४।१६॥ उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य ण स्यात्॥

इतश्च इलोप। तका सयोगान्त, दो क्रियाओके बीच कार्य कारणके कर्ता अर्थ मे भूसे लृङ् सिप् इलोप। सका रु वि विशेष है। यदा तत्र त्वमभविष्य:। पाठम अपठिष्य। यूवा न अभविष्यत पाठ न अपठिष्यतम्। यूय अभविष्यत थस्को तन, थको त आदेश विशेष। शेष स्य अट् इट् गुण अवादेश षत्व आदि पूर्ववत्। अह अभविष म् तब समस्या अश्रोष्यम्। वस् मस्मे 'अतो दीर्घो यञि' 'नित्य ङित' से स लोप विशेष। शेष पूर्ववत्। वय अभविष्याम यज्ञमकारयिष्याम। इति लृडप्रक्रिया।

सभी लकारोका मुख्य अर्थ काल है इसलिए वर्तमानकाले लट्। परोक्ष काले लिट्, भूतकाले लुङ्का भाव दिखाया। कालस्त्रिविध भूत भविष्य वर्तमानभेदात्। सामान्य भूतकालमे लुङ् अप्रत्यक्ष क्रिया की समाप्त दशामे लिट् आज (अद्य) भूतको छोडकर लङ् क्रिया। वर्तमान रहे लट। क्रियाके कारण कार्य भावसे लिङ्। शप् श्यन् आदि विकरण लट् लोट लङ् विधि लिङ्मे ही होते है। सार्वधातुक कार्य प्रधान है, अन्य लकारोमे आर्धधातुक कार्य (इट् आदि) का प्राधान्य है।

यदि प्रपरा आदि उपसर्ग भवानिके साथ जुडे तो किधर ठहरे, निर्णायक सूत्र—

(२२३०) ते प्राक्=वे गति उपसर्गसंज्ञक (जो उपसर्गा क्रियायोगे, गतिश्च से हो) धातुके प्रागेव-पहले ही हो। न परत न व्यवहिता। अत छन्दसि परेऽपि और व्यवहिताश्च अलग पढे गये। भाष्यमे धातो प्रागेव प्रयुज्यमाना गत्युपसर्गा स्यु, सज्ञानियमपक्षभी है (३१) आनिलोट्मे लुप्ता षष्ठी रषाभ्या नो ण, उपसर्गा (असमासेऽपि) अनुवृत्त। उपसगे तिष्ठति उपसर्गस्थ प्रपरा निर दूर आदिसे नको ण होने का हेतु—निमित्त कारण 'रष' मे परे लोट् के स्थानमे हुये आदेश आनि के न को ण हो। प्रभवानि मै रहु' इस क्रियाके योगमे प्रको उपसर्गसज्ञा। धातु के पहले ठहरा। उसमे णत्वका कारण र बैठा हे उससे परे आनिके न को ण। प्रभवाणि। यद्यपि अट्कु

प्रभवाणि। 'दुर षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्य'। दु स्थिति। दुर्भवानि। 'अन्तःशब्दस्याऽङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्व वाच्यम्'। अन्तर्धा। अन्तर्धिः। अन्तर्भवाणि। **(३२) शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे** ८।४।१८॥ उपदेशे कादिखादिषान्तवर्जे गदनदादेरन्यस्मिन्धातौ परे उपसर्गस्थान्निमित्ता-

---

त्र इनु–सूत्रसे सर्वत्र (णत्व मात्रमे) न को ण होता आनि लोट् क्यो पढ़ा ? असमानपदमेभी णत्वके लिये। अखण्डपद ही समानपद है। अखडत्वच निमित्त पद—र ष वाला पदसे भिन्न निमित्तिमत्पद (न को ण होने वालापद भिन्न हो वह) असमानपद है। जैसे प्र भिन्न है उसमे र निमित्त है। भवानि भिन्न पदमे नकार निमित्ती है,नसमानपद,न णत्व,अत सूत्र पढा। रामनाममे र निमित्त राम मे) न निमित्ती नाम मे, दोनो से घटित, समानपद नही, न णत्व। किन्तु रामेण एकपद है णत्व हुआ। प्रहिमानीमे न णत्व, अनर्थक, अनुपसर्गक होने से। (वा०) दुर् शब्द को (षत्व या णत्व करनेकी स्थिति मे) उपसर्ग न माने। णत्व निषेध करे। क्रियाके योगमे दुर् सदा उपसर्ग है। जब षत्वणत्व का प्रश्न उठे तब उपसर्ग न रहे। यथा–**दु स्थिति** यहा दुर से परे स्थाके सुको षत्व उपसर्गात्सुनोतिसुवति से प्राप्त था, निषेध नही हुआ। **दुर्भवानि** आनि लोट् से दूर् उपसर्गमे र को निमित्त मानकरणत्व प्राप्त, उपसर्गत्वके निषेधसे न णत्व (वा०) अन्तः शब्द (जो प्रादिगणमे नही आता न उपसर्ग है) को उपसर्ग सज्ञा हो, अङ्गविधान, किविधि और णत्व होना हो तब। अन्त दधाति **अन्तर्धा**। अन्तरपूर्वक धाधातुसे आतश्चोपसर्गे सूत्रसे अङ् होना है अत अन्तरकी उपसर्गसज्ञा, तभी अङ् टाप्। अन्त धीयते **अन्तर्धि** भूमिगत होना। अन्तर् पूर्वक धाधातु मे उपसर्गे घो कि होना है तभी उपसर्ग माना। **अन्तर्भवाणि** उपसर्गसज्ञाका फल आनि लोट् से णत्व होना। (३२) **शेषे विभाषा** अकखादौ, अषान्त, उक्तादन्य शेष। 'नेर्गदनदपतपद' आदिसूत्र उक्त है, उनसे अन्य धातु शेष। उन धातुओके परे रहने उपदेशे=प्रथम उच्चारण अवस्थाकी धातु (क आदि, ख आदि और ष अन्तसे वर्जित हो) उपसगमे स्थित र ष से परे न को ण हो, विकल्प से। प्रनिभवति दशामे उपसर्ग प्र मे र से परे न को ण। **प्रणिभवति**। नकादि. न खादि। न षान्त। **प्रनिचकार प्रनिचखाद** मे णत्वके लिए उपदेश पढा। प्रनिपिनष्टि के लिए अषान्त पढा। प्रश्न –णत्वको सहिताधिकारमे पढा जो विवक्षाधीन

त्वरस्य नेर्नस्य णत्व वा स्यात ।

प्रणिभवति–प्रनिभवति । इहोपसर्गाणामसमस्तत्वेऽपि सहिता नित्या । तदुक्तम्

'सहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयो ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ।।' इति ।

है अविवक्षामे न णत्व । विभाषा क्या पढा ? अत वोले इह=यहा पर उपसर्गो के साथ सहिता (सन्धि सयोजन जोड) नित्य है विकल्वके लिए पढा । नित्यतामे प्रमाण—भर्तृहरि कारिका=सहिता–सन्धीयन्ते वर्णौ अर्थौ च यथा सा सहिता । सपूर्वक धाधातुमेकर्मणि क्त । दधातेर्हि एकपद–अखण्डपदमे नित्य सन्धि । धातु उपसर्ग के मध्य नित्य, समासमे नित्य सन्धि । वाक्यमे इच्छाधीन सन्धि । जहा उच्चारण माधुर्य बढे वहा सन्धि करे । अर्थदबोच उठे वहा न करें । प्रसङ्गमे प्र उपसर्ग और भू धातुका सम्बन्ध जोड नित्य होनेसे विकल्प णत्व आवश्यक ।

विशेष—धातुके अलक्षित अनन्त अर्थ है प्रसिद्ध एक या दो । धातुसे उपसर्ग जुडते है वे अलख अर्थ को लक्षित कराते है । यदि एव–भू का सत्ता अर्थ, हृ का हरण, एध को वृद्धि अर्थ कैसे ? उत्तर—मूलमे कहा अर्थनिर्देशश्च–अर्थ अभियुक्त–प्रामाणिको से खुला । क्रिया अर्थ खोजनेके लिए फन (अर्थ सत्ता हरण आदि) पढे । अर्थनिर्देशक भीमसेनको भी सम्मत—कुर्द खुर्द गुर्द गुद कीडायामेव । ये धातु खेल अर्थ मे हीं हो । एव पाठ से अन्य अर्थ का होना पुष्ट । सिध गत्याभी प्रमाण । लक्षणाया समीपम् उपलक्षणम् प्रदर्शनमात्रम । यदि ऐसा अर्थान्तरपरिसख्या (अन्य अर्थकी गणना) क्यो न माने, तब कहा यागात्स्वर्गो भवति यज्ञ से स्वर्ग होता है इत्यादिमे भवति का पैदा होना अर्थ पुष्ट है । उत्पत्तिमैं लक्षणा क्यो नही, प्रयोग की बहुलता से । यतोहि पाणिनि कुछ धातु अर्थसहित पढे हैं । अतिव्याप्तिदोष न हो अत अनेकार्थाऽपिधातवो भवन्ति भाष्यप्रमाण है । धातुषु अर्थनिर्देश आधुनिक । सेधतेर्गतौ पाणिनीय । एक धातु ही धातुसज्ञक होगी । अर्थं खल्वपि आचार्यश्चित्रयति क्वचिदेक, क्वचित् न । ननु भू धातु का पैदा होना, हारना अपमानित होना आदि अर्थ है उद्भवति परिभवति आदिमें उद् परि आदि उपसर्ग व्यर्थ है तब बोले उपसर्गा=उप–उपसमीपे सृज्यन्ते अप्रसिद्धार्थबोधनाय प्रवर्तन्ते ते [उपसर्गा विशेषार्थस्य

सत्ताद्यर्थनिर्देशश्चोपलक्षणम् । 'यागात्स्वर्गो भवती' त्यादावुत्पद्यत इत्याद्यर्थात् उपसर्गास्त्वर्थविशेषस्य द्योतका । प्रभवति । पराभवति । सभवति । अनुभवति, अभिभवति । उद्भवति । परिभवतीत्यादौ विलक्षणार्थावगते । उक्त च—

द्योतका । उपसग जिसस जुडते है उसका गुप्तार्थ खोलते ह । अनुभव अथ मे सकमक विशेष अर्थ अनु खोलता है अनुभवति । उपसर्गका निजी अर्थ नही । उपसर्गाः द्योतका। नतु वाचका' । प्रमाण-यथा-प्रभवति । समर्थ होता है, प्रकाश उत्पत्ति शक्ति वृद्धि होना अर्थ । जब परा जुडा, पराभवति तब पराजय अपमा तिरस्कार हार होनेकी क्रिया अर्थ । सम्भवति सम्भव काम है । असम्भव नही, ठीकसे होना । अनुभवति=उपभोग करना, रस लेना, अनुभव है । अभिभवति हिसा, कष्ट, प्राणवियोगकी क्रिया । परिभवति तिरस्कार, अर्थ परौ भुवोऽवज्ञाने प्रमाणसे । प्रादुर्भवति प्रकट होता है । आविर्भवति प्रकाशमे आता है । उद्भवति उगता है विकास, उत्पत्तिकी क्रिया इत्यादि प्रमाणसे धातुमे विलक्षण-२ अर्थ भरे पडे है । जिनके प्रकाशक उपसग है । भास्वान्भर्तृहरि ने पुष्ट किया कि उपसर्गेण=उपसर्गसे धातुका अर्थ बलात् सामर्थ्यसे अन्य प्रतीयते=बदल जाता है । यथा प्रहार कोडेकी मार कशादि-आघातः । हृका हरण अर्थ है आङ् उपसर्गसे बलपूर्वक अर्थ बदला । आहार=भोजन हुआ । जब सहार नत्र वध विनाश निर्मूल । वि उपसर्गसे धातुका आनन्द विहार क्रीडा । परि उपसर्गसे परित्याग । हरण अर्थ दब गया । अमरकोषमे स्यादाभाषणमालाप प्रलापो अनर्थक वच । अनुलापो मुहुर्भाषा विलाप परिदेवनम् । विप्रलापो विरोधोक्ति सल्लापो भाषण मिथ । सुप्रलाप सुवचनम् अपलापस्तु निह्नव । इति भूधातुप्रक्रियापरिपूर्णा ।

एधधातुका—वृद्धि बढने, उन्नति करनेके अनुकूल क्रिया अर्थ । इसीसे आत्मनेपद धातुओंका (नङ् प्रत्याहार शानच् कानच् अनुदात्तेत् ङित् सम्बन्धसे) आरम्भ करते है । एध-इमे अ अनुदात्त इत्सञ्ज्ञक है । आत्मनेपदका विषय बना । जायते अस्ति, विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते नश्यति ६ भाव विकार है शरीरका जन्म, स्थिति बाल युवा वृद्धमे बदलना, बढना क्षीण होना होना पञ्च तत्वमे लीन होना । चतुर्थावस्था वृद्धि । उपचय बढना । कत्थन्ता -कत्थ श्लाघायाम् ३६ धातु तक अनुदात्त इत् । एधते-आत्मनेपद बर्धनके अनुकूल क्रियावाचक अतएव भूवादयो धातव से धातुसञ्ज्ञक, एध

'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते। प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्' इति

एध–२ वृद्धौ। कत्थन्ता षट्त्रिंशदनुदात्तेत। (३३) **टित आत्मनेपदानां टेरे** ३।४।७९।। टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्व स्यात्। एधते। (३४) **सार्वधातुकमपित्** १।२।४।। अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्स्यात्। (२२३५) **आतो ङितः** ७।२।८१।। अत परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। एधेते।

से वर्तमानकालिक बढने क्रियाके कर्ता अथमे लट्। अनुदात्त अकार इत् है। अत आत्मनेपद। प्रथमपुरुष एकवचन त, जो तिङ् होनेसे सार्वधातुकसंज्ञक है उसका फल कर्तरि शप् अनुबन्धलोप। लशकु–से शकी, हलन्त्यसे प्‌की इत्संज्ञा हुई। अ शेष। एध त। तमे अकी अचोन्ऽन्त्यादिमे टिसंज्ञा। तब–

(३३) **टित** =लट लिट् लुट् लृट् लोट टित् है, लस्यका अधिकार, इनके स्थानमे आदेशभूत आत्मनेपद प्रत्यय (त आताम झ आदि) के टिको (टे ए) एत्व हो। तङ् प्रत्याहार शानच् कानच्‌को एत्व नहीं होता, जिसका फल पचमान यजमान मे एत्व न होना। व्यपदेशिवद्भावसे अन्त्यादि मानकर टि (तमे अ) को एत्व। **एधते**–वह बढता है। उपैधते पासमे बहुचता है।

एधेते माङ्गलिकवृद्धिके अनुकूलक्रियार्थक अतएव धातुसंज्ञक एध धातुसे वर्तमान वर्धन क्रियाके दो कर्ता अथमे लट। द्विवचन–आताम् आदेश अपित्सार्वधातुक है ङिद्वत्=ङित् हुआ। गाङ्कुटादिभ्य से ङित् आया। अङित् ङित सम्भव नहीं अत ङिद्वत् कहा—सार्वधातुकम् अपित्। प इत् न हो, ऐसा सार्वधातुक ङित्‌के समान होता है। आमको एत्व। टित आत्मनपदानासे। शप् एधआते–दशामे ङित्‌का फल।

(२२३५) **आतो ङित** अवयवषष्ठी। अतो येय से (अत या इय) भी अनुवृत्त। यका अ उच्चा०। अदन्त अङ्गसेपरे ङिद्वत् हुए प्रत्ययके आकारको इय हो। इस सूत्रसे आको इय हुआ। एध इय ते–स्थितिमे अ–इको गुण एकादेश आद्गुण से। वलि परे यका लोप। बालकौ एधेते दोनो युवा हो रहे है। छात्रा एधन्ते। पास होते जा रहे है। वर्धनक्रियाके बहुत आधार(अनेककर्ता) हो तब वर्तमाने लट्। बहुवचन झ–अन्त आदेश, शप्,टिसंज्ञकको एत्व। अकार पररूप एकादेश—त्व **बर्धसे** ज्ञान भण्डार हो रहे, हो का कर्ता सम्बोधनका त्व हो तब **एधसे**, लट् मध्यमपुरुषएकवचन थास्। जिसको टित् मानकर एत्व प्राप्त था। उसे बाधकर। (३६) **थास**–टित् लकार के स्थानमे आदेश

एधन्ते। (३६) **थास से ३।४।८०।।** टितो लस्य थास से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। 'अतो गुणे' । एधे। एधावहे। एधामहे। (३७) **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ २।१।२६।।** इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छत्यन्यस्तत आम् स्यात्लिटि। 'आमो मकारस्य नेत्त्वम' । आस्कासोराम्विधानाज्ज्ञापकात। (३८)

थासको 'से' हो। इससे 'से' हुआ जो लुप्त प्रथमाक है। एधसे। युवा एधेथे, वृद्धि क्रिया अहम आवामे हो। तब उत्तमपुरुषके कर्ताअर्थमे लट, उत्तमपुरुषका एकवचन इट्। इकौ टिसञ्ज्ञाकर एत्व। शप्–एध ए। अतो गुणेसे पररूप हुआ वृद्धिरेचिका बाधकर। एधे अह् प्रतिदिनम्। आवाम एधावहे–हम दोनो विकास करते है, विकास क्रियावाचक एधधातुसे उत्तमपुरुषकर्ता आवाम् अर्थमे लट् स्थाने द्विवचन वहि–आदेश। बहुत जन विकास करते है तब बहुवचन महि। शप् एत्वादि। अतो दीर्घो यञि। वयम् एधामहे–विद्या बल बुद्धिसे बढते है एधका अर्थ, लट्का अर्थ स्पष्ट किया गया। एक कर्तामे दो या तीन से अधिकमे विकाश क्रिया। वर्तमान कालिक हमसब कर्तामे वर्तमान वर्धन क्रिया, वयम् एधामहेका अर्थ। इति लट्प्रक्रिया।

अथलिट् प्रक्रिया— (३७) इजादेश्च =इच्–इ–उ–ऋ–ऌ ए–ओ ऐ–औ आदिमे हो (आदौ यस्य) ऐसी धातु तथा गुरु अस्ति अस्य गुरुमान्, दीर्घ (गुरुसञ्ज्ञक) हो किन्तु न ऋच्छ अनृच्छ –ऋच्छ न हो, ऐसे धातुसे आम् हो। लिट्परे। धातोरेकाचसे धातो, कास्प्रत्ययात्से आम् और लिट अनुवर्तते। दयायासश्च सूत्रभी, कास् आसधातुमे लिट् परे आम करना है। तब परतन्त्र हो विशेष क्रिया(एव भू जुहोतिधातु)के अनुकूल होता है सकर्मकसे सकर्मक और अकर्मकसे अकर्मक। अनुप्रयोग पराधीन होते हैं। माघ-तस्यातपत्र विभराबभूवे श्रीहर्ष –विभावरीभि विभराम्बभूविरे। आमके मकी इत्सञ्ज्ञा नही होती। यदि होती आम् पढना व्यर्थ होना और ज्ञापन देताकि आमो मकारस्य नेत्वम्। एध आम् ल् स्थितिमे। (३८) आम –आम्से परे (लिट्) लका लुक् हो, जो प्यक्षत्रियार्षसे आया। मन्त्रे घस्–से ले भी। लेर्लुक इति काशिका। कृदन्तमान्त ही अव्यय है व्याख्यानसे। एधाम् अव्यय नही तथापि धातुसे विधान है, कृदन्त प्रातिपदिक–स्वादि। प्रत्ययलक्षण परिभाषासे एधाम्को कृदन्तमान्त मानकर अव्ययसञ्ज्ञा। सुप्का अव्ययादाप्सुप। सुपो लुक्। एधाम अव्यय हो या न हो दोनो स्थितमे सुबन्तपद लिट्का लुक्। एधाम् से

आम २।४।८१॥ आम परस्य लुक्स्यात् । (३९) **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** ३।१।४०॥ आमन्ताल्लिट्परा कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते ।* 'आम्प्रत्ययवत्कृञो-ऽनुप्रयोगस्य' इति सूत्रे कृञ्ग्रहणसामर्थ्यादनुप्रयोगोऽन्यस्यापीति ज्ञायते । तेन कृभ्वस्तियोगे इत्यत ।- कृञो द्वितीय इति ञ रेण प्रत्याहाराश्रयणात्कृभ्व-स्तिलाभ । तेषां क्रियासामान्यवाचित्वादाम्प्रकृतीनां विशेषवाचित्वात्तदर्थयोर-भेदेनान्वय । सम्पदिस्तु प्रत्याहारेऽन्तर्भूतो प्यनन्वितार्थत्वान्न प्रयुज्यते । कृञस्तु

कृ लिट् का विधिसूत्र । (३९) कृञ् इस सूत्रमे आम् आया, पञ्चमी बना । **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** । आम अन्त (एधाम् आदि)मे लिटि परे कृ भू अस्का अनुप्रयोग (पश्चात् उपस्थित) हो । एधा कृ **लिट्** (भू लिट्, अस लिट्) ऐसी उपस्थिति हो । लिट् (परा शिरस्का) **कृभ्यस्तय** । कृञ् प्रत्याहारका लाभ । अनुप्रयुज्यन्तेमे अनुप्र उपसर्गमे पश्चात् (अव्यवहित) प्रयोग तथा भाष्य व र्तिकमे **विपर्यासनिवृत्त्यर्थं व्यवहितनिवृत्त्यर्थञ्च अनुप्रयोग** । त पातया प्रथममाम परात पश्चात् आदिमे प्रमाद है । सूत्रमे च पढा-भू अस् के भी सग्रहार्थ । सूत्रमे केवल कृ पढा, भू अस् नही, मान्यता का आधार बोले आम् प्रत्ययवत् कृञो-सूत्रमे कृञ्को अनुप्रयोगका विशेषण मानना व्यर्थ होता, यदि कृका ही लाभ होता । कृञ् पढनेकी शक्तिसे अन्यस्यापि= भू अस्का भी अनुप्रयोग प्रिय है । यदि ऐसा भू अस् आया कैसे ? तब कहा- तेन=कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यमाने-सूत्रसे सिद्ध है कि कृसे ञ् तक प्रत्याहार है । सङ्क्षिप्त वर्णके आधार पर कृ भू अस्का लाभ । ननु एधा के साथ भू लिट्का क्या सम्बन्ध होगा । **सामान्यविशेषयोरभेदान्वयस्य न्याय्यत्वात्** लोक सिद्ध । अत एधाञ्चक्रे एधाम्बभूवे शब्दका एक कर्तामे परोक्ष भूतकालकी वर्धन-विकास क्रिया अर्थ तुल्य है । यद्यपि एध भू अकर्मक है, करोति सकर्मक है तुल्य कैसे ? जब कृ धातु स्वतन्त्र हो तब सकर्मक । कृञ्की तरह भू अस् भी व्यापक क्रियाके बोधक है । धातुके अनेकार्थकतामे । **कृभ्वस्ति**-से कृ—ञ् के बीच **अभिविधौसम्पदा च** पढा ? तब कृञ् प्रत्याहारमे सम्पदाका स्वीकार न होना क्यो ? तब बोले-**सम्पदिस्तु**- यद्यपि प्रत्याहारमे है तथापि उनकासम्बन्ध ठीक न बैठनेसे अनन्वितार्थ है अत अस्वीकृत । क्योकि सिद्धवस्तु क रूपान्तर होना सम्पदाका अर्थ । एधाम् आदिका वृद्धि आदि अर्थ है दोनो का न सामान्यविशेषसम्बन्ध, न अभेदान्वय है । अत कृ भू अस् भी आम प्रत्ययवत् (एधाम्) के समान, कृञमे स्वरितञित् से आत्मनेपद सिद्ध है उसका

क्रियाफले परगामिनि परस्मैपदे प्राप्ते । (२२४०) **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** १।३।६३।। आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसविज्ञानो बहुव्रीहि । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात । इह पूर्ववत इत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन सम्बध्यते । पूर्ववदेवात्मनेपद न तु तद्विपरीतमिति । तेन कर्तृगेऽपि फले इन्दाञ्चकारेत्यादौ न तङ् (४१) **लिटस्तझयोरेशिरेच्** ३।४।८१।। लिडादेशयोस्तझयो एश् इरेच एतौ स्त । एकारोच्चारण ज्ञापक 'तङादेशाना

सूत्र क्यो ? तब कहा कृञिका क्रियाफल परगामी है परस्मैपद प्राप्त—अत आत्मनेपदविधायक सूत्र—

(२२४०) आम्प्रत्ययवत् अनुदात्तङित्से आत्मनेपद आया । आम्से आत्मनेपद सम्भव नही, तब कहा—**आम्प्रत्ययो**=इस बहुव्रीहिमे **अतद्गुणसम्विज्ञान**—=**तस्य अन्यपदार्थस्य गुणाः विशेषणानि तेषां सम्विज्ञान क्रियासम्बन्धेन ज्ञानं न विद्यते यस्य** । यथा—चित्रगुमानय । अन्यपदार्थ विचित्र गाय वाला पुरुषका आनय क्रियामे अन्वय, न चित्रका, न गौका, प्रसङ्गमे आम्प्रत्यय की प्रकृति एध आदि धातु ही आम्प्रत्यय है (तृतीयान्तसे वति) अनुप्रयुज्यते अनुप्रयोग । कर्ममें घञि, पञ्चमी अर्थमे षष्ठी । अत **आम्प्रकृत्या**=आम्की प्रकृति एध आदि धातुसे होने योग्य आत्मनेपद उसके तुल्य अनुप्रयोग किये गये कृञसे भी आत्मनेपद हो, परस्मैपद नही । यहा कृञ्प्रत्याहार नही । अनुप्रयोग होनेसे । अत इन्दाञ्चकारमे आत्मनेपद नही हुआ । परगामी फल होनेसे । न कहिये कि इन्दाञ्चकारमे स्वरित ञित्से आत्मनेपद प्राप्त है अत आह—**इह पूर्ववत्**, इस शङ्कापर आम्प्रत्ययवत् सूत्रमे पूर्ववत्सन से पूर्ववत् आया वाक्य भेदसे सम्बन्ध जुडा । **आम्प्रत्ययवत् कृञोनुप्रयोऽस्य** एकवाक्य । **पूर्ववत् कृञोऽनुप्रयोगस्य** । दूसरा वाक्य । जिसका तृतीयान्तसे वति । पूर्वेण एधादिना तुल्यम दोनों वाक्यके समान अर्थसे व्यर्थ हो द्वितीय वाक्य बोला कि **पूर्ववत् एव**=प्रथमधातु एध आदिके तुल्य आत्मनेपद हो, कृञसे भी । **तद्विपरीत न**—उसके विरुद्ध आत्मनेपद न हो । अत इन्दाञ्चकारमे आत्मनेपद नही हुआ । कर्तृगामी क्रियाफल होनेपर भी । **एधाम् कृ लिट्** । प्रथम पु० एकवचन । तको एश् आदेशका सूत्र—

(४१) लिट्के स्थानमे हुए आदेश त-झको क्रमसे एश् इरेच् हो । एशका श सर्वादेश (सहित त) के लिए है । ननु एश् इरेच्मे एकार क्यो बढा ? टि को एत्व होता ही, अत—एकारोच्चारण ज्ञापन देता है कि **तङादेशाना**

टेरेत्व न' इति। तेन डारौरसा न। कृ ए इति स्थिते। (४२) **असयोगाल्लिट् कित् १।२।५॥** असयोगात्परोऽपिल्लिट् कित्स्यात्।* 'क्ङिति च' इति निषेधात्। 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' इति गुणो न। द्वित्वात्पूर्वं यणि प्राप्ते, (४३) **द्विर्वचनेऽचि १।१।५९॥** द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये। (४४) **उरत् ७।४।६६॥** अभ्यासऋवर्णस्यात्स्यात्प्रत्यये परे।

त–आता–झके स्थानमे डारौरस हुआ हो तब एत्व न हो। एधा कृ ए शित्वात्सम्पूर्ण त स्थाने आदेश होनेपर। (४२) असयोगात् सयोगसज्ञक अक्षर न हो उससे परे (अपित्=तिप् सिप् मिप्को छोडकर) लिट् ङित् हो, जिसका फल क्ङिति चसे गुणनिषेध। कृ को सार्वधातुकार्धधातुयो मे गुण नही हुआ। लिट् स्थाने आदेश आर्धधातुक है। सार्वधातुकमपित्से ङित्का सम्भव नही, अत: सूत्र पढा। कृ ए इस दशामे द्वित्वको (पर होनेसे) बाधकर इको यणचिसे ऋको र यण् प्राप्त हुआ। यदि यण होता एकाच् न मिलता तब लिटि धातोरनभ्यासस्यसे द्वित्व नही होता। अत यण्का निषेध सूत्र–

(४३) द्विर्वचने=द्वित्व होनेका निमित्त कारण अचारे (ए) अच्के स्थान मे आदेश (ऋको र यण) न हो, द्वित्व करना हो तब। अचके साथ समानता के लिए द्विर्वचनका निमितमे लक्षणा। द्वि उच्यते येन परनिमित्तेन तद्-द्विर्वचनम्। दो बार उच्चारण हो जिस अच् परे वह अच् द्विर्वचनका कारण है। अच परस्मिन्से अच्। स्थानिवत्से आदेश। न पदान्तसे न अनुवृत्त हुए, जब द्वित्व होगा तब यण्। द्वित्व निमित्त न कहते तब दुद्यूष=दिव् धातुसे सन्। द्वित्वको बाधकर उत्व (व को उ) हुआ। तब यण् पहले होना ही है द्वित्वका निमित्त न होनेसे। अच् परे क्यो? जेघ्रीयते घ्रा धातुसे यङ्। द्वित्वक पहले ई घ्राध्मो से ईत्व होनेके लिए। वह ईत्व द्वित्वका निमित्त अच् नही है। अच क्यो पढा? असूसुपत्=स्वापिसे चङ्। पहले व को सम्प्रसारण होने के लिए। प्रसङ्गमे यण्के निषेधसे लिटि धातो: सूत्रसे द्वित्व एधा कृ कृ ए पूर्वकृको अभ्याससज्ञा, उसका फल। (४४) उ अत् ऋका षष्ठीरूप उ। अभ्याससज्ञक (कृ) के ऋको अत् हो, प्रत्ययपरे। (अत्र लोपो) अभ्यासस्य आया। अङ्गका अधिकार। प्रत्ययपरे अङ्गसज्ञा विधानसे प्रत्ययका लाभ। रपरत्व=ऋके स्थानमे 'अ' रपर हुआ। कर कृ ए बना। हलादि शेष से र का लोप। प्रत्यये कि? वव्रश्च। उरत् सूत्रमे प्रत्ययक्यो पढा? अङ्गसे प्रत्यय आक्षेप क्यो? उत्तर–वव्रश्चके लिए। यथा–ओ व्रश्चू छेदने–काटने इसने

रपरत्वम।* 'हलादि शेष'। प्रत्यये किं ? वव्रश्च। (२२४५) **कुहोश्चु** ७।४।६२।। अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेश स्यात। एधाञ्चक्रे। एधाञ्च-

---

टुकडा करने की क्रियावाचक **व्रश्चधातुसे** परोक्ष–आखोसे न देखी हुई बीत भूतकालकी छेदनक्रियाके कर्ता अर्थमे लिट् ति णल् द्वित्व। व्रश्च व्रश्च पूवको अभ्यास। लिटि अभ्यासस्य रेफस्य सम्प्रसारण–रको ऋ। वृव्रश्च अ। उरत् रपर हलादि शेष। **अत्र प्रश्न**–अभ्यासके वको सम्प्रसारण क्यो नही ? उरत से हुए ऋके स्थानपे अको अच परस्मिन्से स्थानिवत् भाव करेगे, सम्प्रसारण परे मिलेगा। **न सम्प्रसारणे सम्प्रसारण** के निषेधसे सम्प्रसारण 'र' परे पूर्व यण्–वको सम्प्रसारण नही होता। वको नही हुआ। यदि उरत् सूत्रमे प्रत्ययपरे नही कहेगे, उरत्का अत् परनिमित्तक नही होगा, तब अच परस्मिन्से स्थानिवद्भाव न होनेसे सम्प्रसारण परे न मिलनेसे वको सम्प्रसारण का निषेध नही होगा, प्रत्ययपरे हो, तब वको सम्प्रसारणका निषेध हो।

(४५) कुहो–कुश्च हच कुहौ तयो.। अभ्याससज्ञकके कवर्ग (क ख ग घ ङ) और हको चवर्ग (च छ ज झ ञ) हो। अत्र लोगो–से अभ्यास आया। स्थानी ६ है, आदेश पाच गणना क्रम सम्भव नही। कवर्ग, हका कण्ठ। च वर्गका तालुस्थान भिन्न। आभ्यन्तर प्रयत्न भी हकार चवर्गका नही है। अगत्या वाह्यप्रयत्न शरण है। क स्थानमे च होता हैं। अघोषश्वासविवार अल्पप्राण प्रयत्न मिलनेसे। द्वितीय अक्षर छ नही होता, महाप्राणके भेदसे। झ, ङ नही हो सकते, घोषसवारनाद वाला होनेसे। घ भी नही, महाप्राण के भेदसे। एव खके स्थानमे चवग छ होगा। महाप्राण प्रयत्नका साम्य अधिक होनेसे। चका महाप्राण। अका अल्पप्राण भेद है। घोषसवारनाद-प्रयत्नसे घ भी नही होगा। एव ग स्थाने ज। घ स्थाने झ। ङके स्थानमे ञ ही होगा। स्थानप्रयत्नके भेदसे। **हकारस्य घोषसवारनाद महाप्राणवत तादृशो वर्गचतुर्थ. सकार एव।** हके स्थाने झ ही होता है दूसरा वर्ण नही। **एधा क कृ ए।** अभ्यास कके स्थानमे 'च' हुआ। ऋको र यण्। मको अनुस्वार 'वा पदान्तस्य' परसवर्ण **एधाञ्चक्रे**–एक कर्तामे वर्धन–विकासकी भूतकालिक अलक्षित क्रिया। **एककर्तृका भूतानद्यतनपरोक्षिता वर्धन क्रिया।** उस क्रियाके दो कर्ता हो **एधधातुसे** कृ लिट–आताम्। **कृ आताम्** यण्का निषेध, द्विर्वचनेचिमे। कृको द्वित्व। ऋको अत्, रपर हलादिशेष। **कुहोश्चु। एधाञ्चक्राते।** समुदायघटक निमित्तकाभी निषेध मान्य। बढनेकी

क्राते। एधाञ्चक्रिरे। **(४६) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०॥** उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत परस्य वलादेरार्धधातुकस्येट् न स्यात्। उपदेश इत्युभयान्वयि। एकाच इति किं ? यङ्लुग यावृत्तिर्यथा स्यात्। स्म-

---

अलक्षित क्रियाके अनेक कर्ता हो। वृद्धि क्रियाव चक एधधातुसे बीते भूत-कालकी अलक्षित क्रियाके अनेक कर्ता अर्थमे लिट् स्थाने झ। उसको इरेच् हुआ लिटस्तझयो सूत्रसे। कृको द्वित्व चक्र बनानेकीविधि पूर्ववत्। एधाञ्चक्र इरे, र यण्। तुम सब धिकास पहले कर चुके हो अर्थमे एधाञ्चकृषे- वृद्धयर्थक एध धातुसे इजादेश्च गुरुमत से आम्। लिट् परक कृका अनुप्रयोग, लिट् स्थाने मध्यमपुरुष एकवचन थास् को 'से' हुआ। द्वित्व-कृ कृ कर कृ चकृ षत्वे एधाञ्चकृषेदशामे बलादि आर्धधातुक मानकर इट् प्राप्तिका निषेध-

(४६) एकाच् (ऋत् इत्) से धातु, नेड्वशिसे न आया। उपदेश= पाणिनिके प्रथम उच्चारणकी स्थितिमे जो धातु एकाच् (एको अच् यस्य) और अनुदात्तभी है। उमसे परे वलादि आर्धधातुक को इट् न हो। आर्ध-धातुकशब्द सूत्रमे न सुना है, न आया है। इट्से अनुमित है अर्थात लब्ध। यदि उपदेश एकाच्के साथ जुडे तब कर्तु मे इट् निषेध कैसे ? कृञ् धातुके आदि उदात्त होनेसे, अनुदात्त नही मिलेगा। यदि उपदेशका अनुदात्तमे अन्वय हो तब तुमुन् उदात्त भले हो उपदेश कालमे अनुदात्त है। इट् निषेधमे बाधा नही, तथापि एधाञ्चकृषे। इट् निषेध नही होगा क्योकि द्वित्व होनेपर, अने-काच् है तब कहा-उपदेश उभयान्वयि दोनोमे जुडना है। मध्यमणिन्यायसे एकाच और अनुदात्त दोनोसे सम्बन्ध हुआ।

एकाच इति किम् ? एकाचउपदेशे-सूत्रमे एकाच् क्या पढा ? उपदेश मे जिन अनुदात्त धातुओकी गणना होगी वे एकाच ही है अनेकाच् नही। तब एकाच क्यो ? यङ्लुक् प्रक्रियामे चर्करितम इत्यादिमे इट् निषेध रोकने के लिए। परन्तु एकाच् पढनेपर भी यङ्लुक्मे इट्की प्राप्ति कैसे ? वह तो सयडो से द्वित्व करके अनेकाच् हो गया। एकाच् उपदेशे इट्का निषेध कैसे करेगा ? तब कहा स्मरन्ति-प्राचीन आचार्योने कारण बद्ध किया कि श्तिपसे शपसे अनुबन्धमे उच्चारित, गणसे निर्दिष्ट और जहा एकाच् ग्रहण हो, इट आदि कार्य, यङ्लुक्मे नही होते। पिपक्षति बिभत्सति आदि प्रयोगोमे इट् निषेध। श्तिपासे उच्चारित। जैसे स्यति हन्ति याति वातिद्राति आदिमे

रन्तिहि— 'श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्ट यद्गणेन च ।
यत्रैकाज्ग्रहण चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि '॥ इति ।

एतच्चेहैव एज्ग्रहणेन ज्ञाप्यते । अच इत्येवैकत्वविवक्षया तद्वतो ग्रहणेन च सिद्धे एकग्रहणसामर्थ्यादनेकाचकोपदेशो व्यावर्त्यते । तेन वधेर्हं-त्युपदेशे एकाचोऽपि न निषेध । आदेशोपदेशेऽनेकाचकत्वात । अनुदात्ताश्चानुपदमेव सग्रही-

श्तिप्से उच्चारित हन् धातु आदिका लुङ् आदि । प्रन्यजङ्घनीत् इत्यादिमे नेर्गदनदसे न णत्व । शप्से निर्दिष्ट 'भर' भृञ् भरणका सूचक सन् हुआ बिभरिषतिमे सनीवन्तर्ध सूत्रसे इट् बिकल्प नही हुआ, किन्तु नित्य इट् । एकाच्च उपदेशका निषध नही लगा, उक्त ज्ञापनसे । अनुबन्धसे उच्चारित दो है । स्वरूासे इत्सज्ञासे,स्वरूपेण–शीङ सार्वधातुकके गुण । शेषिन मे तस् गुण नही हुआ । इत्सज्ञक अनुदात्तङित् आत्मदेपद नही होता । पास्पर्द्धीत् बार बार सघर्ष करता है शेषयीति बहुत सोता है, न आत्मनेपद । गणेन सकेतित । यथा–वेभिदीति बहुत तोडना है रुधादिभ्य श्नम् एकाच्च पढने से यङ् लुक्मे इट निषेध होगा । परन्तु परिभाषा श्लोकमे पढे निर्देश प्राचीन आचार्य सम्मत है पाणिनि सम्मत नही, तब कहा एतच्च=श्तिपाशपा–श्लोक मे सभी कारण इहैव=इसी स्थलमे एकाच् ग्रहणसे, एकदेशकी अनुमतिसे ज्ञापित है । एकाच ग्रहणका फल वेभेदिता चेच्छेदिता आदिमे इट् निषेध नही हुआ । उक्त पाच यङ्लुकमे नही होते एकाच् ग्रहणके ज्ञापन देनेसे । उक्त श्लोक ज्ञापन है ।

हनो बधलिङि, लुङि च । हन्धातुको बध आदेश करनेपर अवधीन्मे इट् क्योंकि बध आदेश भले ही अनेकाच् हो हन्धातु उपदेशका एकाच् है इट् निषेध होगा । तब कहा–अच् इत्येव=ऐकाच् उपदेशे सूत्रमे एकको अलगकर अच्मे एकवचन पढनेपर एकाच् अर्थका लाभ होगा । एकत्वके त्यागमे प्रमाण नही । न कहियेकि एकसख्या सहित अच्सेपरे वही अर्थ खुलेगा, एको अच् यस्य स एकाचक । बहुव्रीहि अर्थ नही खुलेगा, अनुदात्तोपदेशकी गणनामे पचि मुचि आदि परिगणनशक्तिसे अच्का मत्वर्थमे लक्षणासे एकाज्वत• इसप्रकार एकाच् का अर्थ खुलेगा, तथापि एकग्रहणके सामर्थ्यसे उपदेशमे सर्वत्र एकाच् ही लिया जाय । किसी (आदेश) के उपदेशमे अनेकाच् न लिया जाय । इस प्रकार वध आदि आदेश उपदेशमे अनेकाच् होते हुए हन की दशामे एक अच् व्या-वर्तते अत• उपदेशमे एकाच् अर्थ लाभसे बध आदेश पर इट् निषेध नही

ष्यन्ते। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे। (४७) **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८॥** इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य मूर्धन्यः स्यात्। एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूव। अनुप्रयोगसामर्थ्यादस्तेर्भूभावो न। अन्यथा हि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते' इति 'कृभु' इति

होगा। क्योकि आदेश बधके उपदेशावस्थामे अनेकाच् होनेसे। बध आदेश क्यो? अतो हलादेर्लघोः की वृद्धि रोकनेके लिए।

नतु के ते अनुदात्ता धातवः। अनुदात्तधातु अनुपदमेव=पदस्य पश्चात् अनुपदं पदमात्रे अतीते सति। एध धातुके तिङन्तपद समाप्तिके बाद सगृहीत होगे। इट नही हुआ। 'से' प्रत्ययके अवयव सको ष। एधाञ्चकृषे। तुम कर्तामे अनद्यतन=बीते भूतकालकी परोक्षा विकासक्रियाके दो कर्तामे लिट्—आथाम। टेरे—टिको एत्व यण् एधाञ्चक्राथे।

(४७) इणः षीध्व—लुङ् लिट्मे द्वन्द्व। धः षष्ठी। इणः अङ्गविशेषण। तदन्तविधि। अपादान्तस्य मूर्धन्यका अधिकार। इण् अन्तमे हो ऐसे अङ्गसेपरे षीध्व या लुङ लिटसे सम्बन्धित धको मूर्धन्य=ऋटुरषाणां मूर्धा स्थानवाला हो। परन्तु धको मूर्धन्य ढ हुआ। हश. (घोष सवार नाद) महाप्राण प्रयत्न मिलनेसे। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ (ध ढ) महाप्राण है। एधाञ्चकृढ्वे=वर्धन विकास क्रियावाचक एधधातुसे अद्यभिन्नभूतकाल परोक्ष हो क्रियाविशिष्ट अनेककर्ता यूयमअर्थमे लिट्। ध्वम् आदेश। टिको एत्व। द्वित्व आदि एधाञ्चकृध्वे इणः षीध्व सूत्रसे धको ढ एधाञ्चकृढ्वे। यूयम भिन्नबहुकर्तृकापरोक्षानद्यतन भूतकालिकी विकासानुकूला क्रिया। अहं एधाञ्चक्रे पता नही कब विकास किया। उत्तमपुरुष इट। एत्व आदि। पूर्ववत्। वहि महि आदेश होने पर टे. एत्वे द्वित्वादि। इस प्रसङ्गमे असयोगात् लिट्के कित्से गुण नही।

आम्प्रत्ययवत्—सूत्रमे कृञ प्रत्याहार नही किन्तु कृ धातु है। एधके अनुसार कृसे आत्मनेपद हुआ। परन्तु भू लिट, अस् लिट्के अनुप्रयोगसे आत्मनेपद नही होगा। किन्तु परस्मैपद। एधाम् भू लिट्। तिप् णल आदेश। द्वित्वादि से बभूव बना है। एधाञ्चक्रके समान एधाबभूवका अर्थ। क्रिया सामान्यार्थक एककर्तामे परोक्षानद्यतन भूतकालकी बढना क्रिया। शेषात्कर्तरिका प्रभाव था। भाव कर्ममे आत्मनेपद होता ही है एधामबभूवे इक्षाबभूवे। लिट् स्थानमे आदेश आर्धधातुक है तथापि अस्तेर्भू=अस्के स्थानमे भू आदेश नही होता, अनुप्रयोगकी शक्तिसे। कृञ्चानुऽप्रयुज्यते सूत्रमे कृञ् प्रत्याहार है

वा ब्रूयात् । (४८) अत आदे ७।४।७०॥ अभ्यासस्यादेरतो दीर्घ स्यात् । पररूपाऽपवाद । एधामास एधामासतुरित्यादि । एधिता । एधितारौ । एधितार एधितासे । एधितासाथे । (४९) धि च ८।२।२५॥ धादौ प्रत्यये परे सलोप

क्र भू अस्‌का स्मारक, अनुप्रयोग विधानसे । अन्यथा=अस्‌को भू आदेश होना होता तब कृञ्च अनुप्रयुज्यते अथवा कृभ्वचानुप्रयुज्यते ही पढते । अत न भू आदेश । एधाम् अस् लिट् । तिप् णल् अ । असको द्वित्व हलादि शेष एधाम् अ अस् अ । अ असको प्राप्त सवर्णदीर्घको बाधकर अतोऽगुणेसे पररूप प्राप्त । उसे बाधकर । (४८) अत आदे (अत्र लोपेसे)अभ्यासके आदि अत् (ह्रस्व अकार) को दीर्घ हो (जो दीर्घ इण से आया) पररूपको बाधकर एधामास एधामासतु एधामासु । एधामासिथ एधामासथु एधामास, एधामास एधामासिव एधामासिम । वृद्धयनुकूला क्रिया धातुका अर्थ । परोक्ष भूतकाल और कर्ता लिट्‌का अर्थ । इति लिटप्रक्रिया ।

अथलुट्प्रक्रिया—लुट्‌का अनद्यतन भविष्यकाल और कर्ता अर्थ । एधिता मङ्गल—वृद्धि—विकासक्रिय वाचक अतएव भूवादयो धातव से धातुसञ्ज्ञक, एधधातुसे अनद्यतन भविष्यकालिक वृद्धि क्रियाके कर्ता अर्थमे लुट्-त आदेश । एध त । शप् बाधकर लुट् परे तास उसको आर्धधातुकसञ्ज्ञा । बलादि इट् । एधितास् त । लुटके स्थानमे प्रथमपुरुष तको डा आदेश । ड इत् होनेकी शक्तिसे तासके आस्‌का लोप । एधिता । लघूपध—गुण नही होना, दीधीवेवीटा के निषेधसे । एधितारौ । उक्त क्रियावाचक एधसे अद्यभिन्नभविष्यकालिक क्रियाके दो कर्ता अर्थमे लुट् । तास्, इट् । आतामको रौभाव । 'रि च'से तास् के सका लोप । एधितार । झके स्थानमे रस तास् आदि पूर्ववत् । सको रुत्वविसर्ग । अनेक कर्तामे आनेवाली बढना क्रिया । सर्वे परश्व एधितार परसो उन्नति करेगे । त्व मासान्तरम् एधितासे थास से तास् इट् । तासस्त्यो से सलोप । युवा सप्ताहानन्तर एधितासाथे आथा, टिको एत्व आथे तास् इट् आदि । यूय त्रिदिनान्ते । एधिताध्वे । एधितास् ध्वे स्थितमे—

(४९) धि च स स्यार्ध—से स आया । तासस्त्यो से लोप । अङ्गसे सूचित प्रत्यय धिमे विशेषण तदादिविधि । धादौ=ध आदिमे हो ऐसा प्रत्यय परे स का लोप हो । इति सलोप । यूयम भिन्नानद्यतन भविष्यकालकी उन्नति क्रिया अह कर्तामे हो तब लुट् इट् । टेरे । तास् इट् ऐधितास् ए—दशामे ।

(२२५०) ह एति तास् अस्‌के सको हको एति परे । स स्यार्धधातुकसे

स्यात्। एधिताध्वे। (२२५०) ह एति ७।४।५२॥ तासस्त्यो सस्य ह स्या देति परे। एधिताहे एधितास्वहे एधितास्महे। एधिष्यते एधिष्येते एधिष्यन्ते। एधिष्यसे एधिष्येथे एधिष्यध्वे। एधिष्ये एधिष्यावहे एधिष्यामहे। (५१) आमेत ३।४।९०॥ लोट एकारस्यामस्यात्। एधताम् एधे-

---

आया। तासस्त्यो भी अनुवृत्त। इस सूत्रसे तास्के मको 'ह' जो एमे मिला। एधिताहे। मदभिन्नैककर्तृका आगामिभविष्यकालिकी विकासजननीक्रिया वहि महि परे टिको एत्व। शेष पूर्ववत्। एधितास्वहे मम उत्सव श्व।

एधिष्यते–विकास या मङ्गल क्रियावाचक एधमे साधारण भविष्यकाल की उन्नति क्रियाके एककर्तामे लृट् त। टे ए, शप बाधकर 'स्यतासी' सूत्रसे स्य इट्। स्य प्रत्ययएका अवयव सको ष। एधिष्येते-समुन्नति क्रियाके दोकर्ता हो, तब लृट्को आताम आदेश। टि (आम) को एत्व स्य इट। आतो ङित आ को इय। लोपो व्यो से यलोप आद्गुणे। आदि सैनिका एधिष्यन्ते अनेकलोग विकसित हो तब झ। टेरे। झोऽन्त। स्य इट् पररूप आदि। थास से एधिष्यसे। तुम बढोगे। आथामको आथे। एधिष्येथे। तुमदोनो सम्मुन्नति करोगे। जब ध्वम् त्व। एधिष्यध्वे। भावी विकास क्रिया मुझमे हो तब उत्तमपुरुष इट्। एत्व स्य इट् षत्व। पररूप अह एधिष्ये। वहि महिको टेरे (टे ए) अतो दीर्घो यञि। वय सदा एधिष्यामहे।

अथलोट्प्रक्रिया। (५१) आम् एत। लङ्वतसे लोट् आया। लोट्के स्थानमे हुए आदेश(त आता झ) आदिके अवयव एत्व (टे ए)को आम् आदेश हो। लोट्का विधि आज्ञा प्रेरणा निमन्त्रण आमन्त्रण सम्प्रश्न प्रार्थना आदिके अनुकूल क्रियाका आश्रय कर्ता अर्थ। वृद्धिकियावाचक एध धातुसे तुम बढो विकास करते रहो, सम्मुन्नति वास्ते। निमन्त्रण अनिवार्य प्रेरणा इच्छा होके अनुकरण क्रियाके कर्ता अथम लोट्। प्र०पु० एकवचन त शप्–अ। टित आत्मनेपदानाम्से टिको एत्व जिसको आमेत से आम् हुआ। एधाताम्। उक्त क्रियाके दोकर्ता हो आताम्,एत्व शप्,अपित्सार्वधातुक ङित्। अत आको इय। एध इय ताम् गुणे,यलोपे, आमेत एको आम्। एधेताम्। एधन्ताम् सर्वे बन्धुवर्गा। झ(टेरे) अन्त आदेश। त्वम् अग्रे एधस्व। आज्ञा प्रेरणाका विषय त्व कर्ता हो तब वृद्धि क्रियावाचक एधसे लोट्। थासः से शप्। एधासे स्थितिमेसे मे एको व होनेका विधिसूत्र—

ताम् एधन्ताम् । (५२) **सवाभ्यां वामौ ३।४।९१।।** सकारवकाराभ्यां परस्य लोडेत क्रमात् व अम् एतौ स्त । एधस्व एधेथाम् एधध्वम् । (५३) **एत ऐ ३।४।९३।।** लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । आमोऽपवाद । एधै एधावहै एधामहै । (५४) **आडजादीनाम् ६।४।७२।।** अजादीनामाट् स्याल्लुङादिषु, अटोऽपवाद । आटश्च । ऐधेत ऐधताम ऐधन्त । ऐधथा ऐधेथाम् ऐध-

---

(५२) सवाभ्या—सश्च वश्च सवौ ताभ्या । स(व)से परे लोट्से सम्बन्धित एको व हो, व से परे एको अम् हो । वश्च अम् च वामौ । आमेत का बाधकर ए-को व 'अ' सहित आदेश । एधस्व । युवा प्रवचने एधेथाम् । आथाम, टिको एत्व शप् आतोङित मेआको इय । एधा इय थाम् गुणे,यलोपे । आमेत ध्वम् टिको एत्व । व से परे एको अम् आदेश (सवाभ्या वामौसे) अहम् अध्ययनाय एधै । एधधातुसे विकास क्रियाके प्रेरणाका विषय अहम् कर्तामे लोट् । उ०पु० एकवचन इट् एत्व शप् । एधा ए । दशामे आमेत से प्राप्त आम्को बाधकर ।(५३)एत ऐ—लुप्त प्रथमा । लङवत्से लोट्, आडुत्तमस्यसे उत्तमस्य अनुवृत्त । लोट्के उकारसे सम्बन्धित उत्तमपुरुषका अवयव एको ऐहो । आडुत्तमस्यसे आट् एधा आ ए आटश्च वृद्धौ एध ऐ वृद्धिः एचि । एधै वहि महि परे टिको एत्व, एको एन ऐ । आट् (लोडुत्तम) सवण दीर्घ एधावहै । वय सर्वे एधामहै । इति लोट्प्रक्रिया ।

अथलङ्प्रक्रिया । (५४) आट् । अच् आदौ येषा ते अजादय तेषा । अच् प्रत्याहार आदिमे हो उन धातुओको आट् हो, अट्को बाधकर, लङ् लुङ् लृङ् परे । यदि अट् होता वृद्धिको बाधकर परत्वात अतो गुणेसे पररूप होता, वृद्धि न हो पाती । आटका असली फल यही है कि आटश्चसे वृद्धि हो । यद्यपि एत्येधत्यूठसुकी वद्धिसे सिद्ध होता, तथापि ऐक्षतके लिए आट् आवश्यक यहा भी सूत्र पढना उचित है । ऐधत । वृद्धयथक=विकास क्रिया वाचक एधधातुसे अनद्यतन भूतकालिक समुन्नति क्रियाके कर्ता अथमे लङ् । प्रथमपुरुष एकवचन त,शप् अ । आट् आगमे । आ एअत आटश्च वृद्धि । टित् लकार नही न एत्व । स परश्च ऐधत । विकास कर चुका,लङ् लकारका बीते भूतकालकी क्रियाका कर्ता अर्थ । (आडजादीनाम् सूत्र भाष्ये प्रत्याख्यातम्) उक्त क्रियाके दो कर्ता हो तब लङ् स्थाने आथाम् । शप् आट्, वृद्धि आथाम् के अको आतो ङित से इय । आद्गुण यलोप । ऐधेथाम् । ऐधध्वम्,सप्ताहात्पूर्वं यूयम् । आपलोग हप्ता पहले बढ चुके । ध्व शप् वृद्धि । यूयम् अभिन्न बहु

ध्वम्। ऐधे ऐधावहि ऐधामहि। (२२५५) लिङ सीयुट् ३।४।१०२॥ (लिङात्मनेपदस्य सीयुडागम स्यात्) सलोप। एधेत। एधेयाताम्। (५६) झस्य रन् ३।४।१०५॥ लिङो झस्य रन्स्यात्। एधेरन्। एधेथा एधेयाथाम। एधेध्वम्। (५७) इटोऽत् ३।४।१०६॥ लिङादेशस्येटोऽत् स्यात्। एधेय एधेवहि एधेमहि। आशीर्लिङि आर्धधातुकत्वाल्लिङ सलोपो न। सीयुट्सुटो

कर्तृक अनद्यतन भूतकालिक वर्धनानुकूल व्यापार। ऐधे-मदभिन्नकर्तृक: वृद्ध्यानुकूलव्यापार,। मुझकर्तामे बीते भूतकालकी बढना क्रिया। एधसे इट् शप् गुण आट्, वृद्धि, वहि महिपरे शप् आट् आदि, अतो दीर्घ इतिलङ्विधि।

अथलिङ्प्रक्रिया। (२२५५) लिङ्के स्थानमे आदेशको सीयुट् आगम हो। ट इत उ उच्चा० एधेत-मङ्गलार्थक एधधातुसे आज्ञा प्रेरणा निमन्त्रण अधीष्ट आदिका विषय हो। सम्मुन्नति कर्तामे लिङ्-त आदेश। लिङ सीयुट् आगम, शप्। एध सीय त। लिङ सलोप। आद्गुण। लोपो व्योर्वलिसे यलोप। गुरुशिष्यौ एधेयाताम्। बढनेके लिए आमन्त्रित हो। प्रथमपुरुष द्विवचन आताम्। सीयुट् शप् गुणे। आज्ञा प्रेरणा आदिका विषय अनेक कर्ता हो तब आत्मनेपद झ। (५६) झस्य-लिङ्के स्थानमे हुए झको रन् आदेश हो। लिङ् आया। अनेक अल्से सर्वादेश। एध-रन् शप् सीयुट् सलोप गुण। यलोप एधेरन्। इसी प्रक्रियासे थास् सीयुट् शप् आदि पूर्ववत्। थास् के सको रुवि०। एधेथा। एधेयाथाम्। आथामके आ परे यलोप नहीं। एधेध्वम्। ध्वमको सीयुट् आदि। यूयम् अभिन्न वृद्धिविषयक सम्भावनानुकूल व्यापार। (५७) इट अत्। लिङ आया। उसके स्थानमे हुए आदेश इट को अत हो। अहम एधेय मैं उन्नति करू। एधसे लिङ्, इट्। इटो अत्। शप् सीयुट् एध सीय अत् लिङ सलोपोऽनन्त्यस्यसे सलोप। आद्गुणे एधेय। वहि महिपरे वही काय, एधेमहि हमलोगोमे बढनेकी प्रवृत्ति। इति विधिलिङ्विधि-

आशीर्लिङ्-वृद्धि। विकास सम्मुन्नतिके लिए आशीर्वाद (अप्राप्त) अलब्ध लाभकी शुभ कामना) अथ। स सदा एधिषीष्ट सदा उन्ननिकी कामना अर्थमे क्रियावाचक एधसे कर्तामे लिङ्। लिङाशिषिसे आर्धधातुकसज्ञा, लिङ्के स्थानमें त आदेश। लिङ सीयुट्, सुट् (तिथो) आर्धधातुक है। न सकार लोप., लिङ सलोप सूत्रमे सार्वधातुक ग्रहणसे। न शप्, आर्धधातुक होनेसे। वलादिपरे इट्। एधिषीय स त। लोपो व्यो से यलोप। सीयुट् सुट् के सको ष हो। प्रत्ययका अवयव 'स' मानकर आदेशप्रत्ययो से। तको ष्टुत्व ट।

प्रत्ययावयवत्वात्षत्वम्। एधिषीष्ट एधिषीयास्ताम एधिषीरन्। एधिषीष्ठा। एधिषीयास्थाम। एधिषीध्वम। एधिषीय एधिषीवहि एधिषीमहि। ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्। (५८) **आत्मनेपदेष्वनत** ७।१।५।। अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य 'अत्' इत्यादेशः स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठा ऐधिषाथाम्,

---

तदभिन्नैककर्तृक प्ररणाविषय वधनस्य विकासस्य च शुभकामनानुकूलव्यापार। छोटेको बडा होनेकी कामना का विषय दो हो, तब एध—कर्तामे लिङ् द्विवचन आता, सीयुट् इट्। एधिसीय आताम्। जिसमे तके पहले सुट्। षत्व एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन् बहुतलोग बढें,बहुवचनमे झ झस्य रन्, सीयके यका लोप। शेषकार्यं पूर्ववत्। बहु—अभिन्नकर्तृकवर्धनप्रेरणा विषयक शुभ कामनानुकूलाक्रिया। एधिषीष्ठा. थास्। वलादि आर्धधातुक इट् सीयुट् थको सुट्। एधिषी स् थास् दोनो सको ष। थको ष्टुत्व ठ। सको रुवि० वृद्धि। विकासविषयक शुभकामनानुकूल व्यापारानुकूलप्रयत्नवाँस्त्वम्। न्यायरीति। उक्त शुभकामनाका विषय दो हो तब आथाम्, थके पहले सुट्। शेषकार्य पूर्ववत्। एधिषीध्वम् युयम। पूर्ववत् कार्यं। इण षीध्वमसे धको ढत्व क्यो नही ? इट् अन्त अङ्गसे परे न होनेसे। इण् परे होने पर भी इट् प्रत्ययका भक्त है। उत्तमपुरुषका कर्ता अहं आवां वय हो। बढने की कामनाका विषय हो तब एध-से इट्। इटो अत् विशेष। एधिषीय। वहि महि परे तथा। सीय इट् षत्व। हम सब विकासकर्तामे बढनेकी शुभकामना की क्रिया। इति आशीर्लिङ्।

अथलुङ्प्रक्रिया। ऐधिष्ट। भूतकालिकवधनक्रियानुकूलचेष्टावान् चैत्रः, वृद्ध्यर्थक एधधातुसे साधारण भूतकालकी क्रियाके कर्ता अथम लुङ्। प्रथम पुरुष एकवचन त आदेश, शप् बाधकर च्लि (कर्तामे) च्ले सिच् स। वलादि आर्धधातुक परे इट्। अजादि है आट्—आटश्च वृद्धि। ऐधिषत। आदेश रूप सको ष, तको ष्टुत्व। स ऐधिष्ट बहुत बढ गया। दो कर्ता बढे हो तब एध आताम। च्लि सिच् परे इट आगम,आट वृद्धि षत्व। ऐधिषाताम्। ऐधिषत ऋषि उन्नति किये है। ऐधिषि विकासार्थक एधसे भूतकालिक विकास क्रियाके बहुत कर्ता अर्थमे लुङ् बहुवचन झ आदि। झको झोऽन्त से अन्तादेश प्राप्त। (५८) **आत्मनेपदे** परे रहते अनकारात् (न अत अनत् तस्मात्) अकारसे परे न हो ऐसे आत्मनेपदके अवयव झको अत् आदेश हो। शप् न होनेसे, य अकार अन्त न रहनेसे झको अत् हुआ। (झोऽन्त'से) झ।

'इण षी॰ध्वलुङ्लिटा धोऽङ्गात्'। ऐधिढ्वम्। इङ्भिन्न एव इणिह 'गृह्यते' इति मते तु ऐधिध्वम्। ढधयोर्वस्य मस्य च द्वित्वविकल्पात्षोडश रूपाणि। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। ऐधिष्यत ऐधिष्येताम् ऐधिष्यन्त। ऐधि

अदभ्यस्तात्मे अत आया। आत्मनेपदेषुकी सप्तमी षष्ठी अर्थ। एत्र अत। च्लि च्ले सिच् इट्। अजादिधातुको आट् आटश्च वृद्धि। आदेशप्रत्ययो षत्व ऐधिषत। भूतकालिक बढना क्रियाका कर्ता त्व हो तत्र थास्। च्ले सिच्। इट् आट् वृद्धि षत्व। थको ठ (ष्टुत्व) रुचि। आथाम् परे पूर्ववत्। ऐधि-षाथाम्। ध्वम्के धको ढत्वका स्मरण–इण षीध्व लुङ्लिटा–लुङ् सम्बन्धी ध को ढ इत्यादि। इट् आट् पूर्ववत्। ऐधिढ्वम्। धि चमे स गौर। धादि प्रत्यय परे है। सिच्के लुप्त होनेपर इट अन्तमे इगन्त अङ्ग रिद्ध। प्रयोग होनेमे सुविधा। जिस मतमे इट्से भिन्न इण् लिया जाय तब ढत्व नही होता। ऐधिध्वम्। विभाषेट मे इट्ग्रहणके प्रमाणसे। तु पाठसे मतान्तर भाष्यानारुढसूचित। ढधयो.–ढ ध परे व और मको द्वित्वसे, विकल्पसे, अनचि चकी कृपासे, यणोमयो द्वे वाच्यः। मय पञ्चमी पक्षमे वको द्वित्व विकल्प आदि। एक ध, दो ध। एक ढ, दो ढ। चाररूप। एक व, दो व से आठ रूप सबका एक म, दोम, भेदमे षोडशरूपाणि। ऐधिषि—तुम बढ चुके। त्वम् कर्तामें लुङ् उ०पु० इट् तब च्ले सिच्। आट् इत्यादि। वहि महि परे च्लि सिच् इट् आट् वृद्धि ऐधिष्महि। वयमभिन्नकर्तृक भूतकालिक बर्धना नुकूलव्यापार। भूतकालमे बढना क्रियाका कर्ता लुङ्का अर्थ। इति लुङ्।

अथलृङ्प्रक्रिया। जिसका भविष्यकालमे कार्यकारण भावकी क्रियाका कर्ता अर्थ। यदा ऐधिष्यत तदा प्रतिष्ठा अभविष्यत्। जब बढोगे तब इज्जत होगी। विकासार्थक एधसे कार्यकारण भाववाली क्रियाके कर्ता अर्थमे लृङ् प्रथम पुरुष त। स्य इट् आट वृद्धि षत्व। हेतु हेतुमान क्रियाके दो कर्ता हों आताम्, स्यइट् आतो ङित से आको इय। आद्गुण यलोप आट् आदि ऐधि-ष्येताम् ऐधिष्यन्त--बहुवचन झ।

यदा ऐधिष्यत तदा विवाहोऽभविष्यत्। वर्धनक्रियावाचक एधधातुसे भविष्यकालिक क्रियाके कार्यकारणभावके कर्तामे लृङ्। उसके स्थानमे उसी अर्थका प्रकाशक त आदेश। 'स्यतासी' से स्य प्रत्यय, वलादि आर्धधातुक जानकर इट्। आट आटश्च वृद्धि। षत्व। जब द्विवचनमे आताम् आया तब आतोङितः आ के इय। गुण, यलोप विशेष होगा। रामलक्ष्मणौ ऐधिष्येताम्

ष्यथा. ऐधिष्येथाम् ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये ऐधिष्यावहि ऐधिष्यामहि।
उदात्तत्वादृलादेरिट्प्रसङ्गादनुदात्ता सङ्गृह्यन्ते—

ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

सुबाहुमार्गीचौ अहनिष्येतां,जना ऐधिष्यन्त कायमकरिष्यन्। झप्रत्ययके झको अन्त आदेश विशेष है। शेष स्य इट् आट वृद्धि षत्व पूर्ववत्। त्व ऐधिष्यथा पुरस्कारो अभिलष्यन् विकास करोगे इनाम मिलेगा। थास्के सको रुवि विशेष शेष पूर्ववत्। आथाम् आको आतोङित से इय। गुण यलोप। युवा ऐधिष्येथा गुरो कृपा अभविष्यत्। यूय ऐधिष्यध्व। अह ऐधिष्ये सुखी अभविष्यम। वहि महि परे अतो दीर्घो यञिसे दीर्घ। ऐधिष्यावहि वय एधिष्यामहि तदा परिवारा ऐधिष्यन्त।

प्रश्न —एधधातुका अनुदात्त अ इत्सञ्ज्ञक है एकाच् भी, उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्रसे इट् निषेध क्यो नही तब कहा—अनुदात्तत्वात्=एध उदात्त है वलादि इट् होगा, निषेध नही। यद्यपि एध अनुदात्त इत् है तथापि एधधातु अनुदात्त नही, अका लोप हो चुका। प्रश्नः—कतिपय धातु पाणिने अनुदात्त पढा,आधुनिक कैसे समझें तब कहा—प्रसङ्गात्=सही अवसर पर अनुदात्त धातुओका सग्रह करते है। क्योकि स्मृतस्य उपेक्षा अनर्हत्वं प्रसङ्ग। जैसे शिष्य परम्परासे अनुनासिक ज्ञानका विषय है एव अनुदात्त धातुका परम्परासे ज्ञान होगा। उनकी गणना क्रमसे सुने। उदृदन्तै—अजन्त धातुओमे ऊदन्त भू लू घू आदि धातु ऊकारान्त। ऋदन्त कृ तृ इत्यादिके बिना सभी अनुदात्त है। यु मिश्रणामिश्रणयो रु शब्दे, रुङ् गतिरेषणयो। क्ष्णु तेजने, शीङ् स्वप्ने। स्नु, णु स्तुतौ। क्षु शब्दे। टुओ श्वि गतिवृद्ध्यो। डीङ् विहायसा गतौ आकाश, श्रिञ् सेवाया इनको छोडकर सभी अजन्त धातु एकाच् अनुदात्त है। वृङ् सम्भक्तौ, वृञ् वरणे इनके बिना अजन्त(एक अच्वाले) निहता=अनुदात्त मान्य पाणिनि शिष्यपरम्परासे ज्ञानका विषय है। अनुनासिकवत् ऊर्णुत ऊर्णुतवान् सिद्धिके लिए णुवद्भाव मान्य। भाष्यमे वार्त्तिक ऊर्णोर्णुवद्भावो इयङ् प्रसिद्धि प्रयोजन आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेदुपग्रहात्। उपग्रहः प्रतिषेध। इट् प्रतिषेधार्थमित्यर्थ।

हलन्त धातुओमें अनुदात्तकी गणना। शक्लृ एक है ल इत्। भाष्यमे अनुबन्ध रहित पाठ है। जागृदीधी० आदिका

शक्लृपच्मुच्रिच्वचविचसिच्प्रच्छित्यज्निजिरभज ।
भञ्ज्भुज्भ्रस्ज्मस्जियज्युजरुज्रञ्जविजिर्स्वञ्जिसञ्ज्सृज ॥
अद्क्षुद्खिद्छिदतुदिनुद पद्यभिद्विद्यर्तिविनद् ।
शदसदी स्विद्यति स्कन्दिहदी क्रुध् क्षुधिबुध्यती ॥
बन्धिर्युधिरुधी राधिव्यधशुध साधिसिध्यती ।
मन्यहन्नाप्क्षिप्छुपितप्तिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥
लिप्लुप्वप्शप्स्वप्सृपियभ्रभलभ्गमनम्यमोरमि ।

भी । च अन्त हलन्त धातुओमे ६ है डुपचष् पाके पचि, व्यक्तीकरणे । मुच्लृ मोक्षणे । रिचिर विवेके । रिच वियोजनसम्पर्चनयो, वच परिभाषणे ब्रुवो वचि यौजादिक भी । विचिर पृथग्भावे । पिचिर क्षरणे, षट् अनुदात्त है । परन्तु पच् मान्य, पचि नही । मोक्षमान्य, मुचि कल्कने नही । किसीके मतमे मान्य भी है । छ अन्त धातुओमे प्रच्छ एक । प्रच्छी—इकार इत् । जान्तेषु=ज अन्त धातुओमे त्यज त्यागे । निज्=णिजिर शौचपोषणयो, भज सेवाया, भञ्ज भग्ने, भुजपालनाभ्यवहारयो । पालन—भोजन अर्थमे । भुजो कौटिल्ये, भ्रस्ज पाके, यज देवपूजा सगतिकरणदानेषु । युजिर योगे, युज समाधौ । व्याघ्रभूति श्लोकमे, भाष्यमे भी युजिरयोगे मान्य है । युज समाधौ सेट् । रुजरोगे, रञ्ज रागे । विजिर पृथग्भावे, स्वञ्ज आलिङ्गने । सञ्ज सृज विसर्गे । दिवादि तुदादि भी मान्य । १५ अनुदात्त । दान्त—धातुओमे अद् भक्षणे । क्षुध बुभुक्षाया । खिद दन्ये, छिदिर द्वैधीकरणे । तुद व्यथन, तुद प्रेरणे, खिद दैन्ये खिन्दति । अनुदात्त । पद्य दिवादि, विद्यति विद ज्ञाने, विनद श्नम्, शद सदी । स्कन्दि हृदि, क्षुद्धि इक् निर्देश है । स्विद्यति बुध्यति वद भिद विद् श्यन् विकरण । सद स्विद भी । १५ अनुदात्त । धान्तेषु=ध अन्त धातुओमे क्रुध क्रोधे क्षुध क्षुधाया, बन्ध बन्धने, युध सम्प्रहारे, रुध—रुधिर आवरणे, अनुरुध कामे राध आराधने, व्यध ताडने, शुध शुद्धौ, साध ससिद्धौ सिध सिद्धौ । श्यन्विकरण । ११ अनुदात्त । नान्तमे मन हन दो अनुदात्त है । मन ज्ञाने दिवादि

पान्तेषु=प अन्त धातुओमे आप व्याप्तौ, क्षिप प्रेरणे क्षिप्यति क्षिपति क्षुप स्पर्शे, तप सन्तापे, तप ऐश्वर्ये (श्यन्) णिच् अभावे, तप् दाहे भी तृप्यति दृप्यति । तिपृ क्षरणे लिप, लुप लप, स्वप शये वप बीज सन्ताने बोना । शप उपालम्भे शाप देना । कसमखाना । नीद लेना

क्रुशिदंशिदिशि दृश्मृश्रिशरुश्लिश्विशस्पृश कृषि ॥
त्विषतुष्द्विषदुष्पुष्यपिष्विष्शिष्शुषश्लिष्यतयो घसि ।
वसतिदह्दिहिदुहो नह्मिह्रुह लिहवहिस्तथा ॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिक शतम।
तुदादौ मतभेदेन स्थितौ यौ च चुरादिषु ॥
तृप्दृपी तौ वारयितु श्यना निर्देश आदृत.।
किं च–'स्विद्यपद्यौ सिध्यबुध्यौ मन्यपुष्यश्लिष श्यना ॥
वसिः शपा लुका यौतिर्निर्दिष्टोऽन्यनिवृत्तये ।

सृप गतौ सरकना चलना । त्रयोदश उदात्त । भान्तेषु—यभ मैथुने सगम करना । रभ राभस्ये भीड होना । लभ प्राप्तौ । मान्तेषु–भ अन्त धातुओमे गम गतौ, नम नम्र होना शब्द करना । यम उपरमे वैराग्य होना शान्ति आना । रम क्रीडाया रमण करना खेलना । शान्तेषु–श अन्त धातुओमे क्रुश आक्रोशे रोष प्रकट करना,जड्कना,दश दशने डंशना शीघ्र चुभना । दृश प्रेक्षणे दर्शन । दिश अतिसर्जने त्यागकरना । मृष आमर्षने परामर्श करना विचारमे डूबना । रिष रुष हिंसा । असह्य कष्ट देना । लिश अल्पीभावे सिकुडना । दिवादि । लिश गतौ,विश प्रवेशने घुसना,स्पृश सस्पर्शे १०अनुदात्त । षान्तेषु =ष अन्त धातुओमे कृष विलेखने जोतना हल खीचना । त्विष् कान्तौ,तुष तृप्तौ सन्तुष्ट होना, द्विष अप्रीतौ कष्ट देनेके अनुकूल क्रिया । दुश्मनी । दुष वैकृत्ये त्यौरी बदलना । पुष पुष्टौ ठोस होना । पिष चूर्णने पीसना, पाउडर करना । विष सेचने विप्रयोगे-अलग होना वियोग । शिष असर्वोपयोगे किसी कामका न होना । शुष शोषणे सूखना, श्लिष (श्यन्) एकादश अनुदात्त । सान्तेषु=स अन्त–घस अदने, वस् निवासे । भोजन रहन, दो धातु । हान्तेषु=ह अन्त धातुओमे दह भस्मी करणे । दिह उपचये, दुह प्रपूरणे दोहिनि भरनेकी क्रिया, नह बन्धने–मिह सेचने, रुह बीज प्रादुर्भावे अङ्कुरित होना । लिह आस्वादने स्वाद लेना चाटना । वह प्रापणे पहुचाना ढोना ८ अनुदात्त । वे हलन्त धातुओमे द्वि—अधिक=१०२ है मृषका षान्तमे पाठ हो तब १०३ धातु अनुदात्त है । इट् नही होता । षान्त धातुओंमे दोको श्यन्का फल बोने–तुदादौ —तृप् दृप् तुदादिमे मतभेदसे । चुरादिमे तृप् सर्वसम्मत अनुदात्त, इट् निषेध के लिए श्यन् निर्देश आदृत । तृप् दृप् सन्दीपने । स्विद्य पद्य सिध्य बुध्यादिमे यन् पढा । अन्य विकरण निवृत्तये । अन्य कौन है, ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः

णिजिर्विजिशक्लृ इति सानुबन्धा अमी तथा ।।
विन्दतिश्चान्द्रदौर्गादेरिष्टो भाष्येऽपि दृश्यते ।
व्याघ्रभूत्यादयस्त्वेन नेह पेठुरिति स्थितम् ।।
रञ्जिमस्जीप्रादिपदी तुद् (नुद) क्षुध् शुषिपुषी शिषि ।।
भाष्यानुक्ता नवेहोक्ता व्याघ्रभूत्यादिसम्मते ।।

३ स्पर्ध सघर्षे। सघष पराभिभवेच्छा। धात्वर्थेनोपसग्रहादकर्मक स्पधते

पद स्थैर्ये, सिध गत्या, सिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च। बुधिर बोधने भ्वादि । मनु अवबोधने तानादिक । पुष पुष्टौ भ्वादि। पुष्णाति श्लिष दाहे भ्वादि अदादि। ये धातु एकाच है। अनुदात्त नही अत सेट्। युज् बन्धने युनाति अनिट् श्यन्से। ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे। पदगतौ षिघू मराद्धौ, वुध अवगमने मन–ज्ञाने, पुष पुष्टौ, श्लिष आलिङ्गने, वस् निवासे। ये सभी अनिट् है। तथा—णिजिर विजिर आदि धातुमे अनुबन्ध पढनेका फल–णिजि शुद्धौ । विजि भयचलनयो। शक मर्षणका अलग करना, विन्दति विद्लृ लाभे चान्द्र दौर्गादि व्याकरसम्मत। भाष्यमे भी मिलता है। विनत्ति विमर्त्ति विद्यति पाठसे। व्याघ्रभूतिकार आदि नही पढे। केवल भाष्य प्रमाणसे अनिट्। रञ्जि मस्जि नुद क्षुद आदि नवधातु भाष्यमे अनुक्त है। तथापि अनुदात्तमे मे गणना है उपलक्षणसे सुलभ। व्याघ्रभूति सम्मत। अत शुष्कधृष्टौ तेन रक्त रागात् आदि सूत्र प्रयोग प्रमाण है। अनिट् सूचक कारिकाये पूर्ण ।

स्पर्ध–सघर्ष—अर्थमें है। परस्य–दूसरेको हटाने पराजयकी इच्छा। इच्छामे पराजय कर्म है स्पर्धधातु सकर्मक है। देवदत्त यज्ञदत्त स्पर्धयति। हटानेकी इच्छा करता है। गतिबुद्धि सूत्रसे अकर्मक मानकर कर्मसज्ञा कैसे ? तब कहा धत्वर्थेन–धातुकेपेटमे कर्मकासग्रह होनेसे अकमक है। धातुका अर्थक्रियासे अलगकर्म ही सकर्मक है। यदि ऐसा तब स्पर्धायामाङ यहा कृष्ण श्चाणूमाह्वयते स्पर्धते। मूल ग्रन्थसे विरोध होगा। तव स्पर्जका हटानेके लिए बुलाना अर्थ है आह्वास्त मेरावमरावती या। तन्नासत्ययुगान्त वा त्रेता स्पर्धितुमर्हति। कत्थ श्लाघाया ३६ अनुदात्त इत् धातुसे आत्मनेपद । एध धातुकी तरह रूप। स्पर्धते दूसरेको हरानेकी क्रियावाचक स्पर्धसे वर्तमानकालिक पराजयकर्ता अर्थमे लट्। शप् अ टेरे। स्पर्धते स्पर्धन्ते स्पर्धसे स्पर्धेथे स्पर्धध्वे,स्पर्धे स्पर्धावहे स्पर्धामहे पस्पर्धे पराजयकीइच्छा क्रियावाचक स्पर्ध

(५९) शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१।। अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते । हलादि शेष'' इत्यस्यापवादः । पस्पर्धे । स्पर्धिता । स्पर्धिष्यते । स्पर्धताम् ।

से परोक्ष बीता भूतकाल, अभिभव इच्छा के कर्ता मे लिट् । प्रथम पुरुष त लिटस्तझयो से तको एश । इजादि नही न आम् । लिटि धातो सूत्रसे द्वित्व । स्पर्ध ए । अभ्याससंज्ञा (हलादि शेष मे) आदि सको शेष प्राप्त था—

(५९) शर्पूर्वा (अलोप) अभ्यासके शर् (शषस) पूर्वमें हो उसका लोप किन्तु खय=ख फ छ ठ थ च ट त व क प य के अक्षर शेष रहते है । शिष्यन्ते इति शेष कर्ममे घञ । बहुवचन, शर्पूर्वो येभ्य अतद्गुणबहुव्रीहि । इस सूत्र से प शेष रहा । सका लोप हुआ । पस्पर्धे, एक कर्तामे पराजय इच्छाकी बीते भूतकालकी क्रिया धातुका अर्थ एक ही रहेगा । पुरुषवचनका भेद । पस्पर्धाते पस्पर्धिरे बढ़नेकी कामना किये । त्व पस्पर्धिषे पस्पर्धाथे । यूय पस्पर्धिध्वे । अहं पस्पर्धे पस्पर्धिवहे, वय पस्पर्धिमहे । स्पर्धिता । अनद्यतन भविष्यकालमें दूसरेको हराकर बढना क्रियाके कर्तामे लुट्–त–तास्–इट् आदि । स्पर्धितारौ स्पर्धितारः क्रीडा क्षेत्रे आयान्ति । त्व स्पर्धितासे—स्पर्धामे कल बढोगे स्पर्धितासाथे स्पर्धिताध्वे । स्पर्धिताहे वहे–महे । परस्मिन्वत्सरे स स्पर्धिष्यते । परके पराजयकी भविष्यकालिक इच्छा । स्पर्धिष्येते । कृष्णबलरामौ स्पर्धिष्यन्ते एक दूसरेको जीतने या हरानेकी चेष्टाकरेंगे । स्पर्धिष्यसे स्पर्धिष्येथे स्पर्धिध्वे तुम सब एक दूसरेसे श्रेष्ठ सिद्ध कर रहे हो स्पर्धिष्ये-स्यावहे स्यामहे । हमलोग एक दूसरेको मात खानेकी चेष्टा । स्पर्धता स्पर्धेता स्पर्धन्ताम् । आज्ञा प्रेरणा अनुशासन कार्यमे प्रवृत्ति कराने अर्थमे लोट् । हम दूसरेका पराजय करें, सभी स्पर्धा करे । स्पर्धस्व स्पर्धेथा स्पर्धध्व, स्पर्धै स्पर्धावहै स्पर्धामहै । अस्पर्धत-अनद्यतन भूतकालमे हरानेकी क्रियाके कर्तामे लङ्,अस्पर्धेताम्,अस्पर्धन्त । वे बढनेकी चेष्टा करचुके थे । अस्पर्धथाः अस्पर्धेथाम् अस्पर्धध्व अस्पर्धे–धावहि-धामहि । हमलोग एक दूसरेसे बढने का प्रयास पहले ही कर चुके । स्पर्धेत स्पर्धेयाता स्पर्धेरन् । विधि आज्ञा प्रेरणादि स्पर्धाका विषय हो विधिलिङ् । स्पर्धेथा स्पर्धेयाथा स्पर्धेध्व,स्पर्धेय इटोऽत्से इट्को अ । स्पर्धेवहि स्पर्धेमहि तुम सदा बढते रहो । प्रतियोगिता जीतते रहो । अर्थमे आशीर्लिङ् । सीयुट सुट्इट् विशेष । स्पर्धिषीष्ट स्पर्धिषीयास्ता स्पर्धिषीरन् । स्पर्धिषीष्ठाः स्पर्धिषीयास्था स्पर्धिषीध्वम् । षीय—षीवहि—षीमहि । परके पराजयकी क्रिया भूतकालकी हो कर्तामें

अस्पर्धेत । स्पर्धेत । स्पर्धिषीष्ट । अस्पर्धिष्ट । अस्पर्धिष्यत । ४ गाधृ प्रतिष्ठा लिप्सयोर्ग्रन्थे च । गाधते । जगाधे । ५ बाधृ लोडने । लोडन प्रतिघात । बाधते ६ नाथृ ७ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु ।* आशिषि नाथ इति वाच्यम् । अस्याशिष्येवात्मनेपदं स्यात् । नाथते । अन्यत्र—नाथति । नाधते । ८ दध

लुङ् अस्पर्धिष्ट । त सिच् अट् इट् ष्टुत्व । अस्पर्धिषाताम् अस्पर्धिषत । अस्पर्धिष्ठाः अस्पर्धिढ्वं=ध्वम् । अस्पर्धिषि ष्वहि ष्महि । अस्पर्धिष्यत भविष्यकाल स्पर्धा क्रियाके कार्यकारणभावमे लृङ्, अस्पर्धिष्येताम् अस्पर्धिष्य न्त-ष्यथा ष्येथा ष्यध्वम् ष्यावहि ष्यामहि ।

४ गाधृ ऋ—इत्का फल नाग्लोपिसे अजगाधत आदिमे उपधा ह्रस्व । गाधधातुका प्रतिष्ठा=आधारमे स्थिति स्थापना, रखना स्थिर करनेकी क्रिया । लिप्सा-लब्धुमिच्छा लोभकी क्रिया । ग्रन्थे—ग्रथन रचना गूथना सग्रह एकत्र स्थापन सन्दर्भ ग्रन्थ इन अर्थोमे स्थापना लोभ एकत्रीकरण तीन फल है उसके अनुकूल क्रिया अर्थ । स्थापना लोभ ग्रथन फलकी क्रिया वाचक गाधसे वर्तमानकालिक क्रियाका आधार कर्तामे लट्, गाधते गाधेते गाधन्ते । गाधसे गाधेथे गाधध्वे । गाधे गाधावहे गाधामहे । परोक्ष भूतकाल आजका न हो ऐसे प्रतिष्ठा लोभ रचना क्रियाके कर्तामे लिट्—त-एश, शप् । गाध्=द्वित्वादि गगाध जगाधे । गाधिता गाधिष्यते । गाधताम् गाधेताम् गाधन्ताम्, गाधस्व गाधेथाम् गाधध्वम्, गाधै गाधावहै गाधामहै । अगाधत । गाधेत । गाधिषीष्ट अगाधिष्ट । अगाधिष्यत ।

५ बाधृ-ऋ इत् गाध धातुका प्रतिघात प्रतिकूल आचरण, बाधा डालना पीडा पहुचाना अर्थ, इस क्रियाके वर्तमान कालिककर्ता बाधा क्रियाका आधार अर्थमे लट् बाधते । वह क्रिया भूतकालमे प्रत्यक्ष न हुई हो लिडादि । बबाधे बाधिता बाधिष्यते बाधताम् अबाधत, बाधिषीष्ट अबाधिष्ट अबाधिष्यत ।

६—७ ऋ इत नाथ नाध धातुका याच्ञा—मागना उपताप=ज्वरसे प्रबलपीडा आशीः आशासन, न प्राप्त वस्तुकी प्राप्तिकी कामना फल है उसकी क्रिया धातुका अर्थ । वर्तमान कर्तामे लट् । नाथते नाधते मागता है ज्वरसे पिडित है न मिली वस्तु मिलते है । नाथधातुके विषयमे विशेषताका (वा) आशिषि नाथ शब्दके केवल आशीर्वाद अर्थमे आत्मनेपद हो । अनुदात्त इत्से आत्मनेपद होता ही, वार्तिक नियमके लिए—आशीर्वाद अर्थमे ही नाथ धातुसे आत्मनेपद हो । नाथते आशास्ते । अन्यत्र=याच्ञा उपताप अर्थ हो शेषात्कर्तरि परस्मै

धारणे । दधते ।(२२६०) अत एक हल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०॥ लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽकारस्य एकारः स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि । (६१) थलि च सेटि ६।४।१२१॥ प्रागुक्तं स्यात् । आदेशश्चेह वैरूप्यसम्पादक एवाश्रीयते, शसिदद्योः प्रतिषेध-

---

पद ही हो । नाथते याचते पीडित है । ननाथे नाथिता नाथिष्यते ।

नाधताम् अनाधत नाधेत नाथिषीष्ट अनाथिष्ट अनाधिष्ट अनाधिष्यत् । ८ दध धातुका वस्त्र आदि धारण क्रियाके कर्तामे लट्–त शप् टे-ऐ दधते दधेते दधन्ते । दधसे दधेथे दधध्वे । जब धारण क्रियाको न देखा भूतकालकी क्रिया हो परोक्ष लिट् । लिटि परे दधको द्वित्व— दध दध ऐ । दशामे । (२२६०) अत एक । ऐक शब्द असहाय अर्थमे है । एके मुख्यान्य केवला इत्यमर । एकौ असंयुक्तौ हलौ एकहलौ तयोर्मध्ये एकहल्मध्य, न आदेश आदिर्यस्य । लिटिमे निमित्तसप्तमी आदेशसे जुडा । अङ्गस्यमे अवयवषष्ठी । ध्वसो सूत्रसे एत् अभ्यासलोप आया । गमहनसे कित् । लिटिमे परनिमित्त एत्व, विधिमे आवृत्तिसे उभयम् । अर्थ=लिटिको निमित्तकारण मानकर आदेश आदि न हुए हो ऐसा अङ्ग तदवयव=उस अङ्गका एकभाग हो, सयुक्त=सयोगसज्ञक हल मध्यमे न हो,ऐसे अको 'ऐ' हो अभ्यासका लोप लोप भी । किति लिटि परे । दध–दमे अको एत्व हुआ । अभ्यास (पहला दध) का लोप । देधे–असयोगसे लिटि–कित् हुआ । परे भी है । दधको कोई आदेश नही, अङ्ग है । सयुक्त नही है । अत एको ऐत्व ।

(६१) थलि च–थल परे सेट् (इट् सहित) हो तब एत्व अभ्यास लोप हो, जो अत एकहल्मध्ये–सूत्रमे कहा गया (प्राक् उक्त) थल् कित् नही, पूर्वसूत्र प्राप्त नही,अत थलि च पढा । प्रश्न–देधे पेततु इत्यादिमे दध या पतको द्वित्व करनेपर अभ्यासे चर्च जश् और चरको क्रमसे जश् चर आदेशके होगे । लिट् कारण आदेश हुए, अनादेश नही कह सकते । एत्व अभ्यास लोप कैसे ? तब कहा–आदेशश्च इह–अत एकहल्मध्ये सूत्रमे आदेश पढा है वह विरूप=स्थानी के आदेशका भिन्नरूप मान्य, तब एत्व निषेध हो । स्थानीके समान आदेश हो तब निषेध नही । दधका द विरूप नही, पतका प भी । विरूपके निषेधमे प्रमाण शसिदद्यो –न शस ददव।दिगुणाना सूत्रमे शस ददको एत्व अभ्यास लोप निषेध किया गया । [illegible] आदेश स्वीकार होता, शस ददके अभ्यासमे श, दको चर जश् हो(पर श द ही आदेश

वचनाज्ज्ञापकात् । तेन प्रकृतिजश्चरा तेषु सत्स्वपि एत्वाभ्यासलोपौ स्त एव । देधे । देधाते । देधिरे । अत किम् ? दिदिवतु । तपर किम् ? ररासे । एके-त्यादि किम् ? तत्सरतु । अनादेशादे किं ? चकणतु । लिटा आदेशविशेष-

रहता, अनादेश नही, एत्व अभ्यासलोप प्राप्त नही—न शस् ददवादिका निषेध व्यर्थ है, जो ज्ञापन दिया कि विरूप आदेश हो तब एत्व अभ्यास लोप न हो, शस् दद विरूप नही एत्व आदि प्राप्त था, निषेध सफल, जहा विरूप हो वहा प्राप्त नही । तेन—स्थानीके समानरूप आदेशको एत्वके निषेधका प्रकृति-जश् दध—प्रकृति है उसके अभ्यास को चर आदि होनेपर भी एत्व अभ्यासलोप होते ही है, देधेमे हुये भी । न देखी हुई अनद्यतन भूतकालकी धारण क्रिया के प्रथमपुरुषके दो कर्ता हो धारणक्रिया के आधार हो तब आताम् एत्वादि पूर्ववत । टित एत्व—देधाते देधिरे । देधिषे देधाथे देधिध्वे देधे देधिवहे देधिमहे । दधिता । दधिष्यते दधिष्येते दधिष्यन्ते । दधिष्यसे दधि-ष्येथे दधिष्यध्वे । दधिष्यथे दधिष्यावहे दधिष्यामहे । धारणक्रियाका कर्ता आज्ञा प्रेरणाका विषय हो लोट्—त एत्व । आमेन एको आम् । दधता दधेता दधन्ताम् । दधस्व दधेया दधध्व, दधै दधावहै दधामहै ।

अनद्यतन भूतकालमे धारणक्रिया हो चुकी हो लङ् । अदधत अदधेता अदधन्त । त्व अदधथा अदधेथाम् अदधध्वम् । अदधे अदधावहि अदधा-महि । दधेत दधेयाता दधेरन् । दधेथा दधेयाथा दधेध्व । दधेय(इटोऽत) दधेवहि दधेमहि । दधिषीष्ट दधिषीयास्ता दधिषीरन् । दधिषीष्ठा दधि-षीयास्थाम् दधिषीध्वम् । दधिषीय दधिषीवहि—महि । अदधिष्ट अदधिषाता अदधिषत अदधिष्ठा अदधिषाता अदधिध्व अदधिषि अदधिष्वहि,महि । सामान्य भूतकालकी धारणक्रियाका कर्ता सभीका अर्थ ।

यदा कवच अदधिष्यत सुरक्षा अभविष्यत । सूत्रमे अत क्यो पढा ? अको एत्व क्यो ? दिदिवतु दिमे इको एत्व न हो । अत् पढा । दो हल्के मध्यमे अ नही, न एत्व । अतमे त क्यो ? तत्कालके ज्ञान वास्ते । ह्रस्वकालके अ को एत्व हो । ररासे रामे आको एत्व न हो । रासृ शब्दे । दो हल्के मध्य आ है अ नही । एकहल्मध्य क्यो कहा ? त्सर छद्मगतौ कुटिलचाल बीता भूत कालकी क्रिया, यहा सयुक्त हल्मध्य है असंयुक्त नही । एत्व न हो । अनादे-शादि क्यो ? चकणतु । कण—शब्दे द्वित्व कुहोश्चु कको च । विरूप आदेश आदिमे है एत्वादि न हो । लिटिमे निमित्त माननेका फल—लिट आदेशका

णादिह स्यादेव । नेभिथ । सेहे । ९ स्कुदि आप्रवणे । आप्रवणमुत्प्लनमुद्धरण च ।(६२) **इदितो नुम्धातो** । ७।१।५८।। स्कुन्दते । चुस्कुन्दे । १०श्विदि श्वैत्ये । अकर्मक । श्विन्दते । शिश्विन्दे । ११ वदि अभिवादनस्तुत्योः । वन्द-

---

विशेषण होनेसे इह स्यादेव–यहा होता हा है । णमु प्रह्वत्वे शब्दे च । णो नः से णको न हुआ । थल् इट् द्वित्व होनेपर नकार आदेश आदिमे है किन्तु नत्व लिट्के कारण(लिट् निमित्तक आदेश) नही है, एत्व अभ्यास लोप हुआ । सेहे, षह मर्षणे क्षमाकी क्रिया धात्वादे से षको स हुआ । यह स लिट्के कारण नही हुआ है । एत्व आदि हुए दर्बिता । मध्यमपुरुषका कर्ता त्व युवा यूयम् उत्तमतुरुषका कर्ता धारण क्रियाका आश्रय अहम् आवा वय है। इनसे भिन्न स सार भरका कर्ता प्रथमपुरुष कालके अनुसार धारणक्रियाका निर्णय लें।

९स्कुन्द धातुका आप्रवण उत्प्लुत्य गमन उछलकर या कूद कूदकर चलना उद्धारहोनेकी क्रिया । इकार इत्का फल—

(६२)इदितो इत् इत्सज्ञको यस्य स इदित् । छोटी इ इत् अन्त धातुसे नुम् म–इत् मित्से (न) अन्त्य अच्से परे हो । (अपदान्त नको अनुस्वार हुआ)पर सवर्ण भी । इससे स्कुन्द धातुमे उछलकर चलनेकी शक्तिके वर्तमानकालिक कर्तामे लट् स्कुन्दते । चुस्कुन्दे । जब उछलने तैरने उद्धारकी क्रिया सहित परोक्ष भूतकालिक कर्तामे लिट् । द्वित्व-श ष स पूर्वमे हो तब उसका लोप,खय् प्रत्याहारका अक्षर (क) शेष रहा । कुहोश्चुःमे च हुआ । चुस्कुन्दाते चुस्कुन्दिरे । स्कुन्दिता स्कुन्दिष्यते स्कुन्दताम् । अस्कुन्दत स्कुन्देत स्कुन्दिषीष्ट । अस्कुन्दिष्ट स्कुन्दिषाता स्कुन्दिषत । स्कुन्दिष्ठाः स्कुन्दिषाथा स्कुन्दिध्व । स्कुन्दिषि स्कुन्दिष्वहि—महि । यदि अस्कुन्दिष्यत तदा अप्राप्स्यत् (१०) इ–इत् श्विद धातुका श्वेतस्य भाव श्वैत्य, सफेदी धवलिमाकी क्रिया और फल एक आधारमे, अकर्मक । केश श्विन्दते बाल सफेद हो रहे हैं । श्वेतगुण धातु अर्थमे विलीन होनेसे अकर्मक मानकर गति बुद्धि सूत्रसे । देवदत्त. भित्ति श्विन्दयति चूर्णकेन । दिवार्ल चूनेसे सफेद करता है, श्वेतीभवन भवन्तिते श्विन्दन्ते श्वेतीभवन्ति उजला हो रहे है । ऐकार इत् का फल नुम् अनुस्वार परसवर्ण । परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक सफेद होने की क्रियाके कर्ता अर्थमे लिट् । शिश्विन्दे शिश्विन्दिषे । त्व कर्तामे परोक्षक्रिया, श्विन्दिता, श्विन्दिष्यते श्विन्दताम अश्विन्दत, श्विन्देत श्विन्दिषीष्ट

ते । १२ भदि कल्याणे सुखे च । भन्दते । बभन्दे । १३ मदि स्तुतिमोदमदस्वप्न कान्तिगतिषु । मन्दते । ममन्दे । १४ स्पदि किञ्चिच्चलने । स्पन्दते । पस्प

अशिवन्दिष्ट ११ इ-इत् नुम्सहितवद धातु अभिवादन=प्रणामके बाद आशीर्वाद शुभ कामनाका कारण भूत क्रिया अभिवादन है। स्तुति=प्रशंसा गुण गान । वन्दते आशीर्वादके लिए प्रणाम करता है। एक कर्तामे वर्तमान प्रणाम और स्तुतिकी क्रिया जो सभी कर्तामे रहेगी, लकारोमे विशेष अर्थोका अन्तर होगा,ववन्दे वन्दिता वन्दिष्यते। वन्दता वन्देना वन्दन्ताम् वन्दस्व वन्देथा वन्दध्वम् । वन्दै वन्दावहै–महै । अवन्दत अवन्देता अवन्दन्त । अवन्द-था अवन्देथाम अवन्दध्वम् । अवन्दे अवन्दावहि अवन्दामहि वन्देत वन्दिषी-ष्ट अवन्दिष्ट, अवन्दिष्यत । सभी लकारके कर्तामे आशीर्वाद पानेके और गुणगानकी क्रिया आदि प्रक्रिया मान ले। १२ इ इत्से नुम्सहित भन्द धातुका कल्याण=शुभ—हित होनेकी क्रिया, सुखीभाव व्यापार अर्थ। भन्दते बभन्दे अभ्यासके भको जश् ब। भन्दिषीष्ट अभन्दिष्ट अभन्दिष्यत। इदित्से नुम् सहित मन्द धातुका स्तुति(गुण प्रकाशन)मोद सन्तोष प्रसन्नता मद-गर्व शक्तिपूर्ण अहंकार। शयन, इच्छा गति आदि फलकी जननी क्रिया अर्थ। मन्दते उत्तमपुरुषके कर्तामे वर्तमानकालकी उक्त क्रिया। ममन्दे। नुम् होनेपर मध्यमे हल् जुड गया, एत्व अभ्यास लोप नही।

१४ इ-इत् नुम् सहित स्पन्दधातुका किञ्चिच्चलना, कम्पन हिलनेकी क्रिया, स्पन्दसे वर्तमानकालिक हिलना डुलना क्रियाके कर्ता अर्थमे लट् त, टे। ए। स्पन्दते एक कर्तामे अद्य भिन्न भूतकालकी क्रियाके कर्तामे लिट्। द्वित्व अभ्याससे खय्-पका शेष। पूर्वमे शर-सका लोप। पस्पन्दे पस्पन्दाते पस्प-न्दिरे। पस्पन्दिसे पस्पन्दाथे पस्पन्दिध्वे। पस्पन्दे पस्पन्दिवहे–महे। स्पन्दिता, स्पन्दिष्यते,स्पन्दता स्पन्देता स्पन्दन्ताम्। स्पन्दस्व स्पन्देथा स्पन्दध्व, स्पन्दावहै-महै अस्पन्दत। स्पन्देत स्पन्दिषीष्ट अस्पन्दिष्ट अस्प-न्दिषाताम् अस्पन्दिष अस्पन्दिष्यत। १५ इ-इत् नुम् अनुस्वार परसवर्ण सहित क्लिन्दधातुका परिदेवन चारो तरफसे दुखी होना स्मृत्वा क्लेष शोक। स्मरणकर ग्लानि होना सकर्मक है। समाप्त हुए चैत्रका स्मरणकर क्लिन्दते क्लिश्नाति रो पडता है कि क्रियावाचक क्लिन्द से वर्तमान कालिक स्मरण फलकी क्रियाका कर्ता अर्थमे लट् त। क्लिन्दते। अतीत चैत्र स्मृत्वा दुखी भवति। क्लिन्देते क्लिन्दन्ते क्लिन्दसे क्लिन्देथे क्लि

न्दे । १५ क्लिदि परिदेवने । शोक इत्यर्थं । सकर्मक । क्लिन्दते चैत्रम्,चिक्लि न्दे । १६ मुद हर्षे । मोदते मुमुदे । १७ दद दाने ददते । (६३) न शसदद-

न्दध्वे क्लि दे क्लिन्दावहे-म्हे । चिक्लिन्दे स्मरण कर रो पडने अर्थक क्लिन्द धातुसे न देखा किन्तु आजके भिन्न भूतकालकी परिदेवन क्रियाके कर्ता मे लिट्-त लिटस्तझयो एश् । द्वित्व आदि । अभ्यासके ककी च-कुहोश्चु । चिक्लिन्दाते चिक्लिन्दिरे वे स्मरणकर कब रो पडे ? क्लिन्दिता क्लिन्दिष्यते क्लिन्दता क्लिन्देता क्लिन्दन्ता । क्लिन्दस्व क्लिन्देथा क्लिन्दध्व, क्लिन्दै क्लिन्दावहै क्लिन्दामहै । एत ऐ टित्के एत्वको ऐ । अक्लिन्दत अक्लिन्देताम् अक्लिन्दत । क्लिन्देत क्लिन्देयाता क्लिन्देरन् । क्लिन्दिषीष्ट । अक्लिन्दिष्ट अक्लिन्दिषाता अक्लिन्दिषत । अक्लिन्दिष्यत,याद होगा रो पडेगा । एक कर्तामे स्मरण कर रोनेकी कालिकक्रिया या भूत भविष्य कालिक क्रिया । वचन लकार अर्थके अनुकूल कर जोडे ।

१६ मुद हर्षे हर्ष तुष्टि सन्तोष प्रसन्नता फलकी क्रिया मुद धातुका अर्थ । मगन सन्तुष्ट होनेकी क्रियावाचक मुदसे वर्तमान क्रियाके कर्ता अर्थमे लट् आत्मनेपद, एत्व मोदते । शप् पुगन्त लघूपधस्यगुण । मोदेते मोदन्ते कर्ता मे हर्ष होनेकी वतमान कालिक क्रिया । वह क्रिया न देखी हुई आजके भिन्न भूतकालकी हो अर्थमे लिट् । मुद मुद मुमुद तको ए मुमुदे । पुगन्तलघूपध गुण क्यो नही । असयोगात् लिट्के कित्से, क्ङिति च गुणनिषेध । मोदिता मोदिष्यते । मोदता अमोदत मोदेत मुदिषीष्ट । अमुदिष्ट अमुदिषाता अमुदिषत, अमुदिष्ठा अमुदिषाथाम् अमुदिढ्व । अमुदिषि अमुदिष्वहि-महि

१७ दद धातुका दान (न मम इति त्याग) अपना अधिकार त्यागना दान है । यदि द्रव्यका त्याग अर्थ होता धातुके अर्थमे उपसग्रहीत-स्वीकारसे अकर्मक होता । ददते एक कर्तामे वर्तमानकालिक दान (न मम इति) त्यागके अनुकूल क्रिया । ददद-परोक्ष भूतकालमे दान क्रिया अर्थे लिट् त एश् । द्वित्व होनेपर एत्व अभ्यास लोप प्राप्त था । उसे बाधकर ।

(६३) न शस दद वादि गुण शब्दके बीच द्वन्द्व । अवयव षष्ठी । गुण शब्दसे विधानका सूचक गुण—शस दद और व आदि धातुके अवयव अ और गुण शब्दसे भावी जो अ उसको ए और अभ्यास लोप न हो । अत (एक हल् मध्येसे) ध्वसो से ऐत अभ्यास भी आये । गुण क्यो पढा ? पेचे पचका अ गुण है किन्तु गुणशब्दसे विधान नही है । निषेध नही लगा, पेचे पेचाते पेचिरे

वादिगुणानाम् ६।४।१२६।। शनेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन भावितस्य च योऽकारस्तस्यैत्त्वाभ्यासलोपौ न। दददे। दददाते। दददिरे। १८ ष्वद स्वर्द आस्व दने। अयमनुभवे सकर्मक, रुचावकर्मक। **(६४) धात्वादे षः सः ६।१।६४।।** धातोरादे षस्य सः स्यात्। 'सात्पदाद्यो' इति षत्वनिषेध। अनुस्वदते। सस्वदे। स्वर्दते। सस्वर्दे। २० उर्द माने क्रीडायां च। **(२२६५) उपधायां च ८।२।७८।।** धातोरुपधाभूतयोरेफवकारयोर्हल्परयो परत इको

पपरतु मे गुण शब्द कहकर अर हुआ, उसका अ है निषेध हो गया, प्रसङ्ग मे भी अत एकहल्मध्येसे एत्व अभ्यास लोप प्राप्तका निषेध हुआ। आता दो व्यक्ति ममता त्याग क्रियाके परोक्ष अनद्यतन भूतकालमे आधार हो। झको इरेच् दददिरे। ददिष्यते ददता अददत ददेत ददिषीष्ट अददिष्ट अददिषाता अददिषत। अददिष्यत। १८स्वद १९स्वर्द धातुका आस्वादन आनन्दका अनुभव, इन्द्रियरस ग्राहकता, प्रीतिविषयी भावात्मिका रुचि। तल्लीन आनन्द अनुभव अर्थमे सकर्मक। रुचिमे अकर्मक, प्रत्येकके अभिप्रायसे एकवचन अर्थ पढा। अर्थात् दोनो दोनो है।

(६४) धातुके आदिमे षको स हो, धातु क्यो कहा ? षटमें षको स न हो धातु नही है। आदि क्यो ? लषतिमे बीचके षको स न हो। षकारीयतिमे सुप् धातुके आदिका ष है उसको स नही हो। उपदेशके आनेसे। आदेच उपदेशे=षट् भी उपदेशका नही, धातु न पढे। यदि ऐसा अनुस्वदतेमे आदेश सको ष हो किन्तु नही होता। सात्पदाद्योःके निषेधसे। आदेशका स है। आदेशप्रत्ययो से षत्व प्राप्त-अनुस्वदते एक कर्तामे वर्तमानकालिक रसानुभव और प्रीतिविषय की वर्तमानकालिक क्रिया। कर्तामे लट्। धातु आदि के षको स। सस्वदे लिट्मे द्वित्व होनेपर मध्यमे संयुक्त हल होनेसे एत्व अभ्यास लोप नही। स्वर्दते सस्वर्दे भूतकालमे अनुभव रुचि बढनेकी क्रिया के प्रति प्रयत्नवान् चैत्र। स्वदिता स्वदिष्यते स्वदताम् अस्वदत स्वदेत स्वदिषीष्ट अस्वदिष्ट।२० उर्द धातुका माने—तौलने, माप करने क्रीडा खेल रमण क्रिया अर्थमे हे। च पढनेसे आस्वादन, रसका ग्रहण भी केचित्। इस अर्थके अनुकूल क्रियाका प्रयत्न कर्ता चैत्र।

(२२६५) उपधायां च धातुके उपधा संज्ञक (अन्तिम अल्का पूर्ववर्ण) धातुके रेफ व परक हल्परे इक्को दीर्घ हो। रेफ परे अल् उर्दमे। इक्-इ उ ऋ लृको दीर्घ। हलि च र्वोरुपधाया से दीर्घ प्राप्त नही था। रेफ या व अन्त

दीर्घं स्यात्। ऊर्दते। ऊर्दाञ्चक्रे। २१ कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव। कूर्दते। चुकूर्दे। खूर्दते। गूर्दते। गोदते। जुगुदे। २५ षूद क्षरणे। सूदते। सुषूदे।

सेट्सृसृस्तृसृजस्तृस्त्याग्ये दन्त्याजन्तषादयः।
एकाच. षोपदेशा, ष्वष्क्स्विद्स्वद्भ्वञ्जस्वपस्मिङ ॥

दन्त्य केवलदन्त्यो, न तु दन्तोष्ठजोऽपि। ष्वष्कादीना पृथग्ग्रहणाज्ज्ञाप-

---

न होनेसे। धातो न पढते तब अधिकारसे धातुका उपधा न होकर पदका उपधा अर्थ होता- ऊर्दतेमे दीर्घ न हो पाता। रेफ व क्यो पढा ? पुष्यति यहा र व नही है। हल्परे क्यो ? चिरिणोति अच्परे है। इक् क्यो ? नर्दति, अ है, इक् नही, दीर्घ न हो। ऊर्दाञ्चक्रे इजादेश्च गुरुमतो सूत्रसे इच् आदि मानकर आम्,कृञ्का अनुप्रयोग। दीर्घ। उर्द कृ लिट्। इत्यादि नापना तौलना क्रीडा खेलकी क्रिया मुख्य अर्थ। शेष काल वचन जोड लें। ऊर्दिता। ऊर्दताम्। और्दत। और्दिष्ट। २१ कुर्द कुर्द गुर्द और गुद ये धातु क्रीडा खेल आदि अर्थमे ही है। एवका अर्थ(सीमित करनेसे)सिद्ध है कि अन्य अर्थभी होते है। धातूनाम् अनेकार्थत्वात्। एव शब्दसे प्रमाणित, उपलक्षण भी। प्रसिद्धार्थ बोधकत्वे सति अप्रसिद्धार्थबोधकम् उपलक्षणम्। कूर्दते एककर्तामे उछल कूद खेलकी क्रिया। यदि परोक्षमे खेल चुके हो आजसे भिन्न भूतकाल हो तब कर्तामे लिट्। चुकूर्दे-द्वित्वादि होनेपर कुहोश्चु से कको च। कदा—चुकूर्दे चुकूर्दाते चुकूर्दिरे। चुकूर्दिषे चुकूर्दाथे चुकूर्दिध्वे। चुकूर्दे चुकूर्दिवहे-मह, कूर्दिता कूर्दिष्यते। कूर्दता कूर्दता कूर्दन्ता। कूर्दस्व कूर्दथा। कूर्दै एत एँ। अकूर्दत अकूर्देता अकूर्द त। अनद्यतन भूतकाल, खेल कूदकी क्रियाका चेष्टावान। कूर्देत कूर्देयाता कूर्देरन्। कूर्देथा. तुम सत्र कूदो, छलाग लगाओ। कूर्देयाथा कूर्देध्व कूर्देयम् (इटो-अत्) कूर्देवहि कूर्देमहि। कूर्दिषीष्ट कूर्दिषीयास्ता कूर्दिषीरन्। अकूर्दिष्ट अकूर्दिषाताॅ अकूर्दिषत, भूतकालमे कूदना क्रियाके लिए चेष्टावान्। अखूर्दिष्यत्। चुखूर्द गूर्दिता। गूर्दताम् गड्ढेमे छिपनेकी क्रिया। गूर्दते खेलकी क्रिया सभी धातुका अर्थ। गोदते। शप् लघूपध गुण, उपधाया च दीर्घ। जुगुदे। असयोगसे परे लिट् कित् है, गुण नही। २५ षूद क्षरणे-धातुके आदि षको स। षूद धातुका चूने पसीझने टपकनेकी क्रिया अर्थ। वर्तमानकालके कर्तामे लट्—त एत्व। षूदते प्रस्रवति। लघूपध नही, न गुण। सुषूदे सुषूदाते सुषूदिरे। सूदिता—जल झरेगी। सूदिष्यते भविष्यमे चू जायेगी। सूदताम् असूदत असूदेता असूद-

कात्। २६ ह्लाद अव्यक्ते शब्दे। ह्लादते। जह्लादे। २७ ह्लादी सुखे च। ह्लादःऽव्यक्ते शब्दे ह्लादते। २८ स्वाद आस्वादने। स्वादते २९ पर्द कुत्सिते शब्दे

न्च। सूदेत सूदेयाता सूदेरन्। असूदिष्ट पानी चू गया।

ननु धातु पाठमे कितने धातु षादि है कितने सादि। पाणिनिकृत पाठ लुप्त हो चुका। उनकी परम्परासे प्राप्त पाठ। सेक्=दन्त्य हैं अजन्तसादय एकाच षोपदेशा स्यु। दन्त्यश्च अच्च दन्त्याचौ तौ अन्तौ यस्य दन्त्याजन्त' ष आदिर्यस्य, येषान्ते। दन्त्य परे अच्च परे और ष आदिमे हो, ऐसे एकाच धातु षोपदेश जान पडते है। अच् तदन्तपरा षादय षोपदेशाः इति भाष्ये। षूद क्षरणे। अजन्त षादि है। स्था गतिवृत्तौ। दन्त्यपरक षोपदेश है। उनका फल—स्कुदि आप्रवणे। चुष्कुन्दे। यहा ससे परे, न दन्त्य है, न अच्। एक इच् क्यो? सोसूत्र्यते अतिशयेन सवेष्टयति अधिकभावभरा हुआ, सूत्र वेष्टने सोसूत्रयते चुरादि अनेकाच् है। राध साध ससिधौ सकारादि है तथापि षोपदेश मान्य, उपलक्षण रोकनेके लिए। सेक्र गतो, सृप्लृ सृ गतौ, सृज गतौ—विसर्गे ये चार अच्परक सादि है। स्तृञ् आच्छादने श्नम। स्तृञ् आच्छादने 'श्ना' विकरण। स्त्यै शब्दमघातयो। ये ३ दन्त्यपरक सादि है। इन सातोकी भी षोपदेशकी शङ्का होगी तब ष्वष्क गतौ। ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे। ष्वद आस्वादने, ष्वञ्ज परिष्वङ्गे, ञिष्वप् शये, स्मिङ् इषद्धसने। इन धातुओमे सकार न दन्त्य परक है, न अच्परक। षोपदेश नही अत उनको भी स्वीकार किया। जिसका सूचक अपि शब्द है। ननु स्वृ शब्दोपतापयो इत्यादि धातु भी दन्त्य परक है षोपदेश क्यो नही? तव कहा—दन्त्य केवल दन्त्यस्थान वाला मान्य। दन्त्योष्ठज (व) नही। ष्वष्क् स्विद आदिके अलग पढनेके प्रमाणसे। अन्यथा दन्त्यपरक लक्षणसे षोपदेश सिद्ध होता ष्वष्क आदि व्यर्थ होते। यद्यपि भाष्यमे अदृष्ट है तथापि सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनाषत्व प्रतिषेधके बलसे उनका लाभ। ह्लादका अव्यक्तशब्द-अमनुष्यवाक् सिंह, हाथी, गर्दभके ध्वनिकी क्रिया।। ह्लादते। वर्तमानकर्तामे क्रिया। जह्लादे। परोक्षभूतकालमे जोरसे चिल्लाने हुँकडनेकी क्रिया, चेष्टावान चैत्र ह्लादी। ई—इत्का फलस्वीदितो निष्ठायासे निष्ठामे इट् निषेध होना। प्रह्लन्न प्रह्लन्नवान्। इट् नही हुआ, ह्लादो निष्ठायासे उपधा ह्रस्व। अव्यक्त=शब्द बिना बोले—आनन्दानुभवकी क्रिया कर्तामे वर्तमान हो लट्। त, टे ऐ। ह्लादते जह्लादे ह्लादिता ह्लादिष्यते ह्लदता अह्लादत ह्लादेत ह्लादिषीष्ट

पर्दते । ३० यती प्रयत्ने । यतते येते । ३१युतृ जुतृ भासने । योतते । युयुते । जोतते । जुजुते ३३ विथृ वेथृ याचने । विविथे । विवेथे । ३५ श्रथि शैथि-

अह्लादिष्ट अह्लादिषाता । अह्लादिषत । अह्लादिष्यत ।

२८ स्वाद धातुका आस्वादन रसनासे रस लेनेकी क्रिया । केवल दन्त्य परक नही न षोपदेश । असस्वदतमे न षत्व प्रमाण है । स्वादते । रसलेता चाटता है । सस्वादे सस्वादाते सस्वादिरे । स्वादिता स्वादितारौ स्वादितार । स्वादिष्यते स्वादिष्येते स्वादिष्य ते स्वादिष्यसे स्वादिष्येथे स्वादिष्यध्वे । तुमलोग स्वाद ग्रहण करोगे । स्वादिष्ये स्व दिष्यामहे । स्वादता स्वादेता स्वाद ता । स्वादस्व स्वादेथा स्वाद व, स्वादै स्वादावहै स्वादामहै । ए त ऐ । अस्वादत अस्वादेता अस्वाद न्त । स्वादेत स्वादेयाता स्वादेरन् । स्वादिषीष्ट स्वादिषीयास्ता स्वादिषीरन्, अस्वादिष्ट अस्वादिषाता अस्वादिषत । अस्वादिष्ठा. अस्वादिषातां अस्वादिध्वम् । अस्वादिषि अस्वादिष्वहि-महि । वय । बहुकर्तृक भूतकाल की स्वाद ग्रहण क्रिया । २९ पर्द धातुका कुत्सित शब्द (गुदरव दूषितवायु खुलने) की क्रियाके वर्तमान कालिक कर्ममे ल आदि । पर्दते पर्देते पर्दन्ते । पर्दसे । पपर्दे । पर्दिता पर्दिष्यते पर्दताम् । अपर्दत अपर्देताम् अपर्दन्त । अपर्दथा अपर्देथाम् अपर्दध्वम् । अपर्दे अपर्दावहि अपर्दामहि । पर्देत पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट अपर्दिषाताम् अपर्दिषत । अनेक कर्तामे दूषित वायु खुलनेकी भूतकालिक क्रिया । ३० यती ईकार इत्का फल निष्ठा इट् निषेध, प्रयत्न क्रियाकी सफलतामे चेष्टा यत्न । यतते,सफलतासे लिए कोशिश करता है । येते येताते येतिरे । यत् यत् द्वित्व होनेपर अत एकहल्मध्ये सूत्रसे एत्व अभ्यासलोप हुआ । यतिता यतिष्यते । यतता यतेतां यतन्ताम् । यतस्व यतेथां यतध्वं । यतै यतावहै यतामहै । अयतत । यतेत । अयतिष्ट ।

(३१) युतृ जुतृ धातुका जोतना क्रिया जोतते जुडनें, काममे लगने की वर्तमान कालिक क्रिया बैल जुत गये । क्षेत्र जोतते जुजुते । ३३ विथ वेथ धातुका याचना मागनेकी क्रिया । वेथते वर्तमानकालिक मागनेकी क्रिया । विथ ही पढते लघूपध गुणसे वेथते बनता, किन्तु विविथ विवेथे, दो रूप बननेके लिए दो धातु पढ़ा । जहा असयोगात् लिट् कित् होगा वहा गुण नही हो सकेगा । ३५ श्रथि इ-इत्से नुम् अनुस्वारपरसवर्ण । श्रन्थ धातुका शिथि

ल्ये । श्रन्थते । ३६ ग्रथि कौटिल्ये । ग्रन्थते । ३७ कत्थ श्लाघायाम् । कत्थते ।
एधादयोऽनुदात्तेतो गताः ।

अथाष्टात्रिंश त्तवर्गीयान्ता परस्मैपदिनः । ३८ अत सातत्यगमने, अतति ।
'अत आदे' आत, आततु, आतु । लुङि । आतिस् ई त् इति स्थिते । (६६)

इट ईटि ७।२।२३॥ इट परस्य सस्य लोप स्यादीटि परे । 'सिज्लोप'

लता, स्रमन–ढीला होना, सुस्त, हरारतकी क्रियाके वतमानकालिक कर्तामें
लट् । श्रन्थते —एककर्तामे वर्तमानशिथिलता थकावट सुस्तीकी क्रिया ।
शश्रन्थे । श्रन्थिष्यते-थकेगा, शिथिल होगा । अश्रन्थत श्रन्थेत । ३६इ–इन्
नुम् सहित-ग्रन्थ धातुका कौटिल्य शाठ्य–वक्रीभवन, हठ चालताकी क्रिया ।
गूथना ग्रन्थते-कर्तामे वर्तमानकालिक गूथना क्रिया, जग्रन्थे । द्वित्वादि कुहो-
श्चु । बीते भूतकालमे गूथनेंकी क्रिया । ३७ कत्थ धातुका श्लाघा आत्म
प्रशसा, अविद्यमान गुणको प्रकाशित करना । अपने मुह मिट्ठू बनना ।
कत्थते । चकत्थे, कत्थिता कत्थिष्यते । कत्थता अकत्थत । कत्थेत ।
अकत्थिष्ट । एध धातुसे लेकर कत्थ तक अनुदात्त इत् धातु बीत गये ।

अथाष्टा–अष्टौ च त्रिंशत् द्वन्द्व, अष्टाधिका त्रिंशत् । द्व्यष्टन से आत्व
अष्टात्रिंशत् । अष्टका दशामे पृथक् पद । ३७तवर्ग अन्त धातु परस्मैपदी है ।
जो न अनुदात्त, न स्वरित, न ङित् ञित् है अत शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद ।

३८ अतधातु का सातत्य–निरन्तर चलते रहनेकी क्रिया । अतसे वतमान
कालिक कर्तामे लट् ति शप् । अतति अतत अतन्ति । निरन्तर गमन क्रिया
गङ्गा, श्वास, वायु, आकाश, नक्षत्र, आत्मामे है । अत अतति निरन्तर
गच्छति इति आत्मा-अतसे मनिन् । वह क्रिया परोक्ष हो आजसे निन्नभूतकाल
कर्तामे लिट् । ति-णल् । अत अ । द्वित्व,हलादिशेष । अ अत अ । अतो गुणे
पररूप प्राप्त, उसे बाधकर अत आदे से अभ्यासके अको दीर्घ आ । पुन सवर्ण
दीर्घ । हल्मध्य न होनेसे न एत्व । आत । दोकर्ता हो,आततु आतुः आतिथ
आतथु आत । आत आतिव आतिम । अतिता अतितातौ अतितार
अतिष्यति । अततु अततात् अतताम् अतन्तु । अत अततात् अततम्
अतत । अतानि अताव अताम । आतत् । अतेत् अत्यात् । आतीत् निरन्तर
गमन क्रियावाचक अत्से सामान्य भूतकालिक कर्तामे लुङ् तिप् इतश्च इ लोप,
च्ले सिच् वलादि इट् । अस्ति सिचोऽपृक्ते ईट् । आतिस् ईत् । आट्
वृद्धि । (६६) इट ईटि । इट्से परे सका लोप हो ईट् परे । इस सूत्रमे रात्स

एकादेशे सिद्धो वाच्य । आतीत् आतिष्टाम् । आतिषु । (६७) वदव्रजहलन्तस्याच ७।२।३।। वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याच स्थाने वृद्धि स्यात्सिचि परस्मैपदेषु । इति प्राप्ते । (६८) नेटि ७।२।४।। इडादौ सिचि प्रागुक्त न स्यात् । मा भवानतीत् । प्रतिष्टाम् । अतिषु । ३९ चिती सञ्ज्ञाने । चेतति ।

स्यसे सस्य, सयोगान्तस्थसे लोप आया । सिच्का स लुप्त । सवर्णदीर्घ आतीत् । शङ्का-सवर्णदीर्घ दशामे सिच्के सका लोप असिद्ध होगा, दीर्घ कैसे? तब (वा) सिच् लोप हुआ हो उस स्थितिमे इट ईटिका सलाप, सवर्णदीर्घ एकादेशेकी दृष्टिमे सिद्ध ही रहता है । आतीत्, एककर्तामे भूतकालिक निरन्तर गमनक्रिया । उस क्रियाके दो कर्ता हो लुङ् तस्थस्थमिपासे तस्को ताम् । च्लेः सिच् इट् । आट् आटश्च वृद्धि ष्टुत्व । आतिष्टाम् आतिषु झेर्जुस्षत्व रुवि० । आती: आतिष्टम् आतिष्ट । आतिषम् आतिष्व आतिष्म । अनेक कर्तामे भूतकालिक गमनक्रिया । इट् क्यो ? अहार्षीत् इट् नही, न सिच्लोप ईट् क्यो पढा ? आतिष्टाम्मे ईट् नही, न सलोप. । शङ्का—सलोप पढते सिच् लोप पढना झलोझलि आदि तीन सूत्र—सिच् विषयकसलोप ज्ञापनके लिए है । उसका फल सोमस्तुत् स्तोता द्विष्टरा द्विष्टमाम् आदिमे सलोप नही । धि च–सूत्रपर वामनने सिच् लोप कहा । भाष्यमतमे सलोपका भेद है । मा भवान् अतीत् अतिष्टाम । आदि प्रयोगोमे वृद्धिकी शङ्का—

(६७) **वद्व्रज** हलन्तका समाहारद्वन्द्व । षष्ठी एकवचन । अङ्गस्य, सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु अनुवर्तन्ते । वद व्रज हलन्त धातुओके अङ्गके अच्के स्थान मेवृद्धि हो परस्मैपद परक सिचि परे । हलन्तमे वद व्रजका ग्रहण होता ही अलग क्यों पढा ? अवादीत अव्राजीत्मे अतो हलादेर्लघो'से वृद्धि विकल्प बाधनेके लिए, अपाक्षीत् अधाक्षीतमे हलन्त मानकर वृद्धि प्राप्त हुई ।

(६८) **नेटि** इट् आदिमे हो, ऐसा सिच्परे । **प्रागुक्त**=वदव्रजहलन्तस्याच से वृद्धि नही होती । हलन्तलक्षणा वृद्धिका मुख्य निषेध । जब आटश्चसे वृद्धि है तब निषेधका क्या मूल्य । अत मा भवान् अतीत । माङ्योगमे आट् नही होता तब वृद्धि निषेध सफल । इसी उद्देश्यसे क्वचित् हलन्तलक्षणा द्यावृद्धिन पठ्यते । ३९ **चिती** । ई–इत निष्ठामे इट् निषेधार्थ है । **सञ्ज्ञाने**= अचेतसे चेतमे, वेहोशसे होशमे, अविवेकसे विवेकमे होनेकी क्रियावाचक चित् धातुसे वतमानकालकी चेतना आनेके कर्तामे लट् तिप् शप् । पुगन्तलघूपधगुण **चेतति चेततः चेतन्ति** । एककर्तामे चेतना आनेकी वर्तमान क्रिया, अद्यभिन्न

चिचेत। अचेतीत्। अचेतिष्टाम्। अचेतिषु। ४० च्युतिर् आसेचने। सेचन-माद्रीकरणं। आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ च। 'इर इत्संज्ञा वाच्या'। च्योतति।

भूत (परोक्ष) काल क्रिया कर्तामे लिट्। ति, णल् द्वित्व। चित-२ चिचित, **चिचेत चिचिततु' चिचितु चिचतिथ चिचितथु चिचित। चिचेत चिचितिव चिचितिम।** तिप् सिप् मिप्मे कित् नही, न गुणनिषेध। अन्यमे कित्से निषेध हुआ। आजके भविष्यसे भिन्न भविष्यकालमे चेतना क्रियाके कर्तामे लुट् तास् डा आदि। **चेचिता। चेततु। अचेत् अचेतताम् अचेतन्। अचेतः अचेततम् अचेतत। अचेतम् लचेताव अचेताम्। चेतेत् चेतेता चेतेयुः। चेतेः चेतेत चेतेत। चेतेय चेतेव चेतेम। चित्यात् चित्यास्ता चित्यासु।** चेतना आनेकी आज्ञा प्रेरणा प्रश्न प्रार्थना आशीर्वाद आदिमे विधिलिङ्, आशीर्लिङ्का अर्थ, **चित्या चित्यास्त चित्यास्त। चित्यास चित्यास्व चित्यास्म।** भूतकालिक चेतना क्रियाके कर्तामे चितसे लुङ् ति इतश्च इलोप। च्लि सिच्। इट ईटि सलोप। अट् लघूपधगुण

अचेतीत् अचेतिष्टाम् तस्को ताम् होनेपर अपृक्त नही, न इट् **अचेतिषु।** अनेककर्तृकभूतकालिक सम्यग्ज्ञान क्रिया। अचेती **अचेतिष्टम् अचेतिष्ट। अचेतिषम् अचेतिष्व अचेतिष्म।** नेटिके निषेधसे हलन्तमान कर निषेध है, न वृद्धि। ४० च्युतिर धातुका आसेचन=आद्रीकरण गीला करना चूना (थोडा या अधिक) क्योकि आसेचने शब्दमे आङ्का ईषत् थोडा गीला या अभिव्याप्ति पूर्णरूपसे भीगा होनेकी क्रिया। इ और रेफकी इत्संज्ञा से इदिति धातु मानकर नुम् प्राप्तका बाधक (वा०) ईर् समुदायकी इत्संज्ञा बोलें। इससे इर इत् हुआ, इदित् नही, न नुम्। थोडा या अधिक गीलाकरना क्रियावाचक च्युत्से वर्तमानकालिक कर्तामे लट् तिप् शप्। लघूपध गुण **च्योतति** एककर्तृक वर्तमानकालिक आद्रीकरणानुकूलव्यापार। त्व **च्योतसि** तुम गीला करते हो। अहं **च्योतामि** पूर्णरूपसे फीचता हू। यह गीला करणक्रिया परोक्ष अनद्यतनकालमे हो, लिट् तिप् णल् द्वित्व आदि। पित् कित् नही होता, न गुणनिषेध। **चुच्युततु**—तस्का अतुस् कित् है। गुण निषेध हुआ। **च्योतिता**—अद्यभिन्न भविष्यकालिक इषत् या पूर्णरूपेण सिञ्चन क्रिया। **च्योतिष्यति। च्योततु।** आसेचनक्रिया प्रेरणाका विषय होनेपर लोट्। एककर्तामे आद्रीकरण क्रियाविषयक प्रेरणानुकूलव्यापार। **अच्योतत्। च्योतेत्। च्युत्यात्। अच्युतत्** च्युत्धातुसे भूतकालिक थोडा

चुच्योत । (६९) इरितो वा ३।१।५७।। इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात्परस्मैपदे परे । अच्युतत् । अच्योतीत् । ४१श्च्युतिर क्षरणे । श्च्योतति । चुश्च्योत अश्च्युतत् । अश्च्योतीत् । यकाररहितोऽप्ययम् । श्चोतति । मन्थ विलोडने । विलोडन प्रतिघात । मन्थति । ममन्थ । यासुट 'किदाशिषि' इति कित्त्वात् अनिदितामिति नलोप । मथ्यात् । ४३ कुथि पुथि लुथि मथि हिंसासंक्लेश-

या अधिक सचन कियाके कर्तामे लुङ् तिप् च्लि सिच् प्राप्तको बाधकर-

(६९) इरितो वा-इर् इत् हो ऐसे धातुसे च्लिको अङ् विकल्पमे हो, परस्मैपद परे (धातोरेकाच से) धातोः (अस्यति वक्तिसे) अङ् पुषादिसे परस्मैपद आये । सिच्को बाधकर च्लिको अङ जो ङित् है,न गुण । अट् अच्युतत् अच्युतताम् अच्युतन्,अच्युतः अच्युततम् अच्युतत । अच्युतम् अच्युताव अच्युताम् । यदा न अङ् तदा सिच् । इट ईटि सलोप आदि । अच्योतीत् अच्योतिष्टाम् अच्योतिषु । ४१ श्च्युतका क्षरण–झरना, चूना पसीझना क्रिया वर्तमानमे श्च्योतसि । परोक्ष भूतकालमे चुश्च्योत । द्वित्व दशामे शर्पूर्वा खय से अभ्यासका 'च' शेष क्षरण पसीझना क्रिया समाप्त हो, कर्ता वर्तमान हो या न हो, लुङ्–ति इ लोप । इरितो वासे च्लिको अङ् विकल्प पक्षमे सिच् इट् आदि । यसे रहित भी धातु है । प्रमाण मधुश्चुत घृतमिव सुपूतम् है। अश्चुतत् अश्चोतीत् । श्चोतिता श्चोतिष्यति । ४२ मन्थ धातुका विलोडन आस्फालन प्रतिघात घुमाकर मथनेकी क्रिया । तिप् शप् मन्थति एक कर्तामे वर्तमानकालिक मन्थन क्रिया । त्व मन्थसि दुग्धम् अह दधि मन्थामि । ह्य कदा ममन्थ । परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक मन्थन क्रियाका चेष्टावान् चैत्र । ममन्थतु देवा समुद्र ममन्थु । मन्थनक्रियाके लिए प्रयत्नवाले देवता । मन्थिता मन्थितासि मन्थितास्मि । मन्थिष्यते मन्थिष्येथे । मन्थिष्यावहे । मन्थन्तु मन्थत, मन्थामहे । हमलोग मन्थन करे ।अमन्थत् अमन्थताम् अमन्थन् । अमन्थ अमन्थम् । मन्थेत् मन्थन क्रिया करे । आशीर्लिङ्मे यासुट कित् है, किदाशिषि सूत्रसे उसका फल अनिदिता हल उपधाया से नलोप । मथ्यात् । उसमे मन्थन क्रियाकी शक्ति । आये मथ्यास्ता मथ्यासु । अमन्थीत् अमन्थिष्टा अमन्थिषु. त्व अमन्थी , अह अमन्थिषम् । ४३ इ–इत् कुथ लुथ मथ इतने धातु हिंसा–प्राण वियोग, कष्ट देनेकी क्रिया अर्थ कुन्थति पुपुन्थ लुन्थिता मन्थिष्यति हिंसा करेगा, कष्ट देगा । कुन्थतु अकुन्थत् । पुन्थेत लुन्थ्यात् मन्थ्यात् । यह धातु इदित्

नयो । इदित्वान्नलोपो न । कुन्थ्यात् । पुन्थ्यात् लुन्थ्यात् । मन्थ्यात् । ४७ षिध गत्याम् । सेधति सिषेध सेधिता । असेधीत् ।* 'सात्पदाद्यो' इति षत्व निषेधे प्राप्ते । (२२७०) **उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभति-स्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्** ८।३।६५।। उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य ष स्यात् । (७१) **सदिरप्रते** ८।३।६६।। प्रतिभिन्नादुपसर्गात्सदेः सस्य

है अनिदिताम्से लोप नही होगा । ४७ षिधधातु गति सफलता सिद्धि सीझने अर्थमे है, अच्परक षादि है षोपदेशका फल धात्वादेःसे षको स होना । सीझने या सिद्धि होनेकी क्रियावाचक सिधधातुसे वर्तमानकालिक क्रियाके कर्ता मे लट् । ति–शप् लघूपध गुण । सेधति सेधसि–सेधामि, सिषेध । न देखी हुई सीझनेकी बीते भूतकालिक क्रिया सहित कर्तामे लिट् । सिध सिध सिसिध सिषेध । आदेशप्रत्ययो से षत्व । अनिट् कारिकामे श्यन् विकरण सिध पढा । शप्वाला सेट् है । सेधिता तेधितासि सेधितास्मि । सेधिष्येते, सेधिष्येथे, आवा सेधिष्याव वय सेधिष्याम । सेधन्तु सेधतम् असेधत्, असेध असेधम् । सेधेत सेधेयु वय सेधेम । सिध्यात् असेधीत् असेधिष्टाम् असे धिषु । नेटिके निषेधसे हलन्त मानकर वृद्धि नही । सिध-लुङ् अट् तिप् इनश्च इलोप । च्ले सिच् । वलादि इट्, अपृक्त ईट्, सिच इट ईटिसे सलोप सवर्ण दीर्घ गुणे । एककर्तामे भूतकालिक सीझनेकी क्रिया ।

निषेधति आदेशके सको ष होगा ही उपसर्गात्सुनोति सूत्र क्यो पढा ? इस शङ्का पर बोले—सात्पदाद्योः=पदके आदि सको षका निषेध प्राप्त था । उस बाधनेके लिए पढा ।

(२२७०) उपसर्ग का उपसर्गस्थमे लक्षणा उपसर्गमे स्थित निमित्त (इण् रूप इ उ) से परे एषाम्=इनके सको ष हो । सुनोति सुवतिमे स्तिप निर्देश यङ् लुक्मे षत्व रोकनेके लिये । अभिसोमशीति । स्थादिषु एव अभ्यासस्य षत्व न तु सुनोत्यादिषु । नियमसे षत्व प्राप्त नही । उपसर्गसे परे स्यति स्तौति स्तोति । स्थाके सको ष हो । सेनया अभियाति अभिषेणयति । णिजन्त नामधातु है, सेधति । शप् सकेतसे षत्व होगा । सिद्धयतिको नही प्रतिसिद्ध-यति । निःषुणोति नि षेधति नि षिञ्जति । नुम्विसर्जनीय शरके व्यवधान मे भी षत्व । षत्वकी स्थितिमे दुर्को उपसर्गका निषेध है । सहे साड से स आया । षष्ठी बना । अपदान्तस्य मूर्धन्य प्राक्सितात्सूत्रतक । क्रमश षत्व

ष स्यात्। (७२) **स्तम्भेः** ८।३।६७।। सौत्रस्य सस्य ष स्यात् योगविभाग उत्तरार्थं। किञ्च अप्रते इति नानुवर्तते। 'बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्यु' इति (७३) **अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः** ८।३।६८।। अवात्स्तम्भेरेतयोरर्थयोः षत्वं स्यात्। (७४) **वेश्च स्वनो भोजने** ८।३।६९।। व्यवाभ्यां स्वनते सस्य षः स्याद्भोजने। (२२७५) **परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्**

विधायक सूत्र। (७१) सदि. **अप्रतेः**। प्रतिसे भिन्न उपसर्गमे स्थित इण्से परे सदके सको ष। सदि की प्रथमा षष्ठी अर्थमे। निषीदति उपसर्ग--निमे इण् इसे परे षत्व। अप्रते क्यो ? प्रतिसीदति। (७२) स्तम्भे उपधामे नकार निर्देशसे सूत्रमे पढे धातुके सको ष हो,स्तन्भु स्तुम्भुके सको ष होगा प्रतिपदोक्त होनेसे। ष्टभि, प्रतिबन्धे। नुम्से लाक्षणिक की मान्यता नही। विस्तम्भतमे न षत्व। ननुउद स्थातम्भो सूत्रमे मकार उपधामे स्वीकृत है। दोनोमे लाक्षणिक है न षत्व। ननु सदिस्तम्भयो' अप्रते,एकमे पढते, दोनो सूत्र अलग क्यो ? तब कहा—**योगविभाग**=दोनो सूत्रोका अलग पढा जाना **उत्तरार्थं**=उत्तर सूत्र (अवाच्चालम्बना) मे अनुवृत्तिके लिये। ताकि सदि न आये। ननु सदिमे स्वरित प्रतिज्ञा नही, न अनुवृत्ति। तब कहा किञ्च-अथवा 'अप्रते' की अनुवृत्ति निवारणार्थ है। यदि आती अनिष्ट होता। एक सूत्र होता, अप्रते.का स्तम्भिसे सम्बन्ध होजाता। प्रामाणिकोने प्रतिके योगमे षत्व किया है। बाहुप्रतिष्टम्भः। यदि अप्रते आता षत्व न होता।

(७३) अवाच्च—आलम्बनञ्च आविदुर्यञ्च द्वन्द्वसे सप्तमी। आलम्बन (आश्रयण-छडीका सहारा। यष्टिमवष्टभ्य तिष्ठति अथमे) आविदुर्य=(अवष्टब्धा गौ निरुद्धासति समीपे आस्ते) रोकी गयी पासमे खडी है। अवसे परे स्तम्भके सको ष हुआ। आधार और समीप अर्थका सूचक षत्व। एतयो' किम् ? अवस्तब्धो वृषल शीतेन,शूद्र ठण्डसे जकड उठा। कोई अविदूर शब्दसे स्वार्थमे ष्यञ् कहते है उसका अनतिदूर इषद्दूर अर्थ।(७४) वेश्च। चसे अव आया, वि अव्से परे स्वनतिके सको ष हो, भोजन अर्थ खुलने पर। विस्वनति विशेषध्वनि। विसे परे ष। अट् कुप्वाङ्से णत्व, **विष्वणति** सशब्द भुङ्क्ते। अवसे भी षत्व णत्व। अवष्वणति दहाडकर खाता है व्यष्वणत। विषष्वाण। स्थादिषु अभ्याससे षत्व। भोजन क्यो कहा ? विष्वनति-वीणा बजाती है।

(२२७५) परि नि विसे परे सेव आदि धातुओके सको ष हो। सेवका अ

८।३।७०॥ परिनिविभ्य परेषामेषा सस्य ष स्यात्। (७६) **प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि** ८।३।६३॥ * 'सेवसित' इत्यत्र सितशब्दात्प्राक् ये सुनोत्यादयस्तेषामड्व्यवायेऽपि षत्वं स्यात्। न्यषेधत्। न्यषेधीत् न्यषेधिष्यत्। (७७) **स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य** ८।३।६४॥प्राक्सितात्स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्व स्यात्। एषामेव चाभ्यासस्य न तु सुनोत्यादीनाम्। निषिषेध। निषिषिधतु। (७८) **सेधतेर्गतौ** ८।३।११३॥ गत्यर्थस्य सेधते षत्व न

उच्चरणार्थं षेवृ सेवायाम्। परिषेवते निषेवने विषेवने सको ष हुआ विशेष सेवा क्रिया का कर्ता। षिञ् बन्धने। सित विषित'। विसे परे सको ष। बन्धनमे पडा। जब सिसे एरच् या पचादि अच्। सि अ। इको गुण। अय, सय --बन्धनकर्ता। विशेषेण सय विषय बन्धन विषय। षिवु तन्तु सन्तानें सूतमे सीना परिषीव्यति। सब प्रकारकी सिलाई करता है षत्व हुआ। षह मर्षणे क्षमा, सहन अथमे परिसहते। परिसे परे सको ष आगम। सुट्के सको ष। परिष्करोति--मनमोहक भाव भरता है, विष्करोति। स्तु, स्वञ्ज धातुको उपसर्गात्सुनोतिसे षत्व सिद्ध था तथापि परिनिविसे परे इन दोनोको सिवादीनाके विकल्पको बाधनेके लिये पढा। निषेधक षत्व हुआ।

(७६) प्राक् सितात्—सेवसित सूत्रके सित् शब्दसे पहले जितने सुनोति सुवति स्यति आदि १५ धातु है उनके सको षत्व अट्के व्यवधानमें भी हो। यथा न्यषेधत् नि+अषेधत्। अट्के व्यवधानमे इण्से परे नही मिला, षत्व प्राप्त नही अत सूत्र पढा। यण्, षत्व हुआ। एव नि+अषेधीत् आदि।

(७७) स्थादिषु=प्राक् सितात् आया। उपसर्गात्सुनोति सूत्रके स्था नय षेधसे लेकर षेधसित तक स्वीकृत १० धातुके व्यवधानमे भी षत्व हो, निषिषेध। अभ्यासका पहला सि उमसे परे दूसरे सको षत्व हुआ। अभ्यासके व्यवधानमे भी जिस कारण अप्राप्त था अत सूत्र पढा। यह कार्य उपसर्गात्सुनोतिसे भी सिद्ध था। अभ्यास व्यर्थ होकर ज्ञापन दिया कि अभ्यासमे स्थित स को यदि ष हो तो केवल स्थादि दश धातुओको ही। सुनोत्यादिके अभ्यास को न हो। षू प्रेरणे अभिसुसूषति अभ्यासको षत्व नही हुआ। अभ्यासात्परस्य सस्य स्तौतिण्योरेव नियमात् न भवति। अभिषिषासति अभ्यासके सको ष हुआ।(७८) सेधतेर्गतौ गति अर्थमे षेधधातुके सको ष नही होता,जो उपसर्गात्सुनोतिसे प्राप्त था। किन्तु आदेशप्रत्ययो से होता है। गङ्गा विषेधति गच्छतिगमन अर्थ है षत्व निषेध हुआ, षिधू धातुका शास्त्र=शासनके अनुकूल

स्यात्। मङ्गले विसेधति। ४८ षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च। शास्त्रं शासनम्।
(७९)स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४॥ स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। **(२०८०) झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०॥** झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः। जश्त्व, सिषेद्ध। सिषेधिथ। सेद्धा

क्रिया अर्थ माङ्गल्ये=मङ्गलस्य भाव शुभ कर्म कल्याण, सिद्धकी क्रिया। सिध् से लट् तिप् शप् लघूपधगुण। **सेधति** एककर्तामे वर्तमानकालकी सिझाने, शासनकी शुभक्रिया धातुका अर्थ, सभी रूपोमे रहेगा। भेद-लकारार्थ भेदसे जब परोक्ष बीते भूतकालकी क्रिया हो तब सिध्से लिट्। तिप् णल् षिध् षिध् षिषिध् लघूपधगुण षत्व। सिषेध अ। इस दशामे **सिषेध** होगा। **सिषिधतु सिषिधु** अनेक कर्तामे या सीझने शुभकर्म या शासनकी भूतकाि क क्रिया। वह क्रिया त्वमे हो तब सिप् थल्। सिषेध थ दशामे बलादि आधधातुक थको इट् नित्य प्राप्त था।

(७९) **स्वरति**—स्वृ शब्दोपतपयो भ्वादि। षू प्रेरणे तुदादि, धूञ् कम्पने स्वादि क्यादि मान्य। निरनुबन्धक धू विधूनने नही। उकार इत्। धातुसे परे वलादि आर्धधातुकको इट् विकल्प हो। **निरनुबन्धक ग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्।** निषेध थ। ऊ इत् मानकर वलादि आर्धधातुक थको इट् विकल्प। षत्व। **सिषेधिथ**। पक्षमे थको ध करनेका सूत्र—

(२२८०) **झष** पञ्चमी तश्च थश्च। ध प्रथमा। झभञ्से घढधष् तक के अक्षरसे परे त, थको ध हो। अध-धा-धातुको छोडकर। झरा जशि झशि धको द **सिषेद्ध**। तुममे वर्तमान भूतकालिक क्रिया। **सिषिधथु सिषिध सिषिधिव सिषिध्व**। उत्तमपुरुष वस् मस् परे इट् विकल्प। मङ्गल होने, शासन करनेकी क्रिया कल परसोके भविष्यकालमे हो। तब षेध से लुट्। तास्, ति डा-इट् **सेधिता**। पक्षमे झषस्तथो से तको ध। प्रथम धकी जश् **सेधितारौ सेधितार सेद्धा सेद्धार सेधितासि। सेद्धास्थ सेद्धास्थ। सेधितास्मि**। सामान्य भविष्यकालमे शासन या मङ्गल क्रियाका कर्ता हो लृट् विस्थ इट् विकल्प। **सेधिष्यति** इट् नही, धको चर त। **सेत्स्यति**। सेधतु असेधत् सेधेत। **सिद्ध्यात्** सीझना सिद्ध होना, शासन शुभक्रिया भूतकालमे हो तब लुङ् तिप इतश्च इलोप। च्लि सिच्, अस्तिसिचो से ईट् अट् असेध स् इत। वदव्रजहलन्तस्याच से वृद्धि धको चर—त असैत्सीत्। वह क्रिया अनेकर्तामे हो तब तस-ताम्-असैद्धाताम्। इट अभाव पक्षमें सिच्लोप

सेधिता । सेत्स्यति—सेधिष्यति । असैत्सीत् । (८१) झलो झलि ८।२।२६॥ झल परस्य सस्य लोप स्याज्झलि । असैद्धाम् । असैत्सु । असैत्सी । असैद्धं । असैद्ध । असैत्सम् । असैत्स्व । असैत्स्म । पक्षे असेधीत् । असेधिष्ट,मित्यादि । ४६ खादृ भक्षणे । ऋकार इत् । खादति । चखाद । ५० खद स्थैर्ये हिंसायां च । चाद्भक्षणे । स्थैर्येऽकर्मक । खदति । (८२) अत उपधाया ७।२।११६॥ उपधाया अतो वृद्धि स्यात् ञिति णिति च प्रत्ययेपरे॰चखाद ।(८३) णलुत्तमो

का सूत्र—(८१) झलो-झलिसे परे सका लोप हो, झलि परे रहते । सयोगान्तस्यसे लोप,रात्सस्यसे स आया । झल किम् अनैष्टाम् । झलि किम् असैत्सीत् इस सूत्रसे सिच्के सका लोप । तको ध । पूर्व धको जश् द, असैद्धाम्। असैत्सु । झिको जुस् । सिच वृद्धि आदि पूर्ववत । असैत्सी तुम शासन या शुभ कर्म कर चुके हो । असैद्धम् असैद्ध । पक्षमे असेधीत् । असिध इ म ई त् ।इट इटिसे सलोप सवर्णदीघ । लघूपधगुण । नेटिसे वृद्धि निषेध । असेधिष्टाम् असेधिषु असेधी॰ असेधिष्टम् असेधिष्ट,लकारोके अर्थमें भेद होगा, धातुका अर्थ एक ही रहेगा । ४६ खादृ-ऋ इत्का नाग्लोपि सूत्रसे ह्रस्व निषेध । खाद धातुका खाना चबाकर गलेके नीचे उतारना लीलना । तृप्ति क्रिया । उसका वर्तमान काल कर्ता हो, खाने क्रियाका आश्रय अर्थमे लट् शप्, अपूप खादति । कदा चखाद परश्व । श्व खादिता । कदा खादिष्यति एक कर्तामे भविष्यकालिक भोजन क्रिया । खादतु खादाता खादन्तु । खाद खादत खादत । खादानि खादाव खादाम । अखादत् अखादता अखादन् । अनद्यतन भूतकालमे भोजन क्रिया, खादेत् वह खाये । खादेता खादेयुः त्व खादे अह खादेयम् । अखादीत अखादिष्टाम् अखादिषु ।

५०खद धातुका स्थिर—खद—खदाकर शान्त होना । जैसे पानीमे अङ्गार । हिंसा भक्षणकीक्रिया । स्थिर अर्थमे अकर्मक । क्रिया वतमान हो । कर्तामे लट् खदति स्थिरो भवति खाता है । सिह अजा खदति । खदामि खदाव॰ खदाम । वह किया परोक्ष भूतकालमे हो तब लिट् । तिप् णल । द्वित्वादिः, खद खद खखद कुहोश्चु चखद इति दशायाम । (८२) अत उपधा—अन्त्य अल् का पूर्ववर्ण अकारको वृद्धि ।(मृजेर्वृद्धि से वृद्धि आया)ञित् णित् प्रत्ययपरे जो अचोञ्णिति तिसे आये । अत क्यो? तुतोद । उपधाया क्यो ? गणयति । अन्यथा अता लोपको बाधकर परत्वात् वृद्धि होती । इसी सूत्रसे उपधा अको वृद्धि आ, चखाद । कब खाया । चखदत चखद । चखदिथ तुम कब स्थिर हुए ।

वा ७।१।९१।। उत्तमो णल्वा णित्स्यात् । चखाद चखद । (८४) अतो हला देर्लघो ७।२।७।। हलादेर्लघोरकारस्येडादौ परस्मैपदपरे सिचि वृद्धिर्वा स्यात् । अखादीत्–अखदीत् । ५१ वद स्थैर्ये । पवर्गीयादि । बदति । बबाद । बेदतु । बेदिथ । बबाद बबद । अबादीत् अबदीत् । ५२ गद व्यक्तायां वाचि । गदति ।

(८५) नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवह-

हिंसा किये, खाये । उत्तमपुरुषके णल्को णित् विकल्पका सूत्र ।

(८३) णल उत्तमो । उत्तमपु०का णल विकल्पसे णित् हो जिसका फल उपधावृद्धि । न णित्, न वृद्धि । गोतो णित्से णित् आया । अहं चखाद मैं स्थिर हुआ, कब मारा खाया । खदिता खदिष्यते शान्त होगा मारेगा । खायेगा । खदतु अखदत्–अनद्यतन भूतकालकी उक्त क्रिया । खदेत् खदेतां खदेयु । खदे खदेत खदेत । खदेयम्, खद्यात् । भूतकालमे लुङ् ति । इतश्च इलोप । सिच् अट् वलादि इट्, अस्तिसिचः ईट, इट इटि सलोप । सवर्णदीर्घ,

(८४) अतो–हलादि धातुके लघु अकारको वृद्धि विकल्पसे हो, इडादि परे स्मैपद परक सिच् परे । सिचि वृद्धि से परस्मैपद (नेटि) इट । ऊर्णोतेःसे विभाषाकी अनुवृत्ति । अत क्यो ? अदेवीत् । हलादे किं ? मा भवान् अतीत् लघो कि ? अगर्दीत् । इडादि क्यो ! अपाक्षीत् । परस्मैपद क्यो ! अयतिष्ट । इससे विकल्पवृद्धि । हलादि–अखादीत् अखदीत् अखदिष्टाम् अखदिषुः अखदी. अखदिष्टाम् अखदिष्ट अखदिषम् । ५१ वदधातुका स्थिरीभवन, बातका स्थिर होना, धनी । पवर्ग तृतीया आदि ब है । दन्त्योष्ठ स्थानी (व) नही । बदति एककर्तृक वर्तमानकालिक स्थिरभवन क्रिया । वीते दिनोमे परोक्ष स्थिरता हो । बबाद । अत उपधाया से वृद्धि बेदतुः अभ्यासको जश् हुआ । किन्तु विरूप आदेश नही एत्व अभ्यासलोप हुआ । बबाद पित् है कित् परे नही न एत्वादि । बेदिथ यद्यपि पित् है कित् नही तथापि थलि च सेटिसे ए अभ्यासलोप । बेदथु बेद । उत्तमपुरुषका णल्णित् विकल्प हुआ, बबाद बेदिव बेदिम । यदि दन्त्य=दन्त्योष्ठ स्थानका व आदिमे होता तब न शसददवादिसे एत्वका निषेध होता । अबादीत् अबदीत् । अतो हलादेर्लघोः हलादि लघु अकारस्य विकल्पवृद्धि । गद धातुका व्यक्त स्पष्ट उच्चार, मनुष्य वाणीकी क्रिया वर्तमानकालिक कर्ता । गदति स्पष्ट बोलने क्रियाकी चेष्टावान् । जब प्र नि उपसर्ग होगा तब–

(२१८५) नेर्गद–उपसर्गमे स्थित णत्वका निमित्त र ष उससे परे निके

तिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ७।४।१७।। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्णः स्यात् गदादिषु। प्रणिगदति जगाद। ५३ रद विलखने। विलेखन भेदनम्। रराद। ५४ णद अव्यक्ते शब्दे। (८६) णो न ६।१।६५।। धातोरादेर्णस्य नः स्यात्। नदति। 'णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्द्नक्कनॄनृत। 'नाटेर्दीर्घोर्हस्य

नको ण हो, गदादिषु परे–नद अव्यक्तशब्द (मूक ध्वनि) पत–पतन गिरना पद गतौ। घुसञ्ज्ञक दा धा आदि। डुदाञ् प्रणिददाति। दाण् प्रणियच्छति। दो अवखण्डने प्राणद्यति। देङ् प्रणिदयते, धेट् प्रणिधयति। मेङ् माङका ही सूचक मा शब्द श्यति हन्ति। षो अन्त कर्मणि (दाह क्रिया) समाप्त करना- हन् हिंसाया, या प्रापणे, वा गतिगन्धनयो प्सा भक्षणे, वप बीजबोना। वह प्रापणे ढोना, शम, शान्त करना, चिञ् चुनना दिह उपचये बढाना स्वच्छ करना। इस सूत्रमे रषाभ्या नो ण आया। उपर्गात् भी। सूत्रसे श्तिप्का निर्देशे यङ्लुक्मे णत्व न होनेके लिए। जैसे प्रनिजागदीति। प्रनिनानदीति णत्व नही हुआ। प्रसङ्गमे णत्व प्रणिददाति। एककर्तामे विशेष भाषणकी वर्तमान क्रिया। वह क्रिया प्रत्यक्ष न हुई हो, बीते भूतकालके वर्तामे लिट्। गदगद्, गगद्, जगद। उपधाके अको वृद्धि। जगाद जगदतु जगदु। जगदिथ। गदिता गदिष्यति। गदतु गदतात् गदता गदन्तु। गद गदतात् गदत गदत। गदानि गदाव गदाम अगदत्। अगादीत् अगदीत्। ५३ रद धातु का विलेखन=फाडकर फेंकने रद्दी टोकरीमे या रद्द करनेकी क्रिया। रदति रद्द करता हैं। रदत रदन्ति। रराद। णल् परे उपधा वृद्धि। किति परे एत्व अभ्यासलोप। रेदतु रेदु। रेदिथ। रदितास्मि–कल रद्दी खानेमे डालूगा। रदितास्म कर्गलानि,रदतु अरदत् अरदताम् अरदन्। अरद अरदतम् अरदत। अरदम् अरदाव अरदाम। रदेत् स,वह रद्दी करदे। अरादीत् अरदीत्। अरद् इ स ई त। हलादि लघु अको वृद्धि वि०। णद् का अव्यक्त मूकध्वनिकी क्रिया।

(८६) णो न –धातुके आदि णको न हो। धात्वादे आया। अणतिमे ण आदिमे नही न नत्व। नदति मेघ, बादल गरजता है वर्तमानकालिक गर्जन क्रिया। अमनुष्य–पशु पक्षी सिह आदिकी ध्वनिभी। यह नकारआदेश लिट्को मानकर नही,अत एत्व अभ्यास लोप हुआ। ननाद नेदतु नेदु। नदिता। नदेत् अनदीत्। णोपदेशकी गणना करते है। नद शब्दे,नट अवस्यन्दने, नाथ नाध याच्ञाभ्या। नदि सम्वृद्धौ, नक्क नाशने, नॄ नये, नृती गात्रविक्षेपे इन

पर्युदासाद्धटादिर्णोपदेश एव। चतुर्थान्तनाधते नृनन्द्योश्च केचिण्णोपदेशतामाहुः।

(८७) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४॥ उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य ण स्यात्समासेऽसमासेऽपि। प्रणदति। प्रणिनदति। ५५ अर्द गतौ याचने च।* 'अत आदे'। (८८) तस्मान्नुड्द्विहलः ७।४।७१॥ द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात्परस्य नुट् स्यात्। आनर्द आर्दीत, नर्द गर्द शब्दे। णोपदेशत्वाभावान्न ण। प्रनर्दति। गर्दति। जगर्द। तर्द हिंसायाम्। तर्दति। कर्द कुत्सिते शब्दे। कुत्सिते कौक्षे। कर्दति। ६० खर्द

आठ धातुओको छोड कर जितने ण आदि धातु है जिनको नत्व हुआ हो वे णोपदेश मान्य। नाटि दीर्घके योग्य है। पर्युदाससे घटादिका णोपदेश मान्य, नट नृतौ घटादिमे पढा है। उसका फल कहेगे। किसीके मतमे तवर्गका चौथा ध अन्त नाध और नृनन्दि णोपदेश है। जो पाचोसे अलग है किन्तु भाष्य विरोध अरुचिमे बीज है। जब उपदेशमे पढा णत्वको नत्व होना है, तब उपदेशगे नकार ही पढते, णोपदेशका फल क्या है—

(८७) उपसर्गत् =उपसर्गमे स्थित णत्वका निमित्त रषसे परे ण उपदेशके धातुके नको ण हो, समासमे, बिना समासके भी। रषाभ्या नो ण, समासेऽङ्गुले से समास आया, असमास पढा ही है। प्रसङ्गमे समास है णत्व हुआ। णस्य उपदेशो यस्मिन् सध तु णोपदेश। प्रणदति—प्रके साथ समास नही,भिन्न पद है णत्व प्राप्त नही था अत सूत्र पढा। प्रणिनदति नेर्गद=सूत्रसे णत्व (बहुत तेज गर्जना) धातुके नको ण नही हुआ। अटकुष्वाङ्से अधिकके व्यवधानसे। ५५ अर्द् धातुका गमन मागनेकी क्रिया। अर्द्ति उपधाया—सूत्रमे इक आता है। उसीको दीघ। अ को नही। जब परोक्षगमन या याचना क्रिया का भूतकालिक कर्ता हो—लिट तिप् णल् द्वित्व हलादिशेष। अ अर्द्। अत आदे से अभ्यास अको दीर्घ। आ अर्द् दशामे। (८८) तस्मात्=द्वौ हलौ यस्य द्विहल =दो हल वाले धातुके, तस्मात्=दीर्घीभूतात्=अत आदे से दीर्घ हुए आ से परे नुट् हो। टइत्। उ उच्चा०। टित्से आदि अवयव हुआ। आनर्द्। भूतकालके कर्तामे लुङ् तिप् इलोप सिच् इट्। इट ईटि सिच्लोप दीर्घ, आदि अनर्दीन्। नर्द् गर्द्का प्रलयकारी ध्वनिकी क्रिया अर्थ। णोपदेश नही, न ण। जगर्द्। गर्दतु अगर्दीत्। ५८तर्द्का हिंसा ऐसी फटकारकी प्राण दहल लाय। ऐसी क्रिया एककर्तामे वर्तमान है। तर्द्ति—अतर्द्दत्। ऐसा बोला कि प्राण निकल गया। ५९ कर्द्का कुत्सित अपशब्द कौक्षे-कखोरीकी आवाजकी क्रिया

दन्दशूके दशनहिंसादिरूपायां दन्दशूकक्रियायामित्यर्थ । खदति चखद । अति अदि बन्धने । अन्तति आनन्त । अन्दति आनन्द । इदि परमैश्वर्ये । इन्दति । इन्दाञ्चकार । विदि अवयवे । पवर्गतृतीयादि । विन्दति अवयवं करोतीत्यर्थं । भिदि इति पाठान्तरम । ६५ गडि वदनैकदेशे । गण्डति । अन्त-

---

कुक्षिभव ध्वनि । चकर्द्द गर्दिष्यति ।६० खर्द्द का दन्दशूक दशनस्वभावः सर्प (विलेशय) सापके डसनेकी प्राणघातक क्रिया । सापके दातसे काटा या खरोचा हुआ, हिसा प्राणवियोग फल हो । क्योकि सर्प क्रियारूप नही धातु का अर्थ नही । अत दश हिंसा खर्द्दति सर्प डसनेकी वर्तमान क्रियावान् पुरुष परोक्ष अनद्यतनकाल हो,द्वित्व आदि,चखर्द्द चखर्द्दतु खर्द्दत् अखर्दीत् । सर्प दशकी भूतकालिक क्रिया । ६१ अति अदि धातुका बन्धन क्रिया अर्थ । इ-इत्से नुम,लट् तिप् शप् । अन्तति । अन्तत अन्तन्ति आनन्त द्वित्वअभ्यास अको अत आदे से दीर्घ । तस्मान्नुड् द्विहल से नुट् । आनन्द भूतकालिक बन्धन क्रिया आन्दीत् ।६३ इदि धातुका परम ईश्वरभाव, सबसे बडा लक्ष्मीपति होना इ—इत । इदितो नुम धातो से नुम् । परमईश्वरभावकी क्रिया-वाचक इन्दसे वर्तमातकालिक भगवान् भवन —कर्तामे लट् । ति शप् इन्दति धनवान् श्रेष्ठ हो रहा है । यदि परोक्षमे हो चुका है इन्द लिट् इजा-देश्च गुरुमत सूत्रसे इच् आदि देखकर आम् । लिट् लुक् लिट्परक कृ का अनु-प्रयोग । द्वित्वादि इन्दाञ्चकार इन्दिता इन्दिष्यति इन्द्र बनेगा । इन्दतु ऐन्दत् ऐन्दीत् । ६४ बिदिका अवयव करना अलग—अलग या भेदकी क्रिया अर्थ । पवर्ग तृतीया । 'ब' आदिमे बिन्दति बिखेरता है विभाजनकी क्रिया । अबिन्दीत् अबिन्दिष्टाम अबिन्दिषु अबिन्दी अबिन्दिष्टम् अबिन्दिष्ट अबिन्दिषम् अबिन्दिष्व अबिन्दिष्म । भिदि भी पाठ है ।

६५ गडि मुखके एकदेश गलगण्ड या फोडा फुन्सीकी क्रिया वर्तमान हो गण्डति अगण्डत् अगण्डीत् । अतति से लेकर पाच धातु तिङ्के विषय नही काश्यपका मत है । अन्य मुनियोके मनमे तिङ् भी है । ६६ णिदिका कुत्सा—निन्दा चुगुली अर्थ । णोपदेशमे णको न । इदित्से नुम । निन्दति निन्दा धातु वर्तमानकालकर्ता एकवचन तिका अर्थ । प्रणिन्दति चुगुली । उपसर्गादसमासेऽपिसे णत्व । निन्दसि निन्दथ निन्दथ निन्दामि । अह कर्तामे निन्दाकी वर्तमानक्रिया । निन्दिता निन्दितारौ निन्दितार । निन्दितासि निन्दितास्थः निन्दितास्थ । निन्दितास्मि निन्दितास्व निन्दितास्म । निन्दतु

ह्यादय पञ्चैते न तिङ्विषया इति काश्यप। अन्ये तु तिङमपीच्छन्ति। णिदि कुत्सायाम्। निन्दति। प्रणिन्दति। टुनदि समृद्धौ। (८९) आदिर्ञिटुडवः १।३।४॥ उपदेशे धातोराद्या एते इत स्यु। नन्दति। इदित्त्वान्नलोपो न। नन्द्यात्। चदि आह्लादे चन्दति। चचन्द। त्रदि चेष्टायाम्। त्रन्दति। तत्रन्द। ७० कदि क्रदि क्लदि आह्वाने रोदने च। चकन्द। चक्रन्द,

---

निनिन्द। अनिन्दत् अनिन्दताम् अनिन्दन्। अनिन्द अनिन्दतम्। अनिन्दत्। अनिन्दम् अनिन्दाव अनिन्दाम निन्देत निन्देताम् निन्देयु। निन्देयम निन्देव निन्देम। अनिन्दीत् अनिन्दीः अनिन्दिष्ट। अनिन्दिषम् अनिन्दिष्व। अनिन्दिष्यम्। ६७ टु नदिका समृद्धि सब प्रकारसे सम्पन्न, प्रजा पशुधनसे परिपूर्ण।

(८९) आदिर्ञि। उपदेश=प्रथम उच्चारण कालकी धातुके आदिमें ञिटु डु की इत्संज्ञा हो। भूवादय से धातवः आया, षष्ठी हुई। उपदेशे (अजनुनासिकसे) आया इत भी। आदि का एकवचन बहुवचनका बोधक भी। उपदेश क्यों ? ञिकारीयति ञीत सुप्त। नन्दथुः द्वितो अथुच्। टु इत् हुआ। इदित नुम् भी। धन धान्य मम्पन्नता वाचक नन्दसे कर्तामे लट् ति शप् नन्दति सम्पन्नतासे मस्तीमे झूमता है। ननन्द ननन्दतु ननन्दु ननन्दिथ ननन्दथुः ननन्द-२ ननन्दिव ननन्दिम। नन्दिता नन्दिष्यति। जब सुख सम्पत्तिके आशीर्वाद आज्ञा प्रेरणा सुखके लिए आमन्त्रण, सुखके विषयमे प्रार्थना। प्रश्न आदि हो। लोट् नन्दतु नन्दतात् नन्दता नन्दन्तु। नन्द नन्दतात् नन्दत नन्दत। अनन्दत् अनन्दताम् अनन्दन्। अनन्द अनन्दतम् अनन्दत। अनन्दम् अनन्दाव अनन्दाम। सुखसमृद्धिकी सम्भावनामे लिङ्। नन्देत् नन्द्यात्। आशीर्लिङ्का यासुट् कित् है तथापि इदित है अनिदिता हलूसे न नलोप। यह अन्त्यात् अन्द्यात् का भी बोधक—उपलक्षण। ६८ चदि का आह्लाद मस्ती प्रसन्नता। चन्दति मस्त हो रहा है। परोक्षे लिट् लकारमे चचन्द। त्रन्द धातुका चेष्टाकी क्रिया अर्थ। त्रन्दति प्रयत्न करता है। वह 'क्रिया परोक्षके भूतकालमें हो, तत्रन्द। ७०इ इत्से इदितो नुम् धातो सफल। क्रन्दति कन्दति क्लन्दति का चिल्लाकर पुकारना चीखकर रोनेकी क्रिया अर्थ। वर्तमानकाल वह तीव्र रूदन, तेज पुकार परोक्षमे हो चुकी हो लिट्। चकन्द क्रन्दिता क्लन्दिष्यति। कन्दतु अक्रन्दत क्लन्दत अक्रन्दीत्। ७२

चवलन्द । ७३ क्लिदि परिदेवने । चिक्लिन्द । शुन्ध शुद्धौ । शुन्धति । शुशुन्ध । नलोपः । शुध्यात् ।

अथ कवर्गीयान्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशत् । ७५शीकृ सेचने । तालव्यादि दन्त्यादि इत्येके । शीकते । शिशीके । लोकृ दर्शने । लोकते । लुलोके । श्लोकृ संघाते । सघातो ग्रन्थ । स चेह ग्रथ्यमानस्य व्यापारो ग्रन्थितुर्वा ।

क्लिन्दका परिदेवन=पूर्ण वेदना, स्मरणकर, पूरा अङ्ग शिथिल विह्वल हो रो पडना । यह धातु अनुदात्तेत् मे पढा है यहा पढ़ना परस्मैपदार्थ । क्रिया फल कर्तृगामी होनेपर भी परस्मैपदार्थ । क्लिन्दति चैत्रकी यादकर रो पडता है यशोदा कृष्ण स्मृत्वा चिक्लिन्द । क्लिन्द क्लिन्द किक्लिन्द कुहोश्चु । क्लिन्दिता क्लिन्दिष्यति क्लिन्दिष्यतः क्लिन्दिष्यन्ति । क्लिन्दतु । क्लिन्दानि क्लिन्दाव क्लिन्दाम । अक्लिन्द अक्लिन्दतम् अक्लिन्दत । अक्लिन्दम् अक्लिन्दिव अक्लिन्दिम । अक्लिन्दीत् । ७४ शुन्धका शुद्ध पवित्रताकी क्रिया अर्थ । शुन्धति शुचिर्भवति । वर्तमानमे शुद्ध हो रहा है वह क्रिया परोक्ष–बीते भूतकालकी हो, कर्तामे लिट् तिप् णल् आदि शुशुन्ध । आशीर्लिङ्मे यासुट् कित् है 'अनिदिता' सूत्रसे नलोप । यदि शुधि पढते नुम् हो शुन्ध बनता, इदित होता अनिदितासे नलोप न हो पाता, शुध्यात् न बनता ।

अथ कवर्गीय=क ख ग घ ङ अन्त 'अनुदात्त ङित् आत्मनेपद' का अधिकारी ४२ धातु है । जिनका फल व्यापार ज्ञान मुख्य है । रूप परम्परासे प्रशस्त है ।७५ शीकृ ऋ इत् शीक् धातुका सीचनेकी क्रिया अर्थ । इसको तालु (श) आदि एकमत । दूसरा (दन्त्य स आदि) मत है । शीकते सीचता है । शिशीके । वह कब सीचा । अशेकिष्ट । ऋ इत् लोकका दर्शनक्रिया अर्थ । लोकते, अवलोकते वर्तमानकालिक देखना क्रिया । लुलोके । परोक्ष भूत कालमे देख चुका । लोकिता लोकिष्यते, लोकताम् अलोकत लोकिषीष्ट, अलोकिष्ट अलोकिष्यत ।७७ श्लोकका सघात शब्दसन्नियोजन वाक्य रचना । ग्रन्थ । यद्यपि क्रिया रूप नही है धातु अर्थ कैसे ? तब बोले–सचेह वह ग्रन्थ इस स्थलमे ग्रथन सघीभाव सघीकरण सघनिष्ठ समुदित ग्रन्थरूप अर्थमे अकमक । क्योकि ग्रथ्यमान ग्रन्थकी क्रिया स्पष्ट है । ग्रन्थ श्लोकते युजबन्दीकरता है । ग्रन्थितुः वा युज् बन्दी करना क्रियाके कर्तामे, सघीकरणमे सकर्मक । श्लोकते सघीकरोति युज करता है अथवा काव्य बनाता है । शश्लोके श्लोकिता, श्लोकताम् श्लोकत श्लोकेत । ७८ द्रेकृ ध्रेकृ

आद्येऽकर्मको द्वितीये सकर्मक । श्लोकते । द्रेकृ ध्रेकृ शब्दोत्साहयो । उत्साहो वृद्धिरौद्धत्य च । एच इग्घ्रस्वादेशे' इति ह्रस्व । दिद्रेके । ८० रेकृ शङ्कायाम् । रेकते । सेकृ स्रकि श्रकि श्लकि गतौ । त्रयो दन्त्यादय । द्वौ तालव्यादी अषोपदेशत्वान्न ष , सिषेके । ८६ शकि शङ्कायाम् । शङ्कते । शशङ्के । अकि लक्षणे । अङ्कते । आनङ्के ।८८ वकि कौटिल्ये । वङ्कते । मकि मण्डने । मङ्कते ९० कक लौल्ये । लौल्य गर्वश्चापल्य च । ककते । चकके । कुक वृक आदाने ।

धातुका शब्द करना, उत्साह भरना (वृद्धि रूप हो या उद्दण्डता) द्रेकते ध्वनि करता है उद्धत हो रहा है या बढ़ रहा है । वह न देखी गयी, अनद्य-तन भूतकाल हो । द्वित्व आदि, देद्रेक ए । अभ्यास एकारको ह्रस्व क्या हो ? तब कहा–एच् को ह्रस्व आदेश इक् इ हो । दिद्रेके अभ्यासके ध्रको ज़श् द । एको ह्रस्व इ । ८० ऋ–इत् रेक धातुका शङ्का सशय आक्षेप, किसी पर कटाक्षकी क्रिया । रेकते एक कर्तामें वर्तमानकालिक सन्देह आक्षेप, कटाक्ष यहा तक ऋदित् । श्रेक स्रेक ऋदित् एकार मध्य है । अन्य ३ स्रक शक श्लक इदित है । पाचमे ३ दन्त्य आदि । २ तालव्य–श आदि इनमें षोप देश मान्य नही षत्व भी नही । शेकते । ये सभी गति अर्थमे है । शङ्कते शशङ्के । श्लङ्कते शकि इ–इत् शक् धातुका शकाके अनुकूलव्यापार अर्थ । इदितो नुम् । अनुस्वार परसवर्णे । शङ्कते–सन्देह करता है । शशङ्के–स्ब शङ्का करचुका । शङ्किता शङ्किष्यते, शङ्कताम्, अशङ्कत शङ्केत शङ्कि-षीष्ट, अशङ्किष्ट, अशङ्किष्यत ।८७ इदित् नुम् सहित अङ्क धातुके लक्षण (चिह्नित अङ्कित) मुद्रा ठप्पा, नम्बर लगानेकी क्रियाके वर्तमानकालिक कर्ता मे लट् । अङ्कते मोहर लगाने या नम्बर चढानेकी क्रिया । यदि वह परोक्ष भूतकालमे हो लिट् त–एश् द्वित्वादि । अङ्क ए । तस्मान्नुड् द्विहल से नुट आनङ्के । अङ्किता, अङ्कताम्, आङ्कत, अङ्केत, आङ्किष्ट ।८८ इदित् नुम् । वङ्क का कुटिल टेढी खीर अर्थ । वङ्कते कटु उत्तर झर्झर देता है । अवङ्किष्ट मकि–मक धातुका मण्डन शृङ्गार सजाना मङ्कते सजाता हे ।९० कक्का गर्व चञ्चलताकी क्रिया । ककते बडा चञ्चल है । घमण्ड करता हे । कुक् वृक्का आदान ग्रहण, पकाना अर्थ । लट् त शप् होनेपर पुगन्त लघूपध मानकर गुण । कोकते । चुकुके भूतकालमे आदान किया । असयोगात् लिट्के कित् से क्ङिति च–गुणनिषेध । अभ्यास (क) को च । वर्कते । लघूपध गुण रपर हुआ । आदान क्रिया का वर्तमानकाल ववृके,

कौकते । चुकुके । वर्कते । ववृके । 'ऋदुपधेभ्यो लिट: कित्त्व गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन' । ९३ चक तृप्तौ प्रतिघाते च । चकते । चेके । ककि वकि श्वकि त्रकि ढौकृ त्रौकृ ष्वष्क वस्क मस्क टिकृ टीकृ तिकृ तीकृ रघि लघि गत्यर्था । कङ्कते डुढौके । तुत्रौके । 'सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधो वक्तव्य' । ष्वष्कते । असयोगात् लिट्के कित्से गुण नही, अभ्यासके वृको उरत्से अत् । रपर हलादिशेष । ननु कित्को परत्वात् बाधकर गुण हो जाय, तन रपर । तब सयोग मिलेगा किन्तु कित् नही । अनित्य होनेसे । तब(वा) ऋदुपधेभ्य । ऋ उपधा हो ऐसे धातुओसे परे लिट् कित् होता है । पूर्वविप्रतिषेधके बलपर गुणमे पहने कित् तब गुण नही निषेधके लिए । उरत नका ।

९३ चक का तृप्ति (अकर्मक) प्रतिघात विलोडनकी क्रिया अर्थमे सकर्मक चकते एककर्तामे वर्तमान कालिक सन्तोषकी क्रिया । इनी धातुने (चकाचक) बना । परोक्ष बीते भूतकालकी क्रियामे लिट् त ऐश् (लिटस्तझयो ऐश्) एत्व अभ्यास लोप । चेके-पूर्ण आनन्दकी परोक्ष क्रिया । चकिता चकिष्यते चकताम् अचकत । चकेत चकिषीष्ट अचकिष्ट । अचकिष्यत । ९४ चार धातु इ-इत्से नुम्का विषय, कङ्काल होना । कङ्कते टेढी खीरकी क्रिया । स्वङ्कते त्रङ्कते ऋ-इत् ढौकते धौंकनेकी गतिकी क्रिया । त्रौकते रक्षणकी वर्तमान कालिक क्रिया । ष्वष्कते खुस्क केवल दन्त्यपरक सादि नही न षोपदेश- । वस्कते मस्कते दाब लगाना । टेकते टोकते तेकते तीकते । इ-इत् रघ लघ इदितो नुम् । रङ्घते लङ्घते ये सभी धातु गति अर्थमे है । लोकमे अनुभूतिके आधार पर निर्णय लें । जैसे नीरस, व्यापक दबोच, टीका करना, लङ्घन आदि क्रियाओंमे गति अर्थ अनुभूत है । चकङ्के । ववङ्के त्रङ्किता डुढौके अभ्यासके ढको जश् द । औ को ह्रस्व उ । ष्वष्कको षोपदेशमे गणनासे षत्व प्राप्त था । उसका बाधक (वा०) सुप् धातु ष्ठिवु ष्वष्क—इनके आदि ष के सका निषेध कहे । ष्वष्कते । द्वित्व होनेपर षष्वष्के । सु धातु ।

यथा—षट् दन्ता. अस्य षोडन (६ दात वाला) तमाचष्टे षोडयति णिच्, टिलोप (६ दात वालेको बुलाता है) एव षण्ड करोति आचष्टे वा षण्डयति नपुंसक कहता है या बनाता है । धात्वादे ष स सूत्रमे उपदेशकी अनुवृत्तिकर वार्तिकको भाष्यकारने प्रत्याख्यान किया । टीका टिप्पणीमे भी धातुका उपयोग । तृतीय धातु किसीके मतमे दन्त्य स है । (वा) लघि धातुका गति अथके साथ भोजन और निवृत्ति (लङ्घन) भी अर्थ । विमुखीभवन लङ्घते=न भुङ्क्ते

लङ्घिष्के । अत्र तृतीयो दन्त्यादि इत्येके टेक्रते । टीकते । एव तेकते । तीकते ।
लघि भोजननिवृत्तावपि । १०९ अघि वघि मघि गत्याक्षेपे । आक्षेपो निन्दा ।
गतौ गत्यारम्भे च इत्यन्ये । अङ्घते । आनङ्घे । वङ्घते । मङ्घते । मघि
कैतवे च । ११२ राघृ लाघृ द्राघृ सामर्थ्ये । राघते । लाघते ध्राघृ । इत्यपि
केचित् । द्राघृ आयामे च । आयामो दैर्घ्यम् । द्राघते । श्लाघृ कत्थने श्लाघते ।

अथ परस्मैपदिन पञ्चाशत । ११६ फक्क नीचैर्गतौ । निचैगतिमन्दगमनमसद्व्यवहारश्च । फक्कति पफक्क । तक हसने । तकति । तकि कृच्छ्रजीवने ।

उपवास करता है । ललङ्घे भूतकालमे भोजन या लङ्घनकर चुका । लङ्घिता लङ्घिष्यते लङ्घताम् अलङ्घत लङ्घेत लङ्घिषीष्ट अलङ्घिष्ट । १०९ इ इत्, नुम् सहित अङ्घते वङ्घते मङ्घतेका गति चाल–चलन पर आक्षेप, निन्दाकी क्रिया गतिमे हो या उसके आरम्भमे । किसीका मत है पाप कर्ममे गति हो या उसपर आक्षेप हो तब बतकाने लट् आदि । आनङ्घे अङ्घिता अङ्घिष्यते अङ्घताम् आङ्घत अङ्घेत आङ्घिष्ट । प्रत्येक कर्तामे पाप पतनक्रियाका होना जिसका फल निन्दा । लकार भेदसे काल भेद । मङ्घ धातु कैतव–वञ्चना धोखा छल अर्थमे मङ्घते ठगता है । ममङ्घे मङ्घताम् अमङ्घत अमङ्घिष्ट । ११२ ऋ–इत् राघ लाघ द्राघका सामर्थ्य, कार्यक्षम कुशलताकी क्रिया । ध्राघ भी पाठ मतमे । राघते लाघते कार्यक्षम होने की वर्तमान कालिकक्रिया । द्राघका आयाम दीर्घीभवन, विस्तार होना अर्थ, लम्बाईकी क्रिया । ११५ श्लाघका कत्थन स्तुति परगुण प्रकाशनकी क्रिया अर्थ । श्लाघते–प्रशंसा करता है । शश्लाघे श्लाघिता श्लाघता श्लाघेत अश्लाघिष्ट ४२ आत्मनेपदी धातु पूर्ण हुए ।

अथ परस्मैपदी पचास धातुका अवतरण । फक्क धातुका नीचे गिरना, फक्–फका कर बह जाना, जैसे दूध । अथवा मन्द गमन, सुस्त चाल, असभ्य व्यवहार–बोलते बालते रहना वर्तमानकालिक कर्ता । फक्कति–एक कर्तामें मन्दचाल अशिष्टव्यवहारकी वर्तमानक्रिया स्फोटार्थ । पफक्क परोक्षभूत कालमे बहकने, उबल पडनेकी क्रियाजनक कर्तामे लिट् तिप् णल् । द्वित्व आदि । फक्किष्यति फक्कतु अफक्कत् फक्केत् अफक्कीत् । (११७) तक हँसने ताक कर हँसना । इ इत नुम् । तङ्क धातुका कृच्छ्र कष्टमय जीवनकी क्रिया । तङ्कति तङ्को दुखमय जीवन की वर्तमानकालिकक्रिया चेष्टावान । तङ्किष्यति तङ्केत् अतङ्कीत् अतङ्किष्टाम् अतङ्किषु । बुक्क धातुका भषण

तङ्क्ति । ११९ बुक्क भषणे । भषण श्वरव बुक्कति । कख हसने । प्रनिकखति ओख् राखृ लाखृ द्राखृ ध्राखृ शोषणालमर्थयो । ओखति ओखाञ्चकार । १२६ शाखृ श्लाखृ व्याप्तौ । शाखति १२८ उख उखि वख वखि मख मखि णख णखि रख रखि लख लखि इख इखि ईखि वल्ग रगि लगि अगि वगि मगि तगि त्वगि श्रगि श्लगि इगि रिगि लिगि गत्यर्था. । द्वितीयान्ता पञ्चदश । तृतीयान्तास्त्रयोदश । इह खान्तेषु रिख त्रख त्रखि शिखि इत्यपि चतुर केचित्पठन्ति । ओखति । (२२९०) अभ्यासस्यासवर्णे ६।४।७८।। इवर्णोवर्णा-

कुत्तेकी आवाज भौ भौ करना क्रियाके वर्तमान कर्तामे लट् ति शप् । बुक्कति भौकता है बुक्कतु अबुक्कत् बुक्केत् अबुक्कीत् । कख धातुका हँसना । कङ्खति । यहाँ णत्व नही हुआ, शेषे विभाषा—सूत्र मे अकषादौ पढ़कर निषेध करनेसे । विशेष हँसनेकी क्रिया । (१२१) ओख—ऋ इत् राख लाख आदि धातुका शोषण करना, हडपना, विवश करना, अल—का भूषण क्रिया, पर्याप्ति वारण अर्थ । ओखति शोषण करता है या ओखलीमे छाँटकर स्वच्छ अलङ्कृत करता है । इआदेश्च गुरमत से आम् । ओखाचकार परोक्षभूत कालमे ओखलीमे कूट छाँटकर विभूषित कर स्वच्छ बनाया । राखति लाखति द्राखति । (२६) ऋ इत् शाख श्लाख का व्याप्ति अर्थ है विस्तारकी क्रिया । शाखति शाखायें फैलनेकी वर्तमानकालिक क्रियाकी चेष्टावान् शशाख शशाखतु:, अशाखत् अशाखीत् शाखाएँ फैल चुकी है ।(१२८) उख उखि आदि धातुओका गति अर्थ, किन्तु इन्द्रियोकी गति, क्रियाशीलता, अनुभूत है । अत क्रिया एक, फलमे भेद स्पष्ट हैं। ओखति ओङ्खति । वखति स्थिरताकी क्रिया । मखति—यज्ञ सगति करणके अनुकूल व्यापार । ख अन्त धातु १५ उनमे रिख त्रख आदि चार धातु अधिकभी मतमे है । ओखति ओखलीमे कूटने की क्रिया परोक्षभूतकालिक हो, कर्तामे लिट् तिप् णल् । उख अ द्वित्व । उख उख । हलादिशेष और लघूपध मानकर गुण । उ ओख द्वित्वके पहले गुण नही होता, द्विवचनेऽचि सूत्रके निषेधसे । द्वित्वका निमित्त अचि परे है । गुणके बाधसे गुरुमान् धातु नही रहा । आम् नही हुआ । द्वित्व हलादिशेष होनेपर सवर्णदीर्घ अन्तरङ्ग होकर भी बाधा गया । लघूपध गुण से । क्योकि वार्णादाङ्ग बलीय । दीर्घ—वर्ण कार्य हैं,गुण—अङ्गकार्य बलवान् हुआ । उ ओख अ—दशामे उ को यण् प्राप्त उसका बाधक ।

(२२९०) अभ्यासस्य—अचि श्नुधातो से अच्, य्वोरियङ उवङ् भी । इश्च

न्तस्य अभ्यासस्येड्उवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । उवोख । सन्निपातपरिभाषया इजादे रित्याम् न । ऊखतु । ऊखु । इह सवर्णदीर्घस्याभ्यासग्रहणेन ग्रहणाद्‌ध्रस्व प्राप्तो न भवति । सकृत्प्रवृत्तत्वात् । आङ्गत्वाद्धि पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्त्या ह्रस्वे कृते ततो दीर्घ । 'वार्णादाङ्गं बलीय' इति न्ययात्परत्वाच्च । उङ्खति । ववाख । ववखतु । वङ्खति । मेखतु । (मङ्खति । ममङ्ख । नखति । नङ्खति ।

उश्च इयङ् उवङ् । इवर्ण उवर्ण अन्तमे हो, ऐसे अभ्यासके अन्त्य अल् इ को इयङ्, उ को उवङ् आदेश हो । असवर्ण=सवर्णसंज्ञासे भिन्न अच् परे ओकार है । उ को उवङ् उवोख । अचिश्नु से इयङ् उवङ् नही हुआ । अजादि प्रत्यये परे और अभ्यासके अङ्गसंज्ञक होने से । जब गुण हुआ तब गुरुमान् धातु हो गया । इजादेश्च गुरुमत.से आम् क्यो नही होता । अत आह–सन्निपात— (सन्निपात द्वयो. सम्बन्ध) दो के सम्बन्धको तोडने के लिये विधि विधान, निमित्त कारण नही बनेगा । जैसे णल् परे गुण हुआ उसी गुणको निमित्त मानकर, लिट् निमित्तक आम् नही होगा । गुण–आम्को नही होने देगा आम् होता णल् परे न रह पाता । अतुस् आनेपर द्वित्व आदि काय हुए । सवर्णदीर्घ, क्त्परे गुणका निषध । अत सवर्णदीर्घ हुआ ऊखतु । दीर्घ होने पर पुन. ह्रस्व. सूत्रसे ह्रस्व क्यो नही होता, अभ्यासका अच् है पूर्वान्तवत् भावसे, इसशङ्कापर मूलमे कहा–इह–इस प्रसङ्गमे सवर्णदीर्घका ग्रहण अभ्यासमे गृहीत है, ह्रस्व प्राप्त नही होगा । क्योंकि सकृत्=एकबार जो ह्रस्व हो गया वह दूबारा नही हो सकता । लक्ष्ये लक्षण सकृदेव प्रवर्तते उदाहरणमे सूत्र एकबार लगता हैं दुहराके नही । एकबार ह्रस्व हो चुका पुन नही होगा इसीको स्पष्ट कहते है आङ्गत्वात्—अङ्गकार्य होने से मेघवर्षणन्यायेन अभ्यासको ह्रस्व हुआ । सवर्णदीर्घ होनेपर पुन ह्रस्व नही होगा । वर्णकार्यसे अङ्गकार्य बलवान् न्याय भी समर्थक है । परत्वाच्च–पर भी है ।

सभी धातुओका अर्थ गति (क्रिया शीलता) हे फलमे अन्तर अनुभवके आधारपर मान । इकार इत्के कारण नुम् अनुस्वार परसवर्ण उङ्खति । (भू मण्डलमात्रमे उपयोग ढूढे) णल् परे द्वित्वादि । ववख अ अतोपधाया वृद्धि ववाख । शस दद वादि धातुओको एत्व अभ्यास लोप नही होता । ववखतु प्रयोगमे नही हुआ । मखति नुम् अनुस्वारपरसवर्ण मङ्खति, यज्ञक्रिया करता है । ममाख । मेखतु मेखु । एत्व अभ्यास लोप हुआ । ममङ्ख मध्यमे संयुक्त हल नहीहै अत एत्व अभ्यास लोप हुआ(णो न.)नखति,नङ्खति नखकी गति ।

रखति। रेखतु । रङ्खति। एखति। इङ्खति। ईङ्खति वल्गति। रङ्गति। लङ्गति। अङ्गति। वङ्गति। मङ्गति। तङ्गति। त्वङ्गति श्रङ्गति। श्लङ्गति, इङ्गति। रिङ्गति। लिङ्गति। रेखति। त्रखति। त्रङ्खति। शिङ्खति) त्वगि कम्पने च। १५९ युगि जुगि बुगि वर्जने। युङ्गति। घघ हसने। घघति। मघि मण्डने। मङ्घति। १६१ शिघि आघ्राणे। शिङ्घति।

अथ चवर्गीयान्ता। तत्रानुदात्तेत एकविंशति। १६२ वर्च दीप्तौ। वर्चते, षच सेचने सेवने च। सचते। सेचे। सचिता। लोचृ दर्शने। लोचते लुलोचे। शच व्यक्तायां वाचि। शेचे। १६६ श्वच श्वचि गतौ। श्वचते। श्वञ्चते। कच बन्धने। कचते। कचि काचि दीप्तिबन्धनयोः। चकञ्चे। चकाञ्चे

रखति रङ्खति रखता है। रराख रेखतु रेखु। इख् धातुका लट् शप्। ररङ्ख। रखति इख धातुके लघु-उपधामे इ को गुण। इख इख हलादिशेष। अभ्यासके इको इयङ् गुण इयेख ईखतु ईखु। वल्गति रङ्गति लङ्गति ररङ्गतु लङ्गति अङ्गति वङ्गति। ममङ्ग ममङ्गतु मभङ्ग। त्वक् कम्पने त्वङ्गति श्रृङ्गति शश्रृङ्ग लिङ्गति। वखति ववाख णत् परे उपधा वृद्धि ववखतु एत्व अभ्यास लोप नहीं, न शसददवादिके निषेधसे (प्रत्येक इदित को नुम अनुस्वार परसवर्ण का निर्णय है) मनङ्खतु नुंक हट् मध्यमे है न एत्व अभ्यास लोप। णो न, नखति नङ्खति नक्षत्र देखकर चलना है नख बढाना। रखति रखता है। रराख रेखतु अराखीत् अरखीत् ररङ्ख। इख धातुसे लट शप् उपधामे लघु इ कोए गुण रखति इङ्खति इङ्खा-ञ्चकार वल्गति ववल्ग ववल्गतु-कफ गिर चुका। रङ्गति रेंगता है ररङ्गतुः अङ्गति अङ्ग तुल्य मानना है। ममङ्ग मनङ्गतु। तङ्गति कूगता कष्टमे है ततङ्गतु। त्वङ्गति अत्वङ्गीत् अतङ्गीत इङ्गति इङ्गाञ्चकार इमारे किया। खान्तेषु-ख अन्त धातुओमे अन्य मतसे सिद्ध। एखति इङ्खति एखाञ्च-कार। लुङ्का रूप औखीत् औङ्खीत अमाखीत अनङ्खीत अनाखीत। अरङ्खीत् अलाखात् अनङ्खीत। ऐङ्खीत् अवल्गीत् अलङ्गीत् आङ्गीत। कञ्चते काञ्चते चमकाता या बांधता है। दीप्ति और बन्धन धातुका अर्थ। काञ्चिता,काञ्च-ताम्। अकञ्चत कञ्चेत अकाञ्चिष्ट। (१७१) मच मुञ्च धातुका कल्कन= दम्भ आडम्बर। परविश्वासार्थ धर्माचरण कपटका दूसरा नाम। कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधय शाठ्य=कुटिलीभाव। निकृतस्तु अनृजुः गठ

मच मुचि कल्कने । कल्कनं दम्भ शाठ्यं च । कथन इत्यन्ये । मेचे । मुमुञ्चे मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु ममञ्चे । १७४ पचि व्यक्तीकरणे । पञ्चते । ष्टुच प्रसादे । स्तोचते । तुष्टुचे । ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । अर्जते । नुड्-विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते । तेन द्विहल्त्वान्नुट आनृजे । १७७

कठोरताकी क्रिया । किसीके मतमे कथन–कत्थन कहना अपनी प्रशंसा करना मचति मचते । मुञ्चते आडम्बर करता है । मेचे मेचाते मेचिरे । मुमुञ्चे परोक्षानद्यनभूतकालिक हठ आडम्बर, अपनी प्रशंसाकी क्रिया । मचता मुञ्चता मचिता मचिष्यते । मचेय–दम्भकरे । मचिषीष्ट मचिषीयास्ता मचिषीरन् । अमचिष्ट अमचिषाता अमचिषत-एक कलामे भूतकालिक दम्भ हठ की क्रिया । मञ्च धातुका धारण, उठाना पूजनकी क्रिया । मञ्चते ममञ्चे–धारण पूजनका भूतकालिक कर्ता । मञ्चते ममञ्चे आत्मनेपद ल को एश् । पञ्च धातुका प्रमाणित करना, स्पष्ट कहनेकी त्रिया । ईकार इत् न् सहित पञ्च धातुसे वर्तमानकालिक स्पष्ट करनेका कर्ता म लट् त आदि । पचि विस्तारे पञ्चयति चुरादिमे, पचभी है । पपञ्चे पपञ्चाते पपञ्चिरे पञ्चिता पञ्चितासे पञ्चिताहे । पञ्चता पञ्चस्व पञ्चै । अपञ्चत अपञ्चताम् अपञ्चन् । पञ्चिषीष्ट अपञ्चिष्ट (१७५) ष्टुच धातुका प्रसाद=प्रसन्नताके अनुकूल क्रिया वर्तमानकालिक हो लट् । दन्त्य परक सादि है धात्वादे ष स । ष बदला, टुत्व हटा । ऋज धातुका गति–गमन धारण स्वीकार अर्जन सम्पादन पैदा करना, उपार्जन । प्रसङ्गसे ऊपरी लाभ या सेवनकी त्रिया । वर्तमानकालका कर्ता हो लट त आदि, ऋज त । लघु-उपधा गुण, रपर, एत्व । अर्जते एककर्तामे गमन स्थिति धनार्जन । प्रसङ्गसे धन आने की त्रिया नुड्विधौ=तस्मात् नुट द्विहल नुट् होना हो, ऋमे अच् के भीतर र हल् बैठा है वही एकदेश के रेफ को हल् मानकर दो हल् हुआ । अत नुट् । ऋजको द्वित्व असयोग त् लिट् कित है अत न गुण । अभ्यासके ऋ को उरत्स अत, रपर हलादिशेष । अत आदे, सूत्रसे दीर्घ तब नुट् आनृजे- एककर्तृकपरोक्षानद्यतनभूतकालिक अर्जनोपार्जनानुकूलव्यापार । अर्जिता, अर्जताम् आर्जत । अनद्यतन भूतकालिकद्रव्योपार्जन, सेवनुकूला च क्रिया । ऋजिषीष्ट -ऋज इ इत् है नुम आदि । दूसरा भृज । ई इत् का फल श्वीदितो निष्ठयासे इट् निषेध । ऋञ्जते । भर्जते लघु उपधामे गुण रपर । भाड़मे भूजना त्रिया । जल विना तण्डुलादे सन्तापविशेष विना पानीके

ऋजि भृजी भर्जने । ऋजते ।'उपसर्गादृति' इति वृद्धि.। आर्ञ्जते । ऋजाञ्चक्रे । आर्ञ्जिष्ट । भजते । बभृजे । अभर्जिष्ट । १७९ एजृ भ्रेजृ भ्राजृ दीप्तौ । एजाचक्रे । ईज गतिकुत्सनयो । ईजाञ्चक्रे ।

अथ द्विसप्ततिर्वञ्ज्यन्ता । परस्मैपदिन । १८३ शुच शोके । शोचति ।

पकाना । वर्तमानकाल । प्र उपसर्ग जुडेगा तब उपसर्गादृति धातौसे वृद्धि प्रार्ञ्जते । ऋञ्जाचक्रे, नुम्से सयोगे गुरु मानकर ईजादेश्च गुरुमत से आम् । कृ लिट्का अनुप्रयोग । भूतकालकी अप्रत्यक्ष क्रिया । ऋञ्जिता ऋञ्जिष्यते ऋञ्जताम् आर्ञ्जत । लुङ्लकारमे तआदेश च्लि-सिच् आट्वृद्धि षत्व ष्टुत्व आर्ञ्जिष्ट । भृज द्वित्व हलादिशेष बभृजे बभृजाते बभृजिरे । भर्जिता एक कर्तामे कल परसोकी भविष्यकालिकक्रिया । भर्जितासे भर्जितासाथे भर्जिताध्वे । भर्जिताहे भर्जितास्वहे भर्जितास्महे । भर्जिष्यन्ते भर्जि यध्वे । भर्जिष्यामहे भर्जता भर्जेता भर्जन्ता भर्जस्व । भर्जे । भर्जामहै । अभर्जत अभर्जेता अभर्ज त । अभजथा बीते भूनकालमे भूजनेकी क्रिया । वह क्रिया आज्ञा प्रेरणाका विषय हो कर्तामे लिङ्, त । सीयुट् आदि । भर्जेत भर्जेयाता भर्जेरन् । भर्जिषीष्ट भर्जिषीयास्ता भर्जिषीरन् । भर्जिषीष्ठा भर्जन क्रिया विषयक आशीर्वाद । यदि भून चुका हो भूतकालका प्रेरक कर्तामे लुङ त । सिच् अट् इट् गुण रपर षत्व, अभर्जिष्ट अभर्जिषाताम अभर्जिषत अभर्जिष्यत । (१७९) ऋ इत् एज भ्रेज भ्राज धातुका दीप्ति प्रकाश तेज चमकना अर्थ । उसके वर्तमान स्थितिके कर्तामे लट् आदि । एजते भ्राजते ऋ इत का फल नाग्लोपिसे निषेध । भ्राजमे ऋ-इत् का फल अनुदात्त लक्षण आत्मनेपद होना । एजाचक्रे । इजादि मानकर आम् इत्यादि । भ्राजिता भ्राजिष्यते । भ्राजताम् अभ्राजत । अभ्राजिष्ट अभ्राजिषाताम् अभ्राजिषत । ईज धातुका गमन और निन्दित होना अर्थ । इजते लीचड काम कर्ता । ईजादि मानकर आम् कृ लिट् आदि ।

अथ द्विसप्तति—इसके बाद (८२) धातु चवर्गीय च छ ज झ ञ अन्तकी साधनिका परस्मैपदके अनुसार होगी ।

(१८३) शुच शोके=स्मृत्वा क्लेशे । किसी प्रियको यादकर रो पडना, दुखी होन । वियुक्त पित्रादिक स्मृत्वा क्लिश्नाति । शोचति शुशोच शुशुचतु शुशुचु शुशोचिथ । शोचिता शोचितासि शोचितास्म । शोचतु अशोचत् । अशोचीत् । अशोचिष्टाम् अशोचिषु । कुच धातुक

कुच शब्दे तारे च । कोचति । कुञ्च क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयो । 'अनिदिताम्' इति नलोप । कुच्यात् । क्रुञ्च्यात् । गतौ लुञ्च अपनयने । लुच्यात् । अञ्चु गतिपूजनयो । अच्यात् । गतौ न लोप । पूजाया तु अञ्च्यात् । वञ्चु तञ्चु त्वञ्चु म्रुञ्चु म्लुञ्चु म्रुचु म्लुचु गत्यर्था । वच्यात् । चच्यात । तच्यात् । त्व-च्यात् । अम्रुञ्चीत । अम्लुञ्चीत् । (६१) जृस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचु-ग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३।१।५८।। एभ्यश्च्लेरङ्वा स्यात् । अम्रुचत् अम्रोचीत् । अम्लुचत् अम्लोचीत । ग्रुचु ग्लुचु कुजु खजु स्तेयकरणे । जग्रोच । अग्रुचत ।

शब्दन शब्द तेजकी आवाज । कोचति चुकोच चुकुचतु अकोचीत् ।

(१८५) कुञ्च क्रुञ्च धातुका कुटिलत्व-भाव कौटिल्य धोखेबाजकी चाल, अल्पाभाव । सिकुडनेकी क्रिया । क्रुञ्चति चुक्रुञ्च क्रुञ्चिष्यति अक्रुञ्चीत् नकारजौ अनुस्वारपञ्चमौ । ञ अक्षर धातु पाठमे नकारज है, जो इदित् नुम्का सूचक । आशय यह कि कुच्यात्मे अनदितासे नका लोप हुआ । लोप की दृष्टिमे अनुस्वारपरसवर्ण असिद्ध हो गये । आशीर्लिङ्मे नलोप हुआ । यदि स्वभाविक ञ है तब न लोप नही, क्रुञ्च्यात् । लुञ्च धातुका नोच नोच कर फेकना, दूरीकरणम् अपनयन । लुञ्चति लुलुञ्च लुञ्चतु अलुञ्चत् लुच्यात अलुञ्चीत् । अञ्च धातुका गमन पूजनकी क्रिया । गमन क्रिया मे न लोप होगा । अच्यात् और पूजा अर्थमे नही नाञ्चे पूजायाके निषेधसे । वञ्चुसे लुचु तक सभी धातुका गति=क्रियाशील अर्थ । फल भागमे अन्तर । आरम्भके छ धातु उपधामे नकारज है अनुस्वार परसवर्णसे ञ हुए । आशीर्लिङ्मे नलोप होगा । अत वच्यात् पढा । लुङ् लकारमे च्लिको अङ और सिच् होनेका सूचक सूत्र । (२२९१) जृस्तम्भु- आदि धातुसे परे च्लिके स्थानमे अङ् हो, पक्षमे सिच् भी रहे (च्लि अङ् वा) अनुवृत्तिसे आते हैं इदितो वा । जृष वयोहानौ, जीर्ण शीर्ण, वृद्धा अर्थमे स्तम्भु—सूत्रपठितधातु म्रुचु म्लुचु गति अथ । ग्रुचु ग्लुचु स्तेये, करणभी । ग्लुञ्चु गतौ । च्लिको अङ् होने पर ङित है लघूपधगुण नही होगा । अजरत् अजारीत अस्तभत् अस्त म्भीत् अम्रुचत् अम्लोचित । च्लिको अङ् अभावपक्षमे आतीत्के तुल्य साधनिका । उ इत् खुज कुज आदि धातुओका चोरी करना अर्थ । ग्रोचति कोजति खोजति चोरी करता है । चुखोज खोजिता खोजिष्यति खोजतु अखोजत् खोजेत् खुज्यात् अखोजीत् अखोजिष्यत् ग्रुच ग्लुचसे च्लिको अङ् विकल्प अग्रुचत् अग्रोचीत । (२०१) ग्लुञ्च आशीर्लिङमे न लोप नही,

अप्रोचीत्। लुलोच। अलुचत् अलोचीत् अकोजीत्। अखोजीत्। ग्लुञ्चु षस्ज गतौ। लुङि अङ् वा। अग्लुचत् अग्लोचीत्। सस्य श्चुत्वेन श, तस्य जश्त्वेन ज। सज्जति। अयमात्मनेपद्यपि। सज्जते। गुजि अव्यक्ते शब्दे। गुञ्जति। गुञ्ज्यात्। अर्च पूजायाम्। आनर्च। म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे। असुटेऽपशब्दे चेत्यर्थ। म्लेच्छति। मिम्लेच्छ। लछ लाछि लक्षणे। ललच्छ, ललाञ्छ। वाछि इच्छायाम्। वाञ्छति।

आछि आयामे। आञ्छति। 'अत आदे' इत्यत्र तपरकरणं स्वाभाविक-

किन्तु च्लिको अङ् विकल्पसे। सज्जति-षस्ज गमन क्रियाके कर्तामे लट तिप् धातु आदि षको स। उसको श्चुत्व श को जश ज (झला जश् झशि) सज्जते आत्मनेपद भी हे। गुजि-इ-इत नुम सहित गुञ्जति गुञ्जार करता है। जुगुञ्ज गुञ्जिता। भ्रमराः अगुञ्जिषु गुञ्ज्यात्। इदित है न नलोप। अव्यक्त शब्दका गुनगुनाना अर्थ। अर्च धातुका पूजा। प्रसन्नताकीक्रिया अर्थके वर्तमानकालिक कर्तामे लट अर्चति। एक कर्तृकवर्तमानकालिक प्रसन्नतानुकूला क्रिया। कर्तृगामी क्रियाफल है परस्मैपद, क्योंकि युजादिमे स्वरितेत् उभयपदी पटा ही है, दो हल होनेसे नट्भी होगा। अर्च-अर्च अअर्च आअर्च नट् आनर्च आनर्चतु आनर्चु आनर्चिथ आनर्चथु। अर्चिता अर्चिष्यति अर्चतु आर्चत् आर्चता आर्चन्, अर्चेत् अर्चे अर्चेम। अर्च्यात् आर्चीत् आर्चीष्टाम आर्चिषु। म्लेच्छ धातुका अस्पष्ट, अपशब्द दुर्गन्धित वायुकी क्रिया म्लेच्छति वायुकी दुर्गन्धपूर्णकिया। छे च-सूत्रसे तुक्। त को च। मिम्लेच्छ अभ्यासको ह्रस्व है। परोक्षमे वायुमण्डल दूषित किया था। म्लेच्छिता। अम्लेच्छीत्। (२०६) लछ लाञ्छका लक्षण, चिह्न, मोहर लगाना अर्थ। लछति या लाञ्छति कलङ्कित करता है ललच्छ ललच्छतु। लाञ्छिता लाञ्छतु अलाञ्छत। अलञ्छीत्। वाञ्छका इच्छाके अनुकूल क्रिया। पठन वाञ्छति ववाञ्छ वाञ्छिता व ञ्छिष्यति वाञ्छतु अवाञ्छत। वाञ्छेत् वाञ्छेताम् वाञ्छेयु। अवाञ्छीत् अवाञ्छिष्टाम् अवाञ्छिषु। अवाञ्छी।(२०९) ई इत् नुमसहित आञ्छ धातुका आयाम विस्तार या व्यायामकी क्रिया। आञ्छति वर्तमानकालिक विस्तार क्रियाके लिए प्रयत्नरत चैत्र। आञ्छसि-तुम विस्तार करते हो। परोक्ष भूतकालमे विस्तार क्रियाका कर्ता हो लिट् तिप् णल् द्वित्व, हलादिशेष। अभ्यास आको ह्रस्व अ। आ आञ्छ अ दशामे अत आदे से दीर्घ। दो हल होनेसे नुट्

ह्रस्वपरिग्रहार्थम् । तेन दीर्घाभावान्न नुट । आच्छ । तपरकरण मुखसुखार्थमिति मते तु नुट आनच्छ । २१० ह्लीच्छ लज्जायाम् । जिह्लीच्छ । हुर्च्छा कौटिल्ये । कौटिल्यमपसरणम् इति मैत्रेय । उपधाया च इति दीर्घं । हूर्च्छति । मूर्छा मोहसमुछ्राययो । मूर्च्छति । स्फुर्छा विस्तृतौ । स्फूर्छति । युच्छ प्रमादे । युच्छति । उछि उञ्छे । 'उच्छ कणश आदान कणिशाद्यर्जन शिलम् ।' इति यादवः उच्छति उच्छाञ्चकार । उछी विवासे । विवास समाप्ति । प्रायेणायवि पूर्वः

प्राप्त । तब कहा अत आदेः—सूत्रमे तपर पढनेसे जहाँ ह्रस्वको दीर्घ हुआ हो वही नुट् स्वीकार । जहा दीर्घको ह्रस्व और ह्रस्वको दीर्घ हो वहा नुट् नही । यही तपर पढनेका फल है । स्वाभाविक ह्रस्व नही है । अत आदे से दीर्घ नही हुआ, न नुट् । सवर्णदीर्घ । आञ्छ आञ्छतु वह कब विस्तार किया किसीमे मतमे तपर मुखसुखार्थम्=उच्चारण सुबिधाके लिए है । तन्मते नुट् ।

(२१०) ह्लीच्छति लजाता है । हुर्च्छा का कौटिल्य-चुपकेसे या मौकेपर खिसक जाना अलग होना मैत्रेयका मत है । छल कपट सबका मत है । उपधाया चसे दीर्घ । हूर्च्छति । मूर्च्छति, एककर्तामे मोह, चित्तकी विकलता उच्छ्राय–प्राण निकलनेका सूचक वतमानकालिक क्रिया । मूर्च्छसि मूर्च्छामि मुमूर्च्छ मुमूर्च्छिव मुमूर्च्छिम । मूर्च्छिष्यति । अमूर्च्छत् अमूर्च्छताम् अमूर्च्छन् कलविकल थे । मूर्च्छेत् मूर्च्छेता मूर्च्छेयुः । अमूर्च्छीत् । स्फूर्च्छका विस्तार । युच्छका प्रमाद आलस्य उपेक्षाकी क्रिया । युच्छति अन्तरङ्ग भावसे, छे च सूत्रसे तुक्, लघु उपधामे नही रहा, न गुण । प्रमाद करता है । युयुच्छ । उछि धातुका उञ्छन क्रिया अथ । इदित् नुम् उञ्छति एक एक कण चुनता है । लवन हुए खेतमे कण कण चुन चुन कर इकट्ठा करना । सयोगे गुरुसे उकारको गुरुसज्ञक मानकर इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ से आम इत्यादि । उञ्छिता उञ्छतु औञ्छत् औञ्छाताम् औञ्छन् । कलभी ऐक दाना चुग लिये । औञ्छीत् ।

(२१६) ई–इत् उच्छ धातुका विवासे=समाप्तिके अनुकूल क्रिया । प्राय वि उपसर्ग जुडता है । अलग होना, समाप्तिकी वर्तमान कालिक कर्तामे लट् आदि व्युच्छति वियुक्त होता है । ध्रृज आदि दो धातु ऋ उपधक है । उपधामे लघु जानकर गुण । धर्जति धृष्टतासे जाना है । दधर्ज दधृजतु दधृजु. धर्जिता । धृज्यात् । अर्धीजत् । इदित नुम होगा, तब धृञ्जति । दधृञ्ज धृञ्ज्यात् । ईदित धातुके किन् परे न लोप नही । अधृञ्जीत् अधृञ्जि-

व्युच्छति। धृज धृजि ध्रज २२० ध्रजि ध्वज ध्वजि गतौ। धजति। धृञ्जति। ध्रजति। ध्रञ्जति। ध्वजति ध्वञ्जति। कूज अव्यक्ते शब्दे। चुकूज। अर्ज षर्ज अर्जने। अर्जति आनर्ज। सर्जति। ससर्ज। २२६ गर्ज शब्दे। गर्जति तर्ज भर्त्सने। तर्जति ततर्ज। कर्ज व्यथने। चकर्ज। खर्ज पूजने ८। चकर्ज चखर्ज। १३० अज गतिक्षेपणयोः। अजति। (९२) अजेर्व्यघञपोः २।४।५६॥ अजेर्वी इत्ययमादेशः स्यादार्धधातुकविषये घञमपं च वर्जयित्वा,

ष्टाम। इसी प्रकार ध्रजति। दध्राज दध्रजतु दध्रजु। अध्राजीत्। अधर्जीत् धृञ्जति दधृञ्ज। कित् परे इदित् धातुसे न लोप नही होता। ध्वजति दध्वाज दध्वजतु। इदित् नुम। ध्वञ्जति दध्वञ्ज अध्वजीत्।

(२२३) कूज अव्यक्त अस्पष्ट उच्चारण कूजति पक्षी। कू कू करनेकी वर्तमानकालिक क्रिया। कदा चुकूज। अज षज (धात्वादे ष स) धातुका अर्जन धन विद्या यश उपार्जनकी क्रिया। यश अर्जति। दो हल् होनेसे नुट्। आनर्ज आनर्जतु। विद्याम् अर्जिता अर्जिष्यति अर्जतु। आर्जत् आर्जताम् आर्जन्। आर्ज्यात् आर्जीत् आर्जिष्यत्। धन विद्या कमानेकी क्रिया (धातुका अर्थ) कर्ता काल लकारके अनुसार। गर्ज धातुका तीव्र ध्वनि करना मेघ गर्जति, रघु जगर्ज। स: गर्जिता। त्व गर्जिष्यसि। सर्वे गर्जन्तु यथा सिंह अगर्जन्। यदि भीम गर्जेत् कौरवा पलायेयु अगर्जीत्। तर्जका भर्त्सन फटकार तिरस्कार। तर्जति तर्जत तर्जन्ति। ततर्ज ततर्जतु ततर्जु तर्जिता तर्जितासि तर्जितास्म। तर्जिष्यन्ते। तर्जतु तर्जता तर्जन्तु। तर्जेत् अतर्जीत् अतर्जिष्यत्। कर्ज धातुका व्यथन पीडा क्लेश सहनकी क्रिया कर्जति उधारसे लदता हैं। पीडित है। त्व कर्जसि स चकर्ज। न जाने कबसे कर्जा किया, कर्जिता कर्जतु अकर्जत कर्जेत अकर्जीत्। खर्ज पीड़ा उधारसे क्लेश और पूजनकी क्रिया, खर्जति चखर्ज। परोक्ष भूतकालिक व्यथ नपूजन क्रिया अनुकूल चेष्टावान्। (२३०) अज धातुका गमन और क्षेपण फेंकनेकी क्रियाका वर्तमानकालिक कर्तामे लट तिप् शप्। अजति अजतः अजन्ति, अजामि अजाव अजाम:। परोक्षे लिट्मे गत्यर्थक क्षेपणार्थक अज धातुसे अनद्यतन भूतकालके कर्तामे लिड तिप् णल। अज अ लिट् स्थाने आदेश तिङ्को आर्धधातुकसंज्ञा। अजके स्थानमे वी आदेशका सूत्र—

(२२९२)अजके स्थानमे वी एसा आदेश हो। आर्धधातुकका विषय होने पर। घञ् अप्का विषय हो तब वी आदेश नहो। वी दीर्घ है। लुप्त प्रथमा।

वलादावार्धधातुके वेष्यते। विवाय। विव्यतु। विव्यु। अत्र वकारस्य हल्परत्वात् 'उपधायां च' इतिदीर्घे प्राप्ते अचः परस्मिन् इति स्थानिवद्भावेनाच्परकत्वम्। न च। 'न पदान्त' इति निषेध। 'स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेश एव न स्थानिवत्' इत्युक्ते। थलि 'एकाच' इतीण्निषेधे प्राप्ते। (९३) **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।१३॥** एभ्यो लिट इण्न स्यात्। क्रादीनां

आर्धधातुकेका अधिकार। विषय सप्तमी ननु पर सप्तमी, व्याख्यानात्। अजे मे (इक) धातुका सूचक है। पर सप्तमी, होती वेवीयते न बनता। घञ् अप् को छोडकर क्यो कहा? इसलिये कि सम साक अजन्ति गच्छान्ति जना यस्मिन्समुदाये स समाज। अजसे घञ् हुआ है वी आदेश न हो। समज उदरज समुदोरज पशुषु। अस को वी आदेश नही हुआ। अथवा अघञपो न वक्तव्यम्। वा लिटिसे वा आता है। व्यवस्था करेगा घञ् अप् परे न। अत कहा वलादिआर्धधातुकके विषयमे विकल्प इट् हो। अज स्थाने वी। वी अ दशामे लिटि धातोरनभ्यासस्य द्वित्वे अभ्यास ह्रस्वे। वी अ अचोऽञ्णिति वृद्धि ऐ। आयादेशे। विवाय परोक्षमे गमन किया या फेका द्विवचन दशा में। वि ी अतुस्। असंयोगात् लिट कित् होनेसे ङिकति च गुणनिषेध किया, अचिश्नुसे इयङ प्राप्त उसे दबोचकर एरनेकाचसे यण्, विव्यतु एव विव्यु। अनेक कर्तामे परोक्षानद्यतन भूतकालिक क्रिया। अत्र शङ्का–विव्यतु इत्यादौ द्वितीय व को यकार (हल) परे मानकर उपधायाचसे इ को दीर्घ हो जाय। तत्र, इके स्थानमे यण् अचः परस्मिन् सूत्रसे स्थानिवद्भाव करने पर, यके स्थानमे इ जान, हल परे नही मिलेगा, उपधायाचसे न दीर्घ, अच्परे होनेसे। ननु दीर्घ विधिमे न पदान्त सूत्र स्थानिवद्भावका निषेध करेगा, हल्परे रहेगा, दीर्घ क्यो नही? इसलिये कि स्वर दीर्घ यलोपके विषयमे जहा लोप अच्स्थाने आदेश हो, वही न स्थानवद्। जहा लोप अच्स्थामे हो वहा निषेध नही। अत निषेध नही होगा। रास्ता स्वच्छ(वार्तिककारके प्रमाणसे) विवयिथ। अजध तुसे परोक्षानद्यतन भूतकालिक मध्यम पुरुष एकवचन कर्ता मे लिट सिप् थल, आर्धधातुकसज्ञा अजस्थाने वी आदेश द्वित्व अभ्यास ह्रस्व। विवी,थ। अज धातु अनुदात्तोपदेश है। उसके स्थानमे वी आदेश भी अनुदात्त अन्तमे पढा है। वलादि आर्धधातुक इट् को बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्मे इटका निषेध प्राप्त था। बाधक सूत्र (९३) कृ सृ भृ वृ—कृञ्

चतुर्णां ग्रहणं नियमार्थम् । प्रकृत्याश्रयः प्रत्याश्रयो वा यावानिण्निषेध स लिटि चेत्तर्हि क्रादिभ्य एव नान्येभ्य इति । ततश्चतुर्णां थलि भारद्वाजनियमप्रापितस्य वमादिषु क्रादिनियमप्रापितस्य चेटो निषेधार्थम् । (६४) अचस्तास्वत्थल्य-

करणे, कृञ हिंसाया । सृ गतौ भृञ् भरणे । डुभृञ्धारणपोषणयो । वृङ् सम्भक्तौ, वृञ् वरणे । सूत्रमे अनुबन्ध रहित उच्चारण हो, तब अनेकका ग्रहण जाने । स्तु स्तुतौ, द्रु गतौ, स्रु श्रू आठ धातुके बीच समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी । इन धातुओसे परे लिट् को इट् नही होता । इस सूत्रमे आठ धातु है । उसमे क्रादीना=कृ सृ भृ वृ इनके अनुदात्त होनेसे एकाच उपदेशेऽनुदात्ता'त्से इट् निषेध प्राप्त । वृङ् वृञ् उदात्त है । श्र्युक निषेधप्राप्त तब चारो व्यर्थ होकर नियम निकाले कि प्रकृतिको आधार मानकर (जैसे एकाच उपदेशका निषेध) अथवा प्रत्ययको आधार मानकर (जैसे श्र्युक किति)प्रत्ययके कारण इट्का निषेध करता है । प्रकृति या प्रत्ययके आधार पर जितने इट् निषेध है । वे निषेध लिटि परे हो, तर्हि-कृ सृ भृ वृसे परे ही लिट्को इट्का निषेध हो । नान्येभ्य =अन्य धातुओसे परे इट् निषेध न हो । इस नियमका फल हुआ बेभिदिव बेभिदिम बस मस परे एकाच उपदेशे सूत्रसे इट् निषेध नही हुआ । भिद् धातु क्रादिमे नही आता बभूविव बभूविममे श्र्युक किति से इट्का निषेध नही होता । यहा प्रत्ययके आधारपर निषेध था । इसकेबाद स्तु द्रु स्रु श्रू इन धातुओके पढनेका फल बोले तत =चार धातुओसे अन्य (तेभ्य इति तत) कृ सृ भृ वृ इनसे भिन्न अन्य धातु स्तु द्रु स्रु श्रू है इनके उपयोगका फल है थल् आदेश परे इट् का निषेध होना । जैसे तुष्टोथ दुद्रोथ सुस्रोथ शुश्रोथ आदि स्थलमे ऋतो भारद्वाजस्य सूत्रके नियमसे कि ऋदन्तस्यैव थलि नेट् अन्यस्य तु स्यादेव । जो ऋ अन्त धातु है उन्हीसे थल् परे इट् निषेधका नियम है अन्य धातु (जो ऋदन्त नही) उनसे इट् निषेधके लिये सूत्र है । स्रु द्रु आदिसे लिट् परे इट् निषेध हो । तुष्टुव तुष्टुम-बस मस परे कृ सृ भृ वृके नियमसे इट् निषेध होगा, अन्यसे इट होता ही है । क्रादिभ्य एव परस्य लिट् इट् निषेध अन्येभ्यस्तु परस्य इट्स्यादेव । अत कहा-वमादिषु बस मस परे (आदि पदसे स्ये ध्वे वहि महि) यथा तुष्टुषे तुष्टुध्वे तुष्टुवहे तुष्टुमहे । इन स्थलोमे क्रादि नियम कृ सृ भृ वृसे परे ही इट् निषेध प्राप्त था उसके निषेधके लिये (२२९४) अचस्तास्वत् उपदेश=पाणिनि पतञ्जलिके प्रथम उच्चारणका अजन्त धातु हो (जैसे अज तप पच) तासौ=

लिटो नित्यम् ७।२।६१॥ उपदेशेऽजन्तो यो धातु तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इण्न स्यात्। **(२२९५) उपदेशेऽत्वत ७।२।६२॥** उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिट परस्य थल इण्न स्यात्। **(९६) ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३॥** तासौ नित्यानिटऋदन्तादेव थलो नेट भारद्वाजस्य मतेन। तेना-

---

स्यतासी सूत्रसे विधान लिया गया तास प्रत्यय नित्य अनिट् तब उस धातुसे परे थल्को इट् नही होता। धातु अच्मे विशेषण, तदन्तविधि। उपदेशे आया, न इट् यस्य स अनिट्। जिसको इट् हो ही नही,तासि च क्लृप से तासि आया गमेरिट्से इट्, न वृद्भ्य से न आया। थलिमे षष्ठी अर्थं सप्तमी। जब तास् परे इट् नही तब थलि परे भी न इट्। **यथा तासौ न भवति तथा थलि अपि।** **चिचेथ जुहोथ**मे इट् नही हुआ। चेता होतामे इट् न होनेसे क्रादि नियम प्राप्त है। सूत्रमे अजन्त क्यो पढा? इसलिये कि हलन्त भिद् धातुस **विभेदिथ**मे इट्का निषेध न हो, उददेश क्यो? हृञ् हरणे (जहर्थ) अजन्त है उपदेशका अजन्त नही, इट् निषेध न हो। नित्य इट् क्यो कहा? स्वृ गतौ सस्वरिथ। स्वरतिसूति सूत्रसे तास्परे विकल्प इटको निषेध न हो, तास क्यो लुत्वा नित्य अनिट् है **लुलविथ**। थलि क्यो पढा? **पपिव पपिम** बस मस परे इट निषेध न हो। **यस्तसावस्ति अनिट् च इति भाष्यम्।** किसीके मत मे तासमे इट वर्तमान हो तभी थल्को इट निषेध लाभके लिये। तेन उवयिथ उवसिथमे न निषेध।

(२२९५) उपदेशेऽत्वत अत्मे ह्रस्व अकार। सोऽस्यास्ति अत्वान् (तसौ मत्वर्थसे भसज्ञा) न जश्। उपदेश दशाके अकारवान् जितनी धातु है तासमे नित्य अनिट हो। उन धातुओमे परे थलको इट नही होता। जैसे शक्लृ धातु का शशक्थ, पचका पपक्थ उपदेशमे अजन्त है, शक्ता पक्ता तासमे नित्य अनिट् है इट् नही हुआ। उपदेशे किं? चकर्षिथमे उपदेशका अकार नही, न निषेध। उपदेशमे कृष विलेखने। अत्वत्= अकारवान् क्यो पढा? बिभेदिथ, भिद् इकारवान् है। तपर क्यो? रराधिथ—राध धातु ह्रस्व अकार नही। तास् क्यो? जग्रहिथ जिघृक्षति (सनिग्रह गुहोश्च) नित्य इट्। नित्य क्यो? अन्ता अञ्जिता। आनञ्जिथ उदित्वत्तासौ वेड्यम्। **(२२९६) ऋतो भारद्वाज** आचार्यके मतमे तास् परे जो धातु नित्य अनिट् हो उनमे ऋदन्त धातु सेट् थल परे इट् नही होता। इससे सिद्ध है कि अन्यके मतमे इट् नही होता है। इससे विकल्प इट् सिद्ध पपिथ पपाथ। पेचिथ पपक्थ। ऋदन्तसे इट्

स्वस्य स्यादेव । अयमत्र संग्रहः —

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

न च स्तुद्रुस्रुश्रुवादीनामपि थलि विकल्प शङ्क्य । 'अचस्तास्वत्' इति 'उपदेशेऽत्वत' इति च योगद्वयप्रापितस्यैव हि प्रतिषेधस्य भारद्वाजनियमो

निषेध । हृञसे जहर्थ । धृञ्से दधर्थ ऋदन्त है । इट् नही हुआ । निचोड निकला कि ऋदन्तसे थल परे इट् निषेध होगा, जो ऋदन्त नही उनसे परे थल्को भारद्वाज मतमे इट् । दूसरेके मतमे (अचस्तास्वत, उपदेश अत्वतसे इट्) निषेध होगा । विकल्प सफल इ ही आशयोका कारिकामे संग्रह है अर्थात् उक्त चार सूत्रोके निचोड है ।

अजन्त–जो धातु उपदेश अवस्थामे अजन्त हो (किन्तु ऋदन्स न हो) ह्रस्ववान् तास् परे इट् न होता हो उस धातुसे थल् परे 'वा' इट् विकल्प हो ईदृक्=इस प्रकार जो ऋदन्त तास्मे नित्य अनिट् हो वही थल् परे इट् न हो । पाणिनिमते अचस्तास्वत् और भारद्वाज मतमें भी न इट् । क्राद्यन्य = कृ सृ आदि आठ धातुओसे भिन्न धातु लिटि परे इट् सहित हो । नित्य सेट् । क्योकि कृ सृ–आदि सूत्रके नियमसे लिट् इट् नही होता । ननु क्राद्यन्य =कृ सृ आदि आठ धातु नित्य अनिट् कहना उचित नही क्योकि स्तु द्रु स्रु आदि ऋदन्त भिन्न है । उनसे थलि परे अचस्तास्वत सूत्रसे भारद्वाज मत मे निषेध नही लगेगा, विकल्प नही रूकेगा । स्तु द्रु स्रुको पढना व्यर्थ । ननु तुष्टुव तुष्टुम=वस् मस आदिमे क्रादि नियमसे इट् रूकेगा व्यर्थ कैसे ? तब कहा कि नच=स्तु द्रु आदि चार धातुके थलि परे इट् विकल्पकी शङ्का होगी । क्यो होगी ? कि अचस्तास्वत् उपदेशे अत्वतः दोनों सूत्रोसे प्राप्त इट् निषेधको भारद्वाज नियम रोकता है । उनका मत है कि ऋदन्तसे परे थल्को इट् न हो, जो ऋदन्त नही उन धातुओसे परे थल्को इट् होता हैं, निषेध नही । निषेधका निषेध है । कृ सृ–सूत्रसे प्राप्त इट्का निषेध नही रोकता । क्यो नही रोकता ? अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा–सूत्रका निषेध या विधानका नियम है । प्रथम अचस्तस्वत्, ततः उपदेशे अत्वत, तत्र ऋतो भारद्वाजस्य सूत्र क्रम है । कृ सृ भृ–सूत्र बहुत दूर है अथवा नेड्वसिके इट् निषेधके बाद आर्धधातुकका सेड्–वलादिके इट् विधानसामर्थ्यसे भी स्तु द्रु स्रुका निषेध भारद्वाज नियमको बाधेगा ।

निवर्तक 'अनन्तरस्य' इति न्यायात् । विवयिथ । विवेथ, आजिथ । विव्यथु । विव्य । विवाय विवय । विव्यिव । विव्यिम । वेता । अजिता । वेष्यति । अजिष्यति । अजतु । आजत् । अजेत । वीयात् । (६७) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१।। इगन्ताङ्गस्य वृद्धि स्यात्परस्मैपदे परे सिचि । अवैषीत्–

प्रसङ्गमे वल् परे अज धातुको वी आदेश अजन्त है। तास (वेता) मे नित्य अनिट् है, इट् विकल्प हुआ। **विवयिथ** कित् नही है गुण हुआ। सिप् पित् है। उमक स्थानमे हुऐ थल्को इट् नही होगा इट् पक्षमे अयादेश। जब वी आदश नही वलादि आर्धधातुक इट्। अअज–आअज। इट् **आजिथ**। अत आदे मे दीर्घ। **विव्यथु**। गतिक्षेपण अर्थ वाचक अज धातुसे मध्यम पुरुष द्विवचन अथुस्। अजको वी आदेश उसको द्वित्व अभ्यास ह्रस्व। असयोगात् कित्से गुण नही हुआ। अचि श्नु धातुसे इयङ् प्राप्त, बाधकर एरनेकाच से यण्। एव विव्यु। उत्तमपुरुषका णल विकल्प णित्। पक्षमे वृद्धि अचोऽञ्णिति **विवाय**, न णित्, न वृद्धि, **विवय**। वस् मस्परे क्रादिसे अन्य धातुसे लिट् इट् सहित होता है। यण् **विव्यिव**। आधधातुकमे विकल्पसे अजको वी आदेश होता चलेगा। अनद्यतन भविष्य कालिक गति या क्षेपण क्रियाके कर्तामे अज्से लुट् ति तास् डा वी भाव विकल्प। **वेता**। पक्षमे वलादि इट् **अजिता अजितार। अजितार। वेतासि वेतास्थ वेतास्थ। अजितास्मि अजिास्व अजितास्म**। लृट् लकारमेभी गुणे। **वेष्यति वेष्यत वेष्यन्ति**। पक्षमे इट् **अजिष्यति**। **अजतु**। आज्ञा प्रेरणाका विषय गमन प्रक्षेपण क्रियाका चेष्टावान् कर्ता। **आजत्**=अनद्यतन भूतकालमे गमन क्षेपण क्रिया हो चुकी हो, कर्तामे लङ आदि इत्यादि। **आजताम् आजन् आज आजतम्। आजत। आजम् आजाव आजाम**। यासुट्। यास् को इय थाद्गुणे। **अजेत् अजेताम् अजेयु। अजेय अजेयव अजम**। **वीयात्** आशीर्लिङ् आधधातुक यास् कित् है। अजको वी भाव। (२२९७) सिचि इक-इ उ ऋ लृ अन्तमे हो एसे अङ्गके इक्को वृद्धि हो परस्मैपद परक सिच् परे। वृद्धि सुनकर इको गुण वृद्धिसे इक् अया। अङ्गका अधिकार। विशेषण तदन्त। इक् आनेसे अकोषोत्मे व्यञ्जनको न वृद्धि। परस्मैपद इसलिये पढा कि अवशिष्टमे वृद्धि न हो। सिच् क्यो ? एति विभक्तिमे गुण बाधकर वृद्धि न हो। **अवैषीत्**। गति क्षेपण क्रिया वाचक अज धातुसे भूतकालिक कर्तामे लुङ् तिप्। इतश्च इ लोप। सिच् अज को वी आदेश अट् आगम। वलादि

आजीत् । अवेष्यत् । आजिष्यत् तेज पालने । तेजति खज मन्थे । खजति खजि गति वैकल्ये । खञ्जति । एजृ कम्पने । एजाञ्चकार । टु ओ स्फूर्जा वज्र निर्घोषे । स्फूर्जति । पुस्फूज । २३६ क्षि क्षये । अकर्मक । अन्तर्भावितण्यर्थस्तु

इन् का एकाच् उपदेशेसे निषेध । गुण प्राप्तको बाधकर सिचि वृद्धिसे वृद्धि । अस्ति सिचोऽपृक्ते ईट् । स को ष । अवैष्टाम् अवैषुः । वी के अभाव पक्षमे इट आट भी होगा । आ अज इस् ईत् । आटश्च वृद्धि । इट ईट्, स लोप । दीर्घ, आजीत् आजिष्टाम् आजिषु । एककर्तृकभूतकालिक गमन या प्रक्षेपण क्रिया । (२३१) तेज-तीव्रगतिमे पालनके वर्तमानकालिक कर्तामे लट् आदि । तेजति । तितेज । अतेजीत् । खजका मन्थन खुजलानेकी क्रिया खजति चखाज अखाजीत् । इ इन् नुम् सहित-खञ्जका गतिविकलता लगडा पनकी क्रिया अर्थ । खञ्जति विकलाङ्ग चाल,चखञ्ज । अखञ्जत् । अख ञ्जीत् । कम्पन अर्थमे लट् । एजति । इजादिधातु है लिट् परे आम कृ आदि ऐजाञ्चकार । परोक्ष भूतकालकी कम्पन क्रिया । एजतु ऐजेत् एजेत् ऐजीत् । (२३५) टु ओ-स्फूर्जका बज्रके समान ध्वनिके अनुकूल व्यापार । आदिर्ञि टुडव से इत । उपदेशे अनुनासिकसे आ-भी इत् । टु इत्का फल अथुच् । आ इत्का फल निष्ठानत्व । ओदितका फल-इट् निषेध, दीघ ऊका पाठ उपधाया चके दीर्घको अनित्य सिद्ध करना । उसका फलस्फूर्छति मे दीर्घ न होना । स्फूजति तेज ध्वनि कर्ता । पुष्फूर्ज तीव्रध्वनि परोक्षपे क्रिया । स्फूर्जिष्यति । अस्फूर्जीत् । क्षि धातुका क्षय नष्ट होना, अकर्मक, नाश करना अर्थ सकर्मक । अन्तर्भावित- भीतरमे प्रेरणा अर्थ छिपा है । अजन्तमे पठनीय था । क्षयति-नश्यति नाशयति वा नष्ट होने या नाश करनेके अनु-कूल व्यापार वाचक क्षिधातुसे वर्तमानकालिक क्षय कर्ता अर्थमे लट् । शप् सार्वधातुक परे गुण, अयादेश । क्षयार्थक क्षि धातुसे परोक्षे कर्तरि लिट् । तिप् णल् क्षि क्षि, चि क्षि अ । अचोऽञ्णिति वृद्धि ऐ, आय आदेश । चिक्षाय नाश होने या करनेका दोकर्ता हो अतुस् । असयोगात् लिटिके कित् होनेसे न गुण , किन्तु अचि श्नुसे इयङ्, चिक्षियतु. । थल् परे । पित् कित् नही । अत गुण हुआ । अजन्त धातु तास् (क्षेता)मे इट् नही, भारद्वाज नियमसे इट् विकल्प । अयादेशे चिक्षयिथ,न इट् चिक्षेथ । नाश क्रियाके बीते भूतकालका चेष्टावान् तुम । चिक्षिय चिक्षाय । वस्मस परे क्रादि नियमसे नित्य इट् । भारद्वाज केवल थल परे विचार करते हैं, क्रादिनियम कृ सृ भृ आदि आठ धातुओ पर

सकर्मक । क्षयति । चिक्षाय । चिक्षियतु । चिक्षियु चिक्षयिथ चिक्षेथ । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । (९८) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ ७।४।२५॥ अजन्तस्याङ्गस्य दीर्घ स्याद्यादौ प्रत्ययेपरे । न तु कृत्सार्वधातुकयो । क्षीयात्, अक्षैषीत् । क्षीज अव्यक्ते शब्दे । कूजिना सहाय पठितु युक्त । चिक्षीज । लज लजि भर्त्सने । २४० लाज लाजि भर्जने च । जज जजि युद्धे । तुज हिंसायाम्,

---

इट् निषेध करता है, क्षि अन्य धातु है, इट् हुआ । आजसे भिन्न भविष्यकाल मे नष्ट (होने) करनेके कर्तामे लुट् तास डा आदि । क्षेत्ता क्षेतारौ क्षेतारः । क्षेतास्मि क्षेतास्व क्षेतास्म । स्य इट् गुण । क्षेष्यति–भविष्यमे नष्ट होगा नाश करेगा । आज्ञा प्रेरणाका विषय हो लोट । क्षयतु क्षयतात् क्षयता क्षयन्तु । क्षय क्षयतात् क्षयत क्षयत । क्षयानि क्षयाव क्षयाम । अक्षयत् नष्ट हुआ या किया । अक्षयताम् अक्षयन् । अक्षय अक्षयतम् अक्षयत । क्षयेत् क्षयेता क्षयेयु । क्षये क्षयेत क्षयेत । क्षयेय क्षयेव क्षयेम । आशीलिङ् मे यासुट् होने पर–

(९८) अकृत्–अजन्त अङ्गको दीर्घ हो यादिप्रत्यय परे । कृत और सार्वधातुक परे न हो । दीर्घ देखकर अचश्च आया । अङ्गमे जुडा (अयङ्यिसे यि आया)। प्रत्ययमे विशेषण । तदादिविधि । प्रकृतिमे लुक्को बाधकर परत्वात् दीर्घ न हो । अत. अकृत पढा । चिनुयात्मे दीर्घ न हो–असार्वधातुक पढा । क्षीयात्मे दीर्घ हुआ । अक्षैषीत् अस्ति सिचो से ईट । सिचि वृद्धि अक्षैष्टा अक्षैषुः । अक्षैषी· अक्षैष्टम् अक्षैष्ट । अक्षैषम् अक्षैष्व अक्षैष्म । क्षीजका अस्पष्ट उच्चारण क्षीजति क्लेशमे बोल नही पाता । कूजके साथ पढना उचित । कूज क्षीज अव्यक्ते शब्दे, एक अर्थ होनेसे । लज लञ्जका फटकार दुत्कारसे लज्जित होना अर्थ भर्त्सन त्वपवादगीत्यमर । लजका कथादि । का प्रकाशन भी अर्थ । लजति लञ्जति । अलञ्जीत् भूजना भी अर्थ । लाज लाञ्जि धातुका लज्जित होना । लाजा भूनना अर्थ । भर्जने भी पाठ है । जजति जञ्जति का युद्ध करना । तुजका हिंसा, तुञ्जका पालन । गजति गञ्जति । गर्जति गुञ्जति । मोजति मुञ्जतिका चिग्घाडना । तीव्रध्वनि अनुकूलव्यापार । गजका मद भी । मदन मद चित्तविकार । गञ्जा तु मदिरा गृहम् । २५२ वज व्रजका गति=उत्तरदेश सयोगके अनुकूल व्यापार अर्थ । वजति । ववाज ववजतु मे न शसददवादि-के निषेधसे एत्व अभ्यास लोप नही । अवाजीत् । वव्राज वव्रजतु सयुक्तहल्मध्येमे है एत्व अभ्यास

तोजति तुतोज । तुजि पालने । गज गजि गृज गृजि मुज मुजि शब्दार्थाः । जज भवने च । वज व्रज गतौ । ववजतु वव्रज इति वृद्धि अव्राजीत् ।

अथ टवर्गीयान्ता शाडन्ता अनुदात्तेत. षट्त्रिंशत् । अट्ट अतिक्रमहिंसयो दोपधोऽयम । तोपध इत्यन्ये । अट्टते । आनट्टे । वेष्ट वेष्टने । विवेष्टे । चेष्ट चेष्टायाम् । अचेष्टिष्ट । गोष्ट लोष्ट सघाते । जुगोष्टे । लुलोष्टे । घट्ट चलने जघट्टे । २६० स्फुट विकसने । स्फोटते । पुस्फुटे । अठि गतौ । अण्ठते । आ-

---

लोप प्राप्त नही । अव्राजीत्‌मे अतोहलादेर्लघो की विकल्प वृद्धिकी शकानिवारण के लिए कहा-वव्रज हलन्तस्याच से नित्यवृद्धि । अव्राजीत । अव्राजिष्टा अव्राजिषु । अव्राजो अव्राजिष्टम् अव्राजिष्ट अव्राजिष अव्राजिष्म ।

अथटवर्गीय ट ठ ड ढ ण अन्त अनुदात्तेत ३६धातु आत्मनेपदी शैली साधनिका । ५४ अट्ट धातुका अतिक्रमण, मर्यादाका उल्लङ्घन और हिंसा प्राण वियोगकी क्रिया अर्थ । द उपधाभी मान्य । ष्टुत्वसे दको ड । उसकी असिद्धिसे नन्द्राःसे नदरको छोडकर टिको द्वित्व । पश्चात दको ष्टुत्वादि आट्टिटिषते आट्टिटत् की सिद्धि । तोपध=किसीके मतमे त उपधा है । अटटते एककर्ता मे अतिक्रमण या हिंसाकी वर्तमानकालिक क्रिया । आट्टिष्ट आट्टिषाता आट्टिषत ।२५५ वेष्ट धातुका वेठन लपेटनेकी क्रिया । वेष्टते वेठन बाधता है । रस्सी लपेटना । परोक्ष अनद्यतन भूतकालकी लपेटना क्रिया हो द्वित्व आदि । विवेष्टे वेष्टिता वेष्टताम् अवेष्टत । वेष्टेत । अवेष्टिष्ट वेठन बाध दिया, एव चेष्टते प्रयास करता है । चिचेष्टे चिचेष्टाते चिचेष्टिरे । चेष्टा । प्रयास विषयक आज्ञा प्रेरणादि हो कर्तामे लोट । चेष्टता चेष्टेता चेष्टता-चेष्टस्व चेष्टेथा चेष्टध्वं, चेष्टै चेष्टावहै चेष्टामहै । स चेष्टेत अचेष्टिष्ट अचेष्टिषाता अचेष्टिषत । अचेष्टिष्ठा अचेष्टिषाताम् । अचेष्टिढ्व-ढ्व । अचेष्टिषम् । गोष्ठ गोशाला या गाय झुण्डकी क्रिया । लोष्ठ सघात, भेली बाधना या टुकडे इकट्ठा करना वर्तमान भूत भविष्यके अनुसार लकार । ५९ घट्टते भीडमे चलनेकी क्रिया । चुरादिमे भी है घट्टयति । जघट्टे भीडमे चला । अघटिटष्ट । २६० स्फुट विकसने स्फोटते एककर्तृक वर्तमानकालिक विकासक्रिया, विकासानुकूलव्यापार यह कुटादिमेभी । पुस्फुटे परोक्षभूतकालमे विकसित हुआ । शर्पूर्वा खय । स्फुटिता स्फुटिष्यते स्फोटताम् । अस्फोटत अस्फोटिष्ट । अठिगतौ अण्ठते इटलाता है । लिट् परे नुम् द्वित्व हलादिशेष । अ अण्ठ ए । अत आदे दीर्घ । दो हल् दीर्घसे परे

ण्ठते। आनण्ठे। वठ एकचर्यायाम्। ववण्ठे। मठि कठि शोके। शोक इह आध्यानम्। मण्ठते कण्ठते। मुठि पालने मुण्ठते। हेठ विबाधायाम्। विबाधा शाठ्यम्। जिहेठे। एठ च। एठाञ्चक्रे। हिडि गत्यनादरयोः। हिण्डते जिहिण्डे। हुडि सघाते। जुहुण्डे।२७० कुडि दाहे चुकुण्डे। वडि विभाजने। मडि च ववण्डे। भडि परिभाषणे। परिहास सनिन्दोपालम्भश्च परिभाषणम्। बभण्डे। पिडि सघाते। पिपिण्डे। मुडि मार्जने। मार्जनं शुद्धिस्त्यागभावश्च। मुण्डते। तुडि तोडने। तोडनं दारणं हिंसनं च। तुण्डते। हुडि वरणे। वरणं स्वीकारः। हरणे इत्येके। हुण्डते। चडि कोपे चण्डते। शडि रुजायां सङ्घाते च शण्डते। २८० तडि ताडने तण्डते। पडि गतौ। पण्डते। कडि मदे। कण्डते। खडि मन्थे। हेडृ होडृ अनादरे। जिहेडे। जुहोडे। बाडृ आप्लाव्ये। बशादि। आप्लाव्यमाप्लवः। बाडते। द्राडृ ध्राडृ विशरणे। द्राडते ध्राडते।

नुट्। आनण्ठे। वण्ठते सहाय बिना चरति। असहायचारी। हठते-विवाधा विशेषबाधा या हठ करता है। एठ बाधा अर्थमे। हिण्डते इठलाता या अनादर करता है। हुण्डते जुटाता है। कुण्डते जलाता है।७१ वडिका विभाजन बटवारा अर्थ। इ-इत् नुम्सहित वण्डते बाटता है। ववण्डे वण्डिता कल बाटेगा, वण्डिष्यते। वण्डता(बटवारा करिये)वण्डेता वण्डे वण्डावहै वण्डामहै। हमसब बटवारा कर लें। मण्डतेभी विभाजनार्थक। मडि भूषायां परस्मैपदी है। भण्डते परिहासानुकूलव्यापार परिहास निन्दा सहित यह सनिन्द उपालम्भ-तत्र स्यात्परिभाषणमित्यमर। बभण्डे अभण्डिष्ट। निन्दा पूर्वक परिहास। भाण दिया।७४ पिण्डते पिंडिया, लड्डू, [illegible], पिण्ड बनानेकी वर्तमानकालिक क्रिया। पिपिण्ड एककर्तृक अद्यभिन्न परोक्षभूतकालिक सघात-पिण्डीकरणानुकूलव्यापारः। पिण्डिता पिण्डता पिण्डेत, अपिण्डिष्ट। मुण्डते मार्जन पवित्र और त्यागकी क्रिया। मुण्डते मुडाता है। या त्यागता है। तुण्डते तोडना फाडना मार डालना। तुतुण्डे तुण्डिष्यते-हाथ पाव तोडेगा। फाडेगा, प्राण लेगा। अतुण्ड अतुण्डिष्ट। हुण्डते स्वीकार करता है या हरण करता है। चण्डते क्रोधकी क्रिया आखेलाल करना। चचण्डे चण्डताम्। अचण्डत शण्डते शण्डामर्कौ ऽसुरपुरोहितौ रोगी होता है। या झुण्डमे आता है। तण्डते ताडन करता मारता है। अतण्डिष्ट। हेडते अनादर तिरस्कार करता है। बाडते जलम्। दूर-दूर तक बाढका पानी फैलना। बाडिष्यते अबाडत। द्राडते। दरार पडता या फटता है। अद्रा

शाड् श्लाघायां। शाडते।

अथ गडचन्ता परस्मैपदिन। २९० शौट् गर्वे। शौटति। शुशौट। यौट् बन्धे। यौटति। म्लेट्। म्रेड् उन्मादे। द्वितीयो डान्त। टान्तमध्ये पाठस्त्वर्थसाम्यान्नाथतिवत्। म्लेटति। म्रेडति। कटे वर्षावरणयो। चटे इत्येके। चकाट सिचि 'हलादेर्लघो' इति वृद्धौ प्राप्तायाम्। (९९) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम ७।२।५॥ ह्म्यान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि। अकटीत। अट पट गतौ। आट। आटतु आटु। पपाट

डिष्ट ध्राडते अवयव विभाग विशरणम्।

अथटवर्गीय अन्तधातु समाप्तितक परस्मैपदी अनुसारि साधुत्व, गडि वदनैकदेशे तक। ऋ इत शौट्का गर्व अहङ्कारकी क्रिया अर्थ। शौटति घमण्ड करता है। लिट् परे अभ्यासको ह्रस्व। यौटति बन्धनमे पडता है। म्लेटति म्रेडति उन्माद, विक्षिप्त चित्तमे पागलपन होना। ट अन्तके मध्यमे पाठ पढना, अर्थ समानार्थ। नाथति की तरह। एध वृद्धौसे लेकर तवर्गीयान्त नाथ नाध याच्ञा समान अर्थकी तरह। कट धातुका बरसना ढकना। कटति। चकाट चकटतु चकटुः। चटति चट ध तुमे विरूपताका आभाव अत एत्व अभ्यासलोप। चचाट चेटतु चेटु अकटीत्। वर्षा और आवरण अर्थमे विराजमान कट धातुसे भूत कालके कर्तामे लुङ् ति इतश्च इलोप। अट् सिच् वलादि इट्। अस्ति सिच ईट्। अकट इस ईत्। इट ईटि सलोप। दीर्घ सिच् परे अतो हलादेर्लघो सूत्रसे उपधाके अको वृद्धि प्राप्त हुई उसे बाधकर हमन्त लक्षणा वृद्धिका निषेध नेटिसे हो चुका।

(९९)हमय—अन्तमे हो क्षण श्वस जागृ श्वी और एकार इत्(द्वन्द्वात्षष्ठी) इन धातुओमे वृद्धि नही होती। इट् आदिमे हो ऐसा सिच्परे (हमय वर्णा अन्ते येषा ते ह्म्यन्ता) आदिसे श्वस् जागृ मान्य। ए इत् यस्य एदित् (सिचि) वृद्धि और नेटिसे 'न' आये। इति वृद्धि निषेधे (एदित् होनेसे) अवमीत् अहयीत्। ह्म गतौ। क्षण हिंसायां अक्षणीत्। श्वस् प्राणने अश्वसीत्। जागृ निद्राक्षये अजागरीत्। ण्यन्त औनयीत् अश्वयीत्। इडादि सिच् क्यो पढा? दह भस्मीकरण। अधाक्षीत्। अट् पट् धातुकी गति अर्थ। अटति घूमता है। पटति। आट लिट् परे अत आदे से अभ्यासके अको दीर्घ आट। पटसे एत्व अभ्यासलोप पेटतु। रट धातुका परिभाषण जैसा लिखा है वैसा कण्ठ करना, रटति कण्ठ करता है। रराट तीने भूतकालमे कण्ठ किया। रटिष्यति

पेटतु । पेटु । रट परिभाषणे । रराट । लट बाल्ये । ललाट । शट रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । शशाट । ३०० वट वेष्टने । ववाट । ववटतु । ववटु । ववटिथ । किट खिट त्रासे । केटति । खेटति । शिट षिट अनादरे । शेटति शिशेट । सेटति । सिषेट । जट झट सङ्घाते । भयभृत्तौ । तट उच्छ्राये । खट काङ्क्षायाम । ३१० णट नृत्तौ । पिट शब्दसघातयो हट दीप्तौ । षट अवयवे । लुट विलोटने । टान्तोऽयमित्येके । ३१५ चिट परप्रेष्ये । विट शब्दे । विट आक्रोशे । वशादि । हिट इत्येके इट किट ३२० कटी गतौ । एटति । केटति । कटति । ईकार इवीदितो निष्ठायाम् इतीण्नि षेधार्थ ।

ररतु । अरटत अरटताम् अरटन् । रटेत रटेता रटेयु रटे रटेत रटेत् । रटेथ रटेर रटेम । रटचात् अराटीत् अरटीत् । लट्का लडकपन चञ्चलता की क्रिया । लटति चञ्चल है । ललाट लेटतु लेटु । लटिष्यति लटतु अलटत अलाटीत् । शठका रोग बिखरना, गमन, पीडा चार अर्थ । शटति । शशाट शेटतु शेटु अशटत् अशातीत् ।

(३००) बटका बटना लपेटना वेष्ठनकी क्रिया । वटति एक कर्तामे वर्तमान कालिक बटनेकी क्रिया । परोक्ष अनद्यतन भूतकालमे बटना हो लिट् । ववाट थल परे थलि च सेटसे प्राप्त एत्व अभ्यास लोपका न शसददवादि गुणानासे निषेध । वटिष्यति वटतु अवटत् वटेत् । अवाटीत् अवटीत् । किट खिट धातुका त्रास कष्टके अनुकूल क्रिया अर्थ । गति अर्थमे भी केटति चिकेट । खेटति अखेटीत । शेटति निरादर करना है । शेटिष्यति अशेटीत् । जट झटका समुदायमे होने अर्थ । विरूप आदेश नही अत एत्व अभ्यास लोप । जजाट जेटतु जेटु । झटका अभ्यास विरूप है, न एत्व । भयति—पोषणके लिये नौकरी करता है । तटका उच्छ्राय तटस्थ होना । तटति तताट तेटतु । तटेत् अताटीत् । षट्का इच्छा अर्थ । नट्का नृत्त करना । षट्से षट्वाक्वन । अशू प्रू आदिसे चुरादिमे नाटि धातु है । नाटयति । लुट् विलोडन मन्थन । चिटका परप्रेषण, दूसरेसे भेजना । चेटति चिचेट अचेटीत् । चिट भेजना विट आक्रोशे, क्रोधके अनुकूल क्रिया । एटति गच्छति कटति । ई इत्का फल श्वीदितो निष्ठायासे इट् निषेध । कोई ह्रस्व इकार पढकर इदितो नुम करते है कण्ठति । अन्य लोग इ ईका प्रश्लेष करके अयति इयाय भी । हाटक सुवर्ण सटाजटा केसरयो । द्वित्व होगा इयाय बनेगा । अभ्यासस्यासवर्णे सूत्रसे अभ्यासके इको इयङ । ईयतु । अभ्यासका

केचित्तु इदित मत्वा नुमि कृते कण्ठतीत्यादि वदन्ति । अन्ये तु इ ई इति प्रश्लिष्य । अयति । इयाय । ईयतुः । ईयुः । इययिथ–इयेथ । इय । इयाय इयय, दीर्घस्य तु-ईजादेश्च इत्याम् अयाञ्चकारेत्यादि उदाहरन्ति । ३२१ मडि भूषायाम् । कुडि वैकल्ये । कुण्डति । कुण्डति इति तु दाहे गतम् । मुड प्रुड मर्दने । ३२५ चुडि अल्पीभावे । मुडि खण्डने मुण्डति । पुडि च इत्येके । पुण्डति । रुटि लुटि स्तेये । रुण्टति । लुण्टति । रुठि लुठि इत्येके । रुडि लुडि इत्यपरे । स्फुटिर् विशरणे । इरित्वादङ् वा । अस्फुटत् अस्फोटीत् । स्फुटि इत्यपि केचित् । इदित्वान्नुम । स्फुण्टति । ३३० पठ व्यक्तायां वाचि । पेठतुः । पेठिथ । अपठीत् । अपाठीत् । वठ स्थौल्ये । ववठतुः । ववठिथ । मठ मदनि-

---

इ ह्रस्व है क्योंकि इ अतुस् दशामे कित होनेसे गुण नही । द्विवचनेऽचिके निषेधसे यण नही । इको द्वित्व । सवर्ण इकार मिला, अभ्यासको इयङ् नही । वार्णादाङ्गं बलीयः सवर्णदीर्घको बाधकर एरनेकाच सूत्रसे उत्तरखण्ड के इ का यण् । इय इ थ । ऋतो भारद्वाजस्य मते-थल परे विकल्पसे इट् इययिथ, जब न इट् इयेथ । वस्मस परे क्रादि नियमसे नित्य इट् । उत्तरखण्डके इको यण् । इययिव इययिम । एता एष्यसि । अयतु आयत् ईयात् ऐषीत् ऐष्यत् जब दीर्घ ई धातु रहेगा तब लिटपरे ईजादि मानकर अ म, कृ लिट् अनुप्रयोग । अयाञ्चकार । मण्डति सजावट शृङ्गार अलङ्कृत करता है । मण्डतु अमण्डत् अमण्डीत् । कुण्डति विकल होता है । जब कुण्डते कहैगे दाह अर्थ होगा । वैकल्यका अविवेक, अपूर्णता अर्थ । अकुण्डीत । मूड प्रूडका मर्दनकी क्रिया । चुण्डते अल्प–घटता है । मुडि मुण्डति खण्डन करना है । चोरी की क्रिया–रुण्ठति लुण्ठति लूटता है । अलुण्ठीत् लुण्ठति । (३२९) ईर इन स्फुट धातुका विशरण–फटना अलग होना विकसित, फूटकर निकलना स्फोटति पङ्कः । कीचड सूखकर फट रहा है । पुस्फोट । ईर इत् होनेसे सिच्को अङ् विकल्पसे अस्फुटत् । यदा न अङ, तदा सिच् । इट ईटि आदि । अस्फोटीत् । भूतकालिक फूटने दरार पडनेकी क्रिया । (३३०) पठ धातुका स्पष्ट वाणी बोलनेकी क्रिया । पठति–एककर्तृक वर्तमानकालिक स्पष्टोच्चारणानुकूलव्यापार, बीते भूतकालमे अनदेखी उच्चारण क्रिया हो कर्तामे लिट पठ पठ पपठ पपाठ । अतुस् आदि किन परे एत्व अभ्यासलोप । पेठतु: पेठुः । थलि च सेटिसे एत्व अभ्यासलोप । पेठिथ पेठथु: पेठ । पपाठ पपठ पेठिव पेठिम । पित् कित् नही होते । पठिता पठिष्यति पठतु पठतात् पठता

बासयो । कठ कृच्छ्रजीवने । रट परिभाषणे । रठ इत्येके । हठ प्लुतिशठत्वयो बलात्कारे इत्येके । हठति जहाठ । ३३६ रुठ लुठ उठ उपघाते । ओठति । ऊठ इत्येके । ऊठति ऊठाञ्चकार । पिठ हिंसासंक्लेशनयो । शठ कैतवे च । शुठि प्रतिघाते । शोठति । शुठि इति स्वामी । शुण्ठति कुठि च । कुण्ठति । लुठि आलस्ये प्रतिघाते च । शुठि शोषणे । ३४५ रुठि लुठि गतौ चुड्ड भावकरणे, भावकरणमभिप्रायसूचनम् । चुड्डति । चुचुड्ड । अड्ड अभियोगे । अड्डति आनड्ड । कड्ड कार्कश्ये । कड्डति । चुड्डादयस्त्रयो दोपधा । तेन क्विपि चुत् अत् कत् इत्यादि । ३५० क्रीड़ विहारे चिक्रीड । तुड़ तोडने तोडति । तुतोड । तूड़ इत्येके । हुड़ हूड़ होड गतौ । हुड्यात् । हूड्यात । होड्यात । ५५

पठन्तु । अपठ अपठतम अपठत । अपठन् अपठाव अपठम । पठयम् पठव पठेम । पठ्यात् पठ्यास्ता पठ्यासु एककर्तमे स्पष्ट उच्चारणविषयक आशीर्वादानुकूलव्यापार । अतो हलादेर्लघो से वृद्धिविकल्प । अपाठीत् स्पष्ट उच्चारण व्यापार वाचक पठ् धातुसे भूतकालके कर्तामे लुड् तिप इतश्च । च्लि सिच वलादि आर्धधातुक इट् । अपृक्त हल्को ईट हुआ । ईट इटि सल प उपधा वृद्धि । अट आदि अपठीत् अपठिष्टाम् अपठिषु अपाठी । अपठिष्ट । अपठिष्यत् । वठ धातुका स्थूलीभवन मोटा होनेकी क्रिया । वठति मोटा हो रहा है । ववठतु दोनो कब मोटे हो गये । अवठीत् तुम कब मोटे हुये । न शस् ददवादि गुणानाके वादि मानकर निषेधसे न एत्व, न अभ्यास लोप । वठिता वठिष्यते । वठतु अवठत् । अवठीत् वृद्धि विकल्प । मठतिका मठाधीश होनेका । गर्व अथवा निवासकी क्रिया । ममाठ मेठतु ममठतु । मठेत अमाठीत् । कठति कृच्छ्र कष्टमय जीवन बिताता है । हठ धातुका (जिद्द) मे प्लुति उछल कूद करना । शठता (एकमतमे बलात्कर) जबरी करना हठति जिद्द (कठोरता) क्रियाके अनुकूल प्रयत्नशील राजा, स्त्री बालक आदि । जहाठ जहठतु जहठु बीते भूतकालमे अनदेखे हठ कर्ता आदि । हठिता हठिष्यसि हठिष्यामि । हठता । हठतम हठेटाव (द्विवचन) हठेत हठेता हठेयु । हठेः हठेत हठेत । हठेथ हठेव हठेम । अहठीत् । रुठ आदिका उपघातकी क्रिया जब ऊठ पढेगे तब लिट् मे आम् कृ । लिटिका प्रयोग होगा । पेठति हिंसा प्राणवियोग सामति कष्टकी क्रिया । शठ का कैतव छलकपट धोखा हिंसा क्लेश अर्थ । शठति अशाठीत् । शुठका प्रतीघाध बदलेमे चोटकी

रौडृ अनादरे। रोडृ लोडृ उन्मादे। अड उद्यमे। अडति। आड। आडतु। आड्। लड विलासे लडति। लडयोर्ललयोरश्चैकत्वस्मरणाल्ललतीति। स्वाम्यादय। ३६० कड मदे। कडति। कडि इत्येके। कण्डति। गडि वदनैकदेशे। गण्डति। इति टवर्गीयान्ता।

अथपवर्गीयान्ता। तत्रानुदात्तेत। स्तोभत्यन्ताश्चतुस्त्रिंशत्। तिपृ तेपृ ष्टिपृ ष्टेपृ क्षरणार्था। आद्योऽनुदात्त। क्षीरस्वामी त्वय सेडिति बभ्राम। तेपते। तितिपे। क्रादि नियमादिट्। तितिपिषे। तेप्ता। तेप्स्यते। (२३००) लिङ्

क्रिया शोठति अशोठीत्। कुण्ठति वर्तमानकालिक प्रतिघात। लुण्ठति आलस्य या प्रतिघात करता है। शुण्ठति शोषणकी क्रिया गति अर्थमे भी। चुड्डति–अभिप्राय सूचित करता है। अड्डति अभियोग लगाता अडता है। दो हल् है नुम होगा। कड्डका कठोरताकी क्रिया। तीन धातु। द धातु म.न रक क्विप कहेगे पूर्णलोप। सुका हलड्याादि। वाऽवसाने चर्त्व। अड्डसे अत् अभियोग लगानेवाला। कड्डमे क्विप् कत् च्युत् भावसूचक। ऋ इन् क्रीड धातुका विहार, सानन्द भ्रमणकी क्रिया। क्रीडति मस्त रहना है। क्रीडतः क्रीडन्ति त्व क्रीडसि। अह क्रीडामि। विहार करता हू। तुड धातुका फाडना, प्राणलेना अर्थ। तोडन दारण हिंसनाद्य तोडति तोडिता तोडिष्यति तोडतु। अतोडत् अतोडीत्। हुड्का गति अर्थ। रौडति अनादर अपमान रौदना। रौडति लोडति उन्मत्त विक्षिप्त भ्रममे पडी चित्तकी क्रिया। लड विलासे लडति ललति डल लल एक ही है। ऐसा स्वामी आदि कहते है। अलाडीत् विलस क्रिया। कडति मदमस्त होता है। गण्डति वदन का एकदेश फूलता है। अगण्डीत्।

पवर्गीय प फ ब भ म अनुदात्त इन् धातु चौतीस है। स्तोभति तेपति स्टेपति-आदि धातु क्षरण पसीझने अर्थमे। प्रथम तृतीय इकार उपधक। द्वितीय चतुर्थ एकार उपधा। तृतीय चतुर्थ षोपदेश है। तको ष्टुत्व ट हुआ था। दन्त्यपरक सादि। आद्य अनुदात्त है। क्षीरस्वामीको सेट्का भ्रम हुआ भाष्य विरुद्ध होनेसे। तेपते पसीझना है। तितेपे-बीते भूतकाल अनदेखी क्रियाका कर्ता मिलित। तितिपे तिनिपाते तितिपिरे असयोगसे परे लिट् कित है न गुण। तितिपिषे थास्को 'से' होनेपर इट्का विरोध एकाच उपदेशे अनुदात्तात ने किया। किन्तु क्रादि नियमसे इट् हुआ। यह अनिट् धातु। तेप्ता कल चूयेगा। तेप्स्यते धट। तुम क्षरण करो। तिप् सीयुट् सुट् त तिप्सीष्ट लघू-

सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥ इक्समीपाद्धल परौ झलादी लिङात्मनेपदपर सिञ्चेत्येतौ कितौ स्त । कित्वान्न गुणः । तिप्सीष्ट तिप्सीयास्ता तिप्सी रन । लुङि 'झलोझलि' इति सलोप । अतिप्त । अतिप्साताम् । अतिप्सत । तेपते । तितिपे । तेपिता । तिष्टिपे तिष्टिपाते तिष्टिपिरे । तिष्टेपे तिष्टि पाते तिष्टेपिरे । तेपृ कम्पने च । ३६६ ग्लेपृ दैन्ये । ग्लेपते । टुवेपृ कम्पने । वेपते । केपृ गेपृ ग्लेपृ च । चात्कम्पने गतौ च । सूत्रविभागादिति स्वामी । मैत्रेयस्तु चकारमन्तरेण पठित्वा कम्पने इत्यपेक्षत इत्याह । ग्लेपेरर्थभेदात्पुन-

पधस्य चसे गुण प्राप्त ।

(२३००)लिङ्-इको झल् हलन्ताच्च सूत्र आये । असंयोगात् से कित भी, इकमे समीप षष्ठी । इक्के समीपमे हल् हो उससे परे झलादि-झभञ्से हल् तक अक्षर आदिमे हो ऐसा लिङ् (आत्मनेपद) परे या सिच्परे हो कित् हो । जिसका फल क्ङिति च से गुणनिषेध । आत्मनेपदपरक सिच् ही मान्य । नतु लिङ्, असम्भावनासे । इक क्यो पढा ? यक्षीष्ट-यहा कित् न हो । कित् होता वचिस्वपिसे सम्प्रसारण होता । आत्मनेपद क्यो ? अद्राक्षीत्मे कित न हो । यदि किन होता सृजिदृशोझल्यमकिति-से अम् न हो पाता । लुङ्लकारमे त । चित-सिच्का झलो झलिसे लोप । आत्मनेपदपरक सि है कित् हुआ । लघु-उपधा गुणका निषेध । एकार उपधाका प्रयोजन बोले—तेपिते-इकार उपधामे होता कित् होनेसे गुण न हो पाता । सेट् धातुका सूचक-तेपिता तेपिष्यते अतेपि-षीष्ट । अतेपिष्ट । स्टिप धातु धात्वादे ष स हुअ, ष्टुत्व हटा । स्तेपते क्षरण क्रियाका वतमानकालिककर्ता । तिष्टिपे अनदेखी पसीझना क्रियाका भूतकाल । शर्पूर्वाखय सूत्रसे त शेष, अन्यका लोप । किन्से गुण नहीं । तेपृ का कम्पन और क्षरण अर्थ ग्लेपृ दैन्ये दीनता, दु खकी सीमाके अनुकूल व्यापार । ग्लेपते कर्तामे दीनताकी वर्तमानकालिक क्रिया । जिग्लेपे जिग्ले-पिषे ग्लेपिता ग्लेपिष्यते ग्लेपताम् अग्लेपत अग्लेपिष्ट । कापनेकी क्रिया वाचक वेप धातुसे वतमानकालिक कर्तामे लट । वेपते कापता है । वेपसे वेपे ग्लेपिता ग्लेपिष्यते ग्लेपता वेपता अवेपत । एककर्तृक अनद्यतनभूतकालिक कम्पन क्रिया । अवेपिष्ट । केप गेप इनका भी कम्पन और गति अर्थ है । चकार अनुदात्तका सग्राहक है मैत्रेय स्वामीका मत है चकारके बिनाभी कम्पन ही अपेक्षित है अर्थ भेदसे ग्लेपका पुन पाठ । मेपते रेपते लेपते इनका गति क्रिया अर्थ । ३७४ ऊ इत् त्रप् धातुका लज्जित होना क्रिया । वर्तमानकालिक

पाठ ३७१ मेपृ रेपृ लेपृ गतौ। त्रपूष् लज्जायाम्। त्रपते। (२३०१) तृफल-भजत्रपश्च ६।४।१२२॥ एषामत एकारोऽभ्यासलोपश्च स्यात्किति लिटि थलि च। त्रेपे त्रेपाते त्रेपिरे। ऊदित्त्वाद्विट्वा। त्रपिता त्रप्ता। त्रपिषीष्ट। त्रप्सीष्ट ३७५ कपि चलने। कम्पते चकम्पे। रबि लबि अबि

लज्जा करनेमे लट्। त्रपते त्रपेते त्रपन्ते। त्रपसे त्रपेथे त्रपध्वे त्रपे त्रपावहे त्रपामहे। परोक्ष भूतकालमे लज्जित होनेके कर्तामे लिट। त्रप-त्रप, तत्रप ए, इस स्थितिमे मध्ये सयुक्त हल् है। अत एकहलमध्ये सूत्रसे एत्व अभ्यास लोप प्राप्त नही अत सूत्र—

(२३०१) तृफल भज और त्रप इन चार धातुओके अको ए होता है। अभ्यासका लोप भी, कित् लिट् सेट् और थल् परे। अत एकहक्मध्येसे अत लिटि आया, थ्वसो से ऐत् अभ्यासलोप भी। गमनसे कित् और थलि च सेट् सूत्र भी आया। तृ धातु गुणसे भावी अकारवान् है। फल और भजका अभ्यास विरूप आदेश वाला होगा। त्रप सयुक्त हलमध्य है। अत एत्व अभ्यास लोप प्राप्त नही सूत्र आवश्यक। इससे एत्व अभ्यास लोप हुआ। त्रेपिषे त्रेपाथे त्रेपिध्वे। त्रेपे त्रेपिवहे त्रेपिमहे। त्रपिता लुट्, तास् ति डा ऊदित मानकर इट्। यदा न इट्, त्रप्ता। ततार तेरतु। पफाल फेलतु फेलु। बभाज भेजतु भेजु अर्थात् भविष्यकालमे लज्जा की क्रिया। त्रपिष्यते त्रप्स्यते। त्रपता त्रपेता त्रपन्ता, त्रपस्व त्रपेथा त्रपध्व, त्रपै, त्रपावहै त्रपामहै। अत्रपत त्रपिषीष्ट त्रपिषीयास्ता त्रपिदीरन्। त्रप्सीष्ठा त्रप्सीयास्थाँ त्रप्सीध्व त्रप्सीय त्रप्सीवहि--महि। अत्रपिष्ट अत्रपिषाता अत्रपिषत। अत्रप्त अत्रप्साता अत्रप्सत। कपि-का चलने हिलने उछलकूद कापनेकी क्रिया अर्थ। कम्पते इदितोनुम्धातो। कम्पिता कम्पिष्यते कम्पताम् अकम्पत कम्पेत, अकम्पिष्ट अकम्पिषाता अकम्पिषत। अकम्पिष्ठा अकम्पिषाथा अकम्पिध्व। रम्बते लम्बते अम्बते। इदितो नुम (अनुस्वारपरसवर्ण) शब्द करने अथमे गुरोश्च हलःसे अप्रत्यय, अम्बा रम्बा लम्बा। विस्र अम्भाः अकार ओकार मकार शब्दा यस्य बहुब्रीहिसमासमे शेषाद्विभाषासे कप्। त्र्यम्बक। केचित् त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि अस्य विग्रह करते है। ध्वनि करने की क्रिया। ललम्बाते ललम्बिरे जत आदे से अभ्यासको दीर्घ होनेपर दोहल् देखकर नुट्। आनम्बिषे आनम्बाथे, लम्बतेका अवस्रन नीचे लटकना अर्थ, लम्बिता झोला लटकायेगा। लम्बता अलम्बत लम्बेत अलम्बिष्ट अल-

शब्दे । ररम्बे । ललम्बे । आलम्बे । लबि अवस्रंसने च । ३८० कब वर्णे । चकबे क्लीबृ अधाष्टर्ये । चिक्लीबे । क्षीबृ मदे क्षीबते । शीभृ कत्थने । शीभते । चीभृ च, रेभृ शब्दे । रिरेभे । अभिरभी क्वचित्पठ्येते । अम्भते रम्भते । ष्टभि स्कभि प्रतिबन्धे । स्तम्भते । नुम्यनुस्वार । उत्तम्भते । 'उद स्थास्तम्भो:' इति पूर्वसवर्ण । विस्तम्भते । स्तम्भे इति षत्वं तु न भवति । सुविधौ निर्दिष्ट स्य सौत्रस्यैव तत्र ग्रहणात् । तद्बीजं तु 'उद स्थास्तम्भो' इति पवर्गीयोपधपाठ, स्तम्भे इति तवर्गीयोपधपाठश्चेति माधव । केचिदस्य टकार औपदेशि-

म्बिषाता अलम्बिषत अलम्बिष्ठा भूतकालिक लम्बन क्रियाके कर्तामे लुङ् ।

३८० ऋ इत् कव धातुका वर्णानुकूलव्यापार कवते—कविता बनाता है या वर्णन करता है । चकवे कव कव ककव, चकव लिट स्थानमे त एश् । चकविषे चकवाथे चकविध्वे ढ्वे चकवे चकविवहे-चकविमहे । कविता कविष्यते वर्णन करेगा । कवता कवता कवन्ताम् । अकविष्ट कवीव धृष्टता रहित क्रिया । क्लीबते नपुंसक हो रहा है । चिक्लिवे कब नपुंसक बना । क्लीबिता क्लीबता अक्लीबत् अक्लीवेता अक्लीबन्त । अक्लीवेय । अक्लीविष्ट भूतकालिक नपुंसकभवनक्रिया । क्षीवते मद गर्व घमण्डसे उन्मत्त हो रहा है । शीभ्रते अपनी प्रशंसा करता है । चीभते का भी वही अर्थ है । रेभते गर्दभ ध्वनि करता है । रेभिता रेभिष्यते रेभताम् अरेभत । अभि रभि भी पाठ मिलता है । ध्वनि अर्थ रभि' अम्भते रम्भते । सर्वधातुभ्यो असुन्, सभी धातुसे असुन् प्रत्ययका अधिकार । इदितो नुम । पानी अर्थ हो नुम होता है । अम्भ तोय तस्यापत्य आम्भि भीष्म, अम्भसो लोपश्चसे इञ्, सकारलोप भी । अम्भिभ्यते, स्तम्भते । ष्टभि षोपदेश दन्त्यपरक सादि मानकर ष त्वा दे ष स । उत्तम्भते प्रतिबन्ध, रुकावट करता है । नुम् अनुस्वार परसवर्ण । उद्स्तम्भते उद स्थास्तम्भो सूत्रसे पूर्वसवर्ण आदि कार्य उत्तम्भते । उठता है । उपसर्गसे धातुका अर्थ बदल जाता है । इदित् नुम्का नश्चापदन्तास्य अनुस्वार परसवर्ण । वि उपसर्ग लगा, विस्तम्भते । यहा षत्व नही होता—सात्पदाद्यो के निषेधसे स्तम्भेसे भी षत्व नही होता । सुविधिमे उच्चारित सूत्रका ही ग्रहण होता है । स्तम्भु स्तुम्भु सूत्रमे स्तु पढा है, उसीका षत्व विधिमे ग्रहण उसका बीज (मूलकारण) उदस्थास्तम्भो पवर्ग उपधामे पाठ है स्तम्भे सूत्रमे तवर्ग उपधामे है । माधवका मत । किसीने उपदेश अवस्थाका तकार माना । पाणिनि शिक्षा परम्परा प्रमाणमे । स्वाभाविक ट है ष्टुत्व सम्पन्न नही ।

काङ्क्षत्याहु । तम्भते विष्टम्भते । ष्टम्भते । ष्टम्भे । जभी जृभि गात्रविनामे । (२३०२) रधिजभोरचि ७।१।६१।। एतयोर्नुमागम स्यादचि । जम्भते । जजम्भे । जम्भिता अजम्भिष्ट । जृम्भते जजृम्भे । शल्भ कत्थने शशल्भे । वल्भ भोजने दन्त्योष्ठ्यादि । ववल्भे । ९२ गल्भ धार्ष्ट्ये । गल्भते । श्रम्भु प्रमादे । तालव्यादिर्दन्त्यादिश्च । श्रम्भते । स्रम्भते वा । ष्टभु स्तम्भे । स्तोभते । विष्टोभते, तुष्टुभे । व्यष्टोभिष्ट ।

अथ परस्मैपदिन । ३९५ गुपू रक्षणे । (२३०३) गुपूधूप विच्छिपणिप-

उनके मतमे ष्टम्भते ही बनेगा । टष्टम्भे शर्पूर्वाखय से ट शेष रहा । ई इत् नुम सहित जृम्भधातुका गात्रबिनामे शरीरका टेढापन वक्रभाव अगडाई जम्हाई लेनेकी वर्तमानकालिक क्रिया आदि । ई इत् है अतः लट शप् होनेपर

(२३०२) रध हिंसायाका संकेत । नुम रन्धयति-रधि और जभ इन दो धातुओको नुम् आगम हो अच्परे नुम् हुआ । नश्चापदान्तस्यसे अनुस्वार, ययि परे परसवर्ण । जम्भते जम्हाई लेता है जजृम्भे अगडाई ले चुका । अचि क्यो पडा ? रद्धा जब्धा हिंसा करेगा अगडाई लेगा । जम्भिता जम्भितारौ जम्भितार , जम्भितासे जम्भितासाथे कम्भिताध्वे जम्भिताहे जम्भिता स्वहे-महे । जम्भिष्यते जम्भता जम्भेता । जम्भस्व । अजम्भत अजम्भेता अजम्भन्त । अजम्भथा अजम्भेथा अजम्भध्वम् । अजम्भि । अजम्भिष्ट । जम्भ धातुसे भूतकालिक अगडाई लेने क्रिया आश्रय कर्तामे लुङ् सिच् इट अट षत्व ष्टुत्व जृम्भते शप् नुम् आदि । जृम्भिता अजृम्भिष्ट । शल्भते आत्म प्रशसा करता है । वल्भते भोजन करता है । गल्भते धृष्टता करनेकी वर्तमानकालिक क्रिया । स्रम्भु प्रसाद आलस्य थकावटकी क्रिया स्रम्भते । ष्टभु धात्वादे ष. स स्तोभते स्तम्भित करना, गति रोकना । वी उपसर्ग । उपसर्गात्सुनोति सुवतिसे षत्व । भूतकालिक क्रिया प्राक्सितादड व्यवायेऽपिसे षत्व ।

अथ परस्मैपद धातओकी प्रक्रिया । गुपू=ऊकार इत् गुपधातुका रक्षानुकूलव्यापार, सुरक्षा क्रिया वर्तमान है । (३) गुप धूप विच्छ पणि पनि ईन धातुओसे आय प्रत्यय हो स्वार्थ=स्व उच्चारितधातु , तस्य अर्थ उसी अर्थ मे प्रत्यय मान्य । अर्थ निर्देशके अभाव से । आय अकारान्त है जिसका फल गोपायत न सुमनस्यमान । गोपायमे यको धातु स्वरसे अन्त उदात्त होना शप्के अकारकेसाथ एकादेश उदात्तेन उदात्त होनेपर उदात्तानुदात्तस्य स्वरित

निभ्य आय ३।१।२८॥ एभ्य आयप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे। पुगन्त इति गुणः। **(२३०४) सनाद्यन्ता धातवः** ३।१।३२॥ सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः धातुत्वाल्लडादयः। गोपायति। **(२३०५) आयादय आर्धधातुके वा** ३।१।३१ आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः। **(२३०६) कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** ३।१।३५॥ कास्धातोः प्रत्ययान्तेभ्यश्चाम्स्याल्लिटि न तु मन्त्रे। 'कास्यनेकाज्ग्रहणं'। कर्तव्यम् सूत्रे प्रत्ययग्रहणमपनीय तत्स्थानेऽनेकाच इति वाच्यमित्यर्थः। (०७) **आर्धधातुके** ६।४।४६॥

होना। गुप आय दशामें आर्धधातुकसंज्ञा उसका फल पुगन्तलघूपधस्य सूत्रसे उपधामें लघु इकारको गुण गोपाय। इसको भूवादयो धातव से धातुसंज्ञा नहीं होगी। भ्वादि धातुमें आय प्रत्ययान्तका पाठ न होनेसे सूत्र पढा।(२३०४) **सनाद्यन्ताः** सन आदि. येषां ते—सन् क्यच् काम्यच् क्यङ् क्यषोऽचार क्विप् णिच् यङ् तथा। यक् आय इयङ् णिङ् द्वादशामी सनादयः। णिङ् अन्ते येषां ते—प्रत्यय अन्तको धातुसंज्ञा हो। गुप् तिज् किद्के सन्से लेकर कमेर्णिङ् तक संज्ञाके विधानमें प्रत्ययको तदन्तविधि नहीं होती। अत सूत्रमें अन्त शब्द पढा। इससे धातुसंज्ञाका फल वर्तमानकालरक्षण क्रियाके कर्तामें लट शप् अतो गुणे पररूप। **गोपायति(रक्षति)गोपायतः गोपायन्ति गोपायसि गोपायामि**

(२३०५) आयादय—आय आदिर्येषां ते। आर्धधातुक इच्छामें आय इयङ् (ऋतेरीयङ्) णिङ् विकल्पसे हो। विषय सप्तमी। यदि पर सप्तमी होती गोपायितामें अतोलोप से अकारलोप न होता, उपदेशकालमें अदन्त न होनेसे। लिट्परे आय विकल्प हुआ। इसपक्षमें।(०६)कास धातु और प्रत्ययान्तेभ्य सन क्यच् से णिङ तक प्रत्यय अन्तमें हो उन धातुओंसे आम् हो लिटि परे। मन्त्रभाग न हो तब। (वा०) चकासृ दीप्तौ जागृनिद्राक्षये इत्यादिसे भी लिटि परे आम् प्रत्यय होनेके लिये बोले—कास् अनेकाच् भी पढना चाहिये। सूत्रे प्रत्ययका सम्बन्ध हो तब कास्धातु अनेकाच् प्रत्ययान्तसे काम चलेगा किन्तु अ इवाचरति अति क्विप् प्रत्यय अन्त जानकर आम होगा। अत. कहा—सूत्र प्रत्ययको हटाकर उसके स्थानमें अनेकाच पढे। इससे सिद्ध है कास् अनेकाच्से ही आम् हो तब न दोष। अमन्त्र क्यों पढा? कृष्णो नोनाव मन्त्र है आम् न हो। अच्छन्दसि नहीं पढा मन्त्र भिन्न भेदमें आम् होना इष्ट है। पुत्रमामन्त्रयामास प्रत्ययान्त है आम् हुआ।

अथ ह शुनःशेपः ईच्छाञ्चक्रे ईजादेश्च आम्। (२३०७) आर्धधातुके

इत्यधिकृत्य । (२३०८) अतो लोपः ६।४।४८।। आर्धधातुकोपदेशकाले यद-कारान्तं तस्याकारस्य लोपः स्यादार्धधातुके परे । गोपायाञ्चकार–गोपायाम्बभूव गोपायामास । जुगोप जुगुपतु । ऊदित्वादिट् । जुगोपिथ–जुगोप्थ । गोपायिता

का अधिकार करके उपयोगिता बोले–

(२३०८) अतो लोप अनुदात्तोपदेशसे उपदेश आया । अधिकृत आर्ध धातुककी आवृत्ति । दो उच्चारण (एक उपदेशमे जुडा) दूसरा लोपसे बधा । उपदेशमे आर्धधातुक हो ऐसा अकारान्त उसके अकारका लोप हो आर्धधातुक परे । आर्धधातुकोपदेशका फल क्या है अय पय गतौ धातुसे क्विप् । लोपो व्यो.से यलोप । पित्परे ह्रस्वस्य तुक् । अत् पत् (जाने वाला) यहा यलोपके बाद अकार लोप नही होता । उपदेशकालमे अकारान्त होनेसे । आर्धधातुके परे क्यो कहा–कथयति-चुरादि अदन्त धातु है उपधा वृद्धि न हो । अकारलोप के स्थानिवत्से । अन्यथा वह न होता । गोपाय आम स्थितिमे यके अका लोप गोपायाम् आम्से परे लिट्का लुक् । कृञ्चानुप्रयुज्यते सूत्रसे कृ लिट्का अनु-प्रयोग द्वित्वादि, गोपायाञ्चकार चक्रतु चक्रु । गोपयाञ्चकर्थ चक्रथु चक्र गोपायाञ्चकार चकर चकृव चकृम । भूलिटिके अनुप्रयोगसे गोपयाम्बभूव, अस् लिट्के अनुप्रयोगसे गोपायामास । आयके अभावपक्षमे लिट् द्वित्वदि । गुप गुप गुगुप कुहोश्चु जुगुप गुण । जुगोप । जुगुपु किन् है । न गुण । थल् आदि विभक्ति परे विकल्प इट् । स्वरतिसूति–सूत्रसे अपित् मानकर जुगोपिथ जुगुपथु जुगुप, जुगोप जुगुपिव जुगुप्व जुगुपिम जुगुप्म क्रादि नियम नही लगा नञ्का (अभाव) न होने, विकल्पसे लब्ध इट्का निषेध नही करता । गोपायिता । रक्षणक्रिया वाचक गुप धातो स्वर्थे आय आदि गोपाय=भविष्य कालिक आगामिकियाके कर्तामे लुट ति तास् डा । स्वरति सूति सूत्रसे ऊदित् इट् । जब न आय । गोपिता । न इट् गोप्ता गोप्तारौ गोप्तार । गोपि-तासि गोपितास्थ गोपितास्थ गोपायितास्मि गोपायितास्व गोपायि-तास्म । गोपायिष्यति, गोपायिष्यत गोपायिष्यन्ति । गोपिष्यसि गोपि ष्यथ गोपिष्यथ । गोप्स्यामि गोप्स्याव गोपस्याम । रक्षण क्रियाके विषयमे आज्ञा प्रेरणा आमन्त्रण प्रार्थनाका कर्ता हो लोट् गोपायतु गोपा-यतात् गोपायता गोपायन्तु । गोपाय गोपायत–त । गोपायामि–याव–याम भूतकालिक पेरणक्रियाका अनद्यतनकाल हो लङ् अगोपायत् अगोपायता अगोपायन् । अगोपाय अगोपायतम् अगोपायत । अगोपाय अगोपायाव

गोपिता–गोप्ता । गोपाय्यात्–गुप्यात् । अगोपायीत्–अगोपीत्–अगौप्सीत् । ३९६ धूप सन्तापे । धूपायति । धूपाञ्चकार दुधूप । धूपायितासि । धूपितासि ॥ जप जल्प व्यक्तायां वाचि । जप मानसे च । चप सान्त्वने । ४०० षप समवाये । समवाय सम्बन्ध सम्यगवबोधो वा । सपति । रप, लप व्यक्तायां वाचि

अगोपायम । गोपायेत् गोपायेता गोपायेयु सभी लोग रक्षा करें। रक्षण विषयक आशीर्वाद हो कर्तामे लिङ्। आर्धधातुकसञ्ज्ञा आयप्रत्यय सनाद्यन्ताः धातव । तिप् या सुट्। अतो लोप अकार लोप। गोपाय्यात् आय प्रत्यय अभाव पक्षमे गुप्यात् गुप्यास्ता गुप्यासु । गुप्या गुप्यास्त गुप्यास्त गुप्यास गुप्यास्व गुप्यास्म। अगोपायीत् भूतकालमे रक्षण क्रिया। एक कर्तृक समान्य भूतकालिक रक्षणानुकूलव्यापार गोपाय ईस ईत् अट्। इट् ईटि सलोप। दीघ। अतो लोप आयके अभाव पक्षमे अगोपीत् (हलन्त लक्षण वृद्धिका निषेध नेटिसे हुआ) इट अभाव पक्षमे सिच लोप नही हुआ। । वद व्रज हलन्तस्याच से वृद्धि अगौप्सीत् अगौप्ता अगौप्सु । अगौप्सी. अगौप्त अगौप्त अगौप्स अगौप्स्व–स्म। लृङ्मे भी तीन रूप। आय हुआ। अगोपायिष्यत् न आय अगोपिष्यत्। न इट अगोप्स्यत् ।(३९६) धूप धातु का सन्ताप तपनकी क्रिया। गुपूधूपसे आय प्रत्यय धूपाय। सनाद्यन्त जानकर धातुसञ्ज्ञा लट्। ति शप्। अतो लोप। धूपायति एक कर्तामे वतमानकालिक घोरघामसहन क्रिया। लिटमे आर्धधातुकसञ्ज्ञा, विकल्प आय। धातुसञ्ज्ञा अनेकाच् मान आम्। कृ लिट् आदि धूपायाञ्चकार आय अभाव पक्षमे दुधूप परोक्षानद्यतन भूतकालिक धम सहन क्रिया। दुधूपतु दुधूपु । दुधूपिथ। आय अभाव पक्षमे धूपितासि अद्य भिन्न भविष्यकालस घाम सहन क्रिया। धूपितास्मि धूपितास्व धूपितास्म। धूपायतु अधूपायत् धूपायेत धूप्यात् अधूपायीत् अधुपीत्। जब जल्द अबाध उच्चारण क्रिया जप मानस क्रियाभी अर्थ (मनमे जपना) जपति जजाप जेपतु जेपु जप्ता जप्स्यति जपतु अजपत् जपेत् जप्यात् अजापीत् अजपीत्। जल्पति जजल्प जल्पिता अजल्पीत् अजल्पिष्टा अजल्पिषु । चप धातुका चुप कराना साान्त्वना प्रदान करना वर्तमानकालिक क्रियामे लट् ति शप्, चपति चपत चपन्ति चुप शान्त कराते हैं। चचाप चेपतु चेपु । चपिता चपिष्यति चपतु (शान्त रहो) अचपत् अचापीत्। षप षोपदेश धातुके आदि ष को स हुआ। सपति सम्बन्ध जोडता या ठीक ज्ञान करता है। रप लप का

चुप मन्दायां गतौ। चोपति। चुचोप। चोपिता। तुप तुम्प त्रुप त्रुम्प तुफ तुम्फ त्रुफ त्रुम्फ हिंसार्थाः। तोपति तुतोप तुम्पति तुतुम्प तुतुम्पतु। संयोगात्परस्य लिटः कित्वाभावान्नलोपो न। 'किदाशिषि' इति कित्वान्नलोपः, तुप्यात्। 'प्रात् तुम्पतौ गवि कर्तरि' इति पारस्करादिगणे पाठात्सुट्। प्रस्तुम्पति गौः। श्तिपा निर्देशाद्यङ्लुकि न प्रतोतुम्पीति। त्रोपति त्रुम्पति तोफति तुम्फति। त्रोफति त्रुम्फति। इहाद्यौ द्वौ पञ्चमषष्ठौ च नीरेफाः अन्ये सरेफाः। आद्याश्चत्वारः प्रथमान्ताः। ततो द्वितीयान्ताः। अष्टावप्युकारवन्तः।

४१२ पर्प रफ रफि अर्ब पर्ब लब बर्ब मब कर्ब खर्ब गर्ब शब षर्ब चब गतौ। आद्यः प्रथमान्तः ततो द्वौ द्वितीयान्तौ। तत एकादश तृतीयान्ताः। द्वितीयतृतीयौ मुक्त्वा सर्वे रोपधाः। पर्पति पपर्प। रफति रम्फति। अर्बति आनर्ब।

भी स्पष्ट बोलना अथ रपति लपति ललाप लेपतु। लपिता लपि यति, लपतु अलपत अलपीत्। (४०३) चुप धातुका मन्द गति=चुपकेसे चलनेकी वर्तमानकालिक क्रिया आदि। चोपति चोपत चोपन्ति लकाम। चोपसि चुपकेसे घुसते हो। चोपामि चोपाव चोपाम। चुप—चुप चुचुप चिचोप ह्य-। कल कब चुपकेसे चल दिये। चुचोपिथ चुचपिव चुचोपिम। चुप धातुसे आगामी भविष्यकालके चुपकेसे गमन कर्तामे लुट् तास ति डा इटआदि चोपिता चोपितारौ चोपितार। चोपितासि चोपितास्थ चोपिष्यामि चोपिष्याव-ष्याम। चोपतु अचोपत् अचोपता अचोपन् अचोपाव अचोपाम। भूतकालमे मन्दगमन हो लुङ् अचोपीत् अचोपिष्टाम् अचोपिषु। अचोपी. अचोपिष्म। तुप तुम्प आदि आठ धातुकी हिंसानुकूल क्रिया, प्राण लेना अर्थ। तुतुम्पतु अनिदितासे नलोप क्यो नही सयोगसे परे लिटको कित्न होनेसे जब आशीर्लिङ्मे किदाशिषि सूत्रसे यासुट् कित् हुआ तब नकार लोप प्राप्त, प्र उपसर्गसे तुम्पति परे सुट हो (गाय कर्ता होनेपर) स हुआ। प्रास्तुम्पति। तुम्पतौमे श्तिप निर्देशका फल बोलेकि-यङ्लुकिपरे सुट् न हो। क्योकि श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टकार्य यङि लुकि न भवति। पुन पुन अतिशयेन तुम्पति हिनस्ति प्रतोतुम्पीत् बार—बार कष्ट देता है। आदिके दो तथा पचवा छठा सरेफ, अन्य रेफ रहित, आठ उकारान्त। अत्रुम्फीत्।

(४१२) पर्प आदि धातु गति ज्ञान गमन अर्थमे विराजमान है। पर्पति जिस पीठ पर पङ्गु लँगडे लोग चलते हैं खञ्ज। पपर्प पपर्पतु पपर्पु पर्पिष्यति अपर्पत्। पर्पतु=पङ्गु पीठ पर चढकर चले। रफति। आनर्ब सुधारता है घोडेकी चाल। पर्बति उचे चढान। वर्बति व्यर्थ बोलते चलना। गर्बति

पबति लर्बति । बबति । पवर्गीयादिरयम् । मबति कबति खर्बति । गबति शबति । सबति । चबति । ४१६ कुबि आच्छादने । कुम्बति । लुबि तुबि, अर्दने । लुम्बति तुम्बति । चुबि वक्त्रसंयोगे । चुम्बति । षृभु षृम्भु हिंसार्थौ । सर्भति ससर्भ सर्भिता । सृम्भति ससृम्भ । सृभ्यात् । षिभु षिम्भु इत्येके । सेभति । सिम्भति । शुभ शुम्भ भाषणे । भासने इत्येके । हिंसायाम् इत्यन्ये ।

अथानुनासिकान्ता । तत्र कम्यन्ता अनुदात्तेतो दश । घिणि ४३५ घुणि घृणि ग्रहणे । नुम ष्टुत्वम् । घिण्णते जिघिण्णे । घुण्णते जुघुण्णे । घृण्णते । जघृण्णे । घुण घूर्ण भ्रमणे । घोणते । घूर्णते । इमौ तुदादौ परस्मैपदिनौ । पण व्यवहारे स्तुतौ च । ४४० पन च । स्तुतावित्येव सबध्यते पृथङ्निर्देशात् । पनि-साहचर्यात्पणेरपि स्तुतावेवाय प्रत्यय । व्यवहारे तु, पणते । पेणे । पणितेत्यादि

घमण्ड पवर्गीय आदि है । सर्वति शबत बनाना । चर्वति चबाते चलना ।

(४१६) इदितो नुम कुम्बति आच्छादयति ढकता है । अकुम्बीत । लुम्बति इदितो नुम गच्छति या तुम्बी लेकर मागता है । चुम्बति चूमता है चुम्बत चुम्बन्ति। चुम्बसि चुम्बानि चुचुम्ब चुचुम्बतु चुचुम्बु ।चुम्बितासि चुम्बितास्थ चुम्बितास्मि । चुम्बिष्यति चुम्बिष्यामि । चुम्बतु चुम्बन्तु चुम्ब चुम्बतात् । चुम्बानि चुम्बाव चुम्वाम । अचुम्बत् । अचुम्बता अचुम्बन् । अह मुख अचुम्बम । चुम्बेत अचुम्बीत्अचुम्बिष्टाम् अचुम्बिषु-अचुम्बी अचुम्बिष्ट अचुम्बिष धात्वादे ष स । सर्भति हिंसा करोति । सृम्भति, एक मतमे सिभु मिम्भु हिंसार्थक है । शुभ शुम्भ भाषणानुकुलव्यापार भासन प्रकाश । एक मत । हिंसा कष्ट अन्य मत ।

अनुनासिकान्त य म ड ण न अन्त धातु, कमि तक दश अनुदात्तेत आत्मनेपद है इत इतो नुम । ष्टुत्व सहित घृणते—ग्रहण करता है । भाषामे प्रयोग अवश्य मिलता है । घूर्णते घोणाते भ्रमण–घूमता है । ये दोनो तुदादिमे परस्मैपदी । जुघूर्णे घूर्णिता घोणताम्अघूर्णत घोणेत अघोणिष्ट (४३९)पण धातुका व्यवहार हाट बाजार और स्तुति पर-गुणगानकी क्रिया अर्थ । पनका भी । किन्तु पन धातुका स्तुति (पर गुणप्रकाशन) से ही सम्बन्ध अलग पाठ पढनेके प्रमाणसे । अन्यथा पन पण व्यहारे स्तुतौ च पढते । यथा सख्य निवारण भी अलग पढनेका फल है । विशेष तात्पर्य सुनिये–गुपू धूप–सूत्रमे पणि पनिको आय प्रत्यय कहा गया । जैसे पन धातुके स्तुति अर्थमे ही आय प्रत्यय है उसके साहचर्यसे पण धातुसे भी स्तुति अर्थमे आय प्रत्यय होगा

स्तुतावनुबन्धस्य केवले चरितार्थ वात्रायप्रत्ययान्तान्नात्मनेपदम्। पणायति। पणायाञ्चकार पेणे। पणायितासि। पणितासे। पणाय्यात। पणिषीष्ट। पनायति। पनायाञ्चकार। पेने। ४४१ भाम क्रोधे। भामते। बभामे। क्षमूष

व्यवहार अर्थमे नही। पणायति बनेगा। व्यवहार अर्थमे क्रेतव्य=द्रव्यस्य मूल्य निर्धारणाय प्रश्न प्रति वचनात्मको व्यवहार। खरीदनेके लिये भाव ताव करना इस अर्थमे आय नही होगा। पणते पणेते पणन्ते खरीदने के लिये मोल भाव करते है। त्व पणसे अह पणे। मूल्य निर्धारित भाव ताव करता हू। पण पण पपण ए। अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि सूत्रसे एत्वअभ्यास लोप। पेणे पेणाते पेणिरे। पेणिसे पहले कभी मोल भाव कर लिया। पणिता-कल मूल्य निश्चय होगा। पणिष्यते पणिष्यसे पणिष्ये। एकवचन। पणता पणेता पणन्ता। पणस्व पणेथा पणध्व। पणे पणावहै पणामहै। अपणत अपणेता अपणन्त। पणेत पणेयाना पणेरन्। सभी लोग हाट बाजार करें। पणेय पणेव पणेम। हम लोग मूल्य निर्धारित करे। ननु पणायति-स्तुति अर्थमे पण धातुके अनुदात्तेत् होनेसे आत्मनेपद क्यो नही ? परस्मैपद कैसे ? पण अनुदात्तेत् है। उसीका अङ्ग आय प्रत्यय भी हो। आनर्थक्यात् तदङ्गन्यायेन। आय अन्तसे भी आत्मनेपद होगा। अत कहा-स्तुतौ=अनुदात्त अनुबन्ध केवल स्तुतिमे चरितार्थ है। अनर्थक नही। आर्ध धातुक विषयमे अनुबन्धमुक्तसे आय भी सफल है। आत्मनेपद नही होगा। तुल्यन्यायसे एकाच् उपदेशेसे निषेध नही होगा। पणायति स्तुत्यर्थक पणमे उसी अर्थमे आय। पणाय सनाद्यन्त मानकर धातुसज्ञा लट तिप् शप् अतो गुणे पररूप। पणायत पणायन्ति। पणाय अनेकाच् धातु है। अनद्यतन भूतकाल स्तुतिकर्तामे परोक्ष लिट्। अनेकाच् मानकर आम्। कृञ्का अनुप्रयोग द्वित्व आदि। पणायाञ्चकार—चक्रतु। आयके अभावमे लिट स्थाने आत्मनेपद त लिटस्त-एश्। पण—पण पपण ए। अत एकहल्मध्येसे एत्व अभ्यास लोप। पेणे पेणाते पेणिरे। पेणिसे पेणाथे पेणिध्वे। पेणे पेणिवहे—महे। भूतकालकी अनदेखी स्तुति क्रिया। वह अनद्यतन भविष्यकालकी हो लुट ता आदि पणायितासि। यदा न आय तदा पणिता पणितारौ पणितार। पणितासि पणितास्थ पणितास्थ। पणितास्मि पणितास्व पणितास्म। स्तुति करो अर्थमे पणायतु। अपणायत् अपणायीत् अपणायिष्टाम् अपणायिषु। अपणायी अपणायिष्टम् अपणायिष्ट। अपणायिषम् अपणा

सहते । क्षमते । चक्षमे । चक्षमिषे चक्षसे । चक्षमिध्वे चक्षन्ध्वे । चक्षमिवहे ।
(२३०९) म्वोश्च ८।२।६५।। मान्तस्य धातोर्मस्य नकारादेशः स्यान्मकारे वकारे च परे । णत्वम् । चक्षण्वहे । चक्षमिमहे—चक्षण्महे । क्षमिष्यते—क्षंस्यते । क्षमेत । आशिषि क्षमिषीष्ट—क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट-अक्षंस्त । कमु कान्तौ । कान्ति-

यिष्व—स्म । पन धातुसे आय आदि पनायति स्तौति पेने । पन—पन पपन । एत्व अभ्यास लोप । भामका क्रोधानुकूल क्रिया अर्थ । भामते क्रोध करता है बभामे परोक्ष बीते हुए कालमे क्रोध किया । भामिष्यते भामताम् अभामत अभामिष्ट ।४४२ ऊ-ष इत छम धातुका सहनेकी क्रियाके वतमानकालिककर्ता मे लट् त शप् एत्व । क्षमते—एककर्तामे वर्तमान सहन । क्षमेते क्षमन्ते क्षमसे क्षमेथे क्षमध्वे । क्षमे क्षमावहे क्षमामहे। षिद्भिदादिभ्यो अङ्के लिए षित् पढा । चक्षमे—सहन वाचक क्षमसे परोक्ष लिट । त—एश् द्वित्वादि । चक्षमाते चक्षमिरे । चक्षमिषे ऊदित् होनेसे स्वरतिसूति सूत्रसे इट् विकल्प अभाव पक्षमे चक्षसे नश्चापदान्तस्य अनुस्वार । अनुनासिकस्य क्विझलो से उपधा दीर्घ नही, सञ्ज्ञापूर्वकविधिके अनित्य होनेसे । स्थितस्य गतिश्चिन्त नीया । वहि महि परे यदा न इट् तदा—

(२३०९) म्वोश्च (मोनो) धातु अनुवर्तते । मान्त धातुके मको नकार आदेश हो, म व परे । अट्कुप्वाङ्से णत्व चक्षण्वहे—महे । वयमभिन्नकर्तृक परोक्षानद्यतन भूतकालिक सहनानुकूलव्यापार । क्षमिता क्षन्ता क्षन्तारौ क्षन्तार । क्षन्तासि क्षन्तास्मि सहन करूँगा । क्षमिष्यते । क्षमिष्यसे । क्षमिष्ये । क्षस्यते क्षस्येथे । क्षस्यावहे । द्विवचन । क्षमता क्षमेता क्षमन्ता क्षमस्व क्षमेथा क्षमध्व । क्षमै क्षमावहै क्षमामहै । एन ऐ। क्षमेत क्षमेयाता क्षमेरन् । क्षमेथाः क्षमेयाथा क्षमेध्व, क्षमेय क्षमेवहि । क्षमेमहि । हम सब क्षमा करे । सहन विषयक आशीर्वाद हो सीयुट्, सुट, इट । क्षमिषीष्ट । इट अभावमे नश्चापदान्तस्य से अनुस्वार । सहनक्रिया भूतकालमे हो कर्तामे लुङ् त सिच् इट् अट् षत्व ष्टुत्व अक्षमिष्ट । अक्षमि-षाताम् अक्षमिषत अक्षमिष्ठा । यदा न इट अनुस्वारे अक्षंस्त अक्षसाथा अक्षसत । अक्षस्था अक्षसाथाम् अक्षध्वम् ।४४३कमु कान्तौ कामना-इच्छा के अनुकूल क्रिया । कामना फल, क्रिया व्यापार । फलव्यापारौ धात्वर्थौ । उ इत्का फल उदितो वासे कमित्वा कान्त्वामे इट विकल्प । कान्ति शब्दका प्रभा, चमक तेज अर्थका भ्रम न हो । कहा—कान्ति –इच्छा स्वर्गकाम सुख

रिच्छा। (२३१०) कमेर्णिङ् ३।१।३०॥ स्वार्थे। ङित्वात्तङ्। कामयते। (११) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६।४।५५॥ आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात्। वक्ष्यमाणलोपापवादः। कामयाञ्चक्रे॥

की इच्छामे बहुत प्रयोग दर्शन। कामोऽभिलाष तर्षश्च।

(२३१०) कमधातुसे णिङ् हो। किस अर्थमे क्योंकि अर्थ निर्देश नही अतः स्वार्थे–स्व प्रकृति कम धातु तस्य अर्थ इच्छा, तस्मिन् अर्थे णिङ्। णङ् इत् णेरनिटिके लिये। दोअनुबन्ध। ङित्से आत्मनेपद त आता झ। अनुदात्तलक्षण आत्मनेपद, णिङ्के अभावमे होगा। चकमे। कामयते इच्छा कामना अभिलाषा तृषाके अनुकूल व्यापार वाचक कम धातुसे णिङ्=इ। णित्परे उपधाके अको वृद्धि। कामि णिङन्त है। क्ङिति चमे वृद्धि निषेध नही, इग्लक्षण न होनेसे। सनाद्यन्ता-धातुसंज्ञा वर्तमाने लटि कर्तरि शप् सार्वधातुक परे गुण, अयादेशे टित आत्मनेपदानां टेरे ए। कामयेते। कामयन्ते कामयसे कामयेथे कामयध्वे। कामये कामयावहे––महे। कामयाञ्चक्रे इच्छानुकूल क्रियाव चक्र कमधातुसे णिङ् वृद्धि आदि। कामि परोक्षे कर्तरि लिट (कास्) अनेकाच् जानकर आम्। आम मे लिटका लोप। कामि आम् दशामे सार्वधातुक परे गुणको णेरनिटिसे णिका लोप प्राप्त—उसे बाधकर।

(२३११) अय=णि को अय आदेश हो, आम अन्त आलु आय इत्नु इष्णु प्रत्ययपरे। क्रमशः उदाहरण। अन्त गण्डयन्त मण्डयन्त। तृन्भूवहि-उणादि सूत्रसे झच्। झोऽन्त णिको अय। स्पृहिसे आलुच णि को अय। स्पृहयालु। श्रु दक्षि स्पृह-उणादि सूत्रसे आय्य। इको अय स्पृहयाय्य। स्तनिसे उणादि इत्नुच। स्तनयित्नु ध्वनिकर्ता। पारिसे णेश्छन्दसि ष्णुच णिको अय। वीरुध पारयिष्णव। जीवोका पालन पोषण कर्ता। णेरनिटिसे णिलोप को बाधकर अय। कामयाम्। कृञ्चानुप्रयुज्यते आम अन्त है। कृ लिटि त। लिटस्तको एश्। कृ कृ कर कृ, कक्र चक्र। मान्त पद जानकर मको अनुस्वार परसवर्ण। कृन्मेजन्त मान्त अव्यय है। कामयाचक्राते–चक्रिरे। आर्धधातुकमे विकल्पका स्मरण—आयादयः लिटि त। कम कम–ककम चकम चकमे चकमाते चकमिरे। चकमिषे चकमाते चकमिध्व। चकमे चकमिवहे=महे। बीते भूतकालमे अदृष्ट इच्छाक्रिया कामना तृषा अभिलाषा। अद्यभिन्न भविष्यकालकी हो कर्तामे लुट्। णिङ् आदि कामयिता। सेट धातु

आयादय आर्धधातुके वा चकमे । कामयिता-कमिता । कामयिष्यते—कामिष्यते । (१२) णिश्रिद्रुस्रुभ्य कर्तरि चङ् ३।१।४८॥ ण्यन्तात् । श्रयादिभ्यश्च च्लेश्चङ स्यात्कर्त्रर्थे लुङि परे । अकाम् इ अ त इति स्थिते । (१३) णेरनिटि ६।४।५१॥ अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोप स्यात । परत्वात् 'एरनेकाच.' इति यणि प्राप्ते । ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्य पूर्वविप्रतिषेधेन इति वार्तिकम । णिलोपस्य तु पाच्यते पाति रित्यादि कृिज-तरुवकाश इति भाव, वस्तु

है यदा न णिङ् । कमिता कमितारौ कमितार । कमितासे कमिताध्वे कमिताहे कमितास्वहे महे । कामिष्यते । णि—अय आदि । यदा न अय कमिष्यते कमिष्येते कमिष्यन्ते । कमिष्यसे कमिष्येथे कमिष्यध्वे । कमिष्ये कमिष्यावहे=महे । कामयता कामयेता कामयता,कामयस्व कामयेता कामयध्व, कामयै कामयावहै–महै । अकामयत अकामयेता अकामयन्त । अकामयथा अकामयेथा अकामयध्व अकामये अकामयावहि अकामयामहि— कामय सीयुट त । अनुबन्धलोप गुणादि । कामयेत कामयेयाता कामयेरन् । कमयेथा कामयेथा कामयेय(इटोऽत्) कामयेवहि-महि । इच्छा क्रियाके आशीर्वाद अथमे कि खूब कामना बढे । इट सीयुट सुट विशेष होगा । कमिषीष्ट कमिषीयास्ता कमिषीरन् कमिषीष्ठा कमियास्था कमिषीध्व-ढ्वम् । अचीकमत इच्छानुकूलक्रियावाचक कमधातुसे सामान्यभूतकालिक इच्छा के कर्तामे लुङ् अट अ । णिङ् होनेपर उपधा अकारको वृद्धि । आत्मनेपद त । च्लिको सिच् प्राप्त बाधकर—

(१२) णि=ण्यन्त और णि सृ द्रु श्रु इनसे परे च्लिको चङ हो कर्ता अर्थमे लुङ परे । इस सूत्रमे द्वन्द्व । प्रत्यय ग्रहणसे तदन्तविधि । च्लि लुङिसे लुङ् । च्ले सिच्मे च्लि आया । च-ङ्, इत् आ शेष । अकामइअत। (१३)णेरनिटि अनिट= इट रहित आर्धधातुक परे रहने (णिङ् णिच) का लोप हो । णिलोपे अत्र शङ्का—णिलोपको बाधकर परत्वात् विप्रनिषेधे पर कार्यके बल पर-एरनेकाचः सूत्रसे यण् हो जाय । यदि यण् होता णिलोप न हो पाता । णि स्वरूप न होनेसे । स्थानिवद्भाव भी मूलको नही जिला सकता । यण् बाधनेके लिये (वा०) णि लोप और अकार लोप, इयङ् यण्, गुण, वृद्धि दीर्घको बाधते है पूर्वविप्रतिषेधके बलवर पर कार्यका इष्ट कार्यम् अर्थ । पूर्व इष्ट हो पूर्वकार्य, पर इष्ट हो परका कार्य । अकारलोप वृद्धि दीघको ही बाधेगा । क्रमश उदाहरण अततक्षत, आटिटटत् कारणा कारक कार्यते आदि स्थानमे णि

त्स्तु अनिट इति वचनसामर्थ्यादार्धधातुकमात्रस्य विषय । तथा चेयङादेरप, वाद एवायम् । इयङ्–अततक्षत् । यण्–आट्टित् । गुण कारणा । वृद्धि कारक । दीर्घ कार्यते । (१४) णौ चङ्युपधाया ह्रस्व ७।४।१॥ चङ् परे णौ यदङ्ग तस्योपधाया ह्रस्व स्यात् । (२३१५) चङि ६।१।११॥ चङि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाच प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । (१६) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥ चङ परे इति बहुव्रीहि ।(अन्यपदार्थो णि) स च अङ्गस्य इति च द्वयमप्यावर्तते ।अङ्गसंज्ञानिमित्त यच्चङ्पर णिरिति यावत्

लोप निरवकाश था । इयङ् यण् आदिको बाधेगा । वार्तिक व्यर्थ । तब कहा णिलोप भी पाक्ति=पच धातुसे णिच वृद्धि । पाचि ण्यन्तसे क्तिन् तितुत्रथ–से इट निषेध । णेरनिटिसे णिलोप । कुत्व । इस स्थलमे सावकाश है । वस्तुत अनिटि शब्दसे इट रहित आर्धधातुक णिलोपका विषय बनेगा । इयङ् आदि का बाधक ही वार्तिक होगा । अर्थात् णिलोप होगा । चिकीर्षक चिकीर्ष्यात् । अतो लोप । अकीर्तत् सार्वधातुक दीर्घको बाधकर पूर्वविप्रतिषेधसे लोप होना है । इयङ्का उदाहरण–तक्ष धातु णिच् लुङ् तिप् च्लिको चङ आदि । अत तक्ष इ अ त । यण्को बाधकर इयङ् प्राप्त । पूर्वप्रतिषेधसे णिलोप हुआ । अटिट्टत् । यण्को बाधकर णिलोपे । कारणा कारि धातुसे ण्यासश्रन्थो युच्–अन । गुणको बाधकर णिलोप कारयति इति कारक । कारि–अक । वृद्धिको बाधकर णिलोप दीर्घ । कारि अत । अकृत्सार्वधातुकयो के दीर्घको बाधकर णिलोप, पूर्व प्रतिषेधके बलपर । प्रमङ्गमे अकाम इ अत की दशामे एरनेकाच.के यण्को बाधकर णेर्निटिसे णिलोप । काम अत ।(१४) णौ चङि अङ्गका अधिकार । चङ परे रहते (पूर्वमे णि हो) ऐसा अङ्ग उसकी उपधा (अन्त्य अल्का पूर्ववर्ण)को ह्रस्व हो । उपधा क्यो पढा ? अचकाङ्क्षत । चङि क्यो ? कारयति । उपधाको ह्रस्व हुआ । अकम अत ।

(२३१५) चङि-एकाचो द्वे प्रथमस्य, अजादेर्द्वितीयस्यका अधिकार । धातोरनभ्यासस्य अनुवर्तते । चङिपरे अभ्याससंज्ञारहित धातुका अवयव प्रथम एकाच्को द्वित्व हो अजादि धातु हो तब द्वितीय एकाच द्वित्व हो इससे कमको द्वित्व । हलादिशेष ककम अत ।(१६) सन्वल्लघुनि–चङ्परे यस्मात् अन्य पदार्थ णि है उसकी और अङ्गकी अनुवृत्ति । चङ् परक णिका लाभ । अङ्गसंज्ञाका निमित्त चङ् परक णि परे हो लघुपरक भी अङ्गका अभ्यासको सनीव=सन्के समान कार्य हो णि परे, अक्=अ इ उ ऋ लृका लोप हुआ हो

न तत्पर यल्लघु तत्परो योऽङ्गस्याभ्यासःतस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति। अथवा अङ्गस्य इति नावतते। चङ्परे णौ यदङ्ग तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्ये-त्यादि प्राग्वत्। (१७) **सन्यत ७।४।३९॥** अभ्यासस्यात इकार स्यात्सनि, (१८) **दीर्घो लघो ७।४।९४॥** अभ्यासस्यलघो दीर्घ स्यात्सन्वद्भावविषये, अचीकमत। णिङभावपक्षे तु 'कमेश्च्लेश्चङ् वक्त य'। णेरभावान्न दीर्घसन्व-द्भावौ। अचकमत।

सञ्ज्ञाया कायकालत्वादङ्ग यत्र द्विरुच्यते।
तत्रैव दीर्घ सन्व च नानेकाच्स्विति माधव ॥१॥

अथवा अङ्गकी आवृत्ति नही करेगे, चङ् परक जो णि ऐसा अङ्ग उसका जो अभ्यास लघु परे हो उसको सन्की तरह कार्य हो। इत्व ह्रस्व आदि कार्य। अथवा लोप होनेपर। प्रथम पक्ष भाष्यसम्मत है। द्रुमु परे अङ्गत्व सम्भवात्, अत दूसरा व्याख्यान। दोनोमे सन्वद्भाव होगा। क कम् अत(१७)सनि अत अभ्यासके अको इ हो सनि परे। अत्र लोप से (अभ्यास) भृआमितमे इत् आया कके अको इ। कि कम अत।

(१८) दीर्घो=लघु–अभ्यासके अवयव लघुको दीर्घ हो सन्वद्भावके विषय मे। अभ्यास इकारको दीघ, कका चत्व अडागम। अचीकमत अचीकमेताम् अचीकमन्त,अचीकमथा अचीकमेथाम् अचोकमध्व। अचीकमे अचीक मावहि-महि। णिङ नही होगा। तब पक्षमे च्लिको चङ्=विधानका वार्तिक कमसे परे च्लिको चङ्=अ कह। णिङ् विना चङ प्राप्त नही था। कम कम कक्म चकम। च्लिको चङ अ। द्वित्वादि अचकमत अचकमेताम् अचकमेन्त

विशेष — सन्वत् घुनि, दीर्घो लघो सूत्रके विषय विवेचनपर ५ कारिकाये= **सञ्ज्ञाया**-सञ्ज्ञा सूत्रके कार्यकाल पक्षम जहा अङ्गको द्वित्व कहा गया, वही दीर्घो लघो से **दीर्घसन्वच्च**=सन्वद्भाव भी होता है। **अनेकाच्**= धातुओके अङ्गको द्वित्व नही होता माधव मत है। शास्त्रमे सञ्ज्ञा परिभाषा सूत्रके विषयमे कार्यकाल एक पक्ष है। यत्र कार्य तत्र सञ्ज्ञा। कार्यं स्थल ही कार्यंकाल है। इस पक्षमे कार्य विधायक विधिसूत्रोके प्रदेश (उच्चरगत अध्यायपाद सूत्र स्थल)मे सञ्ज्ञासूत्र परिभाषासूत्र उपस्थित होते है। दूसरा पक्षय थोद्देश है। उद्देश=सञ्ज्ञा परिभाषा सूत्रके उच्चारणप्रदेश—अध्याय पाद सख्याका अतिक्रमण न करना। अपने उच्चारित स्थलसे अपना अय विधिसूत्र के पास भेज देना स्वय देशका त्याग न करना। यथोद्देश पक्षमे सञ्ज्ञा

चकास्त्यर्थापयत्यूर्णोत्यादौ नाङ्ग द्विरुच्यते ।
किं त्वस्यावयव कश्चित्तस्मादेकाश्विद द्वयम् ॥२॥
वस्तुतोऽङ्गस्यावयवो योऽभ्यास इति वर्णनात् ।
ऊर्णौ दीर्घोऽर्थापयतौ द्वय स्यान्निति मन्महे ॥३॥

परिभाषा सूत्र अपने उच्चारण स्थलमे स्थित रहते है। विधि सूत्रोको अपेक्षित अर्थ समर्पित करते हैं। सन्वल्लघुनि, दीर्घो लघो सूत्रमे अङ्गस्य अभ्यासस्यकी अनुवृत्ति। कार्यकाल पक्षमे पूर्वोऽभ्याम समीपस्थ है। अङ्गके दो उच्चारणमे पहलेकी अभ्याससज्ञा वही सन्वद् होता है, जहाँ पूरे अङ्गको द्वित्व हो एकदेश अवयवको नही, वही दीर्घसन्वद्भाव समझे। जब अङ्ग एकाच् रहेगा तब दोनो की प्रवृत्ति। जहा अनेकाच् होगा वहा दीर्घ सन्वद्भाव नही होगें माधव मत है

नानेकाक्षु का विस्तार=श्लोकमे चकास्ति अर्थापयति=अर्थमाचष्टे अर्थे णिच। अर्थवेदयो से अ पुक। अथापि धातु। ऊर्णुञ् आच्छादने ये तीन धातु अनेकाच है। आदिस जागृ निद्राक्षये। इनके ण्यन्त दशामे चडि परे पूरे अङ्ग को द्वित्व नही होता किन्तु अङ्गके अवयव एकाच्को ही द्वित्व होता है। अत अनेकाच् धातुओमे पूरे अङ्गको द्वित्व न होनेसे एक अच वाले अङ्गमे दीर्घ सन्वद्भाव दोनो होते मे किसीका मत है। अवयवको द्वित्व होगा। यदि ऐसा ददरिद्रासति इत्यादिमे अभ्यासका हलादिशेष कैसे ? अनेकाच् अङ्ग है पूरेको द्वित्व नही हुआ अथवा अजजागरत् सन्वद्भाव व्यवधानमे अभ्यासको सन्वद् नही होगा, शङ्का खडी होगी। अत यथोद्देशपक्षके सहारे कहा-वस्तुत=सत्य यह है कि अङ्गका अवयव जो अभ्यास उसको सन्वद् और दीर्घ हो। ऊर्णुधातु के ण्यन्त दशास चङ् होनेपर एकदेश नुको द्वित्व होनेपर भी और्णूनुवीन्मे दीर्घो लघो से अभ्यास दीर्घ हुआ। अभ्यासमे अकार नही। सन्यत की असम्भावनासे सन्वद्भाव नही कहा। अर्थापि धातुसे चङ्। णिलोप उपधाह्रस्व। अथप् दशामे केवल थपको द्वित्व होकर भी सन्वद्भाव। सन्यत से इत्व अभ्यास दीघ दोनों होते है (द्वय स्यादिति मन्महे)। तृतीय श्लोकका अर्थ=अङ्गस्यावयव के द्वित्व पक्षे चकास्तिमे विशेषता बोधनाय—नूभयमिद=दीर्घ सन्वद्भाव दोनो होगें न स्यात्—नही भी होगे। वस्तु स्थिति व्यवस्थाके अनुकूल चङ् परो यस्य—अन्य पदार्थ णि समीपमे है। लघुनिका विशेष्य चङ् परे णौ यल्लघुका व्याख्यान हुआ। अङ्गमेव वा=णिका विशेषण चङ् परक णि ऐसा जो अङ्ग। द्वितीय व्याख्यान फलित-यहीं व्यवस्था है। दोनो पक्षमे दीर्घसन्वद् दोनो अचचकासत

चकास्तौ तूभयमिद न स्यात्स्याच्च व्यवस्थया ।
णौविशेष्य सन्निहित लघुनीत्यङ्गमेव वा ॥४॥
इति व्याख्याविकल्पस्य कैयटेनैव वर्णनात् ।
णेरग्लोपेऽपि सम्बन्धस्त्वगितामपि सिद्धये ॥५५॥

अथ क्रम्यन्तास्त्रिंशत्परस्मैपदिन ४४४ अण रण वण भण मण कण क्वण व्रण भ्रण ध्वण शब्दार्थाः । अणति । रणति । वणति । वकारादित्वादेत्वाभ्यासस्य लोपौ न । ववणतु । ववणिथ । धणिरपि कश्चित्पठ्यते । धणति । ४५४ ओणृ अपनयने । ओणति । ओणाञ्चकार । शोणृ वर्णगत्यो । शोणति । श्रोणृ-

मे नहीं हुये । चङ् परे णौ यल्लघु कहेंगे । दोनो नही होगे । चङ परक णिका कास के साथ व्यवधान है । अचीकमत इत्यादिमे एकका व्यवधान सोढव्य है । येन नाव्यवधान न्यायसे । जब दूसरा व्याख्यान करेगे । चङ् परे णौ यदङ्ग तब अचीचकासत्मे दोनो हुये,अङ्गक णि परक होने स ।

ननु चङ् परे णौ यल्लघु, चङ् परे णौ जदङ्ग दो व्याख्याके भेदमे क्या प्रमाण है तब कहा कैयटने ही विकल्पका व्याख्यान किया है जो आदर्तव्य है । ननु णि की आवृत्ति स्वीकार कर आलोपमे भी जुडा है ऐसा क्यो ? अत आह णेरग्लोपेऽपि=अक् अ इ उ ऋ लृके लोप होनेपर सम्बन्ध जुडता हे । अक् इता अपि, कमु कान्तौमे उ–अक् है इत् भी । दीघ सन्वद्भाव सिद्धिके लिये सम्बन्ध मान्य । अन्यका अग्लोपि होनेसे दीघ सन्वद्भाव न हाते । पचि कमि शकि भी ।

अथ क्रमि अन्त तीस परस्मैपदधातुओकी साधनिका । क्रमु पादविक्षेपे अनुनासिकान्त है । (४४४) अण रण आदि अनेक धातु शब्द ध्वनिकी क्रिया अर्थक है । अणति आण अणिता । रणति रराण रेणतु । रणिता रणिष्यति रणतु अरणत् रण्यात् । अराणीत् अरणीत-नार पर ध्वनि निकालनेक्रिया । भणति बभाण भ्रणतु अभ्राणोत् कहता है । परोक्षमे कह चुका । अभाणीत् । क्वणति ध्वनि करना, रागसे बजना । चक्वाण चक्वणतु । क्वणिता रागसे बजेगा, क्वणिष्यति क्वणतु अक्वणत् अक्वाणात् व्रणति फटता है । फटनेकी ध्वनि अव्राणोत् वणति ववाण ववणतु । न शसददवादिके निषेधसे न एत्व अभ्यास लोप । थल् परे इट । धणिको भी शब्दार्थक पढा गया । (४५८) ऋदित ओण धातुके अपनयने हटाना अलग करना ओणना । सूकर ओणति पङ्क कीचड–को चीरता हे । इजादि होने से आम । अनदेखी ओडने क्रियाके अद्यभिन्न भूतकाल लिट् क्रिया आदि

ण । श्रोण सघाते । श्रोणति । श्लोण च । शोण,दयस्त्रयोऽमी तालव्योष्मादय, ४५८ पैणृ गतिप्रेरणश्लेषणेषु। प्रैणृ इति क्वचित्पठ्यते। पिप्रैण । ध्रण शब्द। उपदेशे नान्तोऽयम् । 'रषाभ्याम्' इति णत्वम् ध्रणति । णोपदेशफल ण्डलुकि, दध्रन्ति । वण इत्यपि केचित् । वेणतु । बेणिथ । ४६० कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । चकान । ष्टन व नशब्दे । स्तनति । बनति । वन षण सम्भक्तौ ।

ओणाञ्चकार ओणिता कल अलग करेगा। ओणतु-खनक फेक दो। अलग करो। ओणानि ओणाव ओणाम शोणति रगता है(लाल रंगमे) या पाता है। ४५८ पैणति या प्रैणति । गति-गमन ज्ञान प्राप्ति प्रेरणा । श्लेषण चिपकनेकी वतमान कालिक प्रयत्नशील कर्ता । [illegible]को द्वित्व अभ्यासको ह्रस्व (एच्को इ) हलादि शेष। पिप्रैण पिप्रैण[illegible] प्रैणिता अप्रैणीत् । ध्रणका धड—धडकी आवाज । धातुके उपदेशकालमे नान्त है। अकार उच्चारणार्थं रषाभ्या नो ण से णत्व हुआ । ध्रणति पवत-चट्टान गिरनेसे धडाधडकी आवाज । यदि स्वभावसे ण रहता, न को णत्व न करना पडता । तब कहा—णोपदेश-नकार स्थानिक(न)पढनेका फल नश्च-से अनुस्वार होना यङि लुकिमे विश्वास मानें। ध्रण ध्रण दध्रन यङि लुकि अभ्यासको नुक्। उत्तरका ण असिद्ध । नको अनुस्वार परसवर्ण । यदि स्वाभाविक ण होना अनुस्वार परसवर्ण न हो पाता । वणका भी ध्वनि करना । वणति वशी बजानेकी क्रिया ववाण वेणतु दो कर्ताने बजाया । कन धातुका दीप्ति प्रकाश कान्ति इच्छा गति गमन । कनति अकानीत् । (४२१) षोपदेश ष्टुत्वसे ट को त धात्वादेः ष स । स्तनति मेघ । बनति घनघोर गर्जना तस्तान तस्तनतु तस्तनुः स्तनिता ध्वनि करेगा । स्तनिष्यति स्तानीत् स्तनीत् । वन सन् सम्भक्त घनिष्ठता गहरी मित्रता, परस्पर प्रेम होनेकी क्रिया । अथ भेदसे पुन पढा । वन धातु आवाज करना, घनिष्ठ प्रीति अर्थमे वृत्ति—व्यवहार इष्ट है । एक साथ पढा जाता तो ष्टन्का भी सम्भक्तिमे व्यवहार होता । वनति=आपसमे बनता है(मम तुभ्य च सवनन)हमारे तुम्हारे बीच अच्छी मित्रता हो, ववान ववनतु. ववनु । परोक्षकालमे परस्पर बनना था । वनिष्यति वनतु वनता वनन्तु । उसमे विशेष भक्ति प्रेम पैदा हो । वनानि वनाव वनाम । हम बनाये । सम्भक्तिपर आधारित । अवनत् वनेत् वनेता वनेयु । वने वनेत वनेत । वनेय वनेव वनेम । अवानीत् अवनीत् अवनिष्टाम् अवनिषु. अवनी अवनिष्टम् अवनिष्ट । अवनिषम् अवनिष्म । सनति

वनेरर्थभेदात् पुनः पाठः । सनति ससान । सेनतुः ।(१९)ये विभाषा ६।४।४३। जनसनखनामात्वं वा स्याद्यादौ क्ङिति । सायात् सन्यात् ।४६५ अम गत्यादिषु । कनी दीप्तिकान्तिगति—इत्यत्र गतेः परयोः शब्दसम्भक्त्योरादिशब्देन ग्रहः । अमति । आम । द्रम हम्म मीमृ गतौ । द्रमति । दद्राम । ह्म्यन्त इति न वृद्धिः अद्रमीत् । हम्मति जहम्म । मीमति । मिमीम । अय शब्दे च । चमु छमु जमु झमु अदने (२३२०) ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ७।३।७५।। एषामचो दीर्घः स्याच्छिति । आङि चम इति वक्तव्यम् । आचामति । आङि किम् ।

घुलमिल, सन् रहा हैं । विशेष भक्तिकी वर्तमानकालिक क्रिया । सन सन ससन ससान । परोक्षमे मिल चुका । एत्व अभ्यास लोप सेनतु । सनिता सनतु असनत् सनेत सन्यात् सायात् आत्व करने वाला सूत्र—

(१९) ये विभाषा जन सन् खन् धातुके अन्त्य अर्को आ हो, य आदि प्रत्यय क्ति् ङित् परे । अनुदात्तोपदेशमे क्ङित् विङवतो से आत्की अनुवृत्ति । सम्भक्ति=विशेष प्रेम सेवा के अनुकूल सन धातु आशीर्वादे कर्तरि अर्थे लिङ् यासुट् आदि । सन्यात् । ये विभाषासे नको आ । दीर्घ सायात्, असनीत् असनिष्टम् । असनिषुः । (४६५) अम धातुका गमन, शब्द करना सम्भक्ति विशेष प्रेमकी क्रिया । आदि शब्दमे अन्य अर्थका सग्रह । अमति विशेष भक्ति या गमनका प्रयत्नशीलकर्ता । अम अम अअम(उपधा वृद्धि)आम आमतु आमु आमीत् अमिष्टाम् आमिषुः । द्रमति हम्मति मीमति । गमन ज्ञान प्राप्ति की क्रिया गत्यर्थ है । द्रम द्रम दद्राम । सामान्य भूतकालमे अद्रम इस ईत् । इट ईटि अद्रमीत् (हम य) अन्त धातुको वृद्धि नही होती । जो अतो हलादे से प्राप्त थी । हमन्तलक्षणावृद्धिका निषेध नेटिसे हो चुका है । जहम्म । अभ्यासे चर्च कुहोश्चु ह को ज । अहम्मीत् । मीमति गच्छति या प्राप्नोति । मीम द्वित्वे अभ्यास ह्रस्व आदि मिमीमतु मिमीमु अमीमीत् । मीम धातु ध्वनि करने अर्थमे । (४६९) उ इत चम छम जम झम धातुका अदन भक्षण खाना पीना अर्थ ।

(२०) ष्ठिवु निरसने आदि धातुओके अच्को दीर्घ हो शित्—शपश्यन आदि परे रहते (वा०)चम धातुको आङ् पूर्वक रहने पर ही दीर्घ हो । शमामष्टानासे दीर्घ आया । जिसे सुनकर अचश्च नियमसे अच उपस्थित हुआ । आचमति-आङ् पूर्वक चमधातो. भोजन क्रिया वर्तमानकालके कर्तामे लट् तिप् शप् । उक्तसूत्रसे दीर्घ । आङि पूर्वमे हो ऐसा क्यो ? चमति खाता, विचमति

चमति । विचमति । अचमीत । जिमि केचित्पठन्ति । जेमति । क्रमु पादविक्षेपे। (२१) वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलष: ३।१।७०।। एभ्य श्यन्वा स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे। (२२) क्रम परस्मैपदेषु ७।३।७६।। क्रमेर्दीर्घः स्यात्परस्मैपदपरे शिति । क्राम्यति कामति । चकाम । क्रा-

विशेष भोजनकी क्रिया । यहा दीर्घ न हो आङ्के न होनेसे। अचम इस ईत् इट ईटि सलोप,दीर्घ, ह्मय अन्त धातुको वृद्धि नही होती । जो अता हलादे से प्राप्त थी । अचमीत् अचमिष्टाम् अचमिषु अचमी अचमिष्टम् अचमिष्ट,अचमिष अचमिष्व अचमिष्म । छमति अछमीत् । जमति या जिजेम भोजन करना जेवना । जिजेम जिजीमतु. । जिजीमु परोक्षानद्यतन भूतमे भोजन किया । जेमिता जेमिष्यति जेयेगा । जेमतु अजेमत् जेमेत् अजेमीत् अजेमिष्टाम् अजेमिषु, अजेमी । झमनि झम्मना छीनके खाना ।

(४७३) क्रमु (उदित् होना, उदितो वासे विकल्प वास्ते) पादविक्षेप=पैर बढाना । (२१) वाभ्राश भ्राश दीप्ति अर्थमे अदादि गणका है। भ्रमु चलने भ्रमण अथमे । भ्वादि, ज्वलादि, अदादिभी । भ्रम अनवस्थाने कि कतव्य विमूढ, दिग्भ्रम अर्थमे दिवादिकुशादिशमादिभिः। कमु ग्लानौ, त्रसि उद्वेगे, त्रुट क्षेदने, लषकान्तौ, इन धातुओसे श्यन् हो कर्ता अर्थमे । सार्वधातुक परे, दिवादिभ्य से श्यन् कर्तरि और सार्वधातुके की अनुवृत्ति । (२२) क्रम धातुको दीर्घ हो परस्मैपद परे या शिति । शमामष्टनासे दीर्घ आया। पूर्वसूत्रसे शिति क्राम्यति पाद विक्षेपानुकूल क्रिया वाचक क्रम धातुसे वर्तमानकालिक क्रियाके कर्तामे लट् ति शप् पक्षमे । वा भ्राश सूत्रसे श्यन् । अनुबन्धलोप क्रम परस्मैपदेषु सूत्रमे दीर्घ,क्राम्यति । न श्यन् किन्तु शप । क्रामति क्रामत क्रामन्ति क्रमसि क्रामथ क्रामथ, क्रामामि क्रामाव क्रामाम , परोक्ष बीते भूतकाल मे पग बढाया हो। क्रम धातो कर्तरि लिट् द्वित्व आदि क्रम-क्रम क-क्रम कुहोश्चु चक्रम। अतोपधाया वृद्धि चक्राम चक्रमतु चक्रमु । क्रमिता क्रमिष्यति पग बढायेगा। पादविक्षेपकी क्रिया आज्ञा प्रेरणाका विषय हो कर्तामे लोट् । ति श्यन् दीर्घ एरु । क्राम्यतु । जब शप् क्रामतु क्रामतात् क्रामता क्रामन्तु। क्राम क्रामत क्रामत । क्रामानि क्रामाव क्रामाम । अक्राम्यत अक्रामत् । क्रामेत् क्राम्येत् क्रम्यात् । अक्रमीत् अक्रमिष्टाम् अक्रमिषु ,अक्रमी अक्रमिष्ट अक्रमिष्ट । अक्रमिष अक्रमिष्व अक्रमिष्म ।

(२३) स्नु और क्रम धातुके आत्मनेपदका कारण न हो तभी वलादि

क्षमतु-क्रामतु । (२३) **स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते** ७।२।३६।। अत्रैवेट् । अक्रमीत् ।

अथ रेवत्यन्ता अनुदात्तेत। ४७४ **अय वय पय मय चय तय णय गतौ** । अयते । (२४) **दयायासश्च** ३।१।३७।। दय अय आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । आयाञ्चक्रे । अयिता । अयिषीष्ट । (२३२५) **विभाषेटः** ८।३।७९।। इण परो य इट् तत परेषा षीध्व लुङ्लिटा धस्य वा मूर्धन्य स्यात । अयि-

---

आर्धधातुक इट् होता है । स्नु क्रम अनुदात्तोपदेशके भीतर नही है । इट् होगा सिद्धे सति आरम्भविधिः नियमाय कल्प्यते । इस सूत्रने नियम किया-अत्रैव=कर्तरि प्रत्ययमे इट् होता है । अर्थात् भाव कर्ममे लकार हो इट् नही होता । आत्मनेपद क्यो पढा ? उप स्नोष्यते जलेन, उपक्रस्यते आक्रस्यते । यहा आत्मनेपदका निमित्त होनेसे । ह्ययन्तको वृद्धि नही होती । अथरेवत्यन्ता (रेवृ प्लवगतो) धातु तक अनुदात्त इत् होनेसे आत्मनेपदप्रक्रियाकी साधनिका चलेगी । अय वय आदि धातुका गमन प्राप्ति ज्ञानके अनुकूल क्रिया अर्थ । गमनाथक अथ से वतमाने लट् आदि । अयते अयेते अयन्ते । गमन क्रिया प्रत्यक्ष न हो, भूतका न ही कर्तामे परोक्षे लिट् । (२४) दय अय आस इन (समाहार द्वन्द्वमे पञ्चमी) इन धातुओमे आम प्रत्यय हो लिट् परे । कास् प्रत्ययात्सूत्रसे आम लिट् आया । कृ लिटका अनुप्रयोग । तत एव=अया कृ ए । द्वित्व आदि कृ कृ कर कृ, कक्र चक्र यण्, अयाचक्रे चक्राते चक्रिरे । अयिता अयितारौ अयितार । अयितासे अयितासाथे अयिताध्वे अयिताहे । अयिष्यते । अयताम् अयेता अयन्ताम् । अयस्व अयेताम् अयध्व अयै अयावहै-महै । आयत आयेताम् आयन्त आयथा । अयेत अयेयाता अयेरन् । आशीर्लिङ् सीयुट् सुट् इट की विशेषना । अयिषीष्ट अयिषीयास्ता अयिषीरन् । अयिषीष्ठा अयिषीयास्था अयिषीध्व-ढ्व ।

(२३२५) विभाषा इट-इण षीध्व लुङ्लिय ध आया । अपदान्तस्य से मूर्धन्य भी । इण्=इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ठ ल इन अक्षरोसे परे इट् हो उससे परे षीध्व और लुङ लिटसम्बन्धी धको ढ (मूर्धन्य=ऋ टु रषाणा मूर्धा) इस सूत्रसे ध्वके धको ढ । पक्षमे नही । अयिषीय अयिषीवहि महि,आयिष्ट आयिषाता आयिषत । अयिष्ठा आयिषाथा अयिढ्व लुङ् है धको ढ हुआ । पक्षमे ध्व रहा । लुङ् स्थाने ध्व चले सिच् । आट् वृद्धि । मित्र के सका 'धि च' सूत्रसे लोप । ध्व परे इवर्णान्त अङ्गसे नित्य ढ

षीढ्वम् । अयिषीध्वम । **आयिष्ट** । आयिढ्वम आयिध्वम् ।(२६) **उपसर्गस्यायतौ** ८।२।१९।। अयतिपरस्यौपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्व स्यात् । प्लायते । **पलायते** । निसदुसो रुत्वस्यासिद्धत्वान्न लत्वम । निरयते दुरयते । **निर्दुरोस्तु–निलयते–दुलयते** । प्रत्यय इति त्विणो रूपम् । अथ कथम् उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जौ' इति माघ । इट किट कटी इत्यत्र प्रश्लिष्टस्य भविष्यति । यद्वा 'अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम' चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात् । वादित्वात, ववये । पेये मेये चेये तेये प्रणयते । नेये । ४८१

प्राप्त था विकल्पके लिये सूत्र पढा । (२६) उपसर्गस्य-कृपोरोल से रो ल आया **अयति** । अय धातु परे हो उसके उपसगमे वर्तमान रको ल हो । इस नियमसे **प्रायते**-उपसर्ग प्रके रको ल **प्लायते** भग रहा है । परा उपसर्ग हो रको ल **पलायते पलायन्ते,पलायसे पलायेथे पलायध्वे, पलाये पलायावहे-महे** । यदि ऐसा निरयते दुरयते निकालता है दुत्कारता है । यहा भी रको ल क्यो नही ? अत कहा–निस् दुस्के सको रुत्व होकर र हुआ है उस रकी असिद्धि से रको ल नही होता । यदि ऐसा निलयते दुलयते ल कैसे ? अत कहा— **निर्दुरोस्तु** प्रादि गणमे रेफान्त निर्दुर्के रको ल होता ही है । यदि ऐसा प्रत्ययमे प्रति अय रेफको ल क्यो नही, तब कहा–अय धातुका नही है । प्रति पूर्वक इणसे अच् । गुण अय आदेश । यण् । **प्रत्यय** बना । कैयट मतमे प्लत्यय का अनभिधान है । अथ कथ । उत्पूर्वक अयधातुसे शतृ । अनुबन्धलोप । सप्तमी ङि । **उदयति** है । उदयकालमे विस्तृत किरण रूपी रस्सी । अनुदात्त इत् है शानच् होगा शतृ कैसे ? शानचा भाव्यमिति । माघ –अत इट किट कटी-यहापर इकार प्रश्लिष्ट–चिपका हैं वह अनुदात्तेत् नही,न शानच् । किन्तु शतृ । यद्वा उत्पूर्वक अयसे ति होने की निर्णायिका परिभाषा सूत्र–अनुदात्त इत् लक्षण आत्मनेपद अनित्य है । नित्यरूपसे **नही** होता । उदयतिमे नही हुआ । अनित्यतामे चक्षिङ् धातुमे ङित् पढना प्रमाण है । क्योकि इ इत् होने से अनुदात्तेत् लक्षण घट गया । ङित् भी कारण है । दो लक्षण क्यो दिया ? इकार इत पर्याप्त था ङित् लक्षण व्यर्थ होकर ज्ञापन प्रस्तुत किया कि **अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्** ङित् लक्षण आत्मनेपद आनित्य है । भाष्यमे ज्ञापन नही मिलता । **वयते** **नवयिष्ट** । लिट्मे वद (प्राप्त किया)न शसदद्वादिसे एत्व अभ्यासलोपका निषेध । **पयेते** । **पेये पेयाते पेयिरे** । **अपयिष्ट** । **चेये** । **मयते अमयिष्ट** । । **नयते** ले जाता है ।

दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । आदान ग्रहणम् । दयाञ्चक्रे । रय गतौ । ऊयी तन्तुसन्ताने । ऊयाञ्चक्रे । ४८४ पूयी विशरणे दुर्गन्धे च पूयते । पुपूये । क्नूयी शब्दे उन्दने च । चुक्नूये । क्ष्मायी विधूनने । चक्ष्माये । स्फायी ओप्याप्र-

---

प्रणयते । णोपदेश मानकर उपसर्गान् असमासेऽपि णत्व । एकाभिन्नैक कर्तृक वर्तमानक लिक प्रापण क्रिया । परोक्षानद्यतन भूतकालमे लिट् त-एश । नय नय ननय ए । अत एकहल्मध्ये अनादेशादे =एत्व अभ्यासलोप । नेये नेयाते । नेयिषे नेयाथे नयिढ्वे । नेये नेयिवहे नेयिमहे नयिता नयितारौ नयितार• । नयितासे । नयता नयेना नयन्ता । नयस्व नयेया नयध्वं नयै नयावहै नयामहै । एत ऐं । अनयत अनयेता अनयन्त । अनयथा•, नयेत नयेयाता नयेरन् । नयिषीष्ट अनयिष्ट ।४८१ दय धातुका दान गति प्राप्ति रक्षा हिंसा—प्राण वियोग, आदान स्वीकार पाच अर्थ फल साधक व्यापार । दयते दयेते दयन्ते । दये दयावहे दयामहे । हमसब कर्तामे वर्तमान दान गति रक्षा हिंसा ग्रहणकी क्रिया । वह परोक्ष अनद्यतन भूतकालमे हो लिट् । दयायाश्च सूत्रसे लिट् परे आम् । कृ लिट् अनुप्रयोग । आदि दयाचक्रे चक्राते चक्रिरे । दयाञ्चक्रिढ्वे त्वदभिन्नैककर्तृक अद्यभिन्न भूतकालिकः दानादि-अनुकूलव्यापार । श्व दयिता कल देगा, पायेगा रक्षा करेगा, लेगा । दयिष्यते । दयता दयै दयावहै दयामहै । हम सब लोगोमे रक्षा आदान दानआदि क्रिया हो, अदयिष्ट भूतकाल अदयिषाता अदयिषत अदयिष्ठा अदयिषाथा अदयिढ्व-ध्व । अदयिष । रयका गति अर्थ । अरयिष्ट । ऊयते सूतका सन्तान—बुनना क्रिया वर्तमानकाल । इजादि है अत परोक्ष तन्तुसन्तान क्रियाके कर्तामे लिट् । कृ अनुप्रयोग आदि । ऊयाचक्रे वस्त्र बुन चुका । ऊयिता आगामिभविष्यकालमे बुनेगा । औयत औयेयाता औयन्त । अनद्यतन भूतकालमे तन्तु सन्तान । औयिष्ट औयिषाता औयिषत । पूयका विशरण—विखर जाना, दुर्गन्धकी क्रिया जानकर धातुसंज्ञा लट् शप् पूयते पूयन्ते । त्व पूयसे अलग—अलग पड गये, या गन्धाते हो स्वेद से । पुपूये तुम कब अलग हुए थे । पूयिता पूयिष्यते । पूयताम् अपूयत पूयेत पूयेषीष्ट अपूयिष्ट । ४८५ ई इत् क्नूयका कू कू शब्द करना । उन्दे क्लेदने ओदा गीला होना । क्नूयते गीला या आवाज क्नूयको द्वित्व आदि । चुक्नूये-अप्रत्यक्ष बीते भूतकालमे कू कू या ओदा किया था । क्नूयता गीला करो । क्नूयेत कू कू करें चारा मिले । अक्नूयिष्ट ईकार इत्का फल

यी वृद्धौ । स्फायते । पस्फाये । प्यायते । (२७) **लिड्यङोश्च ६।१।२९॥** लिटि यङि च प्याय पीभाव स्यात। पुन प्रसङ्गविज्ञानात पीशब्दस्य द्वित्व। एरनेकाचः इनि यण्। पिप्ये। पिप्याते। पिप्यिरे। (२८) **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१॥** ऐभ्यश्चलेश्चिण्वा स्यादेकवचने तशब्दे परे (२९) **चिणो लुक् ६।४।१०४॥** चिण परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात्। अप्यायि अप्यायिष्ट। ताय् सन्तानपालनयो। सन्तान प्रबन्ध

श्वीदितो निष्ठायासे इट् निषेध। **क्षमायते** क्षमा करता है **अक्षमायिष्ट**। **स्फायते ओप्यायते** बढनेके अनुकूल वर्तमानकालिक क्रिया वास्ते प्रयत्नशील ओदितश्च निष्ठा तको नत्व करना। **स्फायते स्फायेते स्फायन्ते**। चैत्र। ई इत् का फल श्वीदित निष्ठामे इट् निषेध। ओ इत्का फल **पस्फाये पस्फायाते पस्फायिरे। अस्फायिष्ट। प्यायते। पप्याये** बढनेके अनुकूल क्रिया धातुका अर्थ। **अप्यायिष्ट** ग्रीष्मकालमे जल पिलाना पुण्य वर्धक। (२७) **लिट् यङ्** परे रहते प्यायको पी आदेश हो। द्वित्व को बाधकर। द्वन्द्वसे सप्तमी। प्याय पी सूत्र आया। प्याय लिट् त। दशामे लिटि धातो से द्वित्व प्राप्त उसे बाधकर लिडोश्चसे प्यायको पी हुआ जिसे द्वित्व यण् **पिप्ये पिप्याते**। शङ्का—परत्वात् पी आदेशे हुआ पुन द्वित्व कैसे ? क्योंकि **विप्रतिषेधे यद्बाधित तद्बाधितमव** जो एक वार रुका वह रुका ही रहेगा तब कहा—**पुन प्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम्** विप्रतिषेधे पर कार्यंते बाधा गया। द्वित्वकी पुनः प्रवृत्तिमे बाधक नहीं। पी आदेश पर है द्वित्व आदि होगे न दोष। **प्यायता अप्यायत प्यायिषीष्ट। अप्यायिष्ट**। वृद्धिक्रिया वाचक प्यायसे लुङ् भूतकालके कर्ता। आत्मनेपद अट् च्लिको सिच् प्राप्त—बाधक एव विधायक चिण् सूत्र—

(२८) **दीपजन**-च्ले चिण्की अनुवृत्ति। दीपी दीप्तौ। जनी प्रादुर्भावे बुध अवगमने, पूरी आप्यायने, आदि उक्त धातुओसे परे च्लि स्थाने चिण् हो विकल्प से, एकवचन त परे रहते। इससे चिण् अनुबन्ध लोप। (२९) चिण्से परे त शब्दका लुक् हो, चिणसे परे त शब्द ही हो सकता है। इट्। **अप्यायि** जब चिण् नहीं तब सिच् षत्व ष्टुत्व। **अप्यायिष्ट अप्यायिषातम् अप्यायिषत**। ४८९ ऋ इत् ताय धातुका सन्तान प्रबन्ध, पालन पोषणकी क्रिया **तायते तायेते तायन्ते**। पालनपोषण(तावत तोपत)का वर्तमानकाल। **तताये तताया‍ते ततायिरे। तायिता। तायता तायामहै**। हम सब प्रबन्ध पालन

तायते तताये। अतायि अतायिष्ट। शल चलनसवरणयो.। वल वल्ल सवरणे सञ्चरणे च। ववले। ववल्ले। मल मल्ल धारणे। मेले। ममल्ले। भल ४९६ भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु। बभले। बभल्ले। कल शब्दसंख्यानयो। कलते। चकले। कल्ल अव्यक्ते शब्दे। कल्लते। अशब्दे इति स्वामि, अशब्दस्तू ष्णींभाव इति च। तेवृ ५०० देवृ देवने। तितेवे। दिदेवे। षेवृ गेवृ ग्लेवृ पेवृ मेवृ म्लेवृ सेवने। 'परिनिविभ्य –' इति षत्व। परिषेवते। सिषेवे। अय सोपदेशोऽपीति न्यासकारादय। तत भाष्यविरुद्धम्। गेवते। जिगेवे। जिग्लेवे।

करें। अतायि-ताय धातुसे भूते लुङ्। त चिण् अट् चिणो लुक्, तका लो।। अतायि अतायिषाताम् अतायिषत, पक्षमे सिच्। स षत्व ष्टुत्व अतायिष्ट। शल् धातुका चलना ढकना स्वीकार करना सचरण–विहार अर्थ। ४९३ मल और मल्ल धातुका धारणानुकूलव्यापारः। मलते मल्लते माला। परोक्षे लिट् धरण क्रिया हो। एत्व अभ्यासलोपे। मेले मेलाते मेलिरे। (जयमाल राम उरमेली) मलिता। मलिष्यते मलताम् अमलत मलेत मलिषीष्ट। अमलिष्ट। वल्लते का परिभाषा=उपहास हिंसा आदान ग्रहण। ववम्ले कदा कब उपहास किया। ४९७ कल धातुका कल कलकी ध्वनि। कलते आवाज या गणनाकी वर्तमानकालकी क्रिया। य अप्रत्यक्ष भूतकालकी क्रिया कल कल ककल चकल तको ए। चकले चकलाते चकलिरे गणनाकर चुके। ध्वनि लगाये। कल्लते अस्पष्ट उच्चारण करता अकलिष्ट। स्वामीका मत है। तुष्णीभाव मौन रह तेवेते देवेते पीडा पहुचाना। लकारके अर्थ भेदसे पदार्थ भेद अदेष्ट अदेविषताम् अदेविषत। सेवते ग्लेवते मेवते आदिका सेवनानुकूलव्यापार। वर्तमानकालिक कर्तामे सेवा क्रिया पर उपसर्ग लगेगा। परिनिविभ्य षत्वे परिषेवते सब प्रकारका सेवक। आदेश प्रत्ययोसे न षत्व। सात्पदाद्यो के निषेधसे। सिषेवे सेवनार्थक सब धातुसे परोक्षे लिट् त। सिव ऐ, द्वित्व सिव सिव हलादिशेष। लघु उपधाको गुणा सिषेवे सिषेवाते सिषेविरे। सेविता सेविष्यते असेविष्ट। असेविष्ठा. असेविषम् असेविष्व असेविष्म। यह धातु षोपदेश है। यह न्यासका मत भाष्यविरोधी है। ग्लेवते अग्लेविष्ट। पेवते मेवते मिमेवे अमेविष्ट। म्लेवते मिम्लेवे अग्लेविष्ठ। किसीके मतमें शेवते क्लेवनेका भी सेवाक्रिया अर्थ। खेवते चिखेवे नौका खेता है। चिखेवे चिखेवाते चिखेविरे। खेविष्यते। खेवता खेवेता खेवन्ताम्। खेवस्व खेवेथा खेवध्वं। खेवै खेवावहै—महै। अखेवत जीवन बिता चुका,

पिपेवे। मेवने स्नेवने। शेवृ खेवृ क्लेवृ केवृ इत्येके। रेवृ प्लवगतौ। प्लवगति प्लुतगति। रेवने।

अथावत्यन्ता परस्मैपदिन। ५०८ मव्य बन्धने। सूर्क्ष्य ईर्क्ष्य ईर्ष्य ईर्ष्यार्थाः। हय गतौ। अहयीत्। यान्तत्वान्न वृद्धिः। शुच्य अभिषवे। अवयवाना शिथिलीकरण, सुराया सन्धान वा अभिषव स्नान च। शुशुच्य। चुच्य इत्येके। हर्य गतिकान्त्योः जहर्य। ५१५ अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु। अलति।

खेवेत अखेविष्ट अखेविषाताम् अखेविषत। परिवार चलाता है। निर्वाह करता है। रेवते प्लवगति कूद कूद कर चलना। रिरेवे अरेविष्ट उछल कर चल चुका।

अथ अवति अन्त तक परस्मैपदकी प्रक्रिया बताते है। अव रक्षणे तक। ५०८ मव्यका बन्धन=बाधनेकी क्रिया। मव्यति बाधता है। त्व मव्यसि अहं मव्यामि। कदा ममव्य=कब बाध दिया। मव्यतु अमव्यत्। सूर्क्ष्यादि धातु ईर्ष्या अर्थमे है। ईर्ष्यति सूर्क्ष्यति। ईर्ष्येत् ईर्ष्येताम् ईर्ष्येयुः ऐर्ष्यीत्। हयति चलता है हय। हयिष्यति हयतु हयेत्। अहयइमईत अहयीत् अहयिष्टाम अहयिषु। हमयन्तकी न वृद्धि। शुच्यका अभिषव अङ्गोका गीला होना, कूट कर निचोडना। सोमम अभिसुणोतिमे कूटकर निचोडना प्रमाणित। अथवा सुरा उत्सव सन्धान स्यादभिषव इत्यमर अथवा स्नानकी क्रिया। लता शुच्यति निश्चोनति सुरा सन्दधाति स्नाति वा। अशुच्चोत्। एव चुच्यति निचोडना, स्नान करना। हर्यका गमन।

५१५ अल् धातुका भूषण अलकार पर्याप्ति—पूर्णता वारण मना करने की क्रिया-अलति। एक कर्तामे वर्तमानकालिक अलकरण पूर्णता या निवारण। अलत अलन्ति। अलसि अलथ अलथ। अलामि अलाव अलाम। परोक्ष भूतकाल हो। अल-२ अअल आ अल। आल आलतु आलु आलिथ। परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक क्रिया। अलिता अलिष्यति। अलतु-चमकरो, पर्याप्त है सजाओ। अलतात् अलताम् अलन्तु। अलानि अलाव अलाम। आलत आलता आलन्। अद्यभिन्न भूतकालकी क्रिया। अलेत् अलेता अलेयुः। अल्यात्। आलीत् आलिष्टा आलिषु आली आलिष्ट आलिष्ट। आलिषम् आलिष्व आलिष्म। अलकरण पूर्णता निवारण वाचक अलधातुसे भूतकालिक क्रिया कर्ता अर्थ लुङ् ति। इतश्च इलोप। च्लि सिच्। वलादि आर्धधातुक परे इट्-आस्तिसिचो अपृक्ते ईट्। आट् वृद्धि।

आल। (२३३०) अतो ल्रान्तस्य ७।२।२।। ल्र इति लुप्तषष्ठीकम्। अत. समीपौ यौ ल्रौ तदन्तस्याङ्गस्य वृद्धि स्यात्परस्मैपदपरे सिचि। 'नेटि' इति निषेधस्य 'अतो हलादे' इति विकल्पस्य चापवादः। मा भवानालीत्। अथ स्वरितेदित्येके। तन्मते अलते इत्याद्यपि। ५१६ त्रिफला विशरणे। 'तृफल-' इत्येत्वम्। फेलतु फेलु। अफालीत्। मील श्मील स्मील ५२० क्ष्मील निमेषणे। निमेषण सङ्कोच। द्वितीयस्तालव्यादि। तृतीयो दन्त्यादि। पील

अल इ त इेत्। इट ईटि सलापे दीर्घ। अतो लान्तस्य सूत्रने परस्मैपदपरक सिच् परे अदन्त अङ्गका वृद्धि किया। यह सूत्र नेटिके निषेधका और अतो हलादलंघो क विकल्प वृद्धिका बाधक है। इसका उदाहरण मा भवान् अलीत्। माके योगमे अट् आट् नही होते। अत वृद्धि आवश्यक है। आलीत् आलिष्टाम् आलिषु,आलो आलिष्टम् आलिष्ट। आलिषम् आलिष्व. आलिष्म.। सूत्रमे अत. समोपौ क्यो पढा? अखोरीत् अमोलीत् यहा पर र ल क समोपमे आ इ है वृद्धि न हो। अत समीपौ पढा।(३०)ल्रान्त क्यो ? मा भवान् अतात् यहा वृद्धि न हो। किसीके मतमे अल् धातु स्वरितेत् है आत्मने पद। अलत,भो होगा।१६त्रित्,आइत् फल धातुका विशरण शिथिलीभाव पैदा होना अथ। आदिर्ञिटुडव से त्रि इत्का फल आत क्त,आ इत्काफल इट् निषेध फलति फलत. फलन्ति,फलसि फलथ. फलथ,फलामि फलाव फलाम.। फल होनेका परोक्ष अनद्यतन भूतकाल हो कतामे लिट् ति णल्। फल फल फफल फफाल फेलतु फेलु तृफल भजत्रपश्रस एत्व अभ्यास लोप। लिट् निमित्तक आदेश होनेसे प्राप्त नही था। फलिता फलिष्यति फलतु फलतात् फलता फलन्तु। फलानि फलाव फलाम। फलेत् फल्यात्। अफालीत् अफालिष्टाम् अफालिषु अफालो.। मील आदि धातुका निमेषण नेत्रसकोच=बन्द करनेकी क्रिया। मीलति मीलत मीलन्ति। आखे बन्द करते है। श्मीलिता अमीलोत् नेत्र दन्द क्रिया। मील धातुका प्रतिष्टम्भ रोधन—रोकनेकी क्रिया। पीलति सूर्य गोकर्ण। पिपील अपीलत्। णो न. नील धातुका वर्ण क्रिया-वस्त्रादिमे नील लगानेके अनुकूल व्यापार। वस्त्र नीलति चैत्र। एक कर्तामे नील लगानेकी वर्तमान क्रिया। वह परोक्षकाल मे हो चुकी हो, तब परोक्षे लिट् ति णल्। नील नील निनील निनीलतु. निनीलु:। स्व कञ्चकं निलिता कल कुर्तामे नील लगायेगा। नीलतु अनी-

प्रतिष्टम्भे। प्रतिष्टम्भो रोधनम्। णील वर्णे। निनील। शील समाधौ। शीलति। कील बन्धने। ५२५ कूल आवरणे। शूल रुजायां संघोषे च। तूल निष्कर्षे। निष्कर्षो निष्कोषणम् तच्चान्तर्गतस्य बहिर्निस्सारणम् तुतूल। पूल सघाते। मूल प्रतिष्ठायां। ५३० फल निष्पत्तौ। फेलतु। फेलु। चुल्ल भाव करणे। भावकरणमभिप्रायाविष्कार। फुल्ल विकसने। चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च। तिल गतौ। तेलति। तिल्ल इत्येके। तिल्लति। ५३५ वेल्ल चेलृ केल खेल क्ष्वेल वेल्ल चलने। पञ्च ऋदित। षष्ठो लोपश्च। पेल फेल शेल गतौ

लत् नीलेत्,अनीलीत् अनीलिष्टाम् अनीलिषु। अनेक कर्तामे नील लगाने की भूतकालिक क्रिया। शीलतिका समाधिमे मग्न होना। शिशील शीलिष्यति अशीलीत्। कील खीला ठोककर जकडमा बन्धन। कीलति चिकील कीलिता कीलतु (जकड दो) अकीलत् कीलेत्। अकीलीत् अकीलिष्टाम् अकीलिषु। अकीली अकीलिष्ट। अकीलिषम् अकीलिष्व-ष्म५२५ कल का आवरण ढककर मेडडाड घेरा। कूलति घेरता है आवृणोति कूलिष्यति घेरेगा, ढकेगा। अकूलीत। शूलका शरीरमे तीव्र कष्ट पाच डिग्री बुखार, सघोष-तेज चिल्लाना, अनावश्यक बकबकाना। शूलति शूलिष्यति अशूलीत्। तूलका निष्कोषण खोदकर दातके भीतर घुसेको बाहर निकालना। खरिका करना। तूलति वर्तमानकालिक निष्कोषण क्रिया। अनद्यतन भविष्य काल तूलिता तूलतु। तूलेत् तूलेता तुलेयु अतूलीत्। पूलका सघात गठर अटिका बाधनेकी क्रिया। पूलति पुआलकी पुरिया बाधना है। पलाल पुपूल। पुआलकी अटिया बाधा। पूलिता अपूलत् पूलेत। मूलका प्रतिष्ठा, धाक जमाना। अमूलीत्। ५३० फलकी निष्पत्ति सिद्धि फल पैदा होना या पकना क्रिया। फलति सिद्ध होना है या पकना है वृक्षो फलत। सर्षपा फलन्ति। वृक्षसे अभिन्न कर्तामे वर्तमानकालिक फलनेकी क्रिया। फल फल फफल फफाल तृफलभजत्रपश्च एत्व अभ्यास लोप। फेलतुः फेलु फेलिथ फेलयु। फफाल फेलिव फेलिम। फलिष्यति फलत् फल्यात् अफालीत्। चुल्लति अभिप्रायको प्रगट करता है। फुल्लका विकसित खिलनेकी क्रिया। फुल्लति फूल रहा है हवा भरनेसे। कर्पट्टिका या शष्कुली फुल्लति। चिल्लति, चिल्लाके शान्त या भाव सूचित करना। तिल तेलति गति सुविधाके लिये तेल देना। वेलति चेलति केलति खेलति वेल्लति इन धातुओका चलनेकी क्रिया अर्थ फलभेदसे भेद। वेलनामे रोगी बेलना वेल्लति अवेलत् अवेलीत्। केलति

षल् इत्येके । स्खल सञ्चलने । चस्खाल । अस्खालीत् । ५४५ खल सञ्चये । गल अदने । गलति । अगालीत् । षल गतौ । सलति । दल विशरणे । श्वल ५५० श्वल्ल आशुगमने । शश्वाल । अश्वालीत् । शश्वल्ल । अश्वाल्लीत् । खोलृ खोऋ गतिप्रतिघाते । खोलति । खोरति । धोऋ गतिचातुर्ये । धोरति । त्सर छद्मगतौ । तत्सार । अत्सारीत् । ५५५ क्मर हूर्छने । चक्मार । अभ्र वभ्र मभ्र चरगत्यर्थाः । चरतिर्भक्षणेऽपि । अभ्रति । आनभ्र । मा भवानभ्रीत् । अङ्गा-

---

अकेलीत् । विहार कर चुका । खेलति खेलिता खेलिष्यति खेलतु अखेलत् खेलेत् खिल्यात् अखेलीत् अखेलिष्यत् । वेल्लते वेला-लहर उठनेकी क्रिया । पाच ऋ इत् हैं । ५४१ पेल धातुका गति गमन क्रिया पेलति । फेलति फेल होना । फेलत विफलता । अपेलीत । गमन क्रिया । पेलिष्यति पेलेत् अपेलत् । स्खलति-लडखडाके चलना । स्खल स्खल शर्पूर्वा खय चस्खाल स्खलिष्यति स्खलतु अस्खलत् । अस्खालीत् अस्खालिष्टाम् अस्खालिषु । खल सचये । खलति=सचय करोति खलिहानमे ढर लगाता है । चखाल खलिता इकट्ठा करेगा । खलतु, खल, खलानि खलाव खलाम । अखालीत् भूतकालिक सग्रह क्रिया । ५४६ गलका अदन खाना चबाकर गलेके नीचे उतारना गलना । गलति गलेके नीचे उतरता है गलिष्यति । भूतकालके निगलने खानेकी क्रियाके कर्तामे लुङ्(अतो हलादे वृद्धि) अगालीत् अगालिष्टाम अगालिषु सलति । चलनेकी क्रिया । दलति पखुडिया अलग हो रही है या फूट रही है अवयवोका अलग होना विशरण है । दलिष्यति दलेत् अदालीत् । अदलीत । खलका शीघ्र गमन तेज दौडना । खोलति गतिशील क्रियाका प्रतिघात बन्द हुयेकी खोलना, खोलति खोल । खोलन्ति । चुखोल चुखोलतु । खोलिष्यति अखोलीत् कपाट, दरव जा खोला । खोरति क्रियाका प्रतिघात विपरीत आचरण । घोरति-अश्वगतिविशेष चातुर्य अघोरीत् । त्सरति कपट गति, कुटिल चाल छद्मना कपटेन गति-छद्म गति । परोक्ष बीता भूतकालमे कुटिल क्रिया हो चुकी हो कर्तामे लिट् आदि । तत्सार । अत्सरेत् । लुङ् ति सिच् अट् इट् ईट् इट ईटि सलोप दीर्घ । अत्सरीत अत्सारिष्टा अत्सारिषु । क्मरका हूर्छन कुटिलताकी क्रिया । क्मरति टेढा होता है । अक्मारीत् । अभ्रति बभ्रति आदि धातु गमन क्रिया अर्थमे । अभ्रति बादल जाते है । लिट्मे अभ्र अभ्र आअभ्र दो हल होनेसे नुट् आनभ्र । अभ्रतु बादल हो जाय । मा भवान् अभ्रीत् आप मेघवत् न चले । चर-का भक्षण भी

न्त्यरेफस्यात' समीपस्थाभावान्न वृद्धि । ५६० ष्ठिवु निरसने। 'ष्ठिवुक्लमु-' इति दीर्घ । ष्ठीवति । अस्य द्वितीयो वर्णस्थकारष्ठकारो वेति वृत्ति। तिष्ठेव तिष्ठिवतु । तिष्ठिवु । 'हलि च' इति दीर्घं ष्ठीव्यात् । ५६१ जि जये। प्रथमजन्तेषु पठितु युक्त । जय उत्कर्षप्राप्तिः। अकर्मकोऽयम। जयति। २३३१ सन्लिटोर्जे ७।३।५७।। जयते सन्लण्नि-मित्तो योऽभ्यासस्ततः परस्य कुत्वं स्यात्। जिगाय जिग्यतु जिग्यु। जिग-यिथ जिगेथ। जिगाय जिगय जिग्यिव जिग्यिम। जेता। जीयात्॥

अर्थ। चर गतिभक्षणयो। चरति पशु। चर रहा है चलता है। अचारीत् चरिष्यति चरतु अचरत्। चरेत् चरेता चरेयु। चरे चरेत चरेत चरेय चरेव चरेम। अङ्गके अन्तमे रेफ है अ के समीप नही अतः न वृद्धि।

५६० ष्ठीवति थूकता है निकालता (निरस होता) है ष्ठीवुक्लमु-इति दीर्घ। थ को ठ हुआ है। वृत्तिकार मतमे। ष्ठीवको द्वित्व होगा। पूर्वो-अभ्यास हलादिशेष। जहा शित्परे नही, वहा न दीर्घ। किन्तु लघूपधगुण। तिष्ठेव परोक्षानद्यतनभूतकालिक निरसन क्रिया। ष्ठीवनमे दीघ पृषोदरादि मानकर। अस्य=ष्ठिवु धातुका दूसरा अक्षर थ है। ष्टुत्वसे ठ हुआ। अतः षोपदेश बना। दन्त्य थकारादिपरक सादि है तब सत्व क्यो नही होता-पुब् धातुष्ठिवुके निषेधसे। लिट्मे शर्पूर्वाखय सूत्रसे शकार बकार हटेगे। ष्टुत्व गया, तिष्ठेव बना ठकार स्वाभाविक होगा, तब ष्ठीवतु अष्ठीवत्। हलि चसे दीर्घ। ५६१ जि धातुका विजयके अनुकूल क्रिया अर्थ है। इस धातुको अजन्त मे पढाना उचित था। अकर्मक है। उत्कर्ष=प्राप्तिके अनुकूल क्रिया वाचक जि धातुसे वर्तमानकालिक जयनशील कर्ता अर्थमे लट्-तिप् शप् जयति जयत जयन्ति। जयसि जयथ जयथ। जयामि जयाव जयाम हम सभी कर्तामे उत्कर्ष प्राप्तकी क्रिया। जिगाय। विजय व्यापारवाचक जि धातुमे परोक्षभूतकालके कर्तामे तिप् णल्। जि अ। द्वित्व जि जि अ। अचो ञ्णिति सूत्रमे णित्परे जिमे इको वृद्धि ऐ। आयादेश। जिजाय दशामे सूत्र-

(३१) सन्लिटो जि धातुसे परे सन् या लिट्के कारण हुआ अभ्यास उससे परे कुत्व हो अभ्यासमान् और (चजोःसे) कु आये। सन्लिटो की निमित्त सप्तमी अभ्यासमे जुडी। लिट्के कारण द्वित्व होकर अभ्याससज्ञक जिसे परे दूसरे जको कुत्व 'ग'। जिगाय। जिगि-अतुस्। कित्से गुण नही। यण् जिग्यतु। परोक्ष भूतकालमे विजय क्रियाका प्रयत्नवान् कर्ता। मध्यमपुरुष,

अजैषीत्। ५६२ जीव प्राणधारणे। जिजीव। पीव मीव तीव णीव स्थौल्ये। पिपीव मिमीव तितीव निनीव। क्षीवु क्षेवु निरसने। उर्वी ५७० तुर्वी थुर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसार्थाः। ऊर्वाञ्चकार। 'उपधायां च' इति दीर्घः। तुतूर्व।

एकवचन सिप् थल्। जि जि थ। यह अनिट् धातु है क्योंकि वलादि आर्धधातुक इट् प्राप्त था। एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्से निषेध किया। उस निषेधको बाधकर कृ सृ भृ आदि सूत्रनियमसे इट् प्राप्त—किन्तु (जेता) तास प्रत्ययमे इट् नही, अतः भारद्वाजके नियमसे विकल्प इट। कुत्व **जिगमिथ**। यदा न इट् किन्तु गुणे **जिगेथ जिग्यथुः। जिगाय जिगय**। णलुतमो वा उत्तमपुरुषके विकल्प णित्का फल वृद्धि। वरा मम परे आदि नियमसे इट् होगा। **जिग्यिव** जेता=आगामी भविष्यकालिक विजय कर्ता। **जेष्यति जेष्यसि जेष्यामि। जयतु जयतात् जयता जयन्तु। जयानि जयाव जयाम। अजयत् अजताम् अजयन्।** जीतने भूतकालमे उत्कर्ष प्राप्ति किया। **मजीयात्।** आशीर्लिङ्‌मे यासपरे अकृत्सार्वधातु-यो मे दीर्घ। **जीयात् जीयास्ता जीयासु। जीया जीयास्तम् जीयास्त। जीयासम् जीयास्व जीयास्म।** हम सब का उत्कर्ष विषयक आशीर्वादानुकूल व्यापार। भूतकालमे विजयकर्ता हो लुङ् ति, इतश्च इलोप। अट भिच। अजि मन्। अस्ति सिचो ईट्। मिचि वृद्धि, परस्मैपद हे। **अजैषीत् अजैष्टाम अजैषु। अजैषी अजैष्टम् अजैष्ट। अजैष्व अजैष्म।** ५६२ जीवका प्राणधारण जीनेकी क्रिया वर्तमान हो। **जीवति जीवत जीवन्ति जीवामि। जीविता जीविष्यति जीवतु जीव। जीवानि जीवाव जीवाम। अजीवीत् अजीविष्टाम अजीविषु। पीवतु** मीवतु नीवतु स्थौल्य=मोटा होनेकी क्रिया। **अपीवत्** मोटा हो गया। **पीविता मीविष्यति। तीवतु नीवेत्। निनीव निनीवतु। क्षीवतु नीरसन करोतु** निचोड दो। **चिक्षेव** निचोड चुका। **क्षेवति अक्षेवीत्।** ५७० **ऊर्वति** हिंसा करोति। उपधायाञ्चसे दीर्घ। इजादि मानकर आम् कृ लिट् आदि। हिंसा क्रिया। **तूर्वति** (हाथ पाव) तोडता है। **थूर्वति** पकडकर थूरना भी हिंसा है। **तुथूर्व तुथूर्वतु। तूर्विता थूर्विष्यति। तूर्वतु अथूर्वत्। तूर्वेत्। औवीत्। अतूर्वीत् अथूर्वीत्** अथूर्विष्टाम् अथूर्विषु तोड चुका, थूर दिया गुर्वे धातु उद्योग साहस परिश्रमके अनुकूल क्रियाके वर्तमानकालिक कर्तामे लट्। **गूर्वति** उद्योगकर्ता। द्वित्व आदि। **गूर्विष्यति अगूर्वत् अगूर्वीत् अगूर्विष्टाम्। अगूर्विषु।**

गुर्वी उद्यमने । गूर्वति । जुगूर्व । ५७५ मुर्वी बन्धने । पूर्व पर्व मर्व पूरणे । चर्व अदने । भर्व हिंसायां । कर्व खर्व गर्व दर्पे । अर्व ५८५ शर्व षर्व हिंसायाम् । आनर्व । शर्वति । सर्वति । इवि व्याप्तौ । इन्वति । इन्वाञ्चकार । पिवि मिवि ५९० णिवि सेचने । तृतीयो मूर्धन्योष्मादिरित्येके । सेवने इति । तरङ्गिण्याम् । पिन्वति । पिपिन्व । हिवि दिवि धिवि ५९४ जिवि प्रीणनार्थाः । हिन्वति । दिन्वति । (३२) धिन्विकृण्व्योर च ३।१।८०।। अनयोरकारो-

---

५७५ मर्वति-बन्धनानकूल क्रियानुकूल कृतिमान कर्ता । मूर्विता मूर्वेत् मूर्वेता मूर्वे वे बाधें । पूर्वति पर्वति मर्वति पूरा करना, उत्साह भरना । पूपूर्व परोक्षकालमे भर चुका । पूर्विष्यति पर्वत् । पूर्ण करो अपूर्वत् पर्वेत् पूर्व्यात् अपर्वीत् अपर्विषम् अपर्विष्व अपर्विष्म । ५७९ चर्व धातका चनाकर खाना अर्थ चर्वति चाबक । चना खाता है । ष्व चर्विता गोधम, लाञ्ज चर्विष्यति । भ मलायक चर्वतु । अचर्वत् अचर्वताम् अचर्वन् । चर्वाणि चर्वाव चर्वाम । पर्वाणि पर्वाव पर्वाम । हम सब पूरा करे । चबाये अचर्वीत् अचर्विषम् अचर्विष्व अचर्विष्म । मर्वति=हिंसति अमर्वीत हिंसा क्रिया । कर्वति खर्वति गर्वति घमण्ड करता है एक कर्तामे वर्तमानकालिक घमण्ड करनेकी क्रिया । चखर्व जगर्व । जगर्वतु जगर्वु गर्विता गर्विष्यति घमण्ड करेगा गर्विष्यामि गर्विष्यामि । खर्वतु खर्वाणि गर्वाणि गर्वाव गर्वाम अगर्वत् अहङ्कार कल किया था । गर्वेत् अखर्वीत् अगर्वीत व अगर्विष्ठा । अह अगर्विषम । अर्वति मर्वति हिंसा कष्ट देना । अर्वति कष्ट देने वाला । अर्वन्त अञ्चति मारने वालेको डरसे पजता है । जो हन्त है नष्ट् होगा । अर्व अर्व, आ व आनर्व । शशर्व शर्विता शर्वतु अशर्वीत् । ५८७ इ इन नुम सहित इन्वका व्याप्त होनेकी क्रिया इन्विता ऐन्वीन् । पिन्वति मिन्वति सीचना । तरङ्गिणीमे सेवानकूल व्यापार अर्थ । ५९१ इन् नुम सहित हिन्वति दिन्वति । धिनोति सबीको प्रसन्न करने अर्थमे हैं । प्रीणनानुकूलक्रिया वाचक धिन्व धातुसे वर्तमानकालिक सुखीकरण कर्ता अर्थमे लट् तिप् शप् सार्वधातुक । (२३३२) धिन्वि और कृण्वि इन दोनोके (व) अन्तको अकार आदेश हो, उ प्रत्ययभी । शप्के विषयमे अलुप्त प्रथमा । तनादि कृ-उ(कर्तरि) शप् सार्वधातुके (यक)। इससे त को 'अ' हुआ । धिन अ उति । दशामे अतो लोप । यद्यपि अकार उकार एक साथ हुए तथापि क्रमानुरोधसे अकार लोप हुआ । आर्धधातुक उपदेशकालमे धिन अदन्त है । यदि ऐसा सीधे वका भी

ऽन्तादेश स्यादुप्रत्ययश्च शब्विषये। 'अतो लोप' तस्य स्थानिवद्भावाल्लघूपधगुणो न। उ प्रत्ययस्य पित्सु गुण। धिनोति। धिनुत। धिन्वन्ति। (३३) **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** ६।४।१०७॥ असंयोगपूर्वो य प्रत्ययोकारस्तदन्तस्याङ्गस्य लोपो वा स्यात म्वोः परयोः। धिन्व धिनुव। धिन्म धिनुम। मिपि तु परत्वाद्गुण। धिनोमि। (३४) **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्**

लोप करते, अकार विधान क्यो? उत्तर दिया तस्य—इस अकारके स्थानिवत् भावसे उपधामे लघको गुण नही होता, धिन ति दशामे णित् होनेसे उको गुण हुआ, धिनोति प्रसन्नताके अनुकूल क्रियाके लिये प्रयत्नशील चैत्र। दो कर्ता खाकर या पाकर प्रसन्न हो। धिन्व तस्। वको अ और उ प्रत्यय। रु०वि० धिनुत अतो लोप। तस् ङित् है उकारको न गुण। धिन्व झि झोऽन्त उ प्रत्यय। वको अ धिन् अउ अन्ति। अकार लोप। उको यण् धिन्वति। वके स्थानिवत्से आर्धधातुक मानकर वलादि इट् क्यो नही? उकार अल् है अनल्विधौके निषेधसे। धिनोषि धिनुथ धिनुथ। धिनोमि धिनुव धिनुम। उकार लोपका सूत्र—

(२३३३) लोपश्च-सयोगसज्ञक अक्षर पूर्वमे न हो, ऐसा प्रत्ययका उकार वह हो अन्तमे ऐसे अङ्गके अन्त्य अल (उ) का लोप हो, म व परे। उतश्च प्रत्ययात्से उ आया। अङ्गमे विशेषण। तदन्तविधि। प्रत्यय सम्बन्धी उकार असयोग पूर्व पढनेका फल शक्नुम शक्नुव मे उका लोप न हो। उकारान्त उ कैसे? व्यवहारभावसे। इस सूत्रसे उका लोप। धिन्व धिन्म। मिप् उकार लोप क्यो नही? परत्वात् गुण होनेसे। परोक्ष अनद्यतन भूतकालमे सुख हो चुका हो तब तिप् णल् द्वित्वादि, दिधिन्व दिधिन्वतु। दिधिन्विथ दिधिन्विव प्रसन्न किया? धान्य भो प्रसन्न करता है (धान्यमपि प्रीणयति) धिन्विता धिन्वितारौ धिन्वितार। धिन्वितासि धिन्वितास्मि। धिन्विष्यति धिन्विष्यामि। धिनोतु देकर प्रसन्न करो। धिनुता धिन्वन्तु। धिनु धिन्व धातुसे आज्ञा प्रेरणा विषयक प्रसन्नता की क्रियाके कर्तामे म० पुरुष एकवचने सिप्। धिन्वि—सूत्रसे वको अ और उप्रत्यय। धिन् उ सिप् अमेह्यर्पिच्च-सिप्को हि आदेश। अपित्का फल ङित् होना, गुण निषेधके लिए।

(२३३४) उतश्च। चिणो लुक्से लुक्, अतो हे की अनुवृत्ति। सयोगसज्ञक पूर्वमे न हो ऐसे उकार प्रत्यय अङ्ग (धिन) उससे परे हिका लुक् (हुआ)

६।४।२०६।। असयोगपूर्वो य प्रत्ययो कारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक्स्यात्। धिनु। नित्यत्वादुकारलोपात्पूर्वमाट्। धिनवाव। धिनवाम। जिन्वतीत्यादि। ५९५ रिवि रवि धवि गत्यर्था। रिण्वति। रण्वति। धन्वति। कृवि हिंसाकरणयोश्च। चकाराद्गतौ। कृणोतीत्यादि धिनोतीवत्। अथ स्वादौ च। मव बन्धने। मवति। मेवतु। मेवु। अमवीत्=अमावीत्। ६०० अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसा

धिनु धिनुतात् धिनुत धिनुत उ०पु०का कर्ता सुखीकरण क्रियाकी प्रेरणाका विषय त्व आवा वयं हो तब धिन्व मिप् वस मस्। वकारको अ, उ प्रत्यय। अतो लोप। धिनु मि। दशामे मेर्नि लगा। आडुत्तमस्यसे आट प्राप्त हुआ दोनोको परत्वात् बाधकर लोपश्चास्यान्यतरस्या--सूत्रसे उकारलोप प्राप्त हुआ तब कहा—लोप अनित्य है, आट् और मेर्निः नित्य है। कृताकृतप्रसङ्गी विधि नित्य। उकारलोप हो या न हो। आट् और नि आदेश अवश्य होगा। उकारको गुण अवादेश। धिनवानि धिनवाव-हम सब प्रजाको प्रसन्न करें। वह क्रिया बीते भूतकालमे हो तब कर्तामे अनद्यतने लङ् ति इकारलोप। शप् का विषय है धिन्विकृण्व्यो से वको अ। उ प्रत्यय भी। गुण अकार लोप। अधिनोत अधिनुताम् अधिन्वन् अधिनो। जब प्रीणनार्थ आज्ञा प्रेरणा निमन्त्रण आमन्त्रण अधिष्टके अनुकूल कर्ता हो विधिलिङ्। अ उ विधान। धिनुयात धिनुयाता धिनु·· धिनुया। धिन्व्यात् धिन्व्यास्ता। लुङ् लकार के कर्तामे सुखीकरण क्रिया हो। अधिन्व इ स ई त् अधिन्वीत् अधिन्विष्टाम अधिन्विषु सभी लोगको प्रसन्न किये। अधिन्विष्यत्। जिन्वति प्रीणाति अजिन्वोत। ५९५ रिण्वति आदिका गच्छति। अरिण्वत्। कृण्व धातु का हिंसा प्राणवियोग उत्पत्ति अर्थ। चकारसे गति—गमन। कृणोति हिंसा उत्पादन गमन करता है। धिनोतिके समान प्रयोग साधनिका। कृण्वस वर्तमान हिंसा कर्तामे लट्। 'धिन्विकृण्व्यो' सूत्रसे वको उ आदेश अकार लोप, गुण। कृणोति कृणुत कृण्वन्ति, कृणोसि कृणोमि कृणुव कृण्व। अकृणोत् कृणुयात् अकृण्वीत् यह धातु स्वादिमेभी है। मवति बँधता है। परोक्षम बंध चुका। ममाव मेवतु· एत्व अभ्यास लोप। अमव इ स् ई त्। अतो हलादेर्लघो विकल्पावृद्धि। ६०० अवधातुका एकोनविंशति १९ अर्थ है रक्ष गमन कान्ति चमक कृति तृप्ति ज्ञान प्रवेश सुनना स्वाम्यर्थ ईश्वरभाव मागना क्रिया इच्छा दीप्ति प्राप्ति आलिङ्गन हिंसा प्राण वियोग आदान ग्रहण(भागे वृद्धौ ग्रहे वधे)

दानभागवृद्धिषु । अवति । आव । मा भवानवीत् । धावु गतिशुद्धयो । स्वरितेत् । धावति–धावते । दधाव–दधावे । अथोष्मान्ता आत्मनेपदिन । धुक्ष धिक्ष सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु । धुक्षते । दुधुक्षे । धिक्षते । दिधिक्षे । वृक्ष वरणे । वृक्षते । ववृक्षे । ६०५ शिक्ष विद्योपादाने । शिक्षते । भिक्ष भिक्षायामलाभे च ।

वोपदेवने गणना किया । इन क्रियाओके वर्तमानकालिक कर्तामे लट् आदि । अवति अवत. अवन्ति । अवसि अवथ अवथ । अवामि अवाव अवाम । रक्षा करता है । गमन श्रवण करता है । स्वामी बनता है । इच्छा अलिङ्गन ग्रहण करता है । बीतेभूतकालमे क्रियाए देखी गयी न हो, कर्तामे लिट आदि । अव अव (अत आदे) आ अव । आव आवतु आवु । आविथ आविता अविष्यति । रक्षा करेगा । तृप्त होगा, अवतु आलिङ्गन स्वीकार करो । अवानि अवाव अवाम । आवत् आवताम् आवन् । सुना, स्वामी बना, इच्छा किया । आवेत् आये प्रवेश करे । अव्यात्–प्रसन्न रहो, स्वीकार करो आवीत् आविष्टाम् आविषु । आवीः अविष्टम् अविष्ट,आविषम् आविष्व आविष्म । आविष्यत् । धावति धावत धावन्ति । स्वरित-उकारके इनसे दोनों पद ' कर्तृगामी क्रिया फल हो । अपने लिए दौडता हो, शुद्ध होना हो, तब आत्मनेपद । धावते धावेते धावन्ते । परोक्षमे दौड चुका हो लिट द्वित्वादि । धाव धाव, धधाव, दध व नको लिटन्त ऐश दधावे दधावाते दधाविरे । वे स्वार्थके लिए दौड पडे । शुद्ध हुए । धाविता आगामि भविष्यकालिक क्रिया । धवितासि धावितासे धाविताहे धावितास्वहे । धाविष्यते-ति । धावतु धावानि धावाव धावाम । धावै धावावहै—महै । अधावत् । धावेत धावेयाता धावेरन् धावेथा । धाविषीष्ट अधावीत् अधाविष्टे अधाविषाताम् अधाविषत ।

अथ उष्मान्ता । शल उष्माण । शस् षह ६०२ क ष मिलकर क्ष । धुक्ष आदिका सदीपन—उत्तेजित करना, क्लेशन–कष्ट देना, जीवन प्राण डालना । ये वर्तमान हो कर्तामे लट् आत्मनेपद । त शप् टे ए । धुक्षते धुक्षेते धुक्षन्ते । बढाता है कष्ट देता है । प्राण डालता है । धुक्षसे । परोक्षे लिट् त ए द्वित्व आदि । दुधुक्षे धुक्षिता धिक्षिष्यते उत्तेजित करेगा, नष्ट करेगा, प्राण भरेगा । धिक्षता धिक्षेता धिक्षन्ता धिक्षै धिक्षावहै–महै । अधिक्षत् अधिक्षिष्ट अधिक्षिषानाम् अधिक्षिषत । अधिक्षिष्ठा । वृक्षका वरण आच्छादन छाया क्रिया वृक्षते-छाया करना है । वृक्षताम् आवरण करो

भिक्षते । क्लेश अव्यक्तायां वाचि । बाधने इति दुर्गः । क्लेशते । चिक्लेशे । दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च । दक्षते । ददक्षे । दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु । दीक्षते । दिदीक्षे । ६१० ईक्ष दर्शने । ईक्षाञ्चक्रे । ईष गतिहिंसादर्शनेषु । ईषाञ्चक्रे । भाष व्यक्तायां वाचि । भाषते । वष स्नेहने । दन्त्योष्ठ्या-

अवृक्षीत । शिक्ष धातुका विद्याग्रहणकी क्रिया अर्थ शिक्षते=शिक्षेते शिक्षन्ते सीखता है । गुरुसे विद्या स्वीकारता है । शिक्षिष्यते शिक्षता शिक्षन्ताम् । अहं शिक्षै शिक्षावहै-महै, शिक्षेत शिक्षेयाताम् शिक्षेरन् । वे विद्या ग्रहण करे, सीखे । अहं शिक्षेय शिक्षिषीष्ट, अशिक्षिष्ट अशिक्षिषाताम् अहं अशिक्षिषम् मैने विद्या सीख ली । ६०६ भिक्ष धातुका भीख मागनेकी क्रिया अर्थ लाभ हो या नहो । या याच्ञा, लाभ, अलाभ तीन अर्थ । भिक्षते वामन-विभिक्षे भिक्षिता भिक्षताम् । अभिक्षत भिक्षेत अभिक्षिषीष्ट । अभिक्षिष्ट अभिक्षिषम् अहं । क्लेशका कष्ट सहन दशामे स्पष्ट न बोल पानेकी क्रिया अर्थ । दुर्ग आचार्य बाधन पीडा कष्ट कहते है । क्लेशते वर्तमान कालिक कष्टमे बोल नही पाता है । क्लेशिष्यते अक्लेशत । दक्ष धातुका वृद्धि बढना, शीघ्र तेज कामकी कुशलता । क्रियाके वर्तमानकालिक कर्तामे लट त । टे ए । । दक्षते बहुत कुशल सक्षम बधनशील है । द्वित्व आदि । लिटस्त एश्, ददक्षे । दक्षताम् बढो, शीघ्र करो । अदक्षिष्ट ।६०९दीक्ष धातुके पाच अर्थ-मुण्डन यज्ञ, यज्ञोपवीत नियमव्रत आदेशपालन आदिके अनुकूल व्यापार वाचक धातुसे लट् त शप् आदि । दीक्षते मुण्डन संस्कार, यज्ञादि करता है गुरुसमीप जानेके लिये यज्ञोपवीत पहनता है । नियमव्रत आज्ञाका पालन करता है । दीक्षेते दीक्षन्ते । दीक्षसे दीक्षे दीक्षावहे । परोक्ष दशामे क्रिया हो चुकी हो तब द्वित्व ह्रस्व आदि । दिदीक्षे । परश्व दीक्षिता दीक्षितासे दीक्षिताहे । दीक्ष्यता दीक्ष्येता दीक्ष्यन्ता, दीक्षै दीक्षावहै-महै । एत ऐ । सभी लोग यज्ञ करे, यज्ञोपवीत संस्कार करें, नियमव्रत लें, आदेश पालें । अदीक्षत दीक्षिषीष्ट अदीक्षिष्ट अदीक्षिषाताम् अदीक्षिषत । अदीक्षिष्ठा । ईक्षते दर्शन करता है । ईजादि आम् । ऐक्षिष्ट । ईष धातुका गमन हिंसा दर्शनजननी क्रिया । ईषते गुरोश्च हल से अ टाप्-ईषा, मनस ईषा मनीषा । ईष परस्मैपद । इष गतौ, इष इच्छायां तुदादि । इष आभीक्ष्ण्ये क्र्यादि ।

६१२ भाषते-स्पष्ट भाषण करता है । बभाषे कब भाषण किया । भाषिता कब भाषण करेगा । भाषताम् अहम् भाषै मै बोलू । अभाषत

दि । ववर्षे । मेषृ अन्विच्छायाम् । म्लेषृ इत्येके । अन्विच्छा अन्वेषणम् । जिगेषे । पेषृ प्रयत्ने । पेषते । जेषृ णेषृ एषृ प्रेषृ गतौ । जेषते । नेषते । एषाञ्चक्रे । पिप्रेष । ६२० रेषृ हेषृ ह्रेषृ अव्यक्तेशब्दे । आद्यो वृकशब्दे । ततो द्वौ अश्वशब्दे । रेषते । हेषते । ह्रेषते । कासृ शब्द कुत्सायाम् । कासाञ्चक्रे । भासृ दीप्तौ । बभासे । णासृ रासृ शब्दे । नासते । प्रणासते । णस कौटिल्ये । नसते । भ्यस भये । भ्यसते बभ्यसे । आङ शसि इच्छायाम् । आशसते । आशशसे । ६३० ग्रसु ग्लसु अदने । जग्रसे । जग्लसे । ईह चेष्टायाम् । ईहाञ्चक्रे । बहि महि वृद्धौ । बंहते बबंहे । मंहते । अहि गतौ । अंहते आनंहे । गर्ह गल्ह कुत्सायाम् । जगर्हे । जगल्हे । बर्ह बल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । दन्त्योष्ठचादी । केचित्तु पूर्वयोर्दन्त्योष्ठचादितामनयोरोष्ठचादिता चाहुः । प्लिह गतौ । पिप्लिहे । वेहृ जेहृ बाहृ प्रयत्ने । आद्यो दन्त्योष्ठचादि । अन्त्य

अभाषिषीष्ट अभाषिष्ट । वर्षते-गीला या चिक्कण होता है । मेषते अनुसधान खोजके अनुकूल क्रिया । अम्लेषीष्ट । एषते प्रेषते भोजनकी क्रिया । पिप्रेषे प्रेषिता प्रेषिष्यते प्रेषताम् । अप्रेषत । अप्रेषिष्ट । ६२० रेसते शृगाल । ह्रेसते अश्व घोडेकी आवाज । ह्रेषिष्यति अह्रेषिष्ट । ६२३ कास धातुकी निन्दा क्रिया अर्थ । कासते खामता है । कासनेकाचूसे आम लिट् परे । कासिष्यते । अकासत, अकासिष्ट । भासते चमकता है अभासिष्ट अभासिषाताम् अभासिषत । नासते णोपदेश है । रासते=अभच् प्रत्यय रासभ । तेज ध्वनि करता है । अरासिष्ट । नसते कुटिल चाल । नेसे नेसाते । भ्यसते डरता है । ६२९ आङ् पूर्वक शस् धातुकी इच्छा जननी क्रिया । आशसते-इच्छा व्यक्त करता है । शसु स्तुतौ परस्मैपदी है आशसिष्यति आशसताम् इच्छा प्रकट करो । आशसिष्ट आशशिषाताम् । ग्रसते ग्लसते खाना खाने' लीलने निगलने अथमे । ग्रसताम् अग्लसत अग्रासिष्ट । उ इत्का फल उदितो वा से विकल्प इट् । ग्रसित्वा ग्रस्त्वा । यस्य विभाषा नेट् ग्रस्त । ईहते चेष्टा प्रयास क्रिया । ईहिष्यति प्रयत्न करेगा । (इदितो नुम) वंहते बढना है । मंहते अमंहिष्ट । अंहते गच्छति । गर्हते निन्दित भ्रष्ट होता है । जगर्हे परोक्षकाल । गर्हिता अगर्हिष्ट । वर्हते प्रज्ञान हो रहा है अवर्हिष्ट । वर्ह आदिका परिभाषण उपहास हिंसा प्राण वियोग आच्छादन आवरण । वर्हते ढँकता है प्लीहते वेहते जेहते बाहते प्रयत्न करनेकी क्रिया । फोटा युवती-सूत्रमे वेहद्गर्भोपघातिनी गर्भ

केवलोष्ठ्यादि । उभावप्योष्ठ्यादी इत्येके । दन्त्योष्ठ्यादी इत्यपरे । जेहृतिर्गत्यर्थोऽपि । बबाहे । द्राहृ निद्राक्षये । निक्षेपे इत्येके । ६४७ काशृ दीप्तौ । चकाशे । ६४८ ऊह वितर्के । ऊहाञ्चक्रे । गाहू विलोडने । गाहते । जगाहे । जगाहिषे–जघाक्षे । जगाहिढ्वे । जगाहिध्वे । जघाढ्वे । गाहिता । (२३३५ ढो ढे लोपः ८।३।१३।। ढस्य लोपः स्यात् ढे परे । गाढा । गाहिष्यते घाक्ष्य

गिरानेका प्रयत्न करने वाली । जेहृ क्रान्तिकारी प्रयत्न जेहाद छेडना जेहृते गति अर्थमे भी है । वाहृते दन्त्योष्ठ आदि है अनुदात्तलक्षण आत्मनेपद अनित्य मे प्रमाण । बवाह रक्त पुरुषा॰ ततो जाता सहस्रश । धातु अनेकार्थक है,प्रस्रवणार्थक होनेमे बाधा, नही ढोनेका प्रयत्न । वाहिता अवाहिष्ट । ६४६ द्राहृते निद्रा नष्ट करता है दद्राहे अद्राहिष्ट । नीद नष्ट किया । काशते प्रकाशानुकूल व्यपार । काशिता काशिष्यते काशताम् । अह काशे काशावहे । काशेत अकाशिष्ट ।

६४८ ऊह धातुका वितर्क (सयुक्तिकनिर्णयो वितर्क) प्रमाणसे निर्णय करना अर्थ । ऊहते-एककर्तामे वतमानकालिक तर्कसे अर्थ निर्णयकी क्रिया ऊहेते ऊहन्ते । अनुक्तमप्यूहति पंडितो जन मे परस्मैपद कैसे ? अनुदात्तेत लक्षण आत्मनेपदकी अनित्यतासे । 'इजादि' होनेसे आम कृ लिट । ऊहिता औहिष्ट औहिषाताम् । गाह धातुका विलोडन मन्थन । प्रतीघात क्रिया वाचक गाह धातुसे वर्तमाने कर्तरि लट् त । एत्व गाहते गाहेते गाहन्ते । जगाहे बीते भूतकालमे विलोडन मन्थन क्रिया समाप्त हो । परोक्षे लिट् । आत्मनेपद प्रथमपुरुष एकवचन । तको ऐश् । द्वित्वादि गाह गाह, गगाह । कुहोश्चु । जगाहे जगाहाते जगाहिरे । जगाहिषे थास से । षत्व । यहा स्वरतिसूतिसूत्रसे ऊदित् जानकर इट् विकल्प । जब न इट् । जगाहसे दशामे हको होढ़ से ढ । जगाढ से एकाचो बशो— सूत्रसे भष भावसे ग को घ जघाढसे षढो कःसे ढको क, सको षत्व । कष सयोगे क्ष । जगाक्षे जगाहाथे जगाहिढ्वे (ध्वे) जब इट् होगा विभाषा इट सूत्रसे धको ढ । जब इट् नही जगाहध्वे । हको होढ । धको ष्टुत्व ढ, गको भष भावसे घ । ढोढे लोप । पहले ढ़का लोप । जघाढ्वे जगाहे जगाहिवहे–महे । (२३३५) ढोढे–ढका लोप हो ढ परे । ढे क्यो पढा ? ऊढ मे लोप न हो । विलोडनार्थक गाह धातु से आगामी भविष्यकालिक मन्थनकर्ता अर्थमें लुट त डा इट् आदि गाहिता । जब इट नही गाहता दशामे हो ढ झषस्तथोर्धोऽधः । त को ध । उसको ष्टुत्व

ते । गाहिषीष्ट–घाक्षीष्ट । अगाहिष्ट अगाढ । अघाक्षाताम् । अघाक्षत । अगाढ्वम् । अघाक्षि । गृहू ग्रहणे । गर्हते । जगृहे । 'ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन' जगृहिषे–जघृक्षे । जघृढ्वे । गर्हिता गर्ढा गर्हिष्यते-घर्क्ष्यते । गर्हिषीष्ट-घृक्षीष्ट । लुङि अगर्हिष्ट । इडभावे (३६) शल

ढ गाढ्ढा दशामे पूर्व ढका लोप । गाढा गाढारौ गाढारः । ढका लोप व्यर्थ न हो, अत ष्टुत्व असिद्ध नहीं होता । गाहितासि गाहितास्थ गाहितास्थ भविष्यकालमे मन्थन क्रिया हो, गाह इट् स्य ते । गाहिष्यते । जब न इट् तब हको ढ, गको भष घ, ढ–क, स-ष घाक्ष्यते घाक्ष्येते विलोडन करेंगे । गाहता गाहस्व । अहं गाहै । अगाहत । गाहेत । गाहेव हमलोग विलोडन करें आशीर्लिङ् गाह इस ईत । षत्व ष्टुत्व गाहिषीष्ट जब न इट् घाक्षीष्ट । होढ ग–घ ढ–क, स–ष भूतकालमे मन्थन हो चुका हो कर्तरि लुङ् । सिच् इट अट् षत्व टुत्व । अगाहिष्ट अगाहिषाता अगाहिषत । जब न इट । अगाह सत दशामे झलो झलि स लोप । ह–ढ त–ध ष्टुत्व ढ ढोढे लोप, । अगाढ अघाक्षाता अगाह स आता, ढघकष अगाक्षत । ध्व परे ढ घ ष्टुत्व ढलोपके पहले भष्भाव । अघाक्षवहि अगाक्षमहि । अगाहिष्यत अघाक्ष्यत । ६५० गृहू धातुका गर्हण अत्यन्त निन्दित किया अर्थ । ऊदित । गर्हते लट त शप । लघूपध गुण । गर्हाते गर्हन्ते । बहुत निन्दा करते है द्वित्व । गृह गृह जगृह ए । जगृहे असयोगात् कितसे गुण नहीं कित्को परत्वात गुण न बाधते, ऋदुपधेभ्यो लिट कित्व गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन । पूर्वविप्रतिषेधसे कित बना रहेगा, जगृहाते जगृहिरे । घृणित व्यवहार परोक्षमे किया । जब थास से और ऊदित् इट् षत्व, जगृहिषे अभ्यासमे उरत्से अत्व । हलादिशेषादि मान ले । जब न इट तब ह–ढ ग–घ ढ–क श–ष जघृक्षे । ध्व परे जगृहिध्वे इट् अभावे होढः, भष–ष्टुत्व ढलोप । गर्हिता अनद्यतन भविष्यकालमें निन्दा करेगा । गर्हितासि गर्हितास्मि जब न इट् । गुणेरपरे । गर्ह ता घ ढ ढलोप । गर्ढा गर्ढारौ गर्ढारः । स्य इट् होनेपर गर्हिष्यते । जब न इट् । ह ढ घ आदि । आशीर्लिङ् सीयुट् सुट् आदि घृक्षीष्ट घृक्षीयास्ता घृक्षीरन् । लिङ् सिचोसे कित्, गुणनिषेध । गर्हणार्थवाचक गृह धातो. भूतकाल कर्तरि लुङ् त सिच् इट्अट् गुण रपर । अगर्हिष्ट अगर्हिषाता अगर्हिषत । जब न इट् । अगृह च्लिको क्स विधायक सूत्र—

- (२३३६) शल इक्–इ उ ऋ लृ उपधा (अन्त्य अलके पूर्वमे) हो ऐसे

इगुपधादनिट क्सः ३।१।४५॥ इगुपधो य शलन्तस्तस्मादनिट च्ले क्सादेश स्यात् । अघृक्षत । (३७) **क्सस्याचि ७।३।७२॥** अजादौ तङि क्सस्य लोप स्यात् । 'अलोऽन्त्यस्य' । अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त । ग्लह च । ग्लहते । ६५२ घुषि कान्तिकरणे घुषते । जुघुषे । केचित् घष इत्यदुग्ध पठन्ति ।

अथार्हत्यन्ता परस्मैपदिन घुषिर् अविशब्दने । विशब्दन प्रतिज्ञानम्, ततोऽन्यस्मिन्नर्थ इत्येके । शब्दे इत्यन्ये पेठुः । घोषति जुघोष । घोषिता । इरित्वादङ्वा । अघुषत्-अघोषीत् । अक्षू व्याप्तौ । (३८) **अक्षोऽन्यतरस्याम् ३।१।७५॥** अक्षो वा श्नुप्रत्ययः स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप ।

शलन्त—श स ष ह अन्त धातुसे इट् न हुआ हो च्लिको क्स आदेश हो, सिच्को बाधकर । अदन्त स शेष । क इत् । कित्से ऋको गुण नही । ह—ढ ग—घ—ढ क । **अघृक्षत** । यहा आताके आको आतोङित-से इय आदेश प्राप्त ।(३७) क्स के स लोप हो अजादि आत्मनेपद परे । इस सूत्रसे क्स का लोप, परन्तु षष्ठी देखकर अन्त्य अन् अकारका लोप हुआ । अकारसे परे नही, आतोङिनसे इय भी नही । **अघृक्षाता** । झोऽन्त । ग्लह धातु भी निन्दा अर्थमे । **ग्लहते** वर्तमानकालिक घृणानुकूला क्रिया । ६५२ इदित् नुम सहित घुषते । सेट् धातु है । चमकनेकी क्रिया, अथ अर्हति अन्त उष्मान्त-श ष सह अन्त धातु तक परस्मैपद प्रक्रिया चलेगी । इर इत् घुष धातुका बार-बार घोषने रटनेकी क्रिया । विशब्दन का प्रतिज्ञा वेदा प्रमाणकी तरह स्वीकार । उससे अन्य अर्थ जिसमे कोई प्रतिज्ञा न हो उसकी क्रिया । किसीके मतमे रटनेकी ध्वनि अर्थ, घोषति एककर्तृकवर्तमानकालिक घोषणानुकूलव्यापार. । परोक्षे लिट्मे घुषको द्वि व आदि, **जुघोष जुघुषतु जुघुषु जुघोषिथ** । **घोषिष्यति घोषतु** । **घोषानि घोषाव घोषाम** । **अघोषत** । भूतकालमे इरितो वा सूत्रसे च्लिको अङ् सिच् को बाधकर । ङित् होनेसे गुण नही । **अघुषत् अघुषता अघुषन्** । जब अङ नहीं किन्तु सिच् तब इट ईटि । हलन्तलक्षण वृद्धिका नेटि—निषेध । **अघोषीत् अघोषिष्टा अघोषिषु** । ऊ इत् अक्ष धातुका व्याप्ति व्यापक होना वाचक वर्तमाने लट् । अक्ष ति । शप् बाधकर । (३८) **अक्षो**=पञ्चमी है स्वादिभ्यःसे श्नु, कर्तरि (शप्) सार्वधातुके (यक्) आदिकी अनुवृत्ति । अक्ष से श्नुप्रत्यय हो कर्तामे, सार्वधातुक परे । पक्षमे शप् भी । इससे श्नु हुआ । सार्वधातुक परे गुण जी पित् है ङित् नही होता । णत्व—**अक्ष्णोति** । तस ङित् है गुणनिषेध हुआ । **अक्ष्णुवन्ति** । झिको अन्त, श्नु प्रत्ययान्त है अच्परे ऊवङ्

अक्ष्णोति । अक्ष्णुतः । अक्ष्णुवन्ति । अक्षति अक्षतः अक्षन्ति । आनक्ष । आन-क्षिथ-आनष्ठ । अक्षिता अष्टा । अक्षिष्यति । 'स्कोः' इति कलोपः । 'षढोः क सि' अक्ष्यति । अक्ष्णोतु । अक्ष्णुहि । अक्ष्णवानि । आक्ष्णोत् आक्ष्णवम् । अक्ष्णुयात् । अक्ष्णुयुः । अक्ष्यात् । ऊदित्वाद्वेट् । नेटि मा भवानक्षीत् । अक्षिष्टाम् । अक्षिषुः । इडभावे तु मा भवानाक्षीत् । आष्टाम् । आक्षुः । ६५५ तक्ष त्वक्षू

हुआ । पक्षमे शप् अक्षति व्याप्त होता है । अक्ष्णोसि, अक्ष्णुथः । आक्ष्णुथ आक्ष्णोमि । लिट्मे द्वित्वादि । अत आदेः दीर्घ दो हल् जानकर नुम । आनक्षिथ । उदित् होनेसे वलादि आर्धधातुकको इट् हुआ । जब न इट् आनक्ष त स्कोः सयोगाद्यो से कका लोप । थको ष्टुत्व ठ । आनष्ठ । अनद्यतन भविष्य-कालिक व्याप्ति क्रियाके कर्तामे लुट् ति तास डा इट् अक्षिता अक्षितारौ इट् अभावमे स्कोः से कका लोप । ताके तको ट । अष्टा अष्टारौ अष्टारः अष्टासि अष्टास्मि । भविष्य अर्थे लिट् । इट् अभावपक्षमे अक्ष स्य ति । स्कोः से क लोप, कसे परे खको क हुआ स परे । सको षत्व । अक्षति व्याप्त होना । आज्ञा प्रेरणाका विषय बने तब लोट् शपका विषय रहे । अक्षोऽन्यत-रस्यामे श्नु, गुण आदि होगा । अक्ष्णुताम् अक्ष्णुवन्तु अक्ष्णुहि । सिको हि हुआ । परन्तु संयोग पूर्वमे है उतश्च प्रत्ययात्सूत्रसे उका लुक् नही । हि अपित् है ङित हुआ (गुण न होना फल) अक्ष्णुतम अक्ष्णुत अक्ष्णवानि । अक्ष णु अ नि मेनि आट पित् है, अङित् न गुण निषेध किन्तु गुणे अवादेशे, अक्ष्वणाव अक्षणवाम जब शप् होगा । अक्षतु अक्षन्तु अक्षानि । जब व्याप्त क्रिया अनद्यतन भूतकालमे होगी कर्तामे लङ् श्नु आट णत्व गुण । आक्ष्णोत् । आक्ष्णुताम् आक्ष्णुवन् । आक्ष्णोः आक्ष्णुतम् आक्ष्णुत, मिप्को अम् श्नुको गुणादि । आक्ष्णुव आक्ष्णुम । लिङमे श्नु यासुटके ङित्से गुण निषेध । झि को जुस् होनेपर यास्के सका लोप । लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । उस्य पदान्तात्से पररूप अक्ष्णुयाः —यात=यात । याम-याव याम । शप् पक्षमे अक्षेत् । अक्ष्यात् आशीर्लिङ आर्धधातुक है । न श्नुः, न शप । लुङलकारमें ऊदित् विकल्प इट् । पक्षमे हलन्तलक्षणा वृद्धिका नेटिसे निषेध माके योगमे अट आट नही होते । जहा न आट तहा मा का योग । जब ईट तब आक्षीत्-अक्ष इ स ईत् दशामे पक्षे वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धि । क का लोप । स्कोः सयोगाद्योः सूत्रसे । षको क षढोः क सि अक्षस ताम् दशामे हलन्त देखकर वृद्धि झलो झलि सका लोप । स्कोः क लोप । त—ट आक्षोः आष्टम् आष्ट । आक्षम् आक्ष्व आक्ष्म ।

तनूकरणे। (३९) तनूकरणे न० ३।१।७६॥ श्नु स्याद्वा शब्विषये। तक्ष्णोति–तक्षति वा काष्ठम। ततक्षिथ-ततष्ठ। अतक्षीत्। अतक्षिष्टाम्। अताक्षीत्। अताष्टाम्। तनूकरणे किं? वाग्भि सन्तक्षति। भर्त्संयतीत्यर्थ। उक्ष सेचने। उक्षाञ्चकार। रक्ष पालने। णिक्ष चुम्बने। प्रणिक्षति। ६६० त्रक्ष ष्ट्रक्ष णक्ष गतौ। त्रक्षति। स्त्रक्षति। नक्षति। वक्ष रोषे। सघाते इत्येके। मृक्ष सघाते। म्रक्ष इत्येके। तक्ष त्वचने। त्वचन सवरण त्वचो ग्रहण च। पक्ष परिग्रहे इत्येके। सूर्क्ष आदरे। सुसूर्क्ष। अनादरे इति तु स्वामिप्रक्रोऽपपाठ। 'अवज्ञावहेलनमसूर्क्षणम्' इत्यमर। काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम। द्राक्षि

आक्षिष्यत आक्ष्यत्। ६५५ अकार इत नक्षका तनूकरण=छील छाल कर पतला करना, स्थूलस्य काष्ठादे कतिपयस्य अवयवस्य अपनयनेन क्षीणीकरण,

(३९) तनूकरण अर्थमें तक्ष धातुसे श्नु हो, विकल्पसे, शप्के विषयमे। जब श्नु णत्व गुण, तक्ष्णोति तक्ष्णुत. जब शप् हुआ, तक्षति तक्षत तक्षन्ति। पल्लाको छीलकर मेज बनाता है। तक्षा बढई लकडीका कलाकार, त्व काष्ठ तक्षसि, अह शाखा तक्षामि, बीते भूतकालमे कुर्सी टेबुल तैयार हो परोक्षे लिट ततक्ष ततक्षतु ततक्षु ततक्षिथ। थलपरे इट विकल्प ऊदित जानकर तक्षिता। जब न इट क्षमे कका लोप, स्को से। ष्टुत्व। तष्टा तष्टारौ तष्टार। तष्टास्मि। तक्षिष्यति तक्ष्यति, तक्ष्णोतु तक्षतु अतक्ष्णोत् अतक्षत अतक्षीत् अताक्षीत्। इट विकल्प भेदक। छील छाल किया। सूत्रमे तनूकरण क्यो कहा, वाणीसे छीलता है यहा घबडाना अर्थ, शरीर पतला होना नही। सतक्षति का फटकार अर्थ। इसी प्रकार त्वक्षति त्वक्षत त्वक्षन्ति छीलता है। अत्वक्षीत् अत्वाक्षीत् सीचता है। इजादि मानकर आम।६५८ रक्षति पालन रक्षा। ररक्ष ररक्षतु' रक्षिता रक्षिष्यति। रक्षतु रक्षानि रक्षाव रक्षाम। अरक्षत्। अरक्षीत्। निरक्षति चूमता है। उपसर्गादसमासेऽपि णत्व। नक्ष ष्ट्रक्ष णक्ष गति अर्थमे नक्षति जाता है। वक्ष धातुका रोप क्रोध की क्रिया। वक्षति रुष्ट होता है। वक्षिता अवक्षत् अवाक्षीत्। मृक्षति एकत्रित होना। तक्षति छीलता है छाली उतारता है ततक्ष तक्षिष्यति अताक्षीत् अताष्टाम् अताक्षु बोकला छील चुका। पक्षका भी सवरण स्वीकार पक्षपातके अनुकूल क्रिया पक्षति पपक्ष पक्ष लिया। पक्षतु अपक्षत् अपाक्षीत् सूर्क्षति आदर करना है। अनादर अर्थमे पाठ अनुचित। अवज्ञा अवहेलनम् असूर्क्षणम् अमरकोषसे विरोध होगा। काङ्क्षा इच्छा काङ्क्षति वाङ्क्षति

ध्राक्षि ६७२ ध्वाक्षि घोरवासिते च। चूष पाने। चुचूष। तूष तुष्टौ। पूष वृद्धौ। मूष स्तेये। लूष रूष भूषायाम् शूष प्रसवे। प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम्। तालव्योष्मादि। ६८० यूष हिंसायाम्। जूष च। भूष अलङ्कारे। भूषति। ऊष रुजायाम्। ऊषाञ्चकार ईष उञ्छे। कष खष शिष जष झष शष वष मष रुष रिष हिंसार्थाः। तृतीयषष्ठौ तालव्योष्मादी। सप्तमो दन्त्योष्ठ्यादि। चकाष, चखाष। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। क्स अशिक्षत्। अशेक्ष्यत्। जेषतु। जझषतु। शेषतु। ववषतु। मेषतु। (२३४०) तीषसहलुभरुषरिष ७।२।४८॥ (इच्छत्यादेः परस्य ता देरार्धधातुकस्तेड्वा स्यात्। रोषिता रोष्टा।

इच्छा करता है। चकाङ्क्ष अकाङ्क्षीत् अवाङ्क्षीत् इच्छा किया। द्राङ्क्षति ध्वाङ्क्षति। ध्वाङ्क्ष काक। द्राक्षा—गुरोश्च हलः से अप्रत्यय। घोर वासित—कठोर ध्वनि। वासृ शब्दे काङ्क्षा—इच्छा अर्थ भी। अद्राङ्क्षीत् अध्वाङ्क्षीत् ६७३ चूषति—लेमन चूसता है। चूषतः चूषन्ति। यदि चूस चुका हो परोक्षे लिट। चूचुष चुचूषतु। चूषिता चूषिष्यति चूषतु अचूषीत्। तूषति सन्तुष्टि प्रसन्नता है। अतूषीत्। पूषति बढना पुष्ट होता है। पुपूष पूषिता अपूषत् पूषेत्। मूषति मूषकः चोरी करता। भूषिता अभूषत्। लूषति अलङ्कृत करता है। भूष अलकारे चुरादिमे भी है। भूषति भूषत भूषन्ति। बुभूष भूषिता अभूषत् अभूषीत्। यूषति हिंसा करता है। ऊषति रोगी होता है। ईषति। उञ्छति कण-कण चुनता है। गुरोश्च हलः अ। ईषा लाङ्गलदण्डः। कषति झषति भषति आदि धातु हिंसा अर्थमे। चकाष हिंसा किया। शेषति अनिट् धातु है। क्रादि नियमसे वसि मसि परे नित्य इट। यदि अजन्त अकारवान् होता विकल्प इट हो जाता है। शिशेषिथ शिशिषिव। लुङ्लकारमे शल अन्त देखकर च्लिको क्स। कित्से गुण निषेध। षढो क षत्व अशिक्षत् अशिक्षाता अशिक्षन्। ववषतुः न शश ददवादि सूत्रसे एत्व अभ्यासलोप नही। ममाष मेषतुः।

रोषति रोष करना हिंसा है। मनमे ग्लानिसे। रुरोष रुरुषतु रुरुषु रुरोषिथ रुरुषिम। थल् वस् मस् परे क्रादि नियमसे इट। जब हिंसा कष्ट अनुभूति आगामी भविष्यकालमे हो। लुट् तास् ति डा आदि। गुण रोषता। इट विकल्पका सूत्र—

(२३४०) ति-ईष सह लुभ रुष रिष धातुसे परे तकारादि आर्धधातुक ताको इट विकल्प हो। इस सूत्रमे आर्धधातुकस्यसे इट, स्वरतिसूतिसे वा।

रोषिष्यति । रेषिता रेष्टा । रेषिष्यति । ६९५ भष भर्त्सने । इह भर्त्सन श्व-रव । भषति बभाष । उष दाहे । ओषति (४१) उषविदजागृभ्योऽन्यतर स्याम् ३।१।३८।। एभ्यो लिटयाम्वा स्यात् । ओषाञ्चकार । उवोष ऊषतु उवोषिथ ॥ जिषु विषु मिषु सेचने, जिजेष । क्रादिनियमादिट् । विवेषिथ विवेषिव । वेष्टा । वेक्ष्यति । अविक्षत् ।७०० पुष्ट पुष्टौ । पोषति पोषिता पोषिष्यति । अपोषीत् । अनिट्केषु पुष्य इति श्यना निर्देशादय सेट्, अतो न क्सः । अङविधौ दैवादिकस्य ग्रहणान्नाङ् । श्रिषु श्लिषु प्रुषु प्लुषु दाहे । श्रेषति ।

ति सप्तमीसे तदादिविधि द्वन्द्वसे पञ्चमी । ईषु इच्छाया तुदादि । इष् गतौ, आभीक्ष्ण्ये दिवादिको छोडकर शेषको इट् रोषिता । न इट किन्तु ष्टुत्व रोष्टा । रोषतु अरोषत् रोषेत अरोषीत् । रेषति हिनस्ति, रिरेष । इट रेषिता (न इट) रेष्टा अरेषीत् । भषति कुत्तेकी आवाज भूकना अभाषीत् । कुत्ता रोया । ६९६ उष् धातुका दाह दग्ध करना जलानेकी क्रिया-ओषति रोगान् इति औषधी । दाहार्थक उष धातो- वर्तमानकालिक दाह क्रिया के कर्तामे वतमाने लट् ति । कर्तरि शप् । पुगन्तलघूपधस्य गुण । ओषत ओषन्ति । बीते भूतकालमे दग्ध हो, परोक्षे लिट् । (४१) उष् विद् ज्ञाने इन धातुओसे आम् हो विकल्पसे लिट परे । कास्प्रत्ययात्से आम लिट् आये । ओषाम् कृ लिट् । द्वित्वादि । जब आम नही उवोष । अभ्यासस्य असवर्णे अचि उवङ् । ऊषतु ऊषु ओषिता सेट् धातु है ओषिष्यति रोग जलायेगा । ओषतु । औषत् औषताम् औषन् । ओषेत् शत्रूम्, औषीत् औष्टाम औषुः औषी औष्टम औष्ट । जिषति मिषति सीचता है । कादि नियमसे इट नित्य हुआ । अजन्त अकारवान् न होनेसे भारद्वाज नियम नही लगा । विवेषिथ । आदि । वेष्टा । गुण ता आदि । विष स्य ति । ष ढोक । ष–क स–क, क-ष =क्ष । वेक्ष्यति सीचेगा । लुङ्मे च्लिका (शल इगुपधासे) क्स । यह भी ष-क स-ष क प=क्ष । कित्से गुण नही, पोषति पुष्ट करता है पुपोष सेट् धातु है । पोषिता पुष्ट करेगा । पोषतु अपोषत । सामान्य भूतकाल पोषण क्रिया हो चुकी हो कर्तामे लुङ्–ति इतश्च । अट, च्ले सिच् गुण इट ईटि । अपोषीत् अपोषिष्टाम् । दोनोको पुष्ट किया । अनिट् कारिकामे पुष्य-श्यन् पढा है । जो अनिट् है । यह धातु सेट है अत च्लिको न क्स । दिवादि पुषसे परे ही अङ्का विधान । यहापर पुषादि मानकर । च्लिको अङ् नही होता । श्रेषति श्लेषति प्लोषति का दाह क्रिया । श्रेषिता सेट है । भविष्यकालिक दाह

शिश्लेष । श्लेषिता । श्लेषति । शिश्लेष । श्लेषिता । अयमपि नेट् । 'अनिट्सु दैवादिकस्यैव ग्रहणम्' इति कैयटादयः । यत्त्वनिट्कारिकान्यासे द्वयोर्ग्रहणमित्युक्तं तत्स्वोक्तिविरोधाद् अर्थान्तरविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । पुप्रोष । पुप्लोष ।७०५ पृषु वृषु मृषु सेचने । मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । पर्षति । पपर्ष । पृष्यात् । घृषु सङ्घर्षे । हृषु अलीके । तुस ह्लस ह्लस ७१३ रस शब्दे तुतोस । जह्लास जह्लास । ररास । लस श्लेषणक्रीडनयोः । घस्लृ अदने । अयं न सार्वत्रिकः । 'लिटचन्यतरस्याम्' इत्यदेर्घस्लादेशविधानात् । ततश्च यत्र लिङ्गं वचनं वास्ति तत्रैवास्य प्रयोगः । अत्रैव पाठः शपि परस्मै द लिङ्गम् ।

क्रिया । पुष धातुकी तरह श्लिष् धातु भी भ्वादिका मान्य । अश्लेषीत् जलाया । अनिट कारिकामे दिवादिका ही ग्रहण है । श्लिष आलिङ्गने । कैयट हरदत्तादि मत । जो लोग अनिट् कारिकामे दोनोको माने, वे स्वोक्ति अपने ही कथनके विरोध,अन्य ग्रन्थोके विरोधसे उपेक्ष्य है । न्यासकारने दिवादि को ही अनिटमे पढा है । पुप्लोष दाह क्रिया कर चुका ।७०५ पर्षति वर्षति मेघ. बादल बरसते है । सीचते है । मर्षति सीचता है सहता है । अवर्षत् । वर्षा हुयी सीचा गया । वर्षतु वर्षेत् सीचना चाहिये या सीच । अवर्षीत् अवर्षिष्टाम् अवर्षिषु बादल बरस गये । किसान सीच गये । ममर्ष मर्षिष्यति सहन करेगा । मर्षति क्षमा करना । अमर्षीत् अमर्षिष्यत् । अन्य हिंसा क्लेष । घर्षति सघर्ष—अथक परिश्रम, रगडता है । जघर्ष घर्षिता घर्षतु अघर्षत् । रगड किया । अघर्षीत् एक कर्तृक भूतकालिक सघर्षणक्रिया । हर्षति अलीक मिथ्या झूठा होना या बोलना । जहर्ष । तोसति सतुष्टि है । तुतोस । ह्लसति आह्लादित ह्लसति ह्लास कमजोरीके शब्द । रसति स्वादका शब्द । ररास रेसतु रेसु । अह्लासीत् । अरासीत् । लस धातुका श्लेषण चिपकाना, खेलना क्रिया । लसति चिपकाता है आनन्द करता है । ललास लेसतु । लसिता लसतु अलसत् अलासीत् अलसीत् ।

७१५ लृ इत् घस् धातुका भोजन करना अर्थ । अनिट, यह धातु सर्वेषु लकारेषु न प्रयुज्यते—सार्वत्रिक नही, यदि होता लिट्लकारमे प्रयोग होता । अद भक्षणे धातु लिटिमे अन्यतरस्या—विकल्पसे घस् होना व्यर्थ होता । कहा प्रयोग हो, कहा न हो कहा—ततश्च यत्र लिङ्ग=घस धातुके प्रयोगमे जहा प्रमाण हो ज्ञापन हो, प्रत्यक्ष वचन हो वही प्रयोग मान्य । जैसे अत्रैव-भ्वादिगणमे घस्का पाठ शप् और परस्मैपद प्रमाण है । अन्यथा भ्वादिमें

लृदित्करणमडि । अनिट्कारिकासु पाठो वलाद्यार्धधातुके । क्मरचि तु विशिष्योपादानम् । घसति । घस्ता । (४२) **स स्यार्धधातुके ७।४।४९॥** सस्य त. स्यात्सादावार्धधातुके । घत्स्यति । घसतु । अघसत् । घसेत् । लिङ्ाद्यभावादाशिष्यस्याप्रयोग । (४३) **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५॥** श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् स्यात्परस्मैपदेषु । अघसत् । जर्ज चर्च झर्झ परिभाषणहिंसातर्जनेषु । पिसृ पेसृ गतौ । पिपिसतु पिपेसतु. ।

क्यो पढते । लृ इत् होना भी, शप् परस्मैपदमे प्रमाण है । अनिट् कारिकाषु उपदेशमे अनुदात्तमे घस्का पाठ वलादि आर्धधातुकके प्रयोगमे प्रमाण । इस धातुके प्रयोगमे प्रत्यक्ष वचन (सृघस्यद क्मरच्) घस् ग्रहणमे प्रमाण है । घसति इति घस्मर । विशिष्य घसे उपादान प्रयोगे प्रमाण, घसति (घस धातो लट् ति शप्) खाता हैं । एककर्तृक वर्तमानकालिक भोजन क्रिया । लिट् मे प्रयोग नही । लुट्का उदाहरण घस् ता । अद्यभिन्न भविष्यकालिक भोजन कर्ता । घस् स्य ति । दशामे सको तका सूत्र—

(४२) स को त हो सादि आर्धधातुक (स्यपरे) घत्स्यति स्यत स्यन्ति । घसतु घसन्तु सब भोजन करें । घसानि घसाव घसाम । हम सब खाय, अघसत् अघसता अघसन् । अह अघसम् मैंने खा लिया । घसेत् घसेता घसेयुः । घसेय घसेव घसेम । सादि प्रत्यय क्यो पढा ? घस्मर । सादि प्रत्यय परे नही । आर्धधातुक क्यो ? सार्वधातुक सादिमे न हो । स सि इति छेद. । अच उपसर्गात्से त आया । लिङलकारके आशीर्वाद अर्थमे कोई लिङ्ग वचन प्रमाण नही, न प्रयोग. । लुङ्मे सामान्य भूतकालिक भोजन क्रिया का कर्ता अर्थ हो अघस् च्लि त् (४३) पुषादि—द्युतादि लृदित्के बीच समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी श्यन् विकरण पुषादिद्युतादिगण पठित हो । लृ इत् धातुसे परे च्लिको अङ हो । अत्र विचार—पुषधातु भ्वादि क्रादि चुरादि दिवादि है । यदि भ्वादिका पुषादिगण पुष पुष्टौ मान्य होता द्युतादि पढना व्यर्थ होता । साथमे पढे जानेसे क्र्यादि नही ले सकते । वहाँ पुष धातुके बाद मुष स्तेये, खच् प्रादुर्भावे, हेट च ग्रह उपादाने, चार ही पढे है । यदि वे ही इष्ट होते उनके लृदित होनेमे लाघव होता है । चुरादिका पुषादि अमान्य । णिच्से च्लिका व्यवधान हैं परिशेषात् दिवादि ही आदरणीय । अतः कहा श्यन् विकरण पुषादि (दिवादिका) अघसत् अघसता अघसन् । जर्जति चर्चति झर्झति । सनिन्दोपालम्भ परिभाषणम् । तीनोका व्याजसे निन्दा आत्म

हसे हसने । एदित्वान्न वृद्धि । अहसीत् । णिश समाधौ । तालव्योष्मान्त । प्रणेशति । मिश मश शब्दे रोषकृते च । तालव्योष्मान्तौ । शव गतौ । दन्त्योष्ठ्यान्तस्तालव्योष्मादि । शवति । अशवीत्-अशावीत् । ७२६ शश प्लुतगतौ । तालव्योष्माद्यन्त । शशाश । शेशतु । शेशु । शेशिथ । शसु हिंसायाम् । दन्त्योष्मान्त । न शसदद इत्येत्व न । शशसतु । शशसु । शशसिथ । ७२८ शसु स्तुतौ । अय दुर्गतावपीति दुर्ग । नृशसो घातुक क्रूर इत्यमर । शशस । आशिषि नलोप । शस्यात्, चह परिकल्कने । कल्कन शाठ्यम् । अचहीत् ।७३०

कष्ट फटकार ताडनाके अनुकूल क्रिया । यथासख्य अमान्य । बोली बोलकर कमजोर करना कष्टप्रद चर्चा, झर्झराना, तीखा प्रहार । चचर्च जर्जिता चर्चिष्यति झर्झतु अजर्जत् चर्चेत । अझर्झीत् अचर्चीत् । पेषति पेशकरना प्रस्तुत गमन कराना अपेसीत् पिपेश पिपशु पिपेशु दोनोमे भेद प्रदर्शन। ७२१ए इत हसति हसत हसन्ति । जहास जहसतु जहसु । हसिता हसिष्यति हसतु हसन्तु । हसानि हसाव हसाम । अहसत् अहसता अहसन् । हसेय हसेव हसेम । हस्यात् अहसीत् अहसिष्टाम् अहसिषुः । ह्मयन्त क्षण—सूत्रसे एकार इत् मानकर वृद्धिनिषेध ।

नेशति समाधि—ध्यान लगाता है । उष्मा (श) अन्त है प्रणेशति । णोपदेश है उपसर्गादसमासेऽपि णत्व । मिशति मशति क्रोध प्रकट करना, दाँत मीसना । अमेशीत् अमाशीत् । शवति, गच्छति शव जाता है । वकारस्य दन्त ओष्ठ स्थान । शका तालु उष्मा । शविता शव जा चुका हो । तब लुङ्, विकल्प वृद्धि,अतो हलादेर्लघो.से शशति शशक उछलता है । परोक्ष मे उछल कर चलचुका हो । शशाश एत्वअभ्यासलोप शेशतु । थलपरे भारद्वाज नियम से इट्, शशति हिंसाकरोति शल्=श ष स ह उष्मा है । लिट्परे एत्व अभ्यास लोप नही, न शसददवादि गुणानाके निषेधसे । अन शशसतु परोक्षकालमें हिंसा किया । अशाशीत् अशसीत् । शंसति स्तुति प्रशसा करता है । दुर्ग जीके मतमे दुर्गति शासति अति कष्ट सहता है । प्रमाणमे अमरकोश नृशस निर्दयी कठोर । शस शस शशास परोक्षकालमे गुण गाया या दुर्गति किया । शसिष्यति ।शसतु अशसत् । आशीर्वाद अर्थमे नकारलोप । अशसीत् ।

चहति=चहचहाना कल्लोल, जिद्द=हठ करना, चचाह चेहतु चेहु । सठता कर चुका हो लुङ् अचहीत् ह्मन्तको वृद्धि नही ।

७३० मह धातुका पूजा=आदर स्वागत अर्थ । महति=स्वागत करता है । महान होता है । ममाह, मेहतु । महिता महिष्यति, महतु महेत् ।

मह पूजायाम् । अमहीत् । रह त्यागे । रहि गतौ । रहति रह्यात् । दृह दृहि बृह बृहि वृद्धौ । दर्हति । ददर्ह ददृहतु । दृहति बर्हति बृहति । बृहि शब्दे च बृहित करिगर्जितमित्यमर । बृहिर इत्येके । अबृहत् । अबर्हीत् । तुहिर् दुहिर् उहिर् अर्दने । तोहति । तुतोह । अतुहत् अतोहीत् । दोहति दुदोह । अदुहत् अदोहीत् । अनिट्कारिकास्वस्य दुहेर्ग्रहणम् नेच्छन्ति । ओहति । उवोह ऊहतु, ओहिता । मा भवानुहत् । औहीत् । अर्ह पूजायाम् । आनर्ह ।

अथ कृपूपर्यन्ता अनुदात्तेत । द्युत दीप्तौ । द्योतते । (४४) द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७।। अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणमस्य त् । दिद्युते ।

लुङ्मे वृद्धि नही होगी । रहति=त्यागता है अरहीत् अरहिष्टाम् अरहिषुः गति अर्थमे इदित् नुम् । रहति, गच्छति, अरहीत । दर्हति, वर्हति=बढता वृहति का शब्द करना भी अर्थ हैं प्रमाणमे हाथीका गरजना । अवृहीत् । इर् इत्–इरितो वा से च्लिको अङ् । तोहति, दोहति' ओहति=जाता हैं । मागना है । अर्द गतौ याचने च । दुदोह—किसीसे धन लेना दोहन करना । दोहिता, अदोहत्, दोहेत् । अदुहत् । इरितो वासे च्लि–अङ । पक्षमे सिच् आदि अदोहिष्टाम् । अनिट् कारिकाके बीच इस दुर्को पढना नही चाहते । ठह धातुसे जिह, इकट्ठा करनेके कर्तामे लिट् द्वित्व हलादिशेष, पुगन्त मानकर गुण । अभ्यास उवङ् । उवोह, अतुस् परे सवर्णदीर्घ । ओहिता=भविष्यमें याचना करेगा । च्लिकों अङ आनुहत् । पक्षमे सिच् । इट ईटि सिच्का लुक् दीर्घ आदि । ७४० अर्ह धातुका पूजा मम्मान होने या पानेकी क्रिया । वर्तमान काल कर्तामे लट् ति शप् अर्हति । दोहल् होनेसे नुट्, आ अर्ह आनर्ह,आर्हीत् पूजा किया आदर पाया । आर्हत् आर्हेत् ।

अथ कृपू समर्थों धातुतक अनुदात्त इतसे आत्मनेपदकी प्रक्रिया साधनिका द्युतादि मान्य । द्युत् धातुका चमक प्रकाश रोशनीके अनुकूल क्रिया । विद्युत् द्योतते । प्रकाशार्थक द्युत धातुमे लट् । अनुदात्त (अ)इत् होनेसे आत्मनेपद त । एत्व शप् गुण । द्योतेते द्योतन्ते । त्व द्योतसे द्योतेथे द्योतध्वे । अह द्योते द्योतावहे–महे । कर्तामे वर्तमानकालिक चमकनेकी क्रिया । हमसब समाजमें प्रकाशित हो रहे हैं । परोक्षकालमें बिजली चमक चुकी हो । व्यक्ति प्रकाश मे आया हो । कर्तामे लिट् त–एश् द्वित्व, शेष । द्यु–द्युत् ए । (४४) द्युतिस्वाप्यो –द्युत् धातु स्वापि (णिजन्त) धातुके अभ्यास सञ्ज्ञक को सम्प्रसारण (यण य र ल व)के स्थानमे इक्(इ उ, ऋ लृ)हो । इस सूत्रमे अत्र लोपो-सूत्रसे

दिद्युताते । द्योतिता । (२३४५) द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१॥ द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । पुषादिसूत्रेण परस्मैपदे अङ् । अद्युतत् अद्योतिष्ट । श्विता वर्णे । श्वेतते । शिश्विते । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट । ञिमिदा स्नेहने ।

अभ्यास आया । द्यु के यको (हलादिशेष) प्राप्त था उसका बाधक द्युतिस्वाप्यो से सम्प्रसारण यको इ । सम्प्रसारणाच्च इकारको पूर्वरूप । दिद्युते दिद्युताते दिद्युतिरे । दिद्युतिषे । स्वापि—उदाहरण स्वपिति राम । माता तं स्वापयति सुलाती है स्वापयितुमिच्छति सुष्वापयिषति सुलाना चाहती है । सम्प्रसारण हुआ । अभ्यास निमित्तक प्रत्यय रहते सम्प्रसारण इष्ट अत स्वापयति स्वापक॰ । तमिच्छति स्वापकीयति सुलाने वालेको चाहता है । उससे सन् सि स्वापकीयिषति । आगामिभविष्य कालिक प्रकाश क्रियाके कर्तामे अनद्यतने लुट् त तास् डा इट् लघूपधगुण । द्योतिता द्योतितासे द्योतिताहे द्योतितास्वहे । द्योतिष्यते । चमकेगा । जब प्रकाश चमक आज्ञा प्रेरणा रोशनी करो का विषय हो, कर्तामे लोट् त—एत्व,अ।मेत-आम् आदि । द्योतता द्योतेता द्योतन्ताम् । द्योतै द्योता वहै-महै । हम सब प्रकाश करें । प्रसिद्ध हो । अद्योतत अद्योतेताम् अद्योतन्त ।अद्योतथा अद्योतेथा । द्योतेत् द्योतेयाता द्योतेरन् । द्योतेथा द्योतेयाथा द्योतेध्व, द्योतेय द्योतेवहि-महि । सामान्य भूतकालमे प्रकाश हो । लुङ् । (२३४५) द्युद्भ्यो—बहुवचनसे द्युतादिगण पढे सभी धातुओसे परे लुङ्के स्थानमे परस्मैपद हो विकल्पसे । जिसका फल पुषादिद्युतादि—सूत्रसे परस्मैपद परे च्लिको अङ् होना । इससे सिद्ध है कि आत्मनेपद पक्षमे च्लिको सिच् ही होता है । तस्मादित्युत्तरस्य परिभाषासे परस्य आया । शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद भी । घट चेष्टाया तक द्युतादिगण है । परस्मैपद ति । इकारलोप । अट् च्लिको द्युतादि मानकर अङ्, अद्युतत् अद्युतताम् अद्युतन् । अद्युतम् अद्युताव अद्युताम । आत्मनेपद पक्षमे त । सिच् इट् अट् गुण । षत्व ष्टुत्व । अद्योतिष्ट अद्योतिष्ठा अद्योतिषि । अद्योतिष्रत् ७४२ आ इत् श्वित् धातुका श्वेत वर्णकरण सफेदी होने या करनेकी क्रिया । भित्ति श्वेतते दीवाल सफेद हो रही है । चूनासे पोती जा रही है । भवनानि श्वेतन्ते, त्व गृह श्वेतसे । अह मन्दिर श्वते । स्वच्छता सफेदीकर रहा ह । परोक्ष श्वेत सफेदीकरणक्रिया सहित कर्ता देखा न हो । कर्तामे लिट् त एश् द्वित्व श्वित् श्वित हलादिशेष । शिश्विते शिश्वितिषे शिश्विते । श्वेतिता श्वेतितासे

मेदते। (४६) मिदेर्गुणः ७।३।८२।। मिदेरिको गुणः स्यादित्सञ्ज्ञकसकारादौ। एश आदि शित्वाभावान्नानेन गुणः। मिमिदे। अमिदत्। अमेदिष्ट। ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः। मोहनयो इत्येके। स्वेदते। सिष्विदे। अस्विदत् अस्वे-

---

श्वेतितार। श्वेतितासे श्वेतितासाथे-ताध्वे। श्वेतिताहे। श्वतिष्यते। श्वेतता श्वेतेता श्वेतन्ता, श्वेतस्व श्वेतेथा श्वेतध्व। श्वेतै श्वेतावहै-महै। श्वेतेत। अश्वितत् द्युताद है परस्मैपदसञ्ज्ञा च्लिको अङ् होना फल। शेष कार्य पूववत्। अश्विततताम् अश्वितन्। आत्मनेपद पक्षमे सिच् इट् अट् गुण षत्व आदि।

ञिमिदा–ञि का फल क्तः। आइत् मिदका स्नेहन–तेलसे सींचनेकी क्रियाके वतमानकालीन कर्तामे लट। शप् आदि। पुगन्तलघूपधगुण। मेदते स्नेहन–तेल सिञ्चन हो चुका हो। परोक्षे लिट् त–ऐश्। मिद् मिद् ए। मिमिदे मिमिदाते मिमिदिरे असयोगसे परे लिट कित् होता है। अत गुण नही। किन्तु। (४६) मिदके अवयव इक्-इ उ ऋ को गुण हो आदिका श इत् हो ऐसा प्रत्यय परे। गुण शब्द सुनकर इक उपस्थित हुआ। ष्ठिवुक्लमुचामासे शिति आया। श चासौ इत् च। अङ्गसे आक्षेप किया हुआ प्रत्ययमे विशेषण। यथा मेद्यत दिवादि श्यन्। गुण हुआ। यदि शइत् यस्य बहुव्रीहि करेगे, ऐसा शित् प्रत्ययपरे कहेगे तब मिमिदे प्रयोगमे तको ऐश् (श इत् हानेसे गुण प्राप्त हुआ। तब कहा ऐश् आदि का शित नही अत गुण नही होता। शप् श्यन् श्ना आदि प्रत्यय परे मिद्को गुण होता है। मेदिता मेदिष्यते। मेदताम् अमेदत् मेदेत् मिद्यात्, लुङ्लकारमे द्युद्भ्यो–सूत्रस परस्मैपदसञ्ज्ञा का फल पुषादि द्युतादिस च्लिका अङ्। अमिदत् अमिदताम् अमिदन्। आत्मनेपद पक्षमे सिचि इट् आदि अमेदिषाताम् अमेदिषत, अमेदिष्ठाः। अनुबन्धलाप। धातु आदिके षको स। स्वेदते–तेलसे सीचना, पसाना छोडना लिप्त रहनके अनुकूल व्यापारके लिए चैत्र। स्वेदसे, अह स्वेदे। आनट् कारिकामे श्यन् निर्देशसे शप् वाला लट हे। स्वदिता स्वेदिष्यते पसाना छोडेगा मुग्ध रहेगा। स्वेदता अस्वेदत। तलसे सीचा, पसीना छोडा। लिप्त रहा। स्वेदेत स्वदेयाता स्वेदेरन्। लुङ्लकारमे परस्मैपदसञ्ज्ञा। च्लि को अङ् आदेश विशेष है। पक्षमे सिच् इट्। उसी अर्थ मे क्ष्विदको भी समझे। रुच धातुका दीप्ति प्रकाश प्रीतिका विषय होना क्रियाके वतमानकालिककर्ता मे लट् आदि। उपधामे लघु उकारको गुण रोचते प्रकाशते सूर्यः चमकता है।

दिष्ट । जिक्ष्विदा च इत्येके । अक्ष्विदत् अक्ष्वेदिष्ट । ७४५ रुचि दीप्तावभि-प्रीतौ च । रोचते सूर्यः । हरये रोचते भक्तिः । अरुचत् । अरोचिष्ट । घुट परिवर्तने । घोटते । जुघुटे । अघुटत् अघोटिष्ट । रुट लुट लुठ प्रतिघाते । अरुटत्—अरोटिष्ट । शुभ दीप्तौ । क्षुभ सञ्चलने । णभ तुभ हिंसायाम् । आद्योऽभावे च । नभन्तामन्यके समे । 'मा भूवन्नन्यके सर्वे' इति निरुक्तम् । अन-भत्—अनभिष्ट । अतुभत् अतोभिष्ट । इमौ दिवादी क्र्यादी च । ७५४ स्रंसु

जब प्रेमका विषय हो तब हरये रोचते भक्ति भगवान्‌की प्रसन्नताका विषय हो रही है । रुच्यार्थानासे चतुर्थी । रोचन्ते रोचनादिव । रुरुचे रुरुचाते रुरुचिरे । रोचिता रोचितासे रोचिताहे । रोचतां रोचेता रोचन्ताम् । रोचै रोचावहै । रोचेत् रोचेयाता रोचेरन् रोचेथा । रोचिषीष्ट तव पुत्र । तुम्हारा लडका समाजमे चमके, प्रसन्न रहे । परस्मैपदसज्ञा द्युतादिसे च्लिको अङ् अरुचत् अरुचताम् अरुचन्,अरुच । सिच् इट् गुणादि अरोचि-षाताम् अरोचिषत अरोचिष्ठा अरोचिषि । अरोचिष्वहि अरोचिष्महि । घुटधातुका घोटना, परिवर्तन इतस्तत भ्रामण घुमाना अर्थ । औषध घोटते दवाई रगडता है । एक कर्ममे वर्तमानकालिक घुमाकर रगडनेकी क्रिया । घोटसे, घोटे घोटावहे । जुघुटे । कित्‌से गुण नही । परोक्षमे घोट चुका । घोटिता । घोटितासे घोटितासाथे घोटिताध्वे घोटिताहे । घोटिष्यते घोटिष्यन्ते । घोटता घोटेता घोटन्ता, घोटस्व घोटेथा घोटध्व, घोटै घोटावहै, जब द्युद्भ्यो लुङसे परस्मैपदसज्ञा द्युतादि जानकर च्लिको अङ् । अघुटत् आदि । रोटते लोटते लोठते सबका प्रतिघात रूठना लोटना लूटना हठ करना अर्थ । लुलुटे लोटिता लोटताम् अलोटत अलुटत् अलोटिष्ट ।

७५० शुभका प्रकाशानुकूलव्यापार । शोभते अशुभत् अशोभिष्ट । क्षोभते प्रकृतिविपर्यास चेहरे पर परिवर्तन अथवा चित्त(मन)मन्थनकी क्रिया इसी अर्थमे क्षुभ्यति दिवादी । क्षुभ्नाति चुक्षुभे बहुत व्याकुल हुआ । क्षो-भिता क्षोभता अक्षोभत । अक्षुभत् अक्षोभिष्ट । णोपदेश—नभ और तुभ धातुका हिंसा परपीडा अर्थ पहलेका आभाव और सचलन रङ्ग बदल भी अर्थ । नभते आकाशके फूल हैं । प्रमाण नभन्ताम् अन्यके समे । अन्य सभीके साथ न रहे । मा भूवन् समे का सर्वे अर्थ । तोभिष्यते, अनभूत लुङ्मे च्लि को अङ् सिच् पूर्ववत् । उदित् स्रंसते ध्वंसते भ्रंसते इनका स्खलन लड-खडाकर या अरमराकर धराशायी होना, सस्रंसेदध्वंसे। भ्रंसिता ध्वंसिष्यते

स्वसु भ्रंसु अवस्रंसने। ध्वसु गतौ च। अडि न लोप। अस्रसत्—अस्रसिष्ट 'नास्रसत्करिणा ग्रैवम्' इति रघुवंशे। भ्रशु इत्यपि केचित्पेठु। अत्र तृतीय एव तालव्यान्त इत्यन्ये। भ्रशु भ्रंशु अध पतने इति दिवादौ स्रम्भु विश्वासे॥ अस्रभत् अस्रम्भिष्ट। दन्त्यादिरियम्। तालव्यादिस्तु प्रमादे गत। वृतु वर्तने वर्तते। ववृते। (४७) **वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२॥** वृतादिभ्य परस्मैपदं वा स्यात्स्ये सनि च। (४८) **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९॥** एभ्य सकारादेरार्धधातुकस्येण्न स्यात्तङानयोरभावे। वर्त्स्यति वर्तिष्यते। अवृतत् अव-

स्रसता च्लिके अङ् होनेपर, नकारलोप। अध्वक्षत अध्वषीष्ट। अभ्र सत् द्युतादि जानकर परस्मैपदसंज्ञा च्लिको अङ् रघुवंशका प्रमाण—करिणा हाथियोंका हार खिसका नहीं। भ्रसते भ्रंसते नीचे गिरता है। ७५७ स्रम्भते विश्वास करनेकी वर्तमानकालिक क्रिया। सस्रम्भे स्रम्भता विश्वास करो। स्रम्भस्व स्रम्भै। च्लि अङ् लुङ्लकारमे विश्वासकी भूतकालिक क्रिया। ७५८ ऊ इत् वृत् धातुका वर्तन, व्यवहार या उपस्थिति अर्थ। बहुत अर्थका प्रकाशक, उपसर्ग बलसे है। प्रवर्तते काममे लगना। निवर्तते अलग होना, लौटना। ववृते ववृताते ववृतिरे। कित्से गुण नही वर्तिता उप-स्थित रहेगा। वर्तितासे वर्तिताहे।

(४८) वृद्भ्यः। सूत्रमे बहुवचनमे पाच धातुसे परस्मैपद (विकल्प) हो, स्य और सन् परे। शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद, वा क्यष से वा आया। (४७) न वृद्भ्यः बृतादि ५ धातुओसे सकारादि आर्धधातुक (स्य सिच् सीयुट्)आदि परे इट् नही होता। तङानयो =आत्मनेपद शानच् कानच् न हो तब। सेऽसिचि सूत्रसे से' आया। सकारादि अर्थ निकला। स्यन्दू—ऊदित् इट् विकल्पसे प्राप्त, अन्यसे नित्य इट्) का निषेध है। वर्त्स्यति व्यवहारार्थक वृत् धातुसे भविष्यकालिक वर्ताव क्रियाके कर्तामे लृट् ति। (परस्मैपद संज्ञा होनेसे) सकारादि स्य परे वलादि इट् प्राप्त था, न वृद्भ्य से निषेध। आत्मनेपद पक्षमे इट् षत्व होगा, निषेधका अभाव होनेसे। गमेरिट्से पर-स्मैपद आया। उससे तङ् शानच् कानच् लक्षित हुए। जिसका फल जिग-मिषिता। गम् धातुके सन् अन्तसे तृच् परे इट् होना। विवृत्सा इट् निषेध भी। गुण। रपर वर्तता वर्तस्व वर्तेथा वर्तध्वम् वर्तै एत् ऐ। अवर्तत अवर्तेताम् अवर्तन्त। उपस्थित रहा। वर्ताव किया। वर्तेत वर्तेयाता वर्तेरन् वर्तेथा। वर्तिषीष्ट-भूतकालमे वर्ताव क्रियाके कर्ता अर्थ लुङ्। द्युद्भ्यो

र्तिष्ट । अवर्त्स्यत् अवर्तिष्यत् । वृधु वृद्धौ । ७६० शृधु शब्दकुत्सायाम् । इमौ वृतुवत् । स्यन्दू प्रस्रवणे । स्यन्दते सस्यन्दे । सस्यन्दिषे सस्यन्त्से । सस्यन्दिध्वे, स्यन्दिता स्यन्ता । 'वृद्भ्यः स्यसनोः' इति परस्मैपदेकृते ऊदित्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं बाधित्वा चतुर्ग्रहणसामर्थ्यात् 'न वृद्भ्यः' इति निषेधः । स्यन्दिष्यति स्यन्दिष्यते स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषीष्ट-स्यन्त्सीष्ट । 'द्युद्भ्यो लुङि' इति परस्मैपदपक्षे अङ् । नलोपः । अस्यदत् अस्यन्दिष्ट-अ-यन्त । अस्यन्त्साताम् ।

लुङ से परस्मैपद पक्षमे द्युतादि मानकर च्लिको अङ् । अवृतत् । आत्मनेपद पक्षमे सिच्, इट आदि, **अवर्तिष्ट अवर्तिषाताम् अवर्तिषत** अह **अवर्तिषम्** क्रियाफलके कार्यकारण भावके कर्तामे लृङ् । परस्मैपदसंज्ञा । गुण रपर आदि दूसरे पक्षमे इट्, षत्व विशेष । पूर्वपक्षमे न वृद्भ्य से इट् निषेध । आत्मनेपद में वह भी नही । उ इत् वृध धातुका बढनेके अनुकूल क्रियाके वर्तमानकालिक कर्तामे लट् गुण आदि । **वर्धते वर्धेते वर्धन्ते वर्धसे वर्धेथे वर्धध्वे** । अह **वर्धे वर्धावहे वर्धामहे** । **वर्धिता वर्धिष्यते** वर्धताम् अवर्धत । वृद्भ्यः स्य । तान् से परस्मैपद पक्षमे इट् । निषेधसे वर्त्स्यति । अवृधत अवर्धिष्ट अवर्त्स्यत् अवर्धिष्यत् ७६० **शर्धते** गन्दा शब्द निकलता है । **शशृधे शर्धिता शर्त्स्यति शर्धिष्यते** । अशृधत **अशर्धिष्ट** । ऊ इत् स्यन्द धातुका प्रस्रवण पसीझना, चूना रिसना । उपधामे नकार है अनुस्वार परसवर्ण । स्यन्दते-एक कर्तामे वर्तमानकालिक पसीझना क्रिया । धौत (वस्त्र) सस्यन्दे—कपडा कब निचुडा **सस्यन्दाते सस्यन्दिरे** । थास् होनेपर स्वरति-सूति-सूत्रसे इटि विकल्प । षत्व जब न इट् दको चर्त्व त । ध्वम् परे इट् आदि । जब न इट् खर परे नही, न चर्त्व । सस्यन्दिवहे-महे । आगामिभविष्यकालिक पसीझना क्रिया हो लुट । तास् इट आदि । जब न इट्, दको चर्त्व त । **स्यन्ता स्यन्द स्य ति** (परस्मैपदसंज्ञासे) यद्यपि स्वरतिसूति सूत्रसे ऊदित लक्षण इट विकल्प । अन्तरङ्ग होते हुए भी चतुर्ग्रहणके सामर्थ्यसे न वृद्भ्य से इट निषेध होता है । यदि विकल्प होता चतुर्भ्यः पढना व्यर्थ हो जाता उसकी सफलता इटनिषेध से ही है । स्य परे इट अभाव पक्षमे दको चर्त्व त । **स्यन्त्स्यते** रिसेगा, पसीझेगा । आशीर्वाद अर्थमे सीयुट् सुट् इटविकल्प । इट नही होगा । तङानयोरभावे पढे जानेसे । जब रिसना क्रिया हो चुकी हो । लुङ्-द्युद्भ्यो लुङि से परस्मैपद पक्षमे च्लिको अङ (पुषादि द्युतादिसे) अनिदितासे नकारलोप । आत्मनेपदमें सिच् इट आदि । जब न इट अस्यन्द स त् । दशामे झलो झलि

अस्यन्त्सत। अस्यन्त्स्यत् अस्यन्दिष्यत् अस्यन्त्स्यता। (४९) **अनुविपर्यभिनिभ्य. स्यन्दतेरप्राणिषु** ८।३।७२।। एभ्य परस्याप्राणिकर्तृकस्य स्यन्दतेः सस्य षो वा स्यात्। अनुष्यन्दते-अनुस्यन्दते वा जलम्। अप्राणिषु किम् अनुस्यन्दते हस्ती। अप्राणिषु इति पर्युदासात् मत्स्योदके अनुष्यन्देते इत्यत्रापि पक्षे षत्व भवत्येव। प्राणिषु न इत्युक्तौ तु न स्यात्। कृप् सामर्थ्ये। (२३५०) **कृपो रो ल** ८।२।१८। कृप उ र ल इति च्छेद। कृप इति लुप्तषष्ठीकम्, तच्चावर्तते। कृपो यो रेफस्तस्य ल स्यात। कृपेर्ऋकारस्यावयवो यो रेफ स-

से सलोप, दको त। अस्यन्त पसीझ चुका रिस गया। लुङ्मे भी परस्मैपद इट् निषेध दको त। आत्मनेपदमे इट् षत्व, जब न इट दको त।

(४९) अनु वि परि, अभि, नि उपसगसे परे स्यन्दके सको ष हो. प्राणि—चेतनसे पसीझना क्रिया न हो तब। सहे साड से स आया, अपदान्तस्य मूर्धन्य का अधिकार अनुस्यन्दते पानी रिस रहा है। जल कर्तृक प्रस्रवण है। अचेतन है पत्व हुआ। सूत्रमे अप्राणिषु चेतन न हो, ऐसा क्यो पढा? मत्स्योदके अनुष्यन्देते षत्व कैसे? चेतन है। हाथी पसीझ रहा है यहा षत्व न हो, चेतन होनेसे। मत्स्योदके के समाधान वास्ते अप्राणिपुमे पर्युदास माना जिसका प्राणिभिन्न प्राणिसदृश अर्थ हे। यदि जड चेतन (जल मछली दोनो) कर्ता है। वहा षत्व होता ही हैं। पर्युदासकी कृपासे। यदि प्रसज्यप्रतिषेध (प्राणिषु न) ऐसा कहते तब षत्व न हो पाता।

ऊ इत् कृप धातुका सामर्थ्य कार्यक्षमीभवन कामकुशल निपुण समर्थ दक्षताके अनुकूल क्रियाके वर्तमान कर्तामे लट। प्रथमपुरुष एकवचन त। टे ऐ शपि उपधामे लघुको अर् गुण। कर्पते इति दशाया।

५०कृपो कृप ऊ ऐसा भेद। गुण करके कृपो बना, र-षष्ठी अन्त कृपोर्र रोरि-से र लोप। ल प्रथमान्त है। कृपमे षष्ठी लुप्त। कृप उ र ल तच्चावर्तते। कृप र ल तीनोकी आवृत्ति। कृपका जो रेफ र, उसको ल हो। कल्पते। कृप उ र ल दूसरा वाक्य। अवयवषष्ठी। कृप धातुका अवयव ऋका जो रेफ उसको ल हो। रेफके सदृश्य रेफ, ऋके अशमे लक्षणा सर जाने। ल-का भी लके सदृश लृका अश लक्षणासे। कल्पेते कल्पन्ते कल्पसे कल्पेथे। कल्पे। लिटलकारमे परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक कार्यकुशल सक्षम क्रियाके कर्तामे लिट द्वित्व। कृप् कृप् कर कृप चकृप। असयोगात् लिट्के कित् होनेसे न गुण। कृपोरोल—सूत्रसे कृके एकदेश रेफके समान लकार समान

दृशस्तस्य च लकारसदृश स्यात् । कल्पते । चक्लृपे । चक्लृपिषे चक्लृप्से । इत्यादि स्यन्दिवत् । (५१) लुटि च क्लृपः १।३।९३॥ लुटि स्यसनोश्च क्लृपे परस्मैपद वा स्यात् । (५२) तासि च क्लृप ७।२।६०॥ क्लृपे पर स्य तासे । सकारादेरार्धधातुकस्य चेण्न स्यात्तङानयोरभावे । कल्प्तासि । कल्प्तास्थ । कल्पितासे कल्प्तासे, कल्प्स्यति–कल्पिष्यते कल्प्स्यते । कल्पिषीष्ट, क्लृप्सीष्ट । अक्लृपत् अकल्पिष्ट अक्लृप्त । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत अकल्प्स्यत । वृत् । वृत्त सम्पूर्णौ द्युतादिर्वृतादिश्चेत्यथ ।

अथ त्वरत्यन्तास्त्रयोदशानुदात्तेतः षितश्च । ७६३ घट चेष्टायाम् । घटते

आदेश चक्लृपे चक्लृपाते चक्लृपिरे । जब थास्को से होगा । ऊदित मानकर स्वरतिसूतिसे इट् । पक्ष न इट् । चक्लृप्से चक्लृपाथे चक्लृपिध्वे । चक्लृपिवहे चक्लृप्वहे-महे । हमसब कार्य समर्थ थे । स्यन्दके समान रूप । (५१) लृट्लकार स्य सन् परे कृपसे परस्मैपद विकल्पसे हो । वृद्भ्यसे स्य सन आया । शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद । वाक्यष से वा आया ।

(५२) क्लृप्से परे और सकारादि आर्धधातुको इट् नही होता परस्मैपद मे । तङ् शानच् कानचके न रहने पर । चसे सकारादि आर्धधातुक स्वीकृति । से असिचि सूत्रसे आर्धधातुकस्य भी आया । न वृद्भ्यो से न । गमेरिट्मे परस्मैपद आये । तासि च । इट् निषेध । गुण रपर कृपोरोल से रको ल । कल्प्तास्मि । पक्षमे आत्मनेपद ऊदितो वा इट् विकल्पे । पक्षमे न इट् । कल्प्ताहे कल्प्तास्वहे-महे । भविष्कालिक कार्य क्षमा क्रिया हो, लृट् परस्मैपदसज्ञा ति, स्य । ऊदितो वा के विकल्प इट् की बाधकर निषेध (तासि च सूत्रसे) कल्प्स्यति । न परस्मैपद । विकल्प इट् होगा । कल्पता कल्पेता कल्पन्ता कल्पै कल्पावहै । अकल्पत कल्पेत, आशीर्लिङमे ऊदित् इट् जान कर सीयुट् सुट्, जब न इट् लिङ् । सिचावात्मनेपदेषु कित्,न गुण । कार्य कुशलताका भूतकाल हो, कर्तामे लुङ् द्युद्भ्यो लुङ्से परस्मैपदसज्ञा । पुषादि द्युतादिसे च्लिको अङ् । ङित्से न गुण । अडादि अक्लृपत् आत्मनेपद पक्षमे इट् विकल्प । जब न इट् झलो झलिसे सिज्लोप । अक्लृप्त लृङ्मे परस्मैपद पक्षमे स्य । इट्का निषेध । आत्मनेपद पक्षमे विकल्प इट् । वृत्–समाप्त अर्थमे कतरि क्विप् । वृत गत्यार्थाकर्मसे कर्ता मे क्त । जिसका विवरण सम्पूर्ण है । द्युतादिगण और वृतादिगणकी साधनिका पूर्ण ।

अथ त्वरासम्भ्रमे तक १३ धातु अनुदात्त इत् है । षित्सज्ञ भी है।

जघटे। 'घटादयो मित' इति वक्ष्यमाणेन मित्सञ्ज्ञा। तत्फलं तु णौ 'मितां ह्रस्व' इति चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम' इति च वक्ष्यते। घटयति। विघटयति कथं तर्हि 'कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये' 'प्रविघाटयिता समुत्पतन् हरिदश्व· कमलाकरानिव' इत्यादि। शृणु। घट सघाते इति चौरादिकस्येदम्। न

जिसका फल घटादयो मित- कहेगे। स्त्रियोके अधिकारमे षिद्भिदादिभ्य से अङ् होना है। यथा **घटते घटन वा घटा। व्यथते व्यथन वा व्यथा** पीडा या पिडित। षित्का फल घटसे अङ् टाप्, व्यथमे अङ् टाप। ७६३ घटका चेष्टा प्रयत्न, शक्तिके अनुकूल क्रिया। **घटते** चेष्टते कर्तामे वर्तमानकालिक प्रयासकी क्रिया। **घटेते घटन्ते। घटे घटावहै-महै। घटिता घटिष्यते।** कर्मणि स **घटता घटेता घटन्ता घटस्व। घटै। अघटत घटेत घटिषीष्ट अघटिष्ट अघटिषाताम् अघटिषत। अघटिष्ठा अघटिषम्। घटादय** = घट आदिमे हो ऐसे गण पठित धातु मित्सञ्ज्ञक हो। तत्फल=मित्सञ्ज्ञा होनेंका फल मिता ह्रस्व सूत्रसे णि परे ह्रस्व होना। जहा चिण और णमुल हो वहा दीर्घ होना भी फल। (इसी गणके) धातु पाठमे जो अर्थ चेष्टा भय विस्तार मर्दन आदि कहे गये है वे **उपलक्षण**=अपना अर्थ कहते हुए अन्य अर्थ भी कहते है। अन्य अर्थमे भी मित्सञ्ज्ञाका कार्य होता ही है। जैसे घट चेष्टायां, घट संश्लेषने, घट संघाते आदि अनेक अर्थ है। चेष्टाके अतिरिक्त अर्थमे घटादि मित् मान्य। घटयति घटसे णिच् उपधा वृद्धि घाटयति। मित् का फल मिता ह्रस्व। **घटयति** सश्लेषयति चिपकाता है जोडता है। एव **विघटयति** विश्लेषयति अलग करता है। मित्से ह्रस्व हुआ। **अघाटि।** चिपकाया, घट खरा उतरा। मित्का फल दीर्घ। जब न दीर्घ **अघटि।** णमुल्=घटसे णिच् अन्तसे णमुल-अम्। विकल्प दीर्घ। मित्का फल **घाट घट** नित्यवीप्सयो. द्वित्व **घट घट।** शङ्का-चेष्टासे अन्य अर्थमें घट धातु मित् ह्रस्व होगा। कमल वनका उद्घाटन करते है। **प्रविघाटयिता हरिदश्व।** सूर्यकी किरणें उतरनेसे कमल समुदायकी तरह विकाश करने वाला है। घट विकाशे धातु है। विकसित खिलना अर्थ अन्य है। मित् होकर ह्रस्व क्यो नहीं होता तब कहा-शृणु सुनो। घट सघाते (चुरादि) से बना है घटादि गणका घट नही है। अन्य अर्थ मानना प्रमाणके आधीन है। विकाशार्थक या समूहार्थक घट धातु मित्सञ्ज्ञक नही, न ह्रस्व। उद्घाटन आदिमे दीर्घ निर्विघ्नं रहा। उपलक्षण उपयोगके आधीन है। सघातसे भिन्न अर्थमे मित्

च तस्यैवार्थविशेषे मित्त्वार्थमनुवादोऽर्थामिति वाच्यम् । 'नान्येमितोऽहेतौ' इति निषेधात् । अहेतौ स्वार्थे णिचि ज्ञपादिपञ्चकव्यतिरिक्ता चुरादयो मितो नत्य र्थं । व्यथ भयसञ्चलनयो । व्यथते ।(५३) व्यथो लिटि ७।४।६८।। व्यथोऽभ्यासस्य सम्प्रसारण स्याल्लिटि । हलादिशेषपवाद: । यस्य हलादिशेषेण

सज्ञाके लिए अनुबाद मात्र होगा । धातु भेद नही । जो धातु अन्य प्रसङ्गमे पढे गये है उनका पाठ यहा पर अर्थ नियमनके लिए। जो घटादिमे पढे गये उनका अन्य अर्थ उपसर्गसे खुलनेपर मित् होते है । विघटयतिका चेष्टासे भिन्न अर्थ है ण्यन्तमे मित्सज्ञा कैसे ? तब कहा **तस्यैव**-उसी चुरादिके चेष्टात्मक अर्थ विशेषमें अनुवादके लिए मित्सज्ञा मान्य, अत ह्रस्व हो जायगा ऐसा नही कह सकते, क्यो नही कह सकते ? चुरादिका अन्तर्गण सूत्र **नान्येमितो अहेतौ** मित्का निषेध करेगा, ह्रस्व नही होगा । प्रसङ्ग सुनिये ज्ञप् मिच्च, यम परिवेषणे, चह परिकल्कने, रह त्यागे, बल प्राणने, चिञ् चयने । ये पाच धातु मित् है । इनसे अन्य घट सघाते आदि मित् हो । निषेध है । अत: कहा—अहेतौ विना कारणका णिच् स्वार्थी है । ज्ञप् आदि पाच धातुके अलावा चुरादि मित् नही होते । कोई चह स्थाने चप् पढते है ज्ञपि आदिर्येषा अतद्गुणबहुव्रीहि । व्यथका भयभीत बहुत पीडित । सचलन पीडासे विकृत जननी क्रिया अर्थ । **व्यथते व्यथसे व्यथे** । एकाभिन्नकर्तृक वर्तमानकालिक व्यथन । लिट् । द्वित्व व्यथ व्यथ ए । हलादिशेष प्राप्त उसको बाधकर यको सम्प्रसारण इ होनेका सूत्र—

(५३) **व्यथ** धातुके अभ्यासके यको सम्प्रसारण इ हो लिटि परे । अत्र लोप से अभ्यास, द्युतिस्वाप्यो से सम्प्रसारण आया । यको इ पूर्वरूप । **विव्यथे** । थकी पुन- हलादिशेषसे निवृत्ति । थके बाधमे प्रमाण नही । यलोपका बाधक सम्प्रसारण था । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणके निषेधसे वको सम्प्रसारण नहीं । **व्यथिता व्यथिष्यते । व्यथतां व्यथै । अव्यथत व्यथेत अव्यथिष्ट** भयभीति व्यग्रता हो गयी । ७६५ प्रथका प्रख्याने प्रसिद्धि की क्रिया के वर्तमानकालिक कर्ता अर्थमे लट । प्रथते । प्रसिद्ध हो रहा है । **प्रथेते प्रथन्ते । प्रथसे प्रथेथे प्रथध्वे । प्रथे प्रथावहे** । पप्रथे विख्यात हो चुका । **प्रथिता प्रथिष्यते । प्रथता प्रथेता प्रथन्ता प्रथस्व । प्रथै । अप्रथत प्रथिषीष्ट अप्रथिष्ट** । नामी हो गया । प्रसका विस्तार पसरना फैलना और पसारना फैलाना अर्थमे सकर्मक अकर्मक । वस्त्र पादौ च प्रसेते फैलाता है ।

म्रद मर्दने । स्खद स्खदने । स्खदन विद्रावणम् । क्षजि गतिदानयो । मित्त्व-सामर्थ्यादनुपधात्वेऽपि 'चिण्णमुलो' इति दीर्घविकल्प । अक्षञ्जि–अक्षाञ्जि । क्षञ्ज क्षञ्जम् । क्षाञ्जक्षाञ्जम् ।७७० दक्ष गतिहिंसनयो । योऽय वृद्धिशैघ्र्ययोरनुदात्तेत्सु पठितस्तस्येहार्थविशेषे मित्त्वार्थोऽनुवाद । क्रप कृपाया गतौ । कदि क्रदि क्लदि वैक्लव्ये । वैकल्ये इत्येके । त्रयोऽप्यनिदित इति नन्दी । इदित इति स्वामी । 'क्रदिकदी इदितौ, क्रद क्लद इति चानिदिता' मिति मैत्रय । कदिक्रदिक्लदीनामाह्वानरोदनयो. परस्मैपदिषूक्ताना पुनरिह पाठो मित्वार्थ आत्मनेपदार्थश्च । ञित्वरा सम्भ्रमे । 'घटादय षित' षित्वादङ् वक्ष्यते ।

य। फैलता हे । पप्रसे प्रसिष्यते प्रसताम् । अप्रषीष्ट फैलाये । म्रद मृद का मर्दन सिझाना सिद्ध करना । म्रदते या मर्दते पिष्टान्नं । म्रदेते म्रदन्ते । ममृदे मर्दिस्यन्ते मर्दिस्यध्ये मर्दिष्यामहे। मर्दताम अमर्दत अमर्दिष्ट,विद्रावति विगाडता है । क्षञ्जते कर्तामे वर्तमानकालिक गमनदान क्रिया । चक्षञ्जे । इस धातुको घटादि मे मित होनेकी शक्ति से विना उपधाके भी चिणमुल् परे विकल्पसे दीर्घ होगा । फल मूलमे क्षाञ्जन दीर्घ ।

।७७०। दक्ष धातुका गमन हिंसा की क्रिया । दक्षते अदक्षिष्ट। यहा आत्मनेपद । दक्ष वृद्धौ शीघ्र अर्थे । अनुदातेत् धातुमे पढे जाने से सिद्ध था यहा क्यो पढा ? अर्थ निर्देशके उपलक्षण होनेसे गति हिंसा अर्थ खुलेगा । अत अर्थविशेषमे मित्सज्ञा के लिए अनुवाद मात्र समझे । उसका फल चिण् अदाक्षि मे दीर्घ, दक्षदक्ष, दाक्ष दाक्षम् मे भी । क्रपते दया कृपा करता जाता है । कपंते कृपा करने की क्रिया क्रपता क्रपेताम् । अकर्पत क्रपिषीष्ट । क्रदन्ते क्रन्दयति, क्लन्दते व्याकुल होना । अक्रन्दि अक्रान्दि, क्रन्दक्रन्द, क्रान्दक्रान्द मित्का फल दीर्घ विकल्प । अक्लन्दिष्ट विकल हुआ । तीनो धातुपर विचार । नन्दिमते अनिदित है, स्वामी इदित् कहते हैं, मैत्रेय मते दो इदित् दो अनिदित् । कदि क्लदि आवाहन रोदन अर्थमे । परस्मपदीमे पढे गये, पुन' पाठ मित्सज्ञक कार्यके लिये, आत्मनेपदके लिए भी । ञित क्त । आइत् आदितश्च से इट् निषेध के लिये । त्वरते घबडाकर शीघ्रता करता । तत्वरे त्वरिष्येते त्वरिष्यन्ते । त्वरता त्वरेता त्वरन्ता, त्वरस्व त्वरेथा त्वरध्व,त्वरै त्वरावहै । त्वरेत । अत्वरिष्ट अत्वरिषाता । तूर्ण त्वरितश्च गण सूत्रका प्रयोजन् षित् होनेसे षिद्भिदादिभ्योऽङ् । घटादिगणसमाप्त ।

अथ फणान्ता. परस्मैपदिन । ७७६ ज्वर रोगे । ज्वरति । जज्वार । गड सेचने । गडति । जगाड । हेड वेष्टने । हेडृ अनादरे, इत्यात्मनेपदिषु गत. । स एवोत्सृष्टानुबन्धोऽनूद्यते अथविशेषे मित्त्वार्थम् । परस्मैपदिभ्यो ज्वरादिभ्य. प्रागेवानुवाद कतव्ये तन्मध्येऽनुवादसामर्थ्यात्परस्मैपदम् । हेडति । जिहेड । हिडयति । अहिडि–अहीडि । अनादरे तु हेडयति । वट ७८० भट परिभाषणे । 'वट वेष्टने', 'भट भृतौ' इति पठितयो. परिभाषणे मित्वार्थोऽनुवाद । णट नृतौ । इत्थमेव पूर्वमपि पठितम् । तत्राय विवेक । पूर्व पठितस्य नाटचमर्थ । यत्कारिषु नटव्यपदेश । वाक्यार्थाभिनयो नाटचम् । घटादौ तु नृत्य चार्थ ।

अथ फणगतो धातु तक परस्मैपदक अनुकूल साधानका । ७६ । ज्वरति ज्वरत ज्वरन्ति । ज्वरामि रोग बुखारकी वतमानकालिक क्रिया । ज्वारता ज्वारिष्यति ज्वरतु अज्वरत । अज्वारीत् बुखार था । ज्वरयति चिण्–अज्वरि अज्वारि ज्वरज्वर, ज्वार ज्वारम् । चिण् णमुल् देखकर दीघ विकल्प होना मित्सज्ञाका फल । गडति सीचता है अगाडीत्, गडयति अगाडि । गाडगाड । हेडति हेडयति लपेटता है वेठन बाधता है अहेडीत् । हडधातु अपमान अनादर अथमे आत्मनेपद पढा गया । स एव उस। धातुऋका त्यागकर बेष्टन लपेटने अर्थमे मित् वास्ते यहा पढा । अन्य अथ होता विकल्पका भय रहता । आत्मनेपदी धातुसे परस्मैपद कैसे ? ज्वरादि परस्मैपद धातुओमे अनुवाद करके अनुवादकी शक्तिसे मध्यमे भी परस्मैपद मान्य । हेडति–वेष्टते लपेटता है । हेडयति । वेष्टयति हेतुमणिच, मिता ह्रस्व हिडयति । जिहेड, मितका फल अहीडि मे दीर्घ । तिरस्कारमे हेडयति । वट परिभाषण अथमे मितके लिए अनुवादमात्र । वेष्टन भृति नौकरी, खोजमे मित् नही । वटति भटति अभाटीत् अभाटिष्टा अभाटिषु· अवाटिषु । ७८१ । नट् धातुका शरीर हिलना कपना नाचना मात्र अर्थ । नटति नटत· नटन्ति अनटीत् । नट–नट नाट–नाट । यह धातु पुनरुक्त है पूवपठित । किन्तु विशेष अथ मे मित्सज्ञाके लिए यहा पढ़ा । अत्राय विवेक. । दोनो धातुओके विषयमे अर्थ भेदका निर्णय इस प्रकार है । पहल पढें (टवर्गान्त मे) नट धातुका नाटच अर्थ । जो वाक्य के अर्थका अभिनय अनुकरण भावप्रदर्शन जिसका कर्ता नट शब्दसे प्रसिद्ध है । घटादिमे नृत्य नृत्तसे अर्थ भेदकी सूचना देते है । यत्कारिषु नर्तक व्यवहार. । वह पदार्थका प्रदर्शन शरीरसे करे नृत्य है । शरीर कम्पनका प्रदशन नृत्त

यत्कारिषु नर्तकव्यपदेश । पदार्थाभिनयो नृत्यम् । गात्रविक्षेपमात्रं नत्तम् । केचित्तु घटादौ णन नतौ इति पठन्ति । गनौ इत्यन्ये । णोपदेशपर्युदासवाक्ये भाष्यकृता 'नाटि' इतिदीर्घपाठाद्धटादिर्णोपदेश एव । ७८४ प्रतीघाते । स्तकति चक तृप्तौ । तृप्तिप्रतिघातयो पूर्वपठितस्य तृप्तिमात्रे मित्वार्थोऽनुवाद । आत्मनेपदिषु पठितस्य परस्मैपदिष्वनुवादात्परस्मैपदम । कखे हसने । एदित्वान्न वृद्धि । अकखीत् । ७८५ । रगे शङ्कायाम । लगे सङ्गे । ह्रगे ह्लगे षगे ष्टगे संवरणे कगे नोच्यते । 'अस्यायमर्थ' इति विशिष्य नोच्यते । क्रियासामान्यार्थत्वात् । अनेकार्थत्वादित्यन्ये । अक अग कुटिलायां गतौ । कण ७९५

अर्थ भेद है। विशेषार्थमे मित् । अनटि अनाटि । दीर्घके लिए । किसीके मतमे घटादि का नट नति-नमन, गति-गमन अर्थक है । उपदेशमे ण पढनेसे (अनर्दनाटि पर्युदास) नय भिन्न नय सदृश अर्थ। नाटिमे वृद्धिसे नट अवस्पन्दनने चुरादिका ग्रहण णोपदेश (जो घटादि) है। भाष्य सम्मत भी। स्तकति धातुके आदिमे ष को स । प्रतिघात–विरुद्ध आचरणके लिए ताकने की क्रिया तस्ताक अस्तकीत् ।

। ७८३ । चक धातु तृप्ति और प्रतिघात बन्दका खोलना, मुख की तृप्ति, लाभ की हानि । दुख का मुख प्रतिघात है । तृप्ति अर्थमे मित्संज्ञा के लिए अनुवाद मात्र है परस्मैपद के लिए । पहले आत्मनेपद मे पढा है । मित्का फल चकचक चाक, चकति तृप्त है । चौचक चकाचक खूब मस्ती, बहुत आनन्द को क्रिया । चचाक चकिष्यति चकतु अचकत् चकेत् अचकीत् अचाकीत् । कखति हसता है। अकखीत् । एकार इत् से न हलन्तलक्षण । वृद्धि । ह्म्यन्त सूत्रसे । रगति—शङ्का करता है । अरागीत् सन्देह किया, हाथ पकडा, जितनी धातुका एकार इत है सबको लुङ्मे वृद्धि निषेध । लगति लग रहा, मिल रहा है ललाग लेगतु । लगिता लगिष्यति लगतु अलगत् लगेत् लग्यात् अलगीत् अलगिष्यत् । सगति ह्लगतिका संवरण किया, कगति नही कहते । इसका भाव यह है कि इसकी स्पष्ट क्रिया नही तो धातु कैसे ? सामान्य क्रिया अर्थ मान लेनेमे । स्वभावत धातुके अनेक अर्थ होनेमे । कलिरिह कामधेनु न्यायसे कल धातुको कामधेनु इच्छानुसार दुहनेकी तरह अपरिमित अर्थ है । अकति अगति टेढी चाल चलता है । आगीत् । कणति रणति अकाणीत् अरणीत् रराण रेणतु वीणाके तारकी गति ध्वनिके अनुकूल क्रिया । रणिता रणि-

रण गतौ। चकाण। रराण। चण शण षण दाने च। शण गतौ इत्यन्ये। श्रथ ८०० श्लथ (क्नथ) क्रथ क्लथ हिंसार्था.। 'जासिनिप्रहण' इति सूत्रे क्राथेति मित्त्वेऽपि वृद्धिर्निपात्यते। क्राथयति। कित्व तु निपातनात्परत्वात् 'चिण्णमुलो.' इति दीर्घे चरितार्थम्। अक्रथि, अक्राथि। क्रथक्रथम्। क्राथक्राथम्। वन च। हिंसायामिति शेष। वनु च नोच्यते। वनु इत्यपूर्व एवायं धातुर्न तु तानादिकस्यानुवादः। उदित्करणसामर्थ्यात्। तेन क्रियासामान्ये वनतीत्यादि। प्रवनयति। अनुपसृष्टस्य तु मित्त्वविकल्पो वक्ष्यते। ज्वल दीप्तौ णप्रत्ययार्थं पठिष्यमाण एवायं मित्त्वार्थमनूद्यते। प्रज्वलयति। ८०५ ह्वल

ष्यति रणतु रणेत्। चणति शणति स्रणति दान करता है। चणक चणयति चनाका दान। शणति तेजका दान। श्रमका दान। चणिता चणतु चणेत् अचाणीत्। श्रथति। ८०० चार धातु हिंसा अर्थमे है। णिच्मे क्राथयति कैसे ? ह्रस्व क्यो नही घटादि है। मिता ह्रस्व होगा ? तब कहा—जासिनि प्रहणनाटक्राथपिषा हिंसाया—सूत्रमे क्राथ पढा है। निपातन=सूत्रमे स्वीकृति से वृद्धि मान्य। यदि ऐसा घटादिमे क्रथका पढा जाना व्यर्थ है, तब कहा— मित्व तु=निपातनसे दीर्घ हुआ, चिण्णमुलो दीर्घ स्थलम सफल है। तृप्त है बाधक नही बनेगा। निपातनसे वृद्धि हुई है। क्राथमे निपातनकी अपेक्षा दीर्घ पर है मिता ह्रस्व भी पर है। उसीका बाध होगा। पुरस्तादपवाद-न्यायसे क्रथसे ण्यन्त, उसस चिण्, दीर्घ विकल्प अक्राथि हिंसा किया, क्रास लगाया। जब ण्मुल् तब क्राथ क्राथ। वन धातु भी हिंसा अथमे विराज-मान है चस हिंसा खिची। यद्यपि वन सम्भक्तौ पढा है हिंसा अथमे मित्संज्ञा, ह्रस्वके लिए घटादिमे पढा। वनति हिंसा करता है। णिच्मे वनयति। अवनि अवानि चिण् है। ण्मुल्मे वन वन वान वान, वनिता वनिष्यति वनतु अवानीत् अवनीत्। वनु च ऐसा नही पढा क्यो कि वनु याचने यह अपूर्व धातु है। तनादि गणका मित्संज्ञाके लिए अनुवाद मात्र नही, उकार इत् होनेकी शक्तिसे। वहा वनुते उप्रत्यय, आत्मनेपद दोनोका भय है। साधा-रण क्रिया अर्थ होनेसे वनति वनत वनन्ति वनेगे। प्रवनयति मिता ह्रस्व हुआ। अनुपसृष्टस्य=उपसर्ग नही उसको मित् विकल्प कहेगे। ज्वलति जलता है, प्रकाश करता है। ज्वलिति कसन्तेभ्यो ण. सूत्रसे ण प्रत्ययके लिए पढा जानेवाला धातु मित्वार्थं अनुवाद मात्र है। णिच् होनेपर ह्रस्व प्रज्व-लयति ज्वप्ल=मिता ह्रस्व चिण्णमुलोःका विषय बननेके लिए घटादिमें

ह्मल चलने । प्रह्मलयति । प्रह्मलयति । स्मृ आध्याने । चिन्ताया पठिष्यमाणस्य आध्याने मित्वार्थोऽनुवाद । आध्यानमुत्कण्ठापूर्वक स्मरणम् । दृभये 'दृ विदारणे' इति क्र्यादेरयं मित्वार्थोऽनुवाद । दृणन्त प्रेरयति दरयति । भयादन्यत्र दारयति । 'धात्वन्तरमेवेदमिति' मते तु दरतीत्यादि । केचिद्धटादौ 'अत्स्मृदृत्वर इति सूत्रे च दृ इति दीर्घस्थाने ह्रस्व पठन्ति । तन्नेति माधव । नॄ नये । क्र्यादिषु पठिष्यमाणस्यानुवाद । नयादन्यत्र नारयति । ८१० श्रा पाके । 'श्रै' इति कृतात्वस्य श्रा इत्यदादिकस्य च सामान्येनानुकरणम् । 'लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य' लक्षणप्रतिपदोक्तयो प्रतिपदोक्तस्यैव

पढा ? ह्मलति चलता है । ह्मीन मछली चलती है । स्मृ धातु चिन्तन स्मरण अर्थमे पढा गया है । यहा आध्यान–उत्कण्ठा पूर्वक (उत्सुकतासे)याद करना अर्थमे मित्सज्ञाके लिए अनुवाद मात्र है । स्मरति स्मरत स्मरन्ति स्मरिता स्मरिष्यति स्मरतु स्मार्षीत् । स्मरयतु । स्मार स्मार स्मर स्मरम् । अस्मारि । दृधातु विदारण फाण्पने अर्थमे प्रसिद्ध है । किन्तु भय अर्थमे मित् सज्ञा वास्ते पढा । अर्थनिर्देश उपलक्षण है । भय भी होगा । दृणाति । दृणन्त=भयभीतको प्रेरित करता है । णिच् गुण रपर लट् तिप् शप् । मित् का फल मिता ह्रस्व । दरयति भीषयति डरवाता है । अन्यत्र=जब भय अर्थ नही न (मिता ह्रस्व) दारयति भेदयति फूट डालता है । यदि धात्वन्तर= दूसरी धातु है । क्र्यादिका अनुवाद नही । इस मतमे शप् । दरति बनेगा । ददार केचित्=किसीके मतमे अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशा इस सूत्रमे दीर्घके स्थानमे ह्रस्व । उनके मतमे अनुवाद असम्भव । माधव विरोध करते है कि दीर्घान्त पाठ सर्वसम्मत है । यदि ह्रस्वान्त होता शृदॄप्रा ह्रस्वो वा दीर्घ पढना व्यर्थ होता । दद्रतु ददरतु वास्ते । दीर्घान्त साधु । नॄ नये नयन प्रापण पहुचाना । श्ना नृणाति नरयति । अनरि अनारि । नर नर नार नारम् । नय अर्थमे मित्के लिए पढा । नय क्रियासे अन्य मित् नही,न ह्रस्व । नारयति

८१० श्रा–का पाक क्रिया अर्थमे णिच् परे मित् । भ्वादिमे मिलेगा । श्रै पाके अदादिमे भी है, जो लुग्विकरण है स्वतन्त्र धातु नही । शप् लुक् । श्राति । श्रा पाके पुनरुक्त न हो । श्रै पाके भ्वादिका आत्व करके अनुकरण अदादिका भी साधारणतया मान्य । श्रै अनेकार्थक है, पाक अर्थमे मित्सज्ञाके लिए अनुवाद । शप्–श्रायति । अत सति सम्भवे अन्यत्रपठितनामिह मित्वार्थोऽनुवाद इति सिद्धान्त ।पुनरुक्ति शका नही । यदि ऐसा श्रै पाके

ग्रहणम्' इति परिभाषाभ्याम । श्रपयति । विक्लेदयतीत्यर्थं । पाकादन्यत्र श्रापयति । स्वेदयतीत्यर्थ. । मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा । निशामन चाक्षुष-ज्ञानम् इति माधव. । ज्ञापनमात्रमित्यन्ये । निशानेषु इति पाठान्तरम् । निशान तीक्ष्णीकरणम् । एष्वेवार्थेषु जानातिर्मित् । ज्ञप मिच्च इति चुरादौ ज्ञापन मारणादिक च तस्यार्थ । कथ 'विज्ञापना भर्तृषु सिद्धमेति' इति 'तज्ज्ञापयत्याचार्य' इति च । शृणु, माधवते अचाक्षुषज्ञाने मित्त्वाऽभावात्,

---

पढे अत. कहा श्रा इति अदादिका अनुकरण भी प्रिय है । यद्यपि आत्व करके लाक्षणिक श्रा का अनुबाद उचित नही । अत: कहा—लुक् विकरण (अदादिमे) (अलुक् विकरण भ्वादिमे श्रायति । शप् लुक् नही होता) इन दोनोमे अलुक् (शप् विकरण) अदादिका मान्य तथा च—लक्षण (आत्व आदि) कार्य किसी सूत्रसे होनेपर और साक्षात् उच्चारित श्रा पाके आत्व नही करना पडता प्रति पदोक्त मान्य । इससे अदादिका अनुकरण समर्थित । दोनोका अनुकरण मान्य विलम्बितोपस्थितिकमिहि लाक्षणिक, शीघ्रोपस्थितिक प्रतिपदोक्तम् । स्वरतिसूयति सूतिमे सूपाठसे दोनोसिद्ध है,दोनो पढना लुग्विकरण परिभाषामे प्रमाण है । दूसरी न्यायसिद्धा दोनो विरोधनी है तथापि बाध्य बाधक नही णिच् । आदेच उपदेशे—से आत्व । अर्तिह्लीसे पुक् । मिता ह्रस्व । श्रा अकारान्त णिच् पुक् ह्रस्व कर लें । श्रपयति । पकाता है । मुलायम करता है । पाकादन्यत्र=पकाने अर्थसे अन्य अर्थमे न मित्, न ह्रस्व श्रापयति । पसीझता है, गीला होता है । अर्थ निर्देशके उपलक्षणसे । मारण—मारना,तोषण प्रसन्न करना, निशामन—तीखा करना अर्थमे ज्ञाधातु णित्परे मित्सज्ञक है । सम्पूर्वक ज्ञा धातुका घायल करना अर्थ । माधव मतमे निशामनका चाक्षुष् प्रत्यक्ष ज्ञान अर्थ । नि पूर्वक शम आलोचने चुरादिसे णिच् ल्युट् अन । निशामन । अन्यके मतमे ज्ञापन । उपसर्ग बलसे चाक्षुष ज्ञान इष्ट नही । मारण तोषण निशानेषु ज्ञा । ऐसा पाठ भी है । इन्ही अर्थोमे ज्ञा धातु मित् है । ज्ञा अवबोधने धातुसे श्ना विकरणसे जा आदेश । मारण आदि अर्थमे णिपरे मित्के लिए अनुबाद है । मित्का फल णिपरे ह्रस्व । पशु सज्ञपयति । अक्षत मारयति । सम्पूर्वक ज्ञासे णिच् पुक् उपधावृद्धि ह्रस्व, मारण अर्थमे । तोषण मे हरिं ज्ञपयति—सन्तोषयति प्रसन्न करता है । रूप सज्ञपयति । माधव-मते दर्शयति । अन्य मतमे बोधयति । रूपका ज्ञान कराता है । शर ज्ञपयति तीक्ष्णीकरोति बाण तीखा करता है । ठीक है । निशामन ज्ञापनमात्रम्

'ज्ञापनमात्रे मित्त्व'मिति मते तु 'ज्ञा नियोगे' इति चौरादिकस्य। धातूनामनेकार्थत्वात्। 'निशानेष्वि'ति पठता हरदत्तादीना मते तु न काप्यनुपपत्ति। कम्पने ८१२ चलि। 'चल कम्पने' इति ज्वलादि। चलयति शाखाम्। कम्पनादन्यत्र तु शील चालयति। अन्यथाकरोतीत्यर्थ। हरतीत्यर्थं, इति स्वामी। सूत्र चालयति। क्षिपतित्यर्थ। ८१३ छदि ऊर्जने। 'छद अपवारणे' इति चौरादिकस्य स्वार्थे णिजभावे मित्वार्थोऽयमनुवाद। अनेकार्थ-

---

कहने वाले ज्ञीप्स्यमानो बोधयितुमभिप्रेत। वृत्तिग्रन्थ सगत कैसे? माधव मतमे चाक्षुषज्ञान निशामनका अर्थ। अत बोले ज्ञप् मिच्च। चुरादि ज्ञाधातु का बोधन अर्थ भी है। माधवमतमे भी ज्ञपयतिमे ह्रस्व सगत। यदि ऐसा चुरादिका ज्ञप् मारण तोषण निशामनमे ही मित् हो। अन्य अर्थ है नही। बोध अर्थमे मित् कैसे? तब कहा—मारण तोषण निशामन ज्ञापन बोधन आदि अर्थ चुरादिके ज्ञप्का अर्थ माधवमतमे है। ज्ञप् मिच्च अर्थ **ज्ञाने ज्ञापने च वर्तते** ज्ञा और ज्ञप्को णि परे मित् होनेसे विज्ञापनामे ह्रस्व क्यो नही? सूचना—बोध करानेसे स्वामी सफल होता है। तथा च ज्ञापयति आचार्य। ह्रस्व क्यो नही? उत्तर—माधवमतमे चाक्षुष् (आखोसे देखकर) ज्ञानमे मित् नही, न ह्रस्व। यत्र चाक्षुषज्ञान तत्र मित्। जिस पक्षमे ज्ञापन मात्र, बोध, दर्शन इत्यादिमे। मित्सज्ञा पक्षमे ह्रस्व कैसे रुकेगा? तब कहा—ज्ञा **नियोगे** चुरादि धातुसे विज्ञापना ज्ञापयतिरूप बनेंगे, वहा मित्संज्ञाका निषेधक सूत्र-नान्ये मितोऽहेतौके निषेधसे। ज्ञाका नियोग अर्थ है। ज्ञापन अर्थ कैसे कहेगा? तब बोले—धातुओके अनेकार्थक होनेसे। हरदत्त आदि निशानेषु पढते है कोई दोष नही। क्योकि ज्ञापन मारण तोषण से भिन्न है। मित् नही होगा। माधवमतमे बोध कराने अर्थमे उपधा वृद्धि ज्ञापयति। ज्ञप्से ज्ञपयति ह्रस्व होगा। दोनो रूप साधु। चल् कम्पने ज्वलादि है हिलाने कपान अर्थमे मित्वार्थ ह्रस्व के लिए अनुबाद है। चलयति डाली पल्लव चलाता है। जब कम्पन अर्थ नही, न मित्, न ह्रस्व। चालयति शील भङ्ग करता है, मर्यादा तोडता है, लज्जा लूटता है। धातुके बहुत अर्थ होनेसे

८१३ छद धातुका ऊजन=बलवान् बनाने, प्राण डालने अर्थमे मित्। ऊर्ज—बलप्राणनयो। अन्यत्र पढा धातु विशेष अर्थमे णि परे मित् के लिए अनुबाद मात्र। ननु चुरादिके युजादिगणमे छद् पढा मित् है। उसका अनुबाद

त्वादूर्जेरर्थे वृत्ति । छदन्त प्रयुङ्क्ते छदयति । बलवन्त प्राणवन्त वा करोतीत्यर्थ. । अन्यत्र छादयति । अपवारयन्त प्रयुङ्क्ते इत्यर्थं । स्वार्थे णिचि तु छादयति । बलीभवति प्राणीभवति अपवारयति वेत्यर्थं । जिह्वोन्मथने ८१४ लडि 'लड विलासे' इति पठितस्य मित्वार्थोऽनुवाद । उन्मथन क्षोभणम् । जिह्वाशब्देन षष्ठीतत्पुरुष । लडयति जिह्वाम् । वा । लडयति जिह्वया । अन्ये तु जिह्वाशब्देन तद्व्यापारो लक्ष्यते । समाहारद्वन्द्वोऽयम् । लडयति । शत्रुम् । लडयति दधि । अन्यत्र लाडयति पुत्रम् । ८१५ मदी हर्षग्लेपनयो । ग्लेपन दैन्यम् । दैवादिकस्य मित्वार्थोऽयमनुवाद । मदयति हर्षयति ग्लेपयति

क्यो ? ज्ञपादि पाचके अतिरिक्त सभीको मित्का निषेध है (नान्ये मित से) अत बोले छद अपवारणे–रोकने हटाने ढकने अर्थमे युजादि गणमे पढा । ऊर्जन अर्थमे मित्के लिए छदका अनुबाद मात्र । आघृषाद्वासे आगे स्वार्थिक णिच नही होते । अत मित्सञ्ज्ञा उचित । धातुके अनेक अर्थ है । ऊर्जा अर्थमे भी शक्ति छदन्त प्रेरयति छदयति । यहा हेतु अर्थमे णिच् है, स्वार्थमे नही । नान्येमित का अर्थ स्वार्थिक है । णिच्च परे मित् ह्रस्व हुये । छदयति बलवान् बनाता, प्राण डालता हैं । जहा अपवारण अर्थ, वहा न मित्, न ह्रस्व छादयति स्वार्थमे णिच् होगा, नान्येमित निषेध लगेगा तब बलवान् प्राणवान् दूरी करण आच्छादन अर्थमे छादयति । ८१४ लड् धातु विलासे–जिह्वा के स्वाद ज्ञापन लोढने उन्मथन अर्थमे मित् हो । लड् विलासे भ्वादिमे पढा है जीभके लोढने लडखडाने, स्वाद ज्ञान कराने गाली देने, निन्दा करने आदि अर्थमे मित्सञ्ज्ञाके लिए पढा । धातु भेद नही, मित्कार्य होगा । गण भेदसे धातु भेद मित्सञ्ज्ञा विकल्प । जिह्वाया उन्मथन षष्ठी तत्पुरुष जीभका लडखडाना अटपट बोलना कुछ कहना, लडयति जिह्वा रसाना रसं ज्ञापयति । गति बुद्धिसे दो कर्म । अथवा जिह्वाया उन्मथन अन्य पदार्थज्ञापन । चैत्रो रसान् जानाति–जीभ संकेतसे । लडयति ज्ञापयति ज्ञान कराती है । अन्ये तु=अन्य आचार्य मतमे जीभ शब्दसे जीभका सारा व्यापार-पूरी क्रिया गाली स्वाद, सूचना बहुतबोल इत्यादि अर्थ लक्षणासे । अथवा जिह्वा च उन्मथनञ्च अनयो समाहारः जीभकी क्रिया, मन्थन क्रिया अर्थ । जीभ क्रिया—लडयति शत्रुम् । गाली दानादिक करोति । शत्रुको दुत्कार अप शब्दसे लथेडता है । गेहे शूरः श्वा कुत्ते गृहमे शेर है ऐसी गर्हा । उन्मथन लोडन घमाकर मन्थन, लडयति दही मथता है । लस्सीके लिए । यदि अन्यत्र

वेत्यर्थ । अन्यत्र मादयति । चित्तविकारमुत्पादयतीत्यर्थ । ध्वन शब्दे । भाव्यय मित्वाथमनूद्यते । ध्वनयति घण्टाम् । अन्यत्र ध्वानयति । अस्पष्टाक्षरमुच्चारयतीत्यर्थ ।

अत्र भोज 'दलवलिस्खलिरणिध्वनित्रपिक्षपयश्च' इति पपाठ । तत्र ध्वनिरणीउदाहृतौ । 'दल विशरणे' 'वल सवरणे' 'स्खल सचलने' 'त्रपूष लज्जायाम्' इति गता. । तेषां णौ, दलयति । वलयति । स्खलयति । त्रपयति । 'क्षै क्षये' इति वक्ष्यमाणस्य कृतात्वस्य पुका निर्देश क्षपयति । स्वन अवतसने 'शब्दे' इति पठिष्यमाणस्यानुवाद । स्वनयति । अन्यत्र स्वानयति । 'घटादयो

जीभकी क्रियासे भिन्न क्रिया हो तब न मित्, न ह्रस्व । पुत्र लाडयति क्रीडयति मिष्ठान्न दानेन अनुकूलयति, प्यार करता है, अर्थमे, न मित्, न ह्रस्व । ८१५ मद धातुका प्रसन्नता ग्लेपन दीनताकी क्रिया अर्थ । शप् होगा मदति बनेगा, तब कहा—दिवादिका श्यन्—विकरण मित्सज्ञा, मिता ह्रस्व के लिए अनुकरण मान्य । णिच् परे मदको दीर्घ । तब ह्रस्व मदयति । हर्ष होता है दीनता आती है । जहा यह अर्थ नही वहा मादयति मतवाला चित्तमे विकार उत्पन्न करता है । मद मद मादमादम । ध्वनका ध्वनि करना ध्वनयति घण्टा बजाता हैं । यह भावी ज्वलादिगणमे पढा जायेगा । ध्वनि अर्थमे मित्सज्ञाके लिये अनुबाद मात्र माने । धातुभेद होता विकल्प मित् हो जाता । जहा ध्वन्यात्मक नही, अस्पष्ट उच्चारण अर्थ, वहा ध्वानयति न मित्, न ह्रस्व ।

अत्र भोज घटादि गणमे भोजका मत है कि दलि बलि आदि धातु भी घटादिमे मान्य । ध्वन रण भी पढ गये । विना व्यवधानके कण रण गतौ पढा ही है भ्वादिमे (भोजमते) पहले पाठ नही है पुनरुक्ति न समझें । विकल्प से बचनेके लिए सवरण अर्थमे वलयति विखरने अथमे सचलन अर्थमे, लज्जा अर्थमे, त्रपयति णि परे मिता ह्रस्व हुआ । दौसे णिच् आत्व पुक्, ह्रस्व क्षपयति क्षीण होता है । अनुबाद सम्भव । स्वन् धातुका अवतसन भूषण अलङ्कार अर्थ । घटादिके बाद स्वन शब्दे पढा जायेगा । अलङ्कार अर्थमें मिता ह्रस्व के लिए यहा अनुकरग किया । स्वनयति अलकृत करता है । भूषयति अस्वनीत् । अस्वानीत्, अस्वनि अस्वानि विभूषित किया । स्वनं स्वन स्वान स्वानम् । बहुत सजा हुआ । धातुभेद होता विकल्प मित् होता,

मित ' मित्संज्ञका इत्यर्थः । 'जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च' मित इत्यनुवर्तते। जृष इति षित्वनिर्देशाज्जीर्यतेर्ग्रहणम् । जृणातेस्तु जारयति । केचित्तु 'जनीजृष्क्नसु' इति पठित्वा क्नसु निरसने इति दैवादिकमुदाहरन्ति । 'ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद्वा' एषा मित्त्वं वा । प्राप्तविभाषेयम् । ज्वलयति ज्वालयति । उपसृष्टे तु नित्यं मित्त्वम् । प्रज्वलति । कथं तर्हि प्रज्वालयति ऊन्नामयतीति

अन्यत्र=भूषण अर्थसे अन्य अर्थमें ध्वानयति घण्टा बजाता है। न मित्, न ह्रस्व । घटादयः=इस गणमे म इत् नही, मित् कैसे ? तब कहा–मित्संज्ञा है ह्रस्व और दीर्घके लिए । (ग) जनी प्रादुर्भावे जृष वयोहानौ, क्नसुह्वरण दीप्त्यो तीनों दिवादि । रञ्ज रागे,दिवादि भ्वादि भी, द्वन्द्वमे प्रथमा ।

अमन्ता=अम अन्ते येषान्ते–क्रम गम आदि ये धातु घटादिमे न पढ़ें जाने पर भी मित्संज्ञक हो । मिता ह्रस्व हो। जनयति पैदा करता है जरयति बुढढा होता है । क्नसयति रजयति मृगान् । रञ्जयति पक्षिण क्रमयति गमयति जृष–ष इत् होनेसे श्यन् विकरण ही मित् मान्य । जृणाति । श्ना विकरण षित नही, न मित् । जारयति, न ह्रस्व । किसीने दिवादिका क्नसु माना उनके मतमे जृणाति भी मित् । (ग०) ज्वल् दीप्तौ, ह्वल ह्मल चलने, अनुपसर्गकी दशामे मित् हो विकल्पसे । प्राप्त विभाषा=पूर्वसूत्रसे प्राप्त था विकल्पका सूत्र । नमको मान्त मानकर मित् माना । ज्वलयति । उपसृष्टे उपसर्ग जुडने पर नित्य मित्संज्ञा हो । प्रज्वलयति एकरूप । यदि ऐसा प्रज्वालयतिमे प्र, उन्नामयतिमे उत् उपसर्ग है ह्रस्व क्यो नही ? उत्तर–भावे घञ् प्रज्वलनम् प्रज्वाल , उन्नमन उन्नाम बनाकर तत्करोति(प्रज्वाल करोति उन्नाम करोति अर्थमे) तदाचष्टेसे णिच । इष्ठवत् भाव । टिलोप होनेपर टिलोपको स्थानिवत् होनेसे ह्रस्व नही होगा । प्रज्वालि । उन्नामि । धातु से लट् ति शप् गुण अयादेश प्रज्वालयति रूप बनें । यदि ऐसा सक्रामयतिमें अम् अन्त धातु होनेसे मिता ह्रस्व क्यो नहीं, इसलिए कि उसमे वा चित्त विरागे से वा आया । मित् अभाव पक्षमे न ह्रस्व । सक्रामयति रूप । कदाचित् ह्रस्व न रुके, तब कहा–व्यवस्थित–विकल्पकी व्यवस्थामे विविधा अवस्थासे अभावकी अवस्था ही मानी जाय । वृत्तिकारका मत है । भाष्यमे नही मिलता । एतेन–व्यवस्थानुकूल विकल्पके सहारेसे विश्रामयन और विश्रामयमे भी ह्रस्व नही हुआ है । (ग०) गण सूत्र ग्ला श्ना वन् वम ये उपसर्गसे न जुडे हो, मित् माने जाय, विकल्पसे । ग्ला श्ना–ग्लापयति स्नाप-

घञन्तात् 'तत्करोति' इति णौ। कथं सङ्क्रामयतीति। 'सिता ह्रस्व इति सूत्रे वा चित्तविरागे' इत्यतो वा इत्यनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणादिति वृत्तिकृत् एतेन 'रजो विश्रामयन् राज्ञां' 'धुर्यान्विश्रामयेति स' इत्यादि व्याख्यातम्। 'ग्लास्नावनुवमां च' अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा स्यात्। आद्ययोरप्राप्ते इतरयोः प्राप्ते विभाषा। 'न कम्यमिचमाम्'। अमन्तत्वात्प्राप्तमित्त्वमेषां न स्यात्। कामयते। आमयति। चामयति। शमो दर्शने। शम्यतिर्दर्शने मिन्न स्यात्। निशामयति रूपम्। अन्यत्र तु 'प्रणयिनो निशमय्य वधू. कथा'। कथं तर्हि निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम' इति। शम आलोचने इति चौरादिकस्य। धातूनामनेकार्थत्वाच्छ्रवणे वृत्ति। शाम्यतिवत्। यमो ऽपरिवेषणे। यच्छतिर्भोजनतोऽन्यत्र मिन्न स्यात्। आयामयति। द्राघयति। व्यापारयति

र्यात घटादिस प्राप्त नही अप्राप्त विकल्प मित् है ग्लपयति स्नपयति अन्य दो को प्राप्त हे। विकल्प मित् वास्ते सूत्र। वानयति वनयति। वामयति वमयति। (ग०) कम अम चम धातुकी मित्सज्ञा न हो जो अमन्त मानकर प्राप्त था। कामयतेमे मित् निषेधसे न ह्रस्व इत्यादि। (ग०) शमका दर्शन आखसे देखा हाल अथमे मित् न हो निशामयति–रूप देखता है। न मित्, न ह्रस्व। शम अनेकार्थक है। दर्शन अर्थमे शक्ति हो मित् हो जाय। दिवादि का शम उपशमे मान्य। शम आलोचने चुरादिका नही। अन्यत्र—नेत्र दर्शन के अतिरिक्त अर्थमे मित् होता हे। प्रेमीगण वधू कथाको सुनाकर (निशमय्य) मित् ह्रस्व हुआ। यदि ऐसा निशामय तदुत्पत्ति (विस्तराद्गदतोमम) उसका जन्म सुनाओ) यहा मिता ह्रस्व क्यो नही? समाधान—सम आलोचने चुरादि है। नान्येमितोऽहेतौ मित्का निषेध करनेसे न ह्रस्व आलोचना अर्थ है सुनना अर्थ कैसे? धातुके अनेकार्थकतासे। सुनने अथमे शक्ति, शाम्यतिवत्। जैसे शमु उपशमे का दर्शन अथ, ऐसे ही शम आलोचनेका श्रवण अर्थ।

(ग०) यम धातु परिवेषण-भोजनपात्रे ओदनद्विदलपायसादि भोज्यवस्तूना स्थापन, थालीमे भोजन परोसना अर्थ न हो तो मित् हो जाय। आयामयति। विस्तार कराता है। भोजन परोसना नही, न मित् न ह्रस्व। द्राघयति—दीर्घ-लम्बा या प्रवृत्त कराता है ह्रस्व नही, मित्वके निषेधसे। जहा परिवेषण भोजन कराना है। वहा मित् होता है। यम ऊपरमे उपसर्ग बलसे अर्थ बदलता है। यमयति ब्राह्मणोको खिलाता है। भुञ्ज्यते ब्राह्मणाः तान् परिवेषणेन प्रवर्तयति, यदि ऐसा नियमयनका नियन्त्रण

वेत्यर्थः। परिवेषणे तु यमयति ब्राह्मणान। भोजयतीत्यर्थ। 'पर्यवसित नियमन्' इत्यादि तु नियमवच्छब्दात्तत्करोतीति णौ बोध्यम्। ८२० 'स्खदि-अवपरिभ्या च' मिन्नेत्येव अवस्खादयति। परिस्खादयति। अपावपरिभ्य इति न्यासकार। स्वामी तु 'न कमि–' इति नञमुत्तरत्रिसूत्र्यामननुवर्त्य 'शम-अदर्शने' इति चिच्छेद। यमस्तु अपरिवेषणे मित्वमाह। तन्मते 'पर्यवसित नयमयन्' इत्यादि सम्यगेव। उपसृष्टस्य स्खदेश्चेदवादिपूर्वस्य इति नियमा-त्प्रस्खादयतीत्याह। तस्मात्सूत्रद्वये उदाहरणप्रत्युदाहरयोर्व्यत्यास फलित। इदं च मत वृत्तिन्यासादिविरोधादुपेक्ष्यम्। ८२१ फण गतौ। न इति निवृत्तमू असम्भवात्। निषेधात्पूर्वमसौ न पठितऽ। फणादिकार्यानुरोधात्। २३५४ **फणां च सप्तानाम्** ।६।४।१२५। एषा वा एत्वाभ्यासलोपौ स्त किति लिटि

कन्ट्रोल अर्थ हैं। (भोजन नही, न मित्)ह्रस्व कैसे ? तब कहा—नियमवत्= नियमन नियम। यम समुपनिविषु च, भावमे अच्, उससे मतुप। तत्करोति से णिच् विन्मतोर्लुक्से मतुप्का लुक्। लट् शतृ गुण-अय अय नियमयन्।

(ग०) स्खद धातु अव परिसे जुडा हो, तब मित् न हो। घटादिमे स्खद स्खदीपढा है उसीसे मित् प्राप्त का निषेध हुआ। न कमि=शमोऽदर्शने, यमो-आदि तीन सूत्रोमे स्वामीके मतमे मित् नही। अदर्शन एव शमधातुर्मित, न तु दर्शने। यम अपरिवेषण अर्थमे ही मित् हो, परिवेषणमे नही। उनके मतमे सोपसर्गस्य=स्खद धातो. मित्व चेत् अवपरिभ्या परस्य एव। उपसृष्ट-स्य=उपसर्ग सहितमे अव परि प्रिय हो। अत अन्य उपसर्गसे जित् नही होता सूत्रद्वय =दोनो सूत्रोके उदाहरण प्रत्युदाहरणमे परिवर्तन होता ही है। परि स्खादयति, अवस्खादयति अवस्खदति। यह मत वृत्ति न्यास विरोधसे अमान्य,

८२१ फण धातुका गमन अर्थ। यह घटादिका धातु होकर भी मित्सज्ञक नही। स्वन् अवतसने तक घटादि मित है। यहा प्राप्त नही, निषेध कैसे ? तब कहा—नेति निवृत्ता=निषेध लौट गया, मित् ही रहा। यदि (मित् न) को लौटाना था, न कम्यमि-के निषेधके पहले फण गतौ क्यो नही पढा ? फणादि कार्यके अनुरोधसे। पहले पढते कमि अमि भी फणादि हो जाते।

(५४) फणादि सात धातुओको एत्व हो, अभ्यासलोप भी, किति लिटि सेटि थल् परे जो अनुवृत्तिसे आये। व्वसो से एत गमहनसे कित्, वाजृभ्रमु से वा। न की अनुवृत्ति नही होती। फणति-फण निकालना गति अफाणीत् अफणीत् फफाण फेणतु। फणादि मानकर फफणको एत्व अभ्यासलोप।

सेटि थलि च। फेणतु। फेणु। पफणतु। पफणु। फेणिथ–पफणिथ। फणयति। वृत्। घटादि समाप्त.। फणे प्रागेव वृदित्येके। तन्मते फाणयतीत्येव। राजृ दीप्तौ। स्वरितेत्। राजति—राजते। रेजतु'–रराजतु। रेजे-रराजे। अत इत्यनुवृत्तावपि विधानसामार्थ्यादात एत्वम्। टुभ्राज टुभ्लाश दीप्तौ। अनुदात्तेत। भ्राजतेरिह पाठ फणादिकार्यार्थः पूव पाठस्तु व्रश्चादिषत्वाभावार्थं। तत्र हि राजिसाहचर्यात्फणादेरेव ग्रहणम्। भ्रेजे। बभ्राजे। 'वा भ्राश इति श्यन् वा। भ्राश्यते—भ्राशते। भ्रेशे—बभ्राशे। २लाश्य३–भ्लाश्येते। भ्लेशे–बभ्लाशे। द्वावपीमौ यालव्यान्तौ। स्यमु स्वन ध्वन शब्दे

विकल्प पक्षमे फफणतु भी बनेगा। फणयति ह्रस्व हुआ, निषेध न आनेसे, णि परे अफाणि अफणि। फणफण, फाणफाणम् बार बार फण निकालना (ग०) वृत–वृतु धातु समाप्ति अथमे। घटादिका प्रपञ्च पूर्ण। किसीने फणके पहले ही वृत समाप्त कहा, उनके मतमे फाणयति होगा। न मित्, न ह्रस्व। राजृ आदि छ धातुको फणादि मानकर एत्व अभ्यास लोप। स्वरित मे दो धर्म-उदात्त और अनुदात्त। अत दोनो पद राजति स्वय प्रकाशित हो रहा कर्ता। राजते। लिट्मे रराज रेजतु रेजुः। रेजथु रेज। रेजे रेजाते रेजिरे—पक्षमे रराजे रराजाते रराजिरे। ननु फणा च सप्ताना सूत्रमे अत आता है। उसीको एत्व, हो आको एत्व कैसे? तब कहा–अत्के आने पर भी सात धातुको फणादिके एत्व अभ्यासलोप विधानकी शक्तिसे) आ कारकोभी एत्व। टु इत्का फल ट्वितो अथुच्। अनुदात्त इत्से आत्मनेपद। भ्राजका पाठ प्रकाश(फणादिकार्य)एत्व अभ्यासलोपके लिए। पहले पढे हुएको व्रश्चभ्रस्ज सूत्रसे षत्वका आभाव। तत्र हि षत्व विधिमे राजके साथ पाठ से फणादिके भ्राजका ग्रहण। भ्राजते शुशोभित है। द्वित्व फणादिमे देखकर एत्व अभ्यासलोप भ्रेजे पक्षमे बभ्राजे। परोक्षकालमे चमक चुका। वा भ्राश सूत्रसे विकल्प श्यन् भ्राश्यते चमकाता है। भ्राश भ्राश लिट् त एश्। एत्व अभ्यासलोप। भ्रेशे भ्रेशाते भ्रेशिरे बभ्रशिषे। भ्राशते भकभकाती ज्वाला, एत्व अभ्यासलोपसे भ्लेशे भ्लेशाते भ्लेशिरे। ८२६ स्यमति ध्वनति घण्टाम्। अध्वानीत् अध्वनीत्।

स्मादय=स्यम्धातुसे लेकर क्षरति तक परस्मैपदकी साधनिका। स्यमति आवाज करता है। सस्याम। स्येमु सस्वान् स्वेनतु। स्वनिता। अस्वनत्। ध्वनेत् अध्वानीत् अध्वनीत् विष्वणतिमे वेश्चाश्वनो भोजने

स्यमादय क्षरत्यन्ता परस्मैपदिन । स्येमतु—सस्यमतुः । अस्यमीत् स्वेनतु सस्वनतु । अस्वनीत् अस्वानीत् । विष्वणति । अवष्वणति । सशब्द भुङ्क्त इत्यर्थ । 'वेश्च स्वन' इति षत्वम् । फणादयो गता । दध्वनतु । षम ष्टम अवैकल्ये । ससाम । तस्ताम् । ज्वल दीप्तौ । 'अतो ल्रान्तस्य' अज्वालीत् चल कम्पने । जल घातने । घातन तैक्ष्ण्यम् । टल ट्वल वैक्लव्ये । ष्ठल स्थाने । हल विलखने णल गन्धे । बन्धने इत्येके । पल गतौ । पलति ।८४० बल प्राणने धान्यावरोधने च वलति । बेलतु बेलुः । पुल महत्वे । पोलति कुल सस्त्याने, बन्धुषु च । सस्त्यान सघातः । बन्धु शब्देन तद्व्यापारो गृह्यते,

---

से षत्व । अवाच्चसे भी । अवष्णति चिल्लाकर खाता है । फणादिगण पूरे हुए । अस्यमीत् हमय अन्तमेरहे वृद्धि नही होती । ध्वनति दध्वान । दध्वनतु दध्वनुः । ८३० । समति स्तमति विकल नही है । स्तम को द्वित्व शर्पूर्वमे हो, खय् शेष तस्ताम ।

अथ ज्वलादि =ज्वलका दीप्ति जलना रोशनीके अनुकूल क्रिया । ज्वलति दीप । जज्वाल प्रदीप । ज्वलिष्यति अज्वलत् अज्वालीत् । अतो ल्रान्तस्य ।चलति कपता है चचाल चेलतु । अचलत् चलेत् चल्यात् अचालीत् । जलति तीखा करता है । जलिष्यति जलतु जलेत् अजालीत् । टलति भयसे विकल होता है । भयादि जनित । उद्विग्नता ।टलतु । भयसे घबडाकर हटता है । टटाल टेलतु । टलिष्यति टल्यात् अटालीत् । स्थलति बैठता हे षोपदेश तष्ठाल तष्ठलतु तष्ठलु । न जाने कब बैठा । स्थलिष्यति अस्थलत् बैठ गया । अस्थालीत् । हलति-जोतता है फारसे रेखा खीचता है । हलतु अहलत् अहालीत् । नलति गन्ध आता है या बधता है नाल ठोकवाता हे । अनालीत् । नाल लगवाया । पलति पलभरमें जाता है बहुत तेज गमन । पलिष्यति । पलभरमे जायेगा । पलतु । पलभरमे जाओ । अपालीत्—एक पल लगा । बलति प्राण आ रहा है । धान्य अवरोधन की क्रिया । बवाल बेलतु- अवालीत् । पोलति-बातका पुल बाधता है । पुपोल पोलिष्यति अपोलत् अपोलीत् पुल बाध दिया ।

। ८४२ । कोलति कुल (समुदाय) बनाता है । बन्धुताकी क्रिया विवाहादि व्यापार, चुकोल । शलति होलति पतति गति क्रिया । पनधातु है । अशालीत् अहोलीत् पोल किया । पपात गिर चुका । पेततु एत्व अभ्यास लोप ः पतितासि पतितास्म । पततु पतानि पताव पताम ।

पताम । पेततु पतिता । (२३५५) पत पुम् ७।४।१९।। अङि परे । अपप्तत् नेर्गद इति णत्वम् । प्रण्यपप्तत् । क्वथे निष्पाके । क्वथति । चक्वाथ । अक्वथीत् । पथे गतौ । अपथीत् । मथ विलोडने । मेथतु अमथीत । टुवम् उद्गिरणे । इहैव निपातनात् ऋत इत्वमिति सुधाकर । ववाम । ववमतु । वादित्वादेत्वाभ्यासलोपौ न । भागवृत्तौ तु वेमतुरित्याद्यप्युदाहृतम् । तद्भाष्यादौ न दृष्टम् । ८५० भ्रमु चलने । 'वा भ्राश इति श्यन्वा । भ्रम्यति भ्रमति ।

पतेत पतेय पतेव पतेम । स पत्यात् पतन ह्रास क्रियावाचक पतधातुसे भूतकालिक पतनक्रियाके कर्तामे लुङ । लृदित् से च्लि को अङ ति अट । अपत अत् । दशामे ।

। २३९५५ । पतको पुम् आगम हो अङ् परे । ऋदृशो अङिसे आया । मित्से अन्त अच्से परे य होगा । अपप्तत् अपप्तताम् अपप्तन् । क्वथति जलका चौथाई मात्रा शेष तीन भाग शोषण पर्यन्त पाक निष्पाक है । वर्तमानकालिक क्रिया । क्वथको लिट् परे द्वित्व आदि । क्वथिता क्वथिष्यति अक्वथत् । अक्वथ इसईत् इट–इटि इति । दीर्घ आदि । इत् से न वृद्धि । ए इत् पथका गति-रास्ता पर चलना । पथति । पपाथ पेथतु. । पथिष्यति पथतु पथ पर चलो । पथेत् पथ्यात् । अपथीत् अपथिष्टाम् अपथिषु । यत्र यत्र एइत् तत्र तत्र न वृद्धि । मथति बिलोडन मन्थन करता है । मथामि मथाव मथाम । ममाथ मेथु मथन किए । मथिता मथिष्यति मथतु अमथत । मथेत् मथ्यात अमथीत् अमथिष्टाम् अमथिषु । अमथी अमथिष्टम् अमथिष्ट । अमथिषम् अमथिष्व अमथिष्म । ह्मयन्तक्षणजागृणिश्वेदिता से इट् निषेध । टुइत् वम वातुका उद्गिरण उगलना वमन उलटि करना इहैव=गृ निगरणे धातु से ल्युट् । ऋत इत् को बाधकर गुण हो । उद्गरण पढना उचित है । किन्तु सुधाकरपण्डितके मतमे ऋको इत्व होता है । गुण नही । बमति उल्टी करता है । ववाम बमन किया । न शस दद वादि के निषेधसे ऐत्व अभ्यास लोप नही । ववमतु बवमु । सभी उगल दिए । भागवृत्तिकारने ऐत्व अभ्यासलोप करके बेमतु बेमुः भी पढा । भाष्य से समर्थित नही । वमिष्यति बमतु । वम, वमानि वमाव वमाम । अवमत् अवमीत् ।

। ८५० । भ्रम धातुका चलने वक्रमार्ग सचाले=रास्ताभ्रम या शक्तिज्ञान का भ्रम अर्थमे भ्रमति रास्ता भूलता है । ज्ञान सही नही, लट ति शप् ।

भ्राम्यति–इति दिवादौ वक्ष्यते। (५६) **वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६।३।१२४॥** एषा मेत्वाभ्यासलोपौ वा स्तः किति लिटि सेटि थलि च। भ्रेमतु बभ्रमतु। अभ्रमीत्। क्षर सञ्चलने। अक्षारीत्।

अथ द्वावनुदात्तेतौ। षह मर्षणे। 'परिनिविभ्य' इति षत्वम्। परिषहते। सेहे। सहिता। 'तीषसह' इति वा इट्। इडभावे ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपाः। (५७) **सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२॥** अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे सति।

भ्रमुक्रमु आदि सूत्र से पक्षमे श्यन् भ्राम्यति। जब शप्। **भ्रमति भ्रमत भ्रमन्ति। भ्रमसि** भ्रमामि। क्वापरे इट विकल्प के लिए उइत् है। परोक्ष काल मे भ्रम हुआ हो कर्ता मे लिट् ति णल् द्वित्व उपधा वृद्धि। **बभ्राम** रास्ता भूला, ज्ञान गु हुआ। **भ्रेमतु**। ऐत्व अभ्यास लोप का सूत्र। २२५६। **वा जॄभ्रमु**–त्रस इन धातुओ को ऐत्व अभ्यासलोप हो विकल्पसे। इस सूत्रमे अत एक हल्मध्ये से लिट। थलि च से लिट् अनुवृत्त। थ्वसो से ऐत्व, गमहन—से क्ङिति आये। भ्रेमुः **बभ्रमु। भ्रमिता भ्रमितासि भ्रमतास्मि। भ्रमिष्यसि। भ्रमतु** भ्रमानि भ्रमाव भ्रमाम। **अभ्रमत् अभ्रमीत्** ह्मयन्तक्षणसे वृद्धिनिषेध। त्वम् **अभ्रमी।** अहम् **अभ्रमिषम्। अभ्रमिष्यत्। क्षरति** पसीजता चूता है। **चक्षार। क्षरिता अक्षरत् अक्षारीत् अक्षारिष्टाम्** अतोलरान्तस्य वृद्धि।

अथ दो धातु अनुदात इत् से अत्मनेपद। ८५१। आदि ष को स। सह का मार्षण छमाकी क्रिया। अपराधे सत्यपि कोपस्य अप्रकटीकरण मर्षं। क्रोधको पी जाना। **सहते सहेते सहन्ते। सहसे सहेथे सहध्वे। सहे सहावहे सहामहे।** परिउपसर्ग पर षत्व। सहन क्षमा परोक्षमे हो चुके हो लिट् त एश्। सह सह द्वित्व। ऐत्व अभ्यास लोप आदि। **सेहे सेहाते सेहिरे** सेहिसे। अनद्यतन भविष्यकाल की क्षमा क्रिया हो। तब लुट् तास् डा आदि। तीषसहलुभरुषरिष. से। इट् **सहिता सहितारौ सहितार**। जब इट् नही तब (सह ता) दशा मे होढ। झषस्तथो, से त को ध। ढ ढोढे लोप. ढ का लोप। स ढा दशामे।

। २२५७। **वह सह** धातु के अकार को ओकार हो, ढ लोप परे ढ्लोप सूत्र से ढ आया, र नहीं, असम्भावनासे, श के अ को ओ। **सोढा सोढारौ सोढारः** ढ लोप क्यों? सहते वहते को ओ न हो। परिसोढ़ा परिनिविभ्य प्राप्त ष का निषेध सूत्र। ५८। सोढ रूप सह के स को ष नही होता, न

(५८) सोढ ८।३।११५।। सोढ्रूपस्य सहे सस्य षत्व न स्यात् । परिसोढा,
(५९) सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि ८।३।७१।। परिनिविभ्य परेषां सिवादीना सस्य षो वा स्यादड्व्यवायेऽपि । पर्यषहत । पर्यसहत । रमु क्रीडायाम । रेमे रेमिषे । रन्ता रस्यते । रसीष्ट । अरस्त ।

अथ कसन्ता परस्मैपदिन । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । (२३६०)
पाघ्राध्मास्थाम्नादाणदृश्यर्तिसर्तिशदसदा पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा ४।३।७८।। पादीनां पिबादय स्युरित्सकशकारादौ

हुआ । सहे साढ से स आया, मूर्धन्य का अधिकार । 'न रपर' से न आया । सहिष्यति सोष्यते । सहता सहस्व अह सहै । सहावहै । असहत । ५९ ।
सिवादिना परि । नेटि से परे सिव, सह सुट् स्तु स्वञ्ज के स को ष विकल्प से हो । अट् । अ इ उ–हृगवरद् परे षत्व । पर्यषहत । ७५४। रमधातुका क्रीडा खेल रमण आनन्दकी क्रिया । अनिट् है, केचित् उदित मानकर रमित्वा रन्त्वा । इट करते है । माधव नही सहते । रन्ता एक रूप कहते हैं । रमते रेमेते रमन्ते महिषा इव । रेमे रेमाते रेमिरे । रेमिषे रेमाथे रेमिध्वे । रेमे रेमिमहे । क्रादि नियमसे इट् । रन्ता रन्तारौ रन्तारः रन्तासे रन्ताहे । रमते इति रमा पचादि अच् टाप् । जब घञ् राम. । णि परे अमन्त मानकर ह्रस्व रमयति रस्यते रस्येते रस्यन्ते । रमण करेगे ? खेलेंगे । अरस्त अरसाताम अरसत । अरष्ठा । अरषि । अहम् मैं खेला रमा । रमता, रमेता, रमन्ता, रमस्व, रमेथा रमध्व, रमै रमावहै । अरमत अरमेताम् अरमन्त । अरमथा अरमेथाम् । रमेत रमेयाता रमेरन् । रमेथाः रमेयाथा रमेध्व । रमेय रमेवहि रमेमहि ।

अथ–कस गतौ तक परस्मैपद शैली की साधनिका । ८५४ । लृ इत । सद् धातुका विशरण अवयव का अलगाव, गमन अवसादन=विनाश की क्रिया । धातु आदि ष को स । लट् शप् । सद् अ ति । स्थिति मे ।

। २३६० । पा घ्राध्मा स्था म्ना दाण दृशि अर्ति सर्ति शद् सद (द्वन्द्व से षष्ठी) के स्थान मे पिब जिघ्र धम तिष्ठ मन यच्छ पश्य, ऋच्छ धौ-शीय-सीद-(द्वन्द्व से प्रथमा) यथासख्य गणनाक्रमसे हो । इत्सञ्ज्ञक शकारादि प्रत्यय परे । श च इच्च सदके स्थानमे सीद् आदेश । सीदति सीदतः सीदन्ति । सीदसि । सीदामि सीदाव. सीदाम । बिखरना जाना विनाश होना अर्थ । ससाद=सद सद ससद उपधावृद्धि । एककर्तामें विशरण

प्रत्यये परे। सीदति। ससाद, सेदतु.। सेदिथ ससत्थ। सत्ता। सत्स्यति। लृदित्वादङ्। असदत्। सदिरप्रते। निषीदति। न्यषीदत्। (६१) **सदेः परस्य लिटि ८।३।११८॥** सदेरभ्यासात्परस्य षत्व द स्याल्लिटि। निषसाद, निषेदतु। शद्लृ शातने। विशीर्णतायामयम्। शातन तु विषयतया निर्दिश्यते। (६२) **शदेः शित १।३।६०॥** शिद्भाविनोऽस्मादात्मनेपद स्यात्। शीयते।

गमन विनाश की परोक्षभूतकालिक क्रिया। सेदतु सेदु एत्व अभ्यास लोप थलि च सेटि सूत्रसे थलि परे क्रादिनियमसे प्राप्त इट् का उपदेशोऽत्वत द्वारा निषेध पर है भारद्वाजनियमसे वा इट्। सेदिथ। न इट्, ससत्थ। द को चर्त्वं त। सेदिव सेदिम मे नित्य इट्। क्रादिनियमसे अनिट्धातु है। आगामी भविष्यमे विखरना, जाना, विनाश हो लुट्। सद ता। चर्त्वं सत्ता सत्तारौ सत्तार सत्तासि सप्तास्मि, विखरने या नष्ट होनेवाला हू। सद् स्यति। सत्स्यति क्षीण होगा। सीदतु स उसका नाश हो। असीदत् असीदता असीदन्। असीद असीदतम् असीदत। असीदम् असीदाव असीदाम। सीदेत्। लुङ् मे लृदित से च्लि को अङ। नि उपसर्ग दशामे 'सदिरप्रते' से षत्व निषीदति, निषसाद अभ्यासपरे स्थादिषु-अभ्यासेन से षत्व प्राप्तका निषेध सूत्र।

२३६१। सद के अभ्याससे परे स को ष नही होता, लिट् परे। 'न" से न आया। मूर्धन्य का अधिकार। सदे. मे अवयव षष्ठी। पर शब्द उत्तरखण्ड अर्थमे। सद के उत्तरखण्डको षत्व नही होता। शद धातु शातन शीर्णतानुकूला क्रिया बिखरने अर्थमे है। बिशीर्णता विखरना अर्थमे हेतुमति णिच् करके ल्युट्। शातन वना जो विषयतया ज्ञान हो। विपूर्वक षि बन्धने से अ। विषय=अबिनाभावे न (जिसके विना रह नही सकता) प्रेरणाके बिना विखरना असम्भव। अत" शातन पढा। ६२। शदे अनुदात्त ङित् से आत्मनेपद आया। श इत् यस्य शित्। शप् होना हो (शित् भावी-भविष्यन् यस्मात्। उससे आत्मनेपद हो। शीयते—विशरणक्रिया वाचक शद् धातुसे लट्-आत्मनेपद त एत्व। शेष। पाघ्राध्मा। (शद को शीय आदेश) शीयेते शीयन्ते विखरते हैं। परोक्षभूतकालमे शद शद शशाद उपधावृद्धि। शेदतु शेदुः ऐत्व अभ्यास लोप। शेदिथ अनिट् है। क्रादिनितमसे प्राप्त इट का उपदेशे अत्वत नियमसे निषेध प्राप्त, भारद्वाजनियमसे इट्। पक्ष मे थलि च सेट् एत्व अभ्यासलोप सेदिव सेदिम। वस मस परे। क्रादिनियमसे नित्य

शशाद। शेदतु। शेदिथ शशत्थ। शत्ता, अशदत् ८५६ क्रुश आह्वाने रोदने च। क्रोशति क्रोष्टा। चले क्स। अक्रुक्षत्। कुच सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भ-विलेखनेषु। कोचति। चुकोच। बुध अवगमने। बोधति, बोधिता। बोधिष्यति ८५९ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। रोहति। रुरोह। रुरोहिथ। रोढा, रोक्ष्यति। अरुक्षत्। कस गतौ। अकासीत्, अकसीत्। वृत् इति ज्वलादिगण।

इट्। लुङ् मे लृदित् जानकर पुषादिसे च्लिको अङ। अशदत् अशदताम् अशदन्। क्रुश का आह्वान् बुलाकर, क्रोध करना और रोना अर्थ। क्रोशति एक कर्तामे वर्तमानकालिक कोशना, रोना क्रिया। चुक्रोश चुक्रुशतुः चुक्रुशु: चुक्रोशिथ अनिट है। क्रादिनियमसे थलपरे नित्य इट। अजन्त अकारवान् न होनेसे द्वाज—नियम नही लगा। चुक्रुशिव चुक्रुशिम। क्रोधसे बुलाया, रोया। अद्यभिन्नभविष्यकालमे रोना क्रोधमे बुलाना कर्ता मे लुट्। क्रुश ता। व्रश्चभ्रस्जसे श को ष। त को ट। क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रोष्टार। क्रोष्टासि रोनेवाले हो। क्रोशतु अक्रोशत् क्रोशेत्, अक्रुश स त् शल इगुपधादनिट से च्लि को क्स। व्रश्च श को ष षढो से षको क। षत्व। क्ष। कित् से न गण। कुच् धातुका सम्पचन कौटिल्य प्रतिष्टम्भ अवरोध विलोडन रेखा खीचने की क्रिया। इमी अर्थ मे ज्वलादि का ण प्रत्यय हो। क्रुश शब्दे तारे च अर्थमे न हो। अकोचीत् बुधका अवगमन ज्ञान की क्रिया अर्थ बोधति। बुबोध। ज्ञान कर चुका। बोधिता ज्ञान करेगा सेट् है। श्यन् वाला अनिट् है, बोधतु अबोधत, बोधेत् बुध्यात् अबोधित् अबोधी अबोधिषम्। रुह बीजका अकुरित होना और प्रकट होने की क्रिया। अनिट् है। रोहति बीज उगता है प्रकट होता है। रुह-रुह, रुरोह अनदेखा कालमे बीज उगा, प्रकट हुआ। रुरुहतु रुरुहुः। रुरोहिथ क्रादि नियमसे थलि नित्य इट। अजन्त अकारवान् नही द्वाज नियम नही। उगने या प्रकट होनेवाला अनिट् है। रुह ता। ह को ढ होढः। तथोर्ध ध—ढ ढोढे लोपः। रोढा रोढारौ रोढारः। रुह स्यति ह—ढ—क,स—ष क्ष। रोक्ष्यति भविष्यमे अकुरित होगा। रोहतु अरोहत् रोहेत्। अरुक्षत् अरुक्षताम् अरुक्षन् पैदा हुआ, वृक्ष बढा। शल इगुपधादनिट् से च्लि को क्स। ढ क ष क्ष। अरोहिष्यति। कसति कसता हे। चकास कसदिया। कसिता कसिष्यति कसतु कसेत् अकासीत् हलन्त वृद्धिका निषेध नेटि ने किया। अतो हलादे: से विकल्प वृद्धि। वृत्—समाप्तः ज्वलादिगण। ज्वलिति—से कस अन्त धातु तक

अथ गूहत्यन्ता स्वरितेत । हिक्क अव्यक्ते शब्दे । हिक्कति–हिक्कते । अञ्चु गतौ याचने च । अञ्चति–अञ्चते । अचु इत्येके । अचि इत्यपरे । टु याचृ याच्ञायाम् । याचति–याचते रेटृ परिभाषणे । रेटति । रेटते । चते चदे याचने । चचात चेते अचतीत् । चचाद चेदे । अचदीत् । ८६७ प्रोथृ पर्याप्तौ पुप्रोथ । पुप्रोथे । मिदृ मेदृ मेधाहिंसनयो॰ । मिमेद मिमिदे । थान्ताविमौ इति स्वामी । मिमेथ । धान्तौ इति न्यास । ८७० मेधृ सङ्गमे च । मेधति । मिमेध । णिदृ णेदृ कुत्सासन्निकर्षयोः । निनेद । निनिदतु । निनिदे । निनेदे,

---

ज्वलादि प्रमाणित हे । वृत् पढन। अनाष या स्पष्टाय ।

अथ गुहू सम्वरणे धातु एक स्वरित इत् धातु । स्वरितमे मिला धर्म उदात्त अनुदात्त से दोनो पद । ८६१ । हिक्कति हिचकता है हुचकी आनेसे शब्द स्पष्ट नही । क्रिया फल कर्तामे हो आत्मनेपद हिक्कते । अहिक्कीत् । अञ्चति जाता है मागता हे (पर उद्देश्यसे) क्रिया का फल परगामी हो परस्मैपद । अपने उद्देश्य से जाता है तब अञ्चते । आञ्च आञ्चतु आञ्चु । आञ्चे आञ्चाते आञ्चिरे अञ्चिता आञ्चत् । अच्यात् अनिदिता हल्स न लाप । जब अचि अढेगे ऐदिति होने स न लोप नही । अञ्च्यात् । चतते चतति मागता है । परोक्षमे मागना हुआ हो । चेते चेताते चेतिरे । अचतीत् एकार इत् से वृद्धि निषेध (श्वेदितासे) चदति चदते अचदीत् देशदिशेष मे उपयोग मिलेगा । याचति याचते भिक्षा । बामन॰ । ययाच येचे याचिता याचिष्यते मागेगा । पुस्तक याचतु, याचेता याच॰ता याचस्व याचेथा याचै याचावहै याचामहै । एत् ऐ । रेटति रेट लगाना परिभाषण मोलभाव । अरेटीत् अरेटिष्ट । प्रोथति पर्याप्त है । प्रोथते अप्रोथीत् अप्रोथिष्ट । मेदति मेदते मेधति मेधते बढता है। हिंसा क॰ता है । मेथति भी । मत मे अमेदीत् अमेदिष्ट । न्यायसमतमे धान्त । स्वामो मते थान्त धातु ।

। ८७० । मधति सगम करता है धर्मके लिए । मेधते स्वार्थ के लिए । प्रजायै गृहमेधिना गृहैर्दारैर्मेधन्ते । सङ्गच्छन्ते । मेधिता । मिलनेवाला है । मेधिष्यते सङ्गम करेगा । मेधतु मेधता मेधेन्ताध् (आपसव मिल जाय) अह् मेधै अमेधीत् । अमेधिष्ट । नेदति नेदते–कुत्सा निन्दा, समीप की क्रिया अनेदीत् अनेदिष्ट । घृणा और निकट भूतकाल की क्रिया । स्वरित इत् से दोनो पद हो । शर्धते मर्धति उन्दे–मिला करता है । [पानी] छिडकता है ।

शृधु मृधु उन्दने। उन्दनं क्लेदनम्। शर्धति शर्धते। शर्धिता। मर्धति मर्धते, ८७५ बुधिर् अवबोधने। बोधति बोधते। इरित्वादङ्वा। अबुधत् अबोधीत् अबोधिष्ट। दीपजन इति चिण्तु न भवति। पूर्वोत्तरसाहचर्येण दैवादिकस्यैव तत्र ग्रहणात्। उबुन्दिर् निशामने निशामनं ज्ञानम्। बुबुन्दे। अबुन्दत् अबुन्दीत्। वेणृ गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु। वेणति वेणते। नान्तोऽप्य

शर्धता अशर्धीत गीला किया, पानी छिडका। मर्धिता सींचेगा। मर्धता अमर्धत गीला किया। मर्धत अमर्धीत्। एक कर्तामे भूतकालिक गीला करने पानी छिडकने की क्रिया। आर्द्रकरने। उ इत्का फल उदिते। वा से विकल्प इट्। इर् इत बुध धातुका ज्ञान होने, समझ मे आने के अनुकूल क्रिया। बोधति समझता है। एक कर्ता मे समझमे आनेकी परिमान क्रिया। बोधते बोधेते बोधन्ते। बोधषे बोधेथे बोधध्वे। बोधे बोधावहे। बोधतु बोधताम् अबोधत बोधेत। जब ज्ञान हो चुका हो बोध हो गया हो तब अबोध च्लित्। इरितो वा से च्लिको अङ। अबुधत्। पक्षमे सिच् इट्। इटि। अबोधीत्। समझ गया। अबोधिष्टा अबोधिषु, अबोधी अबोधिष्ट, अबोधिष अबोधिष्व अबोधिष्ट अबोधिषाता अबोधिषत। यही दीपजन, बुधपरि-सूत्र से चिन को णिच् नहीं होता। स्वरित् इत् होनेसे आत्मनेपद होता ही है। दीपजन बुधपुरि सूत्रमे बुधके पूर्व जन और बाद मे पूरि पढा हैं। उसके साहचर्य= साथ उच्चारणसे दिवादिका बुध मान्य। क्योंकि जनीप्रादुर्भावे और पूरि दिवादि है। ऊ इत्, दूर् इत् बुन्द धातुका निशामन=चाक्षुषज्ञान, आखो देखा हालकी क्रिया। बुन्दति बुन्दते बूद-बूद ज्ञान लाभ। बुन्दिता बुन्दष्यति बुन्दता, बुन्दतु अबुन्दत। भूतेकर्तरि लुङ्। बुन्द च्लि त। इरितो वा च्लि को अङ्। इदित् नही, अनिदिता हल उपाध्याया नलोप अबुदत्। जब सिच् इट्, इट ईटि। दीर्घ आदि अबुन्दीन्दत्।

।८७७। ऋ इत् वेणधातु का गति क्रिया चेष्टा ज्ञान बोध चिन्ता निशामन वशित्र (वाद्यभाण्डस्य वादनार्थं ग्रहणम्) वेणि वेणी वेणु बशी आदि इसी धातुसे बने हैं। वेणति वीणा बजाता है बशी (घट वादन) चाक्षुष ज्ञान, चिन्ता से हटने की वर्तमानकालिक क्रिया। विवेण। वेणिता वेणिष्यते घट बंशी से जो बजायेगा। बेणतु बेणताम अहं बेणै बेणावहे- बेणामहे। अथवा बेणानि बेणाव बेणाम। अबेणीत् अबेणिष्ट। खनति खोदना, अवदारण ओदारता खनता है। वर्तमानकालिक कर्तामे विराजमान

यम। खनु अवदारणे। खनति खनते। (६३) **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८।।** एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि। चख्नतु। 'ये विभाषा' खायात्-खन्यात्। चीवृ आदानसंवरणयोः। चिचीव। चिचीवे। ८८० चायृ पूजानिशामनयोः। व्ययगतौ। अव्ययीत्। दाशृ दाने। ददाश ददाशे। भेषृ भये। गतौ इत्यके। भेषति भेषते। भ्रेषृ भ्लेषृ गतौ। अस

क्रिया। क्त्वा मे इट विकल्प के लिए। उदित्। खनित्वा खात्वा। खन खोद कर (खातः खना हुआ गड्ढा) खनने खोदने की क्रिया। खनिष्यति खनिष्यत खनिष्यन्ति। खनिष्यसे खनिष्येये खनिष्यध्वे। खनिष्ये खनिष्यावहे। खनतु खनन्ता खनेता खनन्ता खनश्च खनेथ खनध्व, खनं खनावहै खनामहै खनानि खनाव खनाम। चखान चख्नतु परोक्ष कालमे खोद चुका। खन खन खखना, चखन अतुस् स्थितिमे।

। २३५६३। गमहन जनखन धम धातुके उपधा (अन्त्य अच् पूर्व वर्ण) का लोप हो अजादि निन् ङित् परे। अङ परे न हो तब। अतुस् कित् है ख मे अ का लोप। चख्नतु चग्नु। जग्नतु जघ्नतु। यक्षतु यक्षु। मे उपधा लोप देखा गया। अनङि न कहते। अगमत् मे परे अ लोप हो जाता। ये विभाषा सूत्रसे यकारादिप्रत्यय यासुट् परे आत्व वा। खायात्। न आत्व खन्यात्। चीवते चीवति आदान लेना, सम्वरण=घेरने ढकने की क्रिया। इसीसे र प्रत्यय कर चीवर वस्त्र, पीवरो मनुष्य, मीवर पशु', निपातनसे चिचीव—एककर्तृकपरोक्षभूतानद्यतनकालिक आदान, सवरणक्रिया। चीविता चीविष्यते ढकेगा लेगा। चीवतु चीवता अचेवीत् अचेविष्ट।

। ८८०। चायति चायते। पूजा स्वागत निशामन' चाहना जामख अर्थ। चाय पीनाना भी स्वागत समादर है। चचाय चचाये। चायिता चायिष्यते चायता चायिषीष्ट अचायीत् अचायिष्टव्ययति। व्ययते खर्च होना पैसेकी गति=गमन क्रियाका वर्तमानकाल। विव्याय व्ययिता व्ययतु व्ययता व्ययेता व्ययन्ता व्ययस्व व्ययेथा। भूतकालमे खर्च कर चुका हो कर्तरि लुङ्। सिच आदि। अव्ययीत्, क्षमापन्न जानकर न वृद्धि। अव्ययिष्टाम् अव्ययिषु। अव्यायिष्ट। दाशते दान करता है दाशति। ददाशे। ददाशाते ददाशिरे। आङमे दान कर चुके। दाशिष्यते। दाशताम् अदाशत् दानक्रिया धातुका अर्थ। अदाशीत्। भेषते भयभीत होना या गमन की वर्तमान क्रिया। भेषति। डरता, जाता है। भेष भेड या मेढक इसीका

गतिदीप्त्यादानेषु । असति असते । आस आसे । अय शान्तोऽपि । स्पर्श बाधन-स्पर्शनयो. । स्पर्शन प्रथनम् । स्पशति स्पशते । लष कान्तौ । 'वा भ्राश इति श्यन्वा । लष्यति लषति । लेषे । चष भक्षणे । ८९० छष हिंसायाम् । चच्छ-षतुः । चच्छषे । झष आदानसंवरणयो भ्रक्ष भ्लक्ष अदने । भक्ष इति मैत्रेय । दासृ दाने । माहृ माने । गुहू संवरणे । (६४) ऊदुपधाया गोहः ६।४।८९।।

अर्थ । विभेषे अभेषीत् । भ्रेषते जाता हे । अस धातुका गमन प्रकाश आदान स्वीकार अर्थ असति असते यह षान्त । स्पस धातुका बाधन, विघ्न डालना स्पर्शन देना वर्तमानकाल कर्ता । पस्पाश । लषकी कान्ति इच्छा शोभा चमककी क्रिया श्यन् विकल्प । बाभ्राशभ्लाशभ्रमक्रमु श्यन् । लषति इच्छा लालसा है । लेषे लेषाते लेषिरे । लषिता लषतु लषता इच्छा होने की आज्ञा प्रेरणा का कर्ता हो लोट । अलषत—इच्छा क्रिया । अलाषीत् अल-षिष्ट । चषका भक्षण गल विलाधसयोग, चखने लीलने की क्रिया । चषति चषते चखना टेस्ट स्वाद लेना । चचाष चेषतु चेषु । चषिता चषिष्यते चखेगा, स्वाद परीक्षण करेगा । चषतु चषता स्वाद लो चखो । अह चषै चषावहै चषामहै । अचाषीत् अचषिष्ट अचषिषाता अचषिषत अचषिष्ठा । खाया चखा स्वाद लिया कर्तामे भूतकालकी स्वाद लेना क्रिया । ८९० । झषति हिंसा करना । झष का आदान स्वीकार सम्वरण ढकना झषति झषते झणता है ठगता है । लेना या धूल झोकना । जझाष । अझषत झषिष्यते अझाषीत् । झषा, धलझोका अदन—खाना चबाकर लीलना क्रिया भक्षति भक्षते । बभक्ष । भक्षिता भक्षिष्यते भक्षतु, भक्षता भक्षेता भक्षन्ता, भक्षस्व भक्षेथा भक्षध्व भक्षै भक्षावहै । दासते देता है दान क्रियाका वतमान कालिक कर्ता दासते दासिष्यते । दासताम् अदासत दासिष्ट अदासीत् अदासिष्यत । महति म हते मान करता हे ।

। ८९४ । ऊ इत् गुह धातु का सम्वरण ढकना रहस्य खोलना छिपाना घेरना पर्दा डालना क्रिया के वर्तमान लट् शप् ति । उपधामे ल घु उ को गुण प्राप्त, उसे बाधकर ऊत्व का सूत्र ।

। २३९४ । ऊदुप—गुह धातुके उपधा ब को ऊत् हो, गुणका कारण अजादि प्रत्यय परे । गूहति गूहत गूहन्ति । गुणका हेतु शप्का अ अजादि है । पिरो चुका छिपाया हो, परोक्षेलिट् । गुह गुह, जुगूह । गु मे उको प्राप्त गुण बाधकर ऊत् अजादि ण्ल का अ परे है । गुणका हेतु है । जुगु-

गुह उपधाया ऊत्स्याद्गुणहेतावजादौ प्रत्यये । गूहति गूहते । ऊदित्वादिड्वा । गूहिता गोढा । गूहिष्यति घोक्ष्यति । गूहेत् । गुह्यात् । अगूहीत् । इडभावे क्स., अघुक्षत् । (२३६५) लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३॥ एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपदीर्घाः अगूढ अघुक्षत,

हतु. जुगुहुः। गुण का विषय नहो न ऊ त । आत्मनेपद लिट् स्थाने त को एश जुगुहे जुगुहाते जुगुहिरे । सभी छिपा चुके गुप्त । ऊदितो वा थल परे इट् । गुह इथ । गुणका विषय है, ऊत जुगूहिथ । जब न इट् । जुगुह् थ । अजादि परे नही न ऊत् । किन्तु गुण ह्–ढ थ–ध टुत्व ढ ढलोप जुगोढ । जुगुहथु । जुजुह जुगुहिसे । जुघुक्षे ढ-ध क क्ष । जुगुघथे जुगुहिध्वे जुघुढ्वे गुगुहिव । जुगुह्व गुगुह्वहे गुगुहिवहे महे राहुश्चन्द्र गूहिता घेरनेवाला है। सवरणाथकगुह धातु अनद्यतनभविष्यकालिक ढकने, घेरने, लीलने क्रियाके कर्ता से लुट् तास् ति डा गुह इता। अजादि परे है गुणका विषय है। अत उदुपधायाः गोह से ऊत् । गूहिता गूहितारौ गुहितार शत्रु कल रिपुको घेरेगें । जब न इट् तब अजादि नही, न ऊत्व किन्तु गुणे । गोह ता ह्—ढ, त–थ=ढ ढलोप । गोढा गोढासि अह गोढास्मि घेरेगें ढ़केगे अर्थमे लृट् स्य इट् ऊत्व गूहिष्यति न इट् तब गुण । ह्–ढ । गोढ स्यति । भष्भाव । ग को घ । स परे ढ को क । षत्व क ष–क्ष । घोक्ष्यति घोक्ष्यतः घोक्ष्यन्ति घेरेगे । एव गूहिष्यते घोक्ष्यते । गूहतु गूहति गूहाव गूहाम। गूहता गूहेता गूहन्ता, गूहस्व । गूहै गूहावहै । हम दानो घेर लें । अगूहत् अगूहत । घेरना क्रिया आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना का विषय हो लिङ्–गूहेत् गूहेता गूहेयु गूहेम गूहेयव गूहेन। गूहेत गूहेयाता गूहेरन् गूह्यात् । अजादि प्रत्यय नही, न उत्व । कित् से न गुण । अगूहिषीष्ट । सवरण आच्छादन का सामान्य भूतकाल लुङ् इट् आदि अगूहीत् अगूहिष्टाम् अगूहिषुः अगूही. जब इट् नही तब शलइगुपधात् से क्स । अगूह । ढ ध क ष क्ष अधुक्षत् अधुक्षताम् अधुक्षन् । आत्मनेपदमे अगुह सत दशामे ।

। २३६५ । लुग्वा दुह प्रपूरणे, दिह अपचये, लिह आस्वादने, गुह सवरणे, धातुके क्सका लुक् हो विकल्पसे । दन्त स्थानवाला तङ=आत्मनेपद परे। त थास् ध्वम् ये दन्त्य तङ् है। स का लोप । अगुह त् । ढ ध–ढ ढलोप ढ लोपे दीर्घ । अगूढ । क्स का लुक् नही । तब ढ=घ क–ष क्ष । अघुक्षाता दोनो ने घेर लिया । अघुक्षन्त । झ अजादि नही, अनतः के निषेधसे झ को

'क्सस्याचि' इत्यन्त्यलोप । अघुक्षाताम् । अघुक्षन्त । अगुह्वहि अघुक्षावहि ॥ अघुक्षामहि ।

अथाजन्ता उभयपदिन । श्रिञ् सेवायाम । श्रयति श्रयते । शिश्रियतु' ॥ श्रयिता । णिश्रि इति चङ् । अशिश्रियत् भृञ् भरणे । भरति । बभार । बभ्र-

अत् आदेश नही । अघुक्षथा अघुक्षाथाम् अघुक्षध्वम् अधुक्षि । वस् वकारस्य दन्तोष्ठ क्स का लोप । अगुह्वि क्सका लुक् नही, तब पूर्ववत् कार्य भी । अघुक्षावहि महिपरे दन्त्य आदि नही । क्स लुक् नही । अदुग्ध अधुक्षत् । अदिग्ध अधिक्षत । अलीढ अलिक्षत । गूहति अन्त तक स्वरितेत् उभय-पदी धातु समाप्त ।

अथ अजन्ता=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ अन्तवाले धातु के दोनो पद की साधनिका का प्रारम्भ । ८९७ । ञ–इत् श्रिसेवाके अनुकूलक्रियावाचक सेट् धातु सकर्मक है । श्रयति श्रयत श्रयन्ति लट् तिप् शप् गुण–अय् आदि । श्रयसि श्रयथः श्रयथ । श्रयामि श्रयाव श्रयाम । सेवा करते है । स्वरितञित् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । फल कर्ता मे हो आत्मनेपद । परगामी फल परस्मैपद । छात्रः गुरु श्रयते सेवा करता है प्रसन्नता फल भी कर्तामे वह फल गुरुमे होगा गुरु प्रसन्न होगे परस्मैपद । श्रयते श्रयेते श्रयन्ते श्रयसे श्रयेथे श्रयध्वे । श्रये-श्रयावहे श्रयामहे । सेवा परोक्षकालमे हुई हो तो परोक्षे लिट् द्वित्वादि । शिश्राय । अतुस् परे कित् होनेसे न गुण । किन्तु इयङ् 'अचिश्नु' से । शिश्रियतु शिश्रिगुः शिश्र यिथ शिश्रियथु. शिश्रिय शिश्राय शिश्रियिव शिश्रियिम । लिटस्तझो एश् । शिश्रिये शिश्रियाते शिश्रियिसे । शिश्रियाथे शिश्रियिध्वेढ्वे। शिश्रिये वहे–महे । श्र यिष्यति श्रयिष्यते सेवा करेगा । सेवा करो श्रयतु श्रयताम् अश्रयत् अश्रयत् । कल सेवा किया । वह सेवा करे । श्रयेत् श्रयेतां श्रयेयुः । । श्रयेत श्रयेयाता श्रयेरन् श्रयेथा । श्रयेय । सेवा विषयक शुभकामना आशीर्वाद अथ हो श्रीयात् श्रीयास्ता श्रीयासु । श्रयिषीष्ट । सेवाका भूतकालिककर्ता अर्थे लुङ् ति अट् अश्रि त् । णिश्रीद्रुस्रुश्रु–कर्तरि चङ् कर्ता अर्थमे च्लि् को चङ्–अ । चाङि सूत्रसे द्वित्वादि । अशिश्रि अ त् । इयङ् सेवा किया, सेवा पाया, अशिश्रियत्, अश्रयिष्यन् अश्रियष्यत । भृधातु भरण पोषणकी क्रिया अर्थे । जिस क्रियास भोजन वस्त्रदानमे पालन पोषण हो, लट ति सप् गुण । भरति भरत. भरन्ति । भरसि भरामि पोषण फल दूसरेमे हो । जब कर्तृ

तुः । बभर्थ । ऊभृव । बभृषे । भर्ता । (६६) **ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०॥** ऋतो हन्तेश्च स्यस्य इट स्यात् । भरिष्यति । (६७) **रिङ् शयग्लिङ्क्षु: ७।४।२८॥** शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङादेश स्यात् । रीङि

गामी फल हो । भरते भरेते भरन्ते । भरसे भरेथे भरध्वे । भरे भरावहे भरामहे । पालन पोषण क्रिया न देखी गयी हो। भृ-भृ । भर भृ बभृ आर वृद्धि बभार । अतुस् परे यण् । कित् से न गुण बभ्रतु बभ्रु । बभर्थ । थल् परे एकाच उपदेशेसे बलादि इट्का निषेध । कृ सृ-भृ-वृ=लिट् परे इट् निषेव प्राप्त, थचाम्तास्वत् अजन्त मानकर भी इट् निषेध, ऋदन्त है भारद्वाज मतमे भी निषेध बभर्थ बभ्रथु बभ्र । बभार-बभर बभ्रिव बभ्रिम । वम-मस परे भी सभी निषेध लगते हैं । त को एश यण बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे । बभ्रिसे बभ्रासे बभृद्वे बभ्रे बभ्रिवहे बभ्रिमहे । अनद्यतन भविष्यकालिककी भरण क्रिया हो । स भर्ता भरण पोषण करेगा॥ भर्तारौ भर्तार भर्तासि भर्तासे भर्तासाथे भर्ताध्वे । स्य परे इट् निषेध प्राप्त है ।

ऋ और हन् से परे स्यको इट् हो । ऋच्चहन्च द्वन्द्व । पञ्चमी अर्थे षष्ठी । आर्धधातुकस्यसे इट आया । मृस्यति । इट् गुण ष । ।भरिष्यति (भरेगा) भरिष्यत भरिष्यन्ति । एकाच उपदेशेके निषेधको बाधकर इट् । भरिष्यसे भरिष्ये भरिष्यावहे । भरतु भरो, पालन पोषण करो अहु भरानि भराव भराम । भरता भरेता भरन्ता भरस्व भरेथा भरध्व भरै भरावहै-महै। अभरत । अभरत । अभरेताम् अभरन्त भर दिया खिलाया पिलाया । भरण पोषण किया । भरेत भरेता भरेनु । भरेत भरेता भरेरन् । भरेथाः भरेयाथा भरध्व । भरेय भरेवहि । भरने पालन करनेका आशीर्वादका विषय हो परस्मैपदमे भ्रियात् । (६७) रिङ् श यक् लिङ् इनके द्वन्द्वसे सप्तमी । शे= शकारादि=शप् श आदि परे यक् परे यकारादि आर्धधातुक या परे यकारादि आर्धधातुक यास् आदि लिङ् परे ऋको रिङ् हो । भ्रियते तुदादि श । भृको रिङ् । यक् क्रियते रिङ् । भ्रियते । भ्रियात् यकारादि आर्धधातुक या परे ऋ-रिङ् भ्रियात् । भ्रियास्ता भ्रियासुः । अकृत्सार्वधातुकयो से दीर्घ क्यो नही ? रीङ् पढना था रिङ् विधानकी शक्तिसे । अन्यथा रीङ् पढनेसे सिद्ध था । रिङ् पाठ व्यर्थ होता । रिङ्से न दीर्घ । भरने पोषण करनेके विषयमे आशी-र्वादकमी पूर्तिकी शुभ कामना अर्थे लिङ् । भृ सी स त् । इट् गुण प्राप्त था

प्रकृते रिड्विधिसामर्थ्याद्दीर्घो न । भ्रियात् । (६८) उश्च १।२।१२॥ ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ् तङ्परः सिच्चेत्येतौ कितौ स्त । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । अभार्षीत् । अभार्ष्टाम् अभार्षुः । (६९)ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७॥ सिचो लोपः स्याज्झलि । अभृत अभृषाताम् । अभरिष्यत् । हृञ् हरणे । हरणं

कित् का सूत्र । (६८) । लिङ् सिचावात्मनेपदेषु सूत्र आया । इको झलिसे झल् भी । ऋवर्णसेपरे झलादि=झल् प्रत्याहारके अक्षर आदिमे हो ऐसे लिङ्के स्थानमे तङ्=आत्मनेपद और सिच् ये दोनो कित् हो । **भृषीष्ट** सीयुट् सुट् को षत्व हुआ । झलादि लिङ्को कित् हुआ उसका फल गुणनिषेध, भरण पोषणविषयक आशीर्वादके पात्र दो कर्ता हो आताम् आदि । **भृषीयास्ता भृषीरन्** । भरणक्रियाके भूतकालिक कर्तामे लुङ् । अभृ स ईत् । सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु आर वृद्धि । षत्व **अभार्षीत्** । अभृ स तस् ताम् वृद्धि षत्व बहुवचन झिको जुस् । वे पोषण किये **अभार्षी अभार्ष्टम् अभार्षष्ट । अभर्षम् अभार्ष्व अभार्ष्म** । आत्मनेपदम अभृसत् दशामे ।

(६९) **ह्रस्वान्त** अङ्गसे परे सिच्का लोप हो झलि परे । झलोझलिसे झलि, सयोगान्तस्यसे लोप आया । ह्रस्व क्यो ? अच्योष्टमे सिच का लोप न हो । अङ्ग क्यो ? अलाविष्टाम्मे सलोप न हो । सिच् क्यो पढा ? द्विष्टमा सुजन्तसे तरप् तमप् । सलोप न हो, सिच्का स नही है । प्रसङ्गमे भृसे परे सिच्का लोप झलि परे त है । **अभृत अभृषाताम् अभृषत । अभृष्ठा अभृषाथा अभृढ्व-ध्व अभृषि अभृष्वहि-महि** । झलि पढनसे सिच्लोप नही होता । हृ धातुका हरण क्रिया अर्थ । इसका चार ढङ्गसे उपयोग—प्रापण= पहुचाना स्वीकार लेना स्तेय=चोरी नाश=नष्ट होना । **हरण चतुर्विध भारं हरति प्रापयति** बोझा ढोता है । अश हरति-स्वीकरोति, हिस्सा लेता है । परधन हरति चोरयति । पाप हरति-हरते नाशयति हर पाप मिटाता है । **हरसि हरथ हरथ । हरामि हराव हरन्ते हरसे हरेथे हरध्वे** ।

हरण, प्रापण, ग्रहण, स्तेय नाशकी क्रियावाचक हृ धातुसे परोक्ष भूतकालिक उक्त क्रिया के कर्तामे लिट् ति णल् अ । हृ हृ हर्हृ जहृ । अचोऽञ्णिति आर वृद्धि **जहार** । जहृ अतुस् उस् यण् **जह्रतु जह्रुः** । अनदेखा कालमें वे पहुचाये लिये, चोरी, नाश किये । **जहर्थ** एकाच् उपदेशे अनुदात्तका इट् निषेध क्रादिसे नियमित है । यहा पर थलि परे इट् प्राप्त, उसका निषेध अचस्तास्वतसे हुआ । जो धातु अजन्त हो तास् परे अनिट् हो तब थल्परे भी

प्रापणं स्वीकार स्तेय नाशनम् च। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिषे। हर्ता। हरिष्यति। ९०० धृञ् धारणे। धरति। अधार्षीत्। अधृत। णीञ् प्रापणे। निन-

न इट्। भारद्वाज मतमे भी ऋदन्तको न इट्। गुण जहर्थ जह्रथु जह्र। जहार जहर जह्रिव जह्रिम। वस् मस् परे क्रादिनियमसे नित्य इट् होता है। क्योंकि एकाच उपदेशे सूत्र, क्रादिनियमसे बधा है। जह्रे जह्राथे जह्रिरे। जह्रिषे (क्रादिनियमसे इट्) जह्राथे जह्रिढ्वे ध्वे जह्रे जह्रिवहे-महे। हर्ता-कल परसो नरसो पहुचायेगा, लेगा, चोरी, नाश करेगा क्रिया वाचक हृसे कर्तामे लुट् ति तास् डा गुण। हृ स्य ति। अनिट् है। ऋद्धनो स्ये ऋकारान्त जानकर इट् हरिष्यति हरिष्यत हरिष्यन्ति। हरिष्यमि, हरिष्यामि। हरतु हरता हरन्तु। हराणि हराव हराम। हरै हरावहै हरामहै। अहरत् अहरता अहरन्। अहरत अहरेता अहरन्त। हरेत् हरेत। ह्रियात्। ह्रियास्ता ह्रियासु। हृषीष्ट हृषीयास्ता हृषीरन् अहार्षीत् अहृत अहृषाताम् अहृषत। भूतकालमे ढोया, स्वीकार किया, चुराया, नाश किया। अहरिष्यत्। धृ धातुका धारण-धर पकड की क्रिया अर्थ। धरति धरते। दधार दध्रतुः दध्रु। दधर्थ। दध्रे दध्राते दध्रिरे धर्ता। धर्तासि धरतासे धरतास्मि धरताहे। धरिष्यति धरिष्यते। धरतु धरताम् ध्रियात्, अधार्षीत् अधार्ष्टाम अधार्षु। अधार्षी। अधृत (अधृषाता) ह्रस्वादङ्गात्से सिच्का लोप। णीन नी धातुका पहुचाना, ले जाना, ढोना प्रापण, अर्थ वर्तमानकालिक कर्तामे लट् शप् आदि गुण अय। नयति नयते भार, नी नी अ। ह्रस्व अचोञ्णिति वृद्धिः आय। निनाय निन्यतु निन्यु अनदेखा कालमे पहुचाया' निनयिथ निनेथ। अनिट् है क्रादिनियमसे इट् प्राप्त। थलपरे अचस्तास्व (थलि) अजन्तधातु जानकर इट् निषेध प्राप्त हुआ किन्तु थलि परे ऋदन्त को ही निषेध होना भारद्वाज नियम है। इनके मतमे इट् होगा। दो पक्ष दो रूप। थास से निन्यिषे निन्याषे निन्यिध्वे-ढ्वे। निन्ये निन्यिवहे-महे। परोक्षभूतकालकी प्रापण क्रिया आगामिभविष्यकालकी प्रापण क्रिया हो, कर्तामें लुट् तास् ति डा आदि गुण। नेता। नेतासि नेतासे। नेतास्मि नेताहे। नेष्यति नेष्यत नेष्यन्ति। नेष्यसे नेष्येथे नेष्यध्वे। सभी ढोयेगे। लेजायगे। नयतु नयता नयन्तु। नय नयतं नयत। नयानि नयाव नवाम नयता नयेता नयन्ता नयस्व नयेथा नयध्व। नयै नयावहैं-महै। एत एं। अनयत् अनयत।

यिथ—निन थ । निन्यिषे ।

अथाजन्ता परस्मैपदिन । धेट पाने । धयति । (२३७०) **आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५॥** उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं स्यान्न तु शिति ।(७१) **आत औ णल ७।१।३४॥** आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेश स्यात् । दधौ । (७२) **आतो लोप इटि ६।४।६४॥** अजाद्योरार्धधातुकयो क्ङिदिटो. पर-

---

नयेत नयेता नयेयु । नयेत नयेयाता नयेरन् । नयेथा नयेथा नयेध्व । नयेथ नयेवहि नयेमहि । नीयात् नेषीष्ट । अनैषीत् अनेष्टाम् अनैषुः । अनैषी अनैष्ट अनैष्ट । अनैषम् अनैष्व अनैष्म । अनेष्ट अनेषाता अनेषत । अनेष्ठा । अनेष्यत् अनेष्यत । उयपदी अजन्तधातु समाप्त ।

अथ परस्मैपदी अजन्तधातुकी साधनिका । जृ अभिभवे तक । ६०२ । धेट् धातुका पान-पीनेके अनुकूल क्रिया । पानजनकव्यापार । ट इत् का फल स्तनन्धयीमे ङीप् होना । पानार्थक घे धातुसे वर्तमानकालिक पीने क्रियाके कर्ता मे लट् ति शप् । धे अति । अय आदेश । धयति धयत धयन्ति धयसि धयथ धयथ धयामि । पानक्रियासहित कर्ताका न देखा हो किन्तु क्रिया हो चुकी हो । धे धातुसे परोक्षे लिट्-ति णल् । धे अ ।

। २३७० । **आदेच उपदेशे**=प्रथम उच्चारण दशामे एजन्तस्य—ए ओ ऐ औ अन्त मे हो ऐसे धातुको आत्व हो, नतु शिति श इत्परे न हो । स चासौ इच्च । तदादिविधि उपदेश क्यो ? चेता स्तोता, का ए ओ (उपदेशका नही) आत्व न हो । धातु क्यो ? गोभ्या नोभ्या यहाका ओ धातुका नही । उपदेशे यदेजन्त तस्य चेदात्वमिष्यते । उद्देशो रुढ़िशब्दाना तदानीनंभविष्यति । ऋशिति मे प्रसज्यप्रतिषेध है । पर्युदास होता जले मम्ले मे द्विर्वचनेचि के निषेधसे आत्व न होता । शिद्भिन्ने प्रत्यये परे अर्थ होनेसे । इस सूत्रसे आत्व धा अ । द्वित्व धा धा, द धा, अ । दशा मे । ७१ । आत्=अकारान्त धातुसे परे शल्के स्थानमे औ आदेश हो । दधा औ वृद्धौ । दधौ दधतु ।

। ७२ । **आतो**=अजादि हो आर्धधातुक हो कित ङित् इट् परे हो, आकारका लोप होता है । पहले द्वित्वको बाधकर, आकारलोप प्राप्त था, किन्तु द्विर्वचनेऽपि सूत्रसे निषेध हुआ । द्वित्व होनेकी दशामे अचिके स्थानमे लोप यण् गुण आदि कार्य नही होते । इस सूत्रमें आर्धधातुक आया । दोडो युडचिसे क्ङिति । अजाद्यो क्यो पढा ? ग्लायते । य परे है अजादि नही ।

योरातो लोप स्यात्। द्वित्वात्परत्वाल्लोपे प्राप्ते द्विर्वचनेऽचि इति निषेध। द्वित्वे कृते आलोप। दधतु दधु। दधिथ दधाथ। दधिव। दधिम। धाता। (७३) दाधा घ्वदाप् १।१।२०॥ दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञा स्युर्दाप्दैपौ विना। (७४) एर्लिङि ६।४।६७॥ घुसंज्ञानां मास्थादीनां चैत्व स्या-

---

जाग्लायते। दासीय। आर्धधातुक क्यो ? यान्ति वान्ति अन्त आदेश अजादि सार्वधातुक है। आलोप न हो। धा अतुस् दशा मे द्वित्वात्=लिटिधातो सूत्रको बाधकर आकारलोप प्राप्त था, उसका निषेध। द्वित्व होने पर दधा अतुस् दशामे आलोप दधतु। दधा ऊस् दधु दधिथ—भारद्वाज मते वा इट्। आ लोप। न इट् दधाथ दधथु दध। दधौ दधिव दधिम। वम मम परे आत्व। दधाव क्रादिनियमसे इट्। आकार लोप। अनदेखा कालमे पान किया। धाता। पीने अर्थवाचक धातुसे लुट् ति तास्। आत्व आदि। एक कर्तामे अद्यभिन्नभविष्यकालिक पान किया। धातारौ धातार। धातासि धातास्थ धातास्थ। धातास्मि धातास्व धातास्म। धासिष्यति दुग्ध। पियेगा। धयतु धयतात् धयता धयन्तु। धय धयतात् धयत धयत धयानि धयाव धयाम। अधयत अधयताम् अधयन्। अधय अधत अधयत। अधयम् अधयाव अधयाम। धयेत धयेता धयेयु.। अह धयेयम्। आशीर्लिङ्मे घुसंज्ञाकार्यके लिए संज्ञासूत्र।

।७३। दाधा दारूप धारूप धातुओको घुसंज्ञा हो। दापलवने दैप शोधने को छोडकर। दारूप धातु चार है डुदाञ् दाने, दाण् दाने, दोऽवखण्डने, दङ् रक्षणे, लाक्षणिक दा। धा से डुधाञ् धारणपोषणयो धेट पाने, लाक्षणिकका भी ग्रहण। गामादाग्रहणेषु—अविशेष दा से धा मान्य। दाश्च धौ च दाधा।७४। एर्लिङि अनुवृत्ति। घुसंज्ञक मा स्था गा पा हा इनको एत्व हो, आर्धधातुक कित् लिङ् परे। धेयात्। पानार्थक धे धातुसे पीनेकी शुभकामना अर्थमे लिङ् ति यास्। आदेच उपदेशेसे आत्व। घुसंज्ञा एत्व धेयात् पान क्रिया विषयक शुभकामनाके पात्र दो हो—धेयास्ताम् बहुत हो—धेयासु। ष्ठा गतिनिवृत्तौ शब्दे। गाङ्गतौ को एत्व मान्य नही। लिङि कित् न मिलनेसे। पा पाने ओहाक् त्यागे षो अन्तकर्मणि। देयात्—धेयात्—नेयात्—स्थेयात्—गेयात् पेयात हेयात्। आर्धधातुक क्यो ? मायात्मायाता मायु:। मे एत्व न हो। किति क्यो दासीष्ट। अदधत् पानानुकूलव्यापारवाचक धे—धातुसे भूत पीना क्रियाकालके कर्तामे लुङ् ति अट्। आदेच उपदेशे से आत्व।

दार्धधातुके किति लिङि । धेयात् । धेयास्ताम् । धेयासु ।(२३७५) **विभाषा धेट्श्व्योः ३।१।४९॥** आभ्यां च्लेश्चङ् वा स्यात्कर्तृवाचिनि लुङि परे । 'चङि' इति द्वित्वम् । अदधत् । अदधताम् । (७६) **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८॥** एभ्य सिचो लुग्वा स्यात्परस्मैपदे परे । अधात् । अधाताम् । अधु ।(७७)**यमरमनमातां सक्च७।२।७३॥**एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । अधासीत् अधासिष्टाम् । अधासिषु । ग्लै म्लै हर्षक्षये । हर्षक्षयो धातुक्षय । ग्लायति । जग्लौ । जग्लिथ जग्लाथ ।(७८) **वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८॥** घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्व वा स्यादार्ध

चिलका चङ् विधायक सूत्र ।

। २३७५ । **विभाषा**—धेट और श्वि धातुसे परे च्लि को चङ हो कर्ता अर्थक लुङ् परे । अधा अत् । चङि द्वित्व आदि । आलोप, अदधत् अदधत म् अदधन् । अदध अदधतम् अदधत । अदधम् अदधाव अदधाम । जब न चङ् । सिच् । अधा सत । सिच् लोपका सूत्र । ७६ । **विभाषा** घ्राधेट्शाच्छासः से लुक, गातिस्था से सिच् और परस्मैपद आये । **एभ्य** =घ्रा गन्धोपादाने धेट् पाने, शो तनूकरणे, छो छेदने, षो अन्तकर्मणि, इन धातुओंके आत्व होने पर सिचि का वा लुक् हो परस्मैपद परे । लुक् हुआ । अधात् जल । वह पानी पी गया । पीनेवाले दो हो अधाताम् अधुः । उस्यपदान्तात् पररूप । अधा अधातम् अधात । अधाम् अधाव अधाम हमलोग पी गये । जब न सिचि लुकि तब । ७८ । **यमरम-नम**-आदन्तधातुको सक् हो उनसे सिच्को इट् भी हो परस्मैपद परे । अञ्जेः सिचिमे सिचि आया । स्तुसुधञ्भ्य से परस्मैपद । इडत्यर्ति से इट् । इस सूत्रसे सक् इट् हुआ । अधा स् इ स् ईत् । इट ईटिसे सिचका लोप । दीर्घ । अधासीत् । अधासीः अधासिषम् अधासिष्व अधासिष्म । अयसीत् व्यरंसीत् अनसीत् । परस्मैपद क्यो ? उदायस्त भार । अरस्त अरसाताम् ।

९०३ ग्लै म्लै धातुका धातुक्षय शक्ति ह्रास बलक्षीणता, प्रसन्नता उतरनेके अनुकूल व्यापार, वर्तमानग्लानि क्रिया कर्तामे ग्लैसे लट् तिप् शप् आयादेश । ग्लायति ग्लायत ग्लायन्ति, ग्लायसि ग्लायथ ग्लायथ । ग्लायामि ग्लायाव ग्लायामः । शित् है, न आत्व । परोक्षमे शुक्क्षय, वल नाश, उदासी हो । लिट्—ग्ला ग्ला गग्ला । जग्ला अ । आत औ णल । थाकारान्तसे णल्को औ । जग्ला औ, आतोलोप । जग्लौ । अतुस् परे आत्व

धातुके किति लिङि । ग्लायात् । ग्लेयात् । अग्लासीत् । म्लायति । ९०५ द्यै न्यक्करणे । न्यक्करण तिरस्कार । द्रै स्वप्ने । ध्रै तृप्तौ । ध्यै चिन्तायाम् । रै शब्दे । स्त्यै ष्टयै शब्दसंघातयो । स्त्यायति । षोपदेशस्यापि सत्वे कृते रूप तुल्यम् । षोपदेशफल तु तिष्टयासति, अतिष्टयपदित्यत्र षत्वम् । खै खदने ।

द्वित्वादि आलोप जग्लतुः जग्लु. । ग्लानि अनुभव बल थकनेसे । जग्लिथ दशामे भारद्वाज नियमसे थलपरे वा इट् । आकारलोप । न इट् । जग्लाथ जग्लथु जग्ल । जग्लौ जग्लिव जग्लिम । वस् मस्परे क्रादिनियमसे नित्य इट् । भारद्वाजकी दाल थल परे ही गलती है । श्व ग्लाता त्व परश्व ग्लातासि, अह परतरश्व ग्लातास्मि । ग्लास्यति ग्लायतु । अह ग्लायानि आवा ग्लायाव वय ग्लायाम- । अग्लायात्,ग्लायेत् । आशी —ग्लानि-बढने की कामना अर्थे लिङ् । यास् आत्व । ग्लायात् दशामे ।

वाऽन्यस्य–घुसज्ञक मा स्था गापा हा साको छोडकर सयोगसज्ञक धातु आदिमे हो आको एत्व हो । आर्धधातुक कित लिङ् परे । इस सूत्रमे एर्लिङि, आतो लोपसे आत् अनुवृत्त । किससे अन्यकी जिज्ञासामे घुमास्था गा पा आदि से अन्य ग्लै यात् । आदेच उपदेशसे आत्व होनेपर वाऽन्यस्य सूत्रसे सयोगादि देखकर आको ए । ग्लेयात् ग्लेयास्ताम् ग्लेयासु । ग्लानिकी कामना आशीर्लिङ् है । हर्षक्षय, बलविनाश शक्तिह्रास शुक्रस्रवण हो चुका हो भूते काले कर्तरि लुङ । अग्लास ई त् । यम रम नमाता से आदन्त देखकर सक् इट । इट इटि सिच्लोप । दीर्घ । अग्लासीत् अग्लासिष्टा अग्लासिषु । अग्लास्यत् । म्लायति–धातुक्षयसे मन मलिन, प्रसन्नताहीन हो शप् आय म्लायत म्लायन्ति । म्लायसि म्लायामि म्लायाव । मम्लौ मम्लतु । मम्लु मम्लिथ मम्लाथ मम्लिव मम्लिम । म्लाता म्लास्यति म्लायतु अम्लायत् । म्लायेत् अम्लासीत् । द्यैका तिरस्कार अपमान त्यागार्थ द्यायति-त्यागता है । दद्यौ अद्यासीत् । द्रायति सोता है । अद्रासीत् । ध्रायति तृप्त होता है । अध्रासीत् ध्यायति चिन्तन मनन ध्यान करता है । ध्यायत ध्यायन्ति ध्यायसि ध्यायामि । दध्यौ ध्याता ध्यास्यति ध्यास्यत ध्यास्यन्ति । ध्यायतु ध्यायतत् ध्यायाता ध्यायन्तु । ध्याय ध्यायत ध्यायत । ध्यायानि-याव-याम । रै शब्द करना—रायति ररौ अरासीत् । स्त्यायति शब्द करना । जुड जाना सघत है । षोपदेश । धात्वादे से सत्व करनेपर रूप समान । उपदेशमे ष होनेका फल सन्प्रत्ययपरे आत्व

क्षै जै ६१५ षै क्षये। क्षायति। जजौ। ससौ। साता। 'घुमास्था' इत्यत्र 'विभाषा घ्राधेट' इत्यत्र च स्यनेरेव ग्रहणं न त्वस्य। तेन एत्वसिज्लुकौ न। सायात्। आसासीत्। कै गै शब्दे। गेयात्। अगासीत्। शै श्रै पाके। ६२० पै ओवै शोषणे। पायात्। अपासीत। 'घुमास्था-' इतीत्व, तदपवाद 'एर्लिङि इत्येत्वं 'गातिस्था' इति सिज्लुक्च न। पारूपस्य लाक्षणिकत्वात्। ६२२

षत्व आदि। ६१२ सायति भरता है। क्षायति चक्षौ अक्षासीत्। सबका क्षय ह्रास अर्थ। जायति नष्ट होता है। जा जा जजा-आत औ णल। जजौ सायति अस्त हो रहा ससौ ससतु ससु अस्त हो गया। सास्यति क्षय होगा। सायतु असायत् सायेत्। सायात्। एत्व सिच् लुक् नही होता। घुमास्था सूत्रस्थ (षो अन्त कर्मणि श्यन्)की धातुको एत्व करता है। विभाषा घ्राधेट् शाच्छास मे भी तथा। इस धातुका ग्रहण नही। असासीत असासिष्टा असासिषु क्षय किया। कायति गायति गानेकी आवाज अर्थमे। गायत गायन्ति। गायसि गायथ गायथ। गायामि गायाव गायाम। ककौ जगौ जगतु जगुः वे गान किये। जगिथ जगाथ जगथु जग जगिव जगिम। गाता गास्यति। गायतु गाय। गयानि गयाव गयाम। अगायत गायेत् अगासीत। (मक् इ म ई त्) अगासिष्टा अगासिषु। अगासी अगासिष्ट अगासिष्ट। अगासिष। शायति श्रायति पकाना है। अश्रासीत् अशासीत्। ६२० पायति वायति शोषण करना पपौ ववौ। परोक्षकालमे शोषण किये। पाता वाता। पास्यति वास्यति। पायतु वायतु। वानम् शुष्क को इत्का फल तको न शुष्के वानमुञ्छे त्रिषु इत्यमर। पायात् पायास्ता पायासु। अपासीत् वस्त्र कपडा सुखाया। अवासीत् कुसुम। यह पा लाक्षणिक है। लक्षण—सूत्रसे आत्व हुआ है अत घूमास्था गा पा से इत्व। उसका बाधक एर्लिङ् और गातिस्थासे सिच् लुक् नही होता। अत कहा पा का रूप लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषासे पा लिया जायगा। दैको आत्व करके नही, स्तायति धातु आदिमे ष स। वेष्टने लपेटता है। अस्तासीत्। स्नायति षोपदेश लपेटना शौच शुद्धि स्नान अर्थ मतभेदसे। स्नासीत्। दैप का शोधन शुद्ध होनेकी क्रिया, दायति सशोधन करता है। ददौ दाता दास्यति दायतु अदायत् दायात्। अघुत्वात्=घूसज्ञाके निषेधसे एत्व नही। अदासीत्मे सिच लुक् नही होता। शोधन मजनन दन्तान् अदासीत। स्वच्छ किया। ९२५ पा धातुका पीनेके अनुकूल व्यापार अर्थ। वर्तमानकालिक पान क्रिया के कर्तामें

ष्टै वेष्टने । स्तायति । ष्णै वेष्टने । शोभाया च इत्येके । स्नायति । दैप् शोधने । दायति । अधुत्वादेत्वसिज्लुकौ न । दायात् । अदासीत् । ९२५ पा पाने । 'पाघ्राघ्मा' इति पिबादेश । तस्यादन्तत्वान्नोपधागुण । पिबति ।

लट् शप् । पाको पिब आदेश । पाघ्राध्मास्थाम्ना आदि सूत्रसे । पिब अदन्त है । उपधा गुण नही । पिबति पिबत पिबन्ति पिबसि पिबथ. पिबथ । पिबामि पिबाव पिबाम. । अनिट् धातु है । पा पा पपा अ । आत औ णलः आलोलोप, पपो पपतु पपु । भारद्वाज नियमसे वा इट् आलोप पपिथ । न इट् पपाथ पपथु पप । पपो पपिव पपिम हम लोग कब पी गये । क्रादि नियमसे वस मस परे नित्य इट । श्व पाता पास्यति पास्यत. पास्यन्ति पास्यसि पास्यथ पास्यथ पास्यामि पास्याव पास्यामः । पिबतु पिबताल् पिबता पिबन्तु । पिव पिबामि । अपिवत् अपिवता अपिबन् त्व अपिव अह अपिवम् । पिबेत् पिबेता पिबेयु । पिबेथ पिबेम । पान क्रियाके विषयमे पीनेकी वस्तु न मिली हो उसके मिलनेकी शुभ कामना अर्थ मे लिङ् पायात् । एर्लिङि ऐत्व पेयात् पेयास्ता पेयासु । अपात् । पानार्थक पा धातुसे भूतकालके कर्तामे लुङ् । अपा सत् गातिस्थाघुपासे सिज्लुक् । अपात् अपाताम् अपु । अपा अपाताम् अपात, अपाम् अपाव अपाम । हमलोग पी लिए । यदा पय अभिलष्यत् तदा अपास्यात । घ्रा का सूघना । गन्धग्रहणकी क्रियावाचक अतएव धातुसज्ञक घ्रासे वर्तमानकालिककर्तामे लट् शप् घ्रा अ ति । शइत् का विषय है । पा घ्राध्मासे घ्राको जिघ्र आदेश । जिघ्रति एक कर्तामें वर्तमानगन्धग्रहणक्रिया । जिघ्रति जिघ्रत· जघ्रन्ति । जिघ्रसि जिघ्रथ जिघ्रथ। जिघ्रामि जिघ्राव जिघ्राम । यदि सूघना क्रिया सहितकर्ताको न देखा हो भूतकाले लिट् ति णल् औ । घ्रा घ्रा घघ्रा जघ्रा । आलोप जघ्रौ जघ्रतु जघ्रु । भारद्वाजनियमसे वा इट् । जघ्रिथ जघ्राथ जघ्रथु जघ्र। जघ्रौ जघ्रिव जघ्रिम । क्रादि नियमसे नित्य इट् । परश्व. घ्राता परसो सूघेगा घ्रातासि घ्रातास्मि । घ्रास्यति घ्रास्यसि घ्रास्यामि । जिघ्रतु गन्धग्रहण करो । अह जिघ्रानि । अजिघ्रत सूघ लिया । जिघ्रेत् आप सूघे पुष्पम् । आशीर्लिङ् तुम्हे भी गन्धग्रहण का अवसर मिले । घ्रायात् । वाऽन्यस्य सयोगादे से वा एत्व घ्रेयात । जब सूध चुका हो कर्तामे लुङ् । अघ्रा स् इत् । विभाषाघ्राधेट् सिच्का लुक् । अघ्रात् जब न लुक् । यम - रम नमाता सक् । इट ईटि सलोप दीर्घ । (अघ्रासीत्

पेयात् । अपात् । घ्रा गन्धोपादाने । जिघ्रति । घ्रायात् । घ्रेयात् । अघ्रात्
अघ्रासीत् । ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । धमति । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । तिष्ठति ।
'स्थादिष्वभ्यासेन' इति षत्वम् । अधिष्ठतौ 'उपसर्गात' इति षत्वम् । अधि-

---

अघ्रासिष्टाम अघ्रासिषुः अघ्रासी) अघ्राताम् अघ्रुः । अघ्रा । अघ्राम् ।
ध्माका धौंकना, शब्द होना अग्नि जलनेके लिए वायुका प्रयोग ' शख धमति
ध्वनि करता है शब्द है । मृदग धमति नही होगा', वायु सयोग न होने मे ।
अग्निसयोग=सुवर्ण धमति अग्निना सयुनक्ति सोना तपाता है । शप् होनेपर
ध्मा को धम आदेश पाघ्राध्मासे—। धमत धमन्ति । धमसि धमथ धमथ
धमामि धमाव धमाम । शख दध्मौ प्रतापवान । ध्मा—ध्मा णल को औ आ
लोप । दध्मतु दध्मुः । दध्मिथ दध्माथ दध्मथु दध्म दध्मौ दध्मिव
दध्मिम । श्व ध्माता ध्मास्यति धमतु धम त्वम । अहं ध्मानि मैं धौंकूं ।
धमेत् धमेता धमेयु । अधमत्, वाऽन्यस्य एत्व ध्मेयात् ध्मायात् । अध्मा-
सीत् अस्मास्त । षोपदेश ष स । स्थाधातु का गतिनिवृत्ति रुकनेकी क्रिया
वर्तमानकाल हो लट् शप । पाघ्राध्मासे स्थाको तिष्ठ आदेश । तिष्ठति
तिष्ठत तिष्ठन्ति । तिष्ठसि तिष्ठामि । स्था—स्था तस्था शपूर्वा खय-
शिष्यते । थाल औ णल आदि तस्थौ अधि उपसर्ग लगा । इण् कवर्ग से परे
नही षत्व कैसे ? तब कहा—स्थादिषु-अभ्यासेन सूत्रेण षत्व । अधितष्ठौ
तस्थतु तस्थु । तस्थिथ तस्थाथ तस्तथु तस्थ । तस्थौ तस्थिव
तस्थिम । कब रुके पता नही । रुकना कार्य देखकर क्रियाका अनुमान ।
स्थाता भविष्यकालमे रुकेगा ठहरनेवाला । अधिष्ठाता षत्व का निषेध
सात्पदाद्यो, करेगा तब उपसर्गातसे षत्व । ठहरेगा । तिष्ठतु ठहरो । त्व तिष्ठ
अहं तिष्ठानि तिष्ठाव तिष्ठाम, अतिष्ठत् अतिष्ठताम अतिष्ठन अतिष्ठः
अतिष्ठतम् अतिष्ठत । अतिष्ठम अतिष्ठाव अतिष्ठाम । तिष्ठेत
तिष्ठेता तिष्ठेयु । स्थेयात् भगवान् आपको ठहराये । सयोगादि है । किन्तु
घुमास्थादि से अन्य का अभाव है । न विकल्प एत्व । किन्तु एलिङ्से नित्य
रुकगया हो । अस्था स त् । गातिस्थासे सिचो लुक् । सो अस्थात् वह ठहरा
रुका । अस्थाताम् अस्थु । अस्था अस्थातम् अस्थात । अस्थाम् अस्थाव
अस्थाम । म्ना का सभ्यास मनन चिन्तन याद की क्रिया वर्तमानका-
लिक कर्ता लट् शप् । पाघ्रासे (श इत् देखकर) मन आदेश, मनति विद्याम्
अभ्यास करोति बार-बार पढता है । त्वं मनसि अहं मनामि मैं मनन

ध्माता। स्थेयात्। म्ना अभ्यासे। मनति। ९३० दाण् दाने। प्रणियच्छति। देयात्। अदात्। ह्वृ कौटिल्ये। ह्वरति। २३७९ ऋतश्च संयोगादेर्गुण ७।४।१०॥ ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुण स्याल्लिटि। किदर्थमपीद पर-त्वाण्णल्यपि भवति। रपरत्वम्। उपधावृद्धि-। जह्वार जह्वरतु। जह्वरु:

करता हू। म्न-म्ना मम्ना णल-औ आलाप मम्नौ मम्नतु मम्नु। कब अभ्यास किया। मम्निथ मम्नाथ। म्नाता म्नास्यति अभ्यास करेगा मनतु अमनत् मनेत् म्नायात् म्नेयात् अम्नासीत्। मनन कर लिया।

। ९३०। ण इत् दा का दान क्रिया। शप् होनेपर दा को यच्छ आदेश (पा घ्रा ध्मासे) प्रणियच्छति आत्मविश्वास है नेर्गदनद से णत्व। यच्छत यच्छन्ति। यच्छसि यच्छामि। दा दा ददा णल् औ आ लोप। ददौ ददतु: ददु। परोक्षमे दिये। ददथि ददाथ ददथु दद। ददौ ददिव ददिम। दाता दास्यति। यच्छतु यच्छानि, अयच्छत् यच्छत यच्छे अच्छेयम्। आशीर्लिङ् मे एर्लिङ् से एत्व देयात् देयास्ता देयासु। लुङ् मे गातिस्था से सिच् का लुक् अदात्। अदाताम् अदु। अदा अदाताम् अदात। अदाम् अदाव अदाम। ह्वृ कुटिल चाल चलना। शप् परे। गुण रपर। ह्वरति वतमानकालिक कुटिल चाल चलना। परोक्षक्रिया सहितकर्तामे लिट् ण ह्वृ द्वित्व आदि। गुणविधायक सूत्र।

। ७९। ऋतश्च=ऋ अन्त हो संयोग आदिमे, ऐसे अङ्गको गुण हो लिट् परे। दयतेर्दिगिस लिट् आया। ननु सार्वधातुकार्धधातुकयो से गुण होता ही, ऋतश्च क्यो पढा? तब बोले किदर्थमपि=अतुस् उस आदि जो कित् है निषेध प्राप्त है वहा भी गुणके लिए। यदि ऋतश्च संयोग दे का गुण अतुस् आदिमे सफल है तब णल् परे अचोञ्णिति से वृद्धि क्यो नही होती, तब कहा-परत्वात्-णल् परे भी गुण ही होता है। वृद्धिसे गुण पर हे गुण रपर। तब उपधावृद्धि (अतोपधाया सूत्र से) अचोञ्णित को गुणने बाधा था। जह्वर्थ थलपरे क्रादिनियमसे प्राप्त इट् का अचस्तास्वत्थलि और ऋतो भारद्वाजस्य निषेध हुआ। जह्वरिथे जह्वरिम क्रादिनियमसे इट्। कुटिलक्रिया आज से भिन्न भविष्मकालकी हो लुट् तास् आदि ह्वर्ता। ऋदन्त और हन से परे। इट् ह्वरतु अह्वरत् ह्वरेत्। आशीर्लिङ् ह्वृ यात्। स्थिनिम किदाशिषि से आशीर्वाद अथ मे लिङ कित् हुआ। गुणनिषेध प्राप्त—अत: गुणविधायक सूत्र-

जह्वर्थ। ह्वर्ता। 'ऋद्धनो स्ये' ह्वरिष्यति। (२३८०) **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९॥** अर्ते संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वार्ष्टाम्। ९३२ स्वृ शब्दोपतापयोः। 'स्वरतिसूति' इति वेट्। सस्वरिथ सस्वर्थ। वमयोस्तु ३३८१ **श्र्युकः किति ७।२।११॥** श्रिञ एकाच उगन्ताच्च परयोर्गित्कितोरिण्न

।२३८०। **गुणो**–ऋ आदि जुहोत्यादि का ऋ और संयोगादि ऋदन्त धातु (ह्वृ) को गुण हो यक् और यकारादि आर्ध धातु (यास) लिङ् परे। इससे गुण **ह्वर्यात् अह्वार्षीत्**। अह्वृ स् इत्। सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु। रपर षत्व। कुटिल क्रिया **किया। अह्वार्षी अह्वष्टं अह्वाष्टं। अह्वर्षम् अह्वरिष्यत्**।३२। स्वृ अनिट धातु का शब्द=स्वर उच्चारण उपताप=रोग सन्निपातकी क्रियाके वर्तमान कर्ता मे लट् शप् गुण रपर। **स्वरति स्वरतः स्वरन्ति** मन्त्रान्। स्वरसे पढता है। या बुखार चढता है। वह क्रिया परोक्षकालकी हो लिट् ति णल्। द्वित्व स्वृ–स्वृ स्वर् स्वृ हलादि सस्वृ अ। ऋतश्च इति गुणे रपरे अतोपाधाया. वृद्धि। **सस्वार सस्वरतु सस्वरुः** स्वरमे पढे। रोगी हुए। थल परे क्रादिनियमसे इट् प्राप्त–ऋतो भारद्वाजस्य नियमसे नित्य निषेध प्राप्त–अत विकल्प इट्का स्मरण कराते है स्वरतिसूति—वा इट्। गुण रपर **सस्वरिथ**। पक्षे न इट्। त्व कर्तामे अनदेखा परोक्षकालका स्वरउच्चारण या रोगका व्यापार। **सस्वर्थ सस्वर। सस्वार सस्वर सस्वरिव सस्वरिम**। व म परे क्रादिनियम से नित्य इट् प्राप्त उसका निषेध सूत्र।

।८१। श्र्युक=श्रिश्च उक् च, द्वन्द्व से षष्ठी। श्रि एकाच् उगन्त (उ ऋ न् अन्तमे हो) ऐसे धातुसे परे गित् कित् को इट् नही होता। अङ्गका अधिकार उसमे उक् विशेषण। एकाच आया इगन्तमे जुडा। नेड्वसि से न इट् आया। ग प्रश्लेष का फल भूष्णु. (ग्स्नु) मित् का फल कित् हो अन्यथा घुमास्था गापाजहातिसे इत्व होना। एकाच् क्यो पढा? जागरित जागरितवान्मे इट निषेध न हो। उगन्त क्यो? शयित शयितवान् मे इट् हो। श्रित श्रितवान् श्रित्वा। भूत भूत्वा भूति उगन्त है। इस सूत्रसे स्वरतिसूति सूत्रके विकल्प इट् को बाधकर निषेध प्राप्त हुआ। यद्यपि स्वरतिसूति–परशास्त्र है तुल्यबलविरोधे पर कार्यम् होना चाहिए तथापि **पुरस्तात्प्रतिषेध काण्ड**–इट् विधायक सूत्र आर्धधातुकस्येड्वलादे के पहले नेड्वसि कृतिसे इट्

स्यात् । परमपि स्वरत्यादिविकल्प बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्या दनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । सस्वरिव । सस्वरिम । परत्वात् 'ऋद्धनो स्ये' इति नित्यमिट् । स्वरिष्यति । स्वर्यात् अस्वारीत् । अस्वारिष्टाम् अस्वार्षीत । अस्वार्ष्टाम् । स्मृ चिन्तायाम । ह्वृ संवरणे । ९३५ सृ गतौ ।

का निषेध पढा जो प्रतिषेधकाण्ड हैं । उसका (निषेध का) आरम्भ पहले क्यो किया बादमे करना था । इस आरम्भकी शक्तिसे विकल्पको बाध लेगा । **अनेन निषेधे प्राप्ते** । **समाधान**=क्रादिनियममे नित्य इट हुआ क्योकि **प्रकृत्याश्रय प्रत्ययाश्रयो वा यावान् इट् निषेध स लिटि चेत् क्रादिभ्य एव** । प्रकृतिके आधार पर अथवा प्रत्ययक आधार पर जितने इट् निषेध प्राप्त हो वे लिटि परे हो तब क्रादिभ्य एव=कृ–सृ–भृ–वृ–स्तु–द्रु–श्रु आदि से ही हो । नित्य इट् **सस्वरिव स्वरिता स्वर्ता** इट विकल्प । रोगी होगा, स्वर बोलेगा । **स्वरिष्यति** । स्य परे स्वरतिसूतिके विकल्पको परत्वात् बाधकर ऋद्धनो से सूत्रम नित्य इट् । **स्वरतु अस्वरत् स्वरेत् स्वर्यात्** । तुम्हारा उच्चारण बढे । गुणोर्तिसयोगाद्यो से गुण । सामान्य भूगकालमे अस्व् इ स इत् । पहला इट् स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितोवा का इट है । इट ईटि आदि । **अस्वारीत्** वृद्धि- । जब न इट् तब सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु से वृद्धि । स्मृ का चिन्तन ध्यान स्मरण यादकी क्रिया अनिट् है । शप् परे गुण रपर **स्मरति स्मरतः स्मरन्ति । स्मरसि स्मरथ स्मरथ । स्मरामि स्मराव स्मराम** । सब कर्तामे वर्तमानकालिक स्मरण क्रिया । **सस्मार सस्मरतुः सस्मरु** । ध्यानार्थक स्मृधातुसे अनदेखी क्रियाके अनुकूल कर्तामे लिट् ति णल् द्वित्व स्मृ–स्मृ, स्मर्–स्मृ, सस्मृ ऋतश्च सयोगादे मे गुण रपर अतोपधाया वृद्धि, । समर्थ थल परे इट का नित्य निषेध । भारद्वाज नियम से । **सस्मरथु सस्मर । सस्मार सस्मर सस्मरिव सस्मरिम . स्मर्ता स्मर्तास्मि । स्मरिष्यति** । ऋदन्त मानकर इट् । **स्मरतु अस्मरत् स्मरेत् स्मरेता स्मरेयुः** । तुम्हारा स्मरण बढे । आशीर्लिङ्मे गुणोर्तिसयोगाद्या से गुण, **स्मर्यात् स्मर्यास्ता स्मर्यासु** । लुङ् मे सिचि वृद्धि. परस्मैपदेषु । रपर **अस्मार्षीत् अस्मार्टाम्** अस्मार्षु **अस्मार्षी । अस्मरिष्यात्** । ह्वरति घेरता है । ह्वार अह्वार्षीत् । सृ का गति, अनिट् धातु है । **सरति** सरकना अनिश्चित गति भी । **सरत सरन्ति । ससार सरतु सरु** । कृ–सृ–भृ मे पढा है । लिट् परे सर्वथा इट् निषेध । थल् परे भी । **ससर्थ सस्रथु. । सस्र । ससार**

कादित्वान्नेट् । ससथ । ससृव । रिङ स्रियात् । असार्षीत् । असार्ष्टाम् । ८२ सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च ३।१।५६।। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्कर्तरि लुङि । इह लुप्तशपा शासिना साहचर्यात् सर्त्यर्ती जौहोत्यादिकावेव गृह्येते । तेन भ्वाद्यो-र्नाङ । शीघ्रगतौ तु 'पाघ्राध्मा' इति धौरादेश । धावति । ऋ गतिप्रापणयो । ऋच्छति । २३८३ ऋच्छत्यृताम् ७।४।११।। तौदादिकस्य ऋच्छते ऋधातो

ससर ससृव ससृम। सर्ता सरिष्यति। ऋद्धनो से इट्। सरतु। असरत्। सरेत् स्रियात् रिङ् आदेश, जिसके विधानमे न दीर्घ। बढते रहे। असार्षीत् असृ स् ईत। सिचि वृद्धि से आर् वृद्धि। च्लिको चङ् क्यो नही तब—

। ८२ । सर्ति=सृ शास और ऋ इनसे च्लि को अङ हो कर्तामे लुङ् परे । च्लि लुङि, (णिश्री कर्तरि) आया । इस सूत्रसे अङ् क्यो नही ? समाधान= इह लुप्तशपा इस उङ्के विधानमे शास लुप्तविकरण (शप् लुक) सर्व सम्मत है । उसके साथ सृ और ऋ जुहोत्यादिका श्लु विकरण ही सत्य है । तेन=लुप्तविकरणके स्वीकारसे भ्वादिका सृ ऋ धातुसे च्लिको अङ् नहीं होगा । गति अर्थ कहा गया । यदि सृ धातु शीघ्रगति दौडने अर्थमे है तब विशेषता और—पा–घ्रा–ध्मा सूत्र शिति परे सृ को धौ आदेश सर्तेर्वेगि-ताया गतौ धौ आदेश वार्तिकप्रमाण । धावतु अधावत् धावेत् । ऋ गति गमन, प्राप्त करनेकी क्रिया वर्तमानकाल लट् तिप शप् । पा–घ्रा– ध्मा से ऋ को ऋच्छ आदेश ऋच्छति ऋच्छत ऋच्छन्ति । जाते पाते पहुचाते है। इस क्रियाके साथ कर्ता प्रत्यक्ष न हो लिट् ति णल् द्वित्व । ऋ अ । उरत्, हलादिशेष, अत आदे दीर्घ । आऋ अ । असयोगात् लिटि कित् होने परभी विशेष । सूत्रसे गुण, उपधावृद्धि । आर । आ ऋ अतुम् दशामे कित् से सामान्य गुण नही, किन्तु यण–को बाधकर परत्वाद्विशेष गुण विधायकसूत्र

। ८३ । ऋच्छति (दयतेर्दिगिसे लिटि) (ऋतश्च से अनुवृत्त) ऋच्छ (ऋतश्चसे गुण अनुवृत्त) ऋच्छ ऋ ऋत् इनका द्वन्द्व । बहुवचनसे ऋका प्रश्लेष चिपका होना सिद्ध । वह ऋ धातु ही है ऋवर्णान्त नही । ऋतश्च सयोगादेर्गुण के व्यर्थ होनेके भयसे तौदादिकस्य=तुदादिगणका ऋच्छ (गती-न्द्रियप्रलय–मूर्तिभावेषु) धातु, ऋ, ऋत धातु इनको गुण हो लिटि परे । किदर्थमपि=इद सूत्र=कित् परे भी गुणके लिए है । णल् परे पहलेकी तरह

ऋतां च गुण स्याल्लिटि । णलि प्राग्वदुपधावृद्धि । आर अरतु आरु ।
२३८४ इडत्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६।। अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्य-मिट् स्यात् । आरिथ । अर्ता । अरिष्यति। अर्यात् । आर्षीत् आर्ष्टाम, घृ गृ सेचने गरति । जगार । जगर्थ । जग्रिव । रिङ ग्रियात् । अगार्षीत् । ध्वृ हूर्च्छने ।

उपधावृद्धि । यह गुण अचोञ्णितिकी वृद्धिसे पर है । णल् परे भी गुण रपर आदि । आर अरतु आरु । अतुस् उस् परे ऋच्छतिऋताका प्रबल गुण, रपर, दीर्घ । त्वम आरिथ, त्वं कर्तामे परोक्षभूतकालिक गमन प्राप्तिकी क्रिया । आ ऋ थ । दशामे क्रादिनियमसे प्राप्त इट्का अचस्तास्वत्थलिसे निषेध प्राप्त ऋदन्त है भारद्वाज मतमे भी । अत इट् विधायक सूत्र ।

। ८४ । इडत्यर्ति-पञ्चमी अर्थे षष्ठी । अद ऋ व्येञ् धातुसे थलपरे नित्य इट् हो । अचस्तास्वत्से थलि आया, स्वरित न होनेसे विभाषा नही आया । आर्धधातुकस्येड्से इट् आता पुन इट् पढना न वृद्धच से 'न' की निवृत्तिके लिए । इट् गुण दीर्घ । आरथुः आर, आर आरिव आरिम । वस-मस परे । क्रादिनियम—इट् । हम सब कर्तामे गमन, प्राप्तिकी क्रिया भूतका-लिक,अरिष्यति । ऋद्धनो से इट् जायेगे पायेगें । ऋच्छतु जाओ पाओ, शप् परे ऋ की ऋच्छ आदेश । अहम् ऋच्छानि मे जाऊं पाऊ । आर्च्छत् आर्च्छताम् आर्च्छन् । अर्यात् आप पाये । यात्रासफल हो ऋ यात्-गुणोऽर्ति संयोगाद्यो से गुण रपर । गमन प्राप्ति हो चुकी हो कर्तामे लुङ् । आ ऋ स ईत् । सिचि वृद्धि आर । आर्षीत् । सति-शास्ति अर्तिम च्लिका अङ् होनेमे ऋ अमान्य । तसको ताम् । ष—ट आर्ष्टाम् आर्षु । आर्षी आर्ष्टम् आर्ष्ट आर्षम् आर्ष्व आर्ष्म । आरिष्यत् । ऋदन्त इट् । गृ=घृ धातुका सीचना आर्द होना, चूना । वर्तमानकाल लट् शप् अर्गुण वस्त्र गीला कपडा निचु-डता, गरता (चूता है) गरत गरन्ति । गृ—गृ, गर् गृ जगृ । णल् का णित् परे आर् वृद्धि । सयोगादि ऋतश्चसे गुण नहो । जगार । जगृ अतुस् कित्से गुण निषेध । यण् जग्रतु जग्रु । जगर्थ—थल् परे क्रादिनियमसे इट प्राप्त अजन्त जानकर अचस्तास्वत्थलिसे इट् निषेध । द्वाज मतने भी । जग्रथुः जग्र । जगार जगर जगृव । क्रादि नियमका इट् भविष्यमे गरनेवाला हो । गर्ता गतारौ गतार गर्तासि । गरिष्यति गरिष्यन्ति अहं गरिष्यामि मे सीचूगा । ऋद्धनोसे इट । गरतु अगरत् गरेत् गरै गलानि कुटिल कैकेयी । कैकेयीजीमे पश्चाताप गर रहा । गृयात् रिङ्शयग्लिङ्क्षु से रिङ् ग्रियात् ।

९४० स्रु गतौ । सुस्रोथ । सुस्रुव । स्रूयात् । 'णिश्रि' इति चङ । लघूपधगुणा-न्तरङ्गत्वादुवङ् असुस्रुवत् । षु प्रसवैश्वर्ययो । प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम् । सुषोथ-सुषविथ । सुषुविव । सोता । २३८५ स्तुसुधूञ्भ्य परस्मैपदेषु ७।२।७।।

अगार्षीत् सिचि वृद्धि अगरिष्टाम् अगारिषु । गार दिया अगारिष्यत् । घरति घृ ते धर्मे' घृणा मे भी यही धातु । व्यापक प्रयोग नही । ध्वरति कुटिलताकी क्रिया हूर्च्छन=कुटिलता । दध्वार । ऋतश्चसे गुण दध्वरतु. दध्वरु दध्वर्थ. । इट्का निषेध । दध्वरिव दध्वरिम, क्रादिनियमका इट् । ध्वर्ता । ध्वरिष्यति ध्वर्यात् अध्वार्षीत् । स्रु गतौ यह गति द्रवो द्रव्यस्यैव । पिघली वस्तुका रिसना स्रवति पिघलता रिसता है । स्रवत स्रवन्ति स्रवसि स्रवामि । पिघल चुका हो । सुस्राव सुस्रुवतु सुस्रुवु उवङ् । क्रादिमे पढा है, न इट् । सुस्रोथ सुस्रुव-म । स्रोष्यति पिघलेगा पसीझेगा । स्रवतु । अस्रवत् पिघल गया । स्रवेत् चू जाय । स्रूयात् अकृत्सार्वधातुकसे दीर्घ लुङ्लकार । अ स्रु त् । दशामे च्लिको अङ् । णि श्रि द्रु-स्रुसे चाङि सूत्रसे स्रु का द्वित्व आदि । असुस्रु अ त दशामे रेफके आगे उ को सार्वधातुक-कार्यधातुकयो.से प्राप्त गुणका निषेध—चङ्के ङित्से । उवङ्की अपेक्षा लघूपधगुण परत्वात हो जाय । तिप् निमित्त है । अत. कहा लघूपधगुणसे अन्तरङ्ग उवङ् है अन्तर्गत निमित्तम अन्तरङ्ग परसे बलवान् अन्तरङ्ग उवङ् हुआ । असुस्रुवत् अस्रोष्यत् । ४१ षु । आदि ष स । सु का प्रसव। ईश्वरभावकी क्रिया । गर्भविमोचन अर्थका भ्रम न हो अत अभ्यनुज्ञान=परिचय पहचान प्रस्ताव प्रसवका अर्थ । यथा ओ. प्रणयेति ब्रह्मा प्रसौति । विधिने प्रस्ताव किया । प्रणय जप करो । देवस्य त्वा सवितु प्रसवे-मे अभ्यनुज्ञान अर्थ । सु अ ति । शप् । परे उवङ् को बाधकर पर होनेसे सार्वधातुकयो गुण अव् । सवति सवत सवन्ति । पहिचान प्रस्ताव ईश्वर भावकी क्रिया परोक्ष भूतकालिक अभ्यनुज्ञान-प्रभुत्वके कर्तामे लिट् । सु सु अ । अचोञ्णिति वृद्धि (आव्) षत्व । सुषाव सुषुवतु सुषुवु । कित् से न गुण, किन्तु अचिश्नुधातुसे उवङ् । थलिपरे द्वाजनियमसे वा इट् । गुण अव् सुषविथ सुषोथ । कित् नही, निषेध नही, किन्तु गुण , सुषाव सुषव । सुषुविव-ऊवङ् । नित्य इट् क्रादि नियमसे । भविष्यकालका प्रसव प्रभुत्व की क्रिया हो । सोता सोतारौ सोतार सोष्यति । सवतु असवत् सवेत्

एभ्य सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । असावीत् । पूर्वोत्तराभ्यां जिद्भ्यां साहचर्यात्सुनोतेरेव ग्रहणमिति पक्षे असौषीत् । श्रु श्रवणे । २३८६ श्रुव शृ च ३।१।७४।। श्रुव शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च शब्विषये । शपोऽपवादः । श्नोर्ङित्वाद्धातोर्गुणो न । शृणोति । शृणुत । ३३८७ । हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७।। जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाऽचोऽङ्गस्य चासयोगपूर्वोवर्णस्य

सूयात् असौषीत् । किन्तु असावीत् अ सु म इत् । इट्का विशेष सूत्र ।

। २३८५ । स्तु सु धूञ्धातुसे सिच्को इट् हो, परस्मैपद परे । पूर्वसे इट । अञ्जे से सिचि आया । इससे इट् । इट ईटि से सिच् लोप । सिच परे वृद्धि आव् दीर्घ । असावीत असाविष्टाम् असाविषुः पूर्वोत्तराभ्या—पहले स्तु बादमे धु बीचमे (सु) अभिषव अर्थमे श्नु विकरण ही लिया जायेगा । दोनोके साथ पडे जानेसे । इस पक्षमे इट नही असौषीत् असोष्यत् ।

। ४८ । श्रु जानुका श्रवणानुकूल व्यापार । सुननेकी किया अर्थ अनिट् धातु । सुननेकी क्रियावाचक श्रु धातुसे वर्तमानकालके कर्तामे लट् श्रुति । शप् प्राप्तको बाधकर । ८६ । श्रुव श्रु को शृ आदेश हो शप्की जगह श्नु हो । सूत्रमे च बढनेसे स्वादिभ्य के श्नुका सग्रह । कर्ता अर्थमे सार्वधातुक शप् का ही विषय हो । शृ नु ति । ति को सार्वधातुक मानकर गुण, णत्व शृणोति । श्नु पित् नही, कित होनेसे । शृको न गुणः । शृणुत । तस ङित है गुणनिषेध । शृण्वन्ति । सुनना क्रियावाचक श्रु धातुसे वर्तमान कालिक अनेक कर्ता अर्थमे लट् । इसलिए प्रथम पु० का बहुवचन झि । झ को अन्त । श्रु को शृ और नु प्रत्यय । णत्व शृणु अन्ति । दशामे ङित् होनेसे श्नुके गुणका निषेध । अचपरे अचि अचिश्नुधातुसे उवङ् प्राप्त उसका बाधक, यण्सूच ।

। ८७ । हु धातु और श्नु प्रत्यय अन्तवाला अनेकाच् अङ्ग (सयोग पूर्वमे न हो ऐसे वर्ण) को यण् हो, अजादिसार्वधातुकपरे । इणो यण्से यण् आया अचिश्नुसे अचि । मात्रधातुकमे तदादिविधि । एरनेकाच'से अनेकाच् ओ सुपि से ओ अनु० । अजादि देखकर यण् शृण्वन्ति । शृणुथ. शृणुथ । शृणोमि शृणुव शृणुम । जब लोपश्चास्यान्यतरस्यासे व म परे उलोप ल्ब शृण्व. शृण्म । सुननेकी क्रियासहितकर्ता प्रत्यक्ष न हुआ हो, भूतकालके कर्तामे लिट् । श्रु अ । द्वित्व हलादिशेष । शुश्रु अ । अचो ञ्णिति वृद्धि औ—आव आदेश । शुश्राव शुश्रवतु शुश्रवु । अतुस् उस परे उवङ् ।

यण्स्यादजादौ सार्वधातुके। उवङोऽपवाद.। शृण्वन्ति। शृणोमि। शृणुव.—शृण्व। शृण्म:—शृणुम। शुश्रोथ। शुश्रुव। शृणु। शृणवानि। शृणुयात्। श्रूयात्। अश्रौषीत्। ध्रु स्थैर्ये। ध्रवति अय कुटादौ गत्यर्थोऽपि। द्रु द्रु गतौ दुद्रोथ दुदविव। दुदुविव। दुद्रोथ। दुद्रुव। णिश्रि इति चङ। अदुद्रुवत्।

थलि, व, म परे क्रादिनियमसे नित्य इट् निषेध। कृ भृ वृ स्तु द्रु श्रु पढनेसे। शुश्रोथ शुश्रुवथु. शुश्रुव। शुश्राव शुश्रव शुश्रुव शुश्रुम। अनद्यतन भविष्यमे सुनना क्रियाका कर्ता हो। श्रोता श्रोतारौ श्रोतार.। श्रोतासि श्रोतास्थ श्रोतास्थ श्रोतास्मि। श्रोष्यति श्रोष्यत श्रोष्यन्ति। श्रोष्यसि। श्रोष्यामि। शृणोतु शृणुतात् शृणुताम् शृण्वन्तु। उतश्च प्रत्ययादसयोग पूर्वात् से हि का लुक्। शृणु शृणुतात् शृणुत शृणुत। अहं शृणवानि शृणुवाव शृण्वाम। आडुत्तमस्य पिच्चम आट् पित् है। ङित् नही गुण होगा। अशृणोत्, अशृणुताम् अशृण्वन। अशृणोः अशृण्वम्। अशृणुव। श्रवण क्रिया आज्ञा प्रेरणा आमन्त्रण स्वागत निवेदनका विषय हो कर्तामे लिङ् ति यास्। शृणु शृणुयात् शृणुयाता शृणुयु शृणुया। यदि आशीर्वाद हो श्रूयात् श्रूयास्ता श्रूयासु. श्रूयासम्। अश्रु स ई त् सिच्परे वृद्धि षत्व अश्रौषीत् अश्रौष्टाम् अश्रौषु.। अश्रौषी. अश्रौष्टम् अश्रौष्ट। अश्रौषम् अश्रौष्व अश्रौष्म। ध्रुका स्थिर होना अर्थ। ध्रवति स्थिर होता है। अनिट्। परोक्षमे स्थिर हो चुका हो दुध्राव दुध्रुवतु दुध्रुवु। द्वाज नियमसे वा इट्। दुध्रविथ दुध्रोथ। दुध्रविव दुध्रविम। क्रादिनियमसे नित्य इट्। स्थिर हो जानेपर क्रिया सहित कर्ताका अनुमान हो। लिट्की विशेषता। कल परसो स्थिर होना हो। ध्रोता ध्रोष्यति ध्रवतु अहं ध्रवानि मै स्थिर रहू। अध्रवत् ध्रवेत् ध्रूयात्। अध्रौषीत्। अध्रोष्यत्। कर्तामे तत्कालिक स्थिरता।

(९४५) द्रवति अनिट् है। एक कर्तामे पिघलनेकी वर्तमानकालिक क्रिया द्रवत द्रवन्ति। द्रवितु योग्यं द्रव्यम्। अचो यत्। दुदाव दुद्राव दुद्रुवतुः दुद्रुवु.। पिघलना सहितकर्ता प्रत्यक्ष न हुआ हो। यह गति-पिघलना है। द्रवित होना, द्वाज नियमसे वा इट्। दुदविथ दुदोथ दुदुवथुः दुदुव। व म परे क्रादिनियमसे इट्। दुदुविव। परन्तु (द्रु थ) दशामे क्रादिनियमसे नित्य इट् निषेध। व म परे भी। दुद्रोथ दुद्राव दुद्रुव। दोता द्रोता पिघलकर गल जायेगा। द्रोष्यति। दवतु द्रवतु अद्रवत् दवेत् द्रूयात् अदौषीत्।

जि ज्रि अभिभवे । अभिभवो न्यूनीकरण न्यूनीभवन च । आद्ये सकर्मक । शत्रून् जयति । द्वितीये त्वकर्मकः । अध्ययनात्पराजयते । अध्येतु ग्लायतीत्यर्थ । 'विपराभ्या जे ' तङ् । 'पराजेरसोढ ' इत्यपादानत्वम् ।

अथ डीङन्ता ङित । ष्मिङ ईषद्धसने । स्मयते । सिष्मिये । सिष्मियि-

---

अद्रु त दशामे णिश्रिद्रु श्रु कर्तरि चङ अ । चङि से द्वित्व अदुद्रु अत् । ङित् है गुण निषेध । अत उवङ् अद्रुद्रुवत् अदुद्रुताम् अदुद्रुवन् । अद्रोष्यत् । जि जि (अनिट् इनका अभिभव=न्यूनीकरण नीचा दिखाना क्षीणबलीभवन, शक्तिहीन होना । पहला अर्थ सकर्मक । शत्रुन् जयति । रिपुको नीचा दिखाता हैं नीचीकरोति । एककर्तामे वर्तमानकालकी नीचा दिखाना हराना क्रिया । दूसरा अर्थ अकर्मक । अध्ययनसे पराजित होता है । मनोबल टूटना उत्साह गिरना घटना ग्लानिजनकव्यापार । पराजयतेमे आत्मनेपद कैसे ? विपराभ्या जे सूत्रसे पराजयका पढनेके साथ न चिपकाव है न अलगाव (सश्लेषविश्लेषयोरभावात) पराजयके प्रति अध्ययन अपादान कैसे ? तब कहा पराजेरसोढ से अपादान, असहनीय ग्लानि । जयति जयत जयन्ति । नीचा दिखाना हराना शक्ति क्षीणकी क्रिया सहित कर्ता दिखा न हो लिट् । जिजाय सल्लिटोर्जे से कुत्व । जिगाय जिग्यतु जिग्यु । क्राजनियमसे वा इट । जिगयिथ जिगेथ । व म परे क्रादिनियमसे नित्य इट् । जिग्यिव जिग्यिम । जेता जेष्यति हरायेगा । बलहीन होगा । जयतु अजयत । जयेत् जयेता जयेयु. । जीयात् अजैषीत् अजैष्टाम् अजेषु । अजैषी अजैष्टम अजैष्ट । अजैषम् अजैष्व अजैष्म । अजेष्यत् । धेट आदि अजन्त परस्मैपद पूर्ण ।

अथ=इसके बाद डीङ् विहायसा गतौ तक आत्मनेपदकी साधनिका चलेगी । ङित् आत्मनेपदका सूचक । धात्वादि षको स । स्मि धातुका इषद्धसने= थोडा हसने, मुसुकानकी क्रिया । स्मयते मुसुकुराता है । एककर्तामे वतमान-कालिक थोडा हंसना । स्मयेते स्मयन्ते । स्मयसे स्मयेथे स्मयध्वे । स्मये स्मावहे महे । मुसुकुराना क्रिया सहित कर्ता लक्षित न हुआ हो । कर्तामे लिट् त एश् । स्मिको द्वित्व । सिस्मि ए । यहा लिट कित् है । गुण नही होगा अतः इयङ् । सको ष सिष्मिये सिष्मियाते सिष्मियिरे क्रादि इट् । सिष्मियिषे सिष्मियाथे । ध्व परे विभाषा इट से धको ढ । अनद्यतन परोक्षकाल मे तमलोग थोडा हसे । अनद्यतन भविष्यकालमे मुसुकराना हो । कर्तामे लुट्

डवे सिष्मियिध्वे । गुड अव्यक्ते शब्दे, गवते । जुगुवे । ९५० गाङ् गतौ । गाते गाते । गाते । इट एत्वे कृते वृद्धि । गै । लङ् इटि अगे । गेत । गेयाताम् । गेरन् । गासीष्ट । 'गाङ्कुटादिभ्य' इति सूत्रे इङादेशस्यैव गाङो ग्रहण, न

आदि । गुण भी । स्मेता स्मेतारौ स्मेतार । स्मेतासि । स्मेष्यते स्मेष्यसे अह स्मेष्ये । कुछ हसूगा । स्मयता स्मेयाता स्मयन्ता । स्मयस्व स्मयेथां स्मयध्व । स्मयै स्मयावहै-महै । अस्मयत अस्मयेताम् अस्मयन्त, अस्मयथा । तुम मुस्कराये । स्मयेत स्मेयाता स्मयेरन् । स्मयेथा स्मयेयाथा स्मयेध्व । स्मयेय (इटो ऽत) स्मेषीष्ट स्मेषीयास्ता स्मेषीरन् । स्मेषीष्टा । त्व कर्तामे कुछ हमने क्रियाकी शुभ कामना । अस्मेष्ट अस्मेषाताम् अस्मेषत, अस्मेष्यत । गवते गू गाके अस्पष्ट बोल । गोता अगोष्ट गु गु क्रिया । ९५० गाधातु का गति=गानेकी क्रिया कर्तामे वर्तमान हो । लट् त शप् । गा अत । सवर्णदीर्घ । टिको ए गाते, गाते, गाते । गा अ आताम । आतो ङित से आको इय आदेश बाधकर परत्वात् अक सवर्णदीर्घ ,तब इय नही असे परे आ न मिलनेसे । गा अ झि । आ अको सवर्णदीघ । आत्मनेपदेपु-अनत । झको अत । टिको ऐ । गासे गाथे गाध्वे । उत्तमपुरुष (गा अ इ) दशामे सवर्णदीर्घ । इटको ए । एचि परे वृद्धि गै गावहे गामहे । हम लोग गाते है वर्तमानमे गानेकी क्रिया, कर्तामे लिट् । गा गा, गगा, जगा ए । आतो लोप इटि, जगे जगाते जगिरे । क्रादिनियमसे इट । जगिषे जगाथे जगिध्वे । जगे जगिवहे-महे । भविष्यकालमे गाना हो । गाता गास्यते । गाता गातां गाता, गास्व गाथा गाध्व, गै गावहै-महै । अगात अगाताम् अगात, अगाथा अगाथाम् अगध्वम् । इट् परे अगा अ इ सवर्णदीर्घ आद् गुण । अगे अगावहि महि । हमसब गाये । गानेकी सम्भावना प्रेरणा हो लिङ् न, गा अत सवर्णदीर्घ सीयुट्का सलोप यलोप । गाईत् । गुण-गेत गेयाता गा अ आताम सीयुट्का सलोप गुणे । गेरन् । झस्य रन् । गेथा गेयाथा गेध्व । गेय गेवहि गेमहि गानेके विषयमे आशीर्वाद शुभकामना प्रदानकरनी हैं । लिङ् त । गा सी सत । गासीष्ट गासीयास्ता गासीरन् । गासीष्ठा गासीयास्था गासीध्व । गासीय गासीवहि गासीमहि । गाङकुटादिभ्य सूत्रसे णित् ङित्से भिन्न प्रत्ययके ङित् विधानसे घुमास्था गा पा सूत्रसे हलादि ङित्परे इत्व हो जाय तब लिखा-गाङ्कुटादिभ्य सूत्रमे इङके स्थान मे गाङ आदेश लिट् परे लिया जाता हैं । गाङ्गतौ नही । इति भाष्ये । तेन=

त्वस्य । तेनाडित्वात् घुमास्था इतीत्व न। अगास्त । आदादिकोऽयमिति हरदत्ता दय । फले तु न भेद ।कुङ् घुङ् उङ् शब्दे । अन्ये तु उङ् कुङ् खुङ् गुङ् घुङ् ङुङ् इत्याहु । कवते । चुकुवे घवते । अवते । ऊवे । 'वार्णादाङ्गं बलीय' इत्युवङ् । तत सवर्णदीर्घ । ओता ओष्यते । ओषीष्ट । औष्ट । ङवते । ञुङुवे ङोता च्युङ् ज्युङ् । प्रुङ् प्लुङ् गतौ । क्लुङ इत्येके । रुङ् गतिरेषणयो ।

ङित्परे न होनेसे उक्त इत्व नही होता । लुङ्मे भी नही होगा, इङको गा आदेश न होनेसे । सिच् अट् । गाना गाया अर्थमे अगास्त अगासाताम् अगासत, अगास्था अगासाथाम् अगाध्व । अगासि अगास्वहि–महि । अगास्यत् । हरदत्त मतमे गाङ्गतौ अदादिका है शप् लुक् होनेपर भी रूप वही होगा । अतः कहा फले न भेद' । रूपमे अन्तर नही । कुङ् आदि धातु शब्द ध्वनिकी क्रिया अर्थमे । कवते कू कू करता है । लिटिमे चुकवे चुकुविषे चुकुविध्व चुकुविवहे । परोक्षमे कू कू किया । क्रादि इट् कोता । घोस्यते घवता घू घू करो । अकवत, घवेत कोषीष्ट अकोष्ट अकोषाताम् अकोषत । एव खवते अखोष्ट । गवते अगोष्ट गू गू किया । उङ् धातुसे लट् आदि गुण अव् । उ उ अथमे अवते ऊवे । उ उ ए दशामे दूसरे उको उवङ्, तब सवर्ण दीर्घ । ऊवे । वार्णादा=वर्ण कार्य (दीर्घ) से अङ्गकार्य (उवङ्) प्रबल है । इसलिए उवङ पहले हुआ । क्रादि इट् ऊविषे ऊवाथे ऊविध्वे । ऊवे ऊविवहे । ओता ओष्यते आवत । अवेत औष्ट । ङवते ञुङुवे कुहोश्चु ङको ञ । अनुनासिक आदेश ।

९९५ च्युङ् आदि धातुका गति गमन क्रिया चूना, रेगना पीडना भी गति है । च्यवते च्योष्यति अच्यौत अच्योष्ट चु गया । जवते जू रेंगता है । प्रवते प्लवते अप्रोष्ट । अप्लोष्ट । तैर गया पार किया । रु का गमन हिंसाकी क्रिया अर्थ । रवते रुमृग चलता रहता है । मार गिराना । क्रिया सहित कर्ता न देखा हो द्वित्व । रुरुवे रुरुवाते रुरुविरे रुरुविषे । सेट् है । उद्दृदन्तयौति=रु अनिट् पर्युदासमे पढा है । रविता रविताहे चलेगा, हिंसा करेगा । अरविष्ट अरविषाताम् अरविषत । ९६० धृधातुका अवध्वसन धर पकडकी क्रिया । धरते पकडना है । धरक्षेपी करना क्रिया सहित कर्ता को न देखा हो लिट् त एश् । धृ धृ ए उरत् शेष कार्य लिट् कित् है । न गुण किन्तु यण् । दध्रे दध्राते दध्रिरे । पकड लिया, धरा । क्रादि इट् दध्रिषे दध्रिवहे । धर्ता धरिष्यते । ऋदन्त–इट् पकडेगा । धरताम् अधरत धर

रेषण हिंसा । रुरुवे । रविताऽसे । धृङ् अवध्वसने । धरते । दध्रे । मेङ् प्रणिदाने । प्रणिदान विनिमय प्रत्यर्पण च । प्रणिमयते । नेर्गद इति णत्वम् । तत्र घुप्रकृतिमाङिति पठित्वा ङितो माप्रकृतेरपि ग्रहणस्येष्टत्वात । देङ् रक्षणे । दयते । (८८) दयतेर्दिगि लिटि ७।४।९।। दिग्यादेशेन द्वित्वबाधनमिष्यते इति वृत्तिः। दिग्ये । २३८९ स्थाघ्वोरिच्च ।१।२।१६।। अनयोरिदन्तादेश

लिया । धरेत आप पकड ले । धृषीष्ट । उश्चसे सीयुट् कित् है गुणनिषेध, एककर्तामे अवध्वसन विषयमे कामनाकीक्रिया भूतकाल हो । अधृ सत । ह्रस्वादङ्गात्मे सिच्लुक । अधृत अधृषाताम् अधृषत । अधृष्ठा. तुम पकडे गये । अधरिष्यत, मयते बदलेमे देता है या वितरण करता है । प्रनि उपसर्ग नेर्गद से णत्व । तत्र=नेर्गदनदकी णत्व विधिमे घुमास्थापागा सूत्रमे मा के स्थानमें माकी प्रकृतिका भी ग्रहण इष्ट है । प्रणिमयते । मे दोष नही । मेङ् कृत—आत्व नही है । शित्का विषय न होनेसे । ममे ममाते ममिरे । बाट दिया, विनिमय किया, दान दिया । क्रादि—इट् । ममिषे ममाथे ममिध्वे । ममे ममिवहे महे । माता मास्यते देगा बाटेगा । मायता मायेता मायन्ताम् वितरण करें । मायै मयावहै—महै । अमयत मयेत । अमास्त । अमास्यत । देङ् रक्षाक्रिया वर्तमान हो कर्तामे लट् शप् गुण अय । दयते दयेते दयन्ते दया करते है । परोक्षकालमे रक्षा क्रियासहित कर्ताको न देखा हो, लिट् दे+ए द्वित्व प्राप्तको बाधकर । (८८) दयते=देङ्के स्थानमे दिगि आदेश हो, जिससे द्वित्व का बाधा जाना इष्ट है। वृत्तिकार मत, जो भाष्यका बोधक । दिगि ए । यण् दिग्ये—रक्षा दया कर चुका हो, कार्यसे क्रियाका अनुमान । दिग्यिषे दिग्याथे दिग्यिवहे—महे । दाता दया करेगा । दास्यते दास्येते दास्यन्ते । दयता दयेता दयन्ता दयस्व दयेथा दयध्व दयै दयावहै—महै । हमलोग दया करें । अदयत रक्षा किये । दयेत दयेयाता दयेरन् । दासीष्ट दासीयास्ता दासीरन् । दासीष्ठा दासीयास्था दासीध्व दासीय दासीवहि—महि । हमलोगोमे दया रक्षाके प्रति शुभकामना । कर्मोकी पूर्ति सम्भावना । दया रक्षा हो चुकी हो सामान्यभूतकालके कर्तामे लुङ् त सिच् । अदा स त दशामे ।

(८९) स्था और घुसंज्ञक दाधाकी इत् (अन्त्य अल् स्थाने) हो । सिच् कित् हो आत्मनेपद परे । असयोगात्से कित्, हन सिच्से सिच् आये । इत्व अदि स त । ह्रस्वान्त अङ्ग मिल गया, सिच्का लुक्, त ङित् है गुणनिषेध,

स्यात् सिच्च कित्स्यात् तङि । अदित । अदिथा । अदिषि । श्यैङ् गतौ । श्यायते । शश्ये । प्यैङ् वृद्धौ । प्यायते । पप्ये । प्याता । ९६५ । त्रैङ् पालने । त्रायते । तत्रे । पूङ् पवने । पवते । पुपुवे । पविता । मूङ् बन्धने ।

आता परे इत्व होगा सिच् लुक नही, झलि परे न होनेस । सिच् कित है गुणनिषेध । अदिषाताम् अदिषत अदिथा अदिषाथाम् अदिढ्वम् अदास्यत् । श्यायते बाझ उडता है । शप् का शित है आदेच उपदेशेसे आत्व नही, अशीति पढा है । लिट् त को एश आत्व । श्या–श्या द्वित्व । आलोप शश्ये शश्याते शश्यिरे । क्रादि इट् शश्यिषे शश्याथे शश्यिध्वे शश्यावहे श्याता श्यास्यते श्यायताम् अशायत् । श्यासीष्ट अश्यास्त । प्यैङ्– प्यायते प्याऊसे पुण्य बढना है । पानी पिला चुका हो आत्व । प्या-प्या ए पप्ये । प्यास्यति पिलायेगा । प्यायताम् । अप्यायत पिलाकर वृद्धि किया । प्यासीष्ट अप्यास्त बढाया । त्रैङ्–त्रायते शरणागत का पालन रक्षण करता है । त्रायते त्रायन्ते । त्रायसे त्रायेथे त्रायध्वे । त्राता त्रातारौ त्रातार । त्रातासे त्रातासाथे त्राताध्वे । अह त्राताहे पालन करनेवाला हैं । त्रास्यते । त्रायता त्रायेता त्रायन्ता । त्रायस्व त्रायेथा त्रायध्व । त्रायै त्रायावहै त्रायामहै । अत्रायत । त्रासीष्ट । अत्रास्त । पालन किया । अत्रास्यत । पूङ् पवने पवित्र करनेकी क्रिया सेट् । ऊदन्त धातुके अनिट् मे पर्युदास से । पू अ ते । गुण अव् । पवते पवेते पवन्ते अनेक कर्तामे पवित्र करनेकी वर्तमान- कालिक क्रिया, व्यापार कर्ता न दिखा हो, परोक्षे लिट् । पु पू ए । लिट किन् है न गुण किन्तु उवङ् । पुपुवे पुपुवाते पुपुविरे । पुपुविष पुपुवाथे पुपु- विध्वे । पुपुविमहे । हमसब पवित्र किये । कार्य देखकर क्रिया का अनुमान । पविता पवितारौ पवितार पवितासे पवितासाथे पविताध्वे पविताहे । पविष्यते । पवता पवेता पवन्ता पवै पवावहै । पवित्र करने की क्रिया आज्ञा प्रेरणा का विषय हो पवित्र करें करू । अपवत अपवेताम् अपवन्त । शुद्ध किये । पवेत पवेयातां पवेरन् । पविषीष्ट पविषीयास्ता पविषीरन् । पुनीतके विषयमे शुभ कामना लिङर्थ । अपविष्ट अपविषाताम् अपविषत । अप- विष्ठा तुमने पवित्र किया । अपविष्यत् । मूङ् का बन्धनकी क्रिया–मवते बाधता है । मुमुवे अमविष्ट । डीङ् का आकाशमार्ग मे चलना सेट् है । अनिट्मे निषेधसे । डी अते । गुण अय् । डयते डयेते डयन्ते । डिड्ये डिड्याते डिड्यिरे डिड्यिसे । डयिता डयिष्यते डयताम् अडयत डयि-

मवते । डीङ् विहायसा गतौ । डयते । डिडये । डयिता । तॄ प्लवनतरणयो । २३९० ॠत इद्धातो ७।१।१००। ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् । 'इत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन' तरति । 'ॠच्छत्यॄताम्' इति गुण । 'तॄफल' इत्येत्वम् । तेरतु तेरु । २३९१ वॄतो वा ७।२।३८। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि । तरिता-तरीता । अलिटि इति किं ?

षीष्ट डयिसीयास्ता, डयिसीढ्वम् ध्वम । डयिसीय डयिषीयवहि । अडयिष्ट अडयिषाताम अडयिषत अडयिष्ठा ।

। ३९ । तॄ धातुका प्लवन पौडना, तरण तैरना पार करना क्रिया । वर्तमानकालके कर्तामे लट् । तॄ अ ति । सार्वधातुक परे अर् गुण । तरति तरत तरन्ति । गुण को बाधकर इत् प्राप्तिका सूत्र ।

। २३९० । ॠत्=ॠ अन्त धातुके अङ्गके अन्त्य अन् ॠ को इन हो । धातु क्यो ? मातृणा मे ॠ को इत् न हो, किरति गिरति, कीर्ण गीर्ण इत्वम् । इससे 'इत्व प्राप्त' उसका बाधक वार्तिक इत्व (ॠत इत्) उत्व (उदोष्ठ्य पूर्वस्य) अन्तरङ्ग है तथापि गुण और वृद्धि ने विप्रतिषेध सूत्रके इष्ट कार्य अनुकूलकार्य करनेके बलपर बाध लिया परत्वात् । इसका फल तरति पिपर्तिमे इत्व नही । ततार पपारमे उत्व नही । वर्तमानकालकी तरण प्लवन । तैर चुका हो परोक्ष हो, कर्तामे लिट ति णल् । द्वित्व तॄ तॄ तॄ अ । अचोञ्णिति वृद्धि । ततार तेरतु तेरु । ततॄ अतुम कित् है निषेध होगा । अत गुणके लिए विशेषसूत्र—ॠता से गुण । एत्व अभ्यास लोपका न शसददवादि गुणाना से निषेध । क्योकि ततर अतुस् में अकार गुण से हुआ है तब कहा—तॄफलभजत्रपश्चसे एत्व अभ्यासलोप । तेरिथ तेरथु तेर तुमलोग कर पार कर गये । पार हुए । कार्यसे तरण क्रियाका अनुमान । ततार ततर तेरिव तेरिम हमलोग पौड चुके पार किये । कार्यसे क्रियाका अनुमान

। ९१ । वॄ वृञ् ॠ अन्त=(द्वन्द्व से पञ्चमी) इट् को दीर्घ हो विकल्प से लिट् परे न हो तब । आर्धधातुकस्यसे इट् (ग्रहो) अलिटि दीर्घ अनुवर्तन्ते । आगामी भविष्यमे पार होना हो, अनद्यतने लुट् तास् इट् आदि । न इता । वॄतो वा से इट्को दीर्घ विकल्प, तब अर् गुण तरिता तरीता तरिष्यति । तैरेगा पार होगा । पौडना पार होना आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना है आप पार हो तब कर्तामे लोट् । तरतु तरता तरन्तु । अहं तराणि तरात्र

तेरिट। 'हलि च' इति दीर्घं। तीर्यात्। **२३९२ सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०।** अत्र वृत्त इटो दीर्घो न। अतारिष्टाम्।

अथाष्टावनुदात्तेत. । ९७० गुप गोपने। तिज निशाने। मान पूजायाम्। बध बन्धने। **२३९३ गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ३।१।५। २३९४ मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ३।१।६।** सूत्रद्वयोक्तेभ्य सन्स्यात्,मानादीनामभ्यासस्येकारस्य दीर्घश्च। 'गुपेर्निन्दायाम्' 'तिजे क्षमायाम्' 'कितेर्व्याधिप्रती-

---

तराम। अतरत् अतरताम् अतरन्। अतर. अतरतम् अतरत। अतरम् अतरवाव अतराम। हमलोग तैरे, पार किए। तरेत् तरेता तरेयु। तरेयम्। तरण प्लवनके प्रति शुभकामनाका प्रकाशक आशीलिंङ्। तीर्यात् ऋत् इत् तिर् हलि च से दीर्घ तार्यास्ता तीर्यासु। अ तॄ इ स ई त्। इट ईटि सलोप। दीर्घ। सिचि वृद्धि। अतारीत् अतारिष्टाम् अतारिषु। अहं अतारिषम् तैर चुके पार किये। वृतो वा से दीर्घ क्यो नही, निषेध सूत्र। ।९२। सिचि च अत्र—परस्मैपद परक सिच् हो वृङ् वृञ् और ॠदन्तसे परे इट् को न दीर्घ। इति निषेधे-अतरिष्यत्।

अथ—इसके बाद आठ अनुदात्त इत्—धातु की आत्मनेपद प्रक्रिया विशेषता सहित साधनिका।

।९७०। गुप गोपने रक्षा अर्थमे, तिज निशाने तीक्ष्णीकरणे अर्थे, मान का पूजा सत्कार आदर। बध का बन्धनमे अनुदात्त इत्। आत्मनेपदके अधिकारी। ९३। गुप तिज कित (निवासे) इन धातुओसे सन् हो। प्रथम सूत्रार्थ। ९४। मान (पूजा अर्थमे) बध (बन्धन अर्थमे) दान खण्डने शान तेजने इन चार धातुओसे सन् हो। द्वितीयसूत्रके प्रथम भागका अर्थ। अभ्यासस्य विकार. अभ्यास। यथा सन्यत. का इत्व अभ्यासका विकार है। ह्रस्व अमान्य। मान बधान शान इसके अभ्यासको इत्व हो साथमे दीर्घ भी। सन्नियोगशिष्टाना सहैव प्रवृत्ति। दूसरे सूत्रके द्वितीय खण्डका अर्थ। इसलिए कहा—सूत्रद्वय से सन् हो मानादाके अभ्यासको इत्व हो, दीर्घ भी वृत्तिकारके विचारसे अर्थ विशेषता बोले—गुप् धातुसे सन् हो निन्दा घृणा अर्थमे रक्षा अर्थमे नही। तिज्से सन् हो क्षमा अर्थमे तेज अर्थमे नही। कित् धातु से सन् हो पाच अर्थमे व्याधिरोगकी चिकित्सा अर्थमे, निग्रह—बन्धन अपनयन हटाना दूरीकरण निशान तीक्ष्ण और सन्देह अर्थमे, नहि निवासे। मान धातुसे जिज्ञासा—किसी विषयके ज्ञानकी इच्छामे (पूजा सत्कारमे नहीं)

कारे' निग्रहे अपनयने नाशने संशये च। 'मानेर्जिज्ञासायाम्' 'वधेश्चित्तविकारे' 'दानेरार्जवे' 'शानेर्निशाने' 'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वम। २३९५ सन्यङो ६।१।९। सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य। अभ्यासकार्यम्। गुपिप्रभृतयः किद्भिन्ना निन्दाद्यर्थका एवानदात्तेत। दानशानौ

वधसे चित्तविकार क्रोध शेष, आखें लाल करने अर्थमे सन् हो। (नहि वन्धने) दानसे आर्जव कोमलता दयालुता अर्थ सन्। शानसे निशान अर्थमे सन हो। मानेर्विचार इति वृत्तिकार। यह सन् सामान्यधातुके अधिकारमे नही किन्तु सन्नन्त है। सनाद्यन्ता से धातुसञ्ज्ञा।

॥ २३९५ । सन्यङोः प्रत्यय है तदन्तविधि होगी। सन् अन्त यङ अन्त धातुसञ्ज्ञकके प्रथम एकाच्को द्वित्व हो। अजादि धातु हो तो द्वितीय एकाच्को द्वित्व। एकाचो द्वे प्रथमस्य, अजादेर्द्वितीयस्य का अधिकार। दो उच्चारण होनेपर पूर्वको अभ्याससञ्ज्ञा उसके कार्य सन्यत से इत्व आदि हो। सनि यङि च परे द्वित्व कहेगें। प्रतीषिषति अटाटयते मे सन् यङ् के साथ द्वित्व नही होगा। गुपि प्रभृतय —कित् धातुको छोडकर गुप तिज मान वध चार धातुओको जो निन्दा क्षमा जिज्ञासा चितविकार अर्थमे अनुदात्त इत् हो। उनसे सन कहे। कित परस्मैपदी है उदात्त इत् होने पर व्याधिप्रतीकार आदि पाच अर्थोसे सन्के पात्र। दान खण्डने, शान तेजने धातु स्वरित इत् है। आर्जव और निशान अर्थमें सन्। एते=गुप तिज् आदि सात धातु जो निन्दादि अर्थमे बधे है नित्य सन्नत है। सन्के विना निन्दादि अर्थ नही खुलता अर्थान्तरे=निन्दा क्षमा आदिसे भिन्न रक्षण निशान आदि अर्थ धातुमे पढे है। अनुदात्त अनुबन्ध विहीन चुराढिके है। भ्वादि के नही। चुरादिमे अनुदात्त अनुबन्धसे केवल धातुमे चरितार्थ नही, किन्तु ण्यन्तसे कर्तामे फल न भी हो उनसे आत्मनेपद हो, यदि ऐसा भ्वादिगणमे गुप् आदिमे अनुबन्ध व्यर्थ है। रक्षण अर्थमे अनुबन्ध रहित चुरादिके है, निन्दादि अर्थमे सन्नन्त नित्य है। अन्यत्र प्रयोग नही मिलता। तत्र कहा—अनुबन्धस्य=गुप् आदि केवल धातुमें निष्फल है इसलिए सन् सहित अर्थ समझ। सन्नन्तसे आत्मनेपद हो। भ्वादिमें गुप् रक्षणे अर्थ निर्देश अपाणिनीय है।

गुपादिषु अनुबन्धकरणसामर्थ्यात् सन्नन्तादात्मनेपद। अन् अन्त से तङ् कहा। शप विकरणमे नही। धातोरिति=यह सन् धातुसे विधान नही होता धातुके अधिकारमे नही है।

तु स्वरितेतौ। एते नित्य सन्नन्ता। अर्थान्तरेषु त्वननुबन्धका चुरादय। अनुबन्धस्य केवलेऽचरितार्थत्वात्सन्नन्तात्तङ्। धातोरित्यविहितत्वात्सन्नोऽत्र नार्धधातुकत्वम्। तेन इड्गुणौ न। जुगुप्सते। जुगुप्साचक्रे। तितिक्षते। मीमां-

---

आर्धधातुक शेष से सन् आर्धधातुक नही होगा। तेन=सन्का आर्धधातुक न होनेसे इट् और गुण नही होते। जुगुप्सते निन्दाअर्थमे विराजमान गुपसे सन्, सन्यडो से द्वित्व। गुप् गुप् गुगुप् जुगुप् स-सनाद्यन्तधातुसज्ञा। लट् आदि। वर्तमानकालिकी निन्दाजननाक्रिया। परोक्षमे निन्दा हुई हो कास्प्र-त्ययात् आम्, कृ लिट् अनुप्रयोग। जुगुप्सिता, जुगुप्सिष्यते, जुगुप्सताम्, अजुगुप्सत, जुगुप्सेत्। अजुगुप्सिष्ट। तितिक्षते तिक्ष्णीकरोति छुरिका, तेज करता है। तिज्स सन् तितिज स। ज को ग, चर-क, स (ष) तिति-क्षाञ्चक्र। तितिक्षताम्, अतितिक्षिष्ट। मामासते विचारयति। जिज्ञासा अथ बोधक सन् द्वित्व आदि। सन्यत से इत्व। मानबधानस दीर्घ। नश्च अनुस्वार। मीमाम सनन्तधातुसे वर्तमानक्रियाकर्तामे लट् आदि। एककर्तामे वतमानकालिक विचार क्रिया। मीमासाञ्चक्र। परोक्षमे विचार किया। मीमासिता। कल विचार करेगा। मीमासिष्यते अह मीमासिष्ये मैं विचारूगा। मीमासताम् अह मीमासै। अमीमासत मीमासेत मीमासेयाता मीमासेरन्। मीमासिषीष्ट। अमीमासिष्ट अमीमासिषाताम्। अमीमा-सिष्यत। बीभत्सते घृणा चित्तमे विकार पैदा करता है, बधस सन् सन्यडो से द्वित्व। सन्यत इत्व दीघ। बीबध स्। एकाचोबशोभष-से ब को भ, धको को चत्व त। बीभत्स्-सन्नन्त धातुसे वतमानकालिक चित्तविकार घृणा रोष आदि क्रियाक कर्तामे लट आदि। त्व बीभत्ससे। अह बीभत्से बिभत्सा-ञ्चक्र बीभत्सिष्यते बीभत्सता चित्तमे विकार पदा करो। अबीभ-त्सिष्ट। अबीभत्षिसाताम् अबीभत्षिसत। गुपादि सात धातुओमे चारका उदाहरण दिया। कित मान शान अभी धातु पाठमे कहे जायेगे। रभ का राभस्य शीघ्रीभाव भीडमे धक्का धुक्कीकी क्रिया। आङ् पूर्वमे हो प्रारम्भ अर्थ। आरभते। एक कर्तामे वर्तमान आरम्भ क्रिया। आरभेते आरभन्ते आरभसे आरभेथे आरभध्वे। आरभे रभावहे। रभामहे। लिट् परे द्वित्व एत्व आदि। रेभे रेभाते रेभिरे आरभसे आरभाथे आरभिध्वे। रब्धा रभ ता। दशामे झषतथो से त को ध। भ को जश् ब रब्धा रब्धारौ रब्धार आरब्धासे आरब्धासाथे आरभध्वे। आरभे। रभ स्यत्, भ को

सते। भष्भाव । चर्त्वम्। बीभत्सते। ९७४ रभ राभस्ये। आरभते। आरेभे। रब्धा। रप्स्यते। ९७५ डुलभष् प्राप्तौ। लभते। स्वञ्ज परिष्वङ्गे। २३९६ दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ६।४।२४। २३९७ रञ्जेश्च ६।४।२६। एषां शपि नलोप स्वजते। परिष्वजते। 'श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनां लिट किल्व वा

चर्त्व प। रप्स्यते। भीडमे शीघ्रता करेगा। रभता रभेता रभन्ताम् भीडको चीर दे। अरभत अरभेताम् अरभन्त। रभेत रभेयाता रभेरन्। रप्सीष्ट रप्सीयास्ता रप्सीरन्। शीघ्रता समाप्त हो लुङ्। अरभ स त। झलोझलिसे सलोप त को ध, भ को ब, अरब्ध अरप्साताम् अरप्सत। अरब्धा. अरप्साथाम् अरब्ध्वम्। अरप्सि अरप्स्वहि।

। ९७५। डु ष् इत् का फल (ड्वितः क्त्रिः लप्त्रिम) षिद्भिदादिभ्योऽङ्। लाभ फल वर्तमान कालिक प्राप्ति-लाभ अर्थमे लभते लभेते लभन्ते। लभसे लभेथे लभध्वे। अहम्। लेभे। परोक्षमे लाभ हुआ हो लभ व तुसे लाभक्रिया सहित कर्ता न देखा हो। लिट् त आदि। लेभे लेभाते लेभिरे लेभिसे। लब्धा लब्धारौ लब्धार • लब्धासे अह लब्धाहे लप्स्यते लाभ करेगा। पायेगा। लभता लभेता लभन्ता लभस्व लभेथा लभध्वम्। लभै लभावहै लभामहै हम सब कर्तामे वर्तमान लाभ क्रिया। अलभत अलभेताम् अलभन्त अलभथा। लभेत लभेयाता लभेरन्। लाभ पूर्तिकी शुभकामना आशीर्वाद। लप्सीष्ट लप्सीयास्ता लप्सीरन्। लप्सीष्ठा लाभ हो चुका हो। अलब्ध अलप्साताम् अलप्सत। अलब्धा अलप्साथाम् अलब्ध्वम् अलप्सि अलप्स्वहि अलप्समहि। स्वञ्ज का आलिङ्गन=हृदयसे लगाना भेंटना अर्थ। लट् शप् होनेपर नलोपका सूत्र-

(९६) दश सञ्ज स्वञ्ज एव रञ्ज धातुके न का लोप हो, शपि परे। इससे नलोप हुआ। स्वजते-आलिङ्गन करता है। परि उपसर्ग लगा परिनिवि भ्य से षत्व हुआ। स्वजेते स्वजन्ते। स्वजसे अह स्वजे। आलिङ्गन करता हू। लिट परे द्वित्व आदि। सस्वजे। सयोगसे परे लिट् कित् नही होता नकारलोप कैसे ? तब कहा-(वा) श्रन्थि ग्रन्थि दम्भि स्वञ्जि इनसे परे लिट्को कित् विकल्प कहे। तब अनदिता से नलोप। यह वार्तिक पाणिनि व्याकरणका नही परन्तु पाणनीय प्रियमे मान्य। प्रमाणमे अत एकहल्मध्ये— सूत्रमे देभतुः। सदे परस्य सूत्रमे सस्वजे भाष्य उदाहरण है। एकदेशकी अनु-

इति व्याकरणान्तरम् । देभतु । स्वजते । इति भाष्योदाहरणादेकदेशानुमत्या इहाप्याश्रीयते । 'सदे परस्य लिटि' इति सूत्रे 'स्वञ्जेरुपसंख्यानम्' स्वङ्क्ता । स्वङ्क्ष्यते । स्वजेत । स्वङ्क्षीष्ट । अस्वङ्क्त । प्रत्यष्वङ्क्त । 'प्राक्सितात्' इति षत्वम् । परिनिविभ्यस्तु 'सिवादीनां वा-' वा इति विकल्पः । एतदर्थमेव

मतिसे यहाँ भी मान्य (वा) सदे परस्य लिटि—सूत्र षत्वका निषेध करता है । उसमे स्वञ्ज भी स्वीकार । स्वत् स्वञ्जके उत्तरखण्डके सको ष न हो । इस व्याख्यानसे अभ्याससे परे सको ष नही । न लोप हुआ, परिषस्वजे । किन् पक्षमे नकारलोप । सस्वजाते । सस्वञ्जाते सस्विञ्जिरे सस्वजिषे । क्रादिनियमसे इट् । कित पक्षमे न लोप । सस्वञ्जिध्वे सस्वञ्जिवहे—महे । आलिङ्गन अलक्षित । आजसे भिन्न भविष्यकालमे हृदयसे लगाना हो स्वङ्ता स्वङ्क्तारौ स्वङ्क्तार । स्वञ्ज ता । जको कुत्व ग, ञ हटा । न को अनुस्वार सवर्ण ङ, ग, को क । स्वङ्क्ष्यते । स्वञ्जस्यते । ज—ग, न—ङ, ग—क, स—ष, अस्वजत । स्वजेत वह आलिङ्गन करे । दश सञ्जसूत्रसे शप् परे नलोप । स्वञ्जेयाताम् स्वञ्जेरन् । स्वजेथा अहं स्वजेय मै हृदयसे लगाऊ । हृदयसे लगाने के विषयमे शुभ कामना आशीर्वाद आलिङ्गन करे स्वङ्क्षीष्ट । स्वञ्ज सी स त । जको ग, क, न ङ् स ष सम्मेलने, आलिङ्गन क्रिया हो चुकी हो अस्वङ्क्त लुङि । अस्वञ्जसत । दशामे झलोझलि सलोप ज—ग क न—ङ अस्वङ्क्षाताम् अस्वङ्क्षत अस्वङ्था हृदय से लगाये । प्रति उपसर्ग जुडनेपर अ टका अन्तर हैं । उपसर्गस्थ इणसे परे अट् है । स नही, उपर्गात्सुनोतिसे षत्व कैसे ? तब कहा प्राक्सितात् सूत्र अट्के व्यवधानमे भी षत्व, परिनिविसे परे सेवसितशयस्वञ्जके सको शिवादीना वासे विकल्प षत्व । स्वञ्ज प्राक्सितात सूत्रका विषय है । एतदर्थमेव इसी प्रयोजनसे जहा उपसर्गात्सुनोतिसे नित्य षत्वका विधान है बहा स्वञ्जि भी नित्य षत्व है । इसलिए परिनिविभ्य का पुनः ग्रहण हुआ । सिवादीना वा से विकल्प षत्व । हृद धातुका पुरीषोत्सर्ग=मलका त्याग अर्थ अनिट् है । वर्तमानकाल मल त्यागके कर्तामे लट् आदि हदते हदेते हदन्ते । हदसे हदेथे हदध्व । हदे हदावहे-महे । हमसब हगते है । यह क्रिया परोक्षमे हुई हो क्रिया सहित कर्ता लखा न हो । लिट् त एश् । हद हद हहद जहद, जहदे जहदाते जहदिरे । क्रादि इट् जहदिषे यूय जहिध्वे तुमलोग मल त्याग किये । कार्य देखकर क्रियाका अनुमान परोक्ष है । जहदे जहदिवहे-महे । अनद्यतन भविष्यकालमे मल त्यागके क्रिया कर्तामे

'उपसर्गात्सुनोति इत्येव सिद्धे स्तुस्वञ्ज्यो परिनिवि इत्यत्र पुनरुपादानम् । पर्यष्वङक्त पर्यष्वङक्त । हद पुरुषोत्सर्गे । हदते जहदे । हत्ता । हत्स्यते । हदेत हत्सीष्ट । अहत्त ।

अथ परस्मैपदिन । ञिष्विदा अव्यक्ते शब्दे । स्कन्दिर् गतिशोषणयो । चस्कन्दिथ चस्कन्दत्थ । स्कन्ता । स्कन्स्यति । नलोप स्कद्यात् । इरित्वादङवा अस्कदत अस्कान्त्सीत । स्कान्ताम् । अस्कान्त्सु । (९८) वे स्कन्देरनिष्ठायाम् ८।३।७३।। षत्व वा स्यात । कृत्येवेदम्, अनिष्ठायाम् इति पर्युदास त् । विष्कन्ता विस्कन्ता । निष्ठायां तु विस्कन्न । (९९) परेश्च ८।३।७४।।

ल्युन् त तास् आदि । हदता दको चर्त्व त । हत्ता हत्तारो हत्तार । हत्तासे अह हत्ताहे । हत्स्यते मल त्यागेगा हत्स्ये । हदेन हदेयाता हदेरन् । हदेथा हदे०व, हदेय हदेवहि हदेमहि त्याग हो जानेकी कामना हत्सीष्ट, त्याग क्रिया हो चुकी कर्तामे लुड । अहद स त । झलोझलि सलोप, द—त अहत्त अहत्साताम् अहत्सत अहत्था त्व अहत्सि । तुमने मल त्याग किया ।

अथ परस्मैपद साधनिका—स्वेदति अस्पष्ट शब्द बोलना । सिष्वेद सिष्वेदिथ सिष्वेदिम । स्वेदिता अस्वेदीत । स्कन्दते । जाना शोषण करना, अनिट् । चस्कन्दे आडमे शोषण किया, थल् परे द्वाजनियमसे इट् । जब न इट्, चस्कन्दथ । दको खरि चसे त चस्कन्त्थ चस्कन्दिव चस्कन्दिम । दो वर्ष या दो दिन पहले शोषण किये । अनद्यतन भविष्य शोषण हो, स्कन्द ता, खरि चसे दको त । स्कन्दता । स्य परे भी चर्त्व । स्कन्दतु अस्कन्दत । अस्कन्देत । आशीर्लिङ्मे नकारलोप । गमन शोषण क्रिया हो चुकी हो, भूतकाल कर्तामे स्कन्द अ न । ईर् इत् है इदित् नही अनदितासे नकारलोप । पक्ष मे सिच् । अनेक हल्के व्यवधानमे भी हलन्त लक्षणा वृद्धि, तको त अपृक्त हल्परे ईट् । ता परे झलोझलिसे सिच्लोप । उस् परे वदव्रजहलन्तस्याच से वृद्धि । दको त, अस्कान्त्सी अस्कान्त्सम् ।

। ९८ । वे स्कन्दे वि से परे स्कन्द के स को ष विकल्प हो । निष्ठा क्त क्तवतु परें न हो तब षत्व विस्कन्दतिमे क्यो नही होता तब कहा—कृति एव-कृदन्त परे ही षत्व करता है, तिडन्त परे नही । निष्ठाभिन्न निष्ठासदृश कृदन्त ही होगा । तृच्प्रत्यय करके विष्कन्ता वि से परे स को ष हुआ । अप्राप्तविभाषा पक्षे न । निष्ठाया क्त परे विस्कन्न । विशेषशोषित ।

। ९९ । परि उपसर्गसे परे स्कन्दके स को ष हो । ये दोनो सूत्र एकसाथ

स्मात्परस्य स्कन्दे सस्य षो वा । योगविभागात् अनिष्ठायाम् इति सम्बध्यते । परिष्कन्दति परिस्कन्दति । परिस्कन्न परिष्कण्ण । षत्व पक्षे णत्वम् । न च पदद्वयाश्रयतया बहिरङ्गत्वात्षत्वस्यासिद्धत्वम् । धातूपसर्गयो. कार्यमन्तरङ्ग इत्यभ्युपगमात्षत्वम् पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते तत साधनेन इति भाष्यम् । 'पूर्वं

पढते विपरिभ्या स्कन्दे कहते सूत्र भेद व्यर्थ ?

होकर कहा कि योगविभाग=सूत्र भेद अलगावसे अनिष्ठायाका सम्बन्ध नही होता । अर्थात् डित् कृत् परे भी वा षत्व । परिष्कन्दति तिङ् परे षत्व, कृति परे परिष्कन्दत् । अनिदितासे नलोप । रदाभ्यासे त को न । द को भी । षत्व होनेपर प्रथम नकारको परत्वात् णत्व । द्वितीय न को ष्टु परिष्कण्णः । शङ्का—णत्व की कर्तव्यतामे बहिरङ्ग (परेश्च सूत्रका) षत्व असिद्ध होगा जिस कारण प्राप्त नही, तब कहा—पदद्वय=दो पदोके आधार पर वहिङ्ग हुआ, षत्वभी असिद्धिकी शङ्का न करे । क्योकि धातूपसर्गयो= धातु और उपसगका काय अन्तरङ्ग, माना गया है बहिरङ्ग नही । पूर्वं धातु=पहले धातु उपसर्गसे जुडता है । सन्धि आदि कार्यका लाभ करता है । पश्चात् धातु—उपसग का काय पूरा होनेपर साधनेन=कारकसे जुडता है । साधनका कारक अर्थ । मतान्तरे=जिसके मतमे पहले धातु कारकसे जुडता है पक्षमे उपसर्गसे । इस मतमे षत्व बहिरङ्गसे असिद्ध है, न णत्व ।

। ९८० । यभ धातुका मिथुनस्य भाव मैथुन दो की सङ्गमक्रिया । सहवासानुकूलव्यापारः । यभति सङ्गम करता है । यभत यभन्ति यभसि यभथ यभथ । यभामि यभाव । यभाम पर्देकी आडमे यभनक्रियाके कर्तामे लिट् आदि ययाभ येभतु येभु । येभिथ=थल्परे द्वाज नियमसे इट् । थलिच सेटिसे एत्व आदि । जब न इट् पित्से कित् नही, न एत्व । ययभ थ दशामे झषस्तथोर्धो थ को ध, भ को जश 'ब' । ययब्ध येभतु । येभ ययाभ ययभ । येभिव येभिम । आजसे भिन्नकालमे सगम भावी हो यभ तास् । यभता-त को ध, भ को ब । यब्धा यब्धारौ यब्धार यप्स्यति ससक्त होगा । स्य परे भ को चर् प । सङ्गम सहवास विषयमे आज्ञा प्रेषणा हो तो यभतु यभता यभन्तु । यभ यभत यभत । यभानि यभाव यभाम अयभत् अयभताम् अयभन् । यभेत् यभेता यभेयु । यभ्यात् यभ्यास्ता यभ्यासु । भूतकालमे सगम हो चुका हो, अयभ स ईत, वदव्रजहलन्तस्याच

साधनेन' इति मतान्तरे तु न णत्वम् । ९८० यम मैथुने । येमिथ ययन्थ । यन्धा । यप्स्यति । अयाप्सीत् । णम प्रह्वत्वे शब्दे च । नेमिथ ननन्थ । नन्ता अनंसीत् अनंसिष्टाम् । गम्लृ सृप्लृ गतौ । (२४००) इषुगमियमां छः ७। ३।७७। एषां छः स्याच्छिति परे । गच्छति । जगाम, जग्मतु, जग्मुः । जगमिथ जगन्थ । गन्ता । (२४०१) गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८।। गमे.

से वृद्धि । अयाप्सीत् अयाप्ताम् अयाप्सुः । णम्—णोपदेश, अनिट् । नमति नमत नमन्ति । नमस्कार नम्र मधुर बोल । कुछ दिन पहले नमनक्रिया सहित कर्ता न देखा हो । लिट् ननाम नेमतु नेमु । नेमिथ ननन्थ । भारद्वाज पक्षम इट् । थलि च सेट से एत्व अभ्यास लोप । पक्षमे कित् परे नही है । न एत्वादि । अनुस्वार परसवर्ण ननाम ननम नेमिव नेमिम क्रादि—इट् । नमता । म को अनुस्वार परसवर्ण नन्ता नन्तारौ नन्तारः । नंस्यति नमस्कार करेगा । नम्र होगा । मीठा बोलेगा । नमतु, नम, नमानि । अनमत् अनमताम् अनमन् । नम्र हुआ । नमेत् नमेतां नमेयु । नम्यात् नम्यास्ता नम्यासु । अनंसीत् । यमरमनमाता लक् च इट् । अनंसिष्टाम अनंसिषु. अनंसी अनंसिष्टम् अनंसिष्ट : अनंसिषम् अनंसिस्व अनंसिष्म । लृ इत् अनिट् गम सृप् धातुका जाना सरकना आदि अर्थ । गमनक्रियाके वर्तमाने कर्तरि लट ।

। २४०० । इषु—गम—यम इनके अन्त्य अल्को छ हो, शिति शप्=श्यन्=श आदि परे । ष्ठिवु—से शित् आया । ऊ इत्से तुदादिका इष् । अजादि शिति परे छ । हलादि सिति हो न छ । इष्यति इष्णाति छ नही हुआ । तुक श्चुत्व गच्छति गच्छत गच्छन्ति । एककर्तृक वर्तमानकालिक गमन क्रिया परोक्षमे हुई हो लिट् । गम गम गगम जगम, उपधा वृद्धि जगाम गमन क्रियासहित कर्ता आडमे हो, दो कर्ता सूचक जगम अतुस् । गमहनजनखनघसा के उपधा आकारका लोप थलपरे वा इट् । जगमिथ अथुस् अ परे उपजामे अकारलोप । जग्मथु जग्म जगम जगाम जग्मिव जग्मिम । कादि इट् अनद्यतन भविष्यकालकी गमन क्रिया लुट तास् डा आस्लोप । अनुस्वार परसवर्ण गन्ता गन्तारौ गन्तार । गम स्यति । गमिष्यति अनिट् है इट कैसे?

(२४०१) गमेरिट-गमसे परे स आदि आर्धधातुक को इट् हो, इट हुआ । गच्छतु गच्छ गच्छानि गच्छाव गच्छाम । अगच्छत् अगच्छताम् अगच्छ

परस्य सकारादेरिट् स्यात् । गमिष्यति । लृदित्वादङ् । 'अनिङिति पर्युदासाल्लोप धालोप । अगमत् । सर्पति ससर्प । (२४०२) **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्** ६।१।५९॥ उपदेशे अनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा स्याज्झ-

---

न् । गच्छेत गच्छेताम गच्छेयु । गच्छे गच्छेत गच्छेत । गच्छेय गच्छेव गच्छेम । गम्यात् गम्यास्तं गम्यासु । भूतकालिक गमन क्रियाके कर्तामे लुङ ति इतश्च इलोप अट् । अगम त-च्लिको सिच् प्राप्त उसे ब'धकर पुषादिद्युतादि लृदित से च्लिको अङ् । गमहन सूत्रमें अनङ् पढा अत उपधालोप नही । अगमत् अगमताम अतमन अगमः अगमतम् अगमत् । अगमम् अगमाव अगमाम । अगमिष्यत । सर्प सर्पति साप सरकता रेंगता है । उपधामे लघु ऋको अर्गुण । सर्पन्ति सर्पामि सर्पाव'सर्पाम हमलोग खिसक चलें । सरक जाय । सरकने की क्रिया सहित कर्ता न देखा हो, कर्तामे लिट् द्वित्वादि ससर्प ससृपतु ससृपु ससर्पिथ । थलपरे क्रादिनियमसे नित्य इट (वा इट नही) न अजन्त न अकारवान है । ससर्प ससृपिव ससृपिम । (२४०२) अनुदात्तस्य =उपदेश दशामे अनुदात्त हो उपधामे ऋ हो । उसको अम आगम वा हो । झन अक्षर आदिमे हो । कित्परे न हो । मित्से अन्त्य अच्के आगे अ । सृअप ता अमागम ऋको र यण । स्रप्ता स्रप्तारौ स्रप्तार कल सरकेगा । जब न अम लघूपधगुण । सर्पतामि सर्पतास्थ. सर्प्तास्मि । आदेचसे उपदेश और सृजि दृशो से झलि अमि अकिति अनुवृत्त । उपदेश क्यो पढा ? स्रप्तु, तुमुन परे उदात्त है नित् होनेसे । किन्तु उपदेशमे अनुदात्त है । अम्भवत्येव । अकिति क्यो सृप्त । क्त कित है अम् न हो । सप्स्यति अम् ऋको र यण् होनेपर पक्षमे गुण । खिसकना सरकना क्रिया आज्ञा प्रेरणाका विषय हो सर्पतु सर्पता सर्पन्तु । सर्प सर्पत सर्पत । सर्पानि सर्पाव सर्पाम । असर्पत् असर्पताम् असर्पन् । सरक गये सर्पेत सर्पेता सर्पेयु । सृप्यात् सृप्यास्ता सृप्यासु नृदिति होने से च्लिको अङ् । ङित्से न गुण । असृपत् असृपताम् असृपन असृपं असृपम् अस्रप्स्यत् असर्प्स्यत् । यम् धातुका उपरम=विराम वैराग्य शान्ति लाभका व्यापार । यमधातुसे विराग शान्ति लाभ क्रियाके वर्तमान कर्तामे ल शप् । यम अ ति । इषुगमियमा—से मको छ, छेच तुक् । यच्छति यच्छत यच्छन्ति यच्छसि यच्छथ यच्छथ यच्छामि यच्छाव यच्छाम । वर्तमानसे पहलेकी आडमे शान्ति लाभ हो चुका हो । यम यम ययाम येमतु.

लादावकिति परे। स्वप्ता सर्प्ता। स्वप्स्यति सप्स्यति। असृपत् यम उपरमे। यच्छति। येमिथ ययन्थ। यन्ता। अयसीत्, अयसिष्टाम्। तप सन्तापे। तप्ता अताप्सीत्। (२४०३) निसस्तपतावनासेवने ८।३।१।१०२।। ष स्यात्।

येमु। येमिथ भारद्वाज मतमे इट होनेपर थलि च सेटि एत्व अभ्यासलोप। जब न इट कको अनुस्वार परसवर्ण। ययन्थ येमथु येमु। तुमलोग कहा विरक्त हुए। ययाम ययम येमिव येमिम। लगता है हमलोग शान्ति लाभ लिये। क्रादि इट आगामी भविष्यकालमे शान्ति मिलनी हो। यम ता अनुस्वारपरसवर्ण। यन्ता यन्तारौ यन्तार। यन्तासि। यस्यति (विश्राम लेगा) यस्यत यस्यन्ति अहु यस्यामि। यच्छतु शप् छ आदेश यच्छन्तु। यच्छ यच्छानि यच्छाव यच्छाम। हमलोग विश्राम करे। अयच्छत् अयच्छताम् अयच्छन्। यच्छेत् यच्छेता यच्छेयु। विराग शान्ति वढने की शुभ कामना आशीर्लिङ्। यम्यात् यम्यास्ता यम्यासु शान्ति क्रिया का भूतकाल हो कर्तामे लुङ्। अयम स इ स ईत्। यमरमनमातांसे सक इट सिच इट इट ईटि सलोप। दीघ। वदव्रज—हलन्तस्याच की वृद्धिका नेटिसे निषेध, मको नश्चापदान्तस्य अनुस्वार। अयसीत् अयसिष्टा अयसिष् अयसी। तुमने विराम कर लिया। अहु अयसिषम् मै विरक्त हुआ। अयस्यत् ९८५ तप सन्तापे धर्मके लिए सन्ताप-पूरा कष्ट सहना। तपति एककर्तामे धर्म के लिए कष्ट सहनेके वर्तमानकालिक क्रिया तपति तपत तपन्ति। तपसि तपथः तपथ। तपामि तपाव तपाम। स्वाध्याय परम तप। ज्ञानार्जनके लिए कष्ट सहन परोक्षमे हो। तप तप ततप तपात तेपतु तेपु। तेपिथ ततप्थ तेपतु तेप। ताताप ततप तेपिव तेपिम हमलोगोने ज्ञानके लिए कहा कष्ट सहा। तप्ता तप्तारौ। तप्स्यति तप्स्यसि तप्स्यामि। कष्ट सहेगे। तपतु तपता तपन्तु। तपानि मैं तप करूं। अतपत् अतपताम् अतपन् अनद्यतन भूतकालिक सन्तापानुकूलव्यापार। तपेत् तपेता तपेयु। तप्यात् तप्यास्ता तप्यासु। सन्तापका भूतकाल हो कर्तामे लुङ्। अतप स इत् हलन्त लक्षणा वृद्धि। अताप्सीत् अताप्ता अताप्सु। अताप्सी अताप्तम् अताप्त अताप्सम्। (२४०३) निस्के सको ष हो तप् धातु परे अनासेवने आसेवन पुन सेवन करना। न आसेवन बार बार सेवन न करना। ततोऽन्यस्मिन् आ सेवनेसे भिन्न विषय (न सेवन) है। मूर्धन्यका अधिकार।

आसेवन पौन पुन्य, ततोऽन्यस्मिन्विषये । निष्टपति । त्यज हानौ । तत्यजिथ तत्यक्थ । त्यक्ता । अत्याक्षीत् । षञ्ज सङ्गे । 'दशसञ्जस्वञ्जा शपि इति

आदेशका नही पद न्तका है षत्व प्राप्त नही था अत सूत्र पढा । निस् षत्व ष्टुत्व । निष्टपति । निष्क्रय नकली तप जहा आसेवन है न षत्व । निस्तपति पुन पुन तपति । त्यज्का हानि त्याग धातुका अर्थ । हानि उत् मर्ग त्याग अनिट त्यजति त्यागता छोडता है । त्यजति त्यजत त्यज- न्ति । तत्याज तत्यजुत् तत्यजु । कब छोड दिये । कार्यसे क्रियाका अनु- मान । मध्यमे सयुक्त हल् है न एत्व न अभ्यासलोप । थलि परे द्वाज मत से इट् तत्यजिथ तत्यक्थ । तुमने कब त्यागा । जब न इट् तब चोकु से कवर्ग ग-क । तत्यजथु तत्याज तत्याजिव । अनिट् है कल परसो मास वर्षमे । त्यागेगा । त्यज ता । कुत्व चर्त्व त्यक्ता त्यक्तारौ त्यक्तार । त्यक्ष्यति त्यक्ष्यत· त्याक्ष्यन्ति । त्यक्षामि त्यक्षाव त्यक्षाम । त्यजतु त्यजतात् त्यजता त्यन्तु । त्याग आज्ञा प्रेरणाका विषय हो लोट् । सब लोग त्याग दे । अत्यजत् अत्यजताम् अत्यजन् । त्व अत्यज अह अत्यजं, कल परसो त्यागा । त्यजेत् त्यजेता त्यजेयु । त्याग विराग बढसेकी कामना आशीलिंड त्यज्यात त्यज्यारता त ज्यासु । त्यागका समाप्तकाल हो । अत्यज स इत् । जको चो कु । म ो ष । क-ष क्ष वदव्रजहलन्तास्याच हलन्त देखकर वृद्धि । अत्याक्षीत् अत्याक्ता अत्याक्षु । अत्याक्षी अत्याक्तम् अत्याक्त । अत्याक्षम् भूतकालिक त्याग क्रिया । सञ्ज षोपदेश, अनिट् उपधामे न । उसका अनुस्वार परसवर्ण । द श सञ्ज सूत्रसे नलोप । शप् कित् है । पिच्च किन्न कित् नही । अनिदिता नलोपो न । अनुस्वार परसवर्णकी असिद्धिसे । नलोप । सजति सजता है शृ गारका सगम । सजत सजन्ति । सजाया परोक्षमे ससञ्ज ससञ्जतु ससञ्जु । समञ्ज अतुस आदि परे कित् नही । न नलोप सयोग होनेसे । द्वाजमते वा इट् ससञ्जिथ । इट् ,जको कुत्व ग-क परे अनुस्वार परसवर्ण ङ । ससङ्क्थ ससञ्जथु । ससञ्जिम । क्रादि=इट् । सङ्ग सजावट अनद्यतन भविष्यकालमे हो । सञ्जाता । ज ग-क । ञ् असिद्ध न को ङ । सङ्क्ता सङ्क्ष्यति । सजतु । सजाओ शृ- गार करो । असजत असजताम् असजन् । सजाया । सजेत् सजेता सजेयु । सज्यात् । असाङ्क्षीत् । हलन्त अच्को वृद्धि असक्ष्यत् । इर इत् दृश धातुका

नलोप । सजति शङ्का । दृशिर् प्रेक्षणे । पश्यति । (२४०४) **विभाषा सृजिदृशो** ७।२।६५॥ आभ्या थल इड् वा । (२४०५) **सृजिदृशोर्झल्यम किति** । ६।१।५८। अनयोरमागम स्याज्झलादावकिति । दद्रष्ठ ददर्शिथ । द्रष्टा । द्रक्ष्यति । दृश्यात् । इरित्वादङ् वा । (२४०६) **ऋदृशोऽङि गुण**

प्रेक्षण=आँखसे देखना, वर्तमानकालिककर्तामे लट् । दृश अनि । शिति परे पाघ्राध्मास्थासे दृशको पश्य आदेश । पश्यति पश्यत पश्यन्ति । पश्यसि पश्यथ पश्यथ । पश्यामि । देखना क्रिया महित कर्ता प्रत्यक्ष न हो । लिट् द्वित्व आदि दर दृश अ हलादिशेष । ददर्श ददृशथु ददृशु अतुस् कित् है न गुण । किन्तु यण् । थल परे क्रादिनियमसे नित्य इट् प्राप्त । न अजन्त है न अकारवान न ऋदन्त किमी नियमसे निषेध प्राप्त नही । तब कहा ।

। २४०४ । **विभाषा** । सृज दृशधातुसे परे थलको वा इट् हो । गमेरिट् से इट् अचस्तास्वतसे थलि आया । इट् गुण । ददर्शिथ । जब न इट् अनुदात्तस्य चर्दुप-सूत्रसे विकल्प अम आगम प्राप्त है, नित्य अमका सूत्र २४०५ सृजदृशको अम् आगम हो यदि झलादि=झभञ् से हल् तकके अक्षर आदिमे हो । कित् परे न हो । ददृश थ । दशामे अम् आगम ऋ को र यण् दद्रश थ । व्रश्चभ्रस्जसे श को ष थ को टुत्व, थ दद्रष्ठ ददृशथुः । आजसे भिन्न भविष्यकाल देखनेके कर्तामे लुट । दृश ता ।अम् आगम यण् ण (ष) त (ट वर्ग) ट । द्रष्टा द्रष्टारौ द्रष्टार । दृश स्य ति अम् यण श (ष) षढो क द्रकस्य ति । स को ष । कष—क्ष । द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यत, द्रक्ष्यन्ति देखेगे । द्रक्ष्यामि । शप् परे पश्य, आदेश पाघ्राध्मासे । पश्यतु, पश्यतात् । पश्य, पश्यत पश्यत । अहु पश्यानि । अपश्यत् अपश्यताम, अपश्यन् । अपश्यम् अपश्याव, । पश्येत् पश्येता पश्येयु । पश्ये, पश्येत, पश्येत । पश्येय, पश्येव, पश्येम । दर्शनव्यापार को बढानेकी शुभकामना आशीर्लिङ् । दृश्यात्, दृश्यास्ता, दृश्यासु दृश्या । दृश्यासम । आखोसे देखनेका व्यापार समाप्त हो वह क्रिया भूतकालमे विराजमान कर्तामे लुङ् । अदृश अ त । इरितो वा से च्लिको अङ । ङित्से गुण निषेध प्राप्त । विधायक सूत्र ।

। २४०६ । **ऋवर्णान्त** धातु और दृशको गुण हो, अङि परे । अदर्शत, अदर्शता, अदर्शन् । अदर्श., अदर्शत अदर्शत । अदर्शम्, अदर्शाव, अदर्शाम । अङ अभाव पक्ष मे च्लिच् । यद्यपि शल इगुपधात्से च्लिको क्स प्राप्त उसका

७।४।१६। ऋवर्णान्ताना दृशेश्च गुण स्यादङि । अदर्शत् । अङभावे (२४०७) न दृश ३।१।४७।। दृशश्च्ले क्सो न । अद्राक्षीत् । दश दशने । दशन दष्ट्राव्यापार । पृषोदरादित्वादनुनासिकलोप । अत एव निपातनादित्येके । तेषामप्यत्रैव तात्पर्यम् । अर्थनिर्देशस्याधुनिकत्वात् । 'दशसञ्ज' इति नलोपः दशति । ददशिथ ददष्ठ । दष्टा । दङ्क्ष्यति । दश्यात् । अदाङ्क्षीत्

निषध सूत्र । २४०७ । न दृश दृश धातुस परे च्लि को क्स नही होता । च्ले सिच्से च्लि, शल इगुपधात् से क्स आया । अदृश स ई त् । अम् आगम ऋ को र यण । हलन्त देखकह वदव्रजसे वृद्धि । श (ष) षढो क. स=ष अद्राक्षीत् अद्रष्टा अद्राक्षु । अद्राक्षी , अद्राष्ट , अद्राऽट । अद्राक्षम् अद्राक्ष्व-म, । अद्रक्ष्यत् । जब देखेगा तब पकड़ेगा ।

दश धातुका डसना, दष्ट्रा दातसे काटनेकी क्रिया हनु मूलगता स्थूल दन्ता तद्व्यापार क्षतविक्षत । दशने शब्दमे अनिदितासे नलोप कैसे ? ल्युट् ङित् नही । दशसञ्ज सूत्र शप् परे नलोप कैसे ? धातुके अर्थमे दशन कैसे ? तब बोले—पृषोदरादि=मानकर अनुनासिकका लोप दशन शब्दका उच्चारण ही नलोपका प्रमाण है । किसीने इसी युक्तिको निपातन कहा तेषाँ=उनका भी नलोप स मतलब । पृषोदर निपातनमे प्रमाण है । अर्थ निर्देशमे नही क्योकि धातुओके फलरूप अर्थका उच्चारण आधुनिक है । पाणिनीके पश्चात् आचार्योने जोडा सवधातुषु अर्थ निर्देशस्य अपाणिनीयत्वात् । भू धातु पर कहा कि क्वचित् अथ निर्देशः पाणिनीय पढा हैं । दशति दशत दशन्ति । सर्पा. वृश्चिकाः । इदित् नही नलोप कैसे ? दशसञ्जस्वञ्जाम से । दशसि दशथ दशथ । दशामि दशाव दशाम । हमलोग डसते हैं । डसना क्रिया न देखी गयी हो । लिट् । ददश—सयोगस परे, लिटि किति नही होता, न नलोप । ददशतु. ददशु द्वाजमते वा इट् । ददशिथ । न इट् । ददश थ । व्रश्चभ्रश्जसे स—ष, थ को ठ ददष्ठ । ददशिथ । आडमे डसा । भविष्यमे डसना हो । दश ता । षत्व ष्टुत्व दष्टा दष्टारौ दष्टार । दशस्य ति । श—ष—क । अनुस्वार परसवर्ण ङ् । सस्य ष कष=क्ष डसेगा । दशतु दशता दशतु । दशानि काटनेके विषयमे आज्ञा प्रेरणा । अदशत् अदशताम् अदशन् । दात से काट लिया । दशेत दश्यात् । अ आशीर्लिङमे अनदिता से नलोप । अदश स ईत् हलन्त लक्षणा वृद्धि । श ष क, स ष अनुस्वार परसवर्ण अदाङ्क्षीत् अदाष्टाम् अदाक्षु

(९९०) कृष विलेखने। विलेखनमाकर्षणम्। क्रष्टा–कर्ष्टा। क्रक्ष्यति—कर्क्ष्यति। 'स्पृशमृशकृषतृपदृपा च्लेः सिज्वा वाच्य' अक्राक्षीत्। अक्राष्टाम्। अकार्क्षीत्। अकार्ष्टाम्। अकार्क्षुः। पक्षे क्स। अकृक्षत्। अकृक्षताम्।

---

९९० कृषका विलेखनविशेष लेखन खेत जोतना अनिट्। वर्तमाने कर्तरि लट् शप् लघूपधगुण। कर्षति कर्षत कर्षन्ति। कर्षामि कर्षाव कर्षाम। परोक्ष मे जोत चुका हो। चकर्ष=कृष कृष कर कृष चकर्ष चकृषतु चकृषु'। जोतना क्रिया सहित अनेक कर्ता प्रत्यक्ष नही। थलि परे न अजन्त है, न अकारवान्। क्रादिनियम से नित्य इट्। चकर्षिथ चकृषथु चकृष। तुम लोगो ने कब खेत जोता। चकर्ष चकृषिव चकृषिम। जोता हुआ खेत से जोतना क्रिया का अनुमान लिङर्थ है। आगामी काल मे जोतना हो। कृष ता, अनुदात्तस्य चर्दुपधस्य से। अम्, यण् ष्टुत्व। क्रष्टा क्रष्टारौ क्रष्टार। जब न अम् आगम तब गुण कर्ष्टासि कर्ष्टास्मि। कृष स्य ति। अम आगम यण्। षढो क सि षत्व। क्रक्ष्यति। अम् अभाव पक्ष मे गुण। कर्षतु। आकर्षण करो। खीचो जोतो। कर्षता कर्षन्तु। जोतना आशा का विषय बना। अकर्षत् अकर्षताम् अकर्षन्। कर्षेत् कर्षेता कर्षेयु। कृष्यात्। खीचने के विषय मे आशीर्वाद। जब जोतना समाप्त हो, आकर्षण पूर्ण हो लुङ्। अकृषत शलन्त देखकर च्लि को क्स प्राप्त, उसे (वा०) स्पृश-मृश कृष तृप दृप इनसे परे च्लि को वा सिच् हो। इससे सिच् हुआ। अनुदात्त चर्दुपधस्य से अम् र (यण्) वदव्रज्हलन्त के अच् की वृद्धि। षढो कः, षत्व कष-क्ष, अक्राक्षीत्। जब अम्, अम् नही आ वृद्धि। अकार्क्षीत्, अकार्क्षी. जब सिच् नही तब शलन्त क्स। कित् से न गुण। ष-क, स-ष अकृक्षत्, अकृक्ष। अक्रक्ष्यत् अकर्क्ष्यत्।

दह धातु का भस्म राख बनाना अर्थ। अनिट्। वर्तमान मे भस्म होता है, लट्। दहति दहत· दहन्ति। दहसि दहथ दहथ। दहामि दहाव दहाम। हम सब मे वर्तमान दहन। यदि आड मे राख हुआ हो दह-दह। ददाह देहतु देहु। द्वाजनियम से इट् पक्ष मे थलि च

अक्षन् । दह भस्मीकरण । देहिथ-ददग्ध । दग्धा । धक्ष्यति । अधाक्षीत् अदाग्धाम् । अधाक्षु । मिह सेचने । मिमेह । मिमेहिथ । मेढा । मेक्ष्यति । अमिक्षत् । कित निवासे रोगापनयने च चिकित्सति । सशये प्रायेण विपूर्वं,

---

सेटि से एत्व अभ्यास लोप देहिथ । तुम जला चुके ऐसा लगता है । न इट् ददह थ, दादेर्धातो हको घ । झषस्तथो तको ध । घ-ग दग्ध देहथु देह । तुम लोगो ने भस्म किया । देहिव देहिम । लगता है कि हम लोगो ने जलाया । कल परसो जैसा भविष्य मे भस्म करना हो । दह ता दादि ह को घ । त-ध । घ-ग । दग्धा दग्धारौ दग्धार. । दग्धासि दग्धास्मि दह स्यति । ह-घ द ध (भष्भाव) घ-ग । चर्त्व क । स ष धक्ष्यति भस्म करेगा । जला डालेगा । दहतु दहता दहन्तु । जला दो जलते रहो । दहानि दहाव दहाम । अदहत्, अदह , अदहतम् । अदहत । दहेत दहेता दहेयु । वे जल जांय दहे दहेत दहेत । दहेय दहेव दहेम । हम लोग भस्म हो । न भस्म हुए को भस्म होने की कामना दह्यात् दह्यास्ता दह्यासुः । अनेक कर्ता मे भस्म होनेकी कामना । वह क्रिया समाप्त हो । भूते लुङ् । अदह स ईत् । सिच-परे वदव्रजहलन्त-स्याच वृद्धि । ह घ दभष ध । ध ग क क्ष । अधाक्षीत् अदाग्धा झलोझल से सिच् लोप । त-ध घ-ग । अघाक्षु । अघाक्षी अदाग्धम् अदाग्ध । अधाक्षम् अधाक्ष्व । अधक्ष्यत् । मिह धातुका सेचन-मिश्रीकरण मेझरना, मिलाना, सीचना । मेढ्रम् मेहनशेफशी इत्यमर । मेहति मिश्रयति सिंचति । मेघ बरसता है । मेहत मेहन्ति । परोक्ष मे मिलाया सीचा हो । मिह-मिह मिमेह मिमिहतु मिमिहुः । क्रादिनियमसे नित्यइट् मिमेहिथ मिमिहथु मिमिह । तुम लोगो ने मिलाया कब सीचा । मिमेह मिमिहिव मिमिहम । बरसा, मिला हुआ कार्य से क्रिया का अनुमान परोक्ष है । मेढा अनिट् है । मिह-ता । ह ढ त-थ ढ ढलोप । मेढारौ मेढार. । मिलायेंगे सीचेगे अर्थ मे । मेहस्यति । ह ढ षढ-क स-ष मेक्ष्यति । वह क्रिया प्रेरणा का विषय हो । मेहतु, मेह, मेहानि । अमेहत् । मेहेत् । मिह्यात् । भूतकाल हो लुङ् शल इगुपधात् मिहको क्स । कित् से गुण

'विचिकित्सा तु संशय' इत्यमरः। अस्यानुदात्तेत्वमाश्रित्य चिकित्सते इत्यादि कश्चिदुदाजहार। निवासे तु केतयति।

दान खण्डने। ९९५ शान तेजने। इतो वहृत्यन्ता स्वरितेत। दीदासति दीदासते। शीशासति शीशासते। अर्थविशेषे सन्। अन्यत्र दानमिति।

निषेध। अमिह स ह्-ढ, ढ-क स-ष मिलकर **अमिक्षत् अमिक्षताम्।**

कित धातु का निवास और रोग हटाना चिकित्सा, औषधि उपचार। दो अर्थ पढा है। अर्थ का निर्देश, उपलक्षण से अन्य अर्थ का बोधक। यदि कितधातु व्याधिप्रतीकार निग्रह अपनयन नाश संशय अर्थ मे हो तब गुप तिज् कित् से सन्। कित्-स। सन्यङो से द्वित्व। कित-कित किकित चिकित्स। सन्यत इत्यादि। सन्नन्तधातु से लट् ति - यह सन् धातु मे नहीं हुआ। अत न आर्धधातुक, न गुण, न इट्। **चिकित्सति चिकित्सत चिकित्सन्ति। चिकित्सामि। चिकित्साञ्चकार।** चिकित्सिता चिकित्सिष्यति। चिकित्सतु **अचिकित्सत् अचिकित्सीत्।** इस धातु के संशय अर्थ मे उपसर्ग जुडता है। विचिकित्सा तु संशय। वि उपसर्ग सन्देह अर्थ का प्रकाशक। अमरकोष - अस्य = इस धातु को किसी ने अनुदात्तेत् मान कर आत्मनेपद का प्रयोग। **चिकित्सता चिकित्सन्ताम्।** अहम् चिकित्सानि। निवास अर्थ मे—**केतयति केतयत केतयन्ति** निवास करते है। दान धातु का खण्डन टुकडे करना ९९५ शान का तीक्ष्णीकरण तेज करना धारदार बनाना।

इतो = यहाँ से लेकर वह प्रापणे धातु तक स्वरितेत् (उदात्त अनुदात्त मिला हुआ। अच्) दोनो पद हों। जब दानधातु का आर्जव कोमलता, शानका निशाने अर्थ हो तब दान्शान धातुसे सन् होगा। दान स। द्वित्व, ह्रस्व। सन्यत इत्व मान्वधान से दीर्घ। न को अनुस्वार। दीदांस शीशांस-सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा। कर्तृगामी क्रिया फल हो। लट् त शप्। **दीदांशते-ति।** विशेष अर्थ मे सन् है। जहाँ विशेषार्थ जहाँ वहाँ **दानयति शानयति।** अर्थान्तरे अननुबन्धकाश्चुरादय। डु-ष-अ इत्। पच्धातु का पकाने की क्रिया पाकानुकूल व्यापार दोनो पद है, स्वरितेत् से। पकाने की क्रिया

शानयति । डुपचष् पाके । पचति पचते । पेचिथ पपक्थ । पेचे । पक्ता । पक्षीष्ट । षच समवाये । सचति सचते । भज सेवायाम् । बभाज भेजतुः भेजु । भेजिथ बभक्थ । भक्ता । भक्ष्यति भक्ष्यते । अभाक्षीत् अभक्त ।

पच् धातु से वर्तमानकालिक पाक कर्ता अर्थ मे लट् । शप् । पचते क्रिया फल, कर्ता अपने लिए पकाता है । जब अन्य के लिए पकाता हो तब परस्मै पद । पचति पतत पचन्ति । पचसे पचेथे पचध्वे । पचे पचावहे-पचामहे । पाकक्रिया सहित कर्ता न देखा हो, परोक्षे लि - ति फल् पपाच पेचतु पेचु । अत एकहल्मध्ये से एत्व अभ्यासलोप । त्व कदा पेचिथ कल पकाये । भारद्वाज नियम से इट् हुआ तब थलि च सेटि से एत्व अभ्यास लोप । जब न इट् । पपच थ । चो कु च को क । पपक्थ पेचथु पेच । पपाच पपच पेचिव चेचिम । याद नही कब पकाया । क्रादि-इट् । पेचे तको ए । पपच ए । एत्व अभ्यास लोप । पेचाते पेचिरे पेचिषे पेचाथे पेचिध्वे । पेचे पेचिवहे पेचिमहे । अनिट् है । श्व पच + ता चो कु । पक्तासि । पक्तासे पक्तास्मि । पक्ताहे पक्तास्वहे-पक्तास्महे पक्ष्यति पक्ष्यते । पचतु पचता पचन्तु । पचानि पचाव पचाम । पचता पचेता :पचन्ता, पचै पचावहै । अपचत् अपचताम् अपचन् । अपचत अपचेताम् अपचन्त । पचेत् पचेता पचेयु । पचेत पचेयाता पचेरन् । पकाने के विषय मे, कामना । पक्षीष्ट । चो कु षत्व । अपाक्षीत् अपाक्ताम् अपाक्षुः । अपाक्षम् । झलोझलिसे सलोप । अपक्त अपक्षाताम् अपक्षन्त । अपक्ष्यत् । षोपदेश सच धातु सम्बन्धमिलाने अर्थ मे । सचति सत्यसम्बन्ध सच्चाई से रहता, वर्तमान । ससाच सचेतु सेचु. सेचिथ । सेचे सेचाते सेचिरे । सच्यात् सचिषीष्ट । असाचीत् असचीत् । असचिष्ट, सत्य नाता जोड़ा ।

भज धातु का सवा प्रसन्नता, प्रीति की क्रिया वाचक धातुसज्ञक भज से वर्तमान प्रीति के अनुकूल कर्ता मे लट् शप् आदि । भजति भजत. भजन्ति । भजसि भजथ । भजामि भजाव भजाम । कर्ता मे वर्तमान प्रीति-अनुकूल व्यापार । सकर्मक । भगवान् मे । प्रसन्नता-फल है । उसकी क्रिया भजन

रञ्ज रागे। नलोप । रजति रजते। रज्यात्। रङ्क्षीष्ट। अराङ्क्षीत्। अराङ्क्तम्। अराङ्क्त। १००० शप आक्रोशे। आक्रोशे। आक्रोशो

भक्त मे प्रीतिजननी क्रियासहित कर्ता को न देखा हो किन्तु प्रसन्नता रूप कार्य देखकर क्रिया का अनुमान अर्थ मे लिट्। भज भज बभाज भेजतु भेजु । त्व कदा भेजिथ कब सेवा किये। भरद्वाज मत मे इट थलि च सेटि से इत्यादि। जब न इट्। जश् ग, चर क। बभक्थ भेजिव भेजिम क्रादि इट्। सेवा का फल विश्व के लिए। जब अपने लिए हो कि भगवान् हम पर प्रसन्न हो। तब आत्मनेपद त-एश्। भेजे भेजाते भेजिरे भेजिषे। भेजिवहे भेजिमहे। तृफलभज-से एत्व अभ्यासलोप, जब भजने वाला हो, भज ता। जको- जश् ग चर्क। भक्ता भक्तारौ भक्तार। भक्तासि भक्तासे भविष्यकाल मे भजना हो कर्ता के अनुसार पुरुष बचन भज स्यति। ज ग-क। स- ष = क्ष। भक्ष्यति-भजन करेगा। भजतु। भजता भजेता भजन्ता, भजस्व भजेथा भजध्वम्। भजै भजावहैं। अभजत अभजेता अभजन्त। भज्यात्। भक्षीष्ट। भजन क्रिया बढने की शुभकामना। लङ् मे भजन का भूतकाल हो अभज स-ईत् हलन्त। लक्षणा वृद्धि। ज ग, क। स ष = क्ष। अभाक्षीत् अभाक्ताम् अभाक्षु। अभक्त–अभज स त। झलोझलि सलोप। अभक्त अभक्षाताम्। अभक्षाथाम् अभग्ध्व। अभक्षि। रञ्ज का राग रँगने की क्रिया वर्तमानकाल कर्ता। रजति रजत रजन्ति। रजसि रजथ रजथ। रजामि रजाव रजाम। रजते रजेते रजन्ते। रञ्जेश्च से नकार लोप। शप् परे। ररञ्ज परोक्ष मे रगा हुआ। ररञ्जतु ररञ्जु।। थलि परे वा' इट। ररञ्जिथ। जब न इट् ज-ग-क। अनुस्वार परसवर्ण ङ्। ररञ्जिव ररञ्जिम। हफ्ता पहले रग चुके। रञ्ज ता ज-ग-क। रङ्क्ता रङ्क्तारौ। रङ्क्ष्यति रगेगा। रङ्क्ष्यते। रजतु रजता रग दो। रजामि। रजै रजावहै। अरजत। रजेत। आशीर्लिङ्मे यासुट कित्परे अनिदिता नलोप। रज्यात्। रञ्जसी सत। ज-ग-क। नको परसवर्ण ङ् षत्व। लुङ् मे सिच्परे हलन्तलक्षणावृद्धि कुत्व। अनेक हल् के व्यवधान मे भी वृद्धि। झलिसे परे स का लोप हो। कुत्व आदि। अरङ्क्त। अरञ्ज सत। झलोझलि सलोप।

विरुद्धानुध्यानम्। शशाप शेपे। आशाप्सीत् अशप्त। त्विष दीप्तौ। त्वेषति त्वेषते। तित्विषे। त्वेष्टा। त्वेक्ष्यति-त्वेक्ष्यते। त्विष्यात् त्विक्षीष्ट। अत्विक्षीत् अत्विक्षत। अत्विक्षाताम्। अत्विक्षन्त।

अरङ्क्था अरङ्क्षाथाम् अरङ्ध्वम्। अरङ्क्षि।

। १००० । शप् धातु का आक्रोश = विरुद्ध चेष्टा की क्रिया डाटफटकार शाप देना। शपति शपत शपन्ति। शपेथि शपध्वे शपे शापावहे-शापामहे। शापक्रिया सहित कर्ता परोक्ष हो लिट्। शप शप शशप शशाप। शेपतुः। शेपु॰। शेपिथ शशप्थ तुमने कब शाप दिया। शेपथु शेप। शेपे शेपाते शेपिरे। आज से भिन्न-भविष्य काल मे शाप देना हो लुट्। शप्ता। एक कर्ता मे भविष्यकाल का शाप = विरुद्धाचरण। शप्तासे शप्तासाथे शप्ताध्वे सप्ताहे। शप्स्यति शत्स्यत शप्स्यन्ति। शप्स्यसे शप्स्येथे शप्स्यध्वे शपतु। अहं शपानि। शपता शपेता शपन्ता, शपस्व शपेथा शापध्व, शापै शापावहै। अशपत। शपेत शपेयाता शपेरन्। शपेथा शपेयाथा शपेध्व शपेय शपेवहि। शप्यात् शप्यास्ता शप्यासु। शप्या शप्यास्त शप्यास्त, शप्यासम्। क्रोध मे विरुद्ध आचरण हो चुका हो। कर्ता मे लुङ् अशप् सईत्। वदव्रजहलन्त स्याच उपधा को वृद्धि। अशाप्सीत् अशाप्ता अशाप्सु। अशप्सी अशाप्मम्। कर्ता मे भूतकालिक शाप देना। आत्मनेपद मे झलोझलिसे सलोप। अशप्त अशप्साताम् अशप्सत। अशप्था अशप्साथा अशब्ध्व। अशप्सि। त्विष् का चमक प्रकाश क्रिया। अकार स्वरित है जिसमे दो धर्म, दोनो पदका सूचक। सूर्य त्वेषति त्वेषत त्वेषन्ति। तारे चमकते है। त्वेषसे त्वेषेथे त्वेषध्वे। अप्रत्यक्ष चमका हो। त्वेष त्वेष अभ्यासके इक् ए को ह्रस्व इ। तित्वेष तित्वेषतुः तित्वेषु.। तित्वेषिथ। तित्वेषिव। क्रादि इट् आत्मनेपदमे। तित्वेषे तित्वेषाते-षिरे। तित्वेषिषे-षाथे-हृध्वे तित्विष्महे हम सब चमक चुके। तास् तको ट। त्वेष्टा। त्विष स्यति षढो क स ष = क्ष त्वेक्ष्यते त्वेक्ष्येते चमेकेंगे। त्वेषतु। त्वेषता त्वेषेता त्वेषन्ताम्। अत्वेषत्-त त्वेषेत त्वेषेतां त्वेषेयु। त्वेषेत त्वेषेयाता त्वैषेरन्। यासुट् कित् है, न गुण। त्विष्यात्।

यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । यजति — यजयते । **२४०८ लिटचभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ ॥** वच्यादीना ग्रह्यादीना चाभ्यासस्य सम्प्रसारण स्याल्लिटि । इयाज । **२४०९ वचिस्वपियजादीना किति ६ । १ १५ ॥** वचिस्वप्योर्यजादीना च सम्प्रसारण स्यात्किति । पुन

त्विष सीसत ष-क, स-ष = क्ष । लिङ सिचावात्मनपदेषु । से कित् का फल, न गुण । लुङ्लकार मे शल इगुपधात् से च्लि को क्स । कित् होने से न गुण । अत्विक्षत् अत्विक्ष' इ दशा मे क्सस्याचिसे अन्त्य लोप नही, परत्वात् अत् आदेश भी असम्भव । अत झोऽन्त झको अन्त आदेश तब क्स के अका लोप । या पररूप । १००२ ।

यजधातुका देवताओ की पूजा सन्तो विद्वानो की सगति करना और दान त्याग का अभ्यास अर्थ । देवतोद्देशेन विधिबोधिते द्रव्यत्यागः । वर्तमानकाल के कर्ता मे क्रियायें हो । लट् ति शप् आदि । यजति यजत यजन्ति । यजसि यजथ यजथ । यजामि यजाव यजाम । देवान्पूजयाम सगमयाम ददाम । एककर्तृकवर्तमानकालिकदेवपूजन सत्सगाचरण त्यागानुकूलव्यापार । **यजते यजेते यजन्ते** । अह यजे यज्ञ करता हूँ सभामे ज्ञान सुनता हूँ दान करता हूँ (२४०८) **लिटि-वच्यादीना =** वचि स्वपि यजादि = **यजिर्वपि वहिश्चैव, वसि वेञ्व्येञ इत्यपि ह्वेञ्वदि. श्वयतिश्चैव, यजाद्याः स्युरिमे नव** । इनमे न आने से वपि स्वापिको अलग पढा । **ग्रह्यादीना** ग्रह उपादाने, ज्या वयोहानौ, वेञ् तन्तु सन्ताने, व्यध ताडने वशकान्तौ, विचिर पृथग्भावे, ओव्रश्चू छेदने, पृच्छ, भ्रस्जपाके इन सभी धातुओ के अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिटि परे । **इयाज** । पूजा सत्सग दान के अनुकूल क्रिया वाचक अतएव धातुसज्ञक यजसे (क्रियासहित कर्ता परोक्ष हो) भूतकाल अर्थ वाचक लिट् । प्रथम पुरुष एकवचन के स्थान मे णल् । यज अद्वित्व आदि । उपधावृद्धि । ययाज् अ । अभ्यास के य को इ सम्प्रसारण । **इयाज ईजतुः ईजु** । यज-अतुस् उस् । दशा मे । (२४०९) **वचिस्वप** और यजादि गण मे पढे धातुओ को सम्प्रसारण हो कित् परे । शका—यज अतुस् दशामे द्वित्व को

प्रसङ्गविज्ञानाद् द्वित्वम्। ईजतु ईजु। इयजिथ इयष्ठ। ईजे। यष्टा। यक्ष्यति यक्ष्यते। इज्यात्। यक्षीष्ट। अयाक्षीत् अयष्ट। डु वप् बीजसन्ताने। बीजसन्तान 'क्षेत्रे विकिरण गर्भाधान च। अय छेदनेऽपि। केशान् वपति।

परत्वात्सम्प्रसारण करने पर विप्रतिषेधे यद्बाधित तद्बाधितमेव समान बलवालो मे जो बाधा गया वह बँधा ही रहा। पुन द्वित्व कैसे ? तब लिखा पुन प्रसगविज्ञानात्। यदि पुन प्राप्त होने की सम्भावना हो। पुन प्राप्त हो जाय। द्वित्व होगा। अतुस् कित्। उसके परे यको इ सम्प्रसारण। इज इज द्वित्व इइज सवर्णदीर्घ। किति लिटि परे वचिस्वपि सूत्र लगता है। अकिति लिटिपरे लिटचभ्यासस्य लगता है। यही विषय भेद है। थलिपरे वा इट्। भारद्वाजमत इययिथ। इयज थ दशा मे इट् इयजथ। व्रश्ज भ्रश्ज सूत्र से ज को ष। थ को टवर्ग ठ। इयष्ठ। इयाज इयजईजिव ईजिम। आत्मनेपद मे यज त। असयोगात् लिट् कित् होने से वचि-यजादीना सूत्र से सम्प्रसारण यको-इ करके द्वित्व। इज इज। सवर्णदीर्घ। ईजे ईजाते ईजिरे। ईजिषे ईजाथे। क्रादि = इट्। इजिध्वे ईजे ईजिवहे ईजिमहे। यज्ञ दान सत्सग आगामी भविष्य काल मे हो। यष्टा = यज ता। व्रश्चभ्रस्ज से ज को ष, त = ट यष्टा यष्टारौ यष्टासि यष्टासे यष्टासाथे यष्टाध्वे। यष्टाहे यक्ष्यते यज स्यते ज = ढक स = ग यज्ञ करेंगे यक्ष्यसि तुम सत्संग करोगे। अह यक्षामि दान पुण्य करूँगा। यजतु यजता यजेता यजन्ता, यजै, यजावहै यजामहै। यजानि यजाव यजाम। अजयत अयजताम् अयजन्। अयज अयजतम् अयजत। अयजम् अयजाव अयजाम। अयजत अयजेताम् अयतन्त। यजेत यजेयाता यजेरन्, यज सी स् त्। पूजा दान सगति के विषयक शुभकामना अर्थ मे। यक्षीष्ट यक्षीयास्ता यक्षीरन्। क्रिया समाप्त हो चुकी हो लुङ। अजय स् ई त् सिच्परे हलन्तस्याच वृद्धि। व्रश्चभ्रस्ज से ज को ष—षढो क। स स। कष - क्ष। अयाष्टाम् अयाक्षु। अयाक्षी अयाष्टम् अयाष्ट। अयाक्षम्। आत्मनेपद मे अयज स्त। झलोझलि से सलोप ज-ष, त। अयष्ट अयक्षाताम् अयक्षत। अयक्षथा = यक्षाथा अयक्षध्व, अयक्षि। अयक्ष्यत्।

उवाप ऊपे । वप्ता । उप्यात् । वप्सीष्ट । प्रण्यवाप्सीत् । वह प्रापणे । उवाह । उवहिथ । 'सहिवहोरोदवर्णस्य' । उवोढ । ऊहे । वोढा । वक्ष्यति वक्ष्यते । आवाक्षीत् अवोढाम् आवक्षु । अवोढ अवक्षाताम् अवक्षत ।

डु इत्–**वप् धातु** का बीज सन्तान–प्ररोहार्थं बीजाना क्षेत्रेषु प्रक्षेपणम् । खेत मे बीज बोना छीटना, गर्भ का आधान अर्थ मे प्रमाण–अप्रमत्ता रक्षत तन्तुमेत मा व । परक्षेत्रेपुबीजानि अवाप्सु । तुम्हारे क्षेत्र मे पराये के बीज न बो उठे । **वपि प्रकिरणार्थ** अय – यह धातु छेदने–काटने अर्थ मे भी हो । केशान्**वपति** बाल मूडता है या काटता है । **वपत वपन्ति । वपसे वपेथे वपध्वे । वपे वपावहे-वपामहे** । बीज को बोते समय क्रिया न देखी हो । गर्भाधान केशकर्तन हो चुका हो । तिप् णल् । वप-वप ववप । लिटि-अभ्यासस्य सम्प्रसारणे । अत उपधाया दीर्घे । उवाप ऊपतु । वप अतुस् दशामे वचि स्वपि सूत्र से सम्प्रसारणे व को उ तब द्वित्व, उप-उप उउप सवर्णदीर्घे । भारद्वाज इट् । **ऊपिथ** । न इट् उवप्थ । ऊपथु ऊप । उवाप ऊपिव ऊपिम । आत्मनेपद मे ऊपे ऊपाते ऊपिरे । ऊपिषे ऊपाथे ऊपिध्वे ऊपिमहे । आगामी काल मे बीज बोना गर्भाधान, केशकर्तन हो । **वप्ता वप्तारौ वप्तारः । वप्तासि वप्तासे । वप्तास्मि**-वप्ताहे वप्तास्वहे वप्तास्महे । वप्स्यति वप्स्यत वत्स्यन्ति । **वप्स्येथा वप्स्यध्वे** । बीज वपतु वपता वपन्तु । वपता वपेता वपन्ता, वपस्व । वपानि । अवपत् अवपताम् अवपन् । वपेत् । वपेत वपेयाता वपेरन् । बोना गर्भाधान कतरना विषयक कामना आशीर्वाद । यासुट् के कित् से वचिस्वपि सम्प्र० । **उप्यात् उप्यास्ताम् उप्यासु** । वप्सीष्ट वप्सीयाता वप्सीरन् । अवाप्सीत् हलन्तस्यास्याच वृद्धि । नेर्गद से णत्व । **अवाप्ताम् अवाप्सु अवाप्सी** । आत्मनेपद मे जब बोने की क्रिया समाप्त हो । झलोझलिसि लोप । **अवप्त अवप्साताम् अवप्सत** । अवप्था , अवप्सि ।

वह धातु का प्रापण ढोना पहुँचाने की क्रिया वर्तमान कर्ता लट् । कर्तरि शप् **वहति वहत वहन्ति** । वहसे वहेथे वहध्वे । **वहामि वहावः वहामः** । वहे वहावहे । ढोने की क्रियासहित कर्ता न देखा हो । किन्तु

अवोढा अवोढ्वम्। १००५ वस निवासे। परस्मैपदी। वसति। उवास।
२४१० शासिवसिघसीनां च ८।३।६०॥ इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य
ष स्यात्। ऊषतु। ऊषु। उवसिथ उवस्थ। वस्ता। 'स स्यार्द्धधातुके'

कार्य देखकर ढोना क्रिया के अनुमान अर्थ मे लिट् आदि। वृह लिटि अभ्यासस्य सम्प्रसारण व को उ। उवाह उहतु उहु' वे लोग पता नही कब ढोये। अतुस् उस् पित् नही, कित् है जिसका फल वस्विपि से पहले सम्प्रसारण। बाद मे द्वित्व, दीर्घ। द्वाजमते 'व' इट्। उवहिथ = इट्। उवह् थ। न शसादद के निषेध से थलि च सेटि एत्व अभ्यासलोप नही किया। तब सहिवहो से अको ओ। ढलोप होने पर। उवह्थ दशामे ह् को होढ। थ को ध। ट वर्ग ढ ढोढे लोप। ढ्लोप के दीर्घको बाधकर ओकार। उवोढ ऊहथु ऊह। तुम लोगो ने ढोया ऐसा अनुमान हो। उवाह उहव ऊहिव ऊहिम। क्रादि- इट्। आत्मनेपद मे लिटि एश्। पहले सम्प्रसारण तब द्वित्व। दीर्घ आदि। ऊहे ऊहाते ऊहिरे। वे लोग पहुँचा दिए। ऊहिषे उहाथे ऊहिढ्वे-ध्वे। ऊहिमहे। अनिट् है इट् नही। वह् ता। ढ घ-ढ ढ्लोप ओत्व। वोढा वोढारौ वोढार। वोढासि। वोढासे वोढास्मि वोढाहे। ढोयेगा अर्थ मे वहस्यति ह् ढ क-ष क्ष। वक्ष्यति ढोऊँगा। वक्ष्यामि वक्ष्याव वक्ष्याम। वक्ष्यते वक्ष्यसे तुम ढोओगे। वक्ष्येथे वक्ष्यध्वे तुम सब पहुँचाओगे, ढोना क्रिया। आदेश प्रार्थना का बिषय हो लोट् लिङ्। वहतु वहतात् वहता वहन्तु। वहस्व वहेथा वहध्व, वहै, वहावहै। वहामि वहाव वहाम। अवहत् अवहताम् अवहन्। अवह अवहतम् अवहत। वहेत् वहेता वहेयु। वहे। अह वहेय। वहेत वहेयाता वहेरन्। ढोने के बिषय मे शक्तिवर्धक शुभकामना उह्यात् उह्यास्ता। वक्षीष्ट ढोना। क्रिया समाप्त हुई हो, लुङ् अवह सईत्। हलन्त के अच् को वृद्धि। ढ-क-ष क्ष पूर्ववत्। अवाक्षीत् अवोढाम् - अवहस'ताम् दशा में झलि् परे सलोप ढ घ ढ ढलोप सहिवहो से ओकार। अवाक्षुः उसी परे वृद्धि। ढ क ष क्ष पूर्ववत्। अवाक्षी अवोढम् अवोढ अवाक्षम् अवाक्ष्व-म। आत्मनेपद मे ढोना क्रिया के प्रथम पुरुष एकवचन। अ-हस्त्।

वत्स्यति। उष्यात्। अवात्सीत्। अवात्ताम्। वेञ् तन्तुसन्ताने। वयति, वयते। **२४११ वेञो वयिः २।४।४१॥** वा स्याल्लिटि। इकार उच्चारणार्थं। उवाय। **२४१२ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीना ङिति च ६।१।१६॥** एषा किति ङिति च

सलोप आदि पूर्ववत्। **अवोढ अवक्षाताम् अवक्षत**। आत्मनेपदषु अनत। ह्रि को अत। अवक्षि अवक्ष्वहि। **अवक्ष्यत्**। (१००५) वस् धातु का निवास ठाँव-ठिकाना की क्रिया। यह परस्मैपद का धातु। **वसति वसते** निवास करता है। **वसन्ति वसन्ते**। **वससि वससे**। वसामि वसे। निवास देखकर क्रिया का अनुमान अर्थेलिट्। **ऊवास ऊषतु ऊषु**।

वचिस्वपि से सम्प्रसारण के बाद द्वित्व दीर्घ आदि।

(२४१०) **शास् इण्** कवर्ग से परे शास् वस् घस् धातु के सको ष हो। सहे साड से स और इणको अपदान्तस्य मूर्धन्य का अधिकार। इससे षत्व, थलि इट्। **अवसिथ** जव न इट्। उवस्थ। न शस्दद से निषेध। **ऊषथु ऊषु**। ऊषिव क्रादि—इट् अनिट है। वस्ता कल निवास करेगा। **वस्तारौ वस्तार** वस्तासि वस्तास्मि निवास करेगे। बस् स्यति। स स्यार्धधातुके सूत्र से सको, त। **वत्स्यति वत्स्यसे**। वसतु। वस् वसामि। **अवसत् अवस अवसम्**। वसेत् वसेता वसेयु। **उष्यात् उष्यास्ताम् उष्यासु**। शासिवसिसे सम्प्रसारण। सीयुसुट् कित् हो अत व—उ। पूर्वमे निवास हो चुका ही हलन्तस्य अच् को वृद्धि। स स्यार्धधातुके। सको त **आवात्सीत् अवात्ताम् अवस स ताम्**। सिच् परे वृद्धि। झलो-झलि सलोप। प्रत्ययलक्षण के आधार पर अर्धधातुक सिच् के सके त। अथवा सिच्लोप असिद्ध करके **अवात्सु अवात्सी अवात्तम् अवात्तः अवात्सम् अवाह्स्व अवात्स्म**। अवत्स्यत।

वेञ् धातु का तन्तुसन्तान सूतविस्तार कपडे बुनना। पट निर्माणार्थं तन्तूना तियक्प्रसारणविशेप दोनो पद। क्रिया चल रही हो लट् शप् अय्। **वयति वयत वयन्ति वयसि वयथ वयथ। वयामि वयाव वयाम। वयते वयेते वयन्ते**। वयसे वयेथे वयध्वे। वये वयावहे वयामहे। बुनना

सम्प्रसारण स्यात् । इति यकारस्य प्राप्ते । **२४१३ लिटि वयो य ६।१।३८॥** वयो यस्य सम्प्रसारण न स्याल्लिटि । ऊयतु । ऊयु । **२४१४ वश्चास्यान्यतरस्या किति ६।१।३९॥** वयो यस्य वो वा स्यत्किति लिटि । ऊवतु । ऊवु । उवयिथ । वयस्तासावभावात्थलि नित्यमिट् । स्थानिवद्भावेन ञित्त्वात्तङ् । ऊये । ऊवे । वयादेशाभावे **२४१५ वेञ ६।**

कर्म अनदेखा काल मे हो । लिट् (२४११) **वेञो**–वे धातु को वय आदेश हो लिट् परे, वा विकल्प से । इकार उच्चा० । वय अ द्वित्व वय वय ववय । कित्सज्ञा न हुई हो ऐमा लिटि परे व को सम्प्रसारण । अतोपधाया वृद्धि । **उवाय ऊयतु** । वे के स्थान मे वय आदेश । वय अतुस् (२४१२) ग्रह् उपादाने ज्या अवस्थाहानि, वेञ् तन्तुसन्तान, व्यध ताडने, वश कान्तौ षिव सेवने, वृश्च छेदने, आदि धातु को सम्प्रसारण हो किति ङिति परे । इसमे यको सम्प्रमारण प्राप्त (२४१३) **लिटि परे** वयके यको सम्प्रसारण नही होता । न सम्प्रसारण आया । इससे यको निषेध । किन्तु व को सम्प्रसारण, द्वित्व दीर्घ । **ऊयतु ऊयुः** । अनेक कर्ता मे परोक्ष भूतकालिक वस्त्रवयन क्रिया (२४१४) **वयके** यको व हो, विकल्पसे । किति लिटि परे । इस सूत्र मे वयके यको व हुआ । पक्षमे वेञ् धातुके तास् प्रत्यय की स्थिति मे इट् नही होता । इसलिए थलि परे नित्य इट् । **ऊवयिथ** तुमने कब बुना । कित् नही । यको व भी नही । अजन्त अकारवान् को थलि परे विकल्प इट् प्राप्त, नित्य इट्का सकेत । **यस्तासौ अस्ति नित्यानिट् च । ऊयथु ऊवथु** । ऊय ऊव । **उवाय उवय ऊयिव ऊविम** । वय धातु उभय पक्ष कैसे ? स्थानिवद्भावसे । वेञ् का ञित्व धर्म वयमे लायेंगे । **ऊये ऊवे** । आत्मनेपद परे वेञ् को वय आदेश । यको व वश्चास्यान्य से विकल्प पक्ष मे वयके यको सम्प्रसारण निषेध । वको वचिस्वपि से सम्प्रसारण दीर्घ ऊव ऊवए **ऊवे** । पक्ष मे य । **ऊवाते ऊविरे** । जब वेञो वयि सूत्र से वय आदेश नही होगा, तब वेञ दशामे लिटि अभ्यासस्य और वचिस्वपि से सम्प्रसारण प्राप्त । निषेध सूत्र (२४१५) **वेञ** —वे धातुको सम्प्रसारण न हो लिटि परे । न सम्प्रसारण और लिटि

१ । ४० ।। वेञो न सम्प्रसारण स्याल्लिटि । ववौ । ववतु । वविथ ववाथ । ववे । वाता । ऊयात् । वासीष्ट । आवासीत् । १००७ व्येञ् सवरणे । व्ययति व्ययते । २४१६ न व्यो लिटि ६ । १ ४६ ।। व्येञ आत्व न स्याल्लिट्टि । वृद्धि । परमपि हलादिशेष बाधित्वा यस्य सम्प्रसारणम् ।

आये । इससे निषेध । आदेच उपदेशे से आत्व । वा वा ववा अ, आत औ णल । णल् को औ आदेश । वृद्धि एच परे । ववतु । ववा अतुस् आलोप से आकार का लोप । ववु । भारद्वाजनियमसे वा इट् ववाइथ आलोप वविथ । न इट् ववाथ ववथु वव । ववौ वविव वविम । क्रादि-इट् आत्मनेपदमे आत्व करने पर । ववा । आकार लोप । ववे ववाते वविरे । वविषे ववाथे वविढ्वे—ध्वे । ववे वविवहे वविमहे । लुट् लकार मे तास् परे आत्व । वाता वातारौ वातार बुनेगा वस्त्र वास्यति वास्यते । वयतु वयताम् । अवयत् अवयत । वयेत् वयेत ।

बुनने क प्रति शुभकामना अर्थ मे ऊयात् वेयात् । आशीर्वाद का यासुट् कित् है । जिसका फल वचिस्वपि से सम्प्रसारण, पूर्वरूप । अकृत्सार्व-धातुकयो से दीघ । ऊयास्ता ऊयासु । आत्मनेपद मे—वे सी स् त । आदेच उपदेशे से आत्व । ष-ट । वासीष्ट, वासीयास्ता वासीरन् वासीष्ठा । बुनना क्रिया के समाप्त काल मे लुड् इट् सक । अवास् इस ईत् दशा मे इट ईटि सलोप । अवात्सीत् अवात्ताम् । वस्त्र को तन्तुसतनित किया । अवासीषुः अवास्यत् । वेञ् धातु का सवरण घेरना, ढकना, खर्च करना वश मे करने की क्रिया । इत् से उभयपदी । अनिट् लट् तिप् शप् व्ययति व्ययत, व्ययन्ति । व्ययसे, व्ययेथे, व्ययध्वे । खर्च करके, वस मे करना ऐसी क्रियासहित कर्ता प्रत्यक्ष न हो लिट् आदि । आत्व । व्या अ द्वित्व लिटि परे अभ्यास को सम्प्रसारण पूर्वरूप विव्या अ आतो लोप । विव्यौ विव्यतु विव्यु ऐसा प्राप्त हुआ ।

(२४१६) न व्यो आलुप्त षष्ठी । आदेच उपदेशे से आत्व आया णल् परे (अ) दशा मे आत्व का निषेध हुआ । लिट् परे अचोञ्णिति से वृद्धि व्यै अ । दशा मे द्वित्व । अभ्यास के य को सम्प्रसारण पूर्वरूप ।

उभयेषा ग्रहणसामर्थ्यात् । अन्यथा वच्यादीना ग्रह्यादीना चानुवृत्यैव सिद्धे किं तेन । विव्याय विव्यतु विव्यु ।'इडत्त्यर्ति' इति नित्यमिट । विव्ययिथ । विव्याय विव्यय । विव्ये । व्याता । वीयात् । व्यासीष्ट । अव्यासीत् अव्यास्त । ह्वेञ् स्पर्धाया शब्दे च । ह्वयति ह्वयते । २४१७ अभ्यस्तस्य

उत्तर खण्ड को आय आदेश । **विव्याय** अत्र प्रश्न -अभ्यास के सम्प्रसारण से पहले य का हलादिशेष हो जाय । व को उ सम्प्रसत्रण हो उवाय क्यो नही ? तब कहा **परमपि** = यद्यपि हलादिशेष पर है पर कार्य होना चाहिए तथापि लिटि अभ्यासस्य सूत्र मे उभयेषा पढने की शक्ति स सम्प्रसारण पहले होगा । इसका समर्थन **अन्यथा**—शब्द से करते है । वचिस्वपि और ग्रहिज्या वयि दोनो सूत्रो की स्वरित सकेत से अनुवृत्ति लिट् अभ्यासस्य सूत्र मे जाती । उभयेषा क्यो पढा ? वही प्रमाण बनता है कि प्रथम सम्प्रसारण हो । **विव्यतु विव्यु** वे कब घेरे मे, वश मे हुए । वचिस्वपि से सम्प्रसारण करने के बाद द्वित्व यण् आदि । थलपरे भारद्वाज मत का विकल्प इट् प्राप्त हुआ अत इडत्यर्तिव्यतीतना सूत्र से नित्य ईट । तिप्, सिप् मिप् पित् है । अभ्यास को सम्प्रसारण । अन्य विभक्तियाँ कित् है । सम्प्रसारण होने के बाद द्वित्व आदि कार्य । विव्ययु विव्य विव्याय, विव्यिव, विव्यिम । आत्मनेपद का त कित् है । पहले वचिस्वपि से सम्प्रसारणादि तब 'वी' द्वित्व, यण् **विव्ये, विव्याते, विव्यिरे । विव्यिसे, विव्यिढ्वे, विव्यिमहे ।** अनद्यतन भविष्य काल का सवरण क्रिया के कर्ता मे लुट् । तास् परे आत्व । व्या ता । व्यय करके वश मे करेगा । व्यास्यति, व्यास्यसे । **व्ययतु, व्ययता, अव्ययत, व्ययेत्** व्ययेता व्ययेयु । **व्ययेत, व्ययेयाताा, व्ययेरन् ।** वि यात् कित् होने से सम्प्रसारण,पूर्वरूप । अकृत् से दीर्घ वीयास्ता वीयासु । व्यय करने विकार के घेरने के विषय मे शुभकामना लिडार्थ । व्यासीष्ट, सीयुट् परे आत्व । व्यासीयास्ता, व्यासीरन् ।

-सवरण क्रिया समाप्ति काल के कर्ता मे लुङ् सिच् आत्व ईट आदि अव्यासीत् अव्यासिष्टा, अव्यासिसु । आत्मनेपद में । अव्ये सत । दशा मे

च ६ । १ । ३३ ॥ अभ्यस्ततीभविष्यतो ह्वेञ सम्प्रसारण स्यात् । ततो द्वित्वम् । जुहाव । जुहुवतु । जुहुवु । जुहोथ जुहुविथ । जुहुवे । ह्वाता । हूयात् । ह्वासीष्ट । २४१८ लिपिसिचिह्वश्च ३ ३ । १ । ५३ ॥

आत्व अव्यास्त, अव्यासाता, अव्यासत । अव्यास्यत । ह्वे धातु स्पर्धा एक दूसरे से बढने की इच्छा और शब्द = आकरण बुलाना आगच्छ अर्थं मे है। भाव मे यान्तोऽन्यत प्लुतकृतस्वरमाशुदूरात् उद्बाहुना जुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्या । ऊँचे स्वर से भुजा उठाकर आत्मीय लोग बुलाये गये। वर्तमान काल मे बुलाना या हराने की इच्छा। लट् शप् अय। ह्वयति ह्वयत ह्वयन्ति। ह्वयसे, ह्ववे। स्पर्धा या आह्वान् जोर से बुलाने क्रियासहित कता न देखा तो तब लिट् आदि। अकित् तिप् सिप् मिप् मे। लिट् परे अभ्यास को ही सम्प्रसारण प्राप्त। उसका बाधक। (२४१७) अभ्यास संज्ञा होनी हो ह्वे को सम्प्रसारण हो। ह्व सम्प्रसारणम् आया। सम्प्रसारणाच्च पूर्वरूप। हु अ। दशा मे द्वित्व हु हु अ। उभे अभ्यस्तम् दोनो को अभ्याससज्ञा विप्रतिषेधे यद्बात तद्बाधितमेव, न्याय नही लगा। पुन प्रसङ्गविज्ञान से। कुहोश्चु। जुहु अ। अचोञ्णिति वृद्धि आव। जुहाव जुहुवतु जहुवु। ह्वे अतुस्। अभ्यस्तस्य से सम्प्रसारण पूर्व रूप। तब द्वित्व। जुहु अतुस्। उवङ् परोक्ष अनद्यतन भूतकाल मे बुलाया हारने की इच्छा किया। थल् परे वा इट्। जुहुविथ। न इट् गुण जुहोथ जुहुवथु। जुहुविव। क्रादि—इट् आत्मनेपद मे लिट त श्स। उवङ् जुहुवे जुहुवाते जुहुविरे जुहुविषे जुहुवाथे जुहुविढ्वे—ध्वे। जुहुमञिमहे। कल परसो स्पर्धा आवाहन हो लुट् तास् आदि। ह्वाता ह्वातारौ ह्वातार ह्वातासि। ह्वातासे। आदेच उपदेशे से आत्व। ह्वास्यति—बुलायेगा। हरायेगा। ह्वयतु ह्वयताम्। अह्वयत् अह्वयत। ह्वयेत् ह्वयेत। हूयात्। वचिस्वपि से सम्प्रसारण पूर्वरूप अकृत्सार्वसे दीर्घ। हूयात् हूयाता हूयासु। हूयासम् हूयास्व हूमास्म। बुलाने या हराने के प्रति शुभ कामना आशीर्वाद है। ह्वासीसत आत्व षत्व ष्टुत्व। ह्वाषीयास्ता ह्वासीरन्। समाप्त किया हो। ह्वसत् आत्व। (२४१८)

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । २४१९ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३ । १ । ५३ ॥
'आतो लोप – । अह्वत् । अह्वताम् । अह्वन् । अह्वत–अह्वास्त ।

अथ द्वौ परस्मैपादिनौ । वद व्यक्तायां वाचि । अच्छ वदति । उवाद । ऊदतु । उवदिथ । वदिता । उद्यात् । 'वदव्रज' इति वृद्धि । आवादीत् ।

लिप सिच ह्वे धातु से च्लिको अङ् हो, परस्मैपदपरे । (२४१९) आत्मनेपद परे हो विकल्प से अङ् । अह्वा अत् । आतो लोप इटि चसे आ का लोप । अह्वत् । तस् की ताम् आत्मनेपद मे च्लि को अङ् हुआ । आलोप **अह्वाताम्** अह्वन्त । अह्वथा । जब न अङ् तब च्ले सिच् अह्वास्त अह्वासाताम् । अह्वास्यत । लिप् उपदेहे अलिपत् । लीप दिया । पिच्क्षरणे असिचत् ।

अथ द्वौ = दो धातु की परस्मैपदी शैली की साधनिका । वद् धातु का स्पष्ट उच्चारण अच्छ वदति । अभिमुखअर्थ मे अव्यय अच्छ है । अभिमुख वदति मुख पर कहता है । **अच्छ गत्यर्थवदेषु** से गति सज्ञा धातु से पहले प्रयोग । **वदत वदन्ति । वदसि वदामि** । वदाम । वद्वद् ववद् अ । अकित् लिट् परे अभ्यास को सम्प्रसारण **उवाद ऊदतु** ऊदुः । परोक्ष मे बोला था । वचि स्वपि से पहले सम्प्रसारण पीछे द्वित्व । शेष, दीर्घ आदि । सेट धातु । थल् परे द्वित्व अभ्यासको सम्प्रसारण वलादि इट् । ऊदथु. **ऊद** । उवाद उवद । ऊदिव ऊदिम । भविष्यवक्ता इट् । **वदिता वदितारौ वदितारः वदिष्यति । वदतु अवदत् वदेत्** । उद्यात् यासुट् कित् है वचि स्वपिसे सम्प्रसारण लुङ् मे वदव्रजहलन्तस्य अच से वृद्धि । अवादे इस ईटि इट ईटि । **अवादीत् अवादिष्टाम् अवादिषु** । अवादी. अवादिष्टम् अवादिष्ट । अवादिषम् अवादिष्व अवादिष्म । सभी कर्ता मे भूतकालिक स्पष्ट बोलना ।

१०१० टुओ इत् **श्वि धातु** का चलना बढना अर्थ । वर्तमान कर्ता हो लट् शप् गुणअय । **श्वयति श्वयत. श्वयन्ति** । श्वाइव गच्छति । णलादि परे अभ्यास को नित्य सम्प्रसारण प्राप्त । कित् (अतुस् आदि परे द्वित्व के पहले) वचिस्वपि यजादि से सम्प्रसारण प्राप्त (२४२०)

१०१० टुओश्वि गतिवृद्धयो । श्वयति । २४२० विभाषा श्वे ६ । १ । ३० ॥ श्वयते सम्प्रसारण वा स्याल्लिटि यडि च । शुशाव । शुशुवतु । 'श्वयतेर्लिटयभ्यासलक्षणप्रतिषेध । तेन 'लिटयभ्यासस्य–' इति सम्प्रसारण न शिश्वाय शिश्वियतु । श्वयिता । श्वयेत् । शूयात् । 'जृस्तम्भु' इत्यङ्वा । २४२१ श्वयतेर ७ । ४ । १८ ॥ श्वयतेरिकारस्याकार स्यादङि । पररूपम् । अश्वत् अश्वताम् । अश्वन् । 'विभाषा धेट्श्व्यो' इति चङ् । इयङ् । अशिश्वियत् । 'ह्म्यन्त—' इति न वृद्धि । अश्वयीत् वृत् । यजादयो वृत्ता । भ्वादिस्त्वाकृतिगण । तेन चुलुम्पतीत्यादिसग्रह । इति भ्वादय ।

विभाषा श्विधातु को सम्प्रसारण हो विकल्पसे लिटि और यङ् परे। लिट् अश मे नित्य प्राप्त। णल् आदि परे अप्राप्त विभाषा। यङ् अश मे अप्राप्त शोशूयते। जब न सम्प्रसारण। शेश्वियते। श्वि लिट् ति-णल्। विभाषाश्वे से सम्प्रसारण। शु को द्वित्व शु शु अ। अचोञ्णिति आव। शुशाव शुशुवतु। उभयत्र विभाषा। (वा) श्वि धातु के लिटि परे अभ्यास के कार्य (सम्प्रसारण आदि) का निषेध हो। तेन = सम्प्रसारण न होने से इकार सुनाई पडने से श्वि अ। णित् परे वृद्धि शिश्वाय। अतुस् परे इयङ् शिश्वियु.। श्वयिता बढगा चलना आगामी भविष्य का। श्वयिष्यति। श्वयेत् श्वयेता श्वयेयु श्वयतु श्वयता श्वयन्तु। आशीर्लिङ् का यासुट् कित् है। परे मान कर वचि स्वपियजादीना सम्प्रसारण पूर्वरूप दीर्घ शूयास्ता शूयासु। लुङ् लकार मे च्लि को अङ् विकल्प से जृस्तम्भु से हुआ। अश्विअत की स्थिति मे इयङ् प्राप्त को बाध कर (२४२१) श्वयते अः श्वि धातु के अन्त्य अल् इकार को अ हो, अङि परे (जो ॠदृशी से आया) अश्व अत्। सवर्णदीर्घ प्राप्त था पररूप का सकेत अश्वत् अश्वताम्, अश्वन्। अश्व अश्वतम् अश्वत। अश्वम् अश्वाव अश्वाम। जब अङ् नही तब विभाषा धेट् श्वि से परे च्लि को चङ् विकल्प हो जिसका फल चङि से द्वित्व। अशिश्विअत्। इयङ् अशिश्वियत् जब चङ् नही तब सिच् अश्विश्वि सईत्। इट ईटि। दीर्घ गुण अय्। हलन्त के अच् को वृद्धि प्राप्त थी। उसका ह्म्यन्त से निषेध।

२४२२ ऋतेरीयङ् ३ । १ । २९ ।। ऋति' सोऽस्तस्मादीयङ् स्यात्स्वार्थे । जुगुप्सायामय धातु इति वह्व । कृपाया च इत्येके । सनाद्यन्ता ' इति धातुत्वम् । ऋतीयते । ऋतीयाचक्रे । आर्धधातुकविवक्षया तु 'आयादय आर्धधातुके वा' इतीयङभावे 'शेषात्कर्तरि' इति परस्मैपदम् । आनर्त । अर्तिष्यति । आर्तीत् । इति तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम् ।।

(ग०) वृत् का अर्थ यजादि गण की समाप्ति । यद्यपि भ्वादिगण को समाप्त कहना था क्यो नही कहा ? इस गण के आकृतिगण होने से । अनन्त धातुओसे शप् विकरण जानकर गणना करें । जैसे चलुम्पति लोप अर्थ मे चुलुम्प धातु की कल्पना । वह भी भ्वादिगण शप् विकरण है । ऐसा अन्य का भी अनुमान हो । यदि ऐसा अद भक्षणे आदि को धातु सज्ञा कैसे ? जो भ्वादयो है वही धातव होगा तब कहा—शप् विकरण (भ्वादिका) समाप्त हुए । अन्य विकरण लुक् आदि शप् को बाधकर होगे अत सभी भ्वादि हैं । इति प्राभाकरी टीकायाम् इति भ्वादि प्रकरणम् ।

(२१२२) ऋते = ऋत् धातु से परे इयङ् हो स्वार्थे = अपने अर्थ मे इयङ् । सनाद्यन्ता धातव से धातुसज्ञक हुआ ऋृतीयते च ह्रिणीया च घृणार्थका । जुगुप्सा करुणा घृणा दृष्टि इत्यमर कोषे ऋतीयते स्वाद्घृणयो । वश्चि लुश्चि ऋतश्च प्रमाण से त अन्त धातु है । इकारान्त नहीं । इ अन्त होता इयङ् का इकार व्यर्थ हो जाता । (अकृत्सार्वधातु-कयो से दीर्घ होता) जुगुप्सा = निन्दा घृणा अर्थ, बहुतो का मत । एके = अन्य के मत मे कृपा + उदारता अर्थवाचक ऋत से वर्तमानकालिक कृपा या निन्दा क्रिया के कर्ता मे लट् शप् इयङ् ऋतीयते ऋतीयसे ऋतीये । ऋतीयाचक्रे । अनेकाच् होने से कास्प्रत्ययात् आम् । कृ लिट् अनुपयोग इत्यादि । परोक्ष मे कृपा या निन्दा किया । ऋतीयिता ऋतीयिष्यते ऋतीयताम् । आर्तीयत । ऋतीयेत ऋतीयिषीष्ट । आर्तीयिष्ट । आर्तीयिष्यत् आर्धधातुक की इच्छा मे आयादय आर्धधातुके वा सूत्र से आय प्रत्यय होगा, तब शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् से परस्मैपद । आनर्त ऋत् से 'लिट्

अथ तिङन्तेऽदादिप्रकरणम् ॥ २ ॥

१०११ अद भक्षणे। द्वौ परस्मैपदिनौ। २४२३ आदिप्रभृतिभ्य शपः २।४।७२ ॥ लुक् स्यात्। अत्ति अत्त अदन्ति। २४२४ लिटयन्यतरस्याम् २।४।४० ॥ अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि। जघास। 'गमहन–' इत्युपधालोपः। तस्य चर्विधिं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधाद्धस्य चर्त्वम्।

अभ्यास को दीर्घ। गुण। आ अर्त अ। तस्मान्नुट्-दो हल देखकर। नुट् विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते। ऋ मे र हल् छिपा है आर्नंत आनृतत् आनृतु। आर्नतिथ आनृतथु आनृत। आनर्तं आनृतिव आनृतिम। अर्तिता आर्तिष्यति ऋत्यात्। आर्तीत् इट इटि सलोप आट् आगम। आर्तिष्यत्। इति शप् विकरण साधनिकाभ्वादि पूर्ण।

अथ अदादय–भ्वादिगण मे सभी धातु आते हैं। भूवादय धातव के धातुसज्ञा करने से। अदादि का अर्थ प्राप्त विकरण शप् का लुक् हो जिन धातुओ से उस समुदाय के आदिमे अद आता है। अत, भ्वादि का अन्तर्गण अदादि है। उन धातुओ की, साधनिका शैली का आरम्भ— । १०११। अद् का भक्षण चबाकर लीलने की क्रिया। अनिट। सकर्मक। (२४२३) अदि = अदादिगणमे पढे धातुओ से परे शप् का लुक् हो, जो ण्य क्षत्रियार्ष से आया। खाने लीलने अर्थ वाचक अद् धातु से वर्तमान कालिक भक्षण क्रिया के कर्ता मे लट्-ति। कर्तरि शप् का अदिप्रभृतिभ्य से लुक्। द को चर त। अत्ति। इसी प्रकार खाना क्रिया के दो कर्ता हो तस्। अत्त अदन्ति। बहुत लोग खा रहे हो। उसका वाचक झि प्रत्यय। झो अन्त। इसीलिए अन्त मे अ पढा। भक्षण कर्ता त्व हो तब अद् + सिप्। दको चर्त अत्सि अत्थ. अत्थ। अद्मि अद्व अद्म। हम सब कर्ता में वर्तमान कालिक भोजन क्रिया। (२४२४) लिटि-अद् धातु को ल इत् घस आदेश हो विकल्पसे लिटि परे। अदो जग्धि से अद्, लुङ्सनो से घस्लृ आया। घसादेश अनिट् है। जघास-भक्षण क्रियावाची धातुसज्ञक अद् से परोक्ष = क्रियासहित कर्ता न देखा गया हो। अनद्यतन भूतकाल कर्ता अर्थ वाचक लिट्ति णल्। अद् अ। प्रथम प्राप्त लिटिपरे अद् को घस् आदेश। घस्

'शासिवसि–' इति षत्वम् । जक्षतु जक्षु । घसेस्तासावभावात्थलि नित्यमिट् । जघसिथ । आद आदतु । इडत्त्यर्त्ति इति नित्यमिट् । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति । २४२५ हुझल्भ्यो हेर्धि ६ । २ १०१ ॥ होर्झ-

---

अ । द्वित्वआदि । उपधा वृद्धि जघास गमहनखन आदि सूत्र से उपधा के अकार का लोप नही होता, कित्परे न मिलने से । यक्षतु वक्षु दो कर्ता भक्षण क्रियासहित दशा मे न देखे गये हो, अघस् अतुस् । गनहनखन् आदि सूत्र से उपधा के अ का लोप । यहाँ असयोगात् लिट बरे कित् अतुस् दशामे आदेशप्रत्ययो के न लगने से । शासि वसि घसीनाञ्च सूत्र से सको ष । घ को चर्क । कष=क्ष । तस्य – उपधा-लोप अकार को स्थानिवद्भाव होगा, तब चर्त्वं कैसे ? न पदान्त द्विर्वचन सूत्र के चर् दशामे निषेध से । स्थानिवद्भावके न होने देने से । घस् के तास् मे इट् न होने से, थलि परे नित्य इट् हुआ । निषेध की कोई गुजाइस नही । जघस् इथ । घस्तासावस्ति अविट् च इति भाष्यम् । जक्षसिथ जक्षतु जक्ष । जघास जघस जक्षिव जक्षिम । पक्ष मे घस् आदेश नही तब । अद अद आअद । आद आदतु आदु । भारद्वाज नियम से विकल्प इट् प्राप्त था । हइडत्यर्ति सूत्र से नित्य इट् आदिथ आदथु आद आदिव आदिम । हम सब कर्ता मे विराजमान भोजन की भूतकालिक अनुमित क्रिया । वह आज से भिन्न भविष्यकाल मे हो । अद ता चर् । अत्ता अत्तारौ अत्तारः अत्तासि अत्तास्थ अत्तास्थ । अत्तास्मि अत्तास्व अत्तास्म. खाने वाला हूँ । अत्स्यति अत्स्यत. अत्स्यन्ति । त्वम् अत्स्यसि अह अत्स्यामि । तुम खाओगे । मैं खाऊँगा । भोजन कर्म आज्ञा प्रेरणा निवेदन प्रार्थना का विषय हो लोट् अद् ति चर् । एरु अत्तु अत्तात् । वह खाया भोजन की शक्ति बढे । अत्ताम् अदन्तु । सभी लोग खाय । अद्धि भोजन की प्रेरणा निवेदन दशा के त्व कर्ता मे लोट् मध्यमपुरुष एकवचन सिप् । सिको हि आदेश । अद्-हि दशा मे झयो होन्यतरस्या सूत्र से हका पूर्वसवर्णी ध प्राप्त हुआ विकल्प से, तब- (२४२५) हुझल्भ्यो । हु धातु और झलन्त (झभञ् से हल तक अक्षर अन्त) धातु से हि को धि आदेश हो ।

ल्न्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि अत्तात्। अदानि। **२४२६ अद सर्वेषाम्** ७।३।१०॥ अद परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याऽडागम स्यात्सर्वमतेन। आदत आत्ताम् आदन्। आदः आत्तम् आत्त। आदम् आद्व आद्म। अद्यात् अद्याताम् अद्यु। अद्यास्ताम्। अद्यासु। **२४२७ लुङ् सनोर्घस्लृ**

धिहुआ सर्वादेश। अनेकाल् होने से अद्धि। जब पर होने से तातङ् ने बाध लिया तब अत्तात्। जब स्थानिधर्म लाने से हि हुआ धि नही होगा। **विप्रतिषेधे यद्बाधित तद्बाधितमेव** बराबर बल वालो मे जो धराशायी हुआ वह कार्य नही कर सकता। **अत्तम् अत्त अदानि** मिको नि। आडुत्तमस्य पिच्च अदानि अदाव अदाम। **आदत्** = बीते भूतकाल मे भोजन समाप्त हो अद धातु से अनद्यतन कर्ता मे लङ् आट्। आ अद् त (२४२६) **अदसे** परे अपृक्त = एक **अल्**-अक्षर (त्) सार्वधातुक को अट् आगम हो सभी के मत मे। गर्ग्यगालव को रोकने के लिए सर्वेषा पढा। केवल अट आया। **तस्मात्**-परिभाषा से परस्य (गुणो) अपृक्त तुरुस्तु से सार्वधातुक आये। 'टित् आदि मे हो'। आद अ त्। कल खाया। दो 'भोक्ता' है। तस् ताम् आद्ता। दको चर्त। आत्ताम् आदन् झि मे इका इतश्च से लोप। झ को अन्त आरिथ। त का लोप **सयोगान्तस्य** से। अनेक लोग भक्षण किये। आद आत्तम् आत्त। फल खाये। त्व कर्ता हो सिप् का इलोप। आद स् ञ्ट आद। तुम दोनो खाये। दको चर्त। आत्त। अहम् आवाम्। मिप् को अम्। मैं खाया। युवाम् आद्व। वयम् आद्म। जब भोजन क्रिया आज्ञा निवेदन निमन्त्रण प्रार्थना का विषय हो, विधि लिङ्। अद् या त्। शप लुक् से यास् को न इय। **अद्यात्**। वह खाये। दो कर्ता मे खाने की सम्भावना हो तस्-ताम्। यास् के सको लिङ् सलोपो अनन्त्यस्य। अद्याताम् अद्यु। अपदान्त झ को उस्। अद्या अद्यातम् अद्यात। अद्या = मिप् को अम् आदेश सलोप सवर्णदीर्घ। अद्याव अद्याम। हम सभी खायें। खाने के विषय मे शुभकामना अधिक भोजन होना। आशीर्लिङ् दो कर्ता मे भोजनशक्ति बढने की कामना, द्विवचन-तस्। तस्थस्थमिपा से ताम् **अद्यास्ताम् अद्यासुः** अद्यास (२४२७) लुङ् और

२।४।३७॥ अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च लृदित्वादङ् । असमत् । हनहिंसागत्यो । प्रणिहन्ति । **२४२८ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७॥** अनुनासिक इति लुप्तषष्ठीक पद वनतीतरेषा विशेषणम् । अनुनासिकान्तानामेषा वनतेश्च लोप स्याज्झलादौ क्ङिति परे । यमिरमिपमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदात्तोपदेशा । तनु [षणु] क्षणुक्षिणुऋणुतृणुघृणुवनुमनुतनोत्यादय । हत । घ्नन्ति । **२४२९ वमोर्वा ८।४।२३॥** उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य हन्तेर्नस्य णो

सन् परे रहते अद के स्थान मे घस आदेश हो । लृ इत् का फल पुषादिद्युतादिलृदित से च्लिको अङ् होना । **अघसत्** । भक्षण क्रिया वाचक अद धातु से कर्ता में लङ् प्रथमपुरुष एकवचन ति । इतश्च इ लोप । अद को घस् । च्लिको अङ् । **अघसत् अघसताम् अघसन्** अघस अघसतम् अघसत । अघसम् अघसाव अघसाम । अत्स्यत् ।

हन धातु = हिंसा – मारना प्राण निकालना, कष्ट देना, और जाना क्रियावाची होने से भूवादयो धातव से धातु सज्ञा वर्तमानकाल के हिंसा कर्ता मे लट् । शप० लुक । ति नश्चापदान्तस्य न को अनुस्वार पर सवर्ण । हन्ति । प्रनि उपसर्ग हो नेर्गदनदपतपद से नकोण हत । हन धातु से पिटने प्राणवियोग या कष्ट देने वर्तमानकालिक लट् प्रथम पु० दो वचन तस् हन त । दशा म नकार लोप का सूत्र (२४२८) **अनुदात्त उपदेश** = प्रथम उच्चारण का वन तन आदि धातु के अन्त मे अनुनासिक न म का लोप हो झल् अक्षर आदि मे हो ऐसा कित् ङित् प्रत्यय परे । अनुनासिक मे लुप्त षष्ठी है । बनति आदि मे विशेषण, तदन्तविधि । तब अनुनासिक अन्त अर्थ निकला । उपदेश मे यम रम नभ गम हन मन ये धातु गृहीत है । भ्वादिका वन तनु क्षणु क्षिणु आदि तनोत्यादि है । उदित् का फल इट विकल्प का निषेध । अनुनासिकान्ता क्यो ? शक्तो रुद्रः । झलि क्यो ? गम्यते नम्यते । इसमे न का लोप । हत उपदेश मे अनुदात्त अनुनासिक अन्त है नकार लोप तस् ङित् है अपित् न होने से । घ्नन्ति अनेक कर्त्ता मे हिंसा क्रिया वर्तमान हो बहुवचन झि । झ को अन्त ।

वा स्याद्वमयो. परयो । प्रहण्मि प्रहन्मि । प्रहण्व प्रहन्व । 'हो हन्ते' इति कुत्वम् । जघान जघ्नतु जघ्नु । २४३० अभ्यासाच्च ७ । ३ ५५ ॥ अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्व स्यात् । जघनिथ जघन्थ । हन्ता । 'ऋद्धनो' इतीट् । हनिष्यति । हन्तु-हतात् । घ्नन्तु । २४३१ हन्तेर्जः

शपो लुक् । हन् अन्ति । अजादि ङित्परे अन्ति है । गमहनखन् सूत्रसे उपधा अ का लोप है । हन्ते सूत्र से ह को घ । घ्नन्ति बहुत कर्ता में वर्तमान हिंसा की क्रिया । हसि हथ हथ । हन्मि हन्व हन्म । हम सब हिंसा करते है । प्र उपसर्ग लगने से व म परे, न को ण होने का विधि सूत्र । (२४२९) **वमोर्वा** – उपसर्ग मे स्थित णत्व निर्मित्त (कारण) र ष उससे परे हन् के न को ण हो वा म म परे रहते । इससे प्र मे र निमित्त है । उपसर्गात् और रषाभ्या नो ण हन्ते की अनुवृत्ति । प्रहण्व. हिंसा क्रियासहित कर्ता न देखा हो, हन से परोक्षे लिटि आदि । हन हन हहन जहन, उपधा वृद्धि हो । हन्ते से कुत्व, ह को घ । अभ्यासाच्च सूत्र से अन्तरङ्ग है । **जघान जघ्नातु जघ्नु** । जहन् अतुस् दशा मे गम हन जन से उपधा अ का लोप । कुत्व ह को घ । थल्परे भारद्वाज नियम से इट ज ह निथ जहन् थ । दशा मे ङित्परे और नकार परे भी न होने से हो हो हन्ते सूत्र कुत्व नही करेगा, तब (२४३०) **अभ्यास** से परे हन् के ह को कुत्व घ हो । हो हन्ते की अनुवृत्ति **जघनिथ** । अभ्यास से परे ह को घ, न को अनुस्वार परसवर्ण **जघन्थ** । जघ्नथु जघ्न । जघान जघन जघ्निव—म । आज भविष्य मे भिन्न भविष्य काल मे हनन् कर्म कर्ता मे लुट् ति, तास डा, आदि । **हन्ता हन्तारौ हन्तार** । हन्तासि हन्तास्थ हन्तास्थ । हन्तास्मि हन्तास्म । हनिस्यति हनिस्यत हनिस्यन्ति । ऋद्धनो स्ये परे इट् भविष्यकालिक हिंसा, मारेगा । बध क्रिया के विषय मे आज्ञा प्रेरणा हो के लोट् ति शप् ब लुक । एरु । हन्तु । तु—तातङ् करना आशीर्वाद अर्थ मे **हतात् हता हन्तु** । जहि हिंसार्थक हन धातु से मारने की प्रेरणा ललकारना लहकाना के कर्ता मे लोट् । मध्यमपुरुष एक वचन सिप्, हन् सि । सिको हि आदेश । हन के स्थान मे ज आदेश का

६। ४। ३६॥ हौ परे। आभीयतया जस्यासिद्धत्वाद्धेर्न लुक्। जहि। हनानि हनाव हनाम। अहन् अहताम् अघ्नन्। अहनम्। २४३२ आर्धधातुके २। ४। ३५॥ इत्यधिकृत्य। २४३३ हनो वध

विधायक सूत्र। २४३१। हन्ते.—हन के स्थान मे जहो हि परे। ज हुआ जहि। ज आदेश अकारान्त है। उससे परे अतो हे सूत्र से हि का लुक् प्राप्त हुआ तब कहा—ज को आभीयसज्ञा है असिद्धवादत्राभात् के अतिदेश से ज की असिद्धिसे हि का लुक् टला। जहि हतात् हत हत। हनानि हनाव हनाम। उत्तमपुरुष का अट् पित् है, ङित् नही, गम हन से उपधालोप नही। हम लोग बध करें। अहन्—हन धातु से आज के भूतकाल से पहले समाप्त मारणक्रिया के कर्ता ने लङ् ति। इतश्च लोप। अहन्त्। सजोग का अन्त तकार लोप या हल्ङ्यादि लोप हिंसा समाप्ति के दो कर्ता हों द्विवचन तस् को ताम् आदेश। अहन् ताम्। अनुदात्तोपदेश—सूत्र से नकार लोप। अघ्नन्। अहन् झि। झो अन्त, इकार लोप। त लोप, उपधा अकारलोप। होहन्ते कुत्व अहन् अहतम् अहत। अहनम् अहन्व अहन्म। हिंसा और गति के विषय मे प्रेरणा आज्ञा आदि हो विधि लिङ्। यास्। हन्यात् हन्याता हन्यु.। अनेक कर्ता मे सम्भावना के अनुकूल हनन क्रिया। हिंसा बढने की कामना से वध आदेश के लिये अधिकार सूत्र। २४३२। आर्धधातुक के अधिकार मे। २४३३। हन को वध आदेश हो आर्धधातुक सज्ञक लिङ परे। २४३४। हन को वध आदेश हो, लुङ परे। हन् यात्। दशा मे आर्धधातुकसज्ञा। तब हन् को बध आदेश करने पर, उपदेश अकारान्त नही रहा, बध्यात् मे अकारलोप कैसे? तब कहा विषयसप्तमी—अर्धधातुक की इच्छा होने के पहले ही बध आदेश, तब आर्धधातुकसज्ञा तब उपदेश मे हन् को बध आदेश अकारान्त होगा। अकार लोप मे बाधा नही। (अतो लोप से) बध्यात्। बध्यास्ता बध्यासुः। आर्धधातुक क्यो पढा विधिलिङ हन्यात् सार्वधातुक है बध आदेश न हो। प्र उपसर्ग हो हन्ते सूत्र से णत्व। अवधीत्। हिंसार्थक हन् से समाप्त हनन क्रिया के कर्ता मे लुङ् आदि।

लिङि २।४।४२॥ २४३४ लुङि च २।४।४३॥ वधादेशोऽदन्त। 'आर्धधातुके' इति विषयसप्तमी। तेनार्धधातुकोपदेऽकारान्तत्वात् 'अतो लोप –' वध्यात्। वध्यास्ताम्। आर्धधातुके किम्। विध्यादौ हन्यात्। 'हन्ते –' इति णत्वम्। प्रहण्यात्। अल्लोपस्य स्थानित्वात् 'अतो हलादेः–' इति न वृद्धि। अवधीत्।

अथ चत्वारः स्वरितेतः। १०१३ द्विष अप्रीतौ। द्वेष्टि द्विष्टे। द्वेष्टा

अहन् म ई त्। हन को वध आदेश। अतो लोप अलोप। वध् एकाच है वलादि इट् होगा। एकाच उपदेशे सूत्र से निषेध नही होगा, उपदेश— प्रथम उच्चारण दशा मे वध अदन्त अनेकाच है। अवध इ स ईत्, इट ईटि सलोप। दीर्घ आदि। अतो हलादे सूत्र से वृद्धि नही होती, अचः परस्मिन् द्वारा अकार लोप के स्थानिवद्भाव से। इसीलिये वध को अदन्त पढा। अवधीत् अवधिष्टा अवधिषु। अवधी अवधिष्टं अवधिष्ट। अवधिषम् अवधिष्व अवधिष्म।

अथ चारधातु स्वरित = उदात्त अनुदात्त मिलितधर्म वाला अच इत् होने से उभयपद (आत्मने० परस्मै०) द्विषधातु का अप्रीति — प्रेम विरोधी आचरण अर्थ। द्वेष क्रियावाची धातुसञ्ज्ञक द्विष से प्रेम विरोधी आचरण के वर्तमान कर्ता मे लट्। शप लुक्। उपधा मे लघु इकार को गुण। ष्टुत्व द्वेष्टि द्विष्ट द्विषन्ति। अनेक कर्ता मे वर्तमान प्रेम विरोधी आचरण। तिप सिप मिप पित् हैं गुण होगा। अन्य विभक्ति ङित् हैं गुण निषेध होगा। द्वेक्षि — द्विष सि। ष—ढ को क होता है। स परे सि हैं। ष को क। स — ष। कष — क्ष। द्वेक्षि द्विष्ठ द्विष्ठ। तुम सबमे वैर भाव की विराजमान क्रिया। द्वेष्मि द्विष्व। द्वेषका फल दुःख परगामी हो परस्मैपद। यदि प्रेम विरोधी क्रिया के कर्ता मे दुःख फल जाये तब आत्मने पद (कर्तृगामिनि क्रियाफले) त टे ए। ष्टुत्व द्विष्टे द्विषाते द्विषते द्विक्षे द्विषाथे द्विढ्वे। द्विषे द्विष्वहे। पित् रहित सार्वधातुक ङित् है। क्ङिति च गुण निषेध। द्वेष का परोक्षकाल सम्भव नही, न परोक्षे लिट्। कल परसो दुश्मनी होनी हो कर्ता मे अनद्यतने लुट् ति। तासि डा आदि।

द्वक्ष्यति द्वेक्ष्यते। द्वेष्टु-द्विष्टात्। द्विड्ढि। द्वेषाणि। द्वेषै द्वेषावहै। अद्वेट्।
२४३५ द्विषश्च ३।४।११२॥ लङो झेर्जुस् वा स्यात्। अद्विषुः

द्वेष्टा द्वेष्टारौ द्वेष्टार। द्वेष्टासि द्वेष्टासे। द्वेष्टास्मि अहं द्वेष्टाहे। मैं विरोध करूँगा। भविष्यकाल का प्रेमविरोधी कर्म का सूचक स्य-तास्। द्विष स्य सि। ष—ढ को क हो स परे। स—ष क—ष—क्ष। गुण द्वेक्ष्यति—ते। द्वेक्ष्यामि द्वेक्षसे द्वेक्ष्यामहे सद्भावना विरोधी आचरण आज्ञा प्रेरणा निवेदन का विषय हो लोट् ति इ को उ। एरु। द्वेष्टु द्विष्टा द्विषन्तु। वे द्वेष करें। जेहाद छेडे। द्विष—सिप—हि, हि—धि ष को जश् ड। ध को टु ढ। द्विड्ढि द्विष्टात् द्विष्ट द्विष्ट। आट पित् है न ङित्। गुण हुआ, ष से परे न को ण। द्वेषाणि द्वेषाव द्वेषाम। द्विष्टा द्विषाता द्विषता द्विक्ष्व द्विड्वम् अहं द्वेषै। वयं द्वेषामहै। हम लोग प्रीतिविनाश करें। आज के भूत से भिन्न भूतकाल मे द्वेष क्रिया समाप्त हो लङ्। अद्वेषति गुण। इलोप हल्ङ्यादि त्लोप। वाऽवसाने चर झला जश्‌ ड। अद्वेट् अद्विष्टाम् अद्विषु अद्विषन्।

॥ २४३५ ॥ द्विषश्च झेर्जुस्। लङ शाकटायनस्य की अनुवृत्ति। लङ् के स्थान मे झिको जुस् हो पक्ष मे। जुस हुआ। पक्ष मे झके अन्त आदेश तका लोप, सिप् मे हल्ङ्यादि लोप अद्वेट् अद्विष्ट अद्विष्ट। तुम लोगो मे परको परेशानकारक आचरण। अद्वेषम् अद्विष्व। विधिलिङ् प्रेरणा आज्ञाका विषय। द्विष्यात् द्विष्याता द्विष्यु। आत्मनेपद मे द्विषीत द्विषायाता द्विषीरन्। आशीर्लिङ् आत्मनेपद सीयुट् सुट्। द्विक्षीष्ट। लिङ् सिचौ आत्मनेपदेषु कित है न गुण। द्विक्षीयास्ता द्विक्षीरन्। समाप्त दुश्मनी के कर्ता मे लुङ् अद्विष् स् त्। शल इगुपधात्-च्लि को क्स। क ष—क्ष आदि। अद्विक्षत् अद्विक्षता अद्विक्षन्। आत्मनेपद मे अद्विक्षत अद्विक्षाता अद्विक्षन्त। अद्विक्षथा। अद्विक्षि। अद्वेक्ष्यत्। विरोध कार्य करेगा, सुख नही पायेगा ।। १४ ।। दुह धातु का प्रपूरण पूरणाभाव, त्याजन, दूध निकालना, दुहना अर्थ। यद्यपि पृ पालन-पूरणयो: से बना पूरणशब्द का भरना अर्थ, तथापि प्र उपसर्ग लगने से ऊध पूरण—

अद्विषन् । अद्वेषम् । द्विष्यात् । द्विषीत द्विक्षीष्ट । अद्विक्षत् । दुह प्रपूरणे । प्रपूरण पूरणाभाव । धात्वर्थं बाधते कश्चित् । दोग्धि दुग्ध धोक्षि । दुग्धे धुक्षे धुग्ध्वे । दोग्धु । दुग्धि दोहानि । धुक्ष्व । धुग्ध्वम् । दोहै । आधोक् अदोहम् । अदुग्ध । अधुग्ध्वम् । अधुक्षत् अधुक्षत । 'लुग्वादुह–' इति–

प्रतिकूलीभाव ऊधस सकाशात्क्षारणे दूध का त्याग करना, निचोडना अर्थ। क्योकि बालमनोरमाकार कहते हे धात्वर्थ बाधते कश्चित्। उपसर्ग प्रसिद्ध धात्वर्थ बाधित्वा (अन्यमर्थम्) अर्थान्तर प्रापयति। विशेष अर्थ खोलता है। सामान्य अर्थ प्रसिद्ध रहता है। दोग्धि। एक कर्ता मे वर्तमानकालिक दुहने–दूधगारने की क्रिया। दुग्ध त्यागानुकूल-व्यापारवाचक दुह धातु से वर्तमान दोहन-कर्ता मे लट्। दुह + ति। ह को घ, दादेर्धातोर्घ से। दुघ ति। त को ध–झषस्तथोर्धोऽध से। घ को जश् ग। गुण दोग्धि दुग्ध दुहन्ति। दुहने वाले दो कर्ता का सूचक त स्। घ ध आदि धोक्षि–दूह सि, ह–घ, चर क-ष, क्ष गुण। दुग्ध दुग्ध। दोह्मि दुह्म। दुग्धे आत्मनेपद मे दुध (कर्ता क लिये) निकाला जाय। लट व शपो लुक् एत्व। दुह ते। दादि धातु के ह को घ, त को ध। झषस्तथोर्ध। घ को जश् ग। दुग्धे दुहाते दुहते। यास से। दुह से ह–घ द (भष) ध=घ–क धुक्षे त्व कर्ता मे वतमानकालिक दुहने दुध निकालने की क्रिया। दुहाते दुग्ध्वे। भ ष ध घ–ग। दुहे दुह्महे। दुहने की क्रिया–सहित कर्ता परोक्ष मे रहा हो लिट् दुदोह दुदुहतु अजन्त नही न अकार वान् इसलिये नित्य इट्, क्रादि नियम से। दुदोहिथ दुदुहथु दुदाह! दुदुहिव। दुदुहे दुदुहिरे दुदुहिषे दुदुहिढ्वे-ध्वेदुदुहिवहे–महे। दोग्धा कल दुहेगा। दोग्धारौ दोग्धार दोग्धासि दोग्धासे दोग्धास्मि दोग्धाहे दुहेगा। धोक्षे धोक्ष्याम। विधि आज्ञा प्रेरणा का विषय दुहना क्रिया हो कर्ता मे लोट्। शप लुक् आदि ह–घ–ग। दोग्धु दुग्धात् दुग्धा दुहन्तु। दुग्धि सि हि धि ध जत्। दुग्धात् दुग्ध दुग्ध। दोहानि दोहाव दोहाम। आट के पित् होने से गुणनिषेध नही। हम सब दुहे। आत्मनेपद मे आमेत से ए=आम् दुग्धा दुहाता दुहता धुक्ष्व–थास से। ह–घ, द–ध

लुक्पक्षे तथास्ध्वम्वाहिषु लङ्वदपि। १४१५ दिह उपचये। उपचयो वृद्धि। प्रणिदेग्धि। लिह आस्वादने। लेढि लीढ लिहन्ति। लेक्षि लीढे। लिक्षे। लीढ्वे। लेढु लीढाम्। लीढि। लेहानि। अलेट्। अलिक्षत्। अलिक्षत

—ज से चर क। सवाम्या वामौ ए को व। दुहाथा दुग्ध्व, ध। भष् जश्। **दोहै दोहावहै।** आट पित है गुण हुआ। प्रढो का दूध निकालनावाचक दुह से बीते भूतकाल दोहन क्रिया के कर्ता ने लङ् ति। इ लोप। त् का हलङ्यादि लोप। ह्–घ द–ध घ–अट्। वावसाने **अदुग्धाम्** अदुहन् अधोक् अ दुग्धम् अदुग्ध। तुम लोगो ने कल दुह लिया था। **अदोहम् अदुह्व अदुह्म।** अत्मनेपद अदुह त। ह्–घ, त–ध, घ–ग अदुग्ध अदुहाताम् अदुहत। अदुग्धा अदुहाथाम् अधुग्ध्वम् **अदुहि अदुह्वहि।** लङ् लकार के परस्मैपद मे दूध निचोडने की समाप्तक्रिया के कर्ता मे लुङ् **अदुहत**–शल इगुपधात्–से क्स। घ (चर) कष–क्ष **अघूक्षत् अधुक्षता** अघुक्षन् अधुक्ष। आत्मनेपद मे अधुक्षत (अस्याचि) अघुक्षाता अधुक्षन्त अधुक्षथा अधुक्षाथा अधुक्षध्वम् आधुक्षि अधुक्षावहि लुग्वा **दुहदिह**—सूत्र से लुक् पक्ष मे **त, थास, ध्व, वहि** ये चार प्रत्यय दन्त्यस्थान वाले परे हो, तब लङ् की तरह रूप हो। जैसे अदुग्ध अदुग्धा', अदुग्ध्व, अधुग्वहि। हम सब कर्ता मे दूग्ध त्याग कराने की समाप्त क्रिया। **अधोक्ष्यत।** ॥ १५ ॥ **दिह उपचये** = वृद्धि के अनुकूल व्यापारवाचक दिह धातु से वर्तमाने लट्। दिह ति। दादेर्धातोर्घः। हको घ झषस्तथोर्धः–तकोध घ–(जश) ग गुण। देग्धि दिहन्ति दिहन्तु प्रनि। उपसर्ग पर नेगर्दे से णत्व। देग्धु। अधेक्, अदिग्ध अधिक्षत।

लिह आस्वादने जीभ से रसलेने की वर्तमान कालिकक्रियामे लट् शप लुक् चिन्ह ति, ह्-ढ, त–ध टु–टवर्ण ढोढे लोप। लघूपध। गुण। **लेढि एककर्तकवर्तमानकालिक** रसास्वादन क्रिया। **लीढ** दो कर्त्ता चूस चाटते है लिह तस्। लिह त–घ–ट। ढलोप। पूर्व अण् को दीर्घ। रुत्व विसर्ग। लीढ लिहन्ति। सभी स्वाद लेते है। रस लेने की क्रिया का कर्ता त्व हो सिप्। लिह सि ह्–ढ सकार परे ढ को क। क–ष क्ष।

अलिक्षताम् । अलीढ । अलिक्षावहि अलिह्वहि । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत ।
चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अय दर्शनेऽपि । इकारोऽनुदात्तो युजर्थ । 'विचक्षण-

---

लेक्षि लीढ लढ । थस के थ को ध, तथोर्ध से । लेह्मि लिह्व लिह्मः आत्मनेपद मे त । टित् आत्मनेपदाना टेरे विशेष होगा । शेष क्रिया लीढे लिहाते लिहते । लिक्षे ढ–क लिहाथे लीढवे ढ–ढलोप दीर्घ । लिहे लिह्वहे लिह्महे । अनद्यतन भविष्यकालमे स्वाद लेना हो लुट्–त । तास्, डा । गुण । ह–ढ त–ध ढ । ढलोप । लेढा लेढारौ लेढार. । लेढासि लेढास लेढास्मि लेढाह्वे । स्वाद लेगा । लेक्ष्यति लेक्ष्यत लेक्ष्यन्ति । लेक्ष्यसे लेक्ष्येथे लेक्ष्यध्वे । चाटना क्रिया आज्ञा प्रेरणा आदि का विषय हो लोट् । वह स्वाद ले । लढु लिढात् लीढा लिहन्तु । लीढि सि–हि धि ष्टुत्व ढ ढलोप दीर्घ । लीढात् लीढ यूय लीढ । तुम सभी स्वाद लो । अह लेहानि मैं चाटूं । लेहाव लेहाम । आट् पित् है ङित् नही, गुण हुआ । निषेध नही । आत्मनेपद मे आमेत सूत्र से ए को आम् । लीढा लिह्राता लिक्ष्व लिहाथा लीध्व लेहै लेहावहै । अनद्यतनभूतकाल मे चाटा हो कर्ता मे लङ् ति, शपो लुक् । इकार लोप । अलेह त हल्ङ्यादि तलोप । ह–ढ चर विकल्प ट–ड । आलेट् आलेड अलीढा अलिहन् । आलेट् अलीढ अलीढ । आलेह अलिह्व अलिह्म आत्मनेपद अलाढ आलिहाता अलिहत । आलीढा । आलीढ्वम् अलिहि आलिह्वहि । अलिक्षत लुङ लकार मे भूतकाल समाप्तस्वाद क्रियाकाल शल्–अन्त लिह धातु से च्लि को क्स । अलिक्षत् अलिक्षता अलिक्षन् । अलिक्ष , अलिक्षम् । आत्मनेपद मे अलिक्षत । जब लुग्वा दुहदिहगुह्यत्मनेपदे-सूत्र से क्स का लोप तब अलीढ आलिक्षाता अलिक्षन्त आलिक्षथा अलीढा । अलिक्षध्व अलीढ्वम् । अलिक्षि-विकल्प लुक् मानकर कहा । अलिक्षावहि अलिह्वहि अलिक्षत । द्विष आदि चार स्वरितेत् धातु समाप्त ।

॥१०१७॥ चक्षिङ धातु व्यक्तबाणी (गूढार्थस्य स्पष्टप्रतिपत्यर्थं निर्णये) कठिन से कठिन, भाव समझने का विवरण (व्याख्यान) (विषय साफ खोलने की विधि) अय दर्शने = यह धातु देखने अर्थ मे भी है ।

प्रथयन्'। नुम् तु न। 'अन्ते इदित' व्याख्यानात्। ङकारस्तु 'अनुदात्तेत्व-प्रयुक्तमात्मनेपदमनित्यम्' इति ज्ञापनार्थः। तेन स्फायन्निर्मोकसन्धि–' इत्यादि सिध्यति। चष्टे। चक्षाते। 'आर्धधातुके'। **२४३६ चक्षिङ ख्याञ् २।४।५४॥ २४३७ वा लिटि २।४।५५॥** अत्र भाष्ये

प्रमाण। **विश्वरूपा अभिचष्टे सचीभि** किरणों से पूरे विश्व को देखते है सूर्य भगवान्। पूर्वापर चरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ पर्यातोऽवर विश्वान्यन्यो भुवनानि चक्षे। पूरे विश्व को देखना सिद्ध। इ–उच्चारण का फल बोले कि अनुदात्त इत हो (युच्) प्रत्यय के लिये अनुदात्तेतश्च हलादे का ल्युट् बाधकर युच् करता है। **विचक्षण प्रथयन्** मन्त्र है। वि पूर्वक चक्षधातु से युच् किया। ल्युट् होता लित्स्वर हो जाता है। यदि ऐसा इ इत् से इदितोनुम् क्यो नही, तब कहा (नुम् तु न) क्यो नही, अन्तमे इ इत् होना चाहिये। गो प्रदाने से अन्ते आता है। अन्तमे इदित् नही, न नुम्। ननु अनुदात्त इत् से आत्मनेपद प्राप्त था–ङित् उच्चारण क्यो? वह व्यर्थ होकर बोला कि अनुदातेत् को मानकर हुआ **आत्मनेपद अनित्य** है। जिसका फल परस्मैपद भी होना। तेन=आत्मनेपद की अनित्यता से स्फायन् मे (स्फायी वृद्धौ) अनुदात्त इत् होकर भी लट् के स्थान मे परस्मैपद शतृ आदेश हुआ। आत्मनेपद शानच् नही। चष्टे=गूढार्थ खोलना क्रियावाचक चक्ष धातु से वर्तमानकालिक समझाने के लिए कर्ता मे लट् त, शपो लुक्। स्को सयोगाद्योरन्ते सूत्र से क्ष मे क का लोप। ष शेष। ष्टुत्व **चष्टे चक्षाते चक्षते।** चक्षे थास को से। स्को स कलोप। षढो क। ष को क। षत्व **चक्षाते चढ्वे।** ध्वपरे कलोप, ष को जश्। धत्व। चक्षे चक्ष्वहे॥ २४३६॥

आर्धधातुक की अनुवृत्ति आने पर चक्षिङ् के स्थान मे ख्याञ् आदेश है, आर्धधातुकप्रत्यय परे॥ २४३७॥ वह आदेश लिटि परे विकल्प से हो। अत्र भाष्ये=चक्षिङ ख्याञ् सूत्र के भाष्य मे कहा कि यह आदेश ख्शा है। **असिद्धकाण्डे – पूर्वत्रासिद्धम्** सूत्र के अधिकार में **ख्शाञः शस्य यो वा वक्तव्य** पढा है ख्शा के श को य विधान से पुख्यानं प्रयोग

ख्शादिरयमादेश । असिद्धकाण्डे, 'शस्य यो वा' इति स्थितम् । ञित्त्वात्पद-द्वयम् । चख्यौ चख्ये । चक्शौ चक्शे । 'चयो द्वितीया –' इति तु न, चर्त्वस्या-सिद्धत्वात् । चचक्षे । ख्याता क्शाता । ख्यास्यति ख्यास्यते । क्शास्यति

पुम खय्य, परे से हत्व नही होता । य की असिद्धि से । ञित्वात् ख्या ञित् है स्वरितप्रतिज्ञा । दोनो पद = परस्मैपद आत्मनेपद की । गूढार्थ खोलने क्रियावाचक चक्ष धातु से क्रिया सहित कर्ता परोक्षभूत हो लिट् विकल्प । चक्ष को ख्या आदेश । ख्या ख्या द्वित्व आदि चख्या चखना (आत औ णल) णल को औ परे आ लोप । चख्यतु चख्यु । अनेक कर्तामे व्याख्यात कला की परोक्ष क्रिया । द्वाजनियम से थलि परे वा इट् । चख्यिथ । न इट् । चख्याथ चख्यथुः चख्य । चख्यौ चख्यिव—क्रादि नियम से इट् । आत्मनेपद मे ख्शा आदेश । श को य विधान पक्ष मे त को एश् । चख्ये चख्शाते चख्यिरे । चख्यिषे चख्याथे चख्यिध्वे–ढ्वे चख्यिमहे । जब श को य नही हुआ, तब ख्शा ख्शा चख्शा । औ चख्शौ चख्शतु चख्शु । चख्शे चख्शाते चख्शिरे । जब श को चर्त्व क होगा, तब । चयो द्वितीया शरि) द्वितीय अक्षर ख क्यो नही है ? उत्तर दिया चयो द्वितीया वार्तिक नही लगेगा चर्त्व की असिद्धि से । जब ख्याञ आदेश नही । तब चचक्षे चचक्षिषे चचक्षिध्वे । चचक्षिवहे । ख्याता कलगूढार्थ खोलेगा । ख्यातारौ ख्यातरः । अक्शातासे ख्यास्यसि ख्यास्यामि । त्व क्शास्यसे अह क्शास्ये मै भाव खोलूँगा (अर्थ खोलना आज्ञा प्रेरणा का विषय हो चष्टा चक्षाता, चक्षता चक्ष्व चक्षाथा चड्ढवम् । चक्षै चक्षावहै चक्षामहै । लङ्—बीते भूतकाल का कर्ता अ चक्ष त । शप लुक् स्को से क लोप । त–ट अचष्ट अचक्षाताम् अचक्षत । अचष्टा अचक्षाथाम् अचड्ढवम् । अचक्षि अचक्ष्वहि अचक्ष्महि । हम लोग व्याख्या किये समझाये । पहले ही भाव खोलने के विषय मे आज्ञा निवेदन प्रार्थना की सम्भावना मे लिङ् चक्ष सीत । क्षके क का लोप । स परे ष को क कष = क्ष । चक्षीत चक्षीयाता चक्षीरन् । आशीर्लिङ् मे आर्धधातुकसंज्ञा ख्या आदेश । परस्मैपद । वाऽन्यस्य सयोगादे एत्व विकल्प । ख्येयात् ।

क्शास्यते । अचष्ट । चक्षीत । ख्यायात् ख्येयात् क्शायात् क्शेयात् । २४३८ **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३ । १ । ५२ ॥** एभ्यश्च्लेरङ् । अख्यत् अख्यत । अक्शासीत् अक्शास्त । 'वर्जने क्शाञ् नेष्ट' समचक्षिष्ट, इत्यादि ।

अथ पृच्यन्ता अनुदात्तेत । १०१८ ईर गतौ कम्पने च । ईर्ते । ईराञ्चक्रे । ईरिता ईरिष्यते । ईर्ताम् । ईर्ष्व ईर्ध्वम् । ऐरिष्ट । ईड स्तुतौ ।

क्शासीष्ट । बढिया व्याख्यान विषयक शुभकामना । गूढार्थ खोलने की समाप्त क्रिया के कर्ता मे लुङ् । चक्ष को ख्याञ् आदेश । असिद्ध काण्ड मे (शस्य यो वा) ख्शा आदेश सिद्ध । श को य वा । अख्या च्लि त । (२४३८) **अस्यति—असू क्षेपणे, ब्रूवो वचि, वच परिभाषणे, ख्या प्रकथने** धातुओ से च्लि को अङ् आदेश हो । ङित् होने से आलोप भी । ञित से—दोनो पद आत्मने परस्मै भी । अख्यत् अख्यताम् अख्यन् । अख्य अख्यतम् अख्यत । अख्यम् अख्याव अख्याम । क्शादेश पक्ष, परस्मैपद पक्ष मे च्लि को सिच् । यमरमनमाता सक् च इट् । सलोप दीर्घ अक्शासीत् अक्शासिष्टाम् अक्शासिषु । आत्मनेपद मे च्लि को सिच् । अक्शास्त क्शासाता क्शासत । अख्यास्यत् । अक्शास्यत । व्यक्ता वाणी=गूढार्थ खोलने की समाप्त क्रिया लुङर्थ । **वर्जने** – चक्ष धातुका वर्जन करना, रोक देना अर्थ (उपसर्ग के बलपर) हो तब क्शा आदेश नही होता । यथा समचक्षिष्ट = अवर्जयत् लुङ्का रूप-रोक दिया वर्जन किया मे ख्शा आदेश नही हुआ ।

अथ—इसके बाद पृची सपर्चने धातु तक अनुदात्तेत् आत्मनेपद के अधिकारी धातुओ की साधनिका चलेगी । **ईर गतौ** चलने - कांपना क्रिया अर्थ । स्वेन ईर्ते चलति या सा **स्वैरिणी** । वर्तमान कम्पन या गमन क्रिया के कर्ता मे आत्मनेपद त । टे ऐ । **ईराते ईरते** । वे चलते हैं कांपते हैं । **ईर्षे ईराथे ईर्ध्वे । ईरे ईर्वहे ईर्महे** । ईजादि धातु है ईजादेश्च गुरुमत से आम् **ईराञ्चक्रे** । अनदेखा काल मे गया कँपाया, कृ लिट् अनुप्रयोगादि । **ईरिता ईरिष्यते । ईर्ताम् ईराताम्** ईरताम् । ईर्ष्व ईर्ध्वम् । **ईरै ईरामहै** । लङ् लकार मे आट । आटश्च वृद्धि **एर्त ऐराताम् ऐरत**

ईट्टे। २४३९ ईशः से ७।२।७७॥ २४४० ईडजनोर्ध्वे च ७।२।७८॥ से-ध्वे शब्दयो सार्वधातुकयोरिट् स्यात्। योगविभागो वैचित्र्यार्थं। ईडिषे। ईडिध्वे। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्' ईडिष्व। ईडिध्वम्। 'विकृतिग्रहणेन प्रकृतेरग्रहणात् ऐड्ढ्वम्। १०२० ईश ऐश्वर्य।

ऐश्वर्य। ऐरि ऐर्वहि। ईरीत ईरिषीष्ट। ऐरिष्ट ऐरिषाता ऐरिषत। ऐरिष्ठा ऐरिषाता ऐरिढ्व। ईड स्तुतौ परगुणगान क्रिया वर्तमान हो कर्ता मे लट् ईडते। चर्त्व ष्टुत्व टट। ईट्टे ईराते ईरते ईड—से सार्वधातुक को इट् नही होता अत - (२४३९) (२४४०) ईश इड जन से परे। सेध्वे शब्द परे सार्वधातुक हो इट् हो जाय। शङ्का—दोनो सूत्र एक साथ क्यो नही पढा, तब कहा योगविभाग -सूत्र का अलगाव वैचित्र्यार्थ। से-की अनुवृत्ति, उत्तर मे हो, ध्वे का अपकर्षण पूर्व मे हो इसी विचित्र बोध के लिए अलग पढ़ा। इट् हुआ ईडिषे इडे ईडिमहे। लिट् मे आम् कृ आदि ईजादि होने से। ईडिता ईडिष्यते। परगुण गायेंगे। वह गान आदेश निवेदन का विषय हो कर्ता मे लोट् आमेत। ईट्टाम् ईडाताम् ईडताम् ईडिष्व ईडिध्व। यहाँ इट कैसे ? मे शब्द परे नही है तब कहा एकदेशविकृतस्य=एक अङ्ग की खराबी से जाति नही बदलती, वह अनन्य है अन्य नही। यदि ऐसा ऐढ्वम् मे ध्वे न रहकर ध्वं एकदेशविकृत है, इट क्यो नही ? तब बोले—जहाँ विकृति ली जायगी वहाँ प्रकृति का ग्रहण नही, प्रकृति के एक अङ्ग मे विकार हो वह मान्य। किन्तु जहाँ विकृति आवश्यक है उस विकृति के एकदेश (अङ्ग) मे प्रकृति का ग्रहण नही होता। जैसे पुरुषमानय कहने पर अन्धोऽनन्धो वा पुरुष अनीयते। जब कहा जाय अन्धमानय अन्ध एव आनीयते। न तु अनन्ध। जैसे ध्व के टि को एत्व हुआ, ध्वे बना। प्रकृति मे विकृति सहने लायक है। जब सवाभ्या वामौ से—ए-को अम् हुआ तब विकृति मे विकृति आने से इट् नही हुआ। ईडै ईडामहै। ऐट्ट ऐडाताम् ऐडत। अनद्यतन भूतकाल मे स्तुति किया, गुण गाया। ऐट्ठा ऐडाथाम् ऐढ्वम्। ऐडि ऐडवहि। ईडीत ईडिषीष्ट। ऐडिष्ट ऐडिषाता ऐडिषत। ऐडिष्ठा ऐडिढ्वम्।

ईष्टे। ईशिषे ईशिध्वे। आस उपवेशने। आस्ते। 'दय यासश्च'। आसाञ्चक्रे। आस्व आध्वम्। आसिष्ट। आङ्शासु इच्छायाम्। आशास्ते आशासाते। आङ्पूर्वत्व प्रायिकम्। तेन 'नामोवाक प्रशास्महे' इति सिद्धम्। वस आच्छादने। वस्ते वस्से वध्वे। ववसे। वसिता। कसि गतिशासनयो। कस्ते कसाते कसते। अयमनिदित् इत्येके-कस्ते। तालव्यान्तोऽप्यनिदित्। कष्टे

(१०२०) ईशधातु (ईश्वरस्य भाव ऐश्वर्य) तेजस्वी सम्पत्तिशाली धर्मात्मा बनने की क्रिया वर्तमान कर्ता मे। ईशते। व्रश्चभ्रस्ज—सूत्र से श को ष। ष्टुत्व, त–ट। ईष्टे ईश्वर स्वामी हो रहा है। ईशाते ईशते। इशिषे ईषाथे ईशिध्वे इषे ईशिवहे ईशिमहे। हम सब ईश्वर हो रहे है। ईशाञ्चक्रे। ईशिता ईशिष्यते। ईष्टाम् ईशाताम् इशताम् इशिष्व। ऐशिष्ट ऐशिषाताम् ऐशिषत ऐशिष्ठा। आस धातु का उपवेशन — बैठने का व्यापार वर्तमान हो कर्ता मे ल आदि। शप् लुक्। आस्ते आसाते आसते। आस्से आसाथे आध्वे। धिच सूत्र से सलोप। यूय कर्ता मे वतमान बैठने का व्यापार। आसे आस्वहे आस्महे। हम सब बैठते है। भूनकाल मे उपवेशन क्रिया सहित कर्ता प्रत्यक्ष न हुआ हो, तब लिट् इजादि नही। अत दयायासश्च से आम्। कृ लिट् अनद्यतन भविष्यकाल मे बठना हो, आसिता-लुट् तास ति डा आदि। आसितासे अह आसिताहे। आसिष्यन्ते आसिष्यध्वे आसिष्यामहे। बैठने के विषय मे आदेश निवेदन हो लोट त। एत्व। एत आम्। आस्ताम् आसाताम् आसताम्। आस से। सवाभ्या — सूत्र से ए को व। दो स का श्रवण। आस्स्व आसाथा आध्व धि च सलोप। एत्व होने पर ए को आम्, आमेत से। आसै असावहै असामहै। हम लोग बैठे। अनद्यतन भूतकाल की उपवेशन किया हे कर्ता मे लड् त आट् आदि, शपलुक्। आस्त आसाताम् आसत। आस्था आसाया आध्वम्। तुम लोग बैठे थे। आसि आस्वहि (वह बैठे) स आसीत आसीयास्ताम् आसोरन् आशीर्लिङ। ठहरने की कामना। आसिषीष्ट आसिषीयास्ता आसिषीरन्। भूतकाल मे बैठ चुका हो आसिष्न। षत्व ष्टुत्व। आसिष्ट आसिषाता आसिषत। आसिष्ठा

कशाते । कक्षे । कड्ढ्वे । १०२५ णिषि चुम्बने । निंस्ते । दन्त्यान्तोऽयम् । आभरणकारस्तु तालव्यान्त इति बभ्राम । निंस्से । णिजि शुद्धौ । निङ्क्ते । निङ्क्षे । निञ्जिता । शिजि अव्यक्ते शब्दे । शिङ्क्ते । पिजि वर्णे । सम्पर्चने इत्येके । उभयत्रेत्यन्ये । अवयवे इत्यपरे । अव्यक्ते शब्दे इतीतरे ।

आभिषाथा आसिध्व ढ्त्रम् । आसिष्यत । आङ्-शास् धातुका इच्छानुकूला क्रिया अर्थ । आशा करना । आशास्ते एककर्तृक वर्तमानकालिक इच्छानुकूलव्यापार । आशासाते आशासते आशास्से आशासाथे आशाध्वे । आशासे आशास्वहे आशास्महे । आशासाञ्चक्रे । आशासिता आशा करेगा । आशासिष्यते आशास्ता आशास्त । आशासै आशास्वहै महै । आशासिष्ट आशासिषाता आशासिषत । आशासिष्ठा । तुम आशा कर चुके त्वदभिन्नैककर्तृक भूतकालिक उपवेशनव्यापार । आङ् उपसर्ग होना (प्राय भव) प्रायिक=बहुधा बहुत अश मे । आङ् के बिना भी रूप । नमोवाक नम शब्द का उच्चारण करते है नमः शब्दस्य वचन कुर्महे । धातूनामनेकार्थत्वात् । वच-से घञ् च जो कु वाक । नमस्ते रूद्र मन्यवे इत्यादि नमो वचनम् ॥ २३ ॥ वस धातु का आच्छादन पहिरना परिधान चादर कुर्ता धोती धारणक्रिया वर्तमानकर्ता मे वस्ते वसाते वसते । थास से । तुम पहनते हो । चादर तानते हो । वस्से वसाथे वध्वे धि च सलोप । परोक्ष अनद्यतनकाल मे धारण किया हो लिटस्त एश । वस वस ववसे । न शसददवादिगुणाना–सूत्र के निषेध से एत्व आदि नही । ववसाते ववसिरे । पहनेगा वसिता । अनिट् कारिका मे शप वाला वस मान्य । यहाँ इट् होगा । वसिष्यते । वस्ता वसाता वसताम् । अवस्त परिधान धारण किया । वसीत । वसिषीष्ठ । अवसिष्ट अवसिषाताम् अवसिषत । अवसिष्ठा अवसिषम् । कस धातुका कडे शासन की क्रिया गमन भी । आत्मनेपद टित् को एत्व कसते कस्से । अनिदित्=इकार इत् नही, तब न नुम् । कसते बहुत कडाई करना । किसी के मत मे तालव्य (श) अन्त है । इ-इत् नही । कशते व्रश्चभ्रस्ज श को ष । ष्टुत्व कष्टे कक्षे । थास को से । कश्-से । श-ष (षढो क) षत्व । कष क्ष । कढ्वे । श ष

पिङ्क्ते । पृजि इत्येके । पृङ्क्ते । वृजी वर्जने । दन्त्योष्ठ्यादि । ईदित् । वृक्ते वृजाते । वृक्षे । 'इदित्' इत्यन्ये । वृङ्क्ते । १०३० पृची सम्पर्चने । पृक्ते । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते । सुषुवे । सुषुविषे । सोता सविता ।

जश् ड । ध-ढ एत्व । अकसिष्ट । इसी धातु से कस बना ॥ १०२५ ॥ निस (इदितो नुम्) धातुका चुम्बन (कपोले वक्त्रसभोग) वर्तमान हो निंस्ते निसाते निसते । निंसे—थास से तुम चूमते हो । किसी के मत मे दन्त्य उष्मान्त है । आभरणकार भ्रम से तालव्य उष्मान्त समझ गये । नुम् विसर्जनीय सूत्र की वृत्ति मे दन्त्य पढा है । इदितो नुम् । णो न । निञ्ज धातु का शुद्धि निचोडना । निञ्जते—दशा मे ज को कुत्व ग । चर् क । न को को अनुस्वार पर सवर्ण ङ् । निङ्क्ते निञ्जाते निञ्जत निङ्क्षे निङ्ध्वे । निञ्जे । लिटि मे निनिञ्जे सयोग है न कित् । न नलोप । निञ्जिष्यते निङ्क्ता अनिङ्क्त । निञ्जीत । अनिञ्जिष्ट । शिज धातुका अव्यक्त शिं शिं की आवाज क्रिया वर्तमान हो । शिङ्क्ते शिञ्जाते शिञ्जत शिञ्जिष्यते अशिङ्क्त । अशिञ्जिष्ट पिञ्ज धातु का वर्ण रङ्ग चढाना सपर्चने पककर पीला होना । एक मे दोनो अर्थ अङ्ग अस्पष्ट ध्वनि । किसी ने पिङ्क्ते अपिञ्जिष्ट अपिञ्जिषाताम् अपिञ्जिषत । दन्तोष्ठ वकारादि (ई इत्) वृज का वर्जन—रोकना निवारण करना वर्तमान कर्ता हो । वृज-ते ज-ग, चर क मिलकर वृक्ते—वृजते=वे मना करते है । वृज-से । ज ग क ष क्ष । वृक्षे—तुम रोकते हो । ववृजे अनदेखा काल मे रोका । वर्जिता वर्जिष्यते वृक्ता वृजाता वृजता वृक्ष्व ॥ ३० ॥ पृच का सम्पर्चन पक कर पीला होना । पपृचे । षू धातु का प्राणिगर्भ-जीव का प्रसव करना, गर्भ त्याग की क्रिया । सूते=गर्भत्याग क्रियावाचक षू धातु (धात्वादे ष स) से वर्तमानकालिक प्रसवकर्ता अर्थ मे लट् त । एत्व शपो लुक् । सुवाते सुवते । प्राणी प्रसव क्यो । सूषे सुवाथे सूध्वे । सूवे सूवहे सूमहे । अनदेखा काल मे गर्भत्याग हो चुका हो । परोक्षे लिट् त एश् । द्वित्व सू सू ए ह्रस्व अचोऽञ्णति वृद्धि आव् । षत्व सुषुवे । सुषुवाते सुषुविरे । सुषुविषे सुषुवाथे सुषुविध्वे । सुषुविमहे । क्रादिनियम से नित्य

'भूसुवो –' इति गुणनिषेधः । सुवै । सविषीष्ट । असविष्ट असोष्ट । शीङ् स्वप्ने । २४४१ शीङः सार्वधातुके गुणः ७ । ४ । २१ ॥ 'क्ङिति च' इत्यस्यापवादः । शेते । शयाते । २४४२ शीङो रुट् ७ । १ । ६ ॥ शीङ

इट् । यत स्वरतिसूति के विकल्प इट् का बाधक श्र्युक किति उसका भी बाधक नित्य इट् । आज के भविष्य से भिन्न भविष्य काल मे प्रसव क्रिया हो कर्ता मे लुट् त तास् डा आदि । स्वरतिसूतिसूत्र से पक्ष मे इट् । गुण अवादेश । सविता न इट् सोता । प्रसव करेगी, न भुसुवो से गुणनिषेध नही, सु तिङ के बीच तास के व्यवधान से । सोतारौ सोतार सवितासे सवितासाथे सविताध्वे । इट् विकल्प से भेद । प्रसव करेगी अर्थ मे सोष्यते सविष्यते । आज्ञा का विषय हो कि प्रसव करो । सूता सुवाता सूवता सूष्व सुवाथा सूध्व । सुवै सुवावहै सुवामहै । उत्तमपुरुष का आट् पित् है गुण प्राप्त था, भूसुवोस्तिङ से गुणनिषेध हुआ । एत ऐ । अनद्यतनभूतकाल मे गर्भविमोचन हुआ हो कर्ता मे लङ् त अट् । असूत असुवाता असुवत । असूथा प्रेरणा का विषय हो विधिलिङ् सुवीत सुवीयाता सुवीरन् । आशीर्लिङ् सीयुट सुट् इट् गुण आदि । सविषीष्ट सोषीष्ट सोषीयास्ता । समाप्त प्रसव क्रिया काल मे लुङ् त अट् इट् सिच् असविष्ट असविषाता असविषत । असोष्ट असोष्ठा असोषाथा असोढ्व ॥ ३२ ॥' शीङ् (ङ इत्) धातु का स्वप्न नीद आने से चक्षु-निमीलन, इन्द्रिय शिथिलता अर्थ ।

(२४४१) शीङ् धातु से सार्वधातुक परे रहते गुण हो क्ङिति च के निषेध को बाधकर जो सार्वधातुक आर्धधातुक गुण का निषेधक था । शेते – शयनानुकूल क्रियावाचक शी से वर्तमानकालिक शयनकर्ता मे लट् त । सार्वधातुक गुण प्राप्त था, क्ङिति च से निषेध हुआ । शीङ सार्वधातुके गुण हुआ । शेते । आता परे अय आदेश । शयाते शेरते । शी झ–अत । शी+अते दशा मे । (२४४२) शीङ धातु से परे झ के स्थान मे आदेश अत की रुट् हो । टित् मे अत के आदि मे हुआ । शेरते । शेषे शयाथे शेध्वे । परोक्ष अनद्यतनकालमे नीद आ चुकी हो लिट् त एश । द्वित्व आदि ।

परस्य आदेशस्यातो रुडागम स्यात्। शेरते। शेषे शेध्वे। शये शेवहे। शिश्ये। शयिता। अशयिष्ट।

अथ स्तौत्यन्ता परस्मैपदिन ऊर्णुस्तूभयपदी। यु मिश्रणे अमिश्रणे च। २४४३ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७। ३। ८९॥ लुग्विषये उकारस्य

शि शी ए। यण्। शिश्ये शिश्याते शिश्यिरे। शिश्यिषे शिश्याथे शिश्यिध्वे-ढ्वे। अनद्यतन भविष्यकाल मे नींद आगी हो लुट् त आदि इट् गुण अय। शयिता शयितारौ शयितार, शयितासे शयिताहे। शयन की आज्ञा हो। शेता शयाता शेरता। शेष्व शयाथा शेध्व यूयमभिन्नेकर्तृका आज्ञाविषयिणी शयनक्रिया। शयै शयावहै शयामहै। अशेत अशयाता अशेरत। अशेथा अशयाथा अशेध्वम्। अशयि अशेवहि। शयनकी सम्भावना म शयीत शयीयाता शयीरन्। शयिषीष्ठा शयिषीयास्था। शयिषीध्व। लुङ लकार मे शयन सम्पूर्ण हो। अशी इ सत। गुण अय आदि। अशयिष्ट अशयिषाता अशयिषत अशयिष्ठा अशयिषाथाम् अशयिध्वम्। अशयिषम् अशयिष्वहि-महि।

अथ कौति धातु तक परस्मैपदसाधनिका। उर्णुधातु दोनो पद मे। स्वरित होने से (१०३३) युधातु का मिश्रण-मिलाना अमिश्रण अलग करने की क्रिया (२४४३) उतो-लुक के विषय मे उकार को वृद्धि (औ) हो पित् (तिप्-सिप् मिप्। और हलादि सार्वधातुक परे। अभ्यास-सज्ञा हुइ हो तब न वृद्धि, नाभ्यस्तस्य पिति सार्वधातुके की अनुवृत्ति। दर्शन का अभाव लुक् है। परमे दिखाई नही देगा, अत लुकि मे विषय सप्तमी। उत क्यो? एति एषि। लुकि क्यो? यवानि यवाय। अपित परे वृद्धि न हो अत पित् पढा। यौति मिलाना, पृथक् करना क्रियावाचक युधातु से वर्तमान मिलाने या अलग करने के कर्ता मे लट् ति शप लुक्। युति। ऊतो वृद्धि औ। यौति हलादि पिदस्ति। गुण बाधित्वा वृद्धि। दो कर्ता हो तस् पित् नही, न वृद्धि। युत युवन्ति। पित् नही न वृद्धि। अपित् सार्वधातुक ङित् है जिससे गुण निषेध। तब अचि श्नु से उवङ्। यौषि युथः युथ। तुम सब झुण्ड मे मिलो या समुदाय से अलग होते हो।

वृद्धि स्यात्पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य । यौति । युत । युवन्ति । युयाव । यविता । युयात् । इह 'उतो वृद्धि –' 'न' भाष्ये 'पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न, इति व्याख्यानात् । विशेषविहितेन ङित्त्वेन पित्त्वस्य बाधात् । यूयात् ।

यौमि युव युम । हम लोग मिलते है अलग होते हैं । वह क्रिया क्रिया सहित कर्ता मे न देखी गयी हो । परोक्षे लिट् आदि । यु युअ द्वित्व । दूसरे यु को णि परे औ वृद्धि, आव् । **युयाव युयुवतु युयविथ युयाव युयव** । आगामी भविष्यकाळ मे मिश्रण क्रिया हो । लुट् आदि वलादि इट् । यु इ ना । प्राप्त उवङ् को बाधकर परत्वात् गुण अवादेश **यविता यवितारौ यवितार** । यवितासि यवितास्मि अलग करने वाला हो । **यविष्यति** । यविष्यथ यविष्याम । वह क्रिया आज्ञा प्रेरणा निवेदन का विषय हो लोट् ति वृद्धि । एरु । **यौतु युतात् युता युवन्तु** । हि पित् नही । न वृद्धि । **युहि युतात् युत युत** । यवानि यवाव यवाम । आडुत्तमस्य पिच्च । वृद्धि क्यो नही ? हलादि न होने से । जो पित् है ङित् नही होता । निषेध नही लगा । गुण हुआ । अनद्यतने समाप्त मिश्रण क्रिया भूतकालिक कर्तरि लङ् ति इलोप, शप लुक् । अट् वृद्धि **अयौत् अयुता अयुवन्** । **अयौ अयुत अयुत** । तुम लोगो ने अलग किया अहम् अयवम् अयुव । प्रवर्तना सम्भावना मिलाने की हो **युयात्** । यहाँ वृद्धि क्यो नही ऊतो वृद्धिर्न । यासुट सहित तिप् पित् है । इसलिए कि भाष्य मे कहा गया जो पित् है ङित् नही जो ङित् है वो पित् नही । अत न वृद्धि । विशेषविधान से ङित् पित् को बाधता है । इसलिए ङित् से गुणनिषेध निर्बाध है ।

अभ्यस्त क्यो ? योयोति रोरोति । सार्वधातुक क्यो ? आशीर्लिङ यूयात् । आर्धधातुक है न वृद्धि । अकृत्सार्वधातुकयो से दीर्घ **यूयात् यूयास्ता यूयासु यूया । यूयास** । मिश्रण या अमिश्रण क्रिया के प्रति शुभ कामना लिङर्थं । समाप्त मिश्रण या अमिश्रण क्रिया के कर्ता मे लुङ् ति अट् आदि । अ यू इ स ईत् । सिचि परे वृद्धि औ आवादेश । इट ईटि सलोप दीर्घ **अयावीत् अयाविष्टा अयाविषु** । अयावी अयाविष्ट अयाविष्ठ । अयाविषम् अयाविष्व । अयविष्यत् । अयविष्यता अयविष्यन् ।

अयावीत् । रुशब्दे । **२४४४ तुरुस्तुशम्यम सार्वधातुके ७ । २ । ९५ ॥**
एभ्य परस्य सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङ ईड वा स्यात् । 'नाभ्यस्तस्य' इत्यतोऽनुवृत्तिसम्भवे पुन सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थम् । रवोति–रौति । रुवीत – रुत । हलादे किम् । रुवन्ति । तिङ किम् । शाम्यति । सार्वधातुके किम् ।

कर्ता मे मिलाने की क्रिया का कार्यकारण भाव । रु धातु का शब्द – रोना कलरव करना वर्तमानकाल कर्ता मे लट् ति शप लुक् । रु ति ।

(२४४४) तुरुस्तु शमि अम (समाहारद्वन्द्व पञ्चमी एकवचन) इन धातुओ से परे हलादिसार्वधातुक तिङ् को ईट् विकल्प से हो । उतो वृद्धि से हलि आया । भूसुवो से तिडि, ब्रुव इट्, यडो वा से वा अनुवर्तन्ते । शङ्का—नाभ्यस्तस्याचि सूत्र से सार्वधातुक को बुला लेते पुन सूत्र मे सार्वधातुक क्यो पढा ? पिति की अनुवृत्ति रोकने लिये । क्योकि **एक योगनिर्दिष्टाना सहैव प्रवृत्ति** । एक सूत्र मे पढे शब्दो का एक साथ आना एक साथ जाना भी होता है । अत कहा **सार्वधातुक ग्रहणम् अपिदर्थम्** । इस सूत्र से ईट् । गुण अव आदेश । **रवीति** एककर्तृकवर्तमानकालिक रोना कलरव करना क्रिया । इट पक्ष मे हलादि नही न वृद्धि । जब न इट् तब हलादि है । उतो वृद्धि **रौति रुवीत रुत** । इट पक्ष मे उवङ् । न इट् रुत अपित् है न वृद्धि । **रुवन्ति** झि को अन्त आदेश करने पर हलादि नही रहा, न ईट् किन्तु उवङ् । हलादिग्रहण का फल यही है । तिङ् क्यो पढा ? शाम्याति मे श्यन् है जो तिङ् नही ईट न हो । सार्वधातुक क्यो ? आशीर्लिङ आर्धधातुक है ईट् न हो । इसीलिये रुयात् अकृत् सार्वधातुकपरे दीर्घ हुआ । अम् अभ्यमीति । आपिशली आचार्य वैदिक सूत्र मानते हैं । **विध्यादौ**=आज्ञा निमन्त्रण आमन्त्रण सम्प्रश्न प्रार्थना का विषय आवाज करना हो रुयात । हलादि पिति सार्वधातुक है विकल्प ईट् । रुवीयात् । **अरावीत्** । भूतकालिक रुदन क्रिया के कर्ता मे लुङ ति । रु + ति इट आदि । अ रु इ स् ईत् । वृद्धि औ—आव । इट ईटि सलोप । दीर्घ आदि । **अराविष्टाम् अराविषु । अरावीः अराविष्टम्** अराविष्ट । अराविषम् अराविष्म । हम सब शब्द, कोलाहल किये ।

आशिषि स्यात् । विध्यादौ तु रूयात्-रुवीयात् । आरावीत् । अरविष्यत् । 'तु' इति सौत्रो धातुर्गतिवृद्धिहिंसासु । अय च लुग्विकरण इति स्मरन्ति । तवीति तौति । तुवीत तुत । तोता । तोष्यति । १०३५ णु स्तुतौ । नौति । नविता । टुक्षु शब्दे । क्षौति । क्षविता । क्ष्णु तेजने । क्ष्णौति ।

ननु धातुपाठ मे तु नही पढा । तुको इट विधान कैसे ? तब कहा सूत्र मे तु पढे जाने के सामर्थ्य से । ईट विधान से धातु मान्य । किन अर्थों मे गति–गमन वृद्धि वर्धन, हिंसा-कष्टदान अर्थ मे व्याख्यान से । ननु शप के व्यवधान मे सार्वधातुक तिङ परे नही ईट् कैसे ? तब कहा **अयञ्च लुग्विकरण**–शप लुक् होने पर ईट् विधान होगा, विधान ही इट होने मे बीज है । अत (शमीध्वे) वेद मे शप लुक हुआ । रुधातुवद् रूप । तु ति । ईट् गुण **तवीति** । जब न इट उतो वृद्धि **तौति** । गति वृद्धि हिंसा के वर्तमानकालिक दो कर्ता हो तस् ईट उवङ् **तवीत तुत तुवन्ति** । **तवीसि तौसि तवीथः तौमि** । अनिट् धातु है । **तोता तोतारौ तोतार**ः । वृद्धि हिंसा करेंगे तोष्यामि । अतावीत् अतविष्यत् ॥ ३५ ॥ **णु धातु** का स्तुति-परगुणगान प्रशसा । सेट् णोपदेश है । **नौति नुत नुवन्ति** वे नमन-नमस्कार करते हैं । नमस्कर के अधिक गुणवान होने । **नौति नुथः नुथ । नौमि नुव नुम** वयमभिन्नवर्तमानकालिक नमनक्रिया । **नुनाव नुनवतु**ः । **नविता नवितासि नवितास्मि** । नविष्यति नविष्यत नविष्यन्ति । नमन करेंगें । **नौतु अनौत् अनुताम् अनुवन्** । अनौ अनुतम् अनुत । अनवम् अनुव अनुम । नुयात् । नूयात् नूयास्ता । नमन क्रिया समाप्त हो कर्ता मे लुङ । **अनावीत् अनाविष्टा अनाषि**ु । अनावी अनाविष्ट अनाविष्ट । अनाविषम् अनाविष्व अनाविष्म । टु इत् क्षु का शब्द करना । सेट् । यु धातुवत् रूप । **क्षौति चुक्षाव** क्षविष्यति **अक्षावीत्** । क्ष्णौति क्ष्णुत क्ष्णुवन्ति । **अक्ष्णावीत्** । ष्णु (षोपदेश) धातु आदि ष स । निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि अपाय । कारण हटने पर काय समाप्त । **स्नौति स्नुत स्नुवन्ति** पसीझता है । वह पसीझना क्रिया सहित कर्ता न देखा गया हो लिट द्वित्व आदि **सुष्णाव स्नविता स्नविष्यति स्नविष्यत स्नविष्यन्ति** । अस्नावीत् । अस्नाविष्टा

क्ष्णविता। ष्णु प्रस्रवणे। स्नौति। सुष्णाव। स्नविता। स्नूयात्। ऊर्णुञ् आच्छादने। २४४५ ऊर्णोतेर्विभाषा।७।३।९०॥ वा वृद्धि स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। 'ऊर्णौति–ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते। ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्। २४४६ नन्द्रा.

अस्नाविषु। अस्नावी अस्नाविष्ट अस्नाविष्ट अस्नाविषम्॥ ३९॥ ऊर्णुञ् धातु का आच्छादन छप्पर, छाजन, ढँकना अर्थ। विशेष कर ऊन पहिनने अर्थ मे।

(२४४५) ऊर्णोति=ऊर्णु धातु जो उभयपदी सेट् है। उसे विकल्प वृद्धि हो, हलादि पित (तिप्, सिप्, मिप्) सार्वधातुक परे रहते। उतोवृद्धिर्लुकि से नित्य वृद्धि प्राप्त थी विकल्प के लिये सूत्र। उतो वृद्धिसे हलि आया। नाभ्यस्तस्य से पिति सार्वधातुक आया। हलादि क्यो पढा - ऊर्णवानि अजादि परे वृद्धि न हो। पिति क्यो ? ऊर्णुत वृद्धि न हो, पित परे नही है। सार्वधातुक क्यो ? ऊर्णुयात्। ऊर्णौति आच्छादनार्थक ऊर्णु धातु से ति। शप लुक्। विकल्प वृद्धि। पक्ष मे गुण। ऊर्णुत आच्छादन क्रिया के दो कर्ता तस्। पित् नही, न वृद्धि। झि के अन्ति होने पर उवङ्। यह धातु स्वरित है। दोनो पद। आत्मनेपद मे लट् त टरे। ऊर्णुते। आता परे उवङ् टि को एत्व। झ की अत्। ऊर्णुवते। ऊर्णौषि। ऊर्णुसे ऊर्णौमि, ऊर्णुवे। ऊर्णु धातु अनेकाच् है कास्यनेकाच से आम् प्राप्त हुआ। (वा०) ऊर्णु धातु के आम् नही होता जो ईजादे या कास्यनेकाच से प्राप्त था। क्योकि ऊर्णोर्तेनुवद्भाव-अनेकाच मे एकाच के अतिदेश से आम् नही होगा। परोक्षे लिट् ति णत्व। ऊर्णु अ दशा मे अजादि धातु के द्वितीय एकाच की द्वित्व हो। रेफ सहित नु की द्वित्व प्राप्त उसका बाधक सूत्र॥ २४४६॥ नन्द्रा=अच से परे सयोग के आदि के न द र को द्वित्व नही होता। एकाचोद्वे से द्वे, अजादेर्द्वितीयस्य आये (अचचासौ आदिश्च) अजादि। ननु णु को द्वित्व होगा दोनो खण्ड मे ण सुनाई पड़ेगा। तब बोले—नुशब्दस्य=केवल नु को द्वित्व होगा णत्व की असिद्धि से। रेफ को द्वित्व का निषेध हो चुका। धातुपाठ मे नु पढा था

सयोगादय । ६ । १ ३ ।। अच परा सयोगाद नदरा द्विन भवन्ति । नुशब्दस्य द्वित्वम्, णत्वस्यासिद्धत्वात् । 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' इति त्वनित्यम् 'उभौ साभ्यासस्य' इति लिङ्गात् । ऊर्णुनाव ऊर्णुनुवतु । ऊर्णुनुवु । **२४४७ विभाषोर्णोः** । १ । २ । ३ ।। इडादित्यप्रत्ययो वा

णत्व करके उर्णू बना । द्वित्व की दशा मे णत्व असिद्ध होगा । शङ्का-पूर्वत्रासिद्धीय—अष्टाध्यायी क्रम मे पूर्वसूत्र की अपेक्षा परशास्त्र (णत्व) असिद्ध होता है । किन्तु द्वित्व की दशा मे असिद्ध नही होता । इस परिभाषा के बलपर णत्व असिद्ध कैसे ? समाधान—उक्त परिभाषा अनित्य है । उभौ साभ्यासस्य के प्रमाण से । अयम् — अभ्यास सहित धातुके उपसर्गस्थ रष से परे दोनो खण्ड के नकार को ण हो । यथा प्राणिणत् । अनिते सूत्र से णत्व होनेपर **पूर्वत्रासिद्धीयमद्विवचने** णत्व के असिद्धिका अभाव जानकर णिको द्वित्व । दोनो दल मे ण रहेगा तब उभौ साभ्यासस्य व्यर्थ होकर परिभाषा की अनित्यता मे प्रमाण बनेगा । णत्व असिद्ध होगा । नु को द्वित्व । पहले न को रषाभ्या से णत्व । दूसरे न को अट्कुप्वाङ् से णत्व नही, उभौसाभ्यासस्य प्रमाण से । णल णित्परे वृद्धि । **उर्णुनाव** । अतुस् परे ऊवङ् । उस् परे भी ।

(२४४७) **विभाषा**—ऊर्णु धातुमे परे इट् आदि प्रत्यय ङित् विकल्पसे हो गाङकुटादिभ्य से ङित्, विज इट् से ईट् आया । णलपरे वलादि इट् को ङित् होने से गुणनिषेध होगा । अत उवङ् । जब न ङित् तब गुण अव् । ऊर्णुनुवतु ऊर्णुनुवु ऊर्णुव ऊर्णुनुविम—नविम । लुट्लकार मे तास् को इट् होने पर ङित् पक्ष मे उवङ् विपक्ष मे गुण । अव । ऊणविष्यति ऊर्णुविष्यति लोट् लकार मे ति एरु । ऊर्णोतेविभाषा से विकल्प वृद्धि । उर्णुतात् उत्तम-पुरुष॰मेर्नि । आट् गुण अवादेश । ऊर्णवाम । एत ऐ । ऊर्णवावहै ऊर्णवामहै । लङ् लकार मे आ ऊर्णु त् । आटश्च वृद्धि । ऊर्णोतेर्विभाषा से वृद्धिविकल्प । पक्ष मे गुण प्राप्त, उसे बाधकर (२४४८) **गुणो**—ऊर्णुधातुको गुण हो अपृक्त (एक अल् अक्षर) हलादि पित् और सार्वधातुक परे । वृद्धि को बाधकर । नाभ्यस्तस्य से पित् और सार्वधातुक । उतो वृद्धि से हलि आया ।

डित्स्यात्। ऊर्णुनुविथ। ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता। ऊर्णविता। ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै **२४४८ गुणोऽपृक्ते ७।३।९१॥** ऊर्णोतेर्गुण स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवाद और्णोत् और्णोः। ऊर्णुत ऊर्णुया इह वृद्धिर्न। ङिच्च पिन्न' इति भाष्यात्। ऊर्णुयात्। ऊर्णविषीष्ट–ऊर्णुविषीष्ट। और्णुवीत् और्णुविष्टाम्। **२४४९ ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६॥** इडादौ सिचि परस्मैपदे परे वा वृद्धिः स्यात्। पक्षे गुण। और्णाविष्टाम्। और्णाविषु। और्णवीत् १०४० द्यु अभिगमने। द्यौति।

इससे गुण हुआ। **और्णोत् और्णुताम् और्णुवन्।** सिप्के स को रुत्व विसर्ग। **और्णुतम् और्णुत और्णवम्।** विधिलिङ यासुट्। **ऊर्णुयात्** मे विकल्प वृद्धि क्यो नही ? तब कहा—**इह वृद्धिर्न** क्योकि जो डित् है, वह पित् नही। इस भाष्य प्रमाण से यासुट् डित् है पित् नही होगा। न वृद्धि। यदि ऐसा गुण निषेध भी न हो ? तब ङिच्च पिन्न पढने से डित् बना रहेगा। आशीर्लिङ मे सार्वधातुकयो से दीर्घ। यासुट् सुट इट् गुण अत्। जब विभाषोर्णो से ङित् पक्ष मे गुणनिषेध। तब उवङ्। लुङ्लकार मे आच्छादनक्रिया का समासकाल परस्मैपद। और्णु-ईत्। दशामे ङित् पक्षे गुण नही। उवङ्। **और्णुवीत्** जब ङित् नही नित्यगुण प्राप्त (२४४९) **ऊर्णोते—विभाषा**– इडादि सिच् परस्मैपद परे विकल्प से वृद्धि हो जाय। पक्ष मे गुण भी। सिच वृद्धि परस्मैपदेषु की नेटिमेइट् अनुवृत्ति। वृद्धि पक्ष मे आव आदेश। गुण पक्ष मे अव्। **और्णवीत्।** अस्तिसिचोऽपृक्ते। आत्मनेपद मे और्णविष्ट और्णुविष्ट। और्णविष्यत् और्णुविष्यत् (१०४०) **द्यु धातु** का अभिगमन सन्मुख चलना अर्थ। **द्यौति** सामने चलता है। उतोवृद्धिलुकि हलि से वृद्धि। सार्वधातुक और लिटि मे यु धातुवत् रूप। द्योष्यति द्योष्यत द्योष्यन्ति। द्यौतु अद्यौत्-द्युयात् अद्यौषीत्। **षु धातु** का प्रसव=परिचय पहचान ईश्वरभाव स्वामित्व अर्थ। षोपदेश अनिट्। यु धातु तुल्यरूप। **सौति सुत सुवन्ति।** प्रसव करते है। स्वामी बनता है। **सौषि सुथ सुथ। सौमि सुव सुम। सुषाव सषुवतु सुषुवु। सुषविथ सोता सोतारौ सोतार। सोष्यति सोष्यत सोष्यन्ति।** प्रसव करेगा। ईश्वर

धाता। षु प्रसवैश्वर्ययो । प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम्। सोता। असौषीत्। कु शब्दे। कोता। स्टुञ् स्तुता। स्तौति स्तवीति। स्तुत–स्तुवीत। स्तुत। स्तुवीते। 'स्तुसुधूञ्भ्य –' इतीट्। अस्तावीत्। 'प्राक्सिता इति षत्वम्। अभ्यष्टौत्। सिवादीना वा पर्यष्टौत्—पर्यस्तौत्। १०४४ ब्रूञ् व्यक्ताया वाचि।

२४५७ ब्रुव पञ्चानामादित आहो ब्रुव । ३।४।८४॥ ब्रुवो लट

बनेगा। सौतु सुतात् सुता सुवन्तु। असौत् असुताम् असुवन्। असौ असुतम् असुत। असौम् असुव असुम। सूयात्। असौषीत् असौष्टाम् असौषु। असौषी असौष्टम् असौष्ट। असौषम्। कु का शब्द आवाज करना। कौति कु-कू करता करता है। कुत कुवन्ति। कौषि कुथ कुथ। कौमि कुव कुम। चुकाव कोता कोष्यति। अकौषीत्। ष्टुञ् स्तुतौ दोनो अनिट् धातु आदि ष स। निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि अपाय' पर गुण गान स्तुति है। स्तु + ति। तुरुस्तु शम्यम सार्वधातुके सूत्र से इट् पक्ष मे गुण अव्। स्तवीति। जब न इट् तब उतो वृद्धि (लुकि हलि) स्तौति तस् परे भी इट् पक्ष मे उवङ् स्तुवन्ति स्तौषि स्तवीषि स्तुथ स्तुवीथ स्तौमि स्तुव स्तुम। आत्मनेपद मे लट् लकार मे इट् विकल्प जानकर इट् पक्ष मे उवङ्। स्तुवीते। न इट् स्तुते स्तुवाते स्तुवते। स्तुषे स्तुवीषे स्तुवाथे स्तुध्वे। स्तुवे स्तुमहे स्तुवीमहे। लिट् लकार मे स्तुति क्रिया सहित कर्ता न देखा हो तिप् णल् आदि। तुष्टाव तुष्टुवतु क्रादि नियम से थलि परे न इट्। तुष्टोथ तुष्टुवथु। तुष्टाव तुष्टुम। आत्मने पद मे तुष्टुवे। लिटस्त एश्। तुष्टुवाते तुष्टुविरे। स्तोता स्तोष्यति–ते। स्तुति करेगा। अह स्तोष्ये स्तोष्यामि। पर गुणगान आज्ञा प्रेरणा का विषय हो लोट्। स्तुता स्तुवन्तु स्तुहि। स्तुतात् स्तुत स्तुवीत। स्तवानि स्तवै स्तवावहै। लङ् अस्तौत् अस्तुताम् अस्तुवन्। अस्तौ अस्तुतम् अस्तुत अस्तवम् अस्तुव अस्तुम। पक्ष मे इट् उवङ् आत्मनेपद मे अस्तु त अस्तुवीत अस्तुवाताम् अस्तुवत। विधिलिङ् मे स्तुयात् स्तुवीयात्। स्तोषीष्ट स्तोषीयास्या स्तोषीरन्। लुङ् लकार मे स्तुसु-धूञ्भ्य से इट् अट् आदि। अस्तु इतईत् इटईटि सिच् लोप। सिच् वृद्धि-

परस्मैपदानामादित पञ्चाना णलादय पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेश । अकार उच्चारणार्थं । आह । अहतु । आहु **२४५१ आहस्थ** ८ । २ । ३५ ॥ झलि परे । चर्त्वम् । आत्थ आहथु । **२४५२ ब्रुव ईट्** ७ । ३ ९३ ॥ ब्रुव परस्य हलादे पित ईट स्यात् । आत्थ इत्यत्र स्थानिवद्भावात्प्राप्तोऽय 'झलि' इति थत्वविधानान्न भवति । ब्रवीति । ब्रूत । ब्रुवन्ति । ब्रूते । आर्धधातुकाधिकारे **२४५३ ब्रुवो वचि** २ । ४ । ३ ॥ उवाच । ऊचतु ।

परस्मैपदेषु औ–भाव आदेश । अस्तावीत् स्ताविष्टा स्ताविषु स्तावी स्ताविष्ट स्ताविष्ट । स्ताविष स्ताविष्व स्ताविष्म । आत्मनेपदमे इट् नही नही होगा । सिच् गुण षत्व ष्टुत्व अस्तोष्ट स्तोषाता स्तोषत । स्तोष्ठा स्तोषाथा स्तोढ्वम् । अट् के व्यवधान मे अभ्यष्टौत् में प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि से षत्व । सिवादिगणमे पढा हो विकल्प से षत्व ।

ब्रूञ् व्यक्तायां स्पष्ट बोलने की क्रिया, उभयपदी । वर्तमानकालिक कर्ता मे लट् ब्रू + ल् । (२४५०) ब्रुव = ब्रू धातु से परे लट् के स्थान मे परस्मैपद के आदि के पाँच (तिप् तस् झि सिप् थस्) के स्थान में णलादय = णल् अतुस् उस् थल् अथुस् ये पाँच आदेश हो, ब्रू के स्थान मे आह आदेश हो । अकार का फल उच्चारण है । अभी कहेगे । आह ब्रू धातु से लट् तिप् णल् ब्रू को आह आदेश । आह थ । दशा मे होढ से ह को ढ प्राप्त (२४५१) आह के अन्त्य अल् ह को थ हो, झलिपरे । थ को चर्त्वं आत्थ । तुम स्पष्ट कहो । यदि अकारान्त होता तब अकार को थ होता । जब णलादि पाँच नही हुए तब ब्रू ति दशा मे ॥ २४५२ ॥

ब्रुव–ब्रू धातु से परे हलादि (हल् प्रत्याहार के अक्षर अदिमे हो ।) ऐसे पित् = प इत् को ईट् हो नाभ्यस्तस्य से पित् । उतोवृद्धि से हलि । शका—आत्थ प्रयोग मे स्थानिवद्भाव से आह में ब्रू मानकर इससे परे थको ईट् क्यो नही ? झलिपरे थकार विधान के सामर्थ्य से । आहस्थ झलिपरे थत्व विधीयते । इट् होनेपर णलादि नही रहेगा । थ आदेश नही होगा । अत आत्थ इत्यत्र इट् न भवति । ईट् गुण अवादेश करके **ब्रवीति ब्रूत ब्रुवन्ति** । ब्रवीषि ब्रूथ ब्रूथ । ब्रवीमि ब्रूव ब्रूम । लट् के

ऊचु । उवचिथ–उवक्थ । ऊचे । वक्ता । ब्रवीतु—ब्रूतात् । 'ङिच्च' इत्यपित्वादीण्न । ब्रवाणि । ब्रवै । ब्रूयात् । उच्यात् । ब्रूयाता । उच्याता

आत्मनेपद मे **ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते**। ब्रूषे ब्रुवाथे ब्रूध्वे । ब्रुवे ब्रूवहे–महे । आर्धधातुक के अधिकार मे (२४५३) **ब्रुवो**=ब्रू के स्थान मे वचि आदेश हो आर्धधातुक परे। इकार उच्चारणार्थ । **उवाच**–स्पष्ट बोलना क्रिया वाचक ब्रू धातु से अनद्यतन परोक्ष भूतकालिक बोलना क्रिया के कर्ता मे लिट् ति । आर्धधातुकसंज्ञा । ब्रू स्थाने वचि आदेश । णल् वच अ । द्वित्वे ववच अ, लिटि अभ्यासस्य सम्प्रसारणे उपधा वृद्धि । **उवाच ऊचतु** । दो कर्ता हो वच अतुस् असयोगात् लिट् कित् होता है । द्वित्व के पहले कित्परे जानकर वचिस्वपि यजादीना सम्प्रसारणे । उच अतुस् । द्वित्व हलादिशेष सवर्णदीर्घ । (असवर्ण परे अभ्यास को उवङ् होता है) वचि धातु अनिट् मे पढा है । भारद्वाज नियम से थलि परे वा इट् । **उवचिथ** । द्वित्व के बाद अभ्यास को सम्प्रसारण । यदा न इट् चो कु च को क **उवक्थ ऊचथु ऊच । उवाच उवच** ऊचिव ऊचिव । क्रादि नियम से इट् । आत्मनेपद मे त को एश् कित्परे है । ब्रू के स्थान मे वचि के व को वचि-स्वपियजादीना से सम्प्रसारण 'उ' करके द्वित्व । सम्प्रसारण दीर्घ । **ऊचे ऊचाते ऊचिरे । ऊचिषे ऊचाथे ऊचिध्वे** । ऊचे ऊचिवहे–महे । क्रिया सहित दशा मे कर्ता प्रत्यक्ष न हो । भविष्यकाल मेबोलेगे ब्रू–ता । वच आदेश च को कुत्व क । वलादि इट् का एकाच उपदेशे अनुदात्तात् से निषेध । **वक्ता वक्तारौ वक्तार** । वक्तासि वक्तासे वक्तासाथे वक्ताध्वे । वक्तास्मि वक्ताहे वक्तास्महे । वच स्यति-च कुत्व क षत्व कष=क्ष । **वक्ष्यति वक्ष्यत वक्ष्यन्ति** । वक्ष्यसे वक्ष्येथे वक्ष्ध्वे । वक्ष्यामि वक्षे वक्ष्यावहे । विधि प्रेरणा आशी॰ का विषय स्पष्ट बोलना हो कर्ता मे लोट् ति । ब्रुव ईटि । हलादि पित् देखकर ईट् । ब्रु इ ति । उवङ् एरु । **ब्रवीतु** तुह्योस्तातङ् **ब्रूतात्** । शङ्का = तिप् स्थाने तातङ् पित् है । ब्रुव इट आगम क्यो नही, उत्तर दिया **ङिच्च पिन्न** जो ङित् हो वह पित् नही होता । न पित् न ईट् **ब्रूता ब्रूवन्तु** ब्रूहि **ब्रूत–ब्रूत** मैं बोलूँ अह ब्रवाणि । ब्रू आनि । आट पित् है ङित् नहीं

'अस्यतिवक्ति' इत्यङ्। २४५४ वच उम् ७।४।२०॥अङि परे अवोचत्। अवोचत।

अथ शास्यन्ता परस्मैपदिन। इङ् त्वात्मनेपदी। १०४५ इण् गतौ। एति। इत। २४५५ इणो यण् ६।४।८१॥ अजादौ प्रत्यये परे।

गुण निषेध नही किन्तु गुण। अव्। णत्व। ब्रवाव ब्रवाम। आत्मनेपद मे आमेन एकार को आम्। ब्रुवाता ब्रुवता ब्रूष्व ब्रुवाथा ब्रूध्व ब्रवै। आट पित् है। ङित् नहीं। गुण होगा। ब्रवावहै–महै। बीते भूतकाल मे बोल चुका हो कर्तरि लङ् ति ईकार लोप अट् ब्रूव ईट् गुण, अव। अब्रवीत् अब्रूताम् अब्रुवन्। अब्रवी अब्रूतम् अब्रूत। अब्रवम् अब्रूव अब्रूम। विधिलिङ्। बोलने की सम्भावना निवेदन, प्रार्थना ब्रूयात् ब्रूयता ब्रूयु। ब्रूया ब्रूयात ब्रूयात। ब्रूयास ब्रूयस्म ब्रूयास्व। आशीलिङ—ब्रूयास्त वचि आदेश लिङाशिषि से कित्। वचि स्वपिय-जादीना से सम्प्रसाराण उच्यात् उच्यास्ताम् उच्यासु। उच्या उच्यास्तम उच्यास्त। उच्यासम्। आत्मनेपद मे वच सी सत्। च को क। षत्व क ष = क्ष आदि वक्षीष्ट वक्षीयास्ता वक्षीरन् वक्षीष्ठा। वक्षीयास्था वक्षीध्व वक्षीय वक्षीवहि। कित् नही, न सम्प्रसारण। लुङ् लकार मे, च्लि सि। वचि आदेश। अवच सत्। दशा मे अस्यतिवक्ति ख्यातिभ्यो अङ्। सिच को अङ् हुआ अवच अत् (२४५४) वच उम् अङ् परे वचका उम् आगम। मित अन्त्य अच का अवयव होता है। आद्गुण अवोचत् अवोचताम् अवोचन्। अवोच अवोचतम् अवोचत. अवोचम् अवोचाव अवोचाम। आत्मनेपद मे अवोचत अवोचेता अवोचन्त अवोचथा अवोचेथा अवोचध्व अवोचवहे। अवक्ष्यत्–त।

अथ शासु अनुशिष्टौ तक परस्मैपद शैली की साधनिका। इङ् अध्ययने ङ् इत् आत्मनेपद (१०४५) ण इत् इधातु का गति—जाना या आना अर्थ। एतु एतु प्रिय सखि ? से आना अर्थ। इणो यण् के विशेषण के लिए णकार पढा ? एति—गत्यर्थवाचक इधातु से वर्तमान का लक-गमनकर्ता अर्थ मे लट् तिप्। शपोलुकि। पित् है ङित् नही, न निषेध किन्तु

एति । इत (२४५५) इणो यण् ६।४।८१। अजादौ प्रत्यये परे। इयडोपवादः। यन्ति। इयाय। (२४५६) दीर्घ इण किति ७।४।६९। इणोऽभ्यासस्य दीर्घं स्यात्किति लिटि। ईयतु ईयु। इययिथ—इयेथ। ऐत्।

गुण। एति इत द्विकतृकवतमानकालिक गमनागमम क्रिया। द्विवचन तस् इत पित् नही डित है, गुणनिषेध हुआ। यन्ति वे जाते है। झोन्त, इ-अन्ति ङित् है गुणनिषेध तब इयङ् प्राप्त उसका भी बाधक सूत्र—

।२४५५। इणो=इ धातुको यण हो अजादि प्रत्यय परे। अचिश्नुधातुसे अचि आया, अङ्गसे आक्षिप्त प्रत्ययमे विशेषण। तदादिविधि, अजादि अर्थ। इससे यण्। यन्ति। इयङ्का बाधक यण् है। गुण वृद्धि भी परत्वात् इयङ् को बाधते है, अयन गुण हुआ। आयक वृद्धि हुई। एषि इथ इथ। एमि इवः इम। हमसब कर्तामे वर्तमान आना जाना क्रिया। इयाय—गमन क्रिया सहित कर्ता न देखा हो, इधातुसे परोक्षे लिट् आदि। इ अ। द्वित्व दूसरे इ को वृद्धि ऐ-आय आदेश। इ आय अ। अपवर्णी अच्परे मिल गया। अभ्यास इ को इयङ्। इयाय ईयतु दो कर्तामे अतुस् द्वित्व, कित्से न गुण। इ इ अतुस्। दशामे इणो यण् दूसरे इ को य। इयतु। दीर्घ विधायकसूत्र।

।५६। दीर्घ—इण धातुके अभ्यास इ को दीर्घ हो किति लिटि परे। अत्र लोपोसे अभ्यास (व्यथोसे) लिटि की अनुवृत्ति। अभ्यास इ को दीघ ईयतु इयु वे कब गये। इययिथ-भारद्वाज नियमसे थलि परे वा इट् जब न इट् इयेथ। दूसरे इको गुण पहले को इयङ्। ईयथु ईय। इयाय इयय ईयिव ईयिम। अनद्यतन भविष्यकालमे आना हो, ता एता एतारौ एतारः एतासि एतास्थ एतास्थ। एतास्मि ऐतास्व एतास्मः। एष्यति एष्यत एष्यन्ति। एष्यसि एष्यथः एष्यथ एष्यामि। मै आऊगा। एतु एतु भवती आइये आप आइये। इतात् इताम् यन्तु। इहि (तुम आओ) इतात् इतम् इत अयानि अयाव अयाम। लङ्लारमे अनद्यतन भूतकालमें आना पूर्ण हो ~~कर्तामे लङ्~~ ति। इतोप। धातु इकार को गुण, आट् वृद्धि ऐत् ऐत्ता तस्को ताम् गुण आट् वृद्धि। आयन्। झि इकार लोप। झ को अन्त, इ अन् दशामें इणो यण् से यण् जो आभीय है। असिद्धवत् अत्र आभात्। नियमसे यण् असिद्धि। आट् हुआ। आयन बना। एहि ऐतम ऐत। आयम् ऐव ऐम। बिधिलिङ्—जब आना किया आज्ञा प्रेरणा आमन्त्रण आदिका बिषय हो इयास् त्। लिङः सलोपः इयात् इयाताम् इयुः। इया इयातम इयात इयाम्।

ऐताम । आयन् । इयात् । ईयात् । (२४५७) एतेर्लिङि ७।४।२४। उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व स्तात् क्विति लिङि । निरियात् । 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्' । अभीयात् । अण किं ? समेयात् । 'समीयात्' इति प्रयोगस्तु औवादिकस्य । (५८) इणो गा लुङि २।४।४५।

गमनक्रियाके प्रति शुभकामना व्यक्त करनी हो । कर्तामे आशीर्लिङ् °अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घ । ईयात् ईयास्ताम् । ईयासु । ईया ईयास्तम् ईयास्त ईयासम् । निर् ईयात् । ह्रस्व विधायक सूत्र ।

। २५५७ । एते =उपसर्गसे परे इण्के अण् (ई)के ह्रस्व हो आर्धधातुक कित् लिङ् परे ह्रस्व हुआ । निरियात् । । उपसर्गात् से ह्रस्व आया केऽण से अण् । अयङ् यि से किति । अत्र शङ्का—जैसे निरियात्मे ह्रस्व ऐसे अभीयात् मे भी क्यो नही, क्योंकि (अन्तादिवच्च) दीर्घ एकादेशमे पूर्व पठित अभिका अन्त मानकर उपसर्ग मिलेगा । उससे परे इकारको ह्रस्व हो जाय । उत्तर दिया—उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्-दो दल या दिशा मे एक साथ दो कार्य हो वहा अन्तादिवत् नही लगता, उभयेषामिति–उभयत॰ अभि–ईयात् सवर्णदीर्घ अभीयात् । यह सवर्णदीर्घएकादेश पूवमे अभिका अन्त माना जाय, वह उपसर्ग तो होगा किन्तु इण् धातु धर्म नही रहेगा । यदि दीर्घएकादेश, पर (ईयात्) का आदि माना जाय, एकादेशमे धातुधर्म रहेगा किन्तु उपसगधम नही । ह्रस्वके लिए उपमगसे परे इण् धातु दोनो धर्म एकसाथ आवश्यक है । इसनिए ह्रस्व नही होगा, न अन्तादिवत् । यदा द्वयोरेक प्रेष्यो॰ स एकस्मिन्काले विपरीतदिशाया गन्तुमसमर्थ एकस्मिन्काले कस्यापि कार्यं कर्तुं न यतते, विरोधभयात् । यही परिभाषाका आशय है । अण॰ किं ? सूत्रमे अण् क्यो पढा ? समेयात् सम एयात् गुणे समेयात् । एकार अण् नही । पूर्व णकार तक अण् प्रत्याहार व्यापक है । यदि ऐसा–समीयात् प्रयोग कैसे ? औवादिकसे । इट किट कटी गतौमे इकार प्रश्लिष्ट । आशीर्लिङ् अकृत्सार्वधातुकयो दीर्घ । गति क्रिया समास कालके कर्तामे लुङ् इ इ स् त् ।

। ५८ । इण् के स्थानमे गा आदेश हो लुङ्परे । जिसका फल गातिस्थाघुपासे सिचका लुक् । अगात् अगा अगातम् अगात । अगाम् अगाव अगाम । ऐष्यत् ऐष्यताम् ऐष्यन् ।

इङ् अध्ययने इङ धातु नियमपूर्वक विद्याध्यनानुकूलाक्रिया अर्थ (अधिः

'गातिस्था' इति सिचो लुक्। अगात् अगाताम् अगु । इङ् अध्ययने। नित्यमधिपूर्वं। अधीते। अधीयाते। अधीयते। (२४५९) गाङ् लिटि २।४। इङो गाङ् स्याल्लिटि। लावस्थायां विवक्षिते वा। अधिजगे। अधिजगाते। अधिजगिरे। अध्येता। अध्येष्यते। अध्ययै। गुणायादेशयो कृतयोरुपसर्गस्य

उपरि भावे) इङ् धातु अधिपूवक प्रयोगका विषय है 'नित्याध्यनानुकूलव्यापारो अर्थ। धातुपाठमे नित्यमधिपूर्वं। इङ् धातुः अधि=उपसर्ग न त्यजति। अधि इङ्धातो धातुसज्ञाया ङित् से आत्मनेपद त। एत्व अधि इ ते। अपित्सार्वधातुकसे ङित् विधानसे गुणनिषेध, सवर्णदीर्घ। अजादि परे हो तब इयङ होकर दीर्घ अधीते। आता परे टेरे। इयङ् दीर्घ अधीयाते अधीयते। अधीषे अधीयाथे अधीध्वे। अजादिपरे पहले इयङ् तब सवर्णदीर्घ। अधीवहे अधीमहे।

।५९। गाङ्। इङ् को गाङ् आदेश हो लिटि लकार परे या विवक्षामे इङश्चसे इङ् आया। गा ही पढते स्थानिवद्भावसे इङका ङित् आता ही। गाङ्मे ङित् पढना गाङ्कुटादिभ्य सूत्रमे (इणोगाङ् लुङि) का ग्रहण न हो। वार्तिक मतमे लावस्थाया=लकार दशामे गाङ् आदेशके पहले द्विर्वचनेचि सूत्र नही लगता, द्वित्वनिमित्तक अच् त मिलने से। भाष्यमतमे ल की विवक्षामे गा आदेश है। द्विर्वचनेचि नही लगेगा, निमित्त न मिलनेसे। अधिजगे। नियमपूर्वक विद्याध्ययनक्रियावाचक अधि इ धातुसे परोक्षे लिटि। इ को गा, त—एश्। द्वित्वके पहले गा को द्वित्व गा गा गगा जगा। आकारलोपे अधिजगे। आताम्को एत्व, गा को द्वित्व आदि। अधिजगाते अधिजगिरे। लिटस्तसे झ को इरेच्। ज गा आलोप। अधिजगि से अधिजगाथे अधिजगिध्वे। अधिजगे अधिजगिवहे—महे। आजके भविष्यसे भिन्न भविष्यकालमे नियमित अध्ययनक्रिया चलनी हो कर्तामे लुट्। अधिइता। गुण यण् अध्येता अध्येतारौ अध्येतार। अध्येतासि अध्येतासाथे अध्येताध्वे। अध्येतावहे अध्येतास्वहे—महे अध्ययन करेगा, स अध्येष्यते। अध्येष्येते अध्येष्ये। अध्ययनक्रिया जब आज्ञा प्रवर्तना निवेदनका विषय हो कर्तामें लोट्। आमेत- से ते को ताम् अधीताम् अधीयाताम् अधीयताम्। अधीष्व अधीयाथाम् अधीध्वम्। अधिइ-इट् टित् है एत्व आट् वृद्धि। अधिइ ए गुण, अय आदेश करने पर उपसर्ग अधिके इ को यण् अध्ययै। क्योकि पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते। पश्चात् उपसर्गेण इति भाष्यवचनम् अधि इ ऐ

यण् । पूर्वं धातुरुपसर्गेण—' इति दर्शनेनाऽन्तरङ्गत्वाद्गुणात्पूर्वं सवर्णदीर्घे प्राप्ते 'णेरध्ययने वृत्तम्' इति निर्देशान्न भवति । अध्यैत । परत्वादियङ् । तत आट् वृद्धि । अध्यैयाताम् अध्यैयत । अध्यैयि अध्यैवहि अध्यैमहि । अधीयीत अधीयीयाताम् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येषीष्ट । (२४६०)

दशामे गुण अय यण । यह भी नियम है कि (पूर्व धातु उपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेन) पहले धातु उपमर्गसे जुडता है । पीछे कारकमे । अधि इ ऐ दशामे पहले सवर्णदोर्घ । तब गुण अय अवयै बननेकी शकाका निराकरण करते है । पूर्व पहले धातु उपसर्गसे जुडता है । पीछे कारकसे । या कारक-बोधक प्रत्ययसे । इस दर्शन=मतमे अन्तरङ्ग होनेसे सार्वधातुक परे गुणको बाधकर सवर्णदीर्घ प्राप्त है । जो नही होता क्योकि णेरध्यने वृत्तम् । ऐसा निर्देश उच्चारण प्रमाण मिलता है । अन्यथा अध्ययनेमे ल्युट्—अन् आदेश अधि इ अन् । दशामे पहले सवर्णदीर्घ तब गुण नही किया गया, अत प्रथम गुण-अय्, तब यण् । अध्ययावहै—महै । अध्यैत । अनद्यतन भूतकालके अध्ययन क्रिया हो कर्तामे त आट् । अधि आ—इ—दशामे आटश्च वृद्धि । यण् । जब दो कर्ता हो आताम् आट् वृद्धि यण् (अध्यैताम्) प्राप्त था, परत्वात् यण्को बाधकर इयङ् तब आट् । जब आटश्च वृद्धि यण् अध्यैयाताम् अध्यैयत । आत्मनेपदेष्वनत । झ को अत आदेश । अध्यैथा अध्यैयाथाम् अध्यैध्वम् । अध्यैयि अध्यैवहि—महि । विधिलिङ्—नियमसे पढनेकी सम्भावना प्रवर्तना, आदेशके विषयमे अधि इत सीयुटि सुटि सलोप यलोप । अधि इ ईत । धातुइकारको इयङ् अधि इय् ईत । सवर्णदीघ अधीयीत । अधीयीयाताँ प्रक्रिया पूर्ववत् । अधीयीरन् अनेक कर्तामे अध्ययनकी सम्भावना प्रवृत्ति । झ को रन् सीयुट् लिङ सलोप । वलि परे यलोप । अधि इ ई रन् दशामे धातु इकारको इयङ् । सवर्णदीर्घ अधीयीथा अधीयीयाथाम् अधीयीध्वम् सीयुट् सलोप यलोप इङ् दीर्घ । अधीयीय, उत्तमपुरुष एकवचन इट्को अत् । सीयुट् सलोप अधि इ ईय दशामे इयङ् सवर्णदीर्घ । अधीयीवहि—महि । आशीलिङ् नियमसे विद्या ग्रहणके विषयमे शुभकामना अप्राप्त विद्याकी प्राप्ति कर्तामें लिङ्, अधि इ सी स त । धातुको गुण । यण् षत्वादि अध्येषीष्ट । उत्तमपुरुषके एक कर्तामे नियमपूर्वक विद्या अध्ययनकी शुभकामना । अध्येषीयास्ताम् अध्येषीरन् । अध्येषीष्ठा अध्येषीयास्थाम् अध्येषीयध्वम् । अध्येषीय अध्येषीवहि ।

विभाषा लुङ्लृङो २।४।५०। इङो गाङ् वा स्यात्। (६१) **गाङकुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित १।२।१।** गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णित प्रत्यया ङित स्यु। (२४६२) **घुमास्थागापाजहातिसा हलि ६।४।६६।** एषामात ईत्स्यात् हलादौ क्ङित्यार्धधातुके। अध्यगीष्ट अध्यैष्ट। अध्यगीष्यत—अध्यैष्यत॰ इक् स्मरणे। अयमप्यधिपूर्वं। 'अधीगर्थदयेशाम्–' इति लिङ्गात्

।२४६०। **विभाषा**—इङको गाङ् आदेश हो विकल्पसे लुङ् लृङ् पर गाङ् लिटिसे लिटि, इङश्च अनु० ।६१। **गाङ्कुटादिभ्य** गाङ् आदेश और कुटादिगण पढे शब्दोसे परे ञित् और णित् प्रत्ययको छोडकर अन्यप्रत्यय ङित् हो। गाङ् च कुटादयश्च द्वन्द्वसे पञ्चमी। गाङ् मे ङ् अनुबन्ध (इणो गा) को रोकनेके लिए। ६२। **घुमास्था** गा पा जहाति सा (द्वन्द्वात्षष्ठी) इन धातुओके आकारको ईत्व हो हलादि कित् ङित् आर्धधातुक प्रत्यय परे। घुसज्ञक दा धा का ग्रहण। आर्धधातुकका अधिकार। आतो लोप इटि च से आत आया। ईद्यतिसे ईत्। अनुदात्तोपदेशसे क्ङिति। अध्यगीष्ट अध्ययनक्रिया समाप्तिकालके कर्तामे लुङ् त। अधि इ त। विभाषा लुङ् परे इ को गाङ् आदेश। अट् सिच्। अधि अगास्त। गाङकुटादिभ्य गाङ् से परे सिच्का ङित्सज्ञा, घुमास्था सूत्रसे गा मे आ को ई। अचिके इ को यण्। स—ष, त—ट,। गातिस्थासे सिच् लोप नही परस्मैपदके अभावसे। अध्यगीषाताम अध्यगीषत। अध्यगीष्ठा अध्यगीषाथाम् अध्यगीढ्वम्। अध्यगीषि अध्यगीष्वहि—महि। गाङ् आदेश नहो तब अध्यैष्ट आट्। अधि आ इ ष त दशामे धातु इको गुण। आटके साथ वृद्धि। अधि ऐ तस्। यण् षत्व ष्टुत्व। **अध्यैषाताम् अध्यैषत।** वे लोग नियमपूर्वक अध्ययन समाप्त कर लिए। अध्यैष्ठा अध्यैषाथाम अध्यैढ्वम्। धि च (सिच्) सलोप अध्यैषि अध्यैष्वहि–महि। क्रिया फलके विषयमे कार्यकारण भाव हो लृङ्। अधि इ स्य त। लृ परे विभाषा गाङ् आदेश। गाङ् कुटादिभ्य से ङित् ष्य परे, घुमास्थासे ईत्व अट् यण् षत्व। अध्यगीष्यत् अध्यगीष्येताम् अध्यगीष्यन्त। जब गाङ् नहीं अध्यैष्यत अध्यैष्येताम् अध्यैष्यन्त। इक् स्मरणे। क इत् इग्धातु—ज्ञात व्यक्तिकी याद होना, स्मरणकी क्रिया अर्थ। यह धातु भी इङ्की तरह नित्य अधिपूर्वक है। प्रमाण–इङ् धातुपर भाष्यवचन है। नित्यमधिपूर्वमिति। तथैव अधीगर्थदयेषा सूत्रमे अधिपूर्वकइक् धातुको स्मरणार्थक माना। नित्यमधिपूर्वक एव स्मरणार्थक। अन्यथाहि इगर्थ–यहीं

अन्यथा हि 'इगथ' इत्येव ब्रूयात्। 'इण्वदिक इति वक्तव्यम्' अधियन्ति। अध्यगात्। केचित्तु आर्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहु। तन्मते। यण। तथा च भट्टि—'ससीतयो राघवयोरधीयन्' इति। वी गतिव्याप्तिप्रजन-

पढते। अधि पढना व्यथ होता। इण्वदिक् इण तुल्यम्। इणको जो कार्य (इणो यण्) इत्यादि हो वे इक्को भी हो। अध्येति अधीत अधियन्ति। अधि इ ति गुण, यण। अधि—इ तस् सवर्णदीर्घ। अधि इ अन्ति। इयङ्को बाधकर इण्वद्भावसे यण्। अध्येषि अधीथः अधीथ। अध्येमि अधीव अधीमः। हम सब कर्तामे स्मरण किया। वयमभिन्नबहुकर्तृकवर्तमानकालिक स्मरणानुकूलव्यापार। अधीयाय अधि उपसर्ग है णलपरे इ को द्वित्व। दूसरे इ के स्थानमे—वृद्धि ऐ-आय। पहले इ को इयङ् असवर्ण अच्परे है। अधीयतु अधीयु अधि इ इ अतुस दशामे द्वितीय इ को इणो यण्। प्रथम इ को (दीर्घ इण से) दीर्घ। सवर्णदीर्घ। अधीयिथ अधीयेथ अधीयथुः अधीय। तुम लोग कब याद किए। अधीयाय अधीयिव अधीयिम। अध्येता अध्येतारौ अध्येतार। अध्येतासि अध्येतास्मि। आगामीभविष्यमे स्मरण करूगा। अध्येष्यति अध्येष्यत अध्येष्यन्ति। स्मरण करेगे। अध्येतु अधीतात् अधीताम् अधियन्तु। अधीहि अधीतात् अधीतम् अधीत। अध्ययानि अध्ययाव अध्ययाम। वह स्मरण करे, तुम स्मरण करो वयमभिन्नबहुकर्तृकस्मरणविषयकप्रवर्तनानुकूलाव्यापार। अनद्यतनभूतकालमे स्मरणकर चुका हो लङ्। अध्यैत अध्यैताम् अध्यायन्। अध्यैः अध्यैतम् अध्यैत। अध्यायम् अध्यैव अध्यैम। बीते भूतकाल—समाप्त स्मरण क्रियाके कर्तामे लुङ् इण्वत्=इणके तुल्य कार्य आरोपसे इण्को गा आदेश। गातिस्था—से सिचू लुक्। अतएव घुमास्थासे इत्व नही अध्यगात अध्यगाताम अध्यगु। अध्यगा अध्यगातम् अध्यगात। अध्यगाम् अध्यगाव अध्यगाम। केचित् का मत देते है आर्धधातुकके अधिकारमे उक्तस्यैव=पढा गया कार्यका अतिदेश आरोप होता है। तन्मते=इणो यण्से यण् नही होता। आर्धधातुकके अधिकारमे न होनेसे। उनके मतमे अधीयन्ति। इयङ् सवर्णदीर्घ होता है। भट्टिकाव्यमे कहा गया=सीता सहित राघव रामको स्मरण करता हुआ। अधीयन्=स्मरणकुर्वन् लुक्। इयङ् दीर्घ। अधीयतृसे सुप् विभक्तिमे रूप। राघवौ स्मरन् राघवयो मे अधीगर्थदयेषासे षष्ठी।

वी=गति—गमन व्याप्ति-व्यापके होना, प्रजन—गर्भधारण, कान्ति—इच्छा

कान्त्यसनखादनेषु । प्रजन गर्भग्रहणम् । असन क्षेपण । वेति वीत वियन्ति वेषि । वेमि । वीहि । अवेत् । अवीताम् । अवियन । अटागमे सत्यनेकाच्त्वा-द्यणिति केचित् । अव्यन् । अत्र इकारोऽपि धात्वन्तर प्रश्लिष्यते । एति ईत इयन्ति । ईयात् । ऐषीत् । या प्रापणे । प्रापणमिह गति । प्रणियाति । यात यान्ति । (६३)लङ शाकटायनस्यैव ३।४।१११। आदन्तात्परस्य

असन–प्रक्षेपण, खादन–भोजनके अनुकूलक्रिया । अजेर्व्यघञपो सूत्रके भाष्यमे आर्धधातुकसे रूप नही होता । **वेति** । वी धातुसे गमन व्याप्ति गर्भग्रहण, क्षेपण, भोजन आदिके वर्तमान क्रियाके कर्तामे लट् वी ति गुण । **वेति** । जाता है, फेकता है, खाता है । **वियन्ति** वी—झि–अन्ति एकाच है यण् नही । इयङ् । **वेषि** तुम गर्भधारण या भोजनादि करते हो वीथ वीथ । **वेमि** वीव । वीम हम सब कर्तामे उक्त क्रिया । आर्धधातुक रूप नही उक्त क्रिया आदेशका विषय हो वेतु वीत त् वीता वियन्तु । वीहि । हि अपित् है ङित्से न गुण वीतात् वीत वीत । वयानि वयाव वयाम । हम लोग जाय खाय फेके । वीता भूतकालके कर्तामे लङ् ति गुण । अवेत् अवियन् परत्वात अट् आगमसे पहले इयङ तब अट । किसीके मतसे लावस्थायामट पक्षमे इयङ्को बाधकर । अनेकाच् जानकर यण् । अत्र वी–ई सवर्णदीर्घसे । ईकार का चिपका होना दूसरी धातु सिद्ध । ई–ति **एति** गच्छति व्याप्नोति, गर्भ-ग्रहण करोति, खादति । इत **इयन्ति** । झि को अन्ति । इयङ् ईथ ईथ । **एमि ईवः ईम** । विधिलिङमे ईयात् ईयाताम् । ईयु । आशिषि इयास्ताम् इयासु । ऐषीत् । ई स ईत् सिच् वृद्धि ।

या प्रापणे पहुचाना अर्थ नहीं अत कहा—प्रापणमिह गति । गच्छति अर्थमे याति । प्र नि उपसर्ग हो नेर्गदनद–सूत्रसे णत्व । प्रणियाति । वर्तमान कालिकविशेषगमनक्रिया । **यासि याथ याथ** । यामि याव याम । ययौ ययतु ययु । ययिथ ययाथ ययथु यय ययौ ययिव । याता यातारौ यातार । यातासि यातास्मि । यास्यति यास्यामि । यातु यातात् याता यान्तु । याहि यातात् यात यात । यानि याव याम । लङलकार—गमन हो चुका हो । अयात् अयाताम् अयु अयान् ।

। ६३ । लुङ आदन्तसे परे लङ्के स्थानमे हुए झि को जुस् हो विकल्प अत की अनुवृत्ति । शाकटायन् आचार्यके मतमे । आचार्यका नाम कारण । एवकार (लिट् च) लिङाशिषिके लिए ।

लङो झेर्जुस् वा स्यात् । अयु-अयान् । यायात् । यायाताम् । यायुः । यायास्ताम् । अयासीत् । १०५० । वा गतिगन्धनयोः । गन्धनं सूचनम् । भा दीप्तौ । ष्णा शौचे श्रा पाके । द्रा कुत्सायां गतौ । प्सा भक्षणे । पा रक्षणे । पायास्ताम् ।

अलोपः अयुः । पक्षमे झ को अन् दीर्घ अयान् । स यायात । अयासीत् सामान्यभूतकालिक पहुचना क्रिया । अयास ईत । अयासी अयासिष्टम् अयासिष्ट यमरमनमाता सक्च अयासिषम् अयासिष्व अयासिष्म वा धातु का गति वायुका बहना । गन्धन-सूचित करना । वायु वाति वातः वान्ति । ववौ वाता वास्यति । वातु अवात वायात् । अवासीत् अवासिष्टाम अवासिषु जितने आकारान्त है सबमे यमरमनमाता सक्च से सक् इट् भी होगा । भा का दीप्ति चमक प्रकाश । भाति भात भान्ति । बभौ बभतु । बभु भाता भास्यति भातु अभात् भायात् अभासीत् । अभासीः अभासिष्टम् अभिसिष्ट । षोपदेश ण असिद्ध, स्ना धातु का शौच-शुद्ध होना, स्नानकी क्रिया । स्नाति स्नात स्नान्ति वे नहाते हैं । स्नासि स्नाथ स्नाथ । स्नामि स्नाव. स्नाम । सस्नौ स्नाता । स्नास्यति स्नास्यत स्नास्यन्ति । स्नास्यसि स्नास्यथ स्नास्यामि । स्नातु वह स्नान करे । स्नाहि स्नात स्नात । स्नानि स्नाव स्नाम । अस्नात् । स स्नायात् वह नहाय । स्नाया स्नायात स्ना-यात । स्नाया स्नायाव स्नायाम । भूतकालमें स्नान समाप्त हो अस्नासीत् अस्नासिष्टाम अस्नासिषु त्वम अस्नासी अहं अस्नासिषम् । श्रा धातुका भात पकाना अथ । श्राति शश्रौ श्राता अश्रासीत् । द्रा धातुका कुत्सा=तोडफोड उजाडकी क्रिया, निन्दित चाल । द्राति द्रात द्रान्ति । द्रासि द्राथ द्राथ । द्रामि द्रावः द्राम । दद्रौ । द्राता द्रास्यति । कुचाल चलेगा द्रातु अद्रात् द्रायात्, अद्रासीत् अद्रासिष्टाम् अद्रासिषु । अद्रासी सक् इट् भी । प्साति खाता है । पप्सौ प्साता प्सास्यति अप्सासीत् ।

। ५६ । पाति रक्षा करता है । पपौ-परोक्षकालमे रक्षा किया । पाता पास्यति । पातु पाताम् पाता पान्तु । पाहि पात पात । पानि पाव पाम । अपात् अपाताम् अपु अपा अपातम् अपात् अपाम् अपाव अपाम । पायात् पायाता पायु । पायास्ता पायासु । यहा एर्लिङ्से एत्व, गातिस्था से सिच्लुक् नही होता । अपासीत् सामान्यभूतकालिक रक्षण क्रिया । अपासिष्टाम अपासिषु अपासी अपासिष्टम् अपासिष्ट । अपासिषम् अपासिष्व राति देता है । ररौ राता रास्यति अरासीत् । ला धातुका लेना

अपासीत्। रा दाने। ला आदाने। 'द्वावपि दाने' इति चन्द्र। दाप् लवने। प्रणिदाति—प्रनिदाति। दायास्ताम्। अदासीत्। १०६०। ख्या प्रकथने। अथ सार्वधातुकमात्रविषय। सम्थानत्व नम ख्यात्रे' इनि वार्तिक तद्भाष्यं चेह लिङ्गम्। सस्थानयो जिह्वामूलीय स नेति ख्शाञादेशस्य ख्यादित्वे

अर्थ। लाति लातः लान्ति। लासि लाथ लाथ। हम सब कर्तामे लेनेकी क्रिया। लेना क्रिया सहितकर्ता प्रत्यक्ष न हो कार्य देखकर लेना क्रियाका अनुमान हो, ललौ ललतु: ललु ललिथ ललाथ ललथु लल। ललौ ललिव ललिम। लाता लाष्यति। लातु अलात् अलाता अलु। अलाम्। लायात् लायास्ता लायासु. अलासीत् अलासिष्टाम् अलासिषु अलासी अलासिषम्। दोनो धातु दान अर्थमे इति चन्द्राचार्य। दाप धातुका लवन छेदन कटाई विनाई करना अर्थ। दाति काटता है लवन करता है। प्रणिदाति दाप घुसञ्जक नही नेगर्दसे णत्व कैसे? शेषे विभाषा सूत्रसे णत्व विकल्प माने। ददौ कब छेदन किया, लवाई की दाता दास्यति कटाई करेगा। दातु (छेदन करे) अदात कल काट दिया। दायात्। लवन क्रिया समाप्त हो भूते लुङ। अदासीत् अदासिष्टाम अदासिषु वे छेदन किये। अदासीः अदासिष्टम अदासिष्ट।

।१०६०। ख्या धातुका प्रकथन साधारण विशेषभाव खोलना। विशेष कथन। पूर्ण व्याख्या इस धातुका केवल सार्वधातुक ही रूप बनता है मात्रशब्दका अवधारण–नियत्रण अर्थ। सार्वधातुक एव अस्य प्रयोग नतु आर्धधातुके। ऐसा क्यो प्रमाण प्रस्तुत किये-स्थानत्व जिह्वामूलीय। नम के विसर्गको ᳵक आदेशका निषेध करता है। चक्षिङ ख्याञ् सूत्रमे सख्याके स्थानमे ख्शाञ् कहा, श को य भी कहा शस्य योऽवा वक्तव्य। उसका प्रयोजन सौप्रख्ये वुञ् विधि बोलकर- स्थानत्व नम ख्यात्रे ऐसा वार्तिक पढा? निषेधका अध्याहार कर ख्शाञ्के योगमे नम के विसर्गको जिह्वमूलीय नही यह वार्तिक और भाष्य मत दोनोंने ख्या धातुको सार्वधातुकमे ही प्रयोग हो ऐसा ज्ञापन किया। प्राचीन आचार्यो ने सस्थान शब्दको जिह्वामूलीय कहा। स=नम के विसर्गको जिह्वामूलीय न होना ख्याके स्थानमे ख्शादि विधि, श को य होना, प्रयोजन है ख्शा द्वित्वे यत्नविधिका बोधक। क्योंकि श को य विधान असिद्ध है शर परे विसर्जनीय इष्ट है। जिह्वामूलीय अनिष्ट है। नही होता। यही भाष्यवार्तिकका रहस्य है। यदि आर्धधातुकमे भी ख्या का रूप

प्रयोजनमित्यर्थः । सम्पूर्वस्य ख्याते प्रयोगो न' इति न्यासकारः । प्रा पूरणे मा माने । अकर्मक । 'तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष ' इति माघ । उपसर्गव-शेनार्थान्तरे तु सकमक । 'उदर परिमाति । मुष्टिना' । 'नेगंद इत्यत्र नास्य ग्रहणम् । प्रणिमाति–प्रनिमाति । वच परिभाषणे । वक्ति । वक्त । अयमन्ति-

होता, तृच् अन्त ख्यातृ शब्दमे यके स्थानमे श–न हानेसे असिद्ध न होता। शपरे विसर्जनीय न रहता। जिह्वामूलीय हो नहीं सकता। इससे सर्वत्र ख्या धातो आर्धधातुकके न प्रयोग इति विज्ञायते। न्यासकारका मत है सपूर्वक ख्या धातुका प्रयोग सार्वधातुकमे भी नहीं होता। सङ्ख्यादि शब्द ख्याज् आदेशमे बने है ।

प्रा धातुका पूरण=पूर्ति करना भरना अर्थ। प्राति-भरता है। पप्रौ **प्रास्यति**। अप्रासीत्। मा माने मानं परिमिति नापना जोखना तौलना इसलिए अकर्मक है। माति घृत पात्रे। घी को वर्तनमे नापकर भरता है। परिमित भवति सगृहीत भवति । शिष्टप्रयोग देते है तनौ ममु । ममौ ममतु ममु । तत्र न कैटभद्विष तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुद । माघ काव्यमे तपोधन श्री नारदजीके आनेसे उत्पन्न हर्ष-सन्तोष श्रीकृष्ण भगवानके शरीर शरीरमे नही समाए। आविक्यात् न सगृहीता बभवु । उपसर्गके बलपर अन्य अर्थमे सकर्मक भी है। जैसे–उदर परिमाति मुष्टिना कुतुकी कोऽपि दमश्वसु । नैषधकाव्यमे किसी कुतुहली की कल्पना है। दमयन्तीके पेटको मुट्ठीसे नापते वा भरते है । नेर्गदनद आदि सूत्रमे माङ् मानेका ग्रहण नही होता, घुप्रकृति माङ्के भाष्यप्रमाणसे। शेषे विभाषा अकखादौ सूत्रसे विकल्प णत्व प्रमाणित। मात मान्ति। अमाते है। मासि माथ माथ। मामि माव माम । ममिथ ममाथ ममथु मम। ममौ ममिव। माता, मास्यति,। मातु, अमात, अमासीत्, अमास्यत्। वच धातुका परिभाषण। स्पष्ट बोलनेकी क्रिया अर्थ। अनिट्। वचन ति। च को कुत्व क मिल गया। **वक्ति वक्तः**। तस् परे चको क। **अयमन्ति**=लट्लकार प्रथमपुरुष बहु० रूप होता ही नही। इस पक्षमे तीनों पुरुषके बहुवचनका रूप न प्रयुज्यते। तीसरा पक्ष झि परे रूप नही होता। इस पक्षमे सभी लकारके प्रथमपुरुषमे बहुवचनका रूप नही होता। वक्षि। उवाच-अकित लिट् परे अभ्यासको सम्प्रसारण। ऊचतु किति लिटि परे अभ्यासको वचिस्वपियजादिनासे सम्प्र-सारण करके द्वित्व दीर्घ। ऊचु उवचिथ उवक्थ ऊचिव। वक्ता वक्तारौ

परो न प्रयुज्यते । बहुवचनवर इत्यन्ते । क्विरर इत्यपरे । वग्धि । वच्यात् । उच्यात् । अवोचत् । विद ज्ञाने । (६४) विदो लटो वा ३।४८३॥ वेत्तेर्लट परस्मैपदाना णलादयो वा स्यु । वेद । विदतु । विदु वेत्थ विदथु । विद । वेद विद्व विद्म । पक्षे वेत्ति । वित्त इत्यादि । विवेद विविदतु । 'उषविद' । इत्याम्पक्षे विद इत्यकारान्तनिपातनान्न लघूपधगुण । विदाञ्चकार । वेदिता ।

वक्तार । आगामि भविष्यमे बोलेगा । वक्ष्यति वक्ष्यत वक्ष्यन्ति वक्तु वक्तात् वक्ता । वग्धि वच सि—हि हु झल्भ्यो हेर्धि । हि को धि वक्तात् वक्त । वचानि वचाव वचाम । विधिलिङ् मे वच्यात् वच्याता वच्यु । वच्या । आशीर्लिङ् मे कित् होनेसे वचिस्वपि—सूत्रमे सम्प्रसारण व को उ उच्यात् उच्यास्ताम् उच्यासु । उच्या उच्यास्तम् उच्यास्त । व्यापक भाषण कर चुका हो कर्तामे लुङ् । अवच् त् । अस्यति वक्ति सूत्रसे च्लिको अङ् । अङ् परे वचको उम । अवउच अत् । गुण अवोचत् अवोचता अवोचन् । अवोच अवोचतम् अवोचत । अवोचम अवोचाव अवोचाम ।

। ६४ । विद ज्ञाने विदधातुका ज्ञान अर्थ । खोलकर समझाना, मन्थन कर प्रतिपाद्य विषयका नवनीत निकालना । लौकिक वैदिक शब्दो का स्फोटार्थ ज्ञान करना । अनिट कारिकामे शप् लुक् वाला विद नही लिया गया । अत सेट है । विषय —मन्थनानुकूल क्रियावाचक विद धातुसे वर्तमान-कालिक ज्ञान करने क्रियाके कर्तामे लट् तिप् उसके स्थान मे णल्का विधिसूत्र । ६४ । विद् धातुसे परे लट्के स्थानसे परस्मैपद तिप् तस् झि सिप् थस् ५ प्रत्ययके स्थानमे णलादय -णल् अतुस उस् थल अतुस ये पाच आदेश क्रमसे हो । विद+लट स्थाने ति स्थाने णल् । विद अ गुण वेद । ज्ञान करता है । तस् स्थाने अतुस् विदतु वित्त । विदु विदन्ति । वेत्थ वेत्सि । तुम जानते हो । विदथु वित्थ । वेद्मि विद्व विद्म । णलादि विकल्प से होते है । पक्षमे वेत्ति । विद ति चर्त्व । परोक्षकालमे ज्ञानक्रियासहित कर्ता प्रत्यक्ष न हो । परोक्षे लिट् विद अ । द्वित्वादि-विवेद विविदतु विविदु । विवेदिथ विविदथु विविद । विवेद । विविदिव विविदिम । जब उषविद् जागृभ्य से आम होगा, जब पुगन्तलघूपधस्यसे गुण नही होगा क्यो नही होगा अकारान्तनिपातनात् उषविद--सूत्रमे विद्को आम् परे अदन्त कहा । अतो लोप अकारलोप के स्थानिवत् भावसे न गुण । विदा कृ लिट् । भविष्य मे ज्ञान होना हो वेदिता । वेदितारौ वेदितार. । वेदितासि वेदितास्थ ।

(२४६५) विदाकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१॥ वेत्तेर्लोटचाम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षते, ति शब्दात् । **(६६) तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥** तनादे कृञश्च उप्रत्ययः स्यात । शपोऽपवादः । तनादित्वादेव सिद्धे कृञ्ग्रहण गणकार्यस्यानित्यत्वे लिङ्गम् । तेन न विश्वसेदविश्वस्तम् इत्यादि सिद्धम् । विदाङ्करोतु । **(६७) अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥** उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके

वेदितास्मि वेदितास्म । वेदिष्यति वेदिष्यन्ति वेदिष्यामि । वेदिष्याव ।

। २४६५ । विदाङ्कुर्व—लुक् विकरण विदधातुसे आम् हो लोट् परे। लोटका लुक् हो, गुण अभाव, कृ लोट् का अनुप्रयोग हो । विकल्पसे, निपातन से । यद्यपि विदाकुर्वन्तुमे प्रथमपुरुष बहुवचन पढा है । क्या प्रथमपुरुष बहुवचनमे ही कार्य हो, तब बोले—प्रथमपुरुष बहुवचन ही वक्ताको इष्ट नही, सभी पुरुष सभी वचन इष्ट है । सबसे आम् होगा । इति शब्दका प्रकार अर्थ । लोकमे प्रयोगके अनुसार मान्य । ६६ । तनादि गणमे पढे धातु और कृ धातुसे उ प्रत्यय हो शप्को बाधकर । शप्का विषय ही सूत्रका विषय हे । सार्वधातुक यक्से सार्वधातुक आया । कर्तरि भी । कृञ् धातु तनादिगणमे पढा है । अलगसे क्यो पढा ? गण कार्यकी अनित्यता सिद्धिके लिये । प्रमाण-न विश्वसेत् अविश्वासी पर विश्वास न करे । अदादिगणका कार्य (शप् लुक्) नही हुआ, शप् होनेपर गुण होगा । विश्वसेत् बनेगा । विदाङ्करोतु ज्ञानानुकूलक्रियावाचक विदसे लोट् आम् लोट् लुक् । विदामे कृ लोटका अनुप्रयोग आदि अनुस्वार परसवर्ण । ति एरु । इकारको उ । शप् बाधकर तनादिकृञ्भ्य से उ प्रत्यये । विदाकुरुतात् । तु को तातङ् के ङित्से उ को गुण नही तब—

। २४६७ । अत उत् । उ प्रत्ययान्त कृञ्के अ को ह्रस्व उ हो। सार्व धातुक कित् ङित्परे । करु के अ को उ । कुरुतात् । इस उत्वको गुण क्यो नही होता । उतमे तकार पढनेके सामर्थ्यसे । जो एकमात्रा है । तस्-ताम् विदाङ्कुरुतात् कुर्वन्तु । हलि च सूत्रसे कु मे उ को दीर्घ नही होता, न भकुर्छुरा के निषेधसे । ज्ञान करो, अर्थ समझो । प्रवर्तनाका विषय बने विदाकुरु दशामे अत उत्सार्वधातुकके सूत्रका उत् पर है, तथापि उत्व को बाधकर उतश्चप्रत्ययात्सूत्रसे हि का लुक् । तब सार्वधातुकसे परे नही, उत्व कैसे ? तब आभीयत्वेन=लुक्को असिद्ध करके उत्व हो जायेगा । असिद्धवात

क्ङिति। उदिति तपरत्वसामर्थ्यान्न गुण। विदाकुरुतात्। विदाकुरुताम्। उतश्च इति हेर्लुक्। आभीयत्वेन लुकोऽसिद्धत्वान्नादुत्वम्। विदाकुरु। विदाङ्करवाणि अवेत् अवित्ताम्। सिजभ्यस्त इति झेर्जुस्। अविदु। (६८) दश्च ८।२।७५॥ धातोर्दान्तस्य पदस्य सिपि परे रु स्याद्वा। अवे अवेत्। १०६५अस भुवि। अस्ति।(६९)श्नसोरल्लोप ६।४।१११॥ श्नस्यास्तेश्चाकारस्य लोप स्यात्सार्वधातुके क्ङिति। स्त। सन्ति तासस्त्यो इति सलोप। असि स्थ स्थ,

---

अत्र आभात्। पहले हि को तातङ हुआ था पक्षमे लुक्। विदाकुरुतात् विदाकुरुता विदाङकुरु। विदाङ्करवाणि। मेर्नि होनेपर आट् पित् है ङित् नही, न निषेध, किन्तु गुण। विदाङ्करवाव-म आम्प्रत्ययके अभावपक्षमें वेत्तु वित्तात् वित्ता विदन्तु। विद्धि 'सि–हि–धि वित्तात् वित्त वित्त। वेदानि विदाव विदाम। ज्ञानार्थक विदसे अनद्यतन भूतकालिक ज्ञान क्रियाके कर्तामे लङ् ति अट् गुण आदि। अवेत् चर्त्व अवित्ताम अविदु। सिज भ्यस्तविदिभ्यश्च से झि को जुस्=उस्। विद सिप् हल्ङ्यादिसे सुका लोप। अवेद्। ६८। दश्च-धातुके पदान्त द को म हो सिपि परे विकल्पसे। सिपि धातो रुर्वा। पदका अधिकार, द को रु, र को विसर्ग। अवे। जब रु नही अवेद् अवित्तम् अवित्त। अवेदम् अविद्व अविद्म। विद्यात् विद्याता विद्यु। विद्यास्ता विद्यासु। अवेदीत् अवेदिष्टाम् अवेदिषु। अवेदी अवेदिष्टम् अवेदिष्ट। अवेदिषम् अवेदिष्व अवेदिष्म। अवेदिष्यत्।

।१०६५। अस् भूवि अस् धातुको भूधातुके अर्थमे माने। भवन भू सत्तायाम् अर्थ अस्तित्व सत्ता क्रिया, तिङर्थ कर्तासे अनुमित है। कर्तासे प्रतीत सत्तार्थवाचक अस् धातुसे वर्तमानकालिककर्तामे लट् ति अस्ति। सकारस्य चर्त्वं स एव भवति न तु तकार, अल्पप्राणतया प्रयत्नभेदात्। स्त द्विवचन तस् असुके अकारलोपका सूत्र। ६९ ।श्नसो =श्न अस् (द्वन्द्वसे षष्ठी, शकन्ध्वादि पररूप) श्न प्रत्यय तथा अस् धातुके ह्रस्व अकारका लोप हो। सार्वधातुक पित् ङित प्रत्यय परे। (अत उत् से) सार्वधातुके, गमहनसे क्ङिति। दो व्यक्तिका सूचक तस्। अस् तस्। श्नसो अलोप। स्तः सन्ति। अल्लोप। अस सि। तास् और असके स का लोप हो। इस नियमसे सलोप। असि स्थ स्थ अकार लोप पूर्ववत्। श्नस्योदाहरण, रुन्धति क्ङिति किं? रुन्धि, अस्ति। अस् धातुसे (उपस्थित था) ऐसा अनुमान

प्रस्मि । स्व स्म । आर्धधातुके इत्यधिकृत्य । (२४७०) अस्तेर्भूः २।४।५२॥ बभूव । भविता । अस्तु स्तात् स्ताम् । सन्तु । (७१) घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९॥ घोरस्तेश्चैत्वं स्याद्धौ परेऽभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेनैत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धि । श्नसो इत्यल्लोप । एधि तातङ्पक्षे एत्व न । परेण तातङा बाधात् । सकृद्गतौ इति न्यायात् । स्तात् स्तम् स्त । असानि असाव असाम । अस्तिसिच इतीट् । आसीत् । असोरल्लोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वादाट्,

---

होने पर लिट् । लिटि च से आर्धधातुसंज्ञा । उसके अधिकारमे अस् स्थाने भू आदेशका सूत्र ।

। २४७० । अस् को भू भाव हो, आर्धधातुक परे । तिप् णल् भू अ से बभूव बनाइये । भविता भी पूर्ववत् । रहने, उपस्थित होनेके विषयमे आज्ञा, स्वीकार आदि हो कर्तामे लोट् । अस्तु तु–तातङ् । तस्–ताम् स्तां सन्तु । श्नसो अकारलोप । मध्यमपुरुषएकवचन । एधि-अस् सि सेर्हि दशामे ।

। ७१ । घ्वसो –घु अस् (अनयो द्वन्द्व) एत् हो । घुसज्ञक दाधा, अस् इनको एत्व हो हि परे, अभ्यासका लोप भी हो । अन्त्य अल (स) को एत्व । अ ए हुझल्भ्यो हेर्धि । श्नसो -अकार लोप । एधि । शङ्का—अस हि दशामें हि को धि आदेशको बाधकर घ्वसोरेद्धौ–से स को एत्व करनेपर झल्से परे नही, धि आदेश कैसे ? तब कहा–आभीयत्वेन—असिद्धवदत्र–आभात् सूत्रमें समाप्ति तक आभीयसज्ञक (एत्व) असिद्ध होगा । झल् मिलेगा, हि को (तुह्यो) तातङ आदेशको बाधकर परत्वात् –त्व प्राप्त था, तब कहा–तातङ् पक्षमे एत्व नही होता, क्यो नही होता ? परेण तातङ् आदेश पर है उससे एत्व बाधा जायगा ।

ननु तातङ् होनेपर स्थानिवद्भावसे हि का आरोप कर एत्व क्यो नही ? उत्तर-सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधित तद्बाधितमेव । सकृद्–एकवार गतौ–शास्त्रयो प्रवृत्तौ एकबार शास्त्रमें प्रवृत्ति हुई, समानवलवालोमे जो बाधा गया वह धक्का खाता ही रहेगा । पुनः प्रवृत्ति नही होगी । स्त । तुम लोगका वर्तमान रहना । असूसे आट् मेर्निः । अह असानि—मुझकर्तामे उपस्थित रहनेकी प्रवर्तना । आसीत् था भूतकालिक उपस्थिति कर्तामें लुङ् तिप् आदि अस्तिसिचो से ईट् आट वृद्धि । आसीत् आस्ताम् । दो कर्तामे भूतकालिक विद्यमानता । अस् तस् ताम् आट् । ननु तसादि प्रत्ययपरे परत्वात्

आस्ताम् । आसन् । स्यात् । भूयात् अभूत् । सिचोऽस्तेश्च विद्यमानत्वेन विशेषणादीण्न ।(७२)उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः८।३।८७। उपसर्गस्थ प्रादुसश्च परस्यास्तेः सस्य ष स्याद्यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रादुःष्यात् । निषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्पर किं ? अभिस्त मृजूष् शुद्धौ ।(७३) मृजेर्वृद्धिः७।२।११४।

आटको बाधकर श्नसो से अकारलोप हो जाय । अजादि नही रहेगा आट् कैसे ? तब कहा श्नसोः का अकारलोप आभीयसज्ञक है असिद्ध होगा । असिद्धवत् अत्र आभात्—भसज्ञा पर्यन्त असिद्धिसे अजादि मिलेगा । आट् होगा । आसन् आसी आस्तम् आस्त । आसम् आस्व आस्म । विधिलिङ् मे स्यात् स्याता स्युः । स्या. स्यात स्यात । स्या स्याव स्याम । आशीर्लिङ् मे अर्धधातुकसज्ञा होनेपर अस् स्थाने भू आदेश भूयात् अभूत भी पूर्ववत् गातिस्थासे सिच् लुक् और अभूत् मे अस्तिसिचोऽपृक्ते–सूत्र से ईट् आगम क्यो नही, विद्यमान अस् होनेपर ईट् होता है । भू आदेशसे अस् उपस्थित नही रहा न ईट् । उपसर्ग और प्रादुस् (द्वन्द्व) से परे अस्के स को ष हो, य परे, अच्परे भी । इण्को अधिकार, यच्पर -यचौ परौ अस्मात् । (द्वन्द्व) इण् उपसर्गसे जुडा, प्रादुस् से नही । यकार परेका उदाहरण निष्यात् स को ष ।

प्रादुस् स्यात् । य परे स को ष, ष्टुत्वेन ष । अच्परे षत्वका उदाहरण—निस् अन्ति । अच्परे स को ष । प्रादुष्षन्ति । यच् पर क्यों पडा ? अभिस्तः यहा का स, न य परे है, न अच्परे । मृजू शुद्धौ, ऊ इत्, विकल्प वास्ते । षित् क्यो षिद्भिदादिभ्य से अङ् होनेके लिए । वस्तुत भिदादिगणमे मृजिका पाठ प्रशस्त है, षित् न करें । शुद्धि, माजना सफाई करना, स्वच्छताकीक्रियावाचक मृज् धातुसे वर्तमानकालिकशुद्धिक्रियाके कर्तामे लट्—ति मृजि=ति । ७३ । मृज के अवयव इक्को वृद्धि हो धातुप्रत्यय=धातुसे विधान हुआ प्रत्यय परे । धातो. स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम् । गुणको बाधकर (वा०) क्किति ङिति अजादि प्रत्यय परे हो, यह वृद्धि विकल्पसे हो जाय । इति वृद्धिः । मार्ज् ति । ज को ष (व्रश्चभ्रस्ज सूत्रसे) त ष्टुत्व ट मार्ष्टि वह माजता धोता, सफाई स्वच्छता करता है । मृष्टः द्विकर्तृकवर्तमानकालिक

मृजेरिको वृद्धिः स्याद्धातुप्रत्यये परे । 'क्ङित्यजादौ वेष्यते' व्रश्च इति ष । मार्ष्टि मृष्ट । मृजन्ति-मार्जन्ति । ममार्ज । ममार्जतु ममृजतु । ममार्जिथ ममार्ष्ठ मार्जिता मार्ष्टा । मृड्ढि अमार्ट अमार्ड अमार्जम् अमार्जीत् अमार्जिष्यत्,

---

शुद्धिकरणक्रिया । मृज तस् । अपित्सार्वधातुक तस् ङित् है न वृद्धि, न गुण । ष, त–ट । मृष्ट मृजन्ति । मृज अन्ति दशामे अजादिप्रत्यय (धातुसे विहित झि को) अन्ति है । अजादि किति ङिति परे मृजेर्वृद्धि विकल्पसे । मार्जन्ति पक्षमे न वृद्धि । मार्क्षि मृष्ठ मृष्ठ । मार्ज्मि मृज्व मृज्म । परोक्षकालमे माजना धोना झाड लगाना क्रिया हो चुकी हो, परोक्षे लिट् ति णल् । मृज अ द्वित्वादि, मृज–मृज ममृज मृजेर्वृद्धि । ममार्ज ममार्जुः । ममृजु अतुस् उस् परे अजादि होनेसे विकल्प वृद्धि । विशेष–थल्परे ऊदितो वा से इट्, वृद्धि । ममार्जिथ । न इट् । ज को व्रश्चसे ष थ–ठ ममार्ष्ठ ममार्जथुः ममृज ममार्ज । ममार्जिव ममृजिव, ममृज्व ममार्जिम ममृज्म । अनद्यतनभविष्यकालमे शुद्धिकरण क्रिया हो, श्व मार्जिता मृज् ता । इट् वृद्धि जब न इट् ज–ष त—ट । मार्ष्टा मार्जिता मार्जितारौ मार्जितारः । मार्ष्टासि मार्ष्टास्मि । मार्जिष्यति मार्जिष्यत मार्जिष्यन्ति न इट् मार्क्ष्यति मार्क्ष्यामि । शुद्धिकरण क्रियाके लिए आज्ञा आवेदन हो लोट् । मार्ष्टु मृष्टात् मृष्टाम् मार्जन्तु मृजन्तु । मृड्ढि तुम स्वच्छता करो, पोछा लगाओ, मध्यमपुरुष । एकवचन सि–हि । मृज्–हि जो पित नही वह ङित् है । न वृद्धि ज को ष–जश् ड । हेर्धि मृड् धि । ध को ढ मृड्ढि मृष्टात् मृष्ट मृष्ट । मार्जानि मार्जाव मार्जाम । लङ्–अनद्यतन भूतकालमे स्वच्छता हो गयी हो, अमृज् ति, इकार लोप, वृद्धि रपर, अमार्ज त् । हल्ङ्याद्दिसे तलोप, व्रश्चसे ज को ष, जश् चर । अमार्ट अमृष्टाम् आमार्जन् अमृजन् । अजादि परे वा वृद्धि । अमार्ट् अमृष्टम् अमृष्ट । अमार्जम् अमृज्व अमृज्म शुद्धिकरण की सम्भावना, कार्यमे लगानेकी कामना । मृज्यात् मृज्याताम् मृज्युः । मृज्याः मृज्यात मृज्यात । आशीर्लिङ्मे स्वच्छता बढानेकी शुभकामना मृज्याः मृज्यास्त मृज्यास्त । मृज्यासम् । शुद्धिकरण क्रिया समाप्त हो कर्तामे लुङ् ति अट् ऊदितो वा इट् । अमृज् इ स ईत् । इट ईटि सलोप । दीर्घ वृद्धि । अमार्जीत् अमार्जिष्टाम् अमार्जिषुः । अमार्जीः अमार्जिषम् । जब न इट् अमार्ज स ईत् । ज–ष क्ष । अमार्क्षीत् अमार्ष्टाम् अमार्क्षुः । अमार्क्षीः अमार्ष्टम् अमार्ष्ट । अमार्क्षम् । अमार्क्ष्म । अमार्जिष्यत् अमार्क्ष्यत् ।

रुदिर् अश्रुविमोचने। (२४७४) रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।२।७६। रुद्, स्वप्, स्वस्, श्वन्, जक्ष् एभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्येट् स्यात। रोदिति। रुदित। हौ परत्वादिटि धित्व न। रुदिहि। **(२४७५) रुदश्च पञ्चभ्यः** ७।३।८९। हलादेः पित सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईट् स्यात्। **(२४७६) अड्गार्ग्यगालवयोः** ७।३।९९। अरोदीत् अरोदत। अरुदिताम। अरुदन्। अरोदी

१०६७ रुदिर रुदधातुका अश्रु विमोचन आसु चुवाना, रोनेकी क्रिया। इर इतका फल इरितो वा अङ। अश्रुविमोचन व्यापारवाचक रुदधातुसे वर्तमानक ि क रुदनकर्तामे लट ति शप् लुक्। लघूपधगुण। रोदति। तिङ् शित्सार्वधातुकसज्ञा। इट्का विधिसूत्र। (७४) रुदादिभ्य इट्, वलादिकी अनुवृत्ति। रुद स्वप श्वस अन यक्ष। इन धातुओसे परे वल् प्रत्याहारके अक्षर आदि हो, ऐसे पार्वधातुकको इट् हो। ऐसा लक्षण ति, उसको इट। टित आदिमे हो। रोदिति रोना है आसु गिरती है। रुदनकर्ता दो हो तस् वलादि सार्वधातुक है। इट। रुदितः ङित्से गुण नही। रुदन्ति। वलादि नही, न इट्। बहुकर्तृक वर्तमानकालि करुदनक्रिया। रोदिषि रुदिथः रुदिथ। रोदिमि रुदिव रुदिम, हमसब रोते है। रोना क्रिया अनुमानका विषय हो, तब कर्तामे परोक्षे लिट आदि। रुरोद रुरुदतु रुरुदु। रुरोदिथ रुरुदथु रुरुद, रुरोद रुरुदिव। रोदिता रोदितारौ रोदितार। रोदितासि रोदितास्थ रोदितास्मि। रोदिष्यति रोदिष्यन्ति रोदिष्यसि रोदिष्यामि। रोदितुरुदितात् रुदिता रुदन्तु। रुदिहि परत्वात इट् होनेसे झुझल्भ्य मे हिको धि नही, हुआ। हि पित् नहीं ङित् है गुणनिषेध। रुदितात् रुदित रुदित। रोदानि रोदाव रोदाम।

(२४७५) रुदश्च—उक्त पाच धातुओसे परे हलादि हो पित् हो सार्वधातुक हो अपृक्त=(एक अल् वर्णरूप हो) को ईट् हो। नाभ्यस्तस्यसे पित् सार्वधातुक उतो वृद्धि से हलि, गुणो (से) अपृक्ते। ब्रुवमे इट् अनुवत्त। (७६) अट् होता है, गार्ग्यगालव दोनो आचार्यके मतमे। रुदादि पाचधातुसे हलादि पित् सार्वधातुक अपृक्तको अट् हो। अरोदत् अनद्यतन भूतकालमे रोया था। अरुदत् गुण। गार्ग्यगालव मते अट् अरोदत् अन्य मते। रुदश्चमे ईट् पार्वधातुक परे है। अरोदीत् अरुदितम अरुदित। पित् नही, न इट् न अट्। अरोद. अरोदिहि अरुदितम् अरुदित। अरोदम् अरुदिव अरुदिम। लिङ् लकार रुद त दशामे यासुट्को बाधकर अट् इट् दोनो प्राप्त हुए, तब कहा प्रकृति

अरोद अरोदम् । प्रकृतिप्रत्ययविशेषापेक्षाभ्यामडीड्भ्यामन्तरङ्गत्वाद्यासुट् । रुद्यात् । अरुदत् । अरोदीत् । ञि ष्वप् शये । स्वपिति स्वपित । सुष्वाप सुषुपतु । सुषुपु । सुष्वपिथ–सुष्वप्थ । (२४७७) **सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः** ८।३।८८। एभ्य सुप्यादे सस्य ष स्यात । 'पूर्वं धातुरुपसर्गेण

और प्रत्ययकी दोनो की विशेष अपेक्षा रखनेवाले अट् ईटसे यासुट् अन्तरङ्ग है । अलपापेक्षमन्तरङ्ग यासुट् हुआ । बह्वपेक्ष बहिरङ्ग, हलादि पित् सार्वधातुक अपृक्त आदि बहुतोकी अपेक्षासे अट् इट् बहिरङ्ग हुए । रुद्यास्ता रुद्यासु । अरुदत । रोया, रो दिया, इरितो वासे चिन्हको अङ् । जब न अङ् चिलको सिच् आदि । अरोद इस ईत् । इट ईट सलोप । अरोदीत् अरोदिष्टा अरोदिषुः । अरोदी. अरोदिप्टम् अरोदिष्ट । अरोदिषम् अरोदिष्व अरोदिष्म । अरुदत् अरुदताम् अरुदन् ।

स्वप् धातुका शयनक्रिया इन्द्रिय शिथिलता चक्षुनिमीलन आख मूदनेकी विचित्रक्रिया । षोपदेश, आर्धधातुके, अनिट् । स्वप् ति दशामे रुदादिभ्य मे इट् । स्वपिति । सोना क्रियाके दो कर्ता हो स्वपित स्वपन्ति । स्वपिपि स्वपिथः स्वपिथ । स्वपिमि स्वपिव स्वपिम । कब सोया था समझमे न आया हो लिट् आदि । द्वित्व अभ्यासके सम्प्रसारण पूर्वरूप उपधावृद्धि । आदेश रूप सको ष । सुषुपतु । स्वप् अतुस दशामे कित्परे जानकर वचि स्वपि यजदीनासे सम्प्रसारण आदि करके । सुप+अतुसको द्वित्व आदि कार्य । एव सुषुपु. । पहले सम्प्रसारण तब द्वित्व । थल् परे इट् सुष्वपिथ ।

(७७) सु वि निर दुरसे परे सुपि सूति समके सको ष हो स्वप्को सम्प्रसारण सुपि सूति शब्द कृदन्त हे । सम शब्द मान्य । मूर्धन्य कार्य । सहे साड से सह आया । सुषुप्ति.सुपूति सुषम. सुस्वप्नःमे स्वप् धातु है । षत्व नही, कृतसम्प्रसारण न होनेसे, कृतसम्प्रसारणस्य स्वप् धातो षत्वमिति भाष्ये, यदि ऐसा सुषुषुपतु =सुपूर्वक स्वपधातुको षत्व कैसे ? तब कहा पूर्वधातु (प्रयोग सिद्धिके अनुरोधसे) पहले धातु उपसर्गसे जुडता है (पश्चात्•साधनेन) बादमे कारकसे । अत द्वित्वके पहले ही पर होने से जुडगा । सुसुप् । तब दूसरे सुको षत्व । पुन प्रसङ्गविज्ञानात् परिभाषासे षत्व वाला सुपको द्वित्व होगा । दोनो खण्डमे ष निर्बाध है । अत भाष्यमे सुपि भूतो द्विरुच्यते किति लिटि परे । पर होनेसे सम्प्रसारण तब द्वित्व होगा । सशय=जब षत्व करके द्वित्व करेंगे, द्वित्वकी दृष्टिमे षत्व असिद्ध होगा, तब कहा पूर्वत्रा

पुज्यते'। किति लिटि पर वात्सम्प्रसारणे षत्वे च कृते द्वित्वम्। पूर्वत्रासिद्धी यमद्विर्वचने' सुषुषुपतु। सुषुषुपु। पिति तु द्वित्वेऽभ्यासस्य सम्प्रसारम्। षत्वस्यापिद्धत्वात्तत पूर्व 'हलादि शेष' नित्यत्वाच्च। तत सुपि रूपाभावान्न ष। सुषुप्वाप। सुस्वप्ता। अस्वपीत–अस्वपत्। स्वप्यात। सुप्यात्। सुषु या

सिद्धीय–पूर्वस्मन्निति पूर्ववत्=पूर्वशास्त्रकी अपेक्षा पर शास्त्र कहा असिद्ध होना है, जहा द्विर्वचन न हो। यहा द्वित्वका प्रसङ्ग है। असिद्ध नही होगा। यदि ऐसा सुसुस्वापके भी पूर्वखण्डमे ष सुनाई पडे, तब लिखा अपिति अकिति =जहा पिति णल् है वहा किति नही, इसलिए वचिस्वपियजादीना नही लगेगा। कितरे न होनेसे। अत लिटि अभ्यासस्य पूर्वखण्डस्य सम्प्रसारण भविष्यति सुसुप (स्वप अ दशामे सुविनिर्दुर्भ्यं के षत्वको असिद्ध कर हलादिशेष होगा, पहले हलादिशेष जो नित्यत्वाच्च=नित्य शास्त्र भी है, षत्व हो या न हो। हलादिशेष होगा तत=हलादिशेषके बाद सुप ऐसा रूप न होनेसे न ष केवल षु रहेगा एकदेशविकृतिसे अनन्य होकर भी, अभ्यास अर्थवान नही, न ष"। सुस्वपिव सुस्वपिम। कल परसोकी शयन किया हो। स्वप्ता स्वप्तारौ स्वप्तार। स्वाप्तासि स्वप्तास्थ स्वप्तास्थ। स्वप्तास्मि। स्वप्स्यति, स्वप्स्यन्ति। स्वप्स्यामि। शयनक्रिया प्रेरणा विषय हो, वह सोजाय, तुम सो जाओ, हमसब सो जाय। स्वपितु स्वपितात् स्वपिता स्वपन्तु। स्वपिहि स्वपितात स्वपित स्वपित। स्वपानि स्वपाव। बीते भूत=समाप्त शयनक्रियाका कर्ता हो लङ आदि अस्वप् त। रुदश्च पञ्चभ्य से ईट। गार्ग्य गालव मतमे अट भेदम अस्वपीत् अस्वपत्। अस्वपिता अस्वपन्। अस्वपी अस्वप अस्वपितम् अस्वपित। अस्वपी अस्वपम् अस्वपिव अस्वपिम। विधिलिङ शयनक्रियाके विषयमे प्रवृत्ति करना ही स्वप् या त। स्वप्यात् स्वप्याता स्वप्यु। लिङाशिषि कित है। तब किति परे वचि स्वपि—सूत्रसे सम्प्रसारण सुप्यात् सुप्यास्ता सुप्यासु। सुप्या सुप्यास्त सुप्यास्त। सुप्यास सुप्यास्व सुप्यास्म। सु उपसर्गसे परे षत्व समाप्त शयनक्रियाके कर्तामे लुङ् आदि। अ स्वप् स ईत्। अनिट् है। इटईटिसे सलोप नही, वदव्रजहलन्तस्याच से वृद्धि। अस्वाप्सीत् अस्वाप्ता अस्वाप्सु। अस्वाप्सीः अस्वाप्तम् अस्वाप्त। अस्वाप्स अस्वाप्स्व।

श्वस् प्राणने प्राण=स्वास लेनेके अनुकूलक्रिया। वलादि आर्धधातुकमे सेट है। वलादि सार्वधातुक परे रुदादिभ्य से इट। श्वसिति सास लेना क्रिया वाचक स्वस्से वर्तमाने लट् इट्। श्वसित श्वसन्ति श्वसिमि श्वसिथ" -श्व

त् । अस्वाप्सीत् । श्वस प्राणने । श्वसिति । श्वसिता । अश्वसीत् । अश्वसत् श्वस्याताम् । श्वस्यास्ता ह्ययन्तक्षण इति न वृद्धि । अश्वसीत् ।७० अन च । अनिति । आन । अनिता । आनीत्-आनत् । (२४७८) अनिते. ८।४।१९ उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यानितेनस्य ण. स्यात् । प्राणिति । जक्ष भक्षहसनयो. जक्षिति । जक्षित । (२४७९) अदभ्यस्तात् ७।१।४। झस्य अत्स्यात् । अन्ता

सिथ । श्वसिमि श्वसिवः श्वसिम.। शुश्वास शुश्वसतु शुश्वसु । श्वसिता श्वसितारौ श्वसितासि । अह श्वसितास्मि । श्वसिष्यति श्वसितु श्वसितात् श्वसिता श्वसन्तु । श्वसिहि श्वसितात् श्वसित श्वसित । श्वसानि श्वसाम । हमसब सास ले । लङ्लकारे विशेषकाय रूपञ्च-पञ्चम्य ईट—गालव मते अट् । अश्वसात् अनद्यतनभूतकालमे सास लिया था । अश्वसत् अश्वसता अश्वसन् । अश्वस. अश्वस्तम् अश्वस्त । अश्वसम् अश्वस्व । सास लेनेके प्रति प्रेरणा हो या शुभकामना, आशीर्वाद दोनोमे । श्वस या त । श्वस्यात् श्वस्याता श्वस्यु । श्वस्यास्ता श्वस्यासु. । सास ले चुका । अश्वसीत् अश्वस्ता अश्वसु । अश्वसी अश्वस्त अश्वस्त अश्वसम् ।

१०७० अन् धातु भी प्राण ग्रहण करने, सास लेने अर्थमे है । वलादि सार्वधातुक परे इट् । अनिति—प्राण लेता है अनित अनन्ति । अनिसि अनिथ. अनिथ । अनिमि अनिव अनिम । सास लेना क्रिया सहित कर्ता न देखा गया हो लिट् आदि । अन अन अअन आअन आन आनतु आनु । आनिथ आनथु. आन । आनिव आनिम । परश्व अनिता परसो फुरसतमे सास लेगा । अनिष्यति लङलकारमे ईट्, आनन् । आनी आनः आनत आनत, आनीम् आनम् आनिव आनिम । अन्यात् अन्यास्ता । लुङ्लकारमे आ अन इस् ईत् । इत्यादि आनीत् आनिष्टा आनिषु । आनी आनिष्ट आनिष्ट । आनिष आनिष्व आनिष्म, आनिष्यत् ।(७८)अनिते. इस सूत्रमे रषाभ्या नोण. आया उपसर्गात् भी । उपसग (प्र, परा, निर आदि)मे स्थित णत्वका निमित्त रष, उससे परे अन धातुके नको ण हो । भिन्नपद है समानपद नही,। णत्व प्राप्त नही था । प्राणिति मे णत्व हुआ । यक्ष धातुका भक्षण और हसनेकी क्रिया वर्तमाने लट् ति । वलादि सार्वधातु है रुदादिभ्य से इट । जक्षिति । दो कर्ता हो, तस् जक्षित. जक्षति । जक्षिसि । जक्षित्यादय. षटसे अभ्यस्तसज्ञा होनेपर झको अत् का सूत्र—

(७९) अदभ्यस्त सज्ञकसे परे झको अत् हो । इससे अत् हुआ

पवाद । जक्षति । 'सिजभ्यस्त—' इति झेर्जुस् । अजक्षुः । अयमन्तस्थादि-
रित्युज्ज्वलदत्तो बभ्राम । इत्यादय पञ्चगता ।

जागृ निद्राक्षये । जागर्ति । जागृत । जाग्रति । 'उषविद' इत्याम्वा ।
जागराञ्चकार-जजागार । (२४८०) जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ७।३।८५।

झोऽन्त को बाधकर । जक्षिसि जक्षिथ जक्षिथ । जक्षिमि जक्षिव जक्षि-
म । वलादिसार्वधातुक परे इट्, जजक्ष जजक्षतु जजक्षुः । जक्षिता जक्षि-
ष्यति खायेगा हमेशा । जक्षितु खाओ हसो । जक्षितात् जक्षिता जक्षतु ।
जक्षिहि । जक्षामि जक्षाव अनद्यतनभूतकालमे खाया हो कर्तामें लङ् ईट् अट्
का प्रसङ्गभी जोडें । अजक्षीत् अजक्षत् अजक्षता अजक्षु । अजक्षीः अजक्षः
सिच अभ्यस्तसे परे झिको जुस् प्रसिद्ध है । अजक्षत अजक्षत । अजक्षी अजक्षं
अजक्षिव । अयं अन्त स्थात् यह धातु तालव्यान्त है ऐसा विचारकर उज्वलदत्त
आचार्य भ्रममे पड गये । क्योकि जक्षन्क्रीडन्रममाण । इस उपनिषदमें चवर्ग
तृतीयान्त निर्विवाद है । धातु वृत्ति आदि न्यास ही पढा है । जागृनिद्राक्षये
जागना नीद टूटना, चक्षु उन्मीलनके अनुकूल क्रियावाचक जागृ धातुमे
वर्तमानकालिक जागना क्रिया कर्तामे लट । जागृ ति शप् लुक् । सार्वधातुक
परे गुण-रपर । जागर्ति जागता है । एककर्तृकवर्तमानकालिक जागरणानुकूल
व्यापार । जागृत ङित् है गुणनिषेध जाग्रति, झको अत् अदभ्यस्तात्से । जक्षि-
त्यादय षटसे अभ्यस्तसञ्ज्ञक जानकर । जागृ अति अपित् ङित्से गुणनिषेध ।
ऋको यण् बहुकर्तृक चक्षुरुन्मीलन क्रिया जागर्षि जागृथ. जागृथ । जागर्मि
जागृव जागृम । कब जाना ऐसा अनुमानका विषय हो तब कर्तामे परोक्षे
लिट, कास अनेकाचसे नित्य आमप्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर उषविदजागृ-
भ्य से विकल्प आम । अरगुणे जागराम् लिट । आम से लट का लुक् । कृ
लिटका अनुप्रयोग । जागराचकार । जब आम् नही तब जजागार-जागृ
जागृ जजागृ अतुस् परे कित्से गुणनिषेध प्राप्त उसे बाधकर गुणविधायकसूत्र
। २४८० । जागृ धातु को गुण हो जो मिदेर्गुणः से आया । वि चिङ्
णल् ङित् (द्वन्द्व समास) इनसे अन्यस्मिन् वृद्धि विषये प्रतिषेधविषयसे च
प्रवृत्ति । जहा वृद्धिका विषय हो ङितसे गुण का प्रतिषेधविषय हो वहा गुण
हो जाय । विशब्दसे वादिप्रत्यय, जजागृवान् इससे गुणवान् हुआ । जजागरतु
जजागरिथ—गर्थु । जजागर जजागरिव-म । चिच् णल ङित् परे गुण नही
होता, पर्युदास से । जैसे जागृवि वि है गुण नही हुआ । अजागारि चिण् है ।

जागर्तेर्गुणः स्याद्विचिण्णल्ङिद्भ्योऽन्यस्मिन्वृद्धिविषये प्रतिषेधविषये च। अजागरुत्। अजाग। अजागृताम्। अभ्यस्तत्वाज्जुस्। (२४८१) जुसि च ७।३।८३। अजादौ जुसीगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात्। अजागरुः। अजादौ किम्? जागृयुः। आशिषि तु जागर्यात्। जागर्यास्ताम्। जागर्यासुः। लुङि अजागरीत्। 'जागृ इस्' इत्यत्र यण्प्राप्तः तं सार्वधातुकगुणो बाधते, तं सिचि वृद्धिः, तां जागर्तिगुणः, तत्र कृते—हलन्तलक्षणा वृद्धिः प्राप्ता, 'नेटि' इति निषिद्धा,

---

णल्—जजागर। ङित् जागृथ। वृद्धि के विषयमें ण्वुल् जागरक। घञ् जागरः। जागर्यात्। यहाँ कित् होनेपर भी गुण देखा गया। जागरिता जागरितारौ जागरितारः जागरितासि। जागरिष्यति जागरिष्यन्ति जागरिष्यत जागरिष्याम। जागर्तु जागृतात् जागृतां जाग्रतु। जागृहि जागृतात् जागृत जागृत। जागराणि जागरत्वम्। अनद्यतनभूतकालमे जागरण क्रिया समाप्त हुई हो कर्तामे लङ ति इकार लोप, अजागृ त्। अर्गुण, हलन्त त् का लोप, रेफ विसर्ग अजागृत। तसको ताम्। अजागरु। जागृ अभ्यस्तसंज्ञक है झि को अत प्राप्त था, अत सिच अभ्यस्तविदिभ्यश्च झिको जुस्। जक्षित्यादय से अभ्यस्तसंज्ञा। अजागृ उस्। इस स्थितिमे सार्वधातुकमपित् के ङित्से गुणनिषेध प्राप्त उसे बाधकर गुणविधायक सूत्र—

(८१) जुसि च अङ्गका अधिकार मिदेर्गुणःसे गुण। इको गुणवृद्धिसे इक, आया जुसि च=अजादि जुसपरे ही इगन्त अङ्गको गुण हो। इगन्त अङ्ग जागृ है अन्त्य अल ऋको अर्गुण। अजागरु अजाग अजागृतम् अजागृत। अजागर अजागृव अजागृम। अजादि जुसि क्यो कहा? जागृयुः। यहा गुण न हो। विधि लिङ् मे यासुट् ङित् है गुणनिषेध। जागृयात् जागृयाता जागृयुः। जगना क्रियाके प्रति जगते रहनेकी कामना आशीर्वाद है। जागृयात् जागृयाता जागृयुः। जुसि च अजादि परे गुण कहता है। जागर्यात्। आशीर्वाद जगने प्रति शुभकामना किदाशिषि सूत्रसे यासुट् कित है निषेध होगा, गुण कैसे? जाग्रो अविचिण्णल् विशेष सूत्रसे गुण जागर्या जागर्यास्त जागर्यास्त जागर्यास जागर्यास्व—स्म। निद्रा चक्षु निमीलन समाप्त हो जागृधातुसे भूते लुङ ति सिच् अट्, अजागृ इ स ई त दशामे यण प्राप्त,उसेबाधकर, सार्वधातुक गुण प्राप्त को बाधकर, सिचिवृद्धि परस्मैपदेषु प्राप्त वृद्धिको बाधकर जाग्रोऽविचिण्णल्–विशेष सूत्रसे गुण रपर। अजागर ईत् इस दशामे अत्र कृते—गुण होनेपर वदव्रज हलन्त्यस्याच से वृद्धिप्राप्त, उसका निषेध नेटि सूत्रसे,

ततः 'अतो हलादेः' इति बाधित्वा 'अतो ल्रान्तस्य' इति वृद्धिः प्राप्ता, 'ह्म्यन्त–' इति निषिध्यते । तदाहुः —

'गुणो वृद्धिर्गुणो वृद्धिः प्रतिषेधो विकल्पनम् ।
पुनर्वृद्धिर्निषेधोऽतो यण्पूर्वाः प्राप्तयो नव ।' इति ।

दरिद्रा दुर्गतौ । दरिद्राति । (२४८२) इद्दरिद्रस्य ६।४।११४। दरिद्रातेरिकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रितः । (२४८३) श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२। अनयोरातो लोपः स्यात्क्ङिति सार्वधातुके ।

इडादौ सिचि न वृद्धिः । इस निषेधको बाधकर अतो हलादेः लघो से वृद्धि प्राप्त अथवा ल्रान्तस्य सूत्रसे वृद्धि प्राप्त, उसका भी निषेध ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृसे । वृद्धि नही होने पायी, इसी भावको श्लोकमें सुनाते हैं ।

गुणोवृद्धि (सार्वधातुकगुण सिचिवृद्धि) गुणोवृद्धिः जाग्रो–से गुण, हलन्तवृद्धि प्रतिषेध नेटिसे । विकल्प अतोहलादे लघो विकल्प पुनः वृद्धिः ल्रान्तस्य, निषेध ह्म्यन्तसे अजागरीत् अजागारिष्टाम् अजागारिषु । अजागरी अजागरिष्टम् अजागरिष्ट । अजागरिषम्मे जगा । १०७३ दरिद्रा धातुका दुर्गति अर्थ धनहीनीभवन विना धनके कष्ट भोगना । दरिद्राति एक कर्तामे दरिद्री=धन विना दुखी होना शप् लुक् ।

। २४८२ । इत् दरिद्रस्य (सौत्र ह्रस्व) दरिद्राके आ को इ हो हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे । दो दरिद्र हो रहे हो दरिद्रा तस् हलादि आ को इ दरिद्रितः । सूत्रमे गमहनसे वि–ङति, ईहल्यघो से हलि, अत उत् से सार्वधातुक आया । दरिद्रति । दरिद्राझि जक्षित्यादिमे आनेसे दरिद्राको अभ्यस्तसंज्ञा जिसका फल अदभ्यस्तात्से झ को अत् आदेश होना । आकार लोपका सूत्र । ८३ । श्ना और अभ्यस्तसंज्ञकके अन्त्य अल् आ का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुक परे । इससे आकार लोप । दरिद्रासि दरिद्रिथ दरिद्रिथ । दरिद्रामि दरिद्रिव दरिद्रिम । इद्दरिद्रस्यसे आ को इत्व । कास्प्रत्ययात् सूत्रके भाष्यमे अनेकाचसे भी लिट परे आम् प्रत्यय कहा । कहा । दरिद्रा कृ लिट् । दरिद्राञ्चक्रतुः ।

आत औ णल सूत्रमे (आत औ) पढते वृद्धिके साथ औ ययौ हो जाता, औ क्यो पढा ? दरिद्राधातुके आ का णलिपरे ददरिद्रौ रूपमे आकार लोप होनेपर भी औ सुनाई पडनेके लिए । अन्यथा ओकार सुनाई पड़ता । इसी औकारके श्रवणके लिये औकार विधानसे दरिद्राधातुको आम् नही होता

दरिद्रति। अनेकाच्त्वादाम्। दरिद्राञ्चकार। 'आत औ णल.' इत्यत्र ओ इत्येव सिद्धे औकारविधान दरिद्रातेरालोपे कृते श्रवणार्थम्। अतएव ज्ञापका-दाम्नेत्येके। ददरिद्रौ। ददरिद्रतुरित्यादि। यत्तु णलि ददरिद्रेति, तन्निर्मू-लमेव। 'दरिद्रातेरार्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्य' 'लुङि वा' 'सनि ण्वुलि

आम् होता णल न हो पाता। अतएव-इसलिए उसी ज्ञापनसे आम् प्रत्यय नही होता। किसीका मत। द्वित्व आदि ददरिद्रा औ आकारलोप ददरिद्रतु ददरिद्रु। ददरिद्रिथ=थु-द्रु) ददरिद्र औ, द्वित्व द्रिम। यत्तु—जिसका मत है णलि परे ददरिद्रा यही बनता है कहना निर्मूल=प्रमाण नही मिलता। कास प्रत्यय वस्वेकाचाद् सूत्रो पर भाष्य कैयटसे विरोध=भी है(वा०) दरिद्रा धातुके आर्धधातुककी इच्छा मे आकारलोप कहे। लुङ् लकारमे विकल्पसे सन्, ण्वुल् ल्युट परे न। आलोप नही होता। यद्यपि किति परे आतोलोप-से आलोप विधान है विना कितिपरे भी आकार लोपके लिए सूत्र। आर्धधातुक होनेके पहले ही होता है इसलिए दरिद्रातीति दरिद्र। जो विना धनके कष्ट भोगता हो। पचादि अच्की विवक्षामे पहले आलोप। यदि आर्ध-धातुक होनेपर आलोप होता (स्याद्वध' आदन्त कारणवाला) ण प्रत्यय होता। आतोयुक् हो कर दरिद्राय बनता है। अदन्त नही रहेगा पहले लोप होने से, तब ण प्रत्यय भी नही होगा। लुङि परे आलोप विकल्पसे हो। अद्यतन्या वा इति वक्तव्यम्। अनद्यतनभूतार्थक विहित लुङ विभक्ति इष्ट है उसीका उदाहरण भाष्यमे दरिद्रायक मे ण्वुल हुआ। आलोप नही, निषेधसे। आतो-युक् दरिद्रायः जब ल्युट् अन आदेश, सवर्णदीर्घ हुआ आलोपके निषेधसे दरि-द्राण दरिद्रासति सन् परे आलोप नही,। अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा। इस न्यायसे वार्तिकसे प्राप्त आलोपका निषेध समझे। अन्यसे आलोप हो, न निषेध। दिदरिद्रासति। आतो लोप से आकार लोपका निषेध नही हुआ। भाष्यमे भी न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते। दरिद्रिता—तास आदि। इट् होने पर तास् को आर्धधातुकसंज्ञाके पहले वार्तिकसे आलोप। प्रसङ्गवशात् दरिद्रिष्यति दरिद्रातु दरिद्रितात् दरिद्रिता दरिद्रतु। दरिद्राहि दरिद्रित दरिद्रित। दरिद्राणि दरिद्राव-म। बीते कल परसोंमे दरिद्रहो चुका हो ति इलोप। अट् अदरिद्रात् अदरिद्रिता अदरिद्रु। जक्षित्यादयः षट् से अभ्यस्तसंज्ञा सिजभ्यस्तसे जुस्। अदरिद्रा अदरिद्रित—त। अदरिद्राम् अदरिद्रिव—म। विधि—लिङ् सार्वधातुक होनेसे

ल्युटि च न' । दरिद्रिता । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रु । दरिद्रियात दरिद्रयात् । अदरिद्रीत । इट्सकौ-अदरिद्रासीत । १०७४ चकासृ दीप्तौ । ह्रस्य अत् । चकासति । चकासाञ्चकार ।'धि च' इति सलोप, सिच एवेत्येके । चकाद्धि । 'चकाधि' इत्येव भाष्यम् । (२४८४) तिप्यसनते ८।२।७३। पदान्तस्य सस्य द स्यात तिपि न त्वस्ते । (ससजुषोंरित्यस्यापवाद) अचकात् अचकाद् । अचकासु । (२४८५) सिपिधातो रुर्वा ८।७।७। पदान्त-

---

इद्दरिद्रस्य इत्व । दरिद्रियात् यास्ता यासु । आशीर्लिङिमे कित्से आकार लोप दरिद्र्यात् । लुङ्लकारमे आ दरिद्रा ईस् ईत् । दशामे आलोप सलोप, दीर्घ **अदरिद्रीत् अदरिद्रिष्टा अदरिद्रिषु** । लुङ लकारमे विकल्पसे आलोप का विधान जब आलोप नही तब यमरमनमाता सक्च् से इट् । स् इ सईत् । इट ईटि सिलोप दीर्घ अदरिद्रिष्टा अदरिद्रिषु । द्रो द्रिष्टं ष्ट । अदरिद्रिष्यत ।

। ७४ । **चकासृ दीप्तौ** ऋ इत सेट्, प्रकाश चमक क्रियावाचक चकास धातुसे वर्तमानकालिक प्रकाश क्रियाके कर्तामे लट् आदि **चकास्ति चकास्त** चकासति । झ स्थानमे अत् अदभ्यस्तात् से । जक्षित्यादिगणमें पढे से षटसज्ञा । **चकास्सि चकास्थ चकास्थ** । चकास्मि चकास्व —म । हम सब कर्तामे वर्तमान चमकना क्रिया । अनेकाच्से आम् कृ लिट आदि । चकासाञ्चकार चकासिता चकासिष्यति । चकास्तु चकास्तात् चकास्ता चकासतु । चकाद्धि चकास–हि दशामे धि चसे सलोप । चकाधि यही सिद्धान्त है भाष्यसम्मत । परन्तु एकके मतमे सिच के स का लोप धिच सूत्रसे होता है । लोटमें सलोप नही होगा, **धिसकारे सिचो लोपः चकाद्धीति प्रयोजन** वार्तिक से । इस पक्षमे स को जश् द । चकाद्धि । भाष्यमे वार्तिक उडादिया गया । चकास्तात् चकास्त चकास्त । चकासानि चकासाव चकासाम । अनद्यतन भूतकालमे प्रकाश हुआ हो अचकात अ चकास त् दशामे ।

। ८४ । तिपिपरे रहते पदान्त स को द हो, **अनस्ते**=न अस्ति अनस्ति तस्य । अस के स को द न हो । पदका अधिकार झला जश से 'अन्ते' आया । अनस्ते क्यो पढा ? **सलिल सर्वमा इदम्**, आ शब्द अस धातुके लङमे तिप का रूप । बहुल छन्दासिसे इट्का अभाव । प्रसङ्गमे चकासके स को द । ति का हल्ङ्याब्भ्यादिलोप । वाऽवसाने द को त् **अचकात्**–द अचकास्ता **अचकासुः** । सिच अभ्यस्त–से झि को जुस् जक्षित्यादयःसे अभ्यस्तसज्ञा **अचका अचकास्तं**

तस्य धातो सस्य रु स्याद्वा । पक्षे द, अचका.–अचकात । १०७५ शासु अनुशिष्टौ । शास्ति । (२४८६) **शास इदङ्हलोः ६।४।३४।** शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति च । 'शासिवसि' इति ष । शिष्ट । शासति । शशास । शशासतु । शास्तु शिष्टात् शिष्टा शासतु । (२४८७) **शा हौ ६।४।३५।** शास्ते शादेश स्याद्धौ परे । तस्याभीयत्वेनासिद्धत्वाद्धेर्धि ।

अचकास्त । अचकासम् ।

। २४८५ । सिपि परे पदान्तधातुके स को रु हो विकल्पसे । पक्षमे द, अचकासीत् अचकासिष्यत ।

। १०७५ । शासु धातु उदित् सेट है । अनुशासनके अनुकूलक्रिया अर्थ । शब्दानुशासन अर्थानुशासन सम्बन्धानुशासन फलानुशासन । शास्ति अनुशासन क्रियावाचक शास्धातो वर्तमानशासनक्रिया कर्ता अर्थे लट ति । शपो लुक् । शिष्ट. । अङ्का उदाहरण अशिषत् । ८६ । शास धातु के उपधा (अन्त्य अलका पूर्ववर्ण) को इत् हो, अङि परे हलादि किति ङिति परे । अनिदितासे उपधाया किति अनुवृत्त । इससे इत्व शासति । शसिवसिघसीना च सूत्रसे स-ष, ष्टुत्व शिष्ट' शिष्टवान् । शासति । जक्षादिमे पढ़ने से अभ्यस्तसज्ञा जिसका फल झि को अत । शास्सि शिष्ठ शिष्ठ । शास्मि शिष्व शिष्म । आशास्तेमे इत्व नही, अट के योग्य परस्मैपदी न होने से । आङ्पूर्वक आत्मनेपद ही रहेगा । शशास शशासिथ शशासथु । शासिता शासितारौ शासितार । शासितासि शासितास्थ शासितास्थ । शासितास्मि शासितास्व शासितास्म । शासिष्यति शास्तु शासन करे । काममे प्रवृत्त करानेका विषय हो कर्तामे लोट् एरु । तु स्थाने तातङ् (आशीर्वाद अर्थ) शास तात् । शास इद हलो इत्व शासिवसि–षत्व ष्टुत्व । शिष्टात् शिष्टा तस–ता इत्व टुत्व (तुम अर्थानुशासन करो) त्व कर्तामे वर्तमानशब्दानुशासन प्ररणा विषयीभूत क्रिया मध्यमपुरुष एकवचन सि–सेर्हि ।

। ८७ । शाहौ शास धातुके स्थानमे शा आदेश हो हि परे । इत्व को बाधकर । शाहि । जब शासको शा आदेश कहेगे झलन्त नही मिलेगा हुझल्भ्यो हेर्धि से हि को धि कैसे ? तस्य आभीयत्वेन=वह शा आदेश आभीयसज्ञक है । असिद्ध होगा । झल मिलेगा हेर्धि । यद्यपि धि चसे सलोप होकर शाधि बनता शा आदेश क्यो ? तथापि सलोपकी असिद्धिसे शास इदम्–इत्व हो जाता, वह न हो इसलिए शाहौ सूत्र । अशात्-कल परसोकी समास शासनक्रिया

शाधि। अशात् अशिष्टाम् अशासु। अशात् अशा। शिष्यात्। 'सर्तिशास्ति–' इत्यङ्। अशिषत्। अशासिष्यत्। १०७६ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः। एतदादयः पञ्च धातवश्छान्दसाः। दीधीते। 'एरनेकाच' इति यण् दीध्याते। (२४८८) यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ७।४।५३। एतयोरन्त्यस्य लोपः स्याद्यकारे इवर्णे च परे। इति लोपं बाधित्वा नित्यत्वाट्टेरेत्वम्। दीध्ये। 'दीधीवेवी-

---

के कर्तामे लङ्। अशास त्। त का हल्ङ्यादिलोप। तिपि अनस्ते से स को द, चर्त्व त्। अशात् अशाद् अशिष्टा-तसको ता, शास इदसे इत्व। ष अशिष्टा अशासु। अभ्यस्तसंज्ञा, जुस हुआ। त्वम् अशा त्व कर्तामे अनद्यतनभूतकालिक शासनक्रिया। अभ्यास स्, सिपि परे धातुके स को रुत्व, सलोप पक्ष मे द, अशा अशात् अशिष्टम् अशिष्ट। अशासम् अशिष्व अशिष्म। लिङ—शासनविषयक आमन्त्रण निमन्त्रण प्रार्थना आदेश, कर्तामे विधिलिङ्। शास यात्। शास इदसे इत्व। शासिवसिघसीनाञ्च स को ष शिष्यात् शिष्याता शिष्यु। शिष्या शिस्यात शिष्यात। शिष्यास शिष्याव-म। अशिषत् अनुशासन समाप्तक्रिया। अशास् च्लि त्। सर्तिशास्ति सूत्रसे च्लि को अङ्, शासि इद हलो से इत्व, षत्व अशिष्टा अशासु अशिष. अशिष्ट अशिष्ट। अशिषम् अशिष्व अशिष्म। अशासिष्यत्। यदि शासन करेगा अवश्य सुधार होगा। अशासिष्यता अशासिष्यन् अशासिष्य।

।६७। दीधीङ धातुका दीप्ति प्रकाश चमक देवन—शोक चिन्ता क्लेश अर्थ। ङित्से आत्मनेपद एतदादय-यहांसे लेकर पाचधातु छान्दस वेदमे उपयोगी है दीधीते चमकता शोक करता है। माधव मतमे सत्य—आगे दीधी आते एरनेकाच से यण् दीध्याते दीध्यते। जक्षित्यादय षटसे अभ्यास सज्ञा झ को अत् अदभ्यस्तात् नियमसे। दीधीसे दीध्याथे: दीधीध्वे दीध्ये। दीधी धातुसे लिङ् उत्तमपुरुष एकवचन इट् एत्व। दीधी ए।

।८८। यि वर्णयो दीधी, वेवी इनके अन्त्यका लोप हो यकार परे, इकार परे भी। इससे इकार लोप प्राप्त, इटके इकार परे धीमे इलोपको बाधकर टेरे=नित्य होनेसे टि को एत्व। इश्च वणश्च ईवर्णौ तयो (द्वन्द्व से सप्तमी) तासस्तयो से लोप आया। लटको इट्। दीधीइ। यद्यपि इलोप पर है तथापि उसे बाधकर टेरे। लोप हो या न हो एत्व अवश्य होगा। कृताकृतप्रसङ्गो विधि: नित्य। यण् दीध्ये (एरनेकाच सूत्रसे) दीधीवहे दीधीमहे। अनेकाच जानकर आम्। दीधीआम सार्वधातुकार्धधातुकयो से

टाम् इति गुणनिषेधः । दीध्याञ्चक्रे । दीधिता । दीधिष्यते । १०७७ वेवीङ् वेतिना तुल्ये । वी गतीत्यनेन तुल्यऽर्थे वर्तत इत्यर्थ ।

अथ त्रय· परस्मैपदिन । षस षस्ति स्वप्ने । सस्ति । सस्त । ससन्ति । ससास सेसतु । सस्तु । सधि । 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति सलोपस्यासिद्धत्वात् 'अतो हे' इति न लुक । असत् असस्ताम् । अस । असत् । सस्यात् । असासीत् ।

गुण प्राप्त उसका नषेध दीधीवेवीटासे हुआ तब यण् दीध्याञ्चक्रे । दीधिता दीधी–ता इट होने पर इवर्ण परे मिता धीमे इ का लोप हुआ । एव दीधिष्यते ष्य इट् यीवर्णयो दीधीवेव्यो से इकारलोप । दीधीतां दीध्याता दीध्यता दीधीष्व दीध्याथा दीधीध्व । दीध्यै दीध्यावहै । अदीधीत अदीध्याता अदीध्यत । अदीधीथा अदीध्याथा अदीधीध्व । अदीधीया अदीधीवहि— महि । दीधीत दीधीयाता दीधीरन् । दीधीसीष्ट दीधीयीयास्ताम । अदीधिष्ट अदीधिष्यत । वस्तुत छन्दमे हृष्टानुविधि होनेसे पाच धातुओंका लोकानुसार रूप अनुचित है । वेवी धातुका दीधीकी तरह रूप चलेगा । वी गति दीप्ती पजन भोजन–असनके तुल्य अर्थमे है ।

अथ तीन धातु की परस्मैपदी साधनिका । धातुके [illegible] षको स । सोने, स्वप्न देखनेकी क्रिया । दूसरेका इ इत् है इदितनुम् के लिए स्वप्नार्थक सस्धातुसे ति सस्ति । मोना क्रिया दो कर्तामें वर्तमान हो सस्त· ससन्ति । झि को अन्ति आदेश अत नही, अभ्यस्तसज्ञा न होनेसे । सस्सि सस्थ सस्थ । सस्मि सस्व सस्म । हम सब कर्ता मे वर्तमानशयनक्रिया । वह परोक्ष हो । ससास–एत्व अभ्यासलोप । सेसतु सेसु· । सेसिथ सेसथु सेस । ससास सेसिव सेसिम । ससिता भविष्य में स्वप्न देखेगा । ससिष्यति । सस्तु सस्तात सस्ता ससन्तु । ससधि–शसहि हि को धि, धिच सलोप । सधि । स्थानिवद्भाव से धि में हि मानकर अतो हे सूत्रसे हि–लुक् क्यो नही ? तब कहा पूर्वत्रासिद्ध-सूत्रसे सलोप असिद्ध होगा, तब अदन्त अङ्ग से परे स नही मिलेगा, न हेर्लुक् । सस्तात् सस्त सस्त । ससानि ससाव ससाम । लङ् मे असत । असस त् दशामे हल्ङयादि से तलोप । तिपि असस्ते सको द—त असस्ता असमन् । सिप परे सिपि धातो रु वा, पक्षे द असः असत् असस्तम् असस्त । अससम् अस्स्व, लिङि सस्यात् सस्याता सस्यु । सस्यास्ता सस्यासु असासीत् अससीत् । अतो हलादेर्लधो से विकल्पवृद्धि) असासिष्टा असासिषु असासीः असासिष्टम् असासिष्ट । असासिष्यत् । इदित् सस्त धातु का उदा·

अससीत् । सन्ति । इदित्वान्नुमि कृते 'सस्त् तस्' इति स्थिते स्को.' इति सलोपे 'झरो झरि सवर्णे' इति तकारस्य वा लोप । सन्त । सस्तन्ति । बहूना समवाये द्वयो संयोगसञ्ज्ञा नेत्याश्रित्य 'स्को —' इति लोपाभावात् । संस्ति संस्त । सस्तन्ति इत्येक । १०८० वश कान्तौ । कान्तिरिच्छा । वष्टि । उष्ट । उशन्ति । वक्षि । उष्ठ । उवाश । ऊशतु । वशिता । वष्टु । उष्टात्

हरण नुम् अनुस्वार ससति दशाया स्को से सलोप, परसवर्ण (झरो झरिसे) प्रथम त् लोप, विकल्प एक त दो त सन्ति सन्त सस्तन्ति । अभ्यास नही झि को अत नही । सिप परे सस्तासि स्को से सलोप अनुस्वार परसवण नकार । सन्त्सि सन्थ सन्था । सस्मि सस्व । मसस्त ससस्ततु. ससस्तिव सस्तिता सस्तिष्यति । सन्तु सन्तात सन्ता सस्तन्तु सधि—सस्त हि दशामे धि, स्को से सलोप । परसवर्ण मन्त धि झरी झरि तलोप सन्धि । जब तकार लोप नहो, तब त को जश द । सन्द्धि सन्तात् सन्त सन्त । सस्तानि सस्ताव सस्ताम । लङ् तिप परे असस्तत् दशामे हल्ङ्यादि लोप, सयोगादि-लोप, संयोगान्तलोप अमन् असन्ता असन्तन् । असन् असन्तम् असन्त । असस्त असस्त्व । सस्त्यात् असस्तीत् असस्तिष्यत् ।

मतान्तर प्रस्तुत कर रहे है बहूना समवाये बहुतो का समुदाय हो तब दा दो की सयोगसञ्ज्ञा नही होती ऐसा मत है । इस आधार पर सस्तानि दशामे झलि परे अनुस्वार, सकार तकार तीनका समुदाय है केवल स त् को सयोगसञ्ज्ञा नही । स्को सयोगाद्यो से सलोप भी नही, तब सस्ति ससन्ति रूप बनेगा ।

। १०८० । वश कान्तौ इच्छाक्रियावाचक वश धातुसे वतमान कालिक इच्छा क्रिया के कर्तामे लट् ति । वश ति । व्रश्चभ्रश्च से श—ष, त को ट । वष्टि इच्छति चाहता है वष्टि भागुरिरलोप भागुरि आचार्य अकार लोप चाहते है । जयाय सेनान्यमुसन्ति देवा । देवता अन्य की सेना पर विजय चाहते है । इच्छा अर्थमे प्रमाण । उष्ट वश तस्, श—ष् कित परे ग्रहिज्यावायिव्यधि से सम्प्रसारण व को उ । टवर्ग उषन्ति वक्षि वश—सि श—ष को क सि परे । षत्व मष—क्ष । वश वश्मि उश्व उश्म । उवाश लिटि—अभ्यासस्यसे अभ्यासको सम्प्रसारण कित परे नही है । ऊशतु कित परे है, पहले परत्वात् ग्रहिज्यावयिव्यधि से सम्प्रसारण [illegible] द्वित्व हलादिशेष सवर्णदीर्घ ऊवशिथ उशथु. ऊश, ऊवाश ऊशिव ऊशिम । वशिता

उष्टाम् । उड्ढि । अवट् । औष्टाम । औशन् । अवशम् । उश्यातास । उश्यास्ताम् । अवाशीत् । अवशीत् । 'चर्करीत च' यङ्लुगन्तमदादौ बोध्यम् । ह्नुङ अपनयने । ह्नुते । जुह्नुवे । ह्नुवीत । ह्नोषीष्ट । अह्नोष्ट ।

इति लिङन्तेऽदादिप्रकरणम् ।

इच्छा करेगा । वशितारौ वसितार इच्छा करेंगे । वसितासि भविष्यकालिक कर्तामे इच्छा क्रिया । वशिष्यति वशिष्यत वशिष्यन्ति वशिष्यसि । वष्टु एरु इ को उ । उष्टात् तु-तात् वशतात ङित्परे व को उ सम्प्रसारण । श-ष, त-ट उष्टा उशन्तु । उड्ढि इच्छा करे । वश हि दशामे घि होनेपर अपित् है ङित् मान्य । जिसके परे ग्रहिज्यावयिसे सम्प्रसारण उशधि श-ष-ध-ष को जश् ड । उष्टम् उष्ट । वशानि वशाव वशाम । सब इच्छा करें अनद्यतन कालमे रच्छा हुई हो लङ् ति अवशत् हल्ङ्याब्दितलोप श-ष, जश ड । चर विकल्प ट् अवट् अवड् औष्टा, अवश तस—ताम् सम्प्रसारण उ । आट् औ वृद्धि । औशन् । अवट् औष्ट औष्ट । अवश पित् है सम्प्रसारण नही । औश्व औश्म । विधिलिङ प्रेरणा आज्ञा, आशीर्लिङ शुभकामना ऊश्यात्– (वश यात् सम्प्रसारण) उश्याता उश्यु उश्यास्ता उश्मासु । अवाशीत् । अतो हलादेर्लघो विकल्प वृद्धि अवाशिष्टाम् अवाषिषु अवाशीः अवाशिष्टम अवाशिषम् अवाशिष्व अवाशिष्म । अवशीत अवशिष्यत् । इस प्रकार दीधीङ वेवीङ षस षस्ति वश ये पाच धातु छान्दस=वेदमे उपयोगी माधव मत, परन्तु दीधीवेवीटा सूत्र के भाष्यमे दीधीवेव्योश्छन्दोविषयत्घात् । जक्षित्यादय मे षसिवशी छान्दसौ । षस्ति छान्दस कदाचित् है । लोकमे भी बष्टि है ।

(ग) धातुपाठ मे गणसूत्र चर्करीतञ्च है । जो यङ्लुक् का नाम है । पूर्वाचार्य मानते आये है । इस यङ्लुगन्त को अदादिगण मे मानना चाहिये, इससे सिद्ध है शप् लुक् है । श्यनादि विकरण यङ लुक नही । परस्मैपद ही है । ह्नु=छिपाने छिपने की क्रिया, अपनयन=दूर होना । अनिट् वर्तमान छिपने किया के कर्ता मे लट् त एत्व ह्नुते छिपता है ह्नुवाते आता परे उवङ् । ह्नुवते ह्नुसे । परोक्षमे छिपा हो द्वित्वादि जुह्नुवे जुह्नुवाते जुह्नुविरे । क्रादि नियमसे इट । जुह्नुविषे जुह्नुविवहे । ह्नोता ह्नोष्यते छिपेगा । ह्नुता ह्नुस्व । ह्नुवै ह्नुवावहै अह्नुत अह्नुवाताम् अह्नुवत । विधिलिङ् छिपने की प्रेरणा सम्भावना मे लिङ् ह्नुवीत् । सीयुट् आशीर्लिङ् छिपनेके प्रति शुभकामना । सीयुट् सुट् गुण आदि ह्नोषीष्ट ह्नोषीयास्ता

छिपनेकी क्रिया समाप्त हो भूते लुङ् सिच आदि। अह्नोष्ट अह्नुषाता अह्नुषत अह्नोष्ठा अह्नुषाथा अह्नुध्वम अह्नोषि अह्नुष्व

इति प्रभाकरमिश्रकृताया प्राभाकरीटीकामदादय ।

सूचना—धातुसख्या १५५ से १६६ तककी टीका

त्वङ्गधातुका हिलना कम्पनक्रिया त्वङ्गति त्वङ्गत । वर्तमानकालिक कम्पनक्रिया तत्वङ्ग परोक्ष भूतकालमे। अत्वङ्गीत् १५६ युग, जुग, वर्जने=मना करना। इदितो नुम्। अनुस्वार परसवर्ण। युङ्गति। वुवुङ्ग वुवुङ्गतु. अजुङ्गीत घघ धातुका घघाकर हसना अर्थवाचक घघधातुसे वर्तमानकालिक कर्तामे लट। घघति घघत घघन्ति। वह क्रिया अज्ञातभूतकालकी हो कर्ता मे लिट। घघा जघा। णल् परे अत उपधाया॰ वृद्धि। जघाघ जघघत् आदेश होनेसे एत्व अभ्यास लोप नही हुआ। घघिता घघिष्यति। घघतु अघघत् घघेत घघ्यात् अघघीत् अघाघीत् ।

इदित् नुमसे मङ्घ धातुका मडन शृगारक्रिया। ममङ्घ ममङ्घतु ममङ्घु सजावट करो। अमङ्घीत्। शिघि—इकार इत नुम् सहित शिङ्घका आघ्राण सूघने, गन्ध ग्रहणक्रिया वतमाने लट शिङ्घति सुगन्धिम। शिशिङ्घ कब सूघा। शिङ्घिता शिङ्घिष्यति शिङ्घतु अशिङ्घ त् शिङ्घेत् शिङ्घ्यात् अशिङ्घीत्। अथ चवर्गीय च छ ज झ ञ अन्त धातुओकी साधनिका। अनुदात्त इत्सज्ञक २१ धातु है। वर्चका दीप्ति प्रकाशक्रिया प्रकाशानुकूलव्यापार वर्चते-प्रकाश करता है। ववर्चे वर्चिता वर्चिष्यते वर्चताम् अवर्चत, वर्चेत वर्चेयाता वर्चेरन्। अवर्चिष्ट अवर्चिषाताम् अवर्चिषत। सचका सीचने सेवा करनेकी क्रियावाचक सचमे वर्तमानकालिक कर्तामे लट सचते य पूषा वृत्रग्रहण सवन्ते का सेवन्त अर्थ किया गया। सीचता या सेवता है। षोपदेश है। सादि होनेसे धात्वादे ष स हुआ। षच समवाये स्वरितेत्वक्ष्यते, सेचे। ससच ऐ एत्वअभ्यासलोप। सेचाते सेचिरे सीचना या सेवा क्रिया कर चुका हो। सचिता कल सेवा करेगा। सचिष्यते सचताम् असचत। असचिष्ट सेवा कर चुका, लोचते दर्शनानुकूलव्यापार। लुलोचे एककर्तामे परोक्षानद्यतन भूतकालिक दर्शनक्रिया। लोचिता अनद्यतन भविष्यकालिक दर्शन लोचिष्यते लोचताम अलोचत। लोचिषीष्ट अलोचिष्ट। शच व्यक्तायां-स्पष्ट बोलना, सत्य भाषण शचते स्पष्ट वक्ता। परोक्ष भूतकालका कर्ता लिट्-त-एश। शच शच ए। एत्वाभ्यासलोप। शेचे शेचाते शेचिरे। शेचता शेचेता शेचन्ताम्

अथजुहोत्यादिप्रकरणम्

१०८३ हु दानादनयोः । आदाने च इत्येके । प्रीणनेऽपि इति भाष्यम् । दानं चेह प्रक्षेपः । स च वैधे आधारे हविषश्चेति स्वभावाल्लभ्यते । इतश्च त्वारः परस्मैपदिनः । (८९) जुहोत्यादिभ्य श्लुः २।४।७५।। शपः श्लुः

शेचस्व शेचेथा शेचध्व, शेचे शेचावहै-महै। अशचत् असचिष्ट ।१६६ श्वचते श्वञ्चते गमनक्रिया, शश्वञ्चे कच बन्धने, कचते केश बाधती है। केश का बन्धन अर्थ । चकचे कचिता बाधेगी । कचिष्यते कचताम् अकचिष्ट ।

अथ जुहोत्यादय —(हु धातु आदौ येषा ते) भ्वादिगणका अन्तगण है श्लुविकरण (शप् स्थाने श्लु होनेसे धातुकी) साधनिका ही जुहोत्यादि है। हु धातुका दान अपण, अदन भोजन अर्थ, एकके मतमे प्रीणने=प्रसन्न करने अथमे तृतीया च होश्छन्दसि सूत्रके भाष्यमे प्रमाण है विप्राय जुहोति ब्राह्मणको प्रसन्न करता है। यह प्रक्षिप्त है। किसीके मतमे दान अर्थ प्रसिद्ध । ननु यदि दान प्रसङ्गे प्रसिद्ध तर्हि दान मान्यम् तदा ब्राह्मणाय गा ददाति स्थाने जुहोति अपि भवतु । तब लिखा दान चेह प्रक्षप । जैसे अग्निमे शाकला छोडना दान है। यदि ऐसा तब कूपे घट प्रक्षिपति कूयेंमे घडा डालता है। आह्वनीये काष्ठ जल च प्रक्षिपति अग्निमे लकडी जल छोडता है अर्थमे । जुहोति भी होने लगेगा तब कहा— स च=वह प्रक्षेप जिसका आधार—वैधे विधि बोधिते-वेद सम्मत अग्निमे मन्त्र द्वारा पुरोडाशादि हविष शाकला ही लेना चाहिये। ऐसा क्यो कहा सम्भावात्-अनादि कालसे सिद्ध लोक व्यवहार पुराण कालसे वेदसम्मत आधार, हवन कुण्डमे वेदसम्मत देवताके विषये त्य-ज्यमान-दिया गया हविष शाकलाका प्रक्षेप अर्पण हुधातुका अर्थ । पूर्व मीमासामे सर्वप्रदान हविष तदर्थत्वात् । अत एव अग्निमे लकडी काष्ठ अथवा प्रमाद क्रोध मोह वश पाषाणका प्रक्षेप हुआ, अथवा हवन सामग्री गर्त मे प्रक्षेप होम नही कहा जायगा।

यहासे चार धातु परस्मैपदकी साधनिका स्वीकार करते है। (८९) जुहोत्यादिगण मे पढे धातुसे हुऐ शप्के स्थानमे श्लु हो। अदिप्रभृतिभ्य से शप् आया। जहोति-हवनार्थक हु धातुसे कर्तामे शप् उसको श्लु (लोप) वर्तमान कालिक हवन कर्तामे लट्, ति, हु ति दशामे—

स्यात्। (९०) श्लौ ६।१।१०॥ धातोर्द्वित्वं स्यात्। जुहोति। जुहुतः। अदभ्यस्तात् इत्यत्। हुश्नुवो इति यण्। जुह्वति। (९१) भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९॥ एभ्यो लिट्याम्वा स्यात् आमि। श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार जुहाव। होता होष्यति। जुहोतु जुहुतात्। हेधि जुहुधि। आटि परत्वाद्गुण

(२४९०) श्लौ=श्लु परे धातुको द्वित्व हो, एकाचो द्वे, लिटि धातोसे द्वि, की अनुवृत्ति, हु हु ति। पूर्वको अभ्यासंज्ञा कुहोश्चु अभ्यास हको ज। जुहोति जुहुत तस् कित् है गुणनिषेध। बहुवचने झ द्वित्वसे अभ्याससंज्ञा। इस लिए अदभ्यस्तात्मे झको अत्। जुहु अति। हुश्नुवो सार्वधातुके यण्, जुह्वति बहुकर्तृकवर्तमानकालिक देवतोद्देश्यक अग्नौ प्रक्षेपानुकूलव्यापार। जुहोसि जुहुथ जुहुथ। जुहोमि जुहुव जुहुम। हम सब कर्तामे वर्तमानकालिक देवता निमित्तक हवन। (९१) भी ह्री भृ हु (द्वन्द्वसे पञ्चमी अर्थे षष्ठी) इन धातुसे आम् हो, विकल्पसे लिट परे। श्लाविव=श्लौकी तरह द्वित्व आदि कार्य भी हो। जुह्वाञ्चकार। वैदिकविधिसे प्रक्षेपानुकूल क्रियावाचक हु धातुसे लिट। भीह्री सूत्रसे आम। हु को द्वित्व आदि, जुहु आम गुण अवादेश जुहवा लिट् कृ लिटका अनुप्रयोग आदि। जब आ प्रत्यय नही हुआ। हु अ द्वित्व आदि। जुहु अ। अचोऽञ्णिति वृद्धि औ आव आदेश। जुहाव जुहुवतु। जुहविथ जुहोथ भारद्वाजमतमे इट जुहुवथु जुहाव जुहुव जुहुविव। अनिट धातु है अनद्यतन भविष्यकालमे हवन होना हो, कर्तरि लुट तास डा आदि। होता होतारौ होतारः। होतासि होतास्मि। होतास्व होतास्मः। हवन करेगा। सामान्य भविष्यकालमे लृट आदि होष्यति होष्यतः होष्यन्ति। होष्यसि होष्यथः होष्यथ। होष्यामि होष्यावः होष्यामः। हवनके विषय छोटोको आदेश आदि देना हो लोट ति शप् श्लु श्लौ द्वित्व आदि जुहोतु। आशीषि मे तु-तात् जुहुतात् जुहुता जुह्वतु। जुहुधि देवताके उद्देश्यसे अग्निमे प्रक्षेपानुकूलक्रियावाचक हु धातुमे वर्तमानकालिक हवन कर्ता पुरुष त्व अर्थमे सिप् सि को हि। हुझल्भ्यो हेधि से। जुहुधि जुहुत जुहु त जुहवानि। आडुत्तमस्यपिच्चसे आट्के पित् होनेसे गुण प्राप्त था, ङित् नही, निषेध नही। उसे बाधकर हुश्नुवो से यण् प्राप्त, तब लिखा आटि परे परत्वात् गुण (हुश्नुवो की अपेक्षा) अव जुहवाव जुहवाम। अजुहोत् अनद्यतनभूतकालिक हवनक्रिया अजुहुता अजुहवुः। सिच् अभ्यस्तसे झिको जुस्। अजुहु उस्। हुश्नुवोः सार्वधातुके सूत्रसे यण् प्राप्त, उसको परत्वात् बाधकर जुसि च सूत्रसे

जुहवानि। परत्वात् 'जुसि च' इति गुण । अजुहवु । जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। ञिभी भये। बिभेति (९२) भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५॥ इकार स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभित बिभीत । बिभ्यति। बिभ-

---

गुण। अजुहा अजुहुत अजुहुत । अजुहवम् अजुहुव अजुहुम॥ विधिलिङ्मे आज्ञा प्रेरणा, क्रियामे लगाना प्रवर्तना प्रार्थना हवनके विषयमे हो कर्तामें लिङ्। शप्के स्थानमे श्लु श्लौसे द्वित्व यास् आदि जुहुयात् जुहुयाता जुहुयु जुहुया। आशीर्लिङ्मे हवन विषयक शुभकामना बढनेकी सद्भावनासे लिङ्, यास् परे अकृत्सार्वधातुकयो दीर्घ। हूयात् हूयास्ता हूयासु। हूया हूयास्त हूयास्त। हूयास हूयास्व हूयास्म। लुङ्लकारमे हवनक्रिया भूतकालमे चली गयी हो लुङ्। अहू स ई त्। सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु । षत्व अहौषीत् अहौष्टाम्, अहौषीः अहौष्ट अहौष्ट। अहौष अहौष्व अहौष्म। अहोष्यत् अहो ष्यता अहोष्यन्। ञि इत। (आदिर्ञिटुडव से) भी धातुका भयभीत होना। डरसे घबडानेकी क्रिया, अनिट् भयभीत क्रियात्मक भी धातुसे वर्तमानकालिक भयभीतके कर्तामे लट्। भी ति शप्को श्लु श्लौ सूत्रसे भीको द्वित्व। भी भी भिभी बिभीतिगुण (सार्वधातुकसे)बिभेति।

।२४९२। भिय=धातु को इकार छोटी इ हो, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे। इद्दरिद्रस्य से इत्, गमहनसे क्ङिति, ईहल्यघो से सार्वधातुक की अनुवृत्ति। बिभीतः बिभि+तस् दशामे हलादि कित् सार्वधातुक तस् परे (भी मे) ई को इ बिभित । सार्वधातुक क्यो पढा ? भीषते बिभीयेमे ह्रस्व न हो। हलादि क्यो? बिभ्यति इत्व न हो। भयार्थक्रियावाचक भी धातु से बहुत कर्तामे लट्। प्रथमपुरुष एकवचन ति। शप श्लु, द्वित्व आदि, बिभीझि अदभ्यस्तात्से झिको अत्, यण् बिभ्यति बिभेसि बिभिथ बिभिथ। बिभेमि बिभिव बिभिम। बिभयाचकार भी हृभृहुवा श्लुवच्च सूत्रसे आम् और श्लुवत् भावसे (श्लौ सूत्रसे) द्वित्व-आदि। कृ लिट् अनुप्रयोग। जब आम् प्रत्यय नही, तब बिभाय-भयकी क्रियावाचक भी धातु से भयक्रियासहित कर्ता परोक्ष=आखोसे न देखा हो कर्तरि लिट्। ति णल् द्वित्व आदि। बिभि अ णित्परे वृद्धिः। आय आदेश। बिभ्यतु बिभ्युः। भारद्वाजमतमे इट्। बिभयिथ बिभेथ बिभ्यथु। बिभय। बिभाय बिभ्यिव बिभ्यिम। भविष्यकालमे डरेगा। भी+ता गुण भेता भेतारौ भेतार अनेककर्तामे अनद्यतनभविष्यकालिक डरनेकी क्रिया।

याञ्चकार । बिभाय भेता । १०८५ ह्री लज्जायाम् । जिह्रेति । जिह्रीत । जिह्रियति । जिह्राञ्चकार । जिह्राय । प्र पालनपूरणयो । (६३) अर्ति

भेतासि भेतास्थ भेतास्थ । भेतास्मि । भेतास्व भेतास्म । भेष्यति भेष्यत भेष्यन्ति । भेष्यसि भेष्यथ भेष्तथ । भेष्यामि हम सब डरेगे । बिभेतु बिभितात् बिभीतात् बिभिता बिभीता बिभ्यतु वे लोग डरे । भयभीतकी प्रेरणा लोडर्थ । बिभिहि बिभीहि बिभितात् बिभीतात बिभित बिभित बिभीत । बिभयानि बिभयाव बिभयाम । बीते कल परसो कालमे भयकी क्रिया हुई हो कर्तामे लङ् ति श्लु द्वित्व आदि । अबिभेत् अबिभिता अबिभीता अबिभयु । अबिभे तुम डर गये थे । अबिभित अबिभीत अबिभीत । अबिभय अबिभीव अबिभीम । बिभियात् बिभीयात् । आशीर्लिङि भीयात् भीयास्ता भीयासु । अभैषीन् अभैष्टामभैषु अभैषी अभैष्टं अभैष्ट । अभैष अभैष्य । अभैष्म । अभेष्यत् ।

। १०८५ । ह्री लज्जाया शील सकोच की मर्यादा के अनुकूल क्रिया लज्जित होना है । ह्री से लजाना कर्तामे लट् द्वित्व आदि । जिह्री गुण जीह्रेति लजाता है जिह्रीत' जिह्रियति अदभ्यस्तात् झि को अत् । जी ह्री अत् अचिश्नुधातुसे इयङ । जिह्रेसि जिह्रेमि । जिह्रीव जिह्रीम । जिह्रया चकार भी ह्री भृ हुवा से आम् इत्यादिकार्य श्लुवद्भावका कार्य । जिह्रयाक्र लिट् चकार । जब आम् नही तब । ह्री+अ द्वित्वादि वृद्धि, आम् । जिह्राय जिह्रियतु जिह्रियु जिह्रयिथ जिह्रेथ जिह्रियिव जिह्रियिम, ह्रेताभविष्य कालमे लज्जित होगा ह्रेतारौ ह्रेतार सभी लज्जित होगे । ह्रेतास्मि ह्रेष्यति लजायेगा ह्रेस्यसि ह्रेष्यामः । जिह्रेतु जिह्रीतात् जिह्रीता जिह्रियतु । जिह्रीहि जिह्रीतात् जिह्रीत् जिह्रीत । जिह्रियाणि जिह्रियाव याम । बीते भूतकालमे लज्जित हो चुका ही, अनद्यतने कर्तरि लङ् अजिह्रेत् अजिह्रीता अजिह्रियु । जिह्रीयात् ह्रीयात् । लज्जित हो चुका अर्थमे लङ् अह्रैषीत् अह्रैष्टा अह्रैषु । अह्रैषी अह्रैष्टं अह्रैष्ट । अह्रैष अह्रैस्व । अह्रेष्यत् ।

पृ धातु का पालन पोषण पूरण–पूर्तिकरना भरना क्रिया अर्थ । सेट् । वर्तमानकालिक पालन या पूरणकर्तामे लट् तिप शप श्लु द्वित्व पृ पृ+ति दशा मे । ६३ । अर्ति-अभ्यास को इकार अन्तादेश हो श्लु परे । अत्र लोप से अभ्यास आया, भृञमित् से इत् । निजा त्रयाणाम् श्लौ अनुवृत्त । अभ्यास

पिपर्त्योश्च ७।४।७७।। अभ्यासस्येकारोऽन्तादेश स्यात् श्लौ । (९४) **उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२।।** अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्तस्याङ्गस्य उत्स्यात् गुणवृद्धी परत्वादिम बाधेते । पिपर्ति । उत्व, रपरत्व । हलि च इति दीर्घ । पिपूर्त । पिपुरति । पपार । क्ङिति लिटि ऋच्छत्यृतामिति गुणे प्राप्ते । (२४९५) **शदृप्रा ह्रस्वो वा ७।४।१२।।** एषां क्ङिति लिटि ह्रस्वो वा स्यात्

ऋ स्थाने लत्व, हलादि शेष । दूसरे पृ को गुण रपर पिपर्ति । उत्तरखण्ड= दूसरे पृ के ऋ ।को उत्व होनेका सूत्र ।

। ९४ । उदोष्ठ्य=अङ्गका अवयव ओष्ठसज्ञकवर्ण पूर्वमें न होऋकार तस्य=वह अन्तमे हो ऐसे अङ्गको उत् हो । अङ्गावयव क्यो पढा ? समीरण । ऋगतौ ऋ्यादि सम्पूर्वक ऋसे क्त ऋत्इद्धातो से इत्व रपर । हलि च दीर्घ, रदाभ्या से त को न । यहा उत्व न हो । अङ्ग का अवयव न होने से । प्रमङ्ग मे भी उत्व नही होगा क्योकि गुण और वृद्धि पर है । उत्वको बाधकर गुण ही होगा पालन पूरण क्रिया दो कर्ता मे वर्तमान हो । पि पृ तस् । जो ङित् है गुणनिषेध से उदोष्ठ्य पूर्वस्य सूत्रसे ऋदन्त अङ्ग का अवयव ऋको । रपर पि पुर तस् । हलि च दीर्घ पिपूर्त पिपुरति । बहुत से लोग पालन भरण-पोषण या पूर्ति करते है । अदभ्यस्तात् से झ को अत् ङित्से गुणनिषेध । इसलिए उत्व । त्व पिपर्षि । पिपूर्थ पिपूर्थ । पिपर्मि पिपूर्व पिपूर्म । पालन पोषण कार्यसे क्रिया अनुमान की स्थिति हो कर्तामे परोक्षे लिट् । पृ अ । द्वित्व आदि पपृअ उदोष्ठ्य के उत्वको बाधकर, वृद्धि (परत्वात्) आर पपार पपरु पप्रतु, अनुमान=कार्य देखकर पालन विषयमे दो कर्ता हो, तस अतुस् पपृ अतुस् । जो कित है ऐसा लिट परे ऋच्छत्यृता सूत्रसे नित्य गुण प्राप्त था उसे बाधकर—

। २४९५ । शृ दृ पृ (एषा द्वन्द्व) इन धातुओ को ह्रस्व हो विकल्प क्ङिति लिटि परे । दयतेर्दिगि से लिटि आया । ऋको ह्रस्व उसको यण्, पप्रतुः जब ह्रस्व नही, तब गुण पपर्तु यहा गुणका विकल्प नही है । ह्रस्व का विकल्प है अन्यथा वार्णादाङग वलीय यण् को बाधकर कुत्व होता । एव पप्रु, पपरू । पपरिथ पप्रथु पपर्थु ह्रस्व यण् एक पक्ष । गुण दूसरा पक्ष । पप्रे । पपर पपार पप्रिव—म । आगामी भविष्यकालमे पालन और पूरण पूर्ति-क्रिया का कर्ता हो लुट् वा इट् । गुण परिता वृतो वा दीर्घ परीता । परितारौ परितार परीतासि परीतास्थ परीतास्थ । परितास्मि । परि-

पक्षे गुण । पप्रतु. । पप्र । पपरतु । पपरु' । परिता परीता । अपिप. । अपिपूर्ताम् । अपिपरु । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् अपारिष्टाम् । 'ह्रस्वान्तोयमिति केचित् । पिपर्ति । पिपृत । पिप्रति पिपृयात् । आशिषि, प्रियात् । अपार्षीत् । पाणिनीयमते तु त रोदसी पिपृतम् इत्यादौ छान्दसत्व शरणम् डु भृञ् धारणपोषणयो । (९६) भृञामित् ७।४।७६।। भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ । बिभर्ति बिभृत बिभ्रति । बिभृध्वे ।

ष्यति परीष्यति पालेगा भरेगा । परिष्यामि भरूगा । परिष्यमि, पालन पोषण पूरण क्रियामे प्रवृत्ति करानी हो आज्ञा प्रेरणा का विषय हो लोट पृ ति (शप श्लु) अश्लौ द्वित्व अर्तिपिपर्त्योश्च अभ्यास को इत्व उत्वको बाधकर गुण । एरु पिपर्तु पिपूर्तात् पिपूर्ता पिपुरतु पिपृहि पिपूर्त पिपराणि पिपराव पिपराम । हम लोए भरण पोषण करे, अद्यभिन्नभूतकालमे पूरण क्रिया समाप्त हो कर्ता मे लङ त श्लु द्वित्व आदि । अपि पृ त दशामे गुण रपर हल्ङ्याादि से तलोप, र–विसर्ग । अपिप । अपि पृ तस्–ता उत्व रपर दीर्घ । अपिपूर्ता, झि को जुस् । सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च, जुसि च गुण रपर अपिप अपिपूर्तम् । अपिपर अपिपर्व–म विधिलिङि । पिपूर्याता । पिपूर्या पालन पूरण के प्रति शुभ-कामना आशीर्वाद है । पूर्यात् पूर्यास्ता पूर्यासु पोषण क्रिया, भर दिया । अपारीत अपारिष्टा अपारिषु । अपारी अपारिष्ट अपारिष्ट । अपारिष अपारिष्व । किसी विद्वान् का मत है कि ह्रस्वान्त धातु है उदोष्ठ्यपूर्वस्य नही लगेगा । पिपृत पिप्रति बनेगा। दीर्घ ॠ का कार्य नही होगा । आशीर्वाद अथमे प्रियात् । पर्ता परिष्यति । अपार्षीत् अनिट् है इट नही होगा किसी आचार्य सम्मत ह्रस्व हम क्यो स्वीकार करे, तब कहा नही पाणिनि सम्मतभी है त रोदसी पिपृतमित्यादौ उत्व नही हुआ यही ह्रस्व मे प्रमाण है । अन्यथा छान्दसत्वमेव शरणम् अनुसरणीय स्यात् । अपरिष्यत् ।

८७ डुभृञ्का धारण वस्त्रमाला आदि, पोषण=अन्न वस्त्रादिसे पालनकी क्रिया अनिट् । जित्से दोनोपद । बिभर्ति–भृ धातु वर्तमाने लट् शप् श्लु श्लौ द्वित्व, भृ भृ भभृ बभृ ति । इत्वका सूत्र–

(९६) भृञ्माङ् ओहाङ् (बहुवचनका अर्थ) इन तीनोंके अभ्यासको इकार हो । अत्र लोप सूत्रसे अभ्यास, निजा त्रयाणा गुण से त्रयाणा आया । इससे अभ्यासको इत्व, ॠको गुण बिभृत बिभ्रति अभ्यास

श्लुवद्भावात् द्वित्वेत्वे। बिभरामास, बभार। बभर्थ। बभूव। बिभृहि। बिभराणि। अबिभ। अबिभृताम्। अबिभरु। बिभृयात्। भ्रियात्। भृषीष्ट। अभार्षीत् अभृत। माङ् माने शब्दे च। (९७) ईं हल्यघोः ६।४।११३॥ श्ना

है हो झिका अत्। ऋको यण्। बिभर्षि बिभृथ। बिभर्मि बिभृव-म। जब धारण पोषण फल कर्तृगामी हो आत्मनेपद–बिभृते बिभ्राते बिभ्रते। बिभृष बिभ्राथे बिभृध्वे। बिभ्रे बिभ्रिवहे–महे। श्लुवदभावसे द्वित्व और एत्व भी विभरामास अनुप्रयोगकी शक्तिसे अस्को भू आदेश नही होता। बभार बभृ अतुस् यण् बभ्रतु बभ्रु। वृ सृ भृ-लिट् परे इट निषेध। थलपरे भी अजन्त अकारहान् मतमे भी इट निषेध। ऋदन्त है भारद्वाज भी मौन। अत बभर्थ बभ्रथु बभ्र। बभार बभृव-म। क्रादिनियमसे इट निषेध। आत्मनेपदमे बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे। बभ्रिषे बभ्रिध्वे। बभ्रिवहे–महे। बयभिन्न कर्तृक परोक्षानद्यतनभूतकालिक धारण पोषण क्रिया। भर्ता आगामी कालमे भरण पोषण करेगा। भरिष्यति-ते भर्तासे भर्तासाथे भर्ताध्वे भर्ताहे। भरिष्यसे भरिष्येथे भरिष्यध्वे। भरिष्ये भरिष्यावहे–महे। बिभर्तु बिभ्रितात् बिभ्रता विभ्रतु। बिभृहि अपित् है ङित् है गुणनिषेध। बिभृत बिभृत बिभराणि बिभराव बिभराम। उत्तमपुरुषमे आट् णित् है ङित् नही न गुण लङ्लकार जो अनद्यतन भूतकालमे धारण पोषण क्रियाके कर्ताका स्मारक है। लट् ति अबिभृ त दशामे गुण रपर त लोप रुवि। अबिभ। तस्को ता–गुण निषेध। झिको जुस् अभ्याससे। जुसि च से गुण। अविभ अविभृत, अविभर अविभृव-म। आत्मनेपदमे अबिभृत अबिभ्राता अविभ्रत। अबिभृथाः अबिभृध्व अविभ्रि अबिभृवहि–महि। विधिलिङ् आप धारण करे,पोषणकरे, यासुट् द्वित्व आदि, आशीर्लिङमे भृयात् रिङ्शयग्लिङ् सूत्रसे रिङ् भ्रियास्ता भ्रियासु। भ्रिया भ्रियास्त भ्रियास्त। भ्रियास भ्रियास्व। भ्रिषीष्ट उश्चसे किति न गुण, भ्रिषीयास्ता भ्रिषीरन्। अभार्षीत् अभार्ष्टा अभार्षु। सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु से वृद्धि रपर अभार्षी। अभार्ष। आत्मनेपदका रूप अभृसत–ह्रस्वादङ्गात्से सिच्लोप। अभृत अभृषाता अभृषत। अभृथा अभृषाथा अभृढ्वम। अभृषि अभृष्वहि। अभरिष्यत्–त। ८८ माङ् माने=तौलना शब्दे च (मे मे) की ध्वनि। अनिट् आत्मनेपदी नापना तौलना आवाजकरना क्रिया वाचक मा धातुसे वर्तमानकालिक माप कर्ता अर्थं लट् त। श्लौ द्वित्व ममा त। भृञमित् अभ्यास मको इत्व मिमाते इस स्थितिमे।

भ्यस्तयोरात ईत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति हलि, न तु घुसंज्ञकस्य। मिमीते। 'श्नाभ्यस्तयो इत्यात्लोप। मिमाते मिमते। प्रग्यमास्त। ओहाङ् गतौ। जिहीते। जिहाते जिहते। जहे। हाता हास्यते। ओ हाक् त्यागे। परस्मैपदी। जहाति।
(९८) जहातेश्च ६।४।११६॥ इत्स्यात् हलादौ क्ङिति सार्वधातुके। पक्षे

---

(९७) ई हलि अघो। श्ना और अभ्याससंज्ञकके अकारको ईकार हो, सार्वधातुक क्ङित ङित हल्परे। जैसे मा– आ को ई। गमहनसे क्ङिति, अत उत् सार्वधातुकेमे सार्वधातुक आया। मिमीते वर्तमानकालकी क्रिया माप क्रियाका दो कर्ता आता शप्को श्नौ करने पर द्वित्व, अभ्यास ह्रस्व इत्व भी, श्नाभ्यस्तयोरात अजादि क्ङिति ङिति परे अकारलोप। झको अत् आदेश। इत्व मिमते। मिमीषे मिमाथे मिमीध्वे। मिमे मिमीवहे मिमीमहे। परोक्षे लिट्मे जब कर्तामे क्रिया देखी गयी न हो, अनुमानसे समझमे आती हो, लिट् त एश मा मा ममा ए। श्नाभ्यस्तयो अकारलोप। ममे ममाते ममिरे। ममिषे ममाथे ममिध्वे। ममे ममिवहे। माता भविष्यकालमे तौलेगा, बोलेगा। मा लुट् ति तास डा, माता मातारौ मातार। मातास्मि मातास्व। मास्यते मास्येते मास्यन्ते। नाप करो तुलना करो। मिमीता मिमाता मिमता, मिमीष्व मिमाथा मिमीध्व मिमै मिमावहै। लङ्लकारमे बीते भूतकालमे क्रिया हो चुकी हो। अमिमीत अमिमाता अमिमत। आत्मनेपदेष्वनत। अमिमीथा अमिमाथा अमिमीध्वम अमिमि अमिमीवहि। मिमीत मिमीयाता मिमीरन्। मिमीय मिमीवहि। मासीष्ट। लुङ्लकारमे च्लि सिच्। अमास्त अमासाता अमासत अमास्था अमासाथा अमाध्वम् अमासि अमास्वहि, अमास्यत। ओहाङ जिहीते। अनिट् आत्मनेपदी श्लु होनेपर द्वित्व आदि ह हा जहा। भृञामित् से अभ्यासको इत्। ई हल्यघो आ को ईत्। जिहाते जिहीते जिहते। जिहा आता और अत् परे आकारलोप। श्नाभ्यस्तयो रात से जहे जहिरे। हासीष्ट अहास्त।

१०७० ओहाक् आक इत् अनिट हा धातुका त्यागकी क्रिया परस्मैपदि। त्याग क्रिया सहित कर्ता वर्तमान है शप् श्लु श्लौसे द्वित्व आदि। हा हा हहा जहा। त्याग क्रियाके दो कर्ता हो हा तस्। जहात. दशामे श्नाभ्यस्तयो रात से नित्य ईकार प्राप्त, उसे बाधकर। (९८) जहातेश्च इद्दरिद्रस्यसे इत् आया, भियोसे अन्यतरस्याम्। हा धातुको इत् हो विकल्पसे, हलादि क्ङिति ङिति सार्वधातुकपरे। पक्षमे ईकारभी जहित जहीत जहति। अदभ्यस्तात्से

ईत्व । जहित जहीत जहति। जहौ जहितात् । (९९) आ च हौ ६।४।११७।। जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ। जहाहि । जहिहि। जहीहि । अजहात् । अजहु अजहा । (२५००) लोपो यि ६।४।११८।। जहातेरालोप स्याद्यादौ सार्वधातुके। जह्यात् । 'एर्लिङि' हेयात् । अहासीत्। डुदाञ् दाने। प्रणिददाति । दत्त ददति । दत्ते ददौ । घ्वसो इत्येत्वाभ्यासलोपौ । देहि । अद

झिका अत् आदेश । जब अति अभ्यस्त है यकारलोप हुआ । जहासि जहिथ जहीथ जहामि । जहिव जहीव । अनद्यतन भूतकालमे त्याग क्रिया हुई हो प्रत्यक्ष न हो लिट् णल् औ । जहा औ । आकारलोप । जहतु जहु जहिथ जहाथ जहथु जह । जहौ जहिव जहिम । हमलोग त्याग कब किये थे । आगामी भविष्यकालमे त्यागकर्ता हाता हातारौ हातार । हास्यति हास्यत हास्यन्ति । त्यागके लिए आज्ञा निवेदनका विषय है लोट् । जहतु जहातेश्च इत्व,ई हल्यघो ईत्व । दोनोपक्ष जहितात् जहीतात् जहतु । मध्यमपुरुष एकवचन सिप्-हि जहाहि । (९९) हा धातुको आत्व हो हिपरे । इ-ई भी हो । जो इद्दरिद्रस्य, ई हलाघो से आये । चकारसे खिचे तीन विधानसे तीन रूप जहितात् जहीतात् जहित जहीत, जहित जहीत । जहानि जहाव जहाम । हमलोग त्याग करे । लङ्लकारमे अजहात् अजहिता अजहीता अजहु । अजहित अजहीत । अजहानि अजहिव अजहीव । विधिलिङ्मे । जहायात्-दशामे आलोपका सूत्र—

(२५००) लोपो-हा धातुके आकारका लोप हो यकारादि प्रत्यय परे । सार्वधातुक परे अकारलोप । जहातेश्चके इत्वको बाधकर । जह्यात् जह्याता जह्यु जह्या जह्यातम् । आशीर्लिङ्मे त्यागके लिए शुभकामना हायात । एर्लिङ् हेयात् हेयास्ता हेयासु । हेया हेयास्त हेयास्त । हेयास । त्याग कर चुका हो, अहा इस् ईत् एककर्तृकभूतकालिक त्याग क्रिया अहासीत्-यमरम नमाता सक्च इट् भी होनेमे । अहासिष्टा अहासिषु । अहासी अहासिष्ठ अहासिष्ट । अहासिषम् । अहास्यत् । ९१ डुञ् इत् दा धातु का दान अर्थ । उभयपदी, अनिट् द्वित्व आदि कार्य पूर्ववत् । दा दा ददा ति । प्रणिददाति, नेर्गदनदसे णत्व । पूर्णरूपमे देता है । दान क्रियाके दो कर्ता, ददा तस श्नाभ्यस्तयो से आकारलोप । ई हल्सि ईत्व नही, अघो =घुसज्ञक दाधाको छोडकर ऐसा कहनेसे आलोप, दको चर्त्व । दत्तः ददति । अभ्याससज्ञासे झको अत् । आलोप । ददासि दत्थ दत्थ । थस् थ परे अकारलोप, द को

दात् अदत्ताम् अददु । दद्यात् । देयात् । अदात् अदाताम् अददु, अदित । डु धाञ् धारणपोषणयो । 'दानेऽपि इत्येके । प्रणिदधाति । (२५०१) दधस्तथोश्च ८।२।३८। द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञ्धातोर्बशो भष् स्यात्थयो परयोः

चर्त्व त । ददामि दद्व दद्म आत्मनेपदमे आकारलोप चर्त्व दत्ते ददाते ददते दत्से ददाथे दध्वे ददे दद्वहे । परोक्षमे दान क्रिया हुई हो । ददाऔ आकारलोप ददौ ददतु ददु । ददिथ ददाथ ददथु दद । ददिव । ददे ददाते ददिरे । ददिषे ददाथे ददिध्वे । ददे ददिवहे । दाता दातारौ दातारः दातासि दातासे दातास्मि । दाताहे । दास्यति दास्यसि दास्यामि, दास्यन्ते । दास्यध्वे दास्यामहे । दानके विषयमे आदेश निवेदन हो । ददातु दत्तात् दत्ता ददतु । देहि । ददा हि दशामे घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च सूत्रसे एत्व अभ्यासलोप । दत्तात् दत्त दत्त, ददानि ददाव ददाम । आत्मनेपदमे दत्ता ददाता ददता, दत्स्व ददाथा दध्व, ददै ददावहै । लङलकारमे अददात् एककर्तामे बीते भूतकालकी दान क्रिया । अददा ता आकारलोप चर्त्व अदत्ताम् अददु । अभ्यास होनेसे झिको जुस् अकार लोप । अददा अदत्त अदत्त । अददा अदद्व अदद्म । विधिलिङ्मे ददा यात् श्नाभ्यस्तयो से आलोप दद्यात् दद्याता दद्यु । दद्या दद्यात दद्यात दद्या । आशीर्लिङ्मे दानक्रियाके प्रति मङ्गलकामना । दायात् दशामे एर्लिङ् सूत्रमे एत्व देयात् सदा मङ्गलम् । देयास्ता देयासु आत्मनेपदमे । दासीष्ट दासीयास्ता दासीरन् । दासीष्ठा लुङ्लकारमे दानक्रिया समाप्त होनेपर कर्तामे ल । अदासत । धुसञ्ज्ञक है गातिस्थाघूसे परे सिच्का लुक् । अदात् अदाता अदु । अदा अदात अदात । अदाम अदाव । आत्मनेपद अदासत् स्थाघ्वोरिच्च दाके आ को इ, सिच् कित् मान्य । जिसका फल गुणनिषेध । ह्रस्वान्त अङ्ग होनेसे सिच्का लुक् । अदित अदिषाता अदिषत । अदिथा अदिषाथा अदिध्वम् अदिषि अदिष्वहि । अदास्यत । ९२ डुधाञ् धाधातुका धारण अन्नवस्त्रादिसे पोषण करना भी अर्थ । किसी मतमे दान भी । दोनो पद अनिट् । वस्त्रादि धारण अन्नादिसे पोषण क्रिया वाचक धा धातुसे वर्तमानकालिक धारण पोषणके कर्तामे लट् ति शप् स्थाने श्लु । श्लौसे द्वित्व धा धा धधा दधा । प्रनि उपसर्ग प्रणिदधाति । नेर्गदनद से णत्व । एककर्तृकवर्तमानकालिक धारणपोषण क्रिया । दो कर्ता दान पालन स्वीकार वाले हो दधा तस् । अभ्यासको जश् श्नाभ्यस्तयो से आलोप। द ध तस् दशामे २४ दध द्विरुक्तस्य=दो बार उच्चारण हुए दधाके झषन्त दध

स्ध्वोश्चपरत । 'वचनसामर्थ्यादालोपो न स्थानिवत' इति वामनमाधवौ । वस्तु तस्तु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत । धत्त । दधति धत्थ धत्थ । दध्वः दध्म ।

दशामे धाञ् धातुके वश् (व ग ड द) को भष (भ ष ढ ध) आदेश हो त, थ, स, ध्व परे भी । त थ के बीच द्वन्द्व, अकार उच्चारणार्थं । च से (स ध्व) का सग्रह । यद्यपि श्नाभ्यस्तयो से आलोप को अच परस्मिन् सूत्रसे स्थानी धर्म आरोपकर झषन्त नही, न तकार परे, कैसे भष भाव होगा, तब कहा—वचन सामर्थ्यात् भषभाव विधायक सूत्र पढनेके सामर्थ्यसे आकारलोपको स्थानिद्भा व नही होगा—वामन माधवका विचार । वस्तुत भषभाव पूर्वत्रासिद्धे=पूर्वकी अपेक्षा पर असिद्ध होता हो वहा स्थानिवद्भाव नही होता,वचनसामर्थ्य कहने का क्लेश करना व्यर्थ है । दको भष ध । दूसरे धको चर त् । धत्त दो कर्तामे धारण पोषण दानकी क्रिया । दधति पूर्वोभ्यास से अभ्याससज्ञा अदभ्यस्तात् से झको अत् । दधा अति । श्नाभ्यस्तयो आकारलोप । दधासि धत्थ धत्थ । थ परे देखकर दधस्तथोश्चसे भष । यूयमभिन्नयुष्मत्कर्तृक वर्तमानकालिक धारणपोषणयोरनुकूलव्यापार । दधामि दध्व दध्म । आत्मनेपदमे जहा क्रिया का फल धारण पोषण कर्तृगामी हो वर्तमाने लट । दधा ते आलोप दधस्त-थोश्च भष्, दको ध' द्वितीय धको चर त । धत्ते दधाते । आता परे आलोप । दधते । धत्से—दधासे आलोप दको भष् ध । दधस्तथोश्च सूत्रमे सकार परे ध्वे परे भी भष कहा—धत्से दधाथे धध्वे ध्वपरे भष् । दधे दध्वहे दध्महे । हमसब कर्तामे विराजमान धारण क्रिया । परोक्षभूतकालमे क्रिया सहित कर्ता देखा गया न हो, परोक्षे लिट ति णल् औ । धा धा धधा दधा औ आलोप दधौ दधतुः दधु । दधिथ दधाथ दधौ दधिव, आत्मनेपदमे तको एश्, आलोप । दधे दधाते दधिरे, धत्से दधाथे धध्वे । दधे दधिवहे । अनद्यतनभविष्यकालमें पोषणकर्ता अर्थे लुट् तास् आदि । धाता धातारौ धातार श्व' परश्व सर्वे पोषणकर्तार भवितार । धातासि धातासे, धातास्मि धाताहे धातास्वहे । धास्यति—ते धास्यसि—से । धास्यामि—स्ये धारण करेगे । पालेगें, देगें । वह क्रिया किसीमे प्रेरणाका विषय बनती हो, लोट् । दधातु धत्तात् धत्ता दधत । धेहि दधाहि दशामे घुसज्ञक जानकर (ध्वसो से) एत्व अभ्यासलोप । धेहि धत्तात् धत्त धत्त । तुमलोग धारण करो पालो, दधानि दधाव दधाम । हम लोग दें, पाले धारण करे । आत्मनेपदमे आमेत धत्ता दधाता दधता, धत्स्व दधाथा धध्व । दधै दधावहै । लड लकारमे कल परसोकी क्रिया

धत्ते । धत्मे । धद्ध्वे । धेहि । अधित ।

अथ त्रय स्वरितेत । णिजि र् शौचपोषणयो (२५०२) निजा त्रयाणा गुण श्लौ ७।४।७५।। णिजिर् विजिर् विष्लृ एषामभ्यासस्य गुण स्याच्छ्लौ नेनेक्ति। नेनिक्त । नेनिजति । नेक्ता। नेक्ष्यति । नेनेक्तु। नेनिग्धि ।

समाप्त हो चुकी हो, अदधात् अदधाता अदधु । अदधा. । अदधाम् आत्मनेपदमे अदधा त दशामे आलोप दधस्तथोश्च भष् । चर अधत्त अदधाता अदधत । अधत्था॰ अदधाथा अधद्ध्व अदधि । दध्यात् । दध्याता दध्यु । दधीत दधीयाता दधीरन । धेयात् धेयास्ता धेयासु एर्लिङ से एत्व । धारणपोषणके प्रति समृद्धि की शुभकामना धासीष्ट । धासीयास्ता धासीरन् । लुङ लकारमे धारणपोषण कर चुका हो अधासत-गातिस्थाघुपा-सूत्रसे सिच लुक् अधात् अधाता अधु । अधा अधात अधात, अधा अधाव । आत्मनेपद मे अधा सत दशामे स्थाघ्वोरिच्च से आ को इ । ह्रस्वान्त अङ्ग देखकर सिच्लुक्, अधित अधिषाताम् अधिषत । अधिथा अधिषाता अधिढ्वम् । अधिषि । अधास्यत् ।

अथ स्वरित — इन धातुओकी साधनिका चलाते है । इर् इत्, णोपदेश अनिट् निजधातु—का शौच शुद्ध होनेकी क्रिया, पोषण अन्न वस्त्रादिसे पालनकी क्रिया । वर्तमानकालिक कर्तामे ल । निज ति, श्लौ द्वित्व कार्य । निनिज ति-अभ्यासमे गुणका सूत्र । २५०१ । निजा—निज विज विष तीनोके अभ्यास को गुण हो श्लु परे। अभ्यास (नि) को गुण, दूसरे (नि) को सार्वधातुक परे गुण। चो कु ज को ग—क नेनेक्ति। शौच जाता है । स्नान से शुद्ध होता है। अन्नादि दानसे पोषण करता है । यदि दो कर्ता हैं तस, प्रक्रिया पूर्ववत । नेनिजति झ—अत अभ्यास गुण । नेनेक्षि सिप परे ज-ग—क स—ष क ष=क्ष, नेनिक्थ । नेनेज्मि नेनिज्व आत्मनेपदमे नेनिजाते नेनिजते नेनेक्षे नेनिग्ध्वे । नेनिजे नेनिज्महे। परोक्षकालमे शौच पोषण क्रिया हो, निनेज निनिजातु निनिजु । निनेजिय । निनिज्व आत्मनेपदमे निनिजे निनिजिरे निनिजिषे निनिजिध्वे निनिजिवहे । अनद्यतन भविष्यकालमे शौच होना हो । निज ता, गुण चो कु चर नेक्ता नेक्तारौ नेक्तार । नेक्तासि नेक्तासे नेक्ष्यति—ते । नेनेक्तु नेनिजतु । नेनेग्धि । हि अपित् है ङित् सिद्ध । अन न गुण । नेनिक्तात् नेमिक्तम् । उत्तम पुरुषका आट् पित् है लघूपध गुणप्राप्त निषेधसूत्र—

(२५०३) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७॥ लघूपधगुणो न स्यात्। नेनिजानि। अनेनेक् अनेनिक्ताम् अनेनिजु । नेनिज्यात्। निज्यात्। अनिजत्। अनैक्षीत्। अनिक्त। विजिर् पृथग्भावे। वेवेक्ति। वेविक्ते। विवेजिथ। अत्र विज इट् इति ङित्त्वं न, 'ओ विजी' इत्यस्यैव तत्र ग्रहणात्। णिजिविजी रुधादावपि। विष्लृ व्याप्तौ। वेवेष्टि वेविष्टे। लृदित्वा-

।२५०३। नाभ्यस्तस्य मिदेर्गुण से गुण, पुगन्तमे लघूपधस्य की अनुवृत्ति। अजादि पित्। सार्वधातुकपरे अभ्यासससंज्ञकके लघूपधगुण नही होता। नेनिजानि नेनिजाव, गुण नही लुग। आत्मनेपदमे नेनिक्ता नेनिक्ष्व नेनिजाथा नेनिग्ध्व नेनिजै नेनिजावाहै। लङ लकारमे तिप् के त का हल्ङ्यादि लोप। जश् चर अनेनेक् अनेक्तिम् अनेनिक्त। अनेनिजम अनेनिज्व, नाभ्यस्तस्याचि पिति–से गुण निषेध। निक्षीष्ट लुङ लकार मे अनिजत् च्लि को अङ् इरितो वा सूत्रसे। अनिजता अनिजन्। जब न अङ्, किन्तु सिच तब अनैक्षीत् अनैष्टा अनैक्षु। आत्मनेपदमे अनिज सत झलोझलि से सिच लोप अनिक्त अनिक्षाताम अनिक्षत अनिक्था अनिक्षाथा अनिग्ध्वम अनिक्षि।

।९४। इर् इत् विच धातु का पृथग्भाव=अलग होनकी क्रिया। वेवेक्ति अलग होता है विविचति। अभ्यासको निजा त्रयाणा से गुण, दूसरे की लघूपध चो कु (ग) चर (क) वेविक्त वेविजति, बहुत अलग होते हैं। लिट् मे आत्मनेपद त एश वेविक्ते अलग होनेकी परोक्ष क्रिया विवेज विवेजिथ। अत्र=थल् परे इट् पक्षमे (विज इट से) ङित् नही होता, गुण निषेध नही। जहा ओविजी भयचलनयो धातु है वही ङित् गुण निषेध णिज और विज रुधादि मे भी पढे है वेक्ता वेक्ष्यति। विवेक्तु अविजत अवेजीत् अवेक्षीत अविक्त।

।९५। लृ इत् विष का व्याप्ति व्यापक होना क्रिया, उभयपप अनिट् णिज तुल्यरूप। वेवेष्टि इति विष्णु। ब्रह्माण्डमे व्यापक हो रहे है। विष ति द्वित्व आदि, निजा त्रयाणा अभ्यासकी गुण सार्वधातुक परे गुण, श के योगमे त को ट। वेवेष्टि वेविष्ट वेविषति। वेवेक्षि—सिपि परे षढो क ष को क–ष क्ष। वेविष्ठ वेविड्ढ। वेष्टा वेक्ष्यति व्यापक होगा। वेष्टासि वेष्टाहे व्यापक होगे। अह कर्तामे अनद्यतन भविष्मकालिक व्याप्ति क्रिया। आत्मनेपदमे वेविष्टे वेविषाते वेविषते। अवेवेक् अवेविक्ता अवेविषु। आशीर्वादमे विष्यात्। वह व्यापक बने। लुङ लकार मे लृदित् होनेसे अङ अविषत्

दड्। अविषत्। तङि क्स। अजादौ 'क्सस्याचि' इत्यल्लोप। अविक्षत। अविक्षाताम्। अवक्षन्त।

अथ आगणान्तात्परस्मैपदिनश्छान्दसाश्च। १०९६ घृ क्षरणदीप्त्योः। जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन। भृञामित् 'बहुलं छन्दसि इतीत्वम्। हृ प्रसह्यकरणे। 'अय स्रुवोऽभिजिहर्ति होमान्'। ऋ सृ गतौ। 'बहुलं छन्दसि' इत्येव

अविषता अविषन् अविष। अविषनम् अविषत। आत्मनेपदमे अविस त। शल इगुपधात सूत्रसे क्स। अविक्त झलोझति से सलोप। अजादिपरे क्सस्याचि से अकारलोप अविक्षत।

अथ आगणान्ता=जुहोत्यादिगण समाप्तिपर्यन्त परस्मैपदकी साधनिका सभी धातु छान्दस-वेदमे उपयोगी है। घृ धातु अनिट् है क्षरण पसीझना दीप्ति प्रकाशकी क्रिया। वर्तमाने लट तिप श्लौ द्वित्व अभ्यासादि कार्य घृघृ घरघृ, घघृ जघृ जघर्ति जघृत जघ्रति। वर्तमानकालिक क्षरण चमक क्रिया। हविषा घृतेन अग्नि जिघर्मि हवनीय घीसे अग्नि को प्रज्वलित करते है जिघर्म्यग्नि मनसा घृतेन मनसे घी से प्रज्वलित करता है। तैत्तिरीय पाठ। अभ्यास मे इत्व कैसे? भृञामित् सूत्रसे। परन्तु वहा तीन धातुको ही इत्व मान्य हे। घृ उसमे नही आता, तब बोले बहुल छन्दसि वेदमे वही इत्व, विकल्पसे होता है परोक्षे लिट् जघृ अ। आर्वृद्धि। जघार जघृ अतुस् यण, जघ्रतु जघ्रु जघर्थ जघ्रथु जघ्र जघ्रिव। पिघलना पसीझना प्रज्वलित होनेकी अप्रत्यक्ष हुई क्रिया। घरिता घरिष्यति। जघर्तु जघ्रितात् जघ्रतु। जघर्हि जघराणि जघराव। अब लड लकारमे अजघा अजघृता अजघरुः। अनद्यतनभूतकालमे रिसने जलनेकी क्रिया। अजघर अजघृत। जघ्रियात् घ्रियात् अघार्षीत् अघर्ष्टा अघार्ष्ट अघरिष्यत्।

। ९७। हृ धातुका प्रसह्यकाल (जोर देकर हरण करना) जिहर्ति। अय सुव होमान् अभिजिघर्ति हठात् यजमान बनाता है स्रुवे साद्यमाने यजमानो मन अभ्यासको इत्व, छान्दस है। जहार। अजह। अहार्षीत्। अहरिष्यत्। ९८। ऋ सृ दोनो अनिट है। गति प्राप्ति, ज्ञान अर्थ, ऋधातु यद्यपि छान्दस वेदमे उपयोगी है, परन्तु लोकके उपयोगमे भी प्रमाण देते हैं कि बहुल छन्दसि सूत्रसे ऋधातु को इत्व होना है। अर्तिपिपर्त्योश्च सूत्रमें अर्ति पढनेसे श्लुविकरण प्रयोग प्रमाणित। इत्व विधानके सामर्थ्यसे भाषामे भी मान्य। ऋ+ति दशामे द्वित्व ऋ ऋति। पहले ऋ को उरत् से अत्

सिद्धे 'अर्तिपिपर्त्योश्च' इतीत्वविधानादय माषाय।नवि। अभ्यासस्यासवर्णे इती यङ्। इयर्ति। इयृत। इयृति। आर आरतु। 'इडत्यर्ति इति नित्यमिट्। आरिथ। अर्ता अरिष्यति। इयराणि। ऐय ऐयृताम् ऐयरुः। इयृयात। अर्यात। आरत। सर्सति। ११०० भस भर्त्सनदीप्त्यो। बभस्ति। 'घसिभसो

प्राप्त उसे बाधकर अतिपिपर्योश्च अभ्यास ऋ को इत्व रपर। हलादिशेष। इ ऋ ति। दूसरे ऋ को गुण। इअर्ति असवर्ण अचि परे मिलगया अभ्यास के इ को इयङ् इयर्ति इयृत तस ङित् है गुणनिषेध होगा। अन्य क्रिया पूर्ववत् इयृति अभ्यास से झि को अत्। ङित् से गुण नही। उत्तरखण्ड ऋ को र यण इयर्षि इयर्मि। इयृव। लिट लकारमे आर, ऋ ऋ अर ऋ, वृद्धि आदि। आरतु आरुः। इडत्यर्तिव्यतीना से नित्य इट् क्योकि ऋतो भारद्वाजस्य नित्यनिषेध प्राप्त था, आरिथ आरथु आर आरिव आरिम। ज्ञान प्राप्ति मोक्षकी परोक्ष क्रिया। अर्ता अर्तारौ अर्तार। अनद्यतन भविष्यकाल मे प्राप्ति या ज्ञानकी क्रिया अरिष्यति। रिद्धनो से इट) अरिष्यत अरिष्यन्ति। गमन करेगे, जानेगे, पायेगे। वही प्राप्ति ज्ञान गमन यदि प्रेरणा प्रवृत्ति करानेका विषय हो इयर्तु इयृतात् इयृता इयृतु इयराणि। आडुत्तमस्यपिच्च णित् होनेसे न निषेध किन्तु गुण। इयराव इयराम। लङ लकार बीते भूतकालकी गतिक्रिया हो। ऐय -ऋ त् दश।मे श्लौ द्वित्व अभ्यास ऋ को इर। हलादिशेष। इ को इयङ् उत्तरखण्ड ऋ को गुण हल्ङ्यादि तलोप, रुवि। आट वृद्धि ऐय। तस को ता ऐयरु ऐय ऐयृत ऐयर ऐयृव। विधि लिङ्। ऋ या त्। यासुट ङित् है क्ङिति च से गुण निषेध। इयृता। आशीर्लिङ मे अर्यात् अकृत्सार्वधातुकयो दीर्घप्राप्त उसे बाधकर रिङ् प्राप्त, उसे बाधकर गुणोर्तिसंयोगाद्यो गुण। अर्यास्ता अर्यासु। आरत। ऋ च्लि त। सर्ति शास्ति अर्तिसे च्लिको अङ् ऋदृशोऽङि, गुण. अङि परे। आट आदि आरत आरता आरन् आर आरत आरत, आरिष्यत्।

सृ धातुका रूप सर्सति सृ+ति श्लौ द्वित्वादि। ससृ ति गुण। ससृत सस्रति बहुत कर्तामे सरकना क्रिया। ससार ससर्थ सस्रथु ससृव। सर्ता सरिष्यति। ससर्तु। अस्सर असस्सृताम् अससरु अससर अससृत, ससृयात् स्रियात्। लुङ्मे असरत् सर्तिशास्ति से अङ् गुण। असरताम् असरन्। असर असर। असरिष्यत्।

। ११०० । भस धातुका भर्त्सन तिरस्कार फटकार, भभकना क्रिया।

हलि इत्युपधालोप । 'झलो झलि' इति सलोप । बब्ध बप्सति । कि ज्ञाने । चिकेति । तुर त्वरणे । तुतोर्ति तुतूर्तं तुतुरति । धिष शब्दे । दिधेष्टि दिधिष्ट,

बभस्ति भस ति द्वित्व अभ्यासादिकाय । बमस तस दशामे घस भस धातुके उपधाका लोप हो हलि परे । भ के ञ का लोप । वेदमे दोनोके उपधाका लोप, अजादि या हलादि किति ङित् परे । झलो झलि से सलोप । ब म् ध झषस्तथोर्धोध त—ध और ब भ—ब ब प बप्सति । बभस झि अत् आदेश घसिभसो उपधा अलोप भ—स चर से बभस्सि बब्ध बब्ध । बभस्मि बप्स्व बप्स्म । अनेककर्तामे वर्तमान कालिक दुत्कार या दीप्ति क्रिया । परोक्षकालमे क्रिया हो चुको हो । भस भस बभस बभास बप्सतु बप्सु । बभसिथ बप्सथु बप्स । बभास बप्सित । भषिता भषिष्यति बभस्तु बब्धात् बब्धा बप्सतु । बब्धि बब्ध बब्ध । बभनानि बभसाव । लङ् अबभ अबब्धाम् अबप्सु । आबभ अबब्धम् अबप्सम् अबप्स्व । बप्स्यात् भस्यात् अभासीत् अभसीत्, अभसिष्यत ।

कि ज्ञाने कि कि चिकेति—द्वित्व होने पर अभ्यास को श्चुत्व, दूसरेको गुण । चिकित. चिक्यति । चिकेषि चिकिथ । चिकेमि चिकिव चिकाय चिक्यतु चिक्युः । चिकयिथ परोक्षकालिकज्ञान क्रिया । चिकेथ । केता-केष्यति ज्ञान करेगा । चिकेतु चिकितात् चिकिता चिक्यतु, चिकेहि चिक्यानि अचिकेत् अचिक्यु अचिके अचिकय । कीयात् अकैषीत् । अकेष्यत् । ज्ञानके अनुकूलक्रियाधातु का अर्थ । तुर धातुका त्वरण त्वरा शीघ्रता जल्दीबाजो घबडाहट की क्रिया । श्लौसे द्वित्व तु तुर ति, लघूपध गुण । तुतोर्ति तस्परे गुणनिषेध । किन्तु हलि च दीर्घ । तुतुर्त तुतुरति । अभ्यास देखकर झि को अत् । अनेक कर्तामे शीघ्रता की क्रिया तुतोर्षि तुतूर्थ । तुतोर्मि तुतूर्व. । लिटमे तुतोर तुतुरतु तुतुरु । तुतोरिथ तुतुरिव, तोरिता तोरिष्यति । शीघ्रता करेगा । तुतोर्तु तुतूर्ता तुतुरतु । तुतूर्हि तुतुराणि । लङ अतुतो अतुतूर्ता अतुतुरु अतुतो । अतुतुर । तुतूर्यात् तूर्यात् । अतोरीत् अतोरिष्यत् धिष का शब्द ध्वनि धृष्टता की आवाज या धिक्कारके शब्द । दिधेषि (श्लु द्वित्व लघूपधगुण आदि) दिधेष्टि दिधिष्ट तस परे न गुण. । दिधिषति दिधेक्षि दिधेष्मि दिधेष दिधीषतु । दिधेषिथ धेसिता धेषिस्यति । दिधेष्टु । दिधिड्ढि दिधिषाणि । अदिधेट् अदिधिष्टा । धिष्यात् अधेषीत् अधेष्यत् । धन धान्ये धन उपार्जनकी क्रिया वर्तमानकालिक उत्पादन कर्तामे

धन धान्ये। दधन्ति दधन्तः दधनति ११०५ जन जनने। जजन्ति। (२५०४) जनसनखनां सञ्झलोः ६।४।४२॥ एषामाकारोऽन्तादेश स्यात् झलादौ सनि झलादौ क्ङिति च। जजात। जज्ञति। जजसि। जजान। जजायात्। जजन्यात्। जायात्। जन्यात्। गा स्तुतौ। देवाञ्जिगाति सुम्नयु। जिगीत। जिगति। इति तिङन्ते जुहोत्यादिप्रकरणम्।

लट् धन धन धधन दधन। दधन झि अत। दधसि दधन्थ दधन्मि दधन्व। लिटमे दधान दधनतु। दधनिथ। धनिता धनिष्यति–धनका उत्पादन करेगा, वह क्रिया प्रेरणा प्रवृत्तिकराने का विषय हो लोट। दधन्तु दधन्तात् दधन्ता दधनतु। दध हि दधनानि। लङ् अदधान् अदधान्ता अदध्नु अदधन् अदधन अदधन्व। दधन्यात् धन्यात् अधानीत् अधनीत् अधनिष्यत्।

।११०५। जन जनने। उत्पत्ति मे अकर्मक, उत्पादन मे सकर्मक वर्तमानकालिक जनन उत्पत्ति क्रिया के कर्तामे लट द्वित्व जजन्ति जजात-जजन् तस दशा मे।

।२५०५। जन सन खन धातुके अन्त्य अल्-न को आ हो झलादि सन परे हो, या किति ङिति। विङ्वनो से आत आया, अनुदात्तोपदेश से झलि, क्ङिति। नकारको आत्व। जज्ञति अगहनहनखनसे उपधालोप जजान जजन्थ जजन्मि जजन्व। लिटमे जजान जज्ञतु। जज्ञथु जजनिथ। जनिता जनिष्यति। जजन्तु जजनानि। लङ अजजन अजजाता अजज्ञुः आजजन। विधि लिङ्मे ये विभाषा से विकल्प आत्व। जजायात्। अजनीत् अजानीत्। अजनिष्यत्। गा स्तुतौ गा धातुका स्तुति प्रार्थना परगुणगान अर्थ। देवाञ्जिगाति। देवता की स्तुति गुणगान की वर्तमान कालिक क्रिया। बहुलं छन्दसि की कृपासे अभ्यास को इत्व तस परे ई (हलि अघो) जिगीतः जिगासि। अभ्यस्तसे झको अत् आलोप। जिगति जिगासि जिगीथ जिगामि जिगीव। परोक्षकालमे गुण गाया। जगौ जगतु, जगिथ जगाथ जगिव। गाता गास्यति भगवानका गुण गायेगा। गान क्रियाके प्रति आदेश हो जिगातु जिगीता जिगतु जिगी। जिगानि। लङ् अजिगात् अजगीता अजगु अजगाम् अजगीव। जिगीयात् गेयात् अगासीत् अगास्यत्।

इति प्रभाकरमिश्र कृतायां प्राभाकरीटीकायां जुहोत्यादय।

